ऋग्वेद

मण्डल ९-१०

स्वाध्याय मण्डल

किल्ला पारडी

(जिला वलसाड)

ऋग्वेद का सुबोध भाष्य

चतुर्थ भाग

[मण्डल ९-१०]

भाष्यकार

पद्मभूषण डा० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

स्वाध्याय मण्डल

पारडी

प्रकाशक
वसन्त श्रीपाद सातवलेकर
स्वाध्याय मण्डल, पारडी
[जि० बलसाड]

This book has been published with financial assistance from the Ministry of Education and Culture, Government of India

1985

Rs. 460 for 10 Vols.

मुद्रक
मेहरा आफसेट प्रिंटर्स, नई दिल्ली

ऋग्वेदका सुबोध - भाष्य

नवम मण्डल

[१]

(ऋषिः- मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

१ स्वादिंष्ठया मदिंष्ठया पर्वस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुतः ॥ १ ॥
२ रक्षोहा विश्वचंर्षणि-रभि योनिमयोंहतम् । द्रुणा सधस्थमासंदत् ॥ २ ॥
३ वरिवोधातंमो भव मंहिंष्ठो वृत्रहन्तंमः । पर्षि राधों मघोनांम् ॥ ३ ॥

---

[१]

अर्थ—[१] (इन्द्राय पातवे) इन्द्रके पीनेको देनेके लिये (सुतः) सोमका रस निकाला है, वह तू, हे (सोम) सोमरस ! (स्वादिष्ठया मदिष्ठया) स्वादयुक्त तथा हर्ष बढानेवाली (धारया) धारासे (पवस्व) बहता रह ॥ १ ॥

सामवल्ली कूट कर उससे रस निकालते हैं और उस रसको इन्द्रदेवताके लिये यज्ञमें समर्पण करते हैं ।

[२] (रक्षोहा) राक्षसोंका वध करनेवाला तथा (विश्वचर्षणिः) सबको देखनेवाला यह सोम (अयो-हतं) लोहेके खीलोंसे मजबूत बनाये (योनिं) स्थानपर (द्रुणा सधस्थं आसदत्) द्रोण कलशमें बैठता है ॥ २ ॥

१ रक्षोहा—सोमरस पीनेसे शक्ति बढती है और वह वीर राक्षसोंको मारता है ।
२ विश्वचर्षणिः— सबका उत्तम निरीक्षण करनेमें वह वीर समर्थ होता है ।
३ अयोहतं योनिं द्रुणा सधस्थं आसदत्— लोहेके खीलोंसे मजबूत बनाये कलशमें वह सोमरस ठीक रीतिसे रखा रहता है । कलश मजबूत रहे, हिले नहीं, ऐसा सावधानता पूर्वक रखा रहता है ।

[३] (वरिवोधातमः भव) अत्यंत धन देनेवाला तू हो । तथा (मंहिष्ठः वृत्रहन्तमः) महान और शत्रुका नाश करनेवाला तू हो । (मघोनां राधः पर्षि) धनवान शत्रुके धन हमें दो ॥ ३ ॥

१ वरिवो-धा-तमः भव— बहुत धन देनेवाला हो ।
२ मंहिष्ठः वृत्रहन्तमः— महान बनकर शत्रुका नाश करनेवाला हो ।
३ मघोनां राधः पर्षि— धनवाले शत्रुओंका धन हमें दो ।

४ अभ्यर्ष महानां देवानां वीतिमन्धसा । अभि वाजमुत श्रवः ॥ ४ ॥
५ त्वामच्छा चरामसि तदिदर्थं दिवेदिवे । इन्दो त्वे न आशसः ॥ ५ ॥
६ पुनाति ते परिस्रुतं सोमं सूर्यस्य दुहिता । वारेण शश्वता तना ॥ ६ ॥
७ तमीमण्वीः समर्य आ गृभ्णन्ति योषणो दश । स्वसारः पार्ये दिवि ॥ ७ ॥
८ तमीं हिन्वन्त्यग्रुवो धमन्ति बाकुरं दृतिम् । त्रिधातु वारणं मधु ॥ ८ ॥

अर्थ— [४] (महानां देवानां) बडे देवोंके (वीतिं) यज्ञके पास (अन्धसा अभ्यर्ष) अन्नके साथ पहुंचो, तथा (वाजं उत श्रवः अभि) बल और अन्न हमें देवो ॥ ४ ॥

१ महान्तं देवानां वीतिं अभि अर्ष— बडे देवोंके लिये जहां यज्ञ हो रहा हो वहां तुम पहुंचो । यज्ञके स्थानपर जाना योग्य है ।

२ वाजं उत श्रवः अभि— बल और अन्न हमें देओ । अन्न और बल बढाना योग्य है । मनुष्योंको अपना बल तथा बल बढानेवाला अन्न बहुत प्राप्त करना चाहिये ।

[५] हे सोम ! (त्वां अच्छा चरामसि) तेरी ही उत्तम सेवा हम करते हैं । (दिवे दिवे) प्रतिदिन (तत् इत् अर्थं) वही निश्चयसे हमारा उद्देश्य रहता है । हे (इन्दो) सोम ! (त्वे नः आशसः) तेरे समीप ही हमारी सब इच्छाएं जातीं है ॥ ५ ॥

१ त्वां अच्छा चरामसि— तेरी सेवा-उपासना हम करते हैं ।

२ दिवे दिवे तत् इत् अर्थम्— प्रतिदिन तुम्हारी सेवा करनेके लिये ही हमारे प्रयत्न हो रहे हैं ।

३ हे इन्दो ! त्वे न आशसः— हे सोम ! तुझमें हमारी आशाएं, इच्छाएं समर्पित रहती हैं ।

[६] (सूर्यस्य दुहिता) सूर्यकी पुत्री (ते परिस्रुतं सोमं) तेरेसे निकले सोमरसको (शश्वता तना वारेण) शाश्वत फैले हुए वस्त्रसे (पुनाति) पवित्र करती है ॥ ६ ॥

१ सूर्यस्य दुहिता— सूर्यकी पुत्री, प्रातः समयकी वेला ।

२ शश्वता तना वारेण— शाश्वत फैले हुए वस्त्रसे, सोमका रस निकालने पर उसको छानते हैं। सोमका रस निकालते हैं और पश्चात् उसको कपडेमेंसे छानते हैं । इससे सोमरसमें रहे सोमवल्लीके अंश दूर होकर, केवल सोमका शुद्ध रस ही रहता है । यह रस दूधके साथ मिला कर पिया जाता है ।

[७] (समर्ये) यज्ञके (पार्ये दिवि) श्रेष्ठ दिनमें (दश योषणः स्वसारः अण्वीः) दस स्त्रीरूपी अंगुलियांरूपी बहिने (तं आ गृणन्ति) उस सोमवल्लीको पकडती है ॥ ७ ॥

यज्ञके दिनमें दस अंगुलियों उस सोमवल्लीको पकडती हैं और अपनी अंगुलियोंसे दबाकर उससे रस निकालती हैं । हाथमें सोमको अच्छी तरह पकडकर, उसको दबाकर, उससे रस निकाला जाता है ।

[८] (तं ईं) उस सोमको (अग्रुवः हिन्वन्ति) अंगुलियां लाती हैं, (बाकुरं दृतिं धमन्ति) तेजस्वी दीखनेवाले इस सोमका रस निकालते हैं । यह रस (मधु) मीठा होता है तथा (त्रिधातु) तीन शक्तियोंसे युक्त तथा (वारणं) दुःखका निवारण करनेवाला होता है ॥ ८ ॥

१ तं ईं अग्रुवः हिन्वन्ति— उस सोमको अंगुलियां यज्ञ स्थानमें लाती हैं ।

२ बाकुरं दृतिं धमन्ति— तेजस्वी दीखनेवाले इस सोमका रस निकालते है ।

३ मधु— यह सोमरस मधुर होता है ।

४ वारणं— दुःखका निवारण करके आनंदको बढाता है ।

५ त्रिधातु— तीन प्रकारकी शक्तियां इसमें रहती है, जिससे शरीर, मन और बुद्धिको सामर्थ्य प्राप्त होता है ।

९ अभीऽमघ्न्या उत श्रीणन्ति धेनवः शिशुम् । सोममिन्द्राय पातवे ॥ ९ ॥
१० अस्येदिन्द्रो मदेष्वा विश्वा वृत्राणि जिघ्नते । शूरो मघा च मंहते ॥ १० ॥

[२]

(ऋषिः– मेधातिथिः काण्वः । देवताः– पवमानः सोमः । छन्दः– गायत्री ।)

११ पवस्व देववीरति पवित्रं सोम रंह्या । इन्द्रमिन्दो वृषा विश ॥ १ ॥
१२ आ वच्यस्व महि प्सरो वृषेन्दो द्युम्नवत्तमः । आ योनिं धर्णसिः सदः ॥ २ ॥
१३ अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः । अपो वसिष्ट सुक्रतुः ॥ ३ ॥

अर्थ— [९] (इमं शिशुं) इस पुत्रस्वरूप सोमके साथ (अघ्न्याः धेनवः उत) अवध्य गौवें (इन्द्राय पातवे सोमं) इन्द्रको पीनेके लिये इस सोमरसके साथ (अभि श्रीणन्ति) अपने दूधको मिलाती हैं ॥ ९ ॥

१ इन्द्राय पातवे इमं शिशुं— इन्द्रको पीनेके लिये देनेके अर्थ गौका दूध इस सोमरसमें मिलाया जाता है । सोमरसमें गौका दूध मिलाते हैं और वह मिश्रण इन्द्रको अर्पण किया जाता है । और पश्चात् अन्य यज्ञकर्ता पीते है ।

२ धेनवः अघ्न्याः— गौवें अवध्य हैं । गौओंका वध कदापि नहीं होना चाहिये ।

[१०] (अस्य मदेषु इत्) इस सोमरस पानके आनन्दोंमें रहकर ही (इन्द्रः) इन्द्र (विश्वा वृत्राणि) सब घेरनेवाले शत्रुओंको (आ जिघ्नते) मारता है । और वह (शूरः) वीर इन्द्र (मघा च मंहते) धनोंका दान करता है ॥ १० ॥

१ अस्य मदेषु इत् इन्द्रः विश्वा वृत्राणि आ जिघ्नते— इस सोमरसके पीनेसे जो उत्साह बढता है, उस उत्साहमें रहकर इन्द्र सब शत्रुओंको मारता है ।

२ शूरः मघा मंहते— वह शूर इन्द्र अपने धनोंको भक्तोंको देता है । भक्तोंको धनवान् बनाता है ।

[२]

[११] हे (सोम) सोम ! तू (देव-वीः) देवोंके पास जानेवाला हो, अतः (अति पवस्व) उत्तम रीतिसे रसको अपनेमेंसे निकालो । (पवित्रं रंह्या) तू पवित्र है और आनंद देनेवाला है । अतः हे (इन्दो) सोम ! (वृषा) अपने सामर्थ्यसे (इन्द्रं विश) इन्द्रमें प्रवेश कर ॥ १ ॥

सोमरस दिव्य जन पीते हैं । इससे उनकी कर्तृत्व शक्ति बढती है । और वे उत्तम कार्य यशस्वी रीतिसे करनेमें समर्थ होते हैं । इससे कार्य करनेके समय मन सुप्रसन्न रहता है । और कार्य उत्तम प्रकार यशस्वी होता है ।

[१२] हे (इन्दो) सोम ! तू (महि प्सरः वृषा) महान् जीवन बलयुक्त करनेवाला है, तू (द्युम्नवत्तमः) तेज बढानेवाला है । तू (आ वच्यस्व) ये गुण हमें प्राप्त कराओ । तू (धर्णसि योनिं आसदः) धारण करनेवाला है, अतः स्वकीय यज्ञस्थानमें बैठ ॥ २ ॥

सोम जीवनका बल बढानेवाला है, तेजस्विताको बढाता है । धारण करनेकी शक्ति बढाता है । इस तरहका गुणवान सोम हमारे यज्ञस्थानमें रहे और यज्ञकर्ताओंकी शक्ति बढावे ।

[१३] (वेधसः सुतस्य धारा) इष्ट सिद्ध करनेवाले सोमरसकी धारा (प्रियं मधु अधुक्षत) प्रिय मधुरता देती है । यह (सुक्रतुः) उत्तम कर्म करनेवाला सोम (अपः वसिष्ट) पानीमें मिलाया जाता है, वह रस पानीके साथ रहता है ॥ ३ ॥

१ वेधसः सुतस्य धारा प्रियं मधु अधुक्षत— इष्ट फल देनेवाले इस सोमरसकी धारा प्रिय ऐसा मधुर रस देती है । सोमरस मधुर होता है अतः वह पीनेवालेका प्रिय भी होता है ।

२ सुक्रतुः अपः वसिष्ट— उत्तम कर्म करनेका उत्साह देनेवाला यह सोमरस पानीमें मिलाया जाता है । और इसको पीछेसे पीते हैं । सोमरसमें पानी मिलाकर पीते हैं ।

१४ महान्तं त्वा महीर—न्वापो अर्षन्ति सिन्धवः । यद्गोभिर्वासयिष्यसे ॥ ४ ॥
१५ समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः । सोमः पवित्रे अस्मयुः ॥ ५ ॥
१६ अचिक्रदद्वृषा हरि—र्महान् मित्रो न दर्शतः । सं सूर्येण रोचते ॥ ६ ॥
१७ गिरस्त इन्दु ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः । याभिर्मदाय शुम्भसे ॥ ७ ॥
१८ तं त्वा मदाय घृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे । तव प्रशस्तयो महीः ॥ ८ ॥
१९ अस्मभ्यमिन्दविन्द्रयु—र्मध्वः पवस्व धारया । पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव ॥ ९ ॥

अर्थ— [१४] (यत्) जब (गोभिः वासयिष्यसे) गौके दूधके साथ तेरा मिश्रण किया जाता है, तब (महान्तं त्वा) महान शक्तियुक्त ऐसे तेरे पास (महीः आपः सिन्धवः अनु अर्षन्ति) महान जलप्रवाह तेरे पास आते हैं ॥ ४ ॥

जब सोमरसमें गौका दूध मिलाया जाता है, तब बडे हुए तुझमें उत्तम जल भी मिलाया जाता है। सोमरसमें जल तथा गोदुग्ध मिलाया जाता है और पश्चात् वह मिश्रण पीया जाता है।

[१५] (समुद्रः) समुद्रके समान जलमय (दिवः धरुणः) दिव्य भावको धारण करनेवाला (विष्टम्भः) सुस्थिर रहनेवाला (अप्सु मा मृजे) सोम जलके साथ मिलाया जाता है। यह (सोमः) सोमरस (पवित्रे अस्मयुः) पवित्र छाननीमेंसे हमारे समीप आता है ॥ ५ ॥

सोमरसमें जल मिलाते हैं, छानते हैं और उसका हवन करनेके पश्चात् वह रस पीया जाता है।

[१६] (वृषा) बल बढानेवाला (हरिः) दुःखोंको दूर करनेवाला (महान् मित्रः न दर्शतः) बडे मित्रके समान दर्शन करने योग्य सोम (अचिक्रदत्) शब्द करता है और (सूर्येण सं रोचते) सूर्यके समान प्रकाशता है॥६॥

१ सोम (वृषा हरिः) बल बढाता है और दुःख दूर करता है।
२ वह सोम (महान् मित्रः न दर्शतः) बडे मित्रके समान देखनेमें है।
३ वह सोमरस पात्रमें डालनेके समय शब्द करता है।
४ और वह सूर्यके समान तेजस्वी है।

[१७] हे (इन्दो) सोम ! (ते गिरः) तेरे स्तोत्र (ओजसा) बलसे (अपस्युवः) सत्कार्य करनेकी प्रेरणा देते हैं और (मर्मृज्यन्ते) शुद्धता करते हैं। (याभिः) जिनसे तू (मदाय शुम्भसे) आनन्द प्राप्त करनेकी प्रेरणा देता है ॥ ७ ॥

१ ते गिरः ओजसा अपस्युवः— तेरे स्तोत्र बल बढाकर सत्कार्य करनेकी प्रेरणा देते हैं।
२ ते गिरः मर्मृज्यंते— तेरे स्तोत्र बोलनेवालेकी शुद्धता करते हैं।
३ याभिः मदाय शुम्भसे— जिन स्तुतियोंसे तू आनंद प्राप्त करनेके उपाय प्रकाशित करता है।

[१८] हे सोम (तव प्रशस्तयः महीः) तेरी प्रशंसाएं बडी विशाल हैं। (लोककृत्नुं ईहसे) तूं लोकोंको सत्कार्य करनेकी प्रेरणा देनेकी इच्छा करता है। (तं त्वा मदाय घृष्वये) उस तुझको हमें उत्साह देनेकी प्रार्थना करते हैं ॥ ८ ॥

१ त्वं लोककृत्नुं ईहसे— तूं लोकोंको सत्कार्य करनेकी प्रेरणा देता है।
२ तं त्वा मदाय घृष्वये— हमें उत्साह प्रदान करो यह हमारी प्रार्थना तुम्हारे समीप है।

[१९] हे (इन्दो) सोम ! (अस्मभ्यं) हमको (इन्द्रयुः) इन्द्रके पास पहुंचानेवाला तूं है। (मध्वः धारया पवस्व) मधुर सोम रसकी धारासे हमें पवित्र कर। जिस प्रकार (वृष्टिमान् पर्जन्य इव) वृष्टि करनेवाला पर्जन्य पवित्रता करता है ॥ ९ ॥

१ अस्मभ्यं इन्द्रयुः— हमको इन्द्रके पास पहुंचानेवाला तूं हो।
२ मध्वः धारया पवस्व— सोमरसकी मधुर धारासे हमें पवित्र कर।
३ वृष्टिमान् पर्जन्य इव— वृष्टी करनेवाला पर्जन्य जैसा आनंद देता है वैसा आनंद हमको तूं देते रहो।

२० गोषा इन्दो नृषा अस्यश्वसा वाजसा उत । आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः ॥ १० ॥

[३]

(ऋषिः- आजीगर्तिः शुनःशेपः, कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

२१ एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयति । अभि द्रोणान्यासदम् ॥ १ ॥
२२ एष देवो विपा कृतो ऽति ह्वरांसि धावति । पवमानो अदाभ्यः ॥ २ ॥
२३ एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः । हरिर्वाजाय मृज्यते ॥ ३ ॥
२४ एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वभिः । पवमानः सिषासति ॥ ४ ॥

अर्थ— [२०] हे (इन्दो) सोम ! तू (यज्ञस्य पूर्व्यः आत्मा) यज्ञका पहिला आधार है ऐसा तू (गो-षा) गौवें देनेवाला नृ-षा) पुत्र अथवा मनुष्य देनेवाला, (अश्व-सा) घोडे देनेवाला तथा (वाजसा) अन्न देनेवाला हो ॥ १० ॥

१ यज्ञस्य पूर्व्यः आत्मा— यज्ञका मुख्य आधार तूं है ।

२ गोषा, नृषा, अश्वसा, वाजसा— गौवें, मनुष्य, घोडे तथा अन्न देनेवाला तू है। इमें ये पदार्थ देवो।

[३]

[२१] (एष अमर्त्यः देवः) यह अमर सोम देव (द्रोणानि अभि आसदं) पात्रोंमें जाकर बैठनेके लिये (पर्णवीः इव) पक्षीके समान (दीयति) दौडता रहता है ॥ १ ॥

[२२] (एषः देवः) यह देव (विपा कृतः) अंगुलियोंसे दबाकर निकाला (अदाभ्यः) न दबनेवाला सोमरस (पवमानः) शुद्धता करता हुआ (ह्वरांसि अति धावति) शत्रुओंके आगे दौडता है ॥ २ ॥

१ एषः विपा कृतः देवः — यह अंगुलियोंसे दबाकर निकाला हुआ दिव्य सोमरस है ।

२ पवमानः अदाभ्यः — यह सोमरस शुद्धता करता है और अपना शुद्धताका कार्य करनेसे किसीसे दबकर अपना कर्तव्य छोडता नहीं ।

३ ह्वरांसि अतिधावति— शत्रुओंका अतिक्रमण करके स्वयं शुद्ध रहता है । यह वीर शत्रुओंको पीछे निकालकर स्वयं आगे जाता है ।

[२३] (एष देवः) यह दिव्य सोम (विपन्युभिः ऋतायुभिः) विद्वान यज्ञ कर्ताओंके द्वारा (पवमानः) रस निकाला जानेपर (वाजाय हरिः) युद्धके लिये जैसा घोडा प्रशंसित होता है, उस प्रकार (मृज्यते) स्तुति करके शुद्ध किया जाता है ॥ ३ ॥

विद्वान यज्ञ करनेवाले याज्ञिक सोमवल्लीका रस निकालते हैं, और उस सोमकी प्रशंसा स्तोत्रोंसे करते हैं । जिस प्रकार युद्धमें जानेवाले घोडेकी प्रशंसा की जाती है, जिस प्रकार घोडा युद्धमें जाता है और वहां वह शौर्यके कार्य करनेवाले वीरोंकी सहायता करता है, ठीक उस प्रकार सोम यज्ञमें जाता है और याज्ञिकोंकी सहायता करता है । यज्ञसे रोगबीज नष्ट करनेमें यह सोम सहायक होता है ।

[२४] (एष शूरः) यह शूरवीर (पवमानः) सोमरस निकालने पर (सत्वभिः यन्निव) अपने बलोंके साथ चलनेवाले शूरके समान (विश्वानि वार्या) सब प्रकारके धन (सिषासति) आक्रमण करके अपने पास रखता है ॥ ४ ॥

शूरवीर शत्रुपर आक्रमण करनेके समय सब प्रकारके धन अपने पास सुरक्षित रखता है, उस प्रकार यह सोम सब प्रकारके सामर्थ्य अपने समीप रखता है । शूर अपने सब धन सुरक्षित रखे और शत्रुपर आक्रमण करे । अपने धनोंको शत्रुके आधीन होने न दे । यह युद्धके समयकी नीति है ।

२५ एष देवो रथर्यति पवमानो दशस्यति । आविष्कृणोति वग्वनुम् ॥ ५ ॥
२६ एष विप्रैरभिष्टुतो ऽपो देवो वि गाहते । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ ६ ॥
२७ एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया । पवमानः कनिक्रदत् ॥ ७ ॥
२८ एष दिवं व्यासरत् तिरो रजांस्यस्पृतः । पवमानः स्वध्वरः ॥ ८ ॥
२९ एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः । हरिः पवित्रे अर्षति ॥ ९ ॥
३० एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः । धारया पवते सुतः ॥ १० ॥

अर्थ— [२५] (एष देवः) यह सोम देव (रथर्यति) रथकी इच्छा करता है, (पवमानः) रस निकाल शुद्ध किया हुआ यह सोम (दशस्यति) हमें धन देनेकी इच्छा करता है। (वग्वनुं आविष्कृणोति) शब्दोंका आविष्कार करता है ॥ ५ ॥

१ एष देवः रथर्यति— यह देव रथमें बैठनेकी इच्छा करता है।
२ पवमानः दशस्यति— शुद्ध होनेपर धन देनेकी इच्छा करता है।
३ वग्वनुं आविष्कृणोति— शब्द बोलकर उपदेश देता है।

[२६] (विप्रेभिः अभिष्टुतः एष देवः) ब्राह्मणोंने प्रशंसा किया हुआ यह देव सोम (अपः वि गाहते) जलोंमें मिल जाता है। (दाशुषे रत्नानि दधत्) दाताको रत्न देता है ॥ ६ ॥

१ विप्रेभिः अभिष्टुतः एष देवः— ब्राह्मण वेदमंत्रोंसे इस दिव्य सोमकी स्तुति करते हैं।
२ एष देवः अपः विगाहते— यह सोमदेव जलसे मिश्रित होता है।
३ दाशुषे रत्नानि दधत्— दाताको रत्न अर्थात् धन देता है।

[२७] (एषः) यह सोम (पवमानः) रस निकालकर शुद्ध करनेपर (धारया) अपनी धारासे (रजांसि तिरः) लोकोंका तिरस्कार करता हुवा (कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ (दिवं विधावति) द्युलोककी ओर दौडता है ॥ ७ ॥

१ एषः पवमानः— इस सोमका प्रथम रस निकालते हैं और उस रस को शुद्ध करते हैं।
२ एषः धारया रजांसि तिरस्कुर्वन्— वह सोमरस अपनी धारासे लोकोंको तिरस्कृत करता है। लोकोंको अपनेसे कम मानता है।
३ कनिक्रदत् दिवं विधावति— शब्द करता हुवा स्वर्गपर जानेके लिये दौडता है। अर्थात् इस सोमरसके पान करनेका विशेष महत्व है ऐसा माना जाता है।

[२८] (एष) यह (स्वध्वरः) उत्तम अहिंसक यज्ञस्वरूप (पवमानः) रस निकाला हुवा सोम (अ-स्पृतः) अहिंसित होकर (रजांसि तिरः) लोकोंको तिरस्कृत करके (दिवं व्यसरत्) द्युलोकमें पहुंचता है ॥ ८ ॥

यह उत्तम यज्ञस्वरूप सोम अहिंसक रीतिसे शुद्ध होकर, किसी अन्य स्थानमें न जाता हुवा, स्वर्गलोकको पहुंचता है। इस कारण इस सोमके उपासक सीधे स्वर्गको पहुंचते हैं

[२९] (हरिः) हरिद्वर्णका (एष देवः) यह दिव्य सोम (प्रत्नेन जन्मना) प्रथमं उत्पन्न होते ही (देवेभ्यः सुतः) देवोंको देनेके लिये रस निकाला हुआ (पवित्रे अर्षति) छाननीमें जाता है ॥ ९ ॥

सोमका रस निकालते हैं, उस समय वह हरे रंगका होता है। यह देवोंको अर्पण करनेके लिये निकाला जाता है। वह रस निकालकर छाननीमें डालकर छानते है और पश्चात् देवोंको अर्पण किया जाता है।

[३०] (स्यः एष उ) यह ही (पुरुव्रतः) अनेक कार्य करनेवाला (जज्ञानः) उत्पन्न होते ही (इषः जनयन्) अन्नोंको उत्पन्न करता हुआ (सुतः) रसस्वरूप यह सोम (धारया पवते) धारासे शुद्ध किया जाता है ॥ १० ॥

१ एष पुरुव्रतः— यह सोम अनेक कार्य करता है।
२ जज्ञानः इषः जनयन्— उत्पन्न होते ही अन्नोंको निर्माण करता है।
३ सुतः धारया पवते— रस निकालने पर धारासे पवित्र किया जाता है।

[४]

(ऋषिः- हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३१ सना च सोम जेषि च पवमान महि श्रवः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ १ ॥
३२ सना ज्योतिः सना स्व१र्विश्वा च सोम सौभगा । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ २ ॥
३३ सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ३ ॥
३४ पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ४ ॥
३५ त्वं सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ५ ॥

---

[४]

अर्थ—[३१] हे (महि श्रवः) महान् अन्नरूप (पवमान सोम) रस निकाले हुए सोम! (सन) देवोंका यज्ञमें स्वागत कर। (जेषि च) और राक्षसोंपर विजय प्राप्त कर। (अथ) और (नः) हमको (वस्यसः कृधि) अन्नोंसे युक्त कर ॥ १ ॥

१ महि श्रवः पवमान सोम— हे बडे अन्न युक्त रस निकाले हुए सोम !
२ सन— यज्ञमें यहां देवोंका स्वागत कर।
३ जेषि च— शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर।
४ नः वस्यसः कृधि— हमें अन्नोंसे युक्त कर। हमारे समीप बहुत अन्न रहें ऐसा कर।

[३२] हे (सोम) सोमरस ! (ज्योतिः सना) तू तेज हमें प्रदान कर। (स्वः सना) स्वर्गसुख हमें प्रदान कर। (विश्वा सौभगा) सब प्रकारके सौभाग्य हमें दो। (अथ नः वस्यसः कृधि) और हमें अन्नोंसे युक्त कर ॥ २ ॥

१ ज्योतिः सन— तेज हमें दो।
२ स्वः सना— स्वर्गसुख हमें दो।
३ विश्वा सौभगा सन— सब प्रकारके सौभाग्य हमें दो।
४ नः वस्यसः कृधि— हमको अन्नोंसे युक्त करो।

[३३] (सोम दक्षं सन) हे सोम ! हमें बल दो (उत क्रतुं) और प्रज्ञानमय कर्म करनेकी शक्ति दो। (मृधः अपजहि) शत्रुओंको निःशेष करके जीतो। और हमें अन्नोंसे युक्त कर ॥ ३ ॥

१ दक्ष सन— हमें बल दो।
२ क्रतुं सन— कर्म उत्तम रीतिसे करनेकी शक्ति हमें दो।
३ मृधः अपजहि — शत्रुओंको पराजित करो।
४ नः वस्यसः कृधि— हमें अन्नोंसे युक्त करो।

[३४] (पवीतारः) सोमसे रस निकालनेवाले ऋत्विज (इन्द्राय पातवे) इन्द्रके पीनेके लिये (सोमं पुनीतन) सोमका रस निकालें। और हमें अन्नोंसे युक्त करो ॥ ४ ॥

[३५] हे सोम ! (तव क्रत्वा) तेरे कर्तृत्वसे (तव ऊतिभिः) तेरे संरक्षणोंसे (त्वं नः सूर्ये आ भज) तू हमें सूर्यके प्रकाशमें पहुंचा दो। और हमें अन्नोंसे युक्त कर ॥ ५ ॥

१ तव क्रत्वा, तव ऊतिभिः नः त्वं सूर्ये आ भज— तेरे कर्तृत्वसे, और तेरे रक्षणोंके साथ हमको तू सूर्यके प्रकाशमें पहुंचाओ।

३६ तव॒ क्रत्वा॒ तवो॒तिभि॒र्ज्योक् प॑श्येम॒ सूर्य॑म् । अथा॑ नो॒ वस्य॑सस्कृधि ॥ ६ ॥
३७ अ॒भ्य॑र्ष स्वायुध॒ सोम॑ द्वि॒बर्ह॑सं र॒यिम् । अथा॑ नो॒ वस्य॑सस्कृधि ॥ ७ ॥
३८ अ॒भ्य१॒॑र्षान॑पच्युतो र॒यिं स॒मत्सु॑ सास॒हिः । अथा॑ नो॒ वस्य॑सस्कृधि ॥ ८ ॥
३९ त्वां य॒ज्ञैर॑वीवृधन् पव॑मान॒ विध॑र्मणि । अथा॑ नो॒ वस्य॑सस्कृधि ॥ ९ ॥
४० र॒यिं न॑श्चि॒त्रम॒श्विन॒मिन्दो॑ वि॒श्वायु॒मा भ॑र । अथा॑ नो॒ वस्य॑सस्कृधि ॥ १० ॥

[५]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- आप्रीसूक्तं= (१ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ इळा, ४ बर्हिः, ५ देवीर्द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः) । छन्दः- गायत्री, ८-११ अनुष्टुप् ।)

४१ समि॑द्धो वि॒श्वत॒स्पतिः॒ पव॑मानो॒ वि रा॑जति । प्री॒णन् वृषा॒ कनि॑क्रदत् ॥ १ ॥
४२ तनू॒नपा॒त् पव॑मानः॒ शृङ्गे॒ शिशा॑नो अर्षति । अ॒न्तरि॑क्षेण॒ रार॑जत् ॥ २ ॥

अर्थ— [३६] (तव क्रत्वा) तेरे कर्तृत्वसे (तव ऊतिभिः) तेरे संरक्षणोंसे (ज्योक्) चिरकाल तक (सूर्यं पश्येम) सूर्यको हम देखेंगे । और हमें अन्नोंसे युक्त करो ॥ ६ ॥

१ ज्योक् सूर्यं पश्येम— चिरकाल हम सूर्यको देखते रहेंगे । सूर्यको देखना हितकारक है । सूर्य प्रकाशसे रोगबीज दूर होते हैं ।

[३७] हे सोम ! हे (स्वायुध) उत्तम शस्त्र धारण करनेवाले वीर ! (द्विबर्हसं रयिं) द्यावा पृथिवीमें जो धन है वह (अभ्यर्ष) हमें दे दो । और हमें अन्नसे युक्त करो ॥ ७ ॥

[३८] (समत्सु सासहिः) युद्धोंमें शत्रुका पराजय करनेवाला तथा (अनपच्युतः) शत्रुओंसे जिसपर आघात नहीं हुए ऐसा (रयिं) धनको तू (अभ्यर्ष) हमें दे दो । और हमें धनसे युक्त करो ॥ ८ ॥

[३९] हे (पवमान) रस निकाले हुए सोम ! (त्वा) तुझे (यज्ञः विधर्मणि अवीवृधन्) यज्ञोंसे अपनी धारणा करनेके लिये बढाते हैं । अब हमें अन्नोंसे युक्त करो ॥ ९ ॥

[४०] हे (इन्दो) सोम ! (चित्रं आश्विनं रयिं) सर्व प्रकारका अश्वयुक्त धन (विश्वायुं नः आभर) सर्व आयुष्यमें हमें दे दो । और हमें अन्नोंसे युक्त करो ॥ १० ॥

[५]

[४१] (समिद्धः) प्रदीप्त किया हुआ (विश्वतः पतिः) सबका स्वामी (पवमानः) रस निकाला (प्रीणन्) सबको संतुष्ट करता हुआ यह (वृषा) बलवान सोम (कनिक्रदत्) शब्द करता है ॥ १ ॥

उत्तम रीतिसे तेजस्वी, यज्ञका सब प्रकारका स्वामी, रस निकाला हुआ सबको आनंद देनेवाला सोम, शब्द करता हुआ सोमपात्रमें जाता है । सोमरस निकालने पर वह रस चमकता है, और सबको प्रसन्न रखता है । इस रसको सोमपात्रमें रखा जाता है ।

[४२] (तनूनपात्) शरीरको न गिरानेवाला (पवमानः) पवित्र करनेवाला यह सोमरस (शृंगे शिशानः) उच्च भागसे शोभायमान होकर (अन्तरिक्षेण रारजत्) अन्तरिक्षसे चमकता हुआ पात्रमें गिरता है ॥ २ ॥

सोमरस शरीरको सुदृढ करता है, इस कारण वह शरीरको न गिरानेवाला कहा है । यह पवित्रता उत्पन्न करता है । ऊंचे भागसे चमकता हुआ सोमपात्रमें गिरता है । सोमरसको छाननेके लिये उस रसको ऊपरसे छाननेपर गिराते हैं और छाननीपर गिरकर वह रस छाना जाता है ।

४३ ईळेन्यः पवमानो रयिर्वि राजति द्युमान् । मधोर्धाराभिरोजसा ॥ ३ ॥
४४ बर्हिः प्राचीनमोजसा पवमानः स्तृणन् हरिः । देवेषु देव ईयते ॥ ४ ॥
४५ उदातैर्जिहते बृहद् द्वारो देवीर्हिरण्ययीः । पवमानेन सुष्टुताः ॥ ५ ॥
४६ सुशिल्पे बृहती मही पवमानो वृषण्यति । नक्तोषासा न दर्शते ॥ ६ ॥
४७ उभा देवा नृचक्षसा होतारा दैव्या हुवे । पवमान इन्द्रो वृषा ॥ ७ ॥
४८ भारती पवमानस्य सरस्वतीळा मही ।
इमं नो यज्ञमा गमन् तिस्रो देवीः सुपेशसः ॥ ८ ॥

अर्थ— [४३] (ईळेन्यः) प्रशंसनीय (पवमानः) सोम (रयिः) अभीष्ट धन देनेवाला (द्युमान्) तेजस्वी होकर (मधोः धाराभिः) मधुर रसकी धाराओंसे (ओजसा विराजति) अपने सामर्थ्यसे शोभता है ॥ ३ ॥

सोमरस चमकता है, मधुर होता है, बलवर्धन करता है और अपनी चमकसे शोभता है ।

[४४] (हरिः) हरे रंगका (देवः) दिव्य सोम (पवमानः) रस निकालनेके समय (देवेषु) यज्ञस्थानीय देवोंमें (बर्हिः प्राचीनं स्तृणन्) आसन पूर्वाभिमुख फैलाकर (ओजसा ईयते) बलसे आगे बढता है ॥ ४ ॥

सोमवल्ली हरे रंगकी होती है, वह (देवः) चमकती है, उसका रस निकालते हैं । देवोंके स्थानोंमें आसन फैला- कर उस आसनपर उसे रखते हैं। यह सोमरस अपने बलके लिये प्रसिद्ध हुआ है । सोमरस पीनेसे बल बढता है ।

[४५] (पवमानेन सुष्टुताः) सोमके साथ उत्तम रीतिसे स्तुति की गई (हिरण्ययीः द्वार देवीः) सुवर्णमयी द्वार देवताएं (बृहत् आतैः उत् जिहते) बडी विस्तृत दिशाओंसे बाहर आती हैं ॥ ५ ॥

सोमके साथ दिशाओंकी भी यज्ञमें स्तुति की जाती है । इस स्तुतिसे दिशाओंके सुवर्ण जैसे द्वार खुले होते हैं । जिनसे देवताएं यज्ञमें आती हैं । और यज्ञ उत्तम रीतिसे हो जाता है ।

[४६] (सुशिल्पे) उत्तम सुंदर (बृहती मही) बडे महान (न दर्शते) और दर्शनीयके समान (नक्तो- षासा) रात्री और उषाकी (पवमानः) सोम (वृषण्यति) इच्छा करता है ॥ ६ ॥

सोम चाहता है कि सुंदर दर्शनीय उषःकाल शीघ्र जाय और सोमरस यज्ञके लिये तैयार हो जाय ।

[४७] (नृचक्षसा) मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाले (दैव्या होतारा) दिव्य होता (उभा देवा) दोनों देवोंकी अर्थात् पवमान सोम और इन्द्र इन दोनों देवोंकी (हुवे) मैं प्रार्थना करता हूं ।

ये दोनों देव सोम तथा इन्द्र यज्ञमें आ जाय, हमारी प्रार्थना सुनें ।

[४८] (भारती) भारतकी राष्ट्रभाषा, (सरस्वती) विद्या और (मही इळा) बडी वाणी ये (सुपे- शसः तिस्रः देवीः) सुंदर रूपवाली तीन देवियां (पवमानस्य इमं नः यज्ञं) सोमके हमारे इस यज्ञमें (आगमन्) आयें ॥ ८ ॥

राष्ट्रभाषा, विद्या और बडी मातृभूमि ये तीनों उत्तम रूपवाली देवियां हमारे इस सोमयागमें आ जाय और यहां बडी प्रसन्नतासे रहें । इनके सन्मुख हमारा यह यज्ञ होता रहे ।

४९ त्वष्टा॑रमग्र॒जां गो॒पां पु॑रो॒यावा॑न॒मा हु॑वे ।
इन्दु॒रिन्द्रो॒ वृषा॒ हरि॒ः पव॑मानः प्र॒जाप॑तिः ॥ ९ ॥
५० वन॒स्पतिं॑ पवमान॒ मध्वा॒ सम॑ङ्‌ग्धि॒ धार॑या ।
स॒हस्र॑वल्शं॒ हरि॑तं॒ भ्राज॑मानं हिर॒ण्यय॑म् ॥ १० ॥
५१ विश्वे॑ दे॒वाः स्वाहा॑कृतिं॒ पव॑मान॒स्या ग॑त ।
वा॒युर्बृह॒स्पति॒ः सूर्यो॒ ऽग्निरिन्द्र॑ः स॒जोष॑सः ॥ ११ ॥

[६]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

५२ म॒न्द्रया॑ सोम॒ धार॑या॒ वृषा॑ पवस्व देव॒युः । अव्यो॒ वारे॑ष्वस्म॒युः ॥ १ ॥
५३ अ॒भि त्यं मद्यं॒ मद॒मिन्द॒विन्द्र॒ इति॑ क्षर । अ॒भि वा॒जिनो॒ अर्व॑तः ॥ २ ॥

अर्थ— [४९] (अग्रजां गोपां) प्रथम उत्पन्न प्रजाके पालनकर्ता (पुरः यावानं त्वष्टारं) आगे जानेवाला जगदुत्पादक त्वष्टाको (आ हुवे) मैं प्रार्थना करके बुलाता हूं। (हरिः पवमानः इन्दुः) हरे रंगवाला रस निकाला हुआ सोम, (इन्द्रः) इन्द्र (वृषा प्रजापतिः) कामना पूर्ण करनेवाला प्रजापालक, इनको मैं इस यज्ञमें बुलाता हूं ॥ ९ ॥

१ अग्रजां गोपां पुरः यावानं त्वष्टारं आ हुवे— प्रथम उत्पन्न हुआ सबका पालन कर्ता और सबसे आगे जानेवाला अग्रेसर त्वष्टा इनको मैं इस यज्ञमें आनेके लिये बुलाता हूं ।

२ (इन्दुः) सोम (इन्द्रः) इन्द्र तथा (प्रजापतिः) प्रजाका पालन करनेवाला प्रजापति है उनको मैं इस यज्ञमें बुलाता हूं ।

[५०] हे (पवमान) सोम ! (हरितं) हरे रंगके (हिरण्ययं) सुवर्णके समान चमकनेवाले (भ्राजमानं) तेजस्वी (सहस्रवल्शं) सहस्रों शाखावाले (वनस्पतिं) वनस्पति रूप सोमको (मध्वा धारया समङ्ग्धि) सोमरसकी मधुर धारासे संस्कारयुक्त करता हूं ॥ १० ॥

सोमरसकी मधुर धारा पात्रमें डालकर उस रसको संस्कारयुक्त करते हैं ।

[५१] वायु, बृहस्पति, सूर्य, अग्नि, इन्द्र ये देव (सजोषसः विश्वे देवाः) सब देव मिलकर (पवमानस्य) स्वाहाकृतिं आगत) सोममें स्वाहाकार यज्ञमें आ जांय ॥ ११ ॥

ये सब देव सोमयागमें मिलकर आ जांय और सोमयागको योग्य रीतिसे पूर्ण करें ।

[६]

[५२] हे सोम ! तू (देवयुः) देवोंके समीप जानेवाला (वृषा) शक्तिमान (मन्द्रया धारया पवस्व) आनंद देनेवाली धारासे शुद्ध हो जावो। (अस्मयुः) हमारे पास आनेवाला तू (वारेषु अव्यः) भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे छाना जा ॥ १ ॥

सोम यज्ञमें देवोंको अर्पण किया जाता है। इसलिये उसका रस निकालते हैं और भेडीके बालोंकी छाननीसे उसको छानते हैं। और पश्चात् उसका यज्ञमें अर्पण देवोंके लिये करते हैं।

[५३] हे (इन्दो) सोम ! तू (इन्द्रः इति) ईश्वर है इस कारण (त्यं मद्यं मदं अभि क्षर) उस आनंदकारक रसको अपनेमेंसे निकालो। तथा (अर्वतः वाजिनः अभि) बलवान घोडोंको भी निकालो ॥ २ ॥

हमारे लिये तुम्हारा रस मिले तथा घोडे भी हमें प्राप्त हों।

५४ अभि त्यं पूर्व्यं मदं सुवानो अर्ष पवित्र आ । अभि वाजमुत श्रवः ॥ ३ ॥
५५ अनु द्रप्सास इन्दव आपो न प्रवतासरन् । पुनाना इन्द्रमाशत ॥ ४ ॥
५६ यमत्यमिव वाजिनं मृजन्ति योषणो दश । वने क्रीळन्तमत्यविम् ॥ ५ ॥
५७ तं गोभिर्वृषणं रसं मदाय देववीतये । सुतं भराय सं सृज ॥ ६ ॥
५८ देवो देवाय धारयेन्द्राय पवते सुतः । पयो यदस्य पीपयत् ॥ ७ ॥
५९ आत्मा यज्ञस्य रंह्या सुष्वाणः पवते सुतः । प्रत्नं नि पाति काव्यम् ॥ ८ ॥

अर्थ— [५४] हे सोम ! (सुवानः) रस निकालनेके समय (पूर्व्यं त्यं मदं) पूर्वसे प्रसिद्ध, उस आनंद बढानेवाले रसको लेकर (पवित्रे अभि अर्ष) पवित्र करनेवाले उस स्थानमें आगमन करो। तथा (वाजं उत श्रवः अभि) बल और अन्न भी हमें दे दो ॥ ३ ॥

सोमसे रस निकालनेके समय वह सोमरस निकालनेके स्थानपर लाया जाता है, उसको पवित्र पात्रमें रखा जाता है और उससे रस निकाला जाता है। इस रससे बल और अन्न मिलता है।

[५५] (द्रप्सासः) शीघ्रताके साथ जानेवाले (पुनानाः) स्वच्छ होनेवाले (इन्दवः) सोमरस (प्रवता आपो न) शीघ्रगामी जलप्रवाहके समान (इन्द्रं अनु असरन्) इन्द्रके समीप जाने लगे। और वे सोमरस (आशत) फैलने लगे ॥ ४ ॥

जैसे जल प्रवाह फैलते रहते हैं, उस प्रकार ये स्वच्छ होनेवाले सोमरस इन्द्रके पास जानेके लिये, सिद्ध हुए। सोमरस निकालनेके बाद, उनको छानकर, उन रसोंको इन्द्रके समीप रखा जाता है।

[५६] (अत्यविं) पवित्र होनेके स्थानसे दूर रहे (वने क्रीडन्तं) वनमें रहनेवाले (यं) जिस सोमको (दश योषणः) दश अंगुलियां (अत्यं वाजिनं इव) चपल घोडेके समान (मृजन्ति) सेवा करती हैं ॥ ५ ॥

वनमें उत्पन्न हुए, यज्ञमें शुद्ध करनेके स्थानसे दूर रहे सोमकी सेवा, चपल घोडेकी सेवा करनेके समान, दस अंगुलियां करती हैं। हाथकी दसों अंगुलियां सोमको पकडती हैं और रस निकालनेकी तैयारी करती हैं यही सोमकी सेवा है। हाथकी अंगुलियां यह सेवा करती हैं।

[५७] (वृषणं) बलको बढानेवाले (देववीतये) देवोंको (मदाय सुतं) आनंद देनेके लिये निकाले (तं रसं) उस सोमरसको (भराय गोभिः सं सृज) मिश्रित करनेके लिये गौके दूधके साथ मिला दो ॥ ६ ॥

सोमरस बल बढानेवाला है, वह यज्ञमें आये देवोंको पीनेको देनेके लिये निकाला जाता है। उसमें गौका दूध मिलाकर देवोंको पीनेके लिये दे दो।

[५८] (देवाय इन्द्राय सुतः) इन्द्र देवके लिये निकाला (देवः) यह दिव्य सोमरस (धारया पवते) धारासे पात्रमें गिरता है। (यत् अस्य पयः पीपयत्) जो इस इन्द्रके लिये पुष्टी करता है ॥ ७ ॥

इन्द्र देवको देनेके लिये निकाला यह दिव्य सोमरस धारासे पात्रमें गिरता है और इस रसमें दूध मिलाया जाता है और वह रस इन्द्रको दिया जाता है।

[५९] (यज्ञस्य आत्मा) यज्ञका आत्मा जैसा (सुतः) यह सोमरस (सुष्वाणः) यजमानकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये (रंह्या पवते) वेगसे पात्रमें उतरता है तथा (प्रत्नं काव्यं नि पाति) अपने काव्यकी सुरक्षा करता है ॥ ८ ॥

यह सोमरस यज्ञका आत्मा जैसा यज्ञमें प्रमुख है। यह सोमरस यजमानकी सब इच्छाएं परिपूर्ण करता है, इसके लिये यह सोमरस वेगसे पात्रमें गिरता है तथा इस समय स्तोत्र गाये जाते हैं।

×

६० एवा पुनान इन्द्रयु-र्मदं मदिष्ठ वीतये । गुहा चिद्दधिषे गिरः ॥ ९ ॥

[७]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

६१ असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः । विदाना अस्य योजनम् ॥ १ ॥
६२ प्र धारा मध्वो अग्रियो महीरपो वि गाहते । हविर्हविष्षु वन्द्यः ॥ २ ॥
६३ प्र युजो वाचो अग्रियो वृषाव चक्रदद्वने । सद्माभि सत्यो अध्वरः ॥ ३ ॥
६४ परि यत् काव्या कवि-र्नृम्णा वसानो अर्षति । स्वर्वाजी सिषासति ॥ ४ ॥

अर्थ— [६०] (मदिष्ठ) आनंद बढानेवाले सोम ! (इन्द्रयुः) इन्द्रके पास जानेवाला तू (वीतये) इन्द्रके पीनेके लिये ही उस इन्द्रका (मद पुनानः) आनंद बढानेवाला होकर (गुहा) यज्ञशालामें (गिरः चित् दधिषे) स्तुतिकी वाणियोंका धारण करता है ॥ ९ ॥

सोमरस आनंद बढानेवाला है। सोमरस पीनेसे मन प्रसन्न होता है। इन्द्रको पीनेको देनेके लिये ही यहां हम सोमसे रस निकालते हैं और उसको यज्ञस्थानके समीप रखते हैं और उसकी स्तोत्र गायनसे स्तुति करते हैं।

[७]

[६१] (सुश्रियः) उत्तम शोभासे युक्त (अस्य योजनं विदानाः) अपना इस इन्द्रके साथ संबंध है यह जाननेवाले (इन्दवः) सोमरसको (धर्मन्) इस यज्ञके धार्मिक कार्यमें (ऋतस्य पथा असृग्रं) सत्यके मार्गसे ही निकालते हैं ॥ १ ॥

अपना इन्द्र देवके साथ संबंध है यह जाननेवाले सोमरस, उत्तम शोभासे युक्त होकर, यज्ञके कार्यमें निकाले जाते हैं। यज्ञके कार्यको योग्य रीतिसे करनेके लिये यज्ञके स्थानपर ही सोमसे रस निकाले जाते हैं।

[६२] (हविष्षु वन्द्यः) हवियोंमें मुख्य (हविः) हविर्द्रव्यरूपी यह सोम (महीः आपः विगाहते) बडे जलोंमें मिलाया जाता है। उस (मध्वः) उस मधुर सोमकी (धाराः) धाराएं (अग्रियः) अग्रभागमें (विहागते) बहती हैं ॥ २ ॥

१ हविष्षुः वन्द्यः हविः— हविर्द्रव्योंमें मुख्य हविर्द्रव्य यह सोम ही है।
२ महीः आपः विगाहते— वह सोम जलोंमें मिलाया जाता है।
३ मध्वः धाराः अग्रियः विगाहते— उसकी मधुर धाराएं आगे चलती रहती हैं।

[६३] (वृषा) कामनाओंको पूर्ण करनेवाला (सत्यः अध्वरः) सत्य रूपसे हिंसा रहित (अग्रियः) मुख्य सोम (सद्म) यज्ञगृहके (अभि) पास (वने युजः) उदकसे युक्त होकर (वाचः) वाणियां (अव चक्रदत्) बोलता है ॥ ३ ॥

कामनाओंको पूर्ण करनेवाला सच्ची रीतिसे हिंसा न करनेवाला यह मुख्य सोम यज्ञस्थानके समीप रहकर शब्दोंको बोलता है। जिस समय सोमरस पात्रमें रखते हैं, उस समय सोमरस पात्रमें गिरनेका शब्द होता है।

[६४] (कविः) दिव्य दृष्टिवाला (नृम्णा वसानः) धनोंसे युक्त होकर सोम स्तोताओंके (काव्या) काव्य (यत् परि अर्षति) जब देखता है, तब (स्वः वाजी) स्वर्गमें रहनेवाला बलवान इन्द्र (सिषासति) यज्ञमें आनेकी इच्छा करता है ॥ ४ ॥

सोम यज्ञमें जब सोमकी स्तुति स्तोत्रों द्वारा गाई जाती है, तब इन्द्र भी स्वर्गसे यज्ञमें आनेकी तैयारी करता है।

६५ पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति । यदीमृण्वन्ति वेधसः ॥ ५ ॥
६६ अव्यो वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति । रेभो वनुष्यते मती ॥ ६ ॥
६७ स वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति । रणा यो अस्य धर्मभिः ॥ ७ ॥
६८ आ मित्रावरुणा भगं मध्वः पवन्त ऊर्मयः । विदाना अस्य शक्मभिः ॥ ८ ॥
६९ अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये । श्रवो वसूनि सं जितम् ॥ ९ ॥

अर्थ— [६५] (**यत् ईं**) जिस समय इस सोमको (**वेधसः ऋण्वन्ति**) यज्ञ कर्ता प्रेरित करते हैं, तब (**पवमानः**) रस निकाला हुआ सोम (**स्पृधः**) स्पर्धा करनेवाले दुष्टोंको तथा (**विशः**) दुष्ट मनुष्योंको (**राजा इव अभि सीदति**) राजाके समान विनष्ट करता है ॥ ५ ॥

जिस प्रकार राजा अपने राज्यसे दुष्टोंको दूर करता है, उस प्रकार यज्ञ कर्ता सोमका रस निकाल कर यज्ञस्थानसे यज्ञके विरोधियोंको दूर करता है।

[६६] (**हरिः**) हरे वर्णका यह सोम (**प्रियः**) देवोंको प्रिय है। यह सोम (**वनेषु**) जलसे मिलकर (**अव्यः वारे परि सीदति**) मेढोंके बालोंकी छाननीपर छाना जानेके लिये बैठता है और (**रेभः**) शब्द करता हुआ (**मती मनुष्यते**) अपनी स्तुतिसे प्रशंसित होता है ॥ ६ ॥

हरे वर्णका यह सोम सब देवोंको प्रिय है। वह सोमरस जलके साथ मिलाकर मेढीके बालोंकी छाननीसे छाना जाता है। उस समय सोमरसके छाना जानेका शब्द होता है। और यज्ञकर्ता लोग उस सोमकी प्रशंसा करनेवाले स्तोत्रों-का गायन करते हैं।

[६७] (**यः**) जो यजमान (**अस्य धर्मभि रण**) इस सोमके गुणों और धर्मोंसे आनंदित होता है, वह (**वायुं इन्द्रं अश्विना साकं**) वायु, इन्द्र, अश्विनौको (**मदेन**) आनंदके साथ प्राप्त करता है ॥ ७ ॥

जो यजमान इस सोमके गुणधर्मोंसे प्रसन्न होता है वह वायु, इन्द्र, अश्विनौ देवोंको आनदके साथ प्रसन्न करता ह। वे देव प्रसन्न होकर उस यजमानकी सहायता करते हैं।

[६८] जिन यजमानोंके (**मध्वः ऊर्मयः**) मधुर सोमरसकी लहरें (**मित्रावरुणौ भगं**) मित्र, वरुण, भग आदि देवोंके समीप (**पवन्ते**) जाती हैं वे यजमान (**अस्य विदानाः**) इस सोमका महत्त्व जानते हैं वे (**शक्मभिः**) सुखोंको प्राप्त करते हैं ॥ ८ ॥

जो यजमान यज्ञ करते हैं और मित्र, वरुण, भग आदि देवोंके लिये सोमका अर्पण करते हैं, वे आनंदको प्राप्त करते हैं। यज्ञसे आनंद प्राप्त होता है।

[६९] हे (**रोदसी**) द्युलोक और भूलोको ! (**मध्वः वाजस्य सातये**) मधुर अन्नके लाभके लिये (**अस्मभ्यं**) हम लोगोंके लिये (**रयिं**) धन, (**श्रवः**) अन्न तथा (**वसूनि**) सब प्रकारके धन (**सं जितं**) उत्तम प्रकारसे दे दो ॥ ९ ॥

हमें मधुर अन्न सतत मिलता रहे, इसलिये धन, बलवर्धक अन्न तथा सब प्रकारके निवासके लिये उत्तम सहाय करनेवाले पदार्थ उत्तम रीतिसे दे दो।

१ **मध्वः वाजस्य सातये**— मधुर अन्न मिलता रहे इसलिये आवश्यक होनेवाला सहाय करो। सुमधुर अन्न सदा हमें प्राप्त होता रहे।

२ **रयिं श्रवः वसूनि सं जितम्**— धन, अन्न और सब प्रकारके निवासके लिये आवश्यक पदार्थ उत्तम रीतिसे हमें प्राप्त होते रहें। ऐसी सुव्यवस्था होनी चाहिये।

[८]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

७० एते सोमा अभि प्रियमिन्द्रस्य काममक्षरन् । वर्धन्तो अस्य वीर्यम् ॥ १ ॥
७१ पुनानासश्चमूषदो गच्छन्तो वायुमश्विना । ते नो धान्तु सुवीर्यम् ॥ २ ॥
७२ इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय । ऋतस्य योनिमासदम् ॥ ३ ॥
७३ मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः । अनु विप्रा अमादिषुः ॥ ४ ॥

---

[८]

अर्थ— [७०] (एते सोमाः) ये सोमरस (अस्य वीर्यं वर्धन्तः) इस इन्द्रके पराक्रमोंको बढाते हैं । और (इन्द्रस्य कामं प्रियं) इन्द्रको अभीष्ट और प्रिय लगनेवाले रसको देते हैं ॥ १ ॥

१ सोमाः वीर्यं वर्धन्तः— सोमरस वीर्यकी वृद्धि करते हैं । शरीरमें वीर्यको बढाते हैं । सोमरस पीनेसे शरीरमें वीर्य बढता है ।

२ इन्द्रस्य प्रियं कामं वर्धन्तः— इन्द्रकी प्रिय इच्छाको भी बढाते है । पुरुषार्थ करनेकी इच्छा सोमरस पीनेसे वृद्धिगत होती है ।

[७१] (ते पुनानासः) वे पवित्रता करनेवाले सोमरस (चमूसदः) पात्रोंमें रखे हुए (वायुं अश्विना गच्छन्तः) वायुको तथा अश्विनौ देवोंको प्राप्त होते हैं, (ते सुवीर्यं न धान्तु) वे रस उत्तम बल हमारेमें धारण करें ॥ २ ॥

सोमरस निकालनेपर उनको पात्रोंमें रखा जाता है, वहां वायुके साथ उनका संबंध होता है तथा अश्विनौ देवोंके साथ भी उनका संबंध होता है । इससे वे रस उत्तम वीर्यको शरीरमें बढानेके लिये समर्थ होते हैं । अश्विनौ ये वैद्य हैं, रोगोंको दूर करते हैं । इस रोगोंको दूर करनेके कार्यमें सोमरसका उपयोग वैद्य लोग कर सकते हैं ।

[७२] हे सोम ! (पुनानः) रसको पवित्र करके (इन्द्रस्य हार्दि राधसे) इन्द्रको हृदयमें रही अभिलाषाकी सिद्धिके लिये (ऋतस्य योनिं) यज्ञके स्थानमें (आसदं) आकर इन्द्र बैठ जाय, इसलिये उस इन्द्रको (चोदय) प्रेरित कर ॥ ३ ॥

१ हे सोम ! पुनानः इन्द्रस्य हार्दि राधसे ऋतस्य योनिं आसदं इन्द्रं चोदय— हे सोम ! तू पवित्र किया जानेपर अर्थात् छाना जानेपर, इन्द्रकी हृदयकी इच्छाको पूर्ण करनेके लिये यज्ञके स्थानपर बैठ और इन्द्रको प्रेरित करो कि वह इन्द्र भी वहां आकर आसनपर बैठ जाय ।

[७३] हे सोम ! (त्वा दश क्षिप मृजन्ति) तेरी दस अंगुलियां सेवा करती हैं । (सप्त धीतयः त्वा हिन्वन्ति) सात हवन करनेवाले होतागण तुझे प्रसन्न करते हैं, तथा (विप्राः अनु अमादिषुः) विप्र लोक तुझे सन्तुष्ट करते हैं ॥ ४ ॥

१ त्वा दश क्षिपः मृजन्ति— सोमकी सेवा दस अंगुलियां करती हैं । ये अंगुलियां दबाकर सोमका रस निकालती हैं ।

२ सप्त धीतयः त्वा हिन्वन्ति— सात हवन कर्ता तुझे प्रसन्न करते हैं ।

३ विप्राः अनु अमादिषुः— तथा विप्र तुम्हें सन्तुष्ट करते हैं ।

७४ देवेभ्यस्त्वा मदाय कं सृजानमति मेष्यः । सं गोभिर्वासयामसि ॥ ५ ॥
७५ पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः । परि गव्यान्यव्यत ॥ ६ ॥
७६ मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अप द्विषः । इन्दो सखायमा विश ॥ ७ ॥
७७ वृष्टिं दिवः परि स्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि । सहो नः सोम पृत्सु धाः ॥ ८ ॥
७८ नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतं स्वर्विदम् । भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥ ९ ॥

अर्थ— [७४] हे सोम ! (मेष्यः) मेढीके बालोंकी छाननीसे तथा (कं) जलसे (अति सृजानं त्वा) शुद्ध करनेके लिये छाननेपर तुझे (देवेभ्यः मदाय) देवोंको आनंद देनेके लिये (गोभिः सं वासयिष्यसि) गौओंके दूधके साथ मिलाया जाता है ॥ ५ ॥

१ मेष्यः सोमः— मेढीके बालोंकी छाननीसे सोमरस छाना जाता है ।

२ कं अति सृजानं त्वा— जलके साथ मिलाकर शोधित किया जाता है ।

३ देवेभ्यः मदाय गोभिः संवासयिष्यसि— देवोंको देनेके लिये गौके दूधसे मिलाया जाता है । और पश्चात् सोमरसको पीया जाता है ।

[७५] (पुनानः कलशेषु) छाना जानेपर सोमरस कलशोंमें रखा जाता है । (अरुषः हरिः) तेजस्वी हरे रंगका सोमरस (गव्यानि वस्त्राणि परि अव्यत) गौके दूधरूपी वस्त्रोंमें आच्छादित किया जाता है ॥ ६ ॥

सोमरस निकालनेपर कलशोंमें सुरक्षित रखा जाता है । उस चमकनेवाले हरे रंगके सोमरसमें गौका दूध मिलाया जाता है । मानो गौके दूधरूपी वस्त्र उसपर पहनाये जाते हैं ।

[७६] हे (इन्दो) सोम ! (मघोनः नः) धनसे युक्त ऐसे हमारे लिये (आ पवस्व) रस निकालो । (विश्वा द्विषः अप जहि) सब शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर । (सखायं आ विश) मित्र इन्द्रके अन्दर प्राप्त हो ॥ ७ ॥

१ मघोनः नः आ पवस्व — हम धनवानोंके लिये रस निकालो ।

२ विश्वा द्विषः अपजहि— सब शत्रुओंको पराभूत कर ।

३ सखायं आ विश — मित्र इन्द्रके अन्दर प्रविष्ट होओ । इन्द्र तुम्हारा पान करे ।

[७७] हे (सोम) सोम ! (दिवः वृष्टिं परिस्रव) द्युलोकमेंसे वृष्टि करो । (पृथिव्याः अधि) पृथिवीके ऊपर (द्युम्नं) अन्न उत्पन्न करो । (नः सहः) हमारा बल (पृत्सु धाः) युद्धोंमें प्रकट हो ऐसा कर ॥ ८ ॥

१ दिवः वृष्टिं परि स्रव— द्युलोकसे वृष्टि होवे ।

२ पृथिव्या अधि द्युम्नं— पृथिवीके ऊपर अन्न उत्पन्न होवे ।

३ नः सहः पृत्सु धाः— हमारा बल युद्धोंमें प्रकट हो ।

[७८] हे सोम ! (नृचक्षसं) मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाले (स्वर्विदं) सर्वज्ञ (इन्द्रपीतं त्वा) इन्द्रने पीये तुझे अर्थात् सोमरसको पीनेवाले (वयं) हम (प्रजां इषं भक्षीमही) संतान और अन्नको प्राप्त करते हैं ॥ ९ ॥

मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाले, सब ज्ञान देनेवाले, इन्द्रने पीये इस सोमरसको पीनेवाले हम प्रजा तथा अन्नको अच्छी प्रकार प्राप्त करते हैं ।

[९]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः-पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

७९ परिं प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः । सुवानो याति कविक्रतुः ॥ १ ॥
८० प्रप्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहे । वीत्यर्ष चनिष्ठया ॥ २ ॥
८१ स सूनुर्मातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत् । महान् मही ऋतावृधा ॥ ३ ॥
८२ स सप्त धीतिभिर्हितो नद्यो अजिन्वदद्रुहः । या एकमक्षि वावृधुः ॥ ४ ॥
८३ ता अभि सन्तमस्तृतं महे युवानमा दधुः । इन्दुमिन्द्र तव व्रते ॥ ५ ॥

[९]

अर्थ— [७९] (कविः कविक्रतुः) बुद्धिवान और बुद्धिके कार्य करनेवाला सोम (नप्त्योः हितः) रस निकालनेके स्थान पर रखा हुवा (सुवानः) रस निकालनेके समय (दिवः परि) द्युलोकसे श्रेष्ठ (वयांसि याति) ऐसे रस निकालनेके स्थानपर जाता है ॥ १ ॥

१ कविः कविक्रतुः — सोमरस काव्य करनेका उत्साह तथा स्फुरण देता है ।

२ दिवः परि वयांसि याति— सोमरस पीनेसे द्युलोकके ऊपरके स्थानोंपर मनुष्य जाता है । इतना ऊंचा उसके विचारोंका स्थान होता है ।

[८०] हे सोम ! (प्र प्र क्षयाय) अत्यंत उत्तम आधार देनेवाले (अद्रुहे पन्यसे जनाय) द्रोह न करनेवाले स्तुत्य जनके लिये (जुष्टः) सेवनीय (चनिष्ठया अर्ष) अन्नसे युक्त होकर आगे बढ ॥ २ ॥

द्रोह न करनेवाले मनुष्यको निवासस्थान देनेके लिये सोम तैयार रहता है । सोम यज्ञ करनेवालोंको उत्तम निवासस्थान मिलते हैं ।

[८१] (जातः शुचिः महान् सः) प्रसिद्ध शुद्ध और बडा वह सोम नामक (सूनुः) पुत्र (मही ऋतावृधा) बडी यज्ञकी महती ऋद्धि करनेवाली (जाते मातरा) विश्वको उत्पन्न करनेवाली दो माताएं—अर्थात् दोनों द्यावापृथिवी-को दीप्तिमान् करता है ॥ ३ ॥

वह सोम उत्पन्न होते ही, अर्थात् सोमरस निकालते ही, द्यावापृथिवीको प्रकाशसे युक्त करता है । अपने प्रकाशसे प्रकाशित करता है । सोमरस तेजस्वी अर्थात् चमकनेवाला होता है । वह स्वयं प्रकाशता है और अन्योंको भी प्रकाशित करता है ।

[८२] (याः) जो नदियां (एकं अक्षि वावृधुः) एक क्षीण न होनेवाले सोमका संवर्धन करती हैं (सः) वह (धीतिभिः) अंगुलियोंसे (हितः) सुरक्षित रखा हुआ (अ-द्रुहः) द्रोह न करनेवाला सोम (सप्त नद्यः अजिन्वत्) सातों नदियोंको आनंदित करता है ॥ ४ ॥

सात नदियोंका जल सोमरसमें मिलाया जाता है, इस कारण सोमरससे सातों नदीयां प्रसन्न होती हैं ।

[८३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ताः) वे अंगुलियां (सन्तं अस्तृतं) उनके अंदर रहनेवाले अहिंसित (युवानं इन्दुं) तरुण सोमको (महे) बडे (तव व्रते) तेरे यज्ञरूपी महान कर्ममें (अभि आ दधुः) सब प्रकारसे धारण करती हैं ॥ ५ ॥

यज्ञ कर्ताके हाथोंकी अंगुलियां अपने पास सोमवल्लीको धारण करके रखती हैं । समयपर उसका रस निकाला जाता है और वह सोमरस यज्ञमें देवताओंको अर्पण किया जाता है ।

८४ अभि वह्निरमर्त्यः सप्त पश्यति वावहिः । क्रिविर्देवीरतर्पयत् ॥ ६ ॥
८५ अवा कल्पेषु नः पुम—स्तमांसि सोम योध्या । तानि पुनान जङ्घनः ॥ ७ ॥
८६ नू नव्यसे नवीयसे सूक्ताय साधया पथः । प्रत्नवद्रोचया रुचः ॥ ८ ॥
८७ पवमान महि श्रवो गामश्वं रासि वीरवत् । सना मेधां सना स्वः ॥ ९ ॥

[१०]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

८८ प्र स्वानासो रथा इवा—ऽर्वन्तो न श्रवस्यवः । सोमासो राये अक्रमुः ॥ १ ॥

अर्थ— [८४] जो (वह्निः) यज्ञको चलानेवाला (अमर्त्यः) मरणधर्मरहित और (वावहिः) देवोंतक हवन किये पदार्थ पहुंचाता है, ऐसा सोम (सप्त) सात नदियोंको (पश्यति) देखता है, वह (क्रिविः) कूवेके समान जलसे पूर्ण होकर रहता है और (देवीः अतर्पयत्) दिव्य नदीयोंकी तृप्ती करता है ॥६ ॥

१ अमर्त्यः वह्निः वावहिः— अमर अग्नि देवोंके पास हवन किये हवनीय पदार्थ पहुंचाता है ।

२ सप्त पश्यति— सात नदियोंको देखता है । सात नदियोंका जल सोमरसमें मिलाया जाता है ।

३ क्रिविः देवीः अतर्पयत्— कूवेके समान जलसे युक्त होकर देवोंको तृप्त करता है । सोमरसमें नदियोंका जल मिलाकर उसको पीया जाता है ।

[८५] हे (पुमः) पुरुष सोम ! (कल्पेषु नः अव) सब कल्पोंमें हमारा रक्षण कर । हे (पुनान सोम) पवित्र करनेवाले सोम ! तू (योध्या तानि तमांसि) युद्ध करनेके योग्य अंधकार अर्थात् ज्ञानहीन उन राक्षसोंका (जंघन) नाश कर ॥ ७ ॥

१ पुमः ! कल्पेषु नः अव— हे पुरुषार्थ करनेवाले सोम ! तू सब समयोंमें हमारा संरक्षण कर ।

२ तानि तमांसि योध्या— उन ज्ञानहीन राक्षसोंसे युद्ध कराओ ।

३ जंघन— राक्षसोंका पूर्ण नाश कर ।

[८६] हे सोम (नव्यसे नवीयसे) हमारे प्रशंसनीय तथा उत्तम (सूक्ताय) सूक्त सुननेके लिये (पथः साधय) उत्तम मार्गसे आओ और (प्रत्नवत रुचः रोचय) पूर्वके समान अपना तेज प्रकट कर ॥ ८ ॥

[८७] हे (पवमान) सोम ! तू (वीरवत्) वीरपुत्रसे युक्त (महि श्रवः) बहुत अन्न (गां अश्वं च) गौ और घोडा (रासि) इनको देता है । (मेधां सन) बुद्धि हमें दो तथा (स्वः सन) हमें आवश्यक वह सब धनोंको दे दो ॥ ९ ॥

१ वीरवत् महि श्रवः सन— वीर पुत्र सहित बहुत अन्न हमें देओ ।

२ गां अश्व मेधां स्वः सन— हमें गौवें, घोडे, बुद्धि तथा सब प्रकारके धन देओ ।

[१०]

[८८] (प्र स्वानासः सोमासः) शब्द करनेवाले सोम (रथाः इव) रथोंके समान (अर्वन्तः न) तथा घोडोंके समान शब्द करते हुए (श्रवस्यवः) अन्नकी इच्छा करनेवाले (राये अक्रमुः) यजमानके समीप आते हैं ॥ १ ॥

सोमरस निकालनेके समय वह रस शब्द करता हुआ रसपात्रमें पडता है ।

८९ हिन्वानासो रथा इव दधन्विरे गभस्त्योः । भरासः कारिणामिव ॥ २ ॥
९० राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिरञ्जते । यज्ञो न सप्त धातृभिः ॥ ३ ॥
९१ परि सुवानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा । सुता अर्षन्ति धारया ॥ ४ ॥
९२ आपानासो विवस्वतो जनन्त उषसो भगम् । सूरा अण्वं वि तन्वते ॥ ५ ॥
९३ अप द्वारा मतीनां प्रत्ना ऋण्वन्ति कारवः । वृष्णो हरस आयवः ॥ ६ ॥
९४ समीचीनास आसते होतारः सप्तजामयः । पदमेकस्य पिप्रतः ॥ ७ ॥

अर्थ— [८९] सोमवल्ली (रथाः इव) रथोंके समान (हिन्वानासः) गमन करनेवाले, तथा (कारिणां भरासः इव) भार वाहकोंके बोझोंके समान (गभस्त्योः दधिरे) दोनों हाथोंसे पकडी जाती है ॥ २ ॥

१ रथाः इव हिन्वानासः— रथोंके समान यज्ञके स्थानके समीप सोम जाते हैं। सोमवल्लीको यज्ञस्थानके समीप ले जाते हैं।

२ कारिणां भरासः इव गभस्त्योः दधिरे— भार वाहकोंका भार जिस प्रकार दोनों हाथोंसे पकडा जाता है, उस प्रकार सोमको दोनों हाथोंसे पकड कर, दबाकर उसका रस निकालते हैं।

[९०] (राजानः प्रशस्तिभिः न) – राजाओंकी जैसी प्रशंसाओंसे (सप्त धातृभिः यज्ञः न) तथा सात हवन कर्ताओंसे जैसे यज्ञकी प्रशंसा होती है उस प्रकार (सोमासः गोभिः अंजते) सोम गौके दूधसे सुमधुर किया जाता है ॥ ३ ॥

१ राजानः प्रशस्तिभिः न – राजाओंकी जैसी प्रशंसा होती है।

२ सप्त धातृभिः यज्ञः न – सात याजकोंसे जैसा यज्ञ प्रशंसित होता है।

३ सोमासः गोभिः अञ्जते— उस प्रकार सोम गौके दूधसे सुमधुर किया जाता है।

[९१] (सुवानाश इन्दवः) रस निकाले हुए सोमरस (बर्हणा गिरा) बडी स्तुति रूप वाणीसे (मदाय) आनंद बढानेके लिये (सुताः) रस निकालनेके समय (धारया अर्षन्ति) धारासे पात्रमें गिरते हैं ॥ ४ ॥

सोमका रस निकालनेकें समय उस सोमकी स्तुती की जाती है। उस समय वह सोमका रस धारा प्रवाहसे पात्रमें गिरता है।

[९२] (विवस्वतः आपानासः उषसः) इन्द्रको पीनेके लिये उपयोगी पडनेवाली उषाएं (भगं जनन्त) भाग्यशाली काल उत्पन्न करती हैं। (सूराः अण्वं वितन्वते) इस समय ये सोमरस शब्द करते हैं ॥ ५ ॥

उषःकालमें इन्द्रका सोमरस पीनेके लिये देते हैं। वह भाग्यशाली समय होता है। इस समय सोमरस शब्द करता हुआ पात्रमें गिरता है।

[९३] (कारवः) स्तुति करनेवाले तथा (वृष्णोः हरसः आयवः) बलवर्धक सोमका रस निकालनेवाले याज्ञिक (प्रत्ना) प्राचीनकालसे चले आये (मतीनां द्वारा अप ऋण्वन्ति) बुद्धि द्वारा किये जानेवाले यज्ञोंके द्वार खोलते हैं ॥ ६ ॥

यज्ञ करनेवाले याजक लोग यज्ञस्थानके द्वार लोकोंके लिये खोलकर खुले रखते हैं। यह इसलिये करते हैं कि लोक यज्ञमें आजांय और यज्ञसे होनेवाला लाभ प्राप्त करके प्रसन्न हो जांय।

[९४] (जामयः) संबंधित लोगोंके समान (सप्त होतारः) सात हवन करनेवाले ऋत्विज (समीचीनासः आसते) प्रसन्नचित्त होकर यज्ञमें बैठते हैं। वे (एकस्य पदं पिप्रतः) यज्ञके एक महत्वके स्थानको पूर्णतासे सफल करते हैं ॥ ७ ॥

९५ नाभा नाभिं न आ ददे चक्षुश्चित् सूर्ये सचा । कवेरपत्यमा दुहे ॥ ८ ॥
९६ अभि प्रिया दिवस्पद मध्वर्युभिर्गुहा हितम् । सूरः पश्यति चक्षसा ॥ ९ ॥

[११]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

९७ उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे । अभि देवाँ इयक्षते ॥ १ ॥
९८ अभि ते मधुना पयो ऽथर्वाणो अशिश्रयुः । देवं देवाय देवयु ॥ २ ॥
९९ स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते । शं राजन्नोषधीभ्यः ॥ ३ ॥
१०० बभ्रवे नु स्वतवसे ऽरुणाय दिविस्पृशे । सोमाय गाथमर्चत ॥ ४ ॥

अर्थ— [९५] हम (नाभिं) यज्ञमें मुख्य सोमको (नः नाभा आददे) हमारे नाभिस्थानमें धारण करते हैं, अर्थात् सोमरसको पीते हैं । इससे हमारा (चक्षुः) आंख (सूर्ये सचा) सूर्यके साथ लगा रहता है: इस कार्यके करनेके लिये (कवेः अपत्यं आ दुहे) सोमके संतानरूपी सोमरसको निकालते हैं ॥ ८ ॥

यज्ञमें सोमका स्थान सबमें मुख्य है । अतः हम मुख्य स्थानमें उस सोमको रखते हैं । और उससे रस निकाल कर उसको यज्ञमें समर्पण करके उसको पीते हैं ।

[९६] (सूरः) उत्तम वीर्यवान इन्द्र (चक्षुषा) अपने आंखसे (दिवः प्रिया) तेजस्वी अतः प्रिय स्थानको (अध्वर्युभिः गुहा हितं) अध्वर्युओंने अपने हृदयमें रखा है ऐसा देखता है ॥ ९ ॥

सोमरसको यज्ञकर्ता अध्वर्युओंने अपने पेटमें रखा है, सोमरसका पान किया है, ऐसा इन्द्र जानता है ।

[११]

[९७] हे (नरः) नेता ऋत्विजो ! (देवान्) इन्द्रादि देवोंके लिये (इयक्षते) यज्ञ करनेकी इच्छा करनेवाले (पवमानाय अस्मै इन्दवे) रस निकाले इस सोमके लिये (उप गायत) मंत्रोंका गायन करो ॥ १ ॥

सोमवल्लीसे यज्ञस्थानमें रस निकालनेके समय मंत्रोंका गायन किया जाता है ।

[९८] हे सोम ! (अथर्वाणः) अथर्ववेदी याजक (ते) तेरे अन्दर (देवं देवयु) दिव्य तथा देवोंको देने योग्य (मधुना पयः) मधुर दूधसे (देवाय) इन्द्रादि देवोंको देनेके लिये (अभि अशिश्रयुः) उत्तम रीतिसे मिलाते हैं ॥ २ ॥

अथर्ववेदी याजक इन्द्रादि देवोंको अर्पण करनेके लिये सोमरसमें गौका मधुर दूध मिलाते हैं और वह मिश्रित सोमरस देवोंको दिया जाता है । सोमरसमें गौका दूध मिलाकर वह पिया जाता है ।

[९९] हे (राजन्) तेजस्वी सोम ! (नः गवे शं पवस्व) हमारे गौओंको सुख देनेके लिये रस निकालो, (जनाय शं) हमारे पुत्रादि जनोंको सुख देनेके लिये, (अर्वते शं) हमारे घोडोंको सुख देनेके लिये तथा (ओषधीभ्यः शं पवस्व) हमारी औषधि वनस्पतियोंको सुख पंहुचानेके लिये रस निकालो ॥ ३ ॥

हमारे पुत्रादि जन, घोडे तथा औषधि आदिको सुख देनेके लिये सोमका रस निकाला जाय । सोमरससे सबको सुख प्राप्त हो ।

[१००] (बभ्रवे) भूरे वर्णके (स्व-तवसे) स्वयं बलशाली (अरुणाय) तेजस्वी (दिवि-स्पृशे) द्युलोकको स्पर्श करनेवाले (सोमाय) सोमके लिये (गाथं अर्चत) स्तुतिके स्तोत्र गाओ ॥ ४ ॥

सोमका रस निकालनेके समय उसके स्तोत्रोंका गायन करो ।

×

१०१ हस्तंच्युतेभिरद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन । मधावा धावता मधु ॥ ५ ॥
१०२ नमसेदुप सीदत दध्नेदुभि श्रीणीतन । इन्दुमिन्द्रे दधातन ॥ ६ ॥
१०३ अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे । देवेभ्यो अनुकामकृत् ॥ ७ ॥
१०४ इन्द्राय सोम पातवे मदाय परि षिच्यसे । मनश्चिन्मनसस्पतिः ॥ ८ ॥
१०५ पवमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि नः । इन्दुविन्द्रेण नो युजा ॥ ९ ॥

[१२]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

१०६ सोमा असृग्रमिन्दवः सुता ऋतस्य सादने । इन्द्राय मधुमत्तमाः ॥ १ ॥
१०७ अभि विप्रा अनूषत गावो वत्सं न मातरः । इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ २ ॥

अर्थ— [१०१] हे ऋत्विजो ! (हस्तच्युतेभिः अद्रिभिः) हाथमेंसे चलाये पत्थरोंसे (सुतं सोमं पुनीतन) निकाले रसको छीनो और (मधौ मधु धावता) मधुर सोमरसमें मधुर दूध मिलावो ॥ ५ ॥

पत्थरोंसे कूट कर सोमवल्लीसे रस निकालो, इस रसको छीनो और उसमें मीठा गौका दूध मिलावो ।

[१०२] हे ऋत्विजो ! (नमसा इत् उप सिदत) नमस्कार करके तुम सोमके पास जाओ, (दध्ना इत् अभि श्रीणीतन) दहीके साथ उसको मिश्रित करो और पश्चात् (इन्द्रे इन्दुं दधातन) इन्द्रके लिये यह सोमरस अर्पण करो । ॥ ६ ॥

[१०३] हे सोम ! (अमित्र-हा) शत्रुओंका नाश करनेवाला (विचर्षणिः) विशेष रीतिसे देखनेवाला तू (गवे शं पवस्व) हमारी गौवोंके लिये सुख देओ तथा (देवेभ्यः अनुकामकृत्) देवोंके लिये अनुकूल कार्य करो ॥ ७ ॥

सोमवल्ली गौवोंको सुख देनेवाली होती है । तथा सब प्रकारकी अनुकूलता करके सुख देती है ।

[१०४] हे सोम ! (मनः चित्) मनको जाननेवाला (मनसः पतिः) मनका स्वामी तू (इन्द्राय पातवे) इन्द्रके पीनेके लिये तथा (मदाय) उसको आनंद देनेके लिये (परि षिच्यसे) तुम्हारा रस पात्रोंमें निकाला जाता है । ॥ ८ ॥

१ मनः चित्— मनको ठीक रीतिसे परीक्षा करके जानना चाहिये

२ मनसः पतिः— मनपर स्वामित्व रखना चाहिये । मन स्वाधीन रहना चाहिये ।

[१०५] हे (इन्दो पवमान सोम) आनंदवर्धक रस निकाले सोम ! तू (सुवीर्यं रयिं) उत्तम पराक्रम बढानेवाला धन (नः इन्द्रेण युजा) हमें इन्द्रके सहाय्यसे (रिरीहि) दे दो ॥ ९ ॥

१ सुवीर्यं रयिं नः इन्द्रेण युजा रिरीहि— वीरताको बढानेवाला धन हो । ऐसा धन हमें प्राप्त हो ।

[१२]

[१०६] (सुताः मधुमत्तमाः इन्दवः सोमाः) रस निकाले अति मधुर प्रकाशित होनेवाले सोमरस (ऋतस्य सादने) यज्ञके सदनमें (असृग्रम्) प्रवाहित हो रहे हैं ॥ १ ॥

यज्ञके स्थानमें सोमके मधुर रस निकाले जा रहे हैं । वहां वे तेजस्वी दीखते हैं ।

[१०७] (विप्राः) ब्राह्मण (सोमस्य पीतये) सोमरसका पान करनेके लिये (इन्द्रं अभि अनूषत) इन्द्रको बुलाते हैं, (मातरः गावः) गो माताएं (वत्सं न) अपने बच्चेको जैसी बुलाती हैं ॥ २ ॥

यज्ञ स्थानमें ब्राह्मण इन्द्रको सोमरस निकालकर उस रसका पान करनेके लिये बुलाते हैं । जैसी गौवें अपने बच्चेको बुलाती हैं ।

१०८ मदच्युत् क्षेति सादने सिन्धोरूर्मा विपश्चित् । सोमो गौरी अधि श्रितः ॥ ३ ॥
१०९ दिवो नाभा विचक्षणोऽव्यो वारे महीयते । सोमो यः सुक्रतुः कविः ॥ ४ ॥
११० यः सोमः कलशेष्वाँ अन्तः पवित्र आहितः । तमिन्दुः परि षस्वजे ॥ ५ ॥
१११ प्र वाचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि । जिन्वन् कोशं मधुश्चुतम् ॥ ६ ॥
११२ नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धीनामन्तः सबर्दुघः । हिन्वानो मानुषा युगा ॥ ७ ॥
११३ अभि प्रिया दिवस्पदा सोमो हिन्वानो अर्षति । विप्रस्य धारया कविः ॥ ८ ॥

अर्थ— [१०८] (मदच्युत् सोमः) आनंद देनेवाला सोम (सादने क्षेति) अपने स्थानमें ही रहता है। विपश्चित्) ज्ञान बढानेवाला सोम (सिन्धोः ऊर्मा) नदीके जलके आश्रयसे रहता है। तथा यह सोम यज्ञस्थानमें (गौरी अधि श्रितः) वाणीके आधीन रहता है ॥ ३ ॥

सोम आनंद देता है और वह अपने हिमालयके स्थानमें रहता है और वहां ही बढता है। यज्ञके स्थानमें उस सोमको लाते हैं और नदीके जलसे मिश्रित करके उसको बढाते हैं और मंत्र बोलकर उसका यज्ञ करते हैं और स्वीकार करते हैं।

[१०९] (यः सुक्रतुः कविः) जो उत्तम यज्ञ करनेवाला ज्ञानी (विचक्षणः सोमः) विशेष दृष्टीवाला सोम (दिवा नाभा) अन्तरिक्षके नाभिस्थानमें (अव्यः वारे) भेडीके बालोंकी छाननीमें रखकर (महीयते) उसकी प्रशंसा की जाती है ॥ ४ ॥

यह सोम उत्तम यज्ञ करनेवाला ज्ञानी है। यह यज्ञके स्थानमें सदा उत्तम रीतिसे निरीक्षण करता है। यह भेडीके बालोंको छाननीमेंसे छाना जाता है। इस छाने हुए सोमरसको प्रशंसा यज्ञमें सदा की जाती है।

[११०] (यः सोमः कलशेषु आ) जो सोमरस पात्रोंमें रखा है, (पवित्रे अन्तः आहितः) छाननीमें जो रखा गया है, (तं इन्दुः) उसमें यह सोमरस (परिषस्वजे) मिलाया जाता है ॥ ५ ॥

प्रथम निकाला सोमरस पात्रोंमें रखा रहता है, उसमें नया निकाला सोमरस मिलाया जाता है। और इस मिश्रण किये सोमरसका यज्ञ किया जाता है।

[१११] (इन्दुः समुद्रस्य विष्टपि अधि) सोम अन्तरिक्षमें रहकर (मधुश्चुतं कोशं जिन्वन्) मधुर जल देनेवाले मेघको प्रसन्न करता है और (वाचं इष्यति) शब्द करता है ॥ ६ ॥

सोम छाननीके ऊपर रहता है, मधुर रस देनेसे मेघको भी आनंदित करता है। और वहांसे शब्द करता हुआ नीचेके पात्रमें उतरता है। सोमरस इस प्रकार छाना जाता है। उस समय उसके छाने जानेका शब्द होता है।

[११२] (नित्यस्तोत्रः) जिसकी सतत स्तुतियां होती हैं तथा (सबर्दुघः) अमृतके समान रस देनेवाला (वनस्पतिः) सोम (मानुषा युगा हिन्वानः) मानवोंको सत्कर्मोंकी प्रेरणा देता है (धीनां अन्तः) और बुद्धियोंको उत्तम उत्साह देता है ॥ ७ ॥

सोमकी यज्ञमें सदा स्तुति की जाती है। वह सोम अमृतके समान उत्साहवर्धक रस देता है। मानवोंको सत्कर्मों-को करनेका उत्साह बढाता है और बुद्धियोंको शुभ कर्म करनेकी प्रेरणा देता है।

[११३] (कविः सोमः) ज्ञान बढानेवाला यह सोम (दिवः हिन्वानः) अन्तरिक्षसे प्रेरणा देता हुआ (विप्रस्य) बुद्धिमानको (धारया) धारासे (प्रिया पदा अभि अर्षति) प्रिय स्थानके प्रति जाता है ॥ ८ ॥

यह सोमरस ज्ञान तथा काव्यशक्ति बढानेवाला है। यह सोमरस दिव्य ज्ञान देकर सत्कर्म करनेकी प्रेरणा देता है। अपनी रसकी धारासे प्रिय ऐसे यज्ञस्थानको जाता है, और सत्कर्मोंको करवाता है।

११४ आ पवमान धारय रयिं सहस्रवर्चसम् । अस्मे इन्दो स्वाभुवम् ॥ ९ ॥

[१३]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

११५ सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः । वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥
११६ पवमानमवस्यवो विप्रमभि प्र गायत । सुष्वाणं देववीतये ॥ २ ॥
११७ पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः । गृणाना देववीतये ॥ ३ ॥
११८ उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः । द्युमदिन्दो सुवीर्यम् ॥ ४ ॥
११९ ते नः सहस्रिणं रयिं पवन्तामा सुवीर्यम् । सुवाना देवास इन्दवः ॥ ५ ॥

अर्थ— [११४] हे (पवमान इन्दो) शुद्धता करनेवाले सोम ! तू (सहस्र वर्चसं) सहस्रों तेजोंसे युक्त (स्वाभुवं रयिं) स्वकीय शोभासे युक्त धनको (अस्मे धारय) हमारे लिये दे दो ॥ ९ ॥

हमें धन दो। यह धन सहस्रों तेजोंसे युक्त हो, स्वयं सुशोभित हो और हमारा महत्त्व बढानेवाला हो। हमें धन ऐसा चाहिये कि जो हमारा महत्त्व बढावे।

[१३]

[११५] यह (पुनानः सोमः) छाना जानेवाला सोमरस (अर्षति) छाननीसे नीचे उतरता है। यह (सहस्रधारः) सहस्रों धाराओंसे (अति-अविः) छाननीसे नीचे उतरता है। (वायोः इन्द्रस्य निष्कृतं) वायु और इन्द्रको देनेके लिये पात्रमें जाता है ॥ १ ॥

सोमरस छाना जानेके समय छाननीसे हजारों धाराओंसे नीचे रखे पात्रमें उतरता है। वह छाना जानेके पश्चात् वायु और इन्द्रको दिया जाता है।

[११६] (अवस्यवः) अपना रक्षण करनेकी इच्छा करनेवाले यज्ञकर्ता लोग (पवमानं विप्रं) रस निकाले जानेवाले इस ज्ञानी सोमका (देववीतये) देवताको देनेके लिये (सुष्वाणं) रस निकालनेके समय (अभि प्र गायत) मुख्यतया इसके शुभ गुणोंका गान करते हैं ॥ २ ॥

सोमरस निकालनेके समय यज्ञकर्ता याजक लोग सोमके शुभ गुणोंका उत्तम गायन करते हैं।

[११७] (वाजसातये) अन्नके लाभ प्राप्त करनेके लिये तथा (देव वीतये) देवोंकी प्रीतिके लिये (सहस्र-पाजसः सोमाः) सहस्रों बलोंसे युक्त सोमकी (गृणानाः) स्तुति करके (पवन्ते) रस निकाले जाते हैं ॥ ३ ॥

सोमरससे अनेक लाभ होते हैं। सोमसे अन्न मिलता है। सोमरस उत्तम अन्नरूप है। सोम देवोंको देनेसे देवोंकी प्रीति मिलती है। सोमसे उत्तम यज्ञ किया जा सकता है।

[११८] (उत नः) और हमारे लिये (वाजसातये) भोजन प्राप्त हो इसलिये हे (इन्दो) सोम ! (बृहतीः इषः) बडे अन्नको तथा (द्युमत् सुवीर्यं) तेजस्वी पराक्रम करनेवाला बलको (पवस्व) प्राप्त कराओ ॥ ४ ॥

१ नः वाजसातये बृहतीः इषः पवस्व— हमें पर्याप्त अन्न मिले इसलिये बडी रस धाराओंसे पात्रमें गिरो।

२ द्युमत् सुवीर्यम्— हमें तेजस्वी पराक्रम करनेका सामर्थ्य प्राप्त हो।

[११९] (सुवानाः देवासः) रस निकाले दिव्य (ते इन्दवः) वे सोम (सहस्रिणं रयिं) सहस्र प्रकारके धन तथा (सुवीर्यं) उत्तम पराक्रम करनेका बल (नः आ पवन्तां) हमें दें ॥ ५ ॥

१ देवासः इन्दवः सहस्रिणं रयिं सुवीर्यं नः आपवन्ताम्— वे दिव्य सोमरस सहस्र प्रकारके धन और उत्तम प्रकारका बल हमें दे।

१२० अत्यां हियाना न हेतृभि॒रसृ॑ग्रं वाजंसातये । वि वार॒मव्य॑माशवः ॥ ६ ॥
१२१ वाश्रा अर्षन्तीन्दवो॒ ऽभि व॒त्सं न धेनवः । दधन्विरे गभ॑स्त्योः ॥ ७ ॥
१२२ जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमान कनिक्रदत् । विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ८ ॥
१२३ अपघ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः । योनावृतस्य सीदत ॥ ९ ॥

[१४]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवता:- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

१२४ परि प्रासिष्यदत् कविः सिन्धोरूर्मावधि श्रितः । कारं बिभ्रत् पुरुस्पृहम् ॥ १ ॥

अर्थ— [१२०] (वाजसातये) युद्धके लिये (हियाना) प्रेरित हुए (अत्याः न) घोडोंकी तरह (हेतृभिः आशवः) प्रेरणा देनेवाले याजकों द्वारा प्रेरित किये गये शीघ्रगामी सोमरस (अव्यं वारं वि असृग्रं) मेढीके बालोंसे बनी छाननीके समीप जाते हैं ॥ ६ ॥

जिस प्रकार घोडे युद्धमें प्रेरित किये जाते हैं, उसी प्रकार ये सोमरस मेढीके बालोंकी छाननीके पास छाने जानेके लिये जाते हैं।

[१२१] (धेनवः वत्सं अभि अर्षन्ति न) गौवें अपने बछडेके पास जाती हैं, उस तरह (वाश्राः इन्दवः) शब्द करते हुए सोमरस (गभस्त्योः दधन्विरे) हाथोंसे पकडे जाते हैं ॥ ७ ॥

सोमरस शब्द करते हुए पात्रमें गिरते हैं, उस समय सोमको हाथोंसे पकडते हैं । हाथोंसे पकडकर सोमसे रस निकाला जाता है । वह रस पात्रमें गिरता है और उसको पात्रमें रखते हैं ।

[१२२] (इन्द्राय जुष्टः मत्सरः) इन्द्रके लिये प्रिय ऐसा यह सोम है । (कनिक्रदत् पवमान) हे शब्द करनेवाले सोमरस ! (विश्वाः द्विषः) सब प्रकारके शत्रुओंको (अप जहि) जीतो ॥ ८ ॥

१ इन्द्रके लिये यह सोमरस बहुत प्रिय है ।

२ हे पवमान ! विश्वाः द्विषः अप जाहि— हे सोम ! तू सब प्रकारके शत्रुओंको पराजित करके उनको दूर कर । सब शत्रुओंका नाश करो ।

[१२३] (अराव्णः अपघ्नन्तः) दान न देनेवालोंका नाश करनेवाले (स्वर्दृशः) प्रकाशके मार्गका निरीक्षण करनेवाले (पवमानाः) सोमरस (ऋतस्य योनौ सीदत) यज्ञके स्थानमें रहते हैं ॥ ९ ॥

१ अ-राव्णः अपघ्नन्तः— दान न देनेवालोंका नाश होता है । दान देनेसे मित्र बढते हैं । और दान न देनेवाले स्वार्थियोंके शत्रु अधिक होते हैं । इस कारण दान देना उचित है ।

२ स्वर्दृशः— (स्वर्-दृशः) प्रकाशको देखनेवाले, प्रकाशके मार्गसे जानेवाले ।

३ ऋतस्य योनौ सीदत— सत्यके स्थानमें रहना, सत्यका आश्रय करके जीवन व्यतीत करना ।

[१४]

[११४] (कविः) क्रान्तदर्शी सोमरस (सिन्धो ऊर्मौ) सिन्धुके जलमें (अधिश्रितः) आश्रित होकर (पुरुस्पृहं कारं बिभ्रत्) विशेष वर्णन करने योग्य शब्दको धारण करके (परि प्रासिष्यत्) मिश्रित होता है ॥ १ ॥

१ कविः— सोम कवि है, काव्य करनेकी स्फूर्ति देता है ।

२ सिन्धोः ऊर्मौ अधिश्रितः— सिन्धुके जलके साथ मिश्रित किया जाता है ।

३ पुरुस्पृहं कारं बिभ्रत् प्रासिष्यत्— बडे शब्दको करता हुआ पात्रमें रहता है ।

१२५ गिरा यदी सबन्धवः	पञ्च व्राता अपस्यवः	। परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम्	॥ २ ॥
१२६ आदस्य शुष्मिणो रसे	विश्वे देवा अमत्सत	। यदी गोभिर्वसायते	॥ ३ ॥
१२७ निरिणानो वि धावति	जहच्छर्याणि तान्वा	। अत्रा सं जिघ्नते युजा	॥ ४ ॥
१२८ नप्तीभिर्यो विवस्वतः	शुभ्रो न मामृजे युवा	। गाः कृण्वानो न निर्णिजम्	॥ ५ ॥
१२९ अति श्रिती तिरश्चता	गव्या जिगात्यण्व्या	। वग्नुमियर्ति यं विदे	॥ ६ ॥
१३० अभि क्षिपः समग्मत	मर्जयन्तीरिषस्पतिम्	। पृष्ठा गृभ्णत वाजिनः	॥ ७ ॥

अर्थ— [१२५] (सबन्धवः पञ्च व्राताः) बन्धुभावसे रहनेवाले पंच जन, यजमान (अपस्यवः) यज्ञकर्म करनेकी इच्छा करनेवाले (ई) इस (धर्णसिं) धारण करनेकी शक्तिसे युक्त इस सोमको (गिरा) स्तुतिसे (परिष्कुर्वन्ति) अंकृत करते हैं ॥ २ ॥

पंचजन यज्ञ करनेकी इच्छा करते हैं और सब मिलकर यज्ञस्थानमें सोमका वर्णन करके उसकी स्तुति करते हैं।

[१२६] (आत्) रस निकालनेके पश्चात् (अस्य शुष्मिणः रसे) इस बलवर्धक सोमरसमें (विश्वे देवाः अमत्सत) सब देव आनंद प्रसन्न होते हैं। (यदि गोभिः वसायते) जिस समय गौके दूधसे उसका मिश्रण किय जाता है ॥ ३ ॥

सोमसे रस निकालते हैं, उस रसमें गौका दूध मिलाते हैं, और उस रसको देवता पीते हैं और आनंदित होते हैं।

[१२७] (निरीणानः) छाननीसे छाना जाकर (विधावति) नीचे दौडता है। उस समय यह सोमरस (तान्वा युजा) छाननीसे युक्त होकर (शर्याणि जहत्) छाननीके द्वारोंको बंद करता है और (अत्र) इस यज्ञमें (युजा सं जिघ्नते) अपने इन्द्र नामक मित्रके साथ मिल जाता है ॥ ४ ॥

सोमरस छाना जाता है, उस समय छाननीके छिद्र यह सोम बंद करता है। और छाना जाकर इन्द्रके साथ मिलता हैं।

[१२८] (विवस्वतः) यज्ञकर्ता यजमानकी (नप्तीभिः) अंगुलियोंसे (मामृजे) शुद्ध होता है और (शुभ्रः न दीप्तः युवा) शुभ्र तेजस्वी तरुण घोडेके समान दीखता है। (गाः) गौवोंके दूधको (निर्णिजं न) अपने घर जैसा बनाता है ॥ ५ ॥

यजमानकी अंगुलियोंसे दबाकर सोमसे रस निकाला जाता है, उस समय वह सोमरस शुभ्र तेजस्वी घोडेके समान दीखता है। गौके दूधसे वह सोमरस मिलाया जाता है।

[१२९] (अण्व्या) अंगुलियोंसे दबाकर निकलनेवाला सामरस (गव्या श्रिति) गौके दूधमें मिश्रित होनेके लिये (तिरश्चता अति जिगाति) तिरच्छी गतिसे नीचे उतरता है। (यं विदे) इसको जाननेवाले यजमान ज्ञानके लिये (वग्नुं इयर्ति) शब्द करता है ॥ ६ ॥

अंगुलियोंसे दबाकर सोमसे रस निकालते हैं, पश्चात् उसको गौके दूधसे मिश्रित करते हैं। यह सोम नीचे पात्रमें उतरनेके समय शब्द करता हुआ, नीचेके पात्रमें आता है।

[१३०] (क्षिपः) अंगुलियां (इषस्पतिं मर्जयन्तः) अन्नके पति सोमको स्वच्छ करती हैं, उस समय वे अंगुलिया (अभि समग्मत) आपसमें मिलती हैं और (वाजिनः पृष्ठा गृभ्णत) बलवान् सोमको पकडती हैं ॥ ७ ॥

सोमको अंगुलियोंसे पकडा जाता है और अंगुलियोंसे दबाकर उससे रस निकाला जाता है।

१३१ परिं दिव्यानि मर्मृशद् विश्वानि सोम पार्थिवा। वसूनि याह्यस्मयुः ॥ ८ ॥

[१५]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

१३२ एष धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिराशुभिः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥

१३३ एष पुरू धियायते बृहते देवतातये । यत्रामृतास आसते ॥ २ ॥

१३४ एष हितो वि नीयते ऽन्तः शुभ्रावता पथा । यदी तुञ्जन्ति भूर्णयः ॥ ३ ॥

१३५ एष शृङ्गाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्यो३ वृषा । नृम्णा दधान ओजसा ॥ ४ ॥

१३६ एष रुक्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभिः । पतिः सिन्धूनां भवन् ॥ ५ ॥

अर्थ— [१३१] हे (सोम) सोम ! (दिव्यानि) दिव्य तथा (पार्थिवा) पृथिवीके ऊपरका (विश्वानि वसूनि) सब प्रकारके धन (परि मर्मृशत्) सब प्रकारसे लेकर (अस्मयुः याहि) हमारे पास आओ ॥ ८ ॥

द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथिवीके ऊपरके सब धन लेकर तू हमारे पास और तू हमारे साथ रह ।

[१५]

[१३२] (एषः) यह सोम (शूरः) पराक्रमी शूर है, (अण्व्या धिया याति) अंगुलियोंसे बुद्धि पूर्वक निकाला रस इन्द्रके पास जाता है । यह (आशुभिः रथेभिः) शीघ्रगामी रथोंसे (इन्द्रस्य निष्कृतं गच्छन्) इन्द्रके पास जानेके लिये पात्रमें जाता है ॥ १ ॥

सोमसे रस निकालकर इन्द्रदेवताको समर्पित करते है ।

[१३३] (एषः) यह सोम (पुरु धियायते) बहुत कर्मोंको बुद्धिपूर्वक कराता है । (बृहते देवतातये) बडे यज्ञके लिये जाता है (यत्र अमृतासः आसते) जहां देवतागण रहते हैं ॥ २ ॥

यज्ञस्थानमें देव आकर बैठते हैं, वहां यह सोम बुद्धिपूर्वक यज्ञकर्मोंको करता रहता है ।

[१३४] (एषः) यह सोम (हितः) यज्ञ पात्रमें रखकर (विनीयते) लिया जाता है । और (भूर्णयः) अध्वर्युगण (शुभ्रावता पथा अन्तः) शुद्ध मार्गसे इसको यज्ञस्थानके अन्दर ले जाते हैं (यदि) तब इसको देवोंको (तुञ्जन्ति) अर्पण करते हैं ॥ ३ ॥

[१३५] (एषः) यह सोम (ओजसा नृम्णा दधानः) अपने सामर्थ्यसे सब प्रकारके धन धारण करके, (यूथ्यः वृषा) संघातमें रहनेवाला बैल जैसा युद्धके लिये तैयार होकर अपने सींग हिलाता है उस प्रकार यह सोम भी अपना सामर्थ्य बताता है ॥ ४ ॥

[१३६] (शुभ्रेभिः अंशुभिः) शुभ्र किरणोंसे युक्त (एषः वाजी) यह बलवान सोम (सिन्धूनां पतिः भवन्) नदियोंका पति होकर (रुक्मीभिः ईयते) अध्वर्युओंके साथ यज्ञस्थानमें जाता है ॥ ५ ॥

१ शुभ्रेभिः अंशुभिः एष वाजी— शुभ्र किरणोंसे युक्त होकर सुशोभित हुआ यह बलशाली सोम है । सोमरस पीनेसे बल बढता है ।

२ सिन्धूनां पतिः भवन्— यह सोम नदियोंका पति है । अर्थात् इसमें नदियोंका पानी मिलाया जाता है ।

३ रुक्मीभिः ईयते — तेजस्वी ज्ञानी याजकोंके साथ यह सोम रहता है । उनके साथ यह सोम यज्ञमें जाता है ।

१३७ एष वसूनि पिब्दना परुषा ययिवाँ अति । अव शादेषु गच्छति ॥ ६ ॥
१३८ एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणेष्वायवः । प्रचक्राणं महीरिषः ॥ ७ ॥
१३९ एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सप्त धीतयः । स्वायुधं मदिन्तमम् ॥ ८ ॥

[१६]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

१४० प्र ते सोतार ओण्यो३ रसं मदाय घृष्वये । सर्गो न तक्त्येतशः ॥ १ ॥
१४१ क्रत्वा दक्षस्य रथ्यमपो वसानमन्धसा । गोषामण्वेषु सश्चिम ॥ २ ॥

अर्थ— [१३७] (एषः) यह सोम (वसूनि पिब्दना) धनके कारण कष्टसे युक्त हुए (परुषा ययिवां अति) राक्षसोंको दूर करके (शादेषु अव गच्छति) शासनमें रहनेवालोंके पास जाता है ॥ ६ ॥

१ एष वसूनि पिब्दना परुषा ययिवान् अति शादेषु अवगच्छति— यह सोम धन न होनेके कारण कष्टमें पडे राक्षसोंका अतिक्रमण करके शासनमें रहनेवाले जनोंके पास जाकर रहता है ।

[१३८] (महीः इषः प्रचक्राणं) बहुत अन्न देनेवाले (मर्ज्यं एतं) शुद्ध इस सोमका (आयवः) अध्वर्यु (द्रोणेषु) पात्रोंमें (उप मृजन्ति) मिलकर रस निकालते हैं ॥ ७ ॥

१ मही इषः प्रचक्राणं मर्ज्यं एतं— यह सोमरस बहुत अन्न देनेवाला है, अतः उस सोमरसको अध्वर्यु शुद्ध करते हैं ।

२ आयवः द्रोणेषु उप मृजन्ति— अध्वर्युगण पात्रोंमें इस रसको शुद्ध करके रखते हैं ।

[१३९] (दश क्षिपः) दस अंगुलियां तथा (सप्त धीतयः) सात यज्ञ कर्तागण (त्यं एतं उ) उस सोमको (मृजन्ति) शुद्ध करते हैं । यह सोम (मदिन्तमं सु-आयुधं) उत्तम आनंद देनेवाला और उत्तम शस्त्र धारण करनेवाले वीरके समान वीरता बढानेवाला है ॥ ८ ॥

१ मदिन्तमं सु-आयुधं— यह सोमरस अत्यंत आनंद देनेवाला है तथा यह उत्तम शस्त्रधारी वीरके समान शूरता बढानेवाला होता है । सोमरस पीनेसे शौर्यका भाव वीरमें बढता है ।

२ दश क्षिपः एतं मृजन्ति— दस अंगुलियां इसको शुद्ध करती हैं ।

[१६]

[१४०] हे सोम ! (ते सोतारः) तेरा रस निकालनेवाले ऋत्विज (ओण्योः) द्यावा पृथिवीके बीचमें (घृष्वये मदाय) शत्रुनाशक उत्साह बढानेके लिये (रसं) रसको निकालते हैं वह रस (तक्ति) पात्रमें जाकर रहता है ॥ १ ॥

१ घृष्वये मदाय रसं तक्ति— शत्रुका नाश करनेकी शक्ति बढानेके लिये सोमरस निकालते हैं और उसको पात्रमें रखते हैं ।

२ एतशः सर्गो न— जैसा घोडेको सुशिक्षित करते है वैसे इस सोमरसको संस्कारोंसे सुसंस्कृत करते हैं ।

[१४१] (दक्षस्य रथ्यं) बलको देनेवाले (अपःवसानं) जलके साथ मिश्रित किये (अन्धसा) अन्नसे युक्त तथा (क्रत्वा) कर्म करनेकी शक्तिसे युक्त (गोषां) गौओंके दूधके साथ मिलाये (अण्वेषु सश्चिम) सोमको अंगुलियोंसे हम धारण करते हैं ॥ २ ॥

१ दक्षस्य रथ्यं— सोम बलको बढता है ।

२ अपः वसानं— सोमरस जलमें मिलाया जाता है ।

३ अन्धसा— अन्नकी शक्ति उसमें है ।

४ क्रत्वा — सोमरस कर्म करनेका सामर्थ्य बढाता है ।

५ गोषा — गौके दूधमें वह सोम मिलाया जाता है ।

१४२ अनप्तमप्सु दुष्टरं सोमं पवित्र आ सृज । पुनीहीन्द्राय पातवे ॥ ३ ॥
१४३ प्र पुनानस्य चेतसा सोमः पवित्रे अर्षति । क्रत्वा सधस्थमासदत् ॥ ४ ॥
१४४ प्र त्वा नमोभिरिन्दव इन्द्र सोमा असृक्षत । महे भराय कारिणः ॥ ५ ॥
१४५ पुनानो रूपे अव्यये विश्वा अर्षन्नभि श्रियः । शूरो न गोषु तिष्ठति ॥ ६ ॥
१४६ दिवो न सानु पिप्युषी धारा सुतस्य वेधसः । वृथा पवित्रे अर्षति ॥ ७ ॥
१४७ त्वं सोम विपश्चितं तना पुनान आयुषु । अव्यो वारं वि धावसि ॥ ८ ॥

[१७]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

१४८ प्र निम्नेनेव सिन्धवो घ्नन्तो वृत्राणि भूर्णयः । सोमा असृग्रमाशवः ॥ १ ॥

अर्थ — [१४२] (अनप्तम्) शत्रुओंसे अनाक्रान्त (अप्सु) जलोंके साथ मिलाये (दुष्टरं) दुष्टोंके आक्रमणसे दूर रहे सोमरसको (पवित्रे आ सृज) छाननीके ऊपर रखो । (इन्द्राय पातवे पुनीहि) इन्द्रको पीनेको देनेके लिये उस सोमरसको छानकर रखो ॥ ३ ॥

१ अनप्तं— जिसपर शत्रुका हमला नहीं होता ।

२ दुष्टरं— शत्रुका आक्रमण जिसपर नहीं होता ।

३ इन्द्राय पातवे पुनीहि— इन्द्रको पीनेको देनेके लिये सोमको छानकर रखो ।

[१४३] (चेतसा) बुद्धिपूर्वक (पुनानस्य) पवित्र करनेवालेका (सोमः) सोम (पवित्रे अर्षति) छाननेके साधनमेंसे नीचे गिरता है । (क्रत्वा सधस्थं आसदत्) इस क्रियासे वह सोमरस अपने स्थानमें बैठता है ॥ ४ ॥

[१४४] हे इन्द्र ! (त्वा) तुझे (नमोभिः) स्तोत्रोंकेसे (इन्दवः) सोम (प्र असृक्षत) प्राप्त होते हैं । ये सोम (कारिणः) कार्य करनेवाले (महे भराय) महान संग्रामको करनेवाले होते हैं ॥ ५ ॥

१ कारिणः महे भराय— कार्यमें प्रवृत्ति उत्पन्न करनेवाले ये सोम बडे संग्रामको करनेवाले होते हैं। सोम रस पीनेसे वीरता मनमें बढती है और इस कारण वीर बडे युद्ध कर सकते हैं ।

[१४५] (अव्यये रूपे पुनानः) भेडीकी छाननीमें छाना जानेवाला सोमरस (विश्वाः श्रियः अभि अर्षन) सब शोभाएं प्राप्त करता है जिस प्रकार (शूरः न गोषु तिष्ठति) शूर गौवोंमें रहता है ॥ ६ ॥

सोमरस छाना जानेसे अधिक शोभित दीखता है । जैसा शूर पुरुष गौवोंमें शोभता है, वैसा सोमरस गोदुग्धमें शोभता है ।

[१४६] (दिवः सानु न) द्युलोकसे जलधारा जैसी शिखर पर पडती है, (सुतस्य वेधसः) उस प्रकार यज्ञीय सोमरसकी धारा (पवित्रे वृथा अर्षति) छाननीसे सहज रीतिसे पात्रमें गिरती है ॥ ७ ॥

[१४७] हे सोम ! (त्वं) तू (विपश्चितं आयुषु) ज्ञानीको मनुष्योंमें (तना पुनानः) छाननीसे छाना जानेसे सुरक्षित रखता है । छाननेके समय (अव्यः वारं विधावसि) भेडीके बालोंकी छाननी पर दौडकर जाता है ॥ ८ ॥

सोम छाना जानेसे पीने योग्य होता है और वह पीया जानेसे पीनेवालोंको सुरक्षित रखता है ।

[१७]

[१४८] (सिन्धवः निम्नेन इव) नदियां नीचेके मार्गसे ही जाती हैं वैसे (वृत्राणि घ्नन्तः) दुष्टोंका नाश करनेवाले (भूर्णयः सोमाः) जलदीसे छाने जानेवाले सोमरस (आशवः असृग्रन्) शीघ्रतासे छाननीमेंसे नीचे उतरते हैं ॥ १ ॥

×

१४९ अभि सुवानास इन्दवो वृष्टयः पृथिवीमिव । इन्द्रं सोमासो अक्षरन् ॥ २ ॥
१५० अत्यूर्मिर्मत्सरो मदः सोमः पवित्रे अर्षति । विघ्नन् रक्षांसि देवयुः ॥ ३ ॥
१५१ आ कलशेषु धावति पवित्रे परि षिच्यते । उक्थैर्यज्ञेषु वर्धते ॥ ४ ॥
१५२ अति त्री सोम रोचना रोहन् न भ्राजसे दिवम् । इष्णन् त्सूर्यं न चोदयः ॥ ५ ॥
१५३ अभि विप्रा अनूषत मूर्धन् यज्ञस्य कारवः । दधाना॒श्चक्षसि प्रियम् ॥ ६ ॥
१५४ तमु त्वा वाजिनं नरो धीभिर्विप्रा अवस्यवः । मृजन्ति देवतातये ॥ ७ ॥
१५५ मधोर्धारामनु क्षर तीव्रः सधस्थमासदः । चारुर्ऋताय पीतये ॥ ८ ॥

अर्थ— [१४९] (वृष्टयः पृथिवीं इव) वृष्टी जैसी पृथिवीपर गिरती है (सुवानासः इन्दवः) रस निकाले जानेवाले (सोमासः) सोम (इन्द्रं अक्षरन्) इन्द्रके पास जाते हैं ॥ २ ॥

सोमरस निकालनेके बाद वह इन्द्रको दिया जाता है।

[१५०] (अति- ऊर्मिः मत्सरः मदः) उत्साह बढानेवाला आनंद और स्फुरण देनेवाला (सोमः) सोमरस (देवयुः) देवोंके पास जानेवाला (रक्षांसि विघ्नन्) राक्षसोंका नाश करता हुआ (पवित्रे अर्षति) छाननीके ऊपर जाता है ॥ ३ ॥

[१५१] यह सोमरस (कलशेषु आ धावति) कलशोंमें दौडता है। (पवित्रे परि षिच्यते) छाननीमेंसे छाना जाता है। (यज्ञेषु उक्थैः वर्धते) यज्ञोंमें स्तोत्रोंसे बढता रहता है ॥ ४ ॥

[१५२] हे (सोम) सोम ! तेरी (त्री रोचना) तीनों लोकोंके ऊपर (अति रोहन् दिवं न भ्राजसे) रहकर जैसा द्युलोकको तेजस्वी करता है तथा (इष्णन् सूर्यं न चोदयः) इच्छापूर्वक सूर्यको भी प्रेरित करता है ॥ ५ ॥

सोम तीनों लोकोंमें सबसे ऊपर रहता है, और वहांसे द्युलोकको प्रकाशित करता है तथा सूर्यको भी प्रेरित करता है। इस तरह सोम सब विश्वको तेजस्वी करता है।

[१५३] (चक्षसि प्रियं दधानाः) सोमके विषयमें प्रेम रखनेवाले (यज्ञस्य कारवः) यज्ञ करनेवाले याजक (विप्राः) ज्ञानी लोग (मूर्धन्) यज्ञके मुख्य भागमें (अभि अनूषत) बैठते हैं ॥ ६ ॥

सोमयागमें प्रेम करनेवाले यज्ञकर्ता ऋत्विज यज्ञस्थानके मुख्यभागमें बैठते हैं और यज्ञ करते हैं।

[१५४] (अवस्यवः) अपना रक्षण करनेकी इच्छा करनेवाले (विप्राः) ज्ञानी (नरः) लोग (धीभिः) बुद्धि युक्त किये कर्मोंसे (तं त्वा वाजिनं उ) उस तुझ अन्नवान सोमको (देवतातये) यज्ञके लिये (मृजन्ति) शुद्ध करते हैं ॥ ७ ॥

अपनी सुरक्षा करनेवाले ज्ञानी नेता जन अपनी बुद्धिके द्वारा कहे स्तोत्रोंसे सोमरसको हि यज्ञ करनेके लिये शुद्ध करते हैं। और पश्चात् उससे यज्ञ करते हैं।

[१५५] हे सोम! (मधोः धारां अनु क्षर) मधुर रसकी धाराके रूपमें पात्रमें गिरता रह। (तीव्रः) तीव्रतासे (सधस्थं आसदः) छाननेके स्थानमें बैठ। (चारुः) गमनशील तू (ऋताय) यज्ञके लिये तथा (पीतये) देवोंके पीनेके लिये तैयार हो जाओ ॥ ८ ॥

[१८]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

१५६ परि सुवानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षाः । मदेषु सर्वधा असि ॥ १ ॥
१५७ त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र जातमन्धसः । मदेषु सर्वधा असि ॥ २ ॥
१५८ तव विश्वे सजोषसो देवासः पीतिमाशत । मदेषु सर्वधा असि ॥ ३ ॥
१५९ आ यो विश्वानि वार्या वसूनि हस्तयोर्दधे । मदेषु सर्वधा असि ॥ ४ ॥
१६० य इमे रोदसी मही सं मातरेव दोहते । मदेषु सर्वधा असि ॥ ५ ॥
१६१ परि यो रोदसी उभे सद्यो वाजेभिरर्षति । मदेषु सर्वधा असि ॥ ६ ॥
१६२ स शुष्मी कलशेष्वा पुनानो अचिक्रदत् । मदेषु सर्वधा असि ॥ ७ ॥

---

[१८]

अर्थ— [१५६] यह (सोमः) सोम (पवित्रे) छाननीमेंसे (परि अक्षाः) गिरता है । (सुवानः) रस निकालकर देनेवाला तू (गिरिष्ठाः) पर्वत पर रहनेवाला हो (मदेषु सर्वधा असि) आनंद देनेवालोंमें सबसे अधिक तू है ॥ १ ॥

सोमरस छाननीमेंसे शुद्ध होकर नीचे पात्रमें गिरता है । यह सोम पर्वतके ऊपरसे लाया है । यह सोम आनंद देनेवाले पदार्थोंमें अधिक आनद देनेवाला है ।

[१५७] (त्वं विप्रः) तू ज्ञानी है, (त्वं कविः) तू कवि है अतः तू (अन्धसः प्रजातं मधु) अन्नसे उत्पन्न होनेवाला मधुर रस देता है । अतः तू आनंद देनेवालोंमें मुख्य है ॥ २ ॥

[१५८] (विश्वे सजोषसः देवासः) सब प्रीति करनेवाले देव (तव पीतिं आशत) तेरा पान करते हैं । (मदेषु सर्वधाः असि) आनंद देनेवाले पदार्थोंमें तू अधिक आनंद देनेवाला है ॥ ३ ॥

[१५९] (यः) जो सोम (विश्वानि वार्या वसूनि) सब उत्कृष्ट धन (हस्तयोः आदधे) भक्तोंके हातोंमें देता है वह तू आनंद देनेवालोंमें विशेष आनंद देनेवाला हो ॥ ४ ॥

[१६०] (यः) जो सोम (इमे मही रोदसी) इन दोनों द्यु और पृथिवीका (मातरा इव सं दोहते) माताओंके समान दोहन करता है, इनका सत्व ग्रहण करता है, वह सोम आनंद देनेवालोंमेंसे विशेष आनंद देनेवाला है ॥ ५ ॥

सोममें अत्यंत मधुर रस रहता है, अतः वह सब आनंद देनेवाले पदार्थोंमें अधिक आनंद देता है ।

[१६१] (यः) जो सोम (उभे रोदसी) दोनों द्युलोक और पृथिवीकी (वाजेभिः) अन्नोंसे (सद्यः परिअर्षति) तत्काल उत्तम सेवा करता है, अतः वह आनंद देनेवालोंमें श्रेष्ठ है ॥ ६ ॥

[१६२] (यः) जो सोम (शुष्मी) बलवर्धक है वह (कलशेषु) कलशोंमें (पुनानः) पवित्र करनेके समय (आ अचि क्रदत्) शब्द करता हुआ प्रवेश करता है, वह आनंद देनेवाले पदार्थोंमें अधिक आनंद देनेवाला है ॥ ७ ॥

[१९]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

१६३ यत् सो॑म चि॒त्रमु॒क्थ्यं॑ दि॒व्यं पार्थि॑वं॒ वसु॑ । तन्नः॑ पुना॒न आ भ॑र ॥ १ ॥
१६४ यु॒वं हि स्थः स्व॑र्पती॒ इन्द्र॑श्च सोम॒ गोप॑ती । ई॒शा॒ना पि॑प्यतं॒ धियः॑ ॥ २ ॥
१६५ वृषा॑ पुना॒न आ॒युषु॑ स्त॒नय॒न्नधि॑ ब॒र्हिषि॑ । हरिः॒ सन् योनि॒मास॑दत् ॥ ३ ॥
१६६ अवा॑वशन्त धी॒तयो॑ वृष॒भस्याधि॒ रेत॑सि । सू॒नोर्व॒त्सस्य॑ मा॒तरः॑ ॥ ४ ॥
१६७ कु॒विद्वृ॑षण्यन्ती॑भ्यः पुना॒नो गर्भ॑मा॒दध॑त् । याः शु॒क्रं दु॑ह॒ते पयः॑ ॥ ५ ॥

[१९]

अर्थ— [१६३] हे (सोम) सोम ! (यत् चित्रं) जो चित्तको आकर्षण करनेवाला (उक्थ्यं) स्तुत्य (दिव्यं पार्थिवं वसु) दिव्य तथा पार्थिव धन है (तत्) वह सब धन (पुनान) पवित्र होकर (नः आभर) हमें भरपूर दे ॥ १ ॥

हमें ऐसा धन प्राप्त हो, कि जो द्युलोकमें तथा पृथिवीपर प्रशंसनीय समझा जाता है ।

[१६४] हे (सोम) सोम ! तू और (इन्द्रः च) इन्द्र ये दोनों (युवं) तुम (स्वर्पती) सबके स्वामी (स्थ) हो, तथा (गोपती) गौओंके पालन करनेवाले हो । तुम दोनों (ईशाना) सबके स्वामी हो, अतः हमारे (धियः पिप्यतं) बुद्धिपूर्वक किये कर्मोंका पोषण करो ॥ २ ॥

१ गोपती— गौओंका पालन करना चाहिये ।
२ स्वः-पती— अपनी संपत्तिका रक्षण करना चाहिये ।
३ ईशाना धियः पिप्यतं— अधिकारी जन उत्तम कर्मोंका संरक्षण करें ।

[१६५] (वृषा) कामनाओंको पूर्ण करनेवाला सोम (आयुषु) यज्ञ करनेवाले ऋत्विजोंमें (पुनानः सन्) छाना जानेके समय (स्तनयन्) शब्द करता हुआ (बर्हिषि अधि) आसनके ऊपर (हरिः सन्) हरे रंगका (योनिं आसदत्) अपने स्थानमें बैठता है ॥ ३ ॥

१ वृषा— सोमरस बल बढानेवाला (आयुषु) याजकोंकी इच्छाएं पूर्ण करनेवाला होता है ।
२ पुनानः सन् स्तनयन्— छाननेके समय शब्द करता है ।
३ हरिः— यह सोम हरे रंगका होता है ।

[१६६] जिस प्रकार (सुनोः वत्सस्य मातरः) माताएं प्रिय पुत्रकी इच्छा करती है, उस प्रकार (धीतयः) यज्ञपात्र (रेतसि अधि) यज्ञस्थानमें (वृषभस्य अवावशन्त) बलवर्धक सोमकी इच्छा करती हैं ॥ ४ ॥

[१६७] (वृषण्यन्तीभ्यः पुनानः) सोमकी इच्छा करनेवाले जलोंसे पवित्र होनेवाला सोम (गर्भं आदधत्) जलोंके गर्भ स्थानमें रहता है । (कुवित्) बहुत रीतिसे (याः) जो (शुक्रं पयः दुहते) शुद्ध जल सोममें मिश्रित करनेके लिये देता है ॥ ५ ॥

१ वृषण्यन्तीभ्यः पुनानः— बलवान् सोमको जलोंसे शुद्ध किया जाता है ।
२ पुनानः गर्भं आदधत्— पवित्र होनेवाला सोम जलोंके अन्दर गर्भ जैसा होकर रहता है ।
३ कुवित् गाः शुक्रं पयः दुहते— अनेक प्रकारोंसे शुद्ध जल सोममें मिश्रित किया जाता है ।

१६८ उप॑ शिक्षापतस्थुषो॑ भियस॑मा धे॑हि शत्रु॑षु । पव॑मान विदा र॒यिम् ॥ ६ ॥
१६९ नि शत्रोः॑ सोम॒ वृष्ण्यं॒ नि शुष्मं॒ नि वय॑स्तिर । दू॒रे वा॑ स॒तो अन्ति॑ वा ॥ ७ ॥

[२०]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

१७० प्र क॒विर्दे॒ववी॑तये॒ ऽव्यो॒ वारे॑भिरर्षति । सा॒ह्वान् विश्वा॑ अ॒भि स्पृधः॑ ॥ १ ॥
१७१ स हि ष्मा॑ जरि॒तृभ्य॒ आ वाजं॒ गोम॑न्तमिन्व॑ति । पव॑मानः सह॒स्रिण॑म् ॥ २ ॥
१७२ परि॒ विश्वा॑नि॒ चेत॑सा मृ॒शसे॒ पव॑से म॒ती । स नः॑ सोम॒ श्रवो॑ विदः ॥ ३ ॥

अर्थ— [१६८] हे (पवमान) सोम ! तूं (अपतस्थुषः उप शिक्ष) हमारेसे दूर रहनेवाले मित्रोंको हमारे समीप ले आओ। (शत्रुषु भियसं आधेहि) हमारे शत्रुओंमें भय उत्पन्न कर और (रयिं विदा) धन हमें दओ ॥ ६ ॥

१ अपतस्थुषः उप शिक्ष— हमसे दूर रहनेवाले मित्रोंको हमारे पास लाओ।
२ शत्रुषु भियसं आधेहि— हमारे शत्रुओंमें भय रहे ऐसा कर।
३ रयिं विदा— हमें धन दओ।

[१६९] हे सोम ! तू (शत्रोः वृष्ण्यं नि तिर) शत्रुका सामर्थ्य नष्ट कर। शत्रुका (शुष्मं नि तिर) तेज नष्ट कर। (वयः नि तिर) शत्रुका अन्न विनष्ट कर। जो शत्रु (दूरे वा सतः)दूर रहे (अन्ति वा) वा समीप रहे ॥ ७ ॥

शत्रु दूर हो या समीप हो, उसका सब प्रकारका सामर्थ्य नष्ट हो जाय।

१ शत्रोः वृष्ण्यं नि तिर— शत्रुका बल नष्ट कर।
२ शत्रोः शुष्मं नि तिर— शत्रुका तेज नष्ट कर।
३ शत्रोः वयः नि तिर— शत्रुका अन्न नष्ट कर।
४ दूरे वा अन्ति वा सतः— शत्रु दूर हो वा पास हो, उसका सब सामर्थ्य नष्ट करना चाहिये।

[२०]

[१७०] (कविः) ज्ञानी सोम (देववीतये) देवोंके पीनेके लिये (अव्यः वारेभिः प्र अर्षति) भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे नीचे उतरता है। छाननीमेंसे छाना जाता है। (विश्वाः स्पृधः अभि साह्वान्) सब शत्रुओंका पराभव करता है ॥ १ ॥

सोमरस छाना जाता है। इस प्रकार छाननेसे वह शुद्ध होता है। और पीनेके योग्य होता है।

[१७१] (सः हि) वह सोम (पवमानः) शुद्ध होनेपर (जरितृभ्यः) स्तोताओंके लिये (सहस्रिणं गोमन्तं वाजं) सहस्रों प्रकारका गोदुग्ध युक्त अन्न (आ इन्वति स्म) देता है ॥ २ ॥

[१७२] हे (सोम) सोम ! तू (चेतसा) अनुकूल बुद्धिसे (विश्वानि परि मृशसे) सब प्रकारके धन देता है। (मती पवसे) स्तुति सुनकर रस देता है। (सः) वह तू (नः) हमारे लिये (श्रवः विदः) अन्न दो ॥ ३ ॥

१ विश्वानि परि मृशसे— तू सब धन देता है।
२ मती पवसे — बुद्धि बढानेवाला रस देता है।
३ सः नः श्रवः विदः — वह तू हमारे लिये अन्न दे।

१७३ अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवंद्भ्यो ध्रुवं रयिम् । इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ४ ॥
१७४ त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमा विवेशिथ । पुनानो वह्ने अद्भुत ॥ ५ ॥
१७५ स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः । सोमश्चमूषु सीदति ॥ ६ ॥
१७६ क्रीळुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि । दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ७ ॥

[२१]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

१७७ एते धावन्तीन्दवः सोमा इन्द्राय घृष्वयः । मत्सरासः स्वर्विदः ॥ १ ॥

अर्थ— [१७३] (बृहत् यशः अभ्यर्ष) बडा यश हमें प्राप्त कराओ । (मघवद्भ्यः ध्रुवं रयिं) धनी लोगोंको स्थिर रहनेवाला धन देवो । (स्तोतृभ्यः इषं आ भर) स्तोताओंको अन्न भरपूर दो ॥ ४ ॥

१ बृहद् यशः अभ्यर्ष— हमें बडा यश दो ।

२ मघवद्भ्यः ध्रुवं रयिं अभ्यर्ष— धनी लोगोंके लिये चिरकाल टिकनेवाला धन दो ।

३ स्तोतृभ्यः इषं आ भर— स्तुति करनेवालोंको अन्न दो ।

[१७४] हे (सोम) सोम ! ((सुव्रतः पुनानः त्वं) उत्तम व्रत करनेवाला शुद्ध होनेवाला तू (गिरः आ विवेशिथ) स्तुतियोंको प्राप्त करता है । हे (वह्ने) तेजस्वी सोम ! (अद्भुतः) अद्भुत प्रशंसनीय है ॥ ५ ॥

१ सुव्रतः पुनानः त्वं— तू उत्तम व्रत करनेवाला तथा शुद्ध होनेवाला है ।

२ वन्हे अद्भुत— तू तेजस्वी और अद्भुत सामर्थ्यवान् हो ।

[१७५] (सः वह्निः) वह सोम यज्ञोंका वहन करता है । वह (अप्सु दुष्टरः) अन्तरिक्षके जलस्थानमें रहता है और अन्य शत्रुओंसे पार करनेके लिये अशक्य है । (गभस्त्योः मृज्यमानः) दोनों हाथोंसे शुद्ध किया जाता है । ऐसा वह (सोमः) सोम (चमूषु सीदति) पात्रोंमें रहता है ॥ ६ ॥

सोमरस जलमें मिलाकर, हाथों द्वारा पकडकर शुद्ध किया जाता है और पात्रोंमें भरा जाता है और पात्रोंमें रखा जाता है ।

[१७६] हे (सोम) सोम ! तू (क्रीळुः) क्रीडा करनेमें समर्थ और (मंहयुः) दान देनेकी इच्छा करनेवाला (मखः न) यज्ञमें दानके समान (पवित्रं गच्छसि) छाननीमें जाता है और (स्तोत्रे) स्तुति करनेवालेके लिये (सुवीर्यं दधत्) उत्तम बल देता है ॥ ७ ॥

१ क्रीळुः सोमः— सोमरस क्रीडा करनेकी शक्ति बढाता है ।

२ मंहयुः— दान देनेका प्रवृत्ति उत्पन्न करता है ।

३ मखः— सोम यज्ञरूप ही है ।

४ पवित्रं गच्छसि— सोमरस छाननीसे छाना जाता है और शुद्ध होता है ।

५ सुवीर्यं दधत्— उत्तम पराक्रम करनेका बल बढाता है ।

[२१]

[१७७] (एते सोमाः) ये सोमरस (इन्दवः) तेजस्वी (घृष्वयः) युद्ध करनेकी प्रेरणा देनेवाले (मत्सरासः) आनंद बढानेवाला और (स्वर्विदः) ज्ञान देनेवाले (इन्द्राय धावन्ति) इन्द्रके पास जानेके लिये दौड रहे हैं ॥ १ ॥

सोमरस तेजस्वी हैं, युद्ध करनेका सामर्थ्य बढाते हैं, आनंद बढाते हैं, सत्यज्ञान बढाते हैं, ये इन्द्रको पीनेके लिये दिये जाते हैं ।

१७८ प्रवृण्वन्तो अभियुजः सुष्वये वरिवोविदः । स्वयं स्तोत्रे वयस्कृतः ॥ २ ॥
१७९ वृथा क्रीळन्त इन्दवः सधस्थमभ्येकमित् । सिन्धोरूर्मा व्यक्षरन् ॥ ३ ॥
१८० एते विश्वानि वार्या पवमानास आशत । हिता न सप्तयो रथे ॥ ४ ॥
१८१ आस्मिन् पिशङ्गमिन्दवो दधाता वेनमादिशे । यो अस्मभ्यमरावा ॥ ५ ॥
१८२ ऋभुर्न रथ्यं नवं दधाता केतमादिशे । शुक्राः पवध्वमर्णसा ॥ ६ ॥
१८३ एत उ त्ये अवीवशन् काष्ठां वाजिनो अक्रत । सतः प्रासाविषुर्मतिम् ॥ ७ ॥

अर्थ— [१७८] (प्र वृण्वन्तः) विशेष रीतिसे सहाय्य करनेवाले (अभियुजः) अनेक प्रकारसे उपयोगी (सुष्वये वरिवो विदः) रस निकालनेवालेको धन देनेवाले (स्तोत्रे) स्तुति करनेवालेके लिये (स्वयं वयस्कृतः) स्वयं अन्न देनेवाले ये सोम हैं ॥ २ ॥

[१७९] (वृथा क्रीडन्तः इन्दवः) सहज खेलते हुएसे ये सोमरस (एकं सधस्थं इत्) एक पात्रमें (सिन्धो ऊर्मा) नदीके जलमें (वि अक्षरन्) गिरते हैं ॥ ३ ॥

ये सोमरस सहज रीतिसे एक पात्रमें रहे नदीके जलमें मिलाये जाते हैं। पात्रमें नदीका जल रहता है। उस जलमें सोमरस मिलाया जाता है।

[१८०] (एते) ये सोमरस (पवमानासः) शुद्ध होते हुए (विश्वानि वार्या) सब स्वीकार करने योग्य धन (आशत) प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥

१ रथे हिताः सप्तयः— रथमें जोडे हुए घोडे जैसे धन्यता प्राप्त करते हैं वैसे सोमरस धन्यता देते हैं।

२ पवमानासः विश्वानि वार्या आशत— शुद्ध हुए सोमरस सब धन प्राप्त करते हैं। यजमान सोमयाग करनेसे धन्य होता है।

[१८१] हे (इन्दवः) सोम ! (अस्मिन्) इस यजमानमें (पिशंगं वेनं) अनेक प्रकारका धन (आदिशे- आ दधात) दान देनेके लिये देकर रखो। (यः) जो यजमान (अस्मभ्यं अरावा) हम सबको उस धनका दान करता है ॥ ५ ॥

यजमानके पास पर्याप्त धन हो, जिस धनका दान वह यजमान यज्ञमें कर सके।

[१८२] (ऋभुः न) तेजस्वी स्वामी जैसा (नवं रथ्यं) नवीन रथ चलानेवालेको रथ चलानेके कार्यमें लगाता है उस प्रकार (केतं आदिशे) ज्ञान हमारेमें (दधात) रखो और (शुक्राः अर्णसा पवध्वं) शुद्ध सोम जलके साथ पवित्र होकर चलें ॥ ६ ॥

१ ऋभुः न नवं रथ्यं केतं आदिशे— तेजस्वी स्वामी जैसा नवीन उत्तम सारथीको रथ चलानेके लिये लगाता है, उस प्रकार हमें उत्तम यज्ञके कार्यमें लगावो। हमसे यज्ञ उत्तम रीतिसे होते रहें।

२ शुक्रा अर्णसा पवध्वं— शुद्ध सोमरस छाने जांय। और उन सोमरसोंका यज्ञमें उपयोग हो।

[१८३] (एते त्ये उ) वे सोम यज्ञकी (अवीवशन्) इच्छा करते हैं। (वाजिनः) बलवान वे सोम (काष्ठां अक्रत) अपने स्थानपर यज्ञमें गये। और (सतः मतिं प्रासाविषुः) यजमानकी बुद्धिको यज्ञ करनेकी उन्होंने प्रेरणा दी ॥ ७ ॥

[२१]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

१८४ एते सोमा॑स आ॒शवो॒ रथा॑ इव॒ प्र वा॒जिनः॑ । सर्गाः॑ सृ॒ष्टा अ॑हेषत ॥ १ ॥
१८५ एते वाता॑ इवो॒रवः॑ प॒र्जन्य॑स्येव वृ॒ष्टयः॑ । अ॒ग्नेरि॑व भ्र॒मा वृथा॑ ॥ २ ॥
१८६ एते पू॒ता वि॑प॒श्चितः॒ सोमा॑सो॒ दध्या॑शिरः । वि॒पा व्या॑नशु॒र्धियः॑ ॥ ३ ॥
१८७ एते मृ॒ष्टा अम॑र्त्याः सस॒वांसो॒ न श॑श्रमुः । इय॑क्षन्तः प॒थो रजः॑ ॥ ४ ॥
१८८ एते पृ॒ष्ठानि॒ रोद॑सो॒र्वि॒प्रयन्तो॒ व्या॑नशुः । उ॒तेदमु॑त्त॒मं रजः॑ ॥ ५ ॥
१८९ तन्तुं॑ त॒न्वान॑मुत्त॒म॒मनु॑ प्र॒वत॑ आशत । उ॒तेदमु॑त्त॒माय्य॑म् ॥ ६ ॥

[२१]

अर्थ— [१८४] (एते सोमासः) ये सोम (सृष्टाः आशवः) रस निकाले शीघ्रतासे छाननीसे नीचे (सर्गाः अहेषत) उतरते हुए शब्द करते हैं, (रथाः इव) रथोंके समान अथवा (वाजिनः प्र इव) घोडोंके समान शब्द करते हैं ॥ १ ॥

रथ चलनेके समय शब्द करते हैं, तथा घोडे शब्द करते हैं, उस प्रकार ये सोमरस निकालकर छाननीमेंसे छाने जानेके समय शब्द करते हुए नीचे रखे पात्रमें उतरते हैं ।

[१८५] (एते) ये सोमरस (वाताः इव) वायुके समान (उरवः) बडे जोरसे जाते हैं । (पर्जन्यस्य वृष्टयः) पर्जन्यकी वृष्टीके समान तथा (अग्नेः भ्रमा वृथा इव) अग्निकी ज्वालायें जैसी जोरसे चलती हैं वैसे चलते हैं ॥ २ ॥

सोमरस छाननीसे वैसे जोरसे नीचेके पात्रमें गिरते हैं , जैसे वायु वेगसे चलते हैं, वृष्टी जैसी होती है, तथा अग्निकी ज्वालाएँ चलती हैं ।

[१८६] (एते सोमासः) ये सोमरस (पूताः) शुद्ध हुए (विपश्चितः) ज्ञान देनेवाले (दध्याशिरः) दहीके साथ मिलाये गये हैं । ये (विपा) विशेष ज्ञानसे युक्त होकर (धियः व्यानशुः) बुद्धिपूर्वक किये यज्ञकर्ममें जाते हैं ॥ ३ ॥

सोमरस छानकर शुद्ध होनेपर दहीके साथ मिलाये जाते हैं और उनका यज्ञकर्ममें विनियोग किया जाता है ।

[१८७] (एते मृष्टाः) ये सोमरस छाने जाकर शुद्ध होनेपर (अमर्त्याः) अमर देवोंके सदृश (ससवांसः) छाननीमेंसे नीचेके पात्रमें उतरते है । इस समय वे सोमरस (पथः रजः) अपने मार्गों और स्थानोंको (इयक्षन्तः) जानेकी इच्छा करते हैं । परंतु वे (न शश्रमुः) श्रांत नहीं होते ॥ ४ ॥

[१८८] (एते) ये सोमरस (रोदस्योः पृष्ठानि) द्युलोक और भूलोकके पृष्ठ भागोंपर (विप्रयन्तः) विविध प्रकारसे जाते हैं और (व्यानशुः) सब स्थानोंपर फैलते हैं । (उत इदं उत्तमं रजः) और इस उत्तम द्युलोकमें भी फैलते हैं ॥ ५ ॥

सोमरस भूमी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोकमें फैलते हैं और वहां प्राप्त होते हैं । सोमरसोंका प्रभाव तीनों लोकोमें होता है ।

[१८९] (तन्तुं तन्वानं) यज्ञको फैलानेवाले (उत्तमं) उत्कृष्ट सोमको (प्रवतः अनु आशत) नदियां प्राप्त होती हैं । (उत) और वह सोम (इदं उत्तमाय्यम्) इस उत्तम यज्ञकर्मको पूर्ण करता है ॥ ६ ॥

१ तन्तुं तन्वानं प्रवतः अनुआशत— यज्ञको फैलानेवाले सोमके साथ नदीयोंके जल मिलाये जाते हैं ।
२ इदं उत्तमाय्यम्— यह उत्तम यज्ञकर्म उस सोमसे किया जाता है ।

सोमरसमें नदीका जल मिलाया जाता है और उस मिश्रणसे-सोम और जलके मिश्रणसे सोमयज्ञ किया जाता है ।

१९० त्वं सोम पणिभ्य आ वसु गव्यानि धारयः । ततं तन्तुमचिक्रदः ॥ ७ ॥

[२२]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री।)

१९१ सोमा असृग्रमाशवो मधोर्मदस्य धारया । अभि विश्वानि काव्या ॥ १ ॥
१९२ अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः । रुचे जनन्त सूर्यम् ॥ २ ॥
१९३ आ पवमान नो भरा॒ऽर्यो अदाशुषो गयम् । कृधि प्रजावतीरिषः ॥ ३ ॥
१९४ अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् । अभि कोशं मधुश्चुतम् ॥ ४ ॥

अर्थ— [१९०] हे (सोम) सोम ! (त्वं) तू (पणिभ्यः) पणिजनोंसे (गव्यानि वसु) गौसंबंधी पदार्थ तथा धन (आ धारयः) लाकर धारण करता है । वैसाहि (तन्तुं ततं) यज्ञको फैलाकर (अचिक्रदः) शब्द करता है ॥ ७ ॥

१ त्वं पणिभ्यः गव्यानि आ धारयः— तू पणिजनोंसे गौके संबंधी पदार्थ दूध, दही, घृत आदि लाकर अपने पास यज्ञस्थानमें रखता है ।

२ तन्तुं ततं अचिक्रदः— यज्ञको फैलानेके लिये उपदेश करता है ।

" पणि " जन व्यापार करते हैं, गौवें रखते हैं, उनसे हवनीय घी आदि पदार्थ मिलते हैं, जिनसे यज्ञ होते हैं।

[२२]

[१९१] (विश्वानि काव्या अभि) अनेक काव्यरूपी स्तोत्र कहते हुए (मदस्य मधोः धारया) मधुर सोमकी धारासे (सोमाः) सोमरस (आशवः असृग्रम्) शीघ्रतासे निकाले जाते हैं ॥ १ ॥

सोमरस निकालनेके समय वैदिक सूक्त बोले जाते हैं और यज्ञके स्थानमें सोमसे रस निकाला जाता है । यह सोमरस मधुर रहता है ।

[१९२] (प्रत्नासः आयवः) पुराने घोडे (नवीयः पदं अनु अक्रमुः) नवीन स्थान आक्रमण करते हैं, (रुचे सूर्यं जनन्त) प्रकाशके लिये सूर्यको उत्पन्न करते हैं । वैसे सोमरस हैं ॥ २ ॥

घोडे नवीन स्थानपर जाकर रहते हैं, वैसे सोम यज्ञस्थानमें जाकर यज्ञकार्य करता है । प्रकाशके लिये सूर्य बनाया है उस तरह यज्ञके लिये सोम तैयार किया है और यज्ञस्थानमें रखा है ।

[१९३] हे (पवमान) सोम! तू (नः) हमारे लिये (अर्यः) शत्रुरूपी (अदाशुषः गयं) दान न देनेवाले शत्रुका घर या धन (आभर) लाकर हमें देओ । (प्रजावतीः इषः कृधि) प्रजा युक्त अन्न भी देओ ॥ ३ ॥

१ अदाशुषः अर्यः गयं नः आभर— दान न देनेवाले शत्रुका घर हमारे लिये भरपूर रीतिसे दे दो । दान न देनेवालेके घरका धन हमें दे दो ।

२ प्रजावतीः इषः कृधि— प्रजा उत्पन्न करनेवाला वीर्य बढानेवाला अन्न हमें दे दो । उस अन्नको खानेसे हमारेमें वीर्य बढेगा और हमें संतति पर्याप्त होगी ।

[१९४] (आयवः सोमासः) छाने जानेवाले सोमरस (मद्यं मदं) आनंद देनेवाला रस (अभि पवन्ते) नीचे गिराते हैं । (मधुश्चुतं कोशं अभि) मधुररस रखनेके पात्रमें गिरते हैं ॥ ४ ॥

छाने जानेवाले सोमरस आनंद बढाते हैं । वे रसपात्रमें छानकर रखे रहते हैं ।

×

१९५ सोमो अर्षति धर्णसि-र्दधान इन्द्रियं रसम् । सुवीरो अभिशस्तिपाः ॥ ५ ॥
१९६ इन्द्राय सोम पवसे देवेभ्यः सधमाद्यः । इन्दो वाजं सिषाससि ॥ ६ ॥
१९७ अस्य पीत्वा मदाना-मिन्द्रो वृत्राण्यप्रति । जघान जघनच्च नु ॥ ७ ॥

[२४]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

१९८ प्र सोमासो अधन्विषुः पवमानास इन्दवः । श्रीणाना अप्सु मृञ्जत ॥ १ ॥
१९९ अभि गावो अधन्विषु-रापो न प्रवता यतीः । पुनाना इन्द्रमाशत ॥ २ ॥

अर्थ— [१९५] (धर्णसि) धारणशक्तिसे पूर्ण (इन्द्रियं रसं दधानः) इन्द्रियोंकी शक्ति बढानेवाले रसको धारण करनेवाला (सुवीरः) उत्तम वीरके समान शौर्य बढानेवाला (अभिशस्तिपाः) हिंसक शक्तियोंको दूर करनेवाला (सोमः अर्षति) सोमरस पात्रमें जाता है ॥ ५ ॥

१ धर्णसिः— धारण करनेकी शक्तिसे युक्त।
२ इंद्रियं रसं दधानः— इंद्रियोंकी शक्ति बढाता है।
३ सुवीरः— उत्तम वीर बनाता है। सोमरस पान करनेसे वीरता बढती है।
४ अभिशक्तिपाः— हिंसक शक्तियोंको दूर करता है।

[१९६] हे (सोम) सोम! तू (सध- माद्यः) यज्ञके लिये योग्य हो। (इन्द्राय देवेभ्य पवसे) इन्द्रके लिये तथा देवोंके लिये तुझसे रस निकाला जाता है। हे (इन्दो) सोम! तू हमारे लिये (वाजं सिषाससि) अन्न देता है ॥ ६ ॥

१ सोमका रस निकालकर यज्ञमें देवोंको दिया जाता है।
२ इन्द्राय देवेभ्यः पवसे— इन्द्रके लिये तथा देवोंके लिये सोमसे रस निकालते हैं।
३ इन्दो! वाजं सिषाससि— हे सोम! तूं बल बढानेवाला अन्न देता है। सोमरस बल बढानेवाला है।

[१९७] (मदानां) आनंदमय उत्साह बढानेवाले (अस्य पीत्वा) इस सोमरसको पीकर (वृत्राणि) घेरनेवाले शत्रुओंके (अप्रति) ऊपर आक्रमण न करके ही इन्द्र (जघान) शत्रुओंका नाश करता रहा (नु जघनत् च) और नाश करता है ॥ ७ ॥

सोमरस पीकर इन्द्र घेरनेवाले सब शत्रुओंका नाश करता रहा और संप्रति भी शत्रुओंका नाश करता है।

[२४]

[१९८] (पवमानासः इन्दवः सोमासः) छाने जानेवाले तेजस्वी सोमरस (प्र अधन्विषुः) छाननीसे नीचे उतरते हैं। (श्रीणानाः) गौके दूधके साथ मिश्रित किये जाते हैं तथा (अप्सु मृञ्जत) जलोंके साथ मिलाये जाते हैं ॥ १ ॥

१ पवमानासः इन्दवः सोमासः श्रीणानाः प्र अधन्विषुः— छाने जानेवाले तजस्वी सोमरस जलके तथा गौके दूधके साथ मिलाकर छाने जाते हैं।
२ अप्सु मृञ्जत— जलोंके साथ मिलाये जाते हैं।

[१९९] (गावः) गमनशील सोमरस (अभि अधन्विषुः) छाननीके नीचे छानकर जाते हैं (आपः न) जैसे जल प्रवाह (प्रवता यतीः) उच्च स्थानसे नीचे जाते हैं। ये सोमरस (पुनानाः) छाने जाकर (इन्द्रं आशत) इन्द्रके समीप पहुंचते हैं ॥ २ ॥

सोमरस छाननेके पश्चात् इन्द्रके पास पहुंचाया जाता है।

२०० प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय पातवे । नृभिर्यतो वि नीयसे ॥ ३ ॥
२०१ त्वं सोम नृमादनः पवस्व चर्षणीसहे । सस्निर्यो अनुमाद्यः ॥ ४ ॥
२०२ इन्दो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिधावसि । अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ ५ ॥
२०३ पवस्व वृत्रहन्तमोक्थेभिरनुमाद्यः । शुचिः पावको अद्भुतः ॥ ६ ॥
२०४ शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतस्य मध्वः । देवावीरघशंसहा ॥ ७ ॥

[२५]

(ऋषिः- दृळहच्युत आगस्त्यः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

२०५ पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे । मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥ १ ॥

अर्थ— [२००] हे (पवमान सोम) हे छाने जानेवाले सोम (इन्द्राय पातवे) इन्द्रके पीनेके लिये (प्रधन्वसि) तूं जाता है । (नृभिः यतः वि नीयसे) ऋत्विजोंके द्वारा तू ले लिया जाता है ॥ ३ ॥

सोमरस निकालकर, उसको छानकर इन्द्रके पास लिया जाता है और यज्ञकर्ता उस सोमरसको इन्द्रको पीनेके लिये अर्पण करते हैं ।

[२०१] हे (सोम) सोम ! (त्वं नृमादनः) तू मनुष्योंको आनंद देनेवाला है । तूं (चर्षणीसहे) मानवोंका द्वेष करनेवालोंका विनाश करनेवाले इन्द्रके लिये (पवस्व) रस निकालो । तू (सस्निः) शुद्ध है और (अनुमाद्यः) स्तुत्य है ॥ ४ ॥

१ त्वं नृमादनः— सोमरस मनुष्योंका आनंद बढानेवाला है ।
२ चर्षणीसहे पवस्व— दुष्टोंका पराभव करनेवाले इन्द्रके लिये रस निकालो ।
३ सस्निः— तू शुद्ध है ।
४ अनुमाद्यः— तू स्तुति करनेके योग्य हो ।

[२०२] हे (इन्दो) सोम ! (यत्) जब (अद्रिभिः सुतः) पत्थरोंसे कूटकर निकाला तू रस (पवित्रं परिधावसि) छाननीपर छाना जाता है तब (इन्द्रस्य धाम्ने अरं) इन्द्रके पेटके लिये पर्याप्त होता है ॥ ५ ॥

पत्थरोंसे कूटकर निकाला हुआ सोमका रस छाननीसे छाना जाता है । वह सोमरस पीनेको देनेके लिये योग्य होता है ।

[२०३] हे (वृत्र हन्तम) शत्रुओंको मारनेवाले सोम ! तूं (पवस्व) रस निकालो । (उक्थेभिः अनुमाद्यः) स्तोत्रोंसे प्रशंनीय तू है । तू (शुचिः पावकः अद्भुतः) पवित्र, शुद्ध करनेवाला तथा अद्भुत हो ॥ ६ ॥

[२०४] (सुतस्य मध्वः सोमः) रस निकाले मधुर सोमरसको (शुचिः) शुद्ध और (पावकः) पवित्र करनेवाला (उच्यते) कहा जाता है । वह सोमरस (देवावीः) देवोंका संरक्षण करनेवाला तथा (अघ-शंस हा) पापीयोंका विनाश करनेवाला है ॥ ७ ॥

१ सोमः मध्वः शुचिः पावकः उच्यते— सोमरस मधुर शुद्ध तथा शुद्ध करनेवाला होता है ।
२ सोम देवावीः अघशंसहा— सोम देवोंका रक्षक तथा दुष्टोंका नाश करनेवाला है ।

[२५]

[२०५] हे (हरे) हरे रंगके सोम ! (दक्ष-साधनः) बल देनेवाला और (मदः) आनंद देनेवाला तू (देवेभ्यः) देवोंके तथा (मरुद्भ्यः वायवे) मरुतों और वायुके (पीतये पवस्व) पीनेके लिये रस निकालो ॥ १ ॥

सोमका रस देवोंको, मरुतोंको तथा वायुको दिया जाता है ।

२०६ पर्वमान धिया हितो॒३ऽभि योनिं कनिक्रदत् । धर्मणा वायुमा विश ॥ २ ॥
२०७ सं देवैः शोभते वृषा कविर्योनावधि प्रियः । वृत्रहा देववीतमः ॥ ३ ॥
२०८ विश्वा रूपाण्याविशन् पुनानो याति हर्यतः । यत्रामृतास आसते ॥ ४ ॥
२०९ अरुषो जनयन् गिरः सोमः पवत आयुषक् । इन्द्रं गच्छन् कविक्रतुः ॥ ५ ॥
२१० आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे । अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ६ ॥

[२६]

(ऋषिः- इध्मवाहो दार्ढच्युतः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

२११ तममृक्षन्त वाजिनमुपस्थे अदितेरधि । विप्रासो अण्व्या धिया ॥ १ ॥
२१२ तं गावो अभ्यनूषत सहस्रधारमक्षितम् । इन्दुं धर्तारमा दिवः ॥ २ ॥

अर्थ— [२०६] हे (पवमान) सोम ! (धिया हितः) अंगुलियोंसे पकडा हुआ तू (कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ (योनिं अभि विश) पात्रमें प्रवेश कर । (धर्मणा वायुं आ विश) धर्मके अनुकूलतासे वायुके समीप जा ॥ २ ॥

अंगुलियोंसे पकडा हुआ सोमसे निकलनेवाला रस शब्द करता हुआ नीचे रखे पात्रमें पडता है । उस समय उस रसका संबंध वायुसे भी होता है ।

[२०७] (वृषा) बलवर्धक (कविः) ज्ञानी (प्रियः) प्रियकर (वृत्रहा) शत्रुओंको मारनेवाला (देववीतमः) देवोंको अत्यंत प्रिय (योनौ अधि) अपने आश्रय स्थानमें (देवैः सं शोभते) देवोंके साथ शोभता है ॥ ३ ॥

१ वृषा कविः प्रियः वृत्रहा देववीतमः योनौ अधि देवैः सं शोभते— बलवान, ज्ञानी, प्रिय, शत्रुओंका विनाश करनेवाला, देवोंको प्रिय, अपने यज्ञके स्थानमें अनेक देवोंके साथ शोभता है ।

[२०८] (विश्वा रूपाणि आविशन्) सब रूपोंमें प्रविष्ट होकर (पुनानः) पवित्र होकर यह सोम (हर्यतः याति) सुशोभित होकर जाता है (यत्र) जहां (अमृतासः आसते) देव रहते हैं ॥ ४ ॥

जहां देव बैठते हैं उस यज्ञके स्थानमें अनेक रूपोंसे शुद्ध हुआ यह सोमरस जाता है । यज्ञमें सब देव आकर बैठते है, वहां यह सोम भी जाकर अपने स्थानमें बैठता है । यज्ञमें सोमके लिये नियत स्थान रहता है ।

[२०९] (अरुषः सोमः) तेजस्वी सोम (गिरः जनयन्) शब्द करता हुआ (पवते) छाना जाता है । (आयुषक्) प्रीति करनेवाला (इद्रं गच्छन्) इन्द्रके पास जानेवाला (कविक्रतुः) ज्ञानपूर्वक कर्म करनेवाला यह सोम है ॥ ५ ॥

[२१०] हे (मदिन्तम) आनंददायक (कवे) ज्ञानी सोम ! तू (पवित्रं) छाननीके अन्दरसे (धारया आ पवस्व) धारासे छाना जा । (अर्कस्य) पूजनीय इन्द्रके (योनिं आसदं) स्थानको प्राप्त कर ॥ ६ ॥

[२६]

[२११] (विप्रासः) ऋत्विज लोक (अण्व्या धिया) सूक्ष्म बुद्धिसे (तं वाजिनं) उस बलवान सोमको (अदितेः उपस्थे) यज्ञ भूमिमें उपर (अधि अमृक्षन्त) विशेष रीतिसे शुद्ध करते हैं ॥ १ ॥

[२१२] (तं दिवः धर्तारं) उस द्युलोकका धारण करनेवाले (अक्षितं) कम न होनेवाले (सहस्र धारं) हजारों धाराओंसे रस देनेवाले (इन्दुं सोमकी (गावः अभ्यनूषत) स्तोत्र प्रशंसा करते हैं ॥ २ ॥

अनेक स्तोत्र सोमका वर्णन करते हैं ।

२१३ तं वेधां मेधयांह्यन् पवमानमधि द्यवि । धर्णसिं भूरिधायसम् ॥ ३ ॥
२१४ तमह्यन् भुरिजोर्धिया संवसानं विवस्वतः । पतिं वाचो अदाभ्यम् ॥ ४ ॥
२१५ तं सानावधि जामयो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । हर्यतं भूरिचक्षसम् ॥ ५ ॥
२१६ तं त्वा हिन्वन्ति वेधसः पवमान गिरावृधम् । इन्दविन्द्राय मत्सरम् ॥ ६ ॥

[२७]

(ऋषिः– नृमेध आङ्गिरसः । देवताः– पवमानः सोमः । छन्दः– गायत्री ।)

२१७ एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते । पुनानो घ्नन्नप स्रिधः ॥ १ ॥
२१८ एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित् परि षिच्यते । पवित्रे दक्षसाधनः ॥ २ ॥
२१९ एष नृभिर्वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः । सोमो वनेषु विश्ववित् ॥ ३ ॥

अर्थ— [२१३] (वेधां) सबको धारण करनेवाले (धर्णसिं) सबके आधाररूप (भूरिधायसं) बहुतोंके धारण कर्ता (तं पवमानं) उस सोमको (अधि द्यवि) द्युलोकके पास (मेधया अह्यन्) बुद्धिसे पहुंचाते हैं ॥ ३ ॥

सोम सबका आधार, सबका धारण करनेवाला, सबको आश्रय देनेवाला है। उसको द्युलोकके समीप यज्ञ कर्ता लोक अपनी बुद्धिसे पहुंचाते हैं। सोमवल्ली पहाडोंपर हिमालयमें सबसे उच्च स्थानमें होती है अतः वह स्वर्गमें रहती है ऐसा कहा है।

[२१४] (वाचः पतिं) वाणीके स्वामी (अदाभ्यं) किसीसे न दबनेवाले (विवस्वतः) ऋत्विजोंके (भुरिजोः) बाहुओंमें अर्थात् हाथोंमें (संवसानं) रहनेवाले (तं) उस सोमको (अह्यन्) ले जाते हैं और यज्ञ-स्थानमें पहुंचाते हैं ॥ ४ ॥

ऋत्विज लोक यज्ञस्थानमें सोमको हाथोंसे धारण करके पहुंचाते हैं और यज्ञमें उसको समर्पित करते हैं।

[२१५] (जामयः) अंगुलियां (तं हरिं) उस हरे रंगके (हर्यतं) सुंदर (भूरिचक्षसं) बहुतोंको देखनेवाले सोमको (सानौ अधि) उच्च प्रदेशमें रखकर (अद्रिभिः हिन्वन्ति) पत्थरोंसे कूटकर रस निकालते हैं ॥ ५ ॥

सोमवल्लिको यज्ञस्थानमें ऊंचे स्थानमें रखकर पत्थरसे कूटते हैं और उससे रस निकालते हैं। सोमवल्ली हरे रंगकी होती है और वह चमकती है।

[२१६] हे (पवमान) सोम ! (वेधसः तं त्वा हिन्वन्ति) ज्ञानीलोक उस तुझको प्रेरित करते हैं। हे (इन्दो) सोम ! (इन्द्राय मत्सरं) इन्द्रको आनंद देनेवाले तुम सोम (गिरावृधं) स्तुतिस्तोत्रोंसे प्रशंसित होनेवाले हो ॥ ६ ॥

[२७]

[२१७] (एषः) यह सोम (कविः अभिष्टुतः) ज्ञानी करके उसकी स्तुति की जानेपर (पवित्रे अधि तोशते) छाननीपर जाता है। वहां (पुनानः) पवित्र होकर (स्रिधः अपघ्नन्) शत्रुओंका नाश करता है ॥ १ ॥

[२१८] (एषः दक्षसाधनः) यह बल बढानेका साधन होनेवाला सोम (स्वर्जित्) स्वर्गमें विजय प्राप्त करनेवाला (इन्द्राय वायवे) इन्द्र और वायु इन देवोंको देनेके लिये (पवित्रे परिषिच्यते) छाननीपर छाना जाता है ॥ २ ॥

सोमरस छाना जानेके पश्चात् यज्ञमें इन्द्र तथा वायुको दिया जाता है।

[२१९] (एषः सुतः सोमः) यह सोमका निकाला रस (वृषा) बलवर्धक (दिवः मूर्धा) द्युलोकके मुख्य स्थानमें रहने योग्य (वनेषु विश्ववित्) वनमें उत्पन्न हुए पदार्थोंमें मुख्य और सर्वज्ञ है (नृभिः विनीयते) यह यज्ञ करनेवाले ऋत्विजोंके द्वारा यज्ञस्थानमें लिया जाता है ॥ ३ ॥

२२० एष गव्युरचिक्रदत् पवमानो हिरण्ययुः । इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥ ४ ॥
२२१ एष सूर्येण हासते पवमानो अधि द्यवि । पवित्रे मत्सरो मदः ॥ ५ ॥
२२२ एष शुष्म्यसिष्यद दन्तरिक्षे वृषा हरिः । पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥ ६ ॥

[२८]

(ऋषिः- प्रियमेध आङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

२२३ एष वाजी हितो नृभि र्विश्वविन्मनसस्पतिः अव्यो वारं वि धावति ॥ १ ॥
२२४ एष पवित्रे अक्षरत् सोमो देवेभ्यः सुतः । विश्वा धामान्याविशन् ॥ २ ॥
२२५ एष देवः शुभायते ऽधि योनावमर्त्यः । वृत्रहा देववीतमः ॥ ३ ॥

अर्थ— [२२०] (एषः) यह सोमरस (गव्युः) गोदुग्धकी इच्छा करनेवाला (हिरण्ययुः) धनकी इच्छा करता है, (इन्दुः) तेजस्वी (सत्राजित्) शत्रुओंको जीतनेवाला (अस्तृतः) अपराजित (पवमानः) सोमरस (अचिक्रदत्) शब्द करता हुआ पात्रमें जाता है ॥ ४ ॥

१ एषः गव्युः— यह सोमरस गौके दूधमें मिलाया जाता है ।

२ इन्दुः सत्राजित् अस्तृतः— यह सोमरस शत्रुओंको जीतता है, परंतु कभी यह स्वयं पराभूत नहीं होता है । सोमरस विजय करा देता है ।

३ पवमानः अचिक्रदत्— यह सोमरस शब्द करता हुआ पात्रमें उतरता है ।

[२२१] (एष पवमानः) यह सोमरस (मदः मत्सरः) आनंद देनेवाला और प्रसन्नता करनेवाला है, उसको (अधि द्यवि पवित्रे) द्युलोकके समान छाननीके ऊपर (सूर्येण हासते) सूर्यके द्वारा ही रखा जाता है ॥ ५ ॥

सोमरस छाना जाता है, वह सूर्य प्रकाशमें छाना जाता है । सूर्यका प्रकाश सोमरस पर गिरनेसे सोम अधिक शुद्ध होता है ।

[२२२] (एषः शुष्मी) बल बढानेवाला सोमरस (अन्तरिक्षे) छाननीके ऊपरसे (असिष्यदत्) नीचे गिरता है । यह सोमरस (वृषा) बल बढानेवाला (हरिः) हरे रंगका (पुनानः इन्दुः) पवित्र होनेके समय तेजस्वी दीखता है और यह (इन्द्रं आ) इन्द्रको दिया जाता है ॥ ६ ॥

सोमरस छाननेके समय तेजस्वी दीखता है । वह रस चमकता है ।

[२८]

[२२३] (एष वाजी) यह सोमरस बलवान (नृभिः हितः) ऋत्विजोंने पात्रमें रखा (विश्वावित्) सर्वज्ञानी, सर्व जाननेवाला (मनसः पति) मनका स्वामी, मननीय स्तोत्रोंका स्वामी (अव्यः वारं विधावती) भेडीके बालोंकी छाननी पर दौडकर जाता है ॥ १ ॥

भेडीके बालोंकी छाननीपर डालकर सोमरसको छाना जाता है । और पश्चात् इस रसका यज्ञमें उपयोग करते हैं ।

[२२४] (एषः सोमः) यह सोमरस (देवेभ्यः सुतः) देवोंको देनेके लिये निकाला (पवित्रे अक्षरत्) छाननीमेंसे नीचे पात्रमें गिरता है । (विश्वा धामानि आविशन्) सब देवोंके स्थानोंको पहुंचाता है ॥ २ ॥

यह सोमरस देवोंको देनेके लिये निकाला हुआ रस है । वह छाननीमेंसे छाना जाता है और सब देवोंके स्थानोंमें जाता है । देव इस रसको यज्ञमें स्वीकारते हैं ।

[२२५] (एष देवः) यह देव सोम (अमर्त्यः) मरण धर्मरहित (वृत्रहा) शत्रुओंका नाश करनेवाला (देववीतमः) देवोंको प्रिय है । (योनौ अधि शुभायते) यह यज्ञस्थानमें शोभता है ॥ ३ ॥

२२६ एष वृषा कनिक्रद॒द् दशभिर्जामिभिर्यतः । अभि द्रोणानि धावति ॥ ४ ॥
२२७ एष सूर्यमरोचयत् पवमानो विचर्षणिः । विश्वा धामानि विश्ववित् ॥ ५ ॥
२२८ एष शुष्म्यदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति । देवावीरघशंसहा ॥ ६ ॥

[२९]

(ऋषिः- नृमेध आङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

२२९ प्रास्य धारा अक्षरन् वृष्णः सुतस्यौजसा । देवाँ अनु प्रभूषतः ॥ १ ॥
२३० सप्तिं मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा । ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम् ॥ २ ॥
२३१ सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो । वर्धा समुद्रमुक्थ्यम् ॥ ३ ॥
२३२ विश्वा वसूनि संजयन् पवस्व सोम धारया । इनु द्वेषांसि सध्र्यक् ॥ ४ ॥
२३३ रक्षा सु नो अररुषः स्वनात् समस्य कस्य चित् । निदो यत्र मुमुच्महे ॥ ५ ॥

अर्थ— [२२६] (एषः वृषा) यह बलवान सोम (दशभिः जामिभिः यतः) दस अंगुलियोंसे पकडा हुआ (कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ (द्रोणानि) यज्ञ पात्रोंके पास (अभि धावति) जाता है ॥ ४ ॥

[२२७] (एष विचर्षणिः पवमानः) यह सबको देखनेवाला सोमरस (विश्ववित्) विश्वको जाननेवाला (विश्वा धामानि) सब यज्ञस्थानोंको तथा (सूर्यं) सूर्यको (अरोचयत्) प्रकाशित करता है ॥ ५ ॥

[२२८] (एषः सोमः) यह सोमरस (शुष्मी) बलवान (अदाभ्यः) न दबनेवाला (देवावीः) देवोंका रक्षक (अघशंसहा) पापियोंका नाश करनेवाला (पुनानः) छाना जाकर पात्रमें (अर्षति) उतरता है ॥ ६ ॥

[२९]

[२२९] (अस्य वृष्णः) इस बलवान (सुतस्य) रस निकाले सोमरसकी (धाराः) धाराएं (ओजसा) वेगसे (प्र अक्षरन्) चल रही है । (देवान् अनु प्रभूषतः) देवोंके अनुकूल वे धाराएं भूषण रूप होती हैं ॥ १ ॥

सोमका रस निकालनेके पश्चात् उस रसकी धाराएं देवोंको आनंद देती हुई चलती हैं।

[२३०] (सप्तिं) छाने जानेवाले सोमरसको (गृणन्तः) स्तुति करनेवाले (वेधसः) अध्वर्युगण (कारवः) यज्ञकर्ता (गिरा) स्तुति करते हुए (मृजन्ति) निकालते हैं । यह सोमरस (ज्योतिः) तेजस्वी (जज्ञानं उक्थ्यं) उत्पन्न होते ही स्तुति करने योग्य है ॥ २ ॥

[२३१] हे (सोम) सोम ! (प्रभूवसो) बहुत धन युक्त ! (पुनानाय ते) छाने जानेके समय तेरे (तानि) वे तेज (सुषहा) सुंदर होते हैं । अब तू (उक्थ्यं समुद्रं वर्ध) स्तुतिके योग्य जलके पात्रको वृद्धिंगत कर ॥ ३ ॥

जलके पात्रमें सोमरस मिलाया जाता है । अतः कहा है कि जलके पात्र बढाओ । भरपुर रससे भरो ।

[२३२] (विश्वा वसूनि संजयन्) सब धनोंको जीतकर (सोम) हे सोम ! (धारया पवस्व) धारासे छाना जा । (द्वेषांसि सध्र्यक् इनु) सब शत्रुओंको दूर देशमें भेजो ॥ ४ ॥

[२३३] हे सोम ! (नः सुरक्ष) हमारी उत्तम रीतिसे सुरक्षा करो । (अररुषः स्वनात्) दान न देनेवालेके बुरे शब्दोंसे तथा (समस्य कस्य चित्) उनके समान किसी दुष्टसे । (निदः) तथा निंदा करनेवालेसे हमारा रक्षण करो (यत्र मुमुच्महे) जहां हम दुष्टोंसे मुक्त होकर आनंदसे रह सकेंगे ॥ ५ ॥

२३४ एन्दो पार्थिवं रयिं दिव्यं पवस्व धारया । द्युमन्तं शुष्ममा भर ॥ ६ ॥

[३०]

(ऋषिः- बिन्दुराङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

२३५ प्र धारा अस्य शुष्मिणो वृथा पवित्रे अक्षरन् । पुनानो वाचमिष्यति ॥ १ ॥
२३६ इन्दुर्हियानः सोतृभिर्मृज्यमानः कनिक्रदत् । इयर्ति वग्नुमिन्द्रियम् ॥ २ ॥
२३७ आ नः शुष्मं नृषाह्यं वीरवन्तं पुरुस्पृहम् । पवस्व सोम धारया ॥ ३ ॥
२३८ प्र सोमो अति धारया पवमानो असिष्यदत् । अभि द्रोणान्यासदम् ॥ ४ ॥
२३९ अप्सु त्वा मधुमत्तमं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दविन्द्राय पीतये ॥ ५ ॥
२४० सुनोता मधुमत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे । चारुं शर्धाय मत्सरम् ॥ ६ ॥

अर्थ- (२३४] हे (इन्दो) सोम ! तू (धारया आ पवस्व) अपनी धारासे सब प्रकारसे रस दो। (पार्थिवं रयिं) पृथिवीपरका धन और (दिव्यं) दिव्य धन (पवस्व) दो। तथा (द्युमन्तं शुष्मं आ भर) तेजस्वी बल भरपूर दो ॥ ६ ॥

[३०]

[२३५] (शुष्मिणः अस्य) बलवान इस सोमकी (धाराः) धाराएं (पवित्रे वृथा प्र अक्षरन्) छाननीमें सहज ही चलती हैं। (पुनानः वाचं इष्यति) पवित्र होता हुआ यह सोम स्तुति सुननेकी इच्छा करता है ॥ १ ॥

सोमरस छाना जाता है, उस समय छाननीसे नीचे इस सोमरसकी धाराएं चलती हैं, उस समय ऋत्विज गण इसकी स्तुति गाते हैं।

[२३६] यह इन्दुः) सोम (सोतृभिः हियानः) रस निकालनेवाले ऋत्विजोंके द्वारा प्रेरित हुआ और (मृज्यमानः) शुद्ध होता हुआ (कनिक्रदत्) शब्द करता है और (इन्द्रियं वग्नुं इयर्ति) इन्द्रियोंको यज्ञका कार्य करनेकी प्रेरणा देता है ॥ २ ॥

[२३७] हे (सोम) सोम ! तू (नः) हमारे लिये (शुष्मं) बलवर्धक (नृषाह्यं) शत्रुओंका पराभव करनेवाला (वीरवन्तं) वीरता बढानेवाला (पुरु-स्पृहं) बहुतों द्वारा स्तुति करनेके लिये योग्य सोमरसको (धारया पवस्व) धारासे नीचे के पात्रमें गिरो ॥ ३ ॥

[२३८] यह (पवमानः सोमः) सोमरस (धारया अति) धारासे (द्रोणानि अभि आसदम्) पात्रोंमें बैठनेके लिये (असिष्यदत्) आगे जाता है ॥ ४ ॥

सोमरस धारासे छाना जाता है और यज्ञके पात्रोंमें रखा जाता है।

[२३९] हे (इन्दो) सोम ! (अप्सु) जलोंमें (मधुमत्तमं) अत्यंत मधुर (हरिं त्वा) हरे रंगके तुझ सोमरसको (अद्रिभिः) पत्थरोंसे कूटकर (इन्द्राय पितये) इन्द्रके पीनेके लिये (हिन्वन्ति) प्रेरित करते हैं ॥ ५ ॥

सोमको पत्थरोंसे कूटते हैं और उससे मधुर रस निकालते हैं और उस रसको इन्द्रको पीनेके लिये देते हैं।

[२४०] हे ऋत्विजो ! (मधुमत्तमं) अतिमधुर (मत्सरं) आनंद देनेवाले (शर्धाय चारुं) बलके संवर्धन करनेके लिये उत्तम सहायक (सोम) सोमका (वज्रिणे इन्द्राय) वज्रधारी इन्द्रको देनेके लिये (सुनोत) रस निकालो ॥ ६ ॥

[३१]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

२४१ प्र सोमा॑सः स्वा॒ध्यः॑ पव॑मानासो अक्रमुः । र॒यिं कृ॑ण्वन्ति॒ चेत॑नम् ॥ १ ॥
२४२ दि॒वस्पृ॑थि॒व्या अधि॒ भवे॑न्दो द्युम्न॒वर्ध॑नः । भवा॒ वाजा॑नां॒ पति॑ः ॥ २ ॥
२४३ तुभ्यं॒ वाता॑ अभि॒प्रिय॒स्तुभ्य॑मर्षन्ति॒ सिन्ध॑वः । सोम॒ वर्ध॑न्ति॒ ते॒ महः॑ ॥ ३ ॥
२४४ आ प्या॑यस्व॒ समे॑तु ते विश्वत॑ः सोम॒ वृष्ण्य॑म् । भवा॒ वाज॑स्य संग॒थे ॥ ४ ॥
२४५ तुभ्यं॒ गावो॑ घृ॒तं पयो॒ बभ्रो॑ दुदु॒ह्रे अक्षि॑तम् । वर्षि॑ष्ठे॒ अधि॒ सान॑वि ॥ ५ ॥
२४६ स्वा॒यु॒धस्य॑ ते सु॒तो भुव॑नस्य पते व॒यम् । इन्दो॑ सखि॒त्वमु॑श्मसि ॥ ६ ॥

---

[३१]

अर्थ— [२४१] (स्वाध्यः) ज्ञान बढानेवाले (पवमानासः सोमासः) छाने जानेवाले सोमरस (चेतनं रयिं कृण्वन्ति) चैतन्य देनेवाले धनका दान हमारे लिये करते हैं ॥ १ ॥

सोमरससे चैतन्य बढानेवाला धन प्राप्त होता है।

[२४२] हे (इन्दो) सोम ! तू (दिवः पृथिव्या अधि) द्युलोकपर तथा पृथिवीके ऊपर (द्युम्नवर्धनः) हमारा तेज बढानेवाला तथा (वाजानां पतिः) अन्नोंका स्वामी (भव) हो ॥ २ ॥

[२४३] हे (सोम) सोम ! (तुभ्यं वाताः अभिप्रियः) तुम्हारे लिये वायु प्रिय करनेवाले हैं। (तुभ्यं) तुम्हारे लिये (सिन्धवः आभि अर्षन्ति) नदियां चल रही हैं। ये सब (ते महः वर्धन्ति) तेरा महत्व बढाते हैं ॥ ३ ॥

[२४४] हे सोम ! (आप्यायस्व) तू वृद्धिको प्राप्त हो, । (ते वृष्ण्यं) तेरे लिये बल (विश्वतः समेतु) सब स्थाननोंसे प्राप्त हो। (वाजस्य संगथे भव) तू युद्धके समय अन्न देनेवाला हो ॥ ४ ॥

१ आप्यायस्व— सब प्रकारसे उत्तम वृद्धि प्राप्त करो।

२ ते वृष्ण्यं विश्वतः समेतु— तुझे बल चारों तरफसे प्राप्त हो।

३ वाजस्य संगथे भव— युद्धके समय अन्न देनेवाला तू हो।

[२४५] हे (बभ्रो) भूरे रंगके सोम (तुभ्यं) तुम्हारे लिये (गावः) गौवें (घृतं पयः) घी और दूध (अक्षितं दुदुह्रे) विपुल प्रमाणमें देती रहें। तू (वर्षिष्ठे सानवि अधि) उच्च पर्वत पर रहता है ॥ ५ ॥

सोम ऊंचे पर्वतके शिखरपर होता है। उसके सोमरसमें गौवें अपना दूध तथा घी मिलानेके लिये देती हैं। यह मिलाकर सोमका रस पीया जाता है।

[२४६] (भुवनस्य पते) भूतमात्रके स्वामिन् हे (इन्दो) हे सोम ! (वयं) हम सब (स्वायुधस्य ते) उत्तम शस्त्रसे युक्त तेरे (सखित्वं उश्मसि) मित्रताको प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं ॥ ६ ॥

१ वयं स्वायुधस्य सखित्वं उश्मसि— हम उत्तम शस्त्र धारण करनेवाले वीरके साथ मित्रता करनेकी इच्छा करते हैं। मित्रता उनके साथ करनी चाहिये कि जिसके पास उत्तम शस्त्र रहते हैं अर्थात् जो वीर उत्तम शस्त्रोंको अपने पास रखता है।

×

[३२]

(ऋषिः- श्यावाश्व आत्रेयः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

२४७ प्र सोमा॑सो मद॒च्युत॒: श्रव॑से नो म॒घोन॑: । सु॒ता वि॒दथे॑ अक्रमुः ॥ १ ॥
२४८ आदीं॑ त्रि॒तस्य॒ योष॑णो॒ हरिं॑ हिन्व॒न्त्यद्रि॑भिः । इन्दु॒मिन्द्रा॑य पी॒तये॑ ॥ २ ॥
२४९ आदीं॑ हं॒सो यथा॑ ग॒णं विश्व॑स्यावीवशन्म॒तिम् । अत्यो॒ न गोभि॑रज्यते ॥ ३ ॥
२५० उ॒भे सो॑मावच॒ाक॑शन् मृ॒गो न त॒क्तो अ॑र्षसि । सीद॑न्नृ॒तस्य॒ योनि॒मा ॥ ४ ॥
२५१ अ॒भि गावो॑ अनूषत॒ योषा॑ जा॒रमि॑व प्रि॒यम् । अग॑न्ना॒जिं यथा॑ हि॒तम् ॥ ५ ॥

[३२]

अर्थ— [२४७] (सोमासः) सोमरस (मदच्युतः) आनंद देनेवाले (सुताः) रस निकाले (विदथे) यज्ञमें (मघोनः अवसे) यज्ञ कर्ताके रक्षणके लिये (अक्रमुः) निकाले जाते हैं ॥ १ ॥

यज्ञमें यज्ञ कर्ताके संरक्षण करनेके लिये सोमसे रस निकालते हैं । उनसे यज्ञ किया जाता है । इससे यज्ञ कर्ताका संरक्षण होता है । यज्ञ सब यज्ञकर्ताओंका संरक्षण करता है । " ऋतु संधिषु वै व्याधिर्जायते । ऋतु संधिषु य क्रियन्ते । " ऋतुओंकी संधिकालमें रोग होते हैं, अतः ऋतुओंके संधिकालमें यज्ञ किये जाते हैं । इन यज्ञोंसे रोग दूर होते हैं और मानवोंको आरोग्य प्राप्त होता है ।

[२४८] (आत् ईं) और इस (हरिं) हरे रंगके सोमको (अद्रिभिः हिन्वन्ति) पत्थरोंसे कूटते हैं । (त्रितस्य योषणा) त्रित ऋषिकी अंगुलियां (इन्द्राय पीतये इन्दुं) इन्द्रके पीनेके लिये सोमसे रस निकालती है ॥ २ ॥

त्रित ऋषि यज्ञ करता है । उस यज्ञमें उस ऋषिकी अंगुलियां सोमको पकडती हैं और उस सोमको दबाकर उसमेंसे रस निकालती है ।

[२४९] (आत् ईं) और यह सोम (हंसो यथा गणं) हंस जिस प्रकार समुदायमें जाता है, और (विश्वस्य मतिं) सबकी बुद्धि (अवीवशन्) अपने वशमें करता है उस प्रकार, तथा (अत्यः न गोभिः अज्यते) जैसा घोडा उदकोंसे धोया जाता है वैसा यहभी उदकोंसे धोया जाता है और गौके दूधसे मिलाया जाता है ॥ ३ ॥

सोम प्रथम पानीसे धोया जाता है और पश्चात् उसमें गौका दूध मिलाया जाता है ।

[२५०] हे सोम ! (उभे अवचाकशन्) दोनों द्यु और पृथिवीको तू देखता है । (मृगः न) हरिणके समान (तक्तः अर्षति) दूधके साथ यज्ञमें जाता है । (ऋतस्य) यज्ञके स्थानपर (आसीदन्) जाकर बैठता है ॥ ४ ॥

[२५१] हे सोम ! तेरी (गावः) मंत्र (अभि अनूषत) स्तुति करते हैं । (योषाः प्रियं जारं इव) जिस प्रकार स्त्री अपने प्रियकी स्तुति करती है । (यथा) जिस प्रकार (हितं आजिं अगन्) वीर हितकारक युद्धमें जाते हैं और इस वीरकी प्रशंसा होती है ॥ ५ ॥

१ गावः (सोमं) अभि अनूषत— मंत्र सोमकी स्तुति करते हैं ।

२ योषा प्रियं जारं इव— स्त्री अपने प्रिय पतिकी स्तुति करती है ।

जारः— (जॄवयो हानौ)- स्त्रीकी वयकी न्यूनता करनेवाला । स्त्रीका उपभोग करनेवाला ।

३ वीरः हितं आजिं अगम्— वीर हितकारक युद्धमें जाता है, उसकी स्तुति होती है ।

२५२ अस्मे धेहि द्युमद्यशो मघवंद्भ्यश्च मह्यं च । सनिं मेधामुत श्रवः ॥ ६ ॥

[३३]

(ऋषिः- त्रित आप्त्यः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

२५३ प्र सोमासो विपश्चितो ऽपां न यन्त्यूर्मयः । वनानि महिषा इव ॥ १ ॥
२५४ अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया । वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥ २ ॥
२५५ सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमा अर्षन्ति विष्णवे ॥ ३ ॥
२५६ तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः । हरिरेति कनिक्रदत् ॥ ४ ॥
२५७ अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीर्ऋतस्य मातरः । मर्मृज्यन्ते दिवः शिशुम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [२५२] हे सोम ! (अस्मे) हमारे लिये (मघवद्भ्यः च मह्यं च) धनसे यज्ञ करनेवालोंके लिये तथा मेरे लिये (द्युमत् यशः धेहि) तेज बढानेवाला अन्न दो । (सनिं) धन, (मेधां) बुद्धि और (उत श्रवः) अन्न दो ॥ ६ ॥

हमारे लिये तेज बढानेवाला अन्न दो तथा यज्ञ करनेवालोंके लिये धन, बुद्धि और अन्न दो ।

[३३]

[२५३] (विपश्चितः) ज्ञान बढानेवाले (सोमासः) सोमरस (अपां ऊर्मयः न) पानीकी लाटोंकी तरह (वनानि महिषा इव) भैसे जिस तरह वनोंमें जाते हैं उस तरह (प्रयन्ति) जाते हैं ॥ १ ॥

ज्ञान बढानेवाले सोमरस पात्रमें वैसे जाते है, जैसी पानीकी लाटें जाती हैं, अथवा भैसे वनमें जाते हैं ।

[२५४] (बभ्रवः शुक्राः) भूरे रंगके शुद्ध सोमरस (ऋतस्यः धारया) अमृत रसकी धारासे (द्रोणानि अभि) पात्रोंमें (गोमन्तं वाजं) गोदुग्ध युक्त अन्नके पास (अक्षरन्) जाते हैं ॥ २ ॥

भूरे रंगके सोमरस यज्ञके अन्दर धारासे पात्रोंमें गौका दूध रखा रहता है, उसमें मिलानेके लिये जाते हैं । गौके दूधके साथ सोमके रस पात्रोंमें मिलाये जाते हैं ।

[२५५] (सुताः सोमाः) रस निकाले हुए सोमरस (इन्द्राय) इन्द्रके लिये (वायवे) वायुके लिये (वरुणाय) वरुणके लिये (विष्णवे) विष्णुके लिये (मरुद्भ्यः) मरुतोंके लिये (अर्षन्ति) दिये जाते हैं ॥ ३ ॥

सोमका रस निकालकर वह रस इन्द्र, वायु, वरुण, विष्णु तथा मरुतोंके लिये दिया जाता है ।

[२५६] (तिस्रः वाचः उदीरते) ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद ये तीन वेदोंके मंत्र बोले जाते हैं (धेनवः गावः मिनन्ति) दूध देनेवाली गौवें शब्द करती हैं । (हरिः कनिक्रदत् एति) हरे रंगका सोमरस शब्द करता हुआ पात्रमें जाता है ॥ ४ ॥

यज्ञमें ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदके मंत्र बोले जाते हैं, गौवें अपना दूध यज्ञमें अर्पण करनेके लिये शब्द करती हैं, उस समय सोमरस शब्द करता हुआ पात्रमें लिया जाता है ।

यह यज्ञ स्थानका वर्णन है । यज्ञके स्थानमें ऐसा होता ही है ।

[२५७] (ब्रह्मीः) ब्राह्मणोंसे प्रेरित हुई (यह्वीः) बडी (ऋतस्य मातरः) यज्ञको निर्माण करनेवाली (अभि अनूषत) ऋचाएं बोली जाती हैं । (दिवः शिशुं) द्युलोकके पुत्र सोमको (मर्मृज्यन्ते) शुद्ध किया जाता है ॥ ५ ॥

ब्राह्मण वेद मंत्र बोलते हैं और द्युलोकमें उत्पन्न हुए इस सोमके रसको शुद्ध करते हैं ।

२५८ रा॒यः स॑मु॒द्रांश्च॒तुरो॒ ऽस्मभ्यं॑ सोम वि॒श्वतः॑ । आ प॑वस्व सह॒स्रिणः॑ ॥ ६ ॥

[३४]

(ऋषिः- त्रित आप्त्यः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

२५९ प्र सु॑वा॒नो धार॑या॒ तने॒न्दुर्हि॑न्वा॒नो अ॑र्षति । रु॒जद्दृ॒ळ्हा व्योज॑सा ॥ १ ॥

२६० सु॒त इन्द्रा॑य वा॒यवे॒ वरु॑णाय म॒रुद्भ्यः॑ । सोमो॑ अर्षति॒ विष्ण॑वे ॥ २ ॥

२६१ वृषा॑णं॒ वृष॑भि॒र्यतं॑ सु॒न्वन्ति॒ सोम॒मद्रि॑भिः । दु॒हन्ति॒ शक्म॑ना॒ पयः॑ ॥ ३ ॥

२६२ भुव॑त्त्रि॒तस्य॒ मर्ज्यो॒ भुव॒दिन्द्रा॑य मत्स॒रः । सं रू॒पैर॑ज्यते॒ हरिः॑ ॥ ४ ॥

२६३ अ॒भीमृ॒तस्य॑ वि॒ष्टपं॑ दु॒हते॒ पृश्नि॑मातरः । चारु॑ प्रि॒यत॑मं ह॒विः ॥ ५ ॥

अर्थ— [२५८] हे (सोम) सोम ! (अस्मभ्यं) हमारे लिये (विश्वतः) सब प्रकारसे (रायः चतुरः समुद्रान्) धनके चारों समुद्र अर्थात् पर्याप्त धन (सहस्रिणः) सहस्रों प्रकारोंसे (अस्मभ्यं आ पवस्व) हमारे लिये देओ ॥ ६ ॥

हमारे लिये पर्याप्त प्रमाणमें धन प्राप्त हो ऐसा करो ।

[३४]

[२५९] (इन्दुः) सोम (सुवानः) रस निकाला हुआ (हिन्वानः) ऋत्विजोंके द्वारा प्रेरित होकर (तना) रस पात्रमें (धारया अर्षति) धारासे गिरता है । (दृळ्हा) सुदृढ शत्रुके किलोंको (ओजसा विरुजत्) अपने बलसे तोडता है ॥ १ ॥

१ दृळ्हा ओजसा विरुजत्— शत्रुके सुदृढ किलोंको तोडता है ।
२ धारया तना अर्षति— धारासे सोमरस पात्रमें जाता है ।

[२६०] (सुतः सोमः) रस निकाला हुआ सोम इन्द्र, वरुण, वायु, मरुत्, विष्णु इन देवोंको देनेके लिये पात्रमें जाता है ॥ २ ॥

[२६१] (वृषाणं यतं सोमं) बलवर्धक नियंत्रित सोमको (वृषभिः अद्रिभिः) बलवान पत्थरोंसे (सुन्वन्ति) कूटकर रस निकालते हैं । (शक्मना) शक्तिसे (पयः दुहन्ति) दूध दुहते हैं ॥ ३ ॥

सोमवल्लीसे पत्थरोंसे कूटकर रस निकालते हैं । यह शक्तिसे दोहन करना है ।

[२६२] (त्रितस्य) त्रित ऋषिके द्वारा किया (मत्सरः) आनंद दायक सोमरस (मर्ज्यः भुवत्) शुद्ध हुआ, वह (इन्द्राय) इन्द्रको देनेके लिये तैयार हुआ (रूपैः) गोदूध आदिके रूपसे (हरिः) हरे रंगका यह सोमरस (सं अज्यते) मिश्रित किया जाता है ॥ ४ ॥

१ मत्सरः मर्ज्यः भुवत्— आनंद देनेवाला सोमरस शुद्ध किया जाता है ।
२ इन्द्राय रूपैः हरिः सं अज्यते— इन्द्रको देनेके लिये वह गोदुग्ध आदिमें हरे रंगका सोमरस मिलाया जाता है ।

[२६३] (ईं) इस सोमका (ऋतस्य विष्टपं) यज्ञके स्थानमें (पृश्निमातरः) मरुत (अभि दुहते) रस निकालते हैं । यह सोमरस (प्रियतमं चारु हविः) अत्यंत प्रिय और सुन्दर हवनीय है ॥ ५ ॥

यज्ञके स्थानमें मरुत इस सोमका रस निकालते हैं । यह सोमरस देवोंके लिये अत्यंत प्रिय और सुन्दर हवनीय पदार्थ है ।

२६४ समेनमह्रुता इमा गिरो अर्षन्ति सस्रुतः । धेनूर्वाश्रो अवीवशत् ॥ ६ ॥

[३५]

(ऋषिः- प्रभूवसुराङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

२६५ आ नः पवस्व धारया पवमान रयिं पृथुम् । यया ज्योतिर्विदासि नः ॥ १ ॥
२६६ इन्दो समुद्रमीङ्खय पवस्व विश्वमेजय । रायो धर्ता न ओजसा ॥ २ ॥
२६७ त्वया वीरेण वीरवो ऽभि ष्याम पृतन्यतः । क्षरा णो अभि वार्यम् ॥ ३ ॥
२६८ प्र वाजमिन्दुरिष्यति सिषासन् वाजसा ऋषिः । व्रता विदान आयुधा ॥ ४ ॥

अर्थ— [२६४] (अह्रुताः इमा गिरः) योग्य स्तुतिके ये हमारे स्तोत्र (एनं सं अर्षन्ति) इस सोमके पास जाते हैं। वे स्तोत्र (सस्रुतः) उसके समीप जाकर (वाश्रः धेनूः) वत्सकी इच्छा करनेवाली गौके समान सोमरसकी इच्छा करते हैं ॥ ६ ॥

[३५]

[२६५] हे (पवमान) सोम ! तू (धारया नः पवस्व) धारासे हमारे लिये रस दे। (रयिं) धन (पृथू) बहुत दे। (यया) जिस धारासे (ज्योतिः नः विदासि) तेज हमें तू देता है ॥ १ ॥

हे सोम ! तू धारासे पात्रमें रस दे। बहुत धन दे और पर्याप्त तेज हमें दे ॥

[२६६] हे (इन्दो) सोम ! (समुद्रं इङ्खय) जलके लिये प्रेरित कर; हे (विश्वमेजय) सब शत्रुओंको कंपायमान करनेवाले सोम (ओजसा) अपने बलसे (रायः धर्ता नः) हमारे लिये धनका धारण करनेवाला हो और (पवस्व) रस निकालो ॥ २ ॥

हे सोम ! जलको अपनेमें मिलानेके लिये प्रेरित करो। हे शत्रुनाशक सोम ! तू अपने बलसे हमारे लिये धन दो और अपनेमेंसे रस निकालो।

[२६७] हे (वीरवः) वीरतायुक्त सोम ! (वीरेण त्वया) वीर रूपी तेरे सहाय्यसे (पृतन्यतः अभिष्याम) सेनाकेसाथ हमला करनेवाले शत्रुओंका हम मुकाबला करेंगे। (नः) हमारे लिये (वार्यं अभि क्षर) वीरतायुक्त धन देओ ॥ ३ ॥

१ त्वया वीरेण पृतन्यतः अभिष्याम— तुझ जैसे वीरके साथ रहकर हम सेनाके साथ हमला करनेवाले शत्रुका मुकाबला करेंगे।

२ नः वार्यं अभिक्षर— हमें वीरतासे युक्त धन दो।

[२६८] (इन्दुः) सोम (वाजं प्र इष्यति) अन्न देता है। यह सोम (ऋषिः) द्रष्टा है और (वाजसा सिषासन्) अन्नके साथ रहता है। यह सोम (व्रता) व्रतोंको (विधानः) जानता है और (आयुधा) आयुध साथ रखता है ॥ ४ ॥

१ इन्दुः वाजं प्र इष्यति — सोम अन्न देता है।

२ इन्दुः ऋषिः— यह सोम ऋषि अर्थात् ज्ञान देनेवाला है।

३ इन्दुः वाजसा सिषासन्— यह सोम अन्नके साथ रहता है।

४ व्रता विधानः— यह सोम व्रतों अर्थात् नियमोंको जानता है।

५ इन्दुः आयुधा— यह सोम आयुधोंको पास रखता है। यह सशस्त्र रहता है।

२६९ तं गीर्भिर्वाचमीङ्खयं पुनानं वासयामसि । सोमं जनस्य गोपतिम् ॥ ५ ॥
२७० विश्वो यस्य व्रते जनो दाधार धर्मणस्पतेः । पुनानस्य प्रभूवसोः ॥ ६ ॥

[३६]

(ऋषिः- प्रभूवसुराङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

२७१ असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वोः सुतः । कार्ष्मन् वाजी न्यक्रमीत् ॥ १ ॥
२७२ स वह्निः सोम जागृविः पवस्व देववीरति । अभि कोशं मधुश्चुतम् ॥ २ ॥
२७३ स नो ज्योतींषि पूर्व्य पवमान वि रोचय । क्रत्वे दक्षाय नो हिनु ॥ ३ ॥
२७४ शुम्भमान ऋतायुभि-र्मृज्यमानो गभस्त्योः । पवते वारे अव्यये ॥ ४ ॥
२७५ स विश्वा दाशुषे वसु सोमो दिव्यानि पार्थिवा । पवतामान्तरिक्ष्या ॥ ५ ॥

---

[२६९] (तं गीर्भिः) उस सोमकी स्तुति स्तोत्रोंसे मैं करता हूं । (वाचं ईंखयं पुनानं) स्तुतिकी प्रेरणा देनेवाले और शुद्धता करनेवाले उस सोमको (वासयामसि) हम यज्ञस्थानमें रखते हैं । (जनस्य गोपतिं सोमं) लोकोंका तथा गौओंका पालन करनेवाले सोमको हम रखते हैं ॥ ५ ॥

१ जनस्य गोपतिं सोमं वासयामसि— जनताकी और गौओंकी सुरक्षा करनेवाले इस सोमको हम यज्ञमें सुरक्षित रखते हैं ।

[२७०] (धर्मणः पतेः) धर्मके पालन करनेवाले (पुनानस्य) शुद्ध किये जानेवाले (प्रभूवसोः) बहुत धनवाले (यस्य व्रते) जिस सोमके व्रतमें (विश्वाः जनाः) सब लोक अपने मनको (दाधार) धारण करते हैं ॥ ६ ॥

सोम यज्ञमें सबके मन लगे रहते हैं । क्योंकि यह सोम धर्मका पालन करता है, शुद्ध होनेवाला यह सोम पर्याप्त धन रखता है जिससे यज्ञ होता है ।

[३६]

[२७१] (यथा कार्ष्मन् रथ्यः वाजी न्यक्रमीत्) जैसा युद्धमें रथको घोडा जाता है वैसा (चम्वोः सुतः सोमः) पात्रमें निकाला सोमरस (पवित्रे ससर्जि) छाननेके पात्रमें जाता है ॥ १ ॥

[२७२] हे (सोम) सोम ! (सः वह्निः) वह वहन करके जानेवाला (जागृविः) जागनेवाला (देववीः) देवोंके प्रति जानेकी इच्छा करनेवाला तू (मधुश्चुतं कोशं) मधुर रस रखनेके पात्रमेंसे (अभि पवस्व) छाना जा ॥ २ ॥

[२७३] हे (पूर्व्य) पुराकालसे चले आये (पवमान) सोम ! (नः ज्योतींषि) हमारे तेजस्वी स्थान (वि रोचय) विशेष प्रकाशित कर । तथा (क्रत्वे) यज्ञके लिये तथा (दक्षाय) बल प्राप्त करनेके लिये (नः हिनु) हमें प्रेरित कर ॥ ३ ॥

१ नः ज्योतींषि विरोचय— हमारे तेज फैलाओ ।

२ क्रत्वे दक्षाय नः हिनु— विशेष कर्म तथा विशेष बलके कार्य करनेके लिये हमें प्रेरित कर ।

[२७४] (ऋतायुभिः शुम्भमानः) याजकों द्वारा सुशोभित हुआ (गभस्त्योः मृज्यमानः) हाथोंसे शुद्ध होनेवाला सोम (अव्यये वारे) भेडीके बालोंसे बने छाननेके अंदर (पवते) छाना जाता है ॥ ४ ॥

[२७५] (सः सोमः) वह सोम (दाशुषे) दाताके लिये (दिव्यानि) द्युलोकके (आन्तरिक्ष्या) अन्तरिक्षके और (पार्थिवा) पृथिवीके (विश्वा वसु) सब धन (पवतां) देवे ॥ ५ ॥

२७६ आ दिवस्पृष्ठमश्वयुर्गव्ययुः सोम रोहसि । वीरयुः शवसस्पते ॥ ६ ॥

[३७]

(ऋषिः- रहूगण आङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

२७७ स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति । विघ्नन् रक्षांसि देवयुः ॥ १ ॥
२७८ स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्षति धर्णसिः । अभि योनिं कनिक्रदत् ॥ २ ॥
२७९ स वाजी रोचना दिवः पवमानो वि धावति । रक्षोहा वारमव्ययम् ॥ ३ ॥
२८० स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत् । जामिभिः सूर्यं सह ॥ ४ ॥
२८१ स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवोविददाभ्यः । सोमो वाजमिवासरत् ॥ ५ ॥

अर्थ—[२७६] हे (शवसः पते) अन्नके स्वामी! (सोम) सोम! तू (अश्वयुः) घोडेकी इच्छा करनेवाला, (गव्ययुः) गौओंकी इच्छा करनेवाला, (वीरयुः) वीर पुत्रोंकी इच्छा करनेवाला (दिवः पृष्ठं आ रोहसि) द्युलोकके स्थान पर चढता रहता है ॥ ६ ॥

१ अश्वयुः गव्ययुः वीरयुः दिवः पृष्ठं आरोहसि— घोडोंकी इच्छा करनेवाला, गौओंकी इच्छा करनेवाला तथा वीर पुत्रोंकी इच्छा करनेवाला द्युलोकके ऊंचे भाग पर चढा हुआ होता है ।

[३७]

[२७७] (सः सोमः) वह सोमरस (पीतये सुतः) देवोंको पीनेके लिये देनेके लिये निकाला रस (वृषा) बलवान होकर (पवित्रे) छाननीमें (अर्षति) जाता है, (रक्षांसि निघ्नन्) राक्षसोंका नाश करता हुआ (देवयुः) देवोंको प्राप्त करनेकी इच्छा करता है ॥ १ ॥

[२७८] (सः विचक्षणः) वह सबको देखनेवाला (हरिः) हरे रंगका (धर्णसिः) सब यज्ञका धारण करनेवाला (पवित्रे) छाननीमें (कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ (योनिं) अपने स्थानमें (अभि अर्षति) जाता है ॥ २ ॥

सोमका रस छाना जानेके समय शब्द करता हुआ छाननीमेंसे नीचे रखे पात्रमें उतरता है ।

[२७९] (सः वाजी) वह गमनशील (दिवः रोचना) स्वर्गको प्रकाशित करनेवाला (पवमानः) शुद्ध किया जानेवाला सोमरस (रक्षो- हा) राक्षसोंका नाश करनेवाला (अव्ययं वारं) भेडीके बालोंसे बनायी छाननीमेंसे (विधावति) दौडता है, छाननीमेंसे छाना जाकर नीचे के पात्रमें उतरता है ॥ ३ ॥

[२८०] (सः) वह सोम (त्रितस्य सानवि अधि) त्रित महर्षिके यज्ञमें (पवमानः) रस निकाला जाने पर (जामिभिः सह) संबंधी जनोंके साथ (सूर्यं अरोचयत्) सूर्यको प्रकाशित करता रहा ॥ ४ ॥

सोमका रस यज्ञस्थानमें निकाला जानेपर सूर्य प्रकाशने लगा । सूर्योदयके पूर्व ही सोमका रस निकालकर यज्ञ-स्थानमें रखा था । पश्चात् सूर्यका उदय हुआ ।

[२८१] (स वृत्रहा वृषा) वह सोम वृत्रासुरका वध करता है और बलवान है (सुतः) रस निकाला हुआ वह (सोमः) सोम (वरिवोवित्) बहुत धनयुक्त (अदाभ्यः) न दबनेवाला (वाजं इव असरत्) संग्राममें वीरके जानेके समान आगे बढता है ॥ ५ ॥

वह बलवान सोम वीरपुरुष संग्राममें जाता है उस वीरके समान आगे बढता है ।

२८२ स देवः कविनेषितो३ ऽभि द्रोणानि धावति । इन्दुरिन्द्राय मंहना ॥ ६ ॥

[३८]

(ऋषिः– रहूगण आङ्गिरसः । देवताः– पवमानः सोमः । छन्दः– गायत्री ।)

२८३ एष उ स्य वृषा रथो ऽव्यो वारेभिरर्षति । गच्छन् वाजं सहस्रिणम् ॥ १ ॥
२८४ एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ २ ॥
२८५ एतं त्यं हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः । याभिर्मदाय शुम्भते ॥ ३ ॥
२८६ एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति । गच्छञ्जारो न योषितम् ॥ ४ ॥

अर्थ— [२८२] (सः) वह (देवः) तेजस्वी (इन्दुः) सोम (कविना इषितः) ज्ञानीके द्वारा प्रेरित हुआ (द्रोणानि अभि धावति) पात्रोंकी ओर दौडता है। (इन्द्राय मंहना इन्दुः) इन्द्रके लिये महत्वपूर्ण वह सोम होता है ॥ ६ ॥

सोम इन्द्रके लिये अत्यंत प्रिय है। ऐसा यह सोम रस निकालने पर इन्द्रको देनेके लिये पात्रोंमें रखा जाता है और यज्ञमें इन्द्र देवको अर्पण किया जाता है।

[३८]

[२८३] (स्यः एष) वह यह रस निकाला सोम (वृषा रथः) बलवान् रथके समान जानेवाला (अव्यः वारेभिः अर्षति) मेंढीके बालोंकी छाननीमेंसे जाता है। (सहस्रिणं वाजं गच्छन्) हजारों मनुष्योंके लिये अन्न देनेके लिये जाता है ॥ १ ॥

यह सोमरस बलवान् रथके समान सामर्थ्यवान् होकर मेंढीके बालोंकी छाननीमेंसे गुजरता है और हजारोंको अन्न देता है। सोम यज्ञमें हजारों मनुष्योंको अन्न प्राप्त होता है।

[२८४] (एतं हरिं इन्दुं) इस हरे रंगके सोमको (त्रितस्य योषणः) त्रित ऋषिकी अंगुलियां (इन्द्राय पीतये) इन्द्रके पीनेके लिये (अद्रिभिः हिन्वन्ति) पत्थरोंसे कूटकर रस निकालती हैं ॥ २ ॥

त्रित ऋषि सोमको अपने हाथोंमें पकडता है, पत्थरोंसे उस सोमको कूटता है और इन्द्रको पीनेको देनेके लिये उस सोमसे रस निकालता है।

[२८५] (एतं त्यं) इस सोमको अध्वर्युके (दश हरितः) दश अंगुलियां (अपस्युवः) यज्ञ करनेकी इच्छा करनेवाली (मर्मृज्यन्ते) शुद्ध करती हैं। (याभिः) जिन अंगुलियोंसे (मदाय शुम्भते) इन्द्रका आनन्द उत्तेजित होता है ॥ ३ ॥

अध्वर्युकी दोनों हाथोंकी दस अंगुलियां यज्ञ करनेके लिये सोमको पकडती हैं और इन्द्रका आनंद बढानेके लिये उसको दबाकर उससे रस निकालती हैं। यह सोमका रस इन्द्रको दिया जाता है।

[२८६] (स्यः एषः) वह यह सोम (मानुषीषु विक्षु) मानवी प्रजाजनोंमें (श्येनः न) श्येन पक्षीके समान (आ सीदति) आकर बैठता है, (योषितं जारः गच्छन् न) स्त्रीके समीप उस स्त्रीका पति जैसा जाता है ॥ ४ ॥

स्त्रीके पास जैसा पति जाता है, उस प्रकार यह सोम मनुष्योंके पास यज्ञ स्थानमें आकर बैठता है। " जार " का अर्थ वयोहानि करनेवाला। स्त्रीका भोग करनेवाला स्त्रीकी वयोहानि करता है।

२८७ एष स्य मद्यो रसोऽव॑ चष्टे दिवः शिशुः । य इन्दुर्वारमाविंशत् ॥ ५ ॥
२८८ एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः । क्रन्दन् योनिमभि प्रियम् ॥ ६ ॥

[३९]

(ऋषिः- बृहन्मतिराङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

२८९ आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना । यत्र देवा इति ब्रवन् ॥ १ ॥
२९० परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः । वृष्टिं दिवः परि स्रव ॥ २ ॥
२९१ सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधान ओजसा । विचक्षाणो विरोचयन् ॥ ३ ॥
२९२ अयं स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ । सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत् ॥ ४ ॥

अर्थ— [२८७] (एषः स्यः) वह यह (मद्यः रसः) आनंददायक सोमरस (अव चष्टे) सर्वत्र देखता है। यह सोमरस (दिवः शिशुः) द्युलोकमें उत्पन्न हुआ है, (यः इन्दुः) जो तेजस्वी सोमरस (वारं आविशत्) छाननीमेंसे छाना जाता है ॥ ५ ॥

सोमरस पीनेवालेको आनंद देता है। वह तेजस्वी होनेसे चमकता रहता है। यह सोम उच्च स्थानमें उत्पन्न होता है, इस कारण वह द्युलोकका पुत्र कहा जाता है। यह चमकता हुआ छाननीमेंसे छाना जाता है।

[२८८] (एषः स्यः) यह वह सोम (पीतये सुतः) पीनेके लिये निकाला रस (हरिः) हरे रंगका है। यह (धर्णसिः) सब यज्ञका धारण करनेवाला है। यह रस (प्रियं योनिं) प्रिय यज्ञस्थानमें (अभि क्रन्दन्) शब्द करता हुआ (अभि अर्षति) पात्रमें छानकर उतरता है ॥ ६ ॥

[३९]

[२८९] हे (बृहन्मते) बडी बुद्धिवाले सोम ! (प्रियेण धाम्ना) अपने प्रिय शरीरसे (आशु) अति शीघ्र (परि अर्ष) छाना जा। (यत्र देवा) जहां देव हैं उस स्थानमें जाता हूं (इति ब्रवन्) ऐसा कहकर जा ॥ १ ॥

जहां देव रहते हैं उस यज्ञ स्थानमें जाता हूं ऐसा कहो और हे सोम ! तू छाना जाकर यज्ञमें जाकर रहो।

[२९०] (अनिष्कृतं परिष्कृण्वन्) असंस्कृतको संस्कृत करके (जनाय) यज्ञ करनेवाले यजमानके लिये (इषः यातयन्) अन्न देते हुए (दिवः वृष्टिं परिस्रव) द्युलोकसे वृष्टि गिरा दो ॥ २ ॥

१ अनिष्कृतं परिष्कुर्वन्— असंस्कृतको संस्कृत बनाओ।

२ जनाय इषः यातयन्— लोगोंके लिये भरपूर अन्न दो।

३ दिवः वृष्टिं परिस्रव— द्युलोकसे वृष्टि करो, जिससे पर्याप्त प्रमाणमें अन्न उत्पन्न हो सकेगा ऐसा करो।

[२९१] (सुतः) रस निकाला सोम (पवित्रे) छाननीमें (आ एति) आता है। (ओजसा त्विषिं दधानः) अपने बलसे तेजको धारण करके (विचक्षाणः) सब देखता हुआ (विरोचयन्) सबको तेजस्वी करता है ॥ ३ ॥

सोमका रस निकालने पर वह छाननीमें आता है और सबको देखकर सबको तेजस्वी बनाता है। सोमके तेजसे सब अन्य यज्ञके पदार्थ चमकने लगते हैं।

[२९२] (अयं यः सः) यह वह सोम (पवित्रे आ) छाननीमें आता है, और (रघुयामा) शीघ्रतासे (दिवस्परि) द्युलोकके ऊपर देवोंके पास जाता है। (सिन्धोः ऊर्मा व्यक्षरत्) जलके स्थानमें उतरता है ॥ ४ ॥

सोमरस छाननीमेंसे छाना जाता है और शीघ्रही देवोंको दिया जाता है, उस समय वह रस पानीमें मिलाया जाता है। पानीमें मिलाकर सोमरस पिया जाता है।

×

२९३ आविवासन् परावतो अथो अर्वावतः सुतः । इन्द्राय सिच्यते मधु ॥ ५ ॥
२९४ समीचीना अनूषत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । योनावृतस्य सीदत ॥ ६ ॥

[४०]

(ऋषिः- बृहन्मतिराङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

२९५ पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः । शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥ १ ॥
२९६ आ योनिमरुणो रुहद्गमदिन्द्रं वृषा सुतः । ध्रुवे सदसि सीदति ॥ २ ॥
२९७ नू नो रयिं महामिन्दो ऽस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणम् ॥ ३ ॥
२९८ विश्वा सोम पवमान द्युम्नानीन्दवा भर । विदाः सहस्रिणीरिषः ॥ ४ ॥

अर्थ— [२९३] (सुतः) यह सोमरस (परावतः अथः) दूर तथा (अर्वावतः) पास रहनेवाले देवोंके लिये (आविवासन्) दिया जाता है । (इन्द्राय मधु सिच्यते) इन्द्रके लिये यह मधुर रस दिया जाता है ॥ ५ ॥

देव जो दूर रहते हैं तथा जो पास रहते हैं, उन सब देवोंके लिये यह सोमरस दिया जाता है । इन्द्रके लिये तो यह रस विशेष करके दिया जाता है ।

[२९४] (समीचीनाः अनूषत) मिलकर ऋत्विज लोग स्तुति करते हैं । (हरिं अद्रिभिः हिन्वन्ति) हरे रंगके सोमको पत्थरोंसे कूटते हैं । उस समय (ऋतस्य योनौ सीदत) यज्ञके स्थानमें बैठो ॥ ६ ॥

१ समीचीनाः अनुषत— सब ऋत्विज यज्ञ स्थानमें बैठें ।

२ हरिं अद्रिभिः हिन्वन्ति— हरे सोमको पत्थरोंसे कूटते हैं ।

३ ऋतस्य योनौ सीदत— यज्ञके स्थानमें बैठो । सब लोक यज्ञके स्थानमें बैठें ।

[३२]

[२९५] (पुनानः) शुद्ध किया जानेवाला सोमरस (विचर्षणिः) सबको देखता है (विश्वाः मृधः) सब शत्रुओंको (अभि अक्रमीत्) दूर करता है और (विप्रं) ज्ञानीको (धीतिभिः) स्तुतियोंसे (शुंभन्ति) सुशोभित करते हैं ॥ १ ॥

१ पुनानः विचर्षणिः विश्वाः मृधः अभि अक्रमीत्— शुद्ध किया जानेवाला यह ज्ञानी सोम सब शत्रुओंको दूर करता है ।

२ विप्रं धीतिभिः शुंभन्ति— ज्ञानीको यह सोम धारण शक्तिसे सुशोभित करता है ।

[२९६] यह (अरुणः) अरुण वर्णवाला सोम (योनिं आ रुहत्) अपने स्थानमें रहता है । वहांसे (इन्द्रं गमत्) इन्द्रके पास जाता है । यह (वृषा सुतः) बलसे निकाला सोमरस (ध्रुवे सदसि सीदसि) स्थिर यज्ञ-स्थानमें रहता है ॥ २ ॥

यज्ञके स्थानमें सोमसे रस निकालते हैं और सुस्थिर यज्ञस्थानमें उसे रख देते हैं ।

[२९७] हे (सोम इन्दो) सोमरस ! (नः) हमारे लिये (नु) सत्य रीतिसे (सहस्रिणं रयिं) हजारों प्रकारके धन (विश्वतः) सब ओरसे (आ पवस्व) दे दो ॥ ३ ॥

नः सहस्रिणं रयिं विश्वतः आ पवस्व— हमारे लिये सहस्रों प्रकार के सब ओरसे धन दे दो ।

[२९८] हे (पवमान इन्दो सोम शुद्ध होनेवाले तेजस्वी सोम ! तू हमारे लिये (विश्वा द्युम्नानि) सब प्रकारके धन (आ भर) भरपूर दे दो । तथा (सहस्रिणीः इषः विदाः) सहस्रों प्रकारके अन्न हमें दे दो ॥ ४ ॥

२९९ स नः पुनान आ भर रयिं स्तोत्रे सुवीर्यम् । जरितुर्वर्धया गिरः ॥ ५ ॥
३०० पुनान इन्दवा भर सोम द्विबर्हसं रयिम् । वृषन्निन्दो न उक्थ्यम् ॥ ६ ॥

[४१]

(ऋषिः- मेध्यातिथिः काण्वः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३०१ प्र ये गावो न भूर्णय-स्त्वेषा अयासो अक्रमुः । घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥ १ ॥
३०२ सुवितस्य मनामहे ऽति सेतुं दुराव्यम् । साह्वांसो दस्युमव्रतम् ॥ २ ॥
३०३ शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः । चरन्ति विद्युतो दिवि ॥ ३ ॥
३०४ आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत् । अश्वावद्वाजवत् सुतः ॥ ४ ॥
३०५ स पवस्व विचर्षण आ मही रोदसी पृण । उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ ५ ॥

अर्थ— [२९९] हे सोम ! (सः) वह तू (नः) हम सब (स्तोत्रे पूनानः) स्तोताओंके लिये शुद्ध होता हुआ (सुवीर्यं रयिं) उत्तम पराक्रम करानेवाला धन दो तथा (जरितुः) स्तुति करनेवालेको (गिरः वर्धय) स्तोत्रोंको बढाओ ॥ ५ ॥

[३००] हे (इन्दो सोम) तेजस्वी सोम ! (पुनानः) तू शुद्ध होता हुआ (द्विबर्हसं रयिं) द्यु और पृथिवी इन दोनों स्थानोंमें होनेवाला धन (आ भर) हमें भरपूर दे दो । हे (वृषन् इन्दो) धन देनेवाले सोम ! (नः उक्थ्यम्) हमें प्रशंसनीय धन दो ॥ ६ ॥

भूमि और स्वर्गमें जो धन है वह हमें भरपूर दे दो । हमें प्रशंसनीय धन भरपूर दे दो ।

[४१]

[३०१] (ये) जो सोमरस (गावः न) गायोंके दूधके मिश्रणके समान (भूर्णयः) जल्दीसे (कृष्णां त्वचं अपघ्नन्तः) काली चमडीका नाश करते हुए (त्वेषाः अयासः प्र अक्रमुः) शीघ्रतासे चलकर जाते रहे हैं ॥ १ ॥

सोमरसमें गौका दूध मिश्रित करनेपर उस सोमका रंग बदलता है । हरे रंगका सोम सफेद रंगका होता है ।

[३०२] (अव्रतं दस्युं साह्वांसः) व्रत पालन न करनेवाले शत्रुका पराभव करनेवाले हम (सुवितस्य) उत्तम और (दुराव्यं सेतुं) दुष्टोंका नाश करनेवाले सोमकी स्तुति (मनामहे) करते हैं ॥ २ ॥

१ अव्रत दस्युं साह्वांसः— व्रतका पालन न करनेवाले शत्रुका हम पराभव करते हैं ।

२ सुवितस्य दुराव्यं सेतुं मनामहे— उत्तम आचरण करनेवाले और दुष्टोंका नाश करनेवालेकी हम प्रशंसा करते हैं ।

[३०३] (वृष्टेः स्वनः इव) वृष्टिके शब्दके समान (शुष्मिणः पवमानस्य) बलवान सोमरसका शब्द (शृण्वे) मैं सुनता हूं । (दिवि विद्युतः चरन्ति) द्युलोकमें बिजलीयां चमक रही हैं ॥ ३ ॥

[३०४] हे (इन्दो) सोम ! (सुतः) रस निकाला गया तू (गोमत्) गौवोंवाले (अश्वावत्) घोडोंवाले (वाजवत्) अन्नवाले (महीं इषं) बडे अन्नको हमें (आ पवस्व) दे दो ॥ ४ ॥

सोमयज्ञ करनेपर हमें गौवें, घोडे, अन्न तथा ऐसे अन्नरूप सब पदार्थ पर्याप्त प्रमाणमें प्राप्त होते रहें ।

[३०५] हे (विचर्षणे) विशेष रीतिसे देखनेवाले सोम ! वह तू (पवस्व) रस निकालकर देओ । ये (महि रोदसी आ पृण) ये द्यु और पृथिवी ये दोनों बडे स्थान (आ पृण) पूर्ण भर दो । (रश्मिभिः उषा सूर्यः न) जिस प्रकार उषःकालके पश्चात् सूर्य अपने किरणोंसे विश्वको भर देता है ॥ ५ ॥

सूर्य जैसा उदित होनेके पश्चात् अपने किरणोंसे विश्वको भर देता है, उस प्रकार यह सोम अपने प्रकाशसे यज्ञस्थानको भर दे ।

३०६ परि णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः । सरा रसेव विष्टपम् ॥ ६ ॥

[४२]

(ऋषिः- मेध्यातिथिः काण्वः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३०७ जनयन् रोचना दिवो जनयन्नप्सु सूर्यम् । वसानो गा अपो हरिः ॥ १ ॥
३०८ एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि । धारया पवते सुतः ॥ २ ॥
३०९ वावृधानाय तूर्वये पवन्ते वाजसातये । सोमाः सहस्रपाजसः ॥ ३ ॥
३१० दुहानः प्रत्नमित् पयः पवित्रे परि षिच्यते । क्रन्दन् देवाँ अजीजनत् ॥ ४ ॥
३११ अभि विश्वानि वार्या ऽभि देवाँ ऋतावृधः । सोमः पुनानो अर्षति ॥ ५ ॥
३१२ गोमन्नः सोम वीरव दश्वावद्वाजवत् सुतः । पवस्व बृहतीरिषः ॥ ६ ॥

अर्थ—[३०६] हे (सोम) सोम ! तू (नः) हमको (शर्मयन्त्या धारया) सुखदायी धारासे (विश्वतः परि सर) सब ओरसे प्राप्त हो (रसा इव) जैसी नदी (विष्टपं) भूलोकमें चलती रहती है ॥ ६ ॥

नदी भूलोकमें चलती है और लोकोंको जल देती है, उस तरह सोमरस उत्तम चलनेवाली धारासे यज्ञकर्ता ऋत्विजोंको प्राप्त हो ।

[४२]

[३०७] (दिवः रोचना जनयन्) यह द्युलोकमें नक्षत्रोंको उत्पन्न करके (अप्सु सूर्यं जनयन्) अन्तरिक्षमें सूर्यका निर्माण करके (हरिः) हरे रंगका यह सोम (अपः गाः वसानः) जलमें और गौके दूधमें मिश्रित होकर रहता है ॥ १ ॥

[३०८] (एषः देवः) यह दिव्य सोम (प्रत्नेन मन्मना) पुराने स्तोत्रोंसे स्तुति किया गया और (सुतः) रस निकाला (देवेभ्यः) देवोंके लिये (धारया पवते) धारासे गिरता है ॥ २ ॥

[३०९] (सहस्रपाजसः) सहस्रों प्रकारके बलोंसे युक्त (सोमाः) सोमके पास (वावृधानाय तूर्वये) बढनेवाले शीघ्रतासे (वाजसातये) अन्नका लाभ हो इसलिये (पवन्ते) रस निकाले जाते हैं ॥ ३ ॥

१ सोमाः सहस्रपाजसः— सोमरस सहस्र प्रकारके बलोंसे युक्त होते हैं ।

२ वावृधानाय तूर्वये वाजसातये पवन्ते— बहुत बडे बलका लाभ हो इसलिये सोमरस निकाले जाते हैं । सोमरस पीनेसे बल बढता है, उत्साह बढता है ।

[३१०] (प्रत्नं इत्) पुराणा (वयः दुहानः) रस निकाला सोम (पवित्रे परि षिच्यते) छाननीपरसे छाना जाता है । (क्रन्दन्) शब्द करता हुआ (देवान् अजीजनत्) देवोंको पास लाता है ॥ ४ ॥

[३११] यह (पुनानः सोमः) छाना जानेवाला सोम (विश्वानि वार्या) सब धनोंको (अभि अर्षति) सब प्रकारसे देता है । (ऋतावृधः देवान्) सत्यको धारण करनेवाले देवोंको अपने समीप लाता है ॥ ५ ॥

[३१२] हे सोम ! तू (नः) हमारे लिये (गोमत्) गौओंसे युक्त (वीरवत्) वीर पुत्रोंसे युक्त (अश्वावत्) घोडोंसे युक्त तथा (वाजवत्) बलसे युक्त (बृहतीः इषः पवस्व) बडा अन्न दो ॥ ६ ॥

वीरपुत्र, गौवें, घोडे तथा अन्य बल बढानेवाले पदार्थ उत्तम वीर मानवोंके पास रहने योग्य हैं ।

[४३]

(ऋषिः- मेध्यातिथिः काण्वः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३१३ यो अत्यं इव मृज्यते गोभिर्मदाय हर्यतः । तं गीर्भिर्वासयामसि ॥ १ ॥

३१४ तं नो विश्वा अवस्युवो गिरः शुम्भन्ति पूर्वथा । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ २ ॥

३१५ पुनानो याति हर्यतः सोमो गीर्भिः परिष्कृतः । विप्रस्य मेध्यातिथेः ॥ ३ ॥

३१६ पवमान विदा रयिमस्मभ्यं सोम सुश्रियम् । इन्दो सहस्रवर्चसम् ॥ ४ ॥

३१७ इन्दुरत्यो न वाजसृत् कनिक्रन्ति पवित्र आ । यदक्षारति देवयुः ॥ ५ ॥

३१८ पवस्व वाजसातये विप्रस्य गृणतो वृधे । सोम रास्व सुवीर्यम् ॥ ६ ॥

[४४]

(ऋषिः- अयास्य आङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३१९ प्र ण इन्दो महे तन ऊर्मिं न बिभ्रदर्षसि । अभि देवाँ अयास्यः ॥ १ ॥

---

[४३]

अर्थ— [३१३] (यः) जो सोम (अत्यः इव) घोडेके समान (गोभिः) गौके दूध आदिसे (मृज्यते) शुद्ध करके मिश्रित किया जाता है, जिसने (मदाय) आनंदके लिये (हर्यतः) वह सबको प्रिय होता है, उस सोमकी हम (गोर्भिः तं वासयामसि) स्तुतियोंसे यज्ञ स्थानमें रखते हैं ॥ १ ॥

घोडेको जैसा गौका दूध बल उत्पन्न करनेवाला होता है उसी प्रकार सोमरसमें गौका दूध मिलानेसे वह मिश्रण बल बढानेवाला होता है ।

[३१४] (तं) उस सोमको (नः) हमारा (विश्वाः अवस्युवः गिरः) सब रक्षण करनेवाली स्तुतियां (पूर्वथा) पूर्व स्तुतियोंके समान (शुम्भन्ति) सुशोभित करती हैं । (इन्द्राय पीतये इन्दुं) इन्द्रके पीनेके लिये सोमरसको तैयार करती हैं ॥ २ ॥

[३१५] (पुनानः) पवित्र किया हुआ (सोमः) सोमरस (गीर्भिः परिष्कृतः हर्यतः) स्तुतियोंसे सुसंस्कारयुक्त हुआ (विप्रस्य मेध्यातिथेः) ज्ञानी मेधातिथिके यज्ञके लिये (याति) लिया जाता है ॥ ३ ॥

मेधातिथिके यज्ञमें सोम स्तोत्रोंसे सुसंस्कृत होकर लिया जाता है ।

[३१६] हे (पवमान सोम) रस निकाले (इन्दो) तेजस्वी सोम ! (अस्मभ्यं) हमारे लिये (सहस्रवर्चसं सुश्रियं रयिं) हजारों तेजोंसे युक्त, उत्तम शोभायुक्त धनको (विदा) दे दो ॥ ४ ॥

[३१७] यह (इन्दुः) सोम (वाजसृत्) संग्राममें जानेवाले (अत्यः न) घोडेके समान (पवित्रे आ कनिक्रन्ति) छाननीमें शब्द करता हुआ (देवयुः) देवोंके पास जानेकी इच्छा करता हुआ (यत् अति अक्षाः) जाता है ॥ ५ ॥

[३१८] हे (सोम) सोम ! (गृणतः विप्रस्य वृधे) स्तुति करनेवाले विप्रकी वृद्धि करनेके लिये तथा (वाजसातये) अन्नके लाभार्थ (सुवीर्यं) उत्तम वीर्य (रास्व) प्रदान करो ।

[४४]

[३१९] हे (इन्दो) सोम ! तू (नः) हमारे (महे तने) बडे धनके लिये (प्र अर्षसि) जाता है । (नः) अभी (अयास्यः) अयास्य नामक ऋषि तेरे (ऊर्मिं) लहरियोंको (बिभ्रत्) धारण करके (देवान् अभि) देवोंके समीप पहुंचता है ॥ १ ॥

१ न महे तने प्र अर्षसि— हमें बहुत धन मिले इस लिये सोम यज्ञमें जाता है ।

२ अयास्यः ऊर्मिं बिभ्रत् देवान् अभि अर्षति— अयास्य ऋषि सोमरसको लेकर देवोंके पास उनको सोमरस देनेके लिये जाता है ।

३२० मती जुष्टो धिया हितः सोमो हिन्वे परावति । विप्रस्य धारया कविः ॥ २ ॥
३२१ अयं देवेषु जागृविः सुत एति पवित्र आ । सोमो याति विचर्षणिः ॥ ३ ॥
३२२ स नः पवस्व वाजयुश्चक्राणश्चारुमध्वरम् । बर्हिष्माँ आ विवासति ॥ ४ ॥
३२३ स नो भगाय वायवे विप्रवीरः सदावृधः । सोमो देवेष्वा यमत् ॥ ५ ॥
३२४ स नो अद्य वसुत्तये क्रतुविद्गातुवित्तमः । वाजं जेषि श्रवो बृहत् ॥ ६ ॥

अर्थ— [३२०] (कविः) ज्ञानी (सोमः) सोमरस (विप्रस्य मती जुष्टः) ज्ञानीकी बुद्धिसे स्तुति द्वारा संसेवित होकर (धिया हितः) बुद्धिपूर्वक किये यज्ञमें (परावति धारया हिन्वे) दूरके स्थानमें अपनी रसधारासे जाता है ॥ २ ॥

ज्ञान बढानेवाला सोम है, उसकी स्तुति ज्ञानी ब्राह्मण यज्ञमें करते हैं। और सोमरसकी धारा यज्ञस्थानमें बहती रहती है। उसके समर्पणसे यज्ञ होता रहता है।

[३२१] (जागृविः) जागृत रहनेवाला (अयं सोम) यह सोम (देवेषु सुतः) देवोंको देनेके लिये रस निकालने पर (आ एति) आगे देवोंके पास जाता है। और (विचर्षणिः सोमः) उत्तम देखनेवाला यह सोम (पवित्रे याति) छाननीमें छाना जानेके लिये जाता है ॥ ३ ॥

देवोंको देनेके लिये सोमका रस निकालते हैं, छाननीमेंसे उसे छानते हैं और पश्चात् देवोंको अर्पण करते हैं।

[३२२] हे सोम ! जिस तेरी (बर्हिष्मान् आ विवासति) यज्ञकर्ता सेवा करता है (सः) वह तू (नः) हम सबके लिये (वाजयुः) अन्न देनेवाला हो और (अध्वरं चारुं चक्राणः) हिंसारहित यज्ञको उत्तम रीतिसे करनेवाला होकर (पवस्व) रस निकालकर दे दो ॥ ४ ॥

१ नः वाजयुः सः त्वं अध्वरं चारुं चक्राणः पवस्व— हमारे लिये अन्नको पर्याप्त प्रमाणमें दे दो और हमारे यज्ञ उत्तम रीतिसे अहिंसामय रहकर परिपूर्ण हों ऐसा करो।

[३२३] (सः) वह रस निकाला (सोमः) सोम (वायवे भगाय) वायु और भग देवोंके लिये (विप्रवीरः) ज्ञानी ब्राह्मणोंके द्वारा प्रेरित हुआ (सदा-वृधः) सदा बढनेवाला होकर (नः) हमारे लिये (देवेषु) देवोंमें रहनेवाला धन (आयमत्) देवे ॥ ५ ॥

१ सः सोमः विप्रवीरः सदावृधः नः देवेषु आयमत्— वह ज्ञानियोंमें अति ज्ञानी वीर सदा बढनेवाला सोम देवोंसे पास रहनेवाला धन हमें देवे।

[३२४] हे सोम ! (क्रतुवित्) यज्ञको जाननेवाला (गातुवित् तमः) पुण्य कर्म करनेवालोंके मार्ग जाननेवाला तू (अद्य) आज इस यज्ञमें (वसुत्तये) धनका लाभ हो इस लिये (वाजं) बल और (बृहत् श्रवः) बडा अन्न (जेषि) विजयसे प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

यज्ञके विधि तथा पुण्य कर्म करनेवालोंके सब मार्ग जाननेवाला तू आज हमें धन, बल और अन्न अपने विजयसे प्राप्त हो ऐसा करो। अपने विजयसे धन, बल और अन्न प्राप्त हो ऐसा करना मानवोंका कर्तव्य है।

[४५]

(ऋषिः- अयास्य आङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३२५ स पंवस्व मदाय कं नृचक्षा देववीतये । इन्दविन्द्राय पीतये ॥ १ ॥
३२६ स नो अर्षाभि दूत्यं१ त्वमिन्द्राय तोशसे । देवान् त्सखिभ्य आ वरम् ॥ २ ॥
३२७ उत त्वामरुणं वयं गोभिरञ्ज्मो मदाय कम् । वि नो राये दुरो वृधि ॥ ३ ॥
३२८ अत्यू पवित्रमक्रमीद् वाजी धुरं न यामनि । इन्दुर्देवेषु पत्यते ॥ ४ ॥
३२९ समी सखायो अस्वरन् वने क्रीळन्तमत्यविम् । इन्दुं नावा अनूषत ॥ ५ ॥
३३० तया पवस्व धारया यया पीतो विचक्षसे । इन्दो स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ६ ॥

---

[४५]

अर्थ – [३२५] हे (इन्दो) सोम ! (नृचक्षाः सः त्वं) मनुष्योंको देखनेवाला तू (देववीतये) देवोंको देनेके लिये तथा (इन्द्राय पीतये) इन्द्रके पीनेके लिये (मदाय) उनका आनंद बढानेके लिये (कं पवस्व) सुखसे रस निकाल दो ॥ १ ॥

देवोंको तथा इन्द्रको पीनेके लिये देनेके लिये यज्ञमें सोमका रस निकालते हैं। उसका यज्ञ होता है और वह रस देवोंको पीनेके लिये दिया जाता है।

[३२६] हे सोम ! (सः) वह (त्वं) तू (नः दूत्यं अभि अर्ष) हमारे दूतका कार्य कर तथा (इन्द्राय तोशसे) इन्द्रके पीनेके लिये (सखिभ्यः) मित्रोके लिये (वरं) श्रेष्ठ धन (देवान्) देवोंको देनेके लिये (आ) देवो ॥ २ ॥

१ इन्द्राय तोशसे सखिभ्यः वरं देवान् आ अर्ष— इन्द्रके पीनेके लिये, मित्रोंके तथा देवोंके पीनेके लिये श्रेष्ठ सोमका रस देओ।

[३२७] (उत त्वां) और तुझ (अरुणं) अरुण वर्णवाले सोमको (मदाय) आनंद बढानेके लिये तथा (कं) सुखके लिये (गोभिः अञ्ज्मः) गौके दूधसे मिश्रित करते हैं, ऐसा तू (राये) धन प्राप्त करनेके लिये (नः दुरः विवृधि) हमारे द्वार खोल दो ॥ ३ ॥

[३२८] (वाजी) घोडा (यामनि धुरं न) चलनेमें रथकी धुराको जैसा (अति अक्रमीत्) चलता है, उस प्रकार (पवित्रं अक्रमात्) छाननीमेंसे सोमरस चलता है और (इन्दुः) सोमरस (देवेषु पत्यते) देवोंतक पहुंचता है ॥ ४ ॥

घोडा जिस प्रकार रथकी धुराको चलाता है उस प्रकार छाननीमेंसे सोमरस छाना जाता है और छाननेके पश्चात् वह रस देवोंके पास पहुंचता है ॥

[३२९] (अति-अविं) छाननीसे छाने गये (क्रीळन्तं इन्दुं) खेलनेवाले इस सोमको (वने) यज्ञके स्थानमें (सखायः) मित्रोंके समान यज्ञ करनेवाले याजक (सं अस्वरन्) स्तुति करते हैं। (नावाः) वाणियां (इन्दुं अनूषत्) सोमकी स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

सोमरस छाननीसे छाना जाता है, उस समय याजक सोमकी स्तुति करते हैं।

[३३०] हे (इन्दो) सोम ! (यया पीतः विचक्षसे) जिस धारासे पिया गया तू सोम ज्ञानी (स्तोत्रे सुवीर्यं) यज्ञकर्ताके लिये उत्तम वीर्य देता है (तया धारया पवस्व) उस धारासे नीचे पात्रमें पडो ॥ ६ ॥

[४५]

(ऋषिः- अयास्य आङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३३१ असृग्रन् देववीतये ऽत्यासः कृत्व्या इव । क्षरन्तः पर्वतावृधः ॥ १ ॥
३३२ परिष्कृतास इन्दवो योषेव पित्र्यावती । वायुं सोमा असृक्षत ॥ २ ॥
३३३ एते सोमास इन्दवः प्रयस्वन्तश्चमू सुताः । इन्द्रं वर्धन्ति कर्मभिः ॥ ३ ॥
३३४ आ धावता सुहस्त्यः शुक्रा गृभ्णीत मन्थिना । गोभिः श्रीणीत मत्सरम् ॥ ४ ॥
३३५ स पवस्व धनंजय प्रयन्ता राधसो महः । अस्मभ्यं सोम गातुवित् ॥ ५ ॥

[४६]

अर्थ— [३३१] (पर्वतावृधः) पर्वत पर उत्पन्न होकर बढनेवाले (क्षरन्तः) रस निकाले हुए सोम (अत्यासः कृत्व्या इव) दौडनेवाले घोडोंके समान (देववीतये) देवोंको देनेके लिये (असृग्रन्) पात्रमें गिरते हैं ॥ १ ॥

पर्वत पर सोमवल्ली उगती है । उस सोमका रस निकालते हैं और वह रस पीनेके लिये देवोंको दिया जाता है । जैसे दौडनेवाला घोडा अपने स्थान पर दौडता हुआ पहुंचता है, वैसा यह सोमरस देवोंके पास पहुंचता है ।

[३३२] (इन्दवः सोमाः) तेजस्वी सोमरस (परिष्कृतासः) अलंकृत होकर (पित्र्यावती योषा इव) पिताकी पुत्रीके समान (वायुं असृक्षत) वायुके समीप जाते हैं ॥ २ ॥

पिता जीवित है ऐसी पुत्री अलंकृत होकर अपने पतिके घर जाती है, उस प्रकार ये सोमरस वायुके समीप यज्ञ-स्थानमें रखे जाते हैं और पश्चात् उनका यज्ञमें अर्पण किया जाता है ।

[३३३] (इन्दवः) तेजस्वी (एते सोमासः) ये सोमरस (चमू सुताः) पात्रमें रस निकाल कर रखे (प्रयस्वन्तः) अन्नसे संयुक्त होकर (कर्मभिः) अपने यज्ञकर्मोंसे (इन्द्रं वर्धन्ति) इन्द्रको संतुष्ट करते हैं ॥ ३ ॥

तेजस्वी सोमरस निकालकर यज्ञपात्रोंमें रखे जाते हैं । वे सोमरस गौका दूध आदि अन्नसे मिश्रित होकर अपने यज्ञके कर्मोंसे इन्द्रका बल बढाते हैं ।

[३३४] (सुहस्त्यः) उत्तम हस्तसे यज्ञ करनेवाले ऋत्विजो तुम (आ धावत) मेरे पास आओ । (मन्थिना) मन्थन करनेके साधनके साथ (शुक्रा गृभ्णीत) बलवान सोमको लीजिये और (गोभिः मत्सरं श्रीणीतः) गौके दूधसे सोमरस मिलाओ ॥ ४ ॥

उत्तम पवित्र कार्य अपने हाथोंसे करनेवाले ऋत्विजो, मेरे पास आओ । सोमको कूटनेके साधनोंको अपने हाथमें लो, उस सोमका रस निकालो और उस रसमें गौका दूध मिलाओ ।

[३३५] हे (धनंजय सोम) शत्रुके धनको जितनेवाले सोम ! (गातुवित्) योग्य मार्गको जाननेवाला (अस्मभ्यं) हमारे लिये (महः राधसः प्रयन्ता) बडे धनका देनेवाला (सः) वह तू (पवस्व) सोमरस देदो ॥ ५ ॥

१ धनंजय— धन तथा युद्ध जितनेवाला सोम है ।

२ गातुवित्— सुयोग्य मार्ग बतानेवाला सोम है ।

३ अस्मभ्यं महः राधसः प्रयन्ता— हमें बडा धन देनेवाला यह सोम है ।

३३६ एतं मृंजन्ति मर्ज्यं पर्वमानं दश क्षिपः । इन्द्राय मत्सरं मदम् ॥ ६ ॥

[४७]

(ऋषिः- कविर्भार्गवः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३३७ अया सोमः सुकृत्यया महश्चिदभ्यवर्धत । मन्दान उद्वृषायते ॥ १ ॥
३३८ कृतानीदस्य कर्त्वा चेतन्ते दस्युतर्हणा । ऋणा च धृष्णुश्चयते ॥ २ ॥
३३९ आत् सोम इन्द्रियो रसो वज्रः सहस्रसा भुवत् । उक्थं यदस्य जायते ॥ ३ ॥
३४० स्वयं कविर्विधर्तरि विप्राय रत्नमिच्छति । यदी मर्मृज्यते धियः ॥ ४ ॥
३४१ सिषासतू रयीणां वाजेष्वर्वतामिव । भरेषु जिग्युषामसि ॥ ५ ॥

अर्थ— [३३६] (एतं मर्ज्यं) इस सम्यक् शोधनीय (इन्द्राय) इन्द्रको देनेके लिये (पवमानं) रस निकाले (मत्सरं मदं) आनंद देनेवाले सुखदायी सोमको (दश क्षिपः) दस अंगुलियां (मृजन्ति) शुद्ध करती है ॥ ६ ॥

१ इन्द्रको पीनेके लिये सोमरस दिया जाता है ।
२ मत्सरं मदं— यह रस आनंद बढानेवाला है ।
३ दश क्षिपः मृजन्ति— दश अंगुलियां सोमसे रस निकालती हैं ।

[४७]

[३३७] (सोमः) यह सोम (अया सुकृत्यया) इस उत्तम यज्ञीय कर्म द्वारा (महः चिद्) बडे देवोंके पास (अभ्यवर्धत) बडा होकर पहुंचता है । (मन्दानः) आनंदित होकर यह (उद्वृषायते) बलवान बनता है ॥ १ ॥

यह सोम यज्ञमें बडा होकर सन्मानके साथ देवोंके पास जाता है । आनंदित होकर यह बलवान बनता है ।

[३३८] (अस्य) इस सोमके (दस्यु- तर्हणा कर्त्वा) शत्रुका नाश करनेके (कृतानि) कार्य वह (इत्) निश्चयसे (धृष्णुः) धैर्यवान् होकर करता है और (ऋणा च चयते) ऋण भी दूर करता है ॥ २ ॥

सोम शत्रुका नाश करता है और धैर्यसे यज्ञ करनेवालेके ऋण भी दूर करता है ।

[३३९] (यत्) जिस समय (अस्य) इस इन्द्रका (उक्थं) स्तोत्र (जायते) बोला जाता है, (आत्) उसी समय (इंद्रियः) इन्द्रको प्रिय यह सोमरस (वज्रः) वज्र जैसा (सहस्रसा) सहस्र प्रकारके अन्न देनेवाला (जायते) होता है ॥ ३ ॥

[३४०] (यदि स्वयं कविः) जिस समय स्वयं कवि जैसा यह सोम (धियः) अंगुलियोंसे (मर्मृज्यते) शुद्ध किया जाता है उस समय (विधर्तरि विधाता) यह सोम (विप्राय रत्नं इच्छति) ज्ञानीको धन प्राप्त हो ऐसी इच्छा करता है ॥ ४ ॥

[३४१] हे सोम तू ! (भरेषु) युद्धोंमें (जिग्युषां) विजय प्राप्त करनेवालोंके (रयीणां) धनोंका (सिषासतुः) विभाग करनेकी इच्छा करनेवालोंके समान है । (वाजेषु अर्वतां इव) युद्धोंमें घोडे जैसा कार्य करते हैं वैसा कार्य तूं करता है ॥ ५ ॥

युद्धोंमें विजय प्राप्त करनेवाले वीर जैसा धन बांटते हैं, वैसा सोम यज्ञोंमें आपसमें यज्ञकर्ता बांट कर लेते हैं ।

×

[४८]

(ऋषिः- कविर्भार्गवः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३४२ तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतं सधस्थेषु महो दिवः । चारुं सुकृत्ययेमहे ॥ १ ॥
३४३ संवृक्तधृष्णुमुक्थ्यं महामहिव्रतं मदम् । शतं पुरो रुरुक्षणिम् ॥ २ ॥
३४४ अतस्त्वा रयिमभि राजानं सुक्रतो दिवः । सुपर्णो अव्यथिर्भरत् ॥ ३ ॥
३४५ विश्वस्मा इत्स्वर्दृशे साधारणं रजस्तुरम् । गोपामृतस्य विर्भरत् ॥ ४ ॥
३४६ अधा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे । अभिष्टिकृद्विचर्षणिः ॥ ५ ॥

[४८]

अर्थ — [३४२] (महः दिवः) बडे द्युलोकके (सधस्थेषु) स्थानोंमें रहनेवाले (नृम्णानि बिभ्रतं) धनोंको धारण करनेवाले (चारुं तं त्वा) सुन्दर ऐसे तुझ सोमको (सुकृत्यया ईमहे) उत्तम यज्ञकार्यसे हम प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं ॥ १ ॥

सोम द्युलोकमें पर्वतके उच्च स्थानमें रहता है। वह पीनेमें सुखदायक लगता है। यज्ञमें उस सोमको हम प्राप्त करना चाहते हैं।

[३४३] हे सोम ! (संवृक्तधृष्णुं) शत्रुका नाश करनेवाले (उक्थ्यं) वर्णनीय (महामहिव्रतं) बडे महान कार्योंको करनेवाले (मदं) आनंद देनेवाले (शतं पुरः रुरुक्षणिं) शत्रुके सेकडों नगरोंका नाश करनेवाले सोमकी हम प्रशंसा करते हैं ॥ २ ॥

१ संवृक्त- धृष्णुः— शत्रुओंका नाश करनेवाला।
२ शतं पुरः रुरुक्षणिः— शत्रुके सेकडों नगरोंका नाश करनेवाला।
३ महामहिव्रतः— बडे महत्वपूर्ण कार्य करनेवाला।
४ उक्थ्यः— प्रशंसनीय कार्य करनेवाला।
ये वीर प्रशंसाके योग्य हैं।

[३४४] हे (सुक्रतो) उत्तम यज्ञ करनेवाले सोम ! (रयिं अभि) धनोंके प्रति (राजानं त्वा) राजाके समान तुझ सोमको (अतः दिवः) इस द्युलोकसे (सुपर्णः) श्येन पक्षीने (अव्यथिः) विना कष्टके (भरत्) लाया है ॥ ३ ॥

सोमको श्येन पक्षी पर्वतके शिखरके ऊपरसे लाता है, जिस सोमका यज्ञमें मुख्यतः उपयोग किया जाता है।

[३४५] (रजस्तुरं) उदकको प्रेरित करनेवाले (ऋतस्य गोपां) यज्ञका संरक्षण करनेवाले (विश्वस्मै स्वर्दृशे) सबका निरीक्षण करनेवाले देवके लिये (साधारणं इत्) सबको धारण मिलनेवाले सोमको (विः भरत्) पक्षी लाता है ॥ ४ ॥

१ विः ऋतस्य गोपां रजस्तुरं सोमं भरत्— श्येन पक्षी यज्ञका संरक्षण करनेवाले सोमको पर्वतके शिखरके ऊपरसे यज्ञ लाता है।

[३४६] (अध) अब (विचर्षणिः) यज्ञकर्मोंका विशेष रीतिसे करनेवाला (अभिष्टिकृत्) याजकोंके इष्ट फल देनेवाला और (इन्द्रियं हिन्वानः) अपनी आत्मशक्तिको प्रेरित करनेवाला यह सोम (ज्यायः महित्वं आनशे) अधिक महत्वका स्थान यज्ञमें प्राप्त करता है ॥ ५ ॥

यज्ञमें सोमका विशेष स्थान रहता है। यह सोम यज्ञके कार्य करता है, यज्ञ करनेवालोंको इष्ट फल देता है। इस कारण सोमका यज्ञमें विशेष महत्वका स्थान निश्चित हुआ है।

[४९]

(ऋषिः- कविर्भार्गवः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३४७ पर्वस्व वृष्टिमा सु नो ऽपामूर्मिं दिवस्परिं । अयक्ष्मा बृंहतीरिषः ॥ १ ॥
३४८ तया पवस्व धारया यया गाव इहागमन् । जन्यास उप नो गृहम् ॥ २ ॥
३४९ घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः । अस्मभ्यं वृष्टिमा पव ॥ ३ ॥
३५० स न ऊर्जे व्य१व्ययं पवित्रं धाव धारया । देवासः शृणवन् हि कम् ॥ ४ ॥
३५१ पवमानो असिष्यद्रक्षांस्यपजङ्घनत् । प्रत्नवद्रोचयन् रुचः ॥ ५ ॥

[५०]

(ऋषिः- उचथ्य आङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३५२ उत् ते शुष्मास ईरते सिन्धोरूर्मेरिव स्वनः । वाणस्य चोदया पविम् ॥ १ ॥

---

[४९]

अर्थ— [३४७] हे सोम ! तू (दिवः वृष्टिं) द्युलोकसे वर्षाको (नः) हमारे लिये (आसु पवस्व) उत्तम रीतिसे गिराओ । तथा (अपां ऊर्मिं) जलोंकी लहरोंको द्युलोकसे नीचे भेजो । तथा (अयक्ष्माः) रोग रहित (बृहतीः इषः) बहुत अन्न भेजो ॥ १ ॥

द्युलोकसे वृष्टि भेजो, जलोंकी लहरोंको नीचे हमारे लिये भेजो तथा रोग रहित अन्न भेजो ।

[३४८] हे सोम ! (तया धारया पवस्व) उस धारासे नीचे गिरो, (यथा) जिस धारासे (जन्यासः गावः इह नः गृहं आगमन्) शत्रुकी गौवें यहां हमारे घर आ जाय ॥ २ ॥

हमारे पास गौवें आजांय और हमारे पास रहें ऐसा यह सोम करे । सोम गौवोंको प्रिय है, अतः जहां सोम बहुत रहता है वहां गौवें रहती हैं ॥

[३४९] हे सोम ! (यज्ञेषु देववीतमः) यज्ञोंमें देवोंके लिये प्रिय होकर (धारया घृतं पवस्व) धारासे उदकको देवो (अस्मभ्यं) हमारे लिये (वृष्टिं आ पव) जलकी वर्षा उत्तम रीतिसे देवो ॥ ३ ॥

धारासे वृष्टि होकर हमारे लिये अन्न आदि भरपूर प्राप्त होता रहे ।

[३५०] हे सोम ! रस निकाला तूं (नः ऊर्जे) हमारे अन्नके लिये (धारया) धारासे (पवित्रं धाव) छाननीसे नीचे दौडकर चल । इस समय (देवासः) देव (हि कं शृणवन्) तेरे शब्दको सुने ॥ ४ ॥

सोमरस छाननीमेंसे नीचे उतरनेके समय शब्द करता हुआ उतरे । इस समय सब यज्ञ स्थानीय देव इस सोमके शब्दको सुनें ॥

[३५१] (रक्षांसि अवजंघनत्) राक्षसोंको मारता हुआ (रुचः) तेजको (प्रत्नवत् रोचयन्) पहिलेके समान चमकाता हुआ यह (पवमानः) सोमरस (असिष्यदत्) नीचेके पात्रमें गिरता है ॥ ५ ॥

१ रक्षांसि अवजंघयन्— सोम राक्षसोंका नाश करता है ।
२ प्रत्नवत् रुचः रोचयन्— पहिलेके समान अपना तेज फैलाता है ।
३ पवमानः असिष्यदत्— यह सोमरस नीचेके पात्रमें गिरता है ।

[५०]

[३५२] हे सोम ! (ते शुष्मासः) तेरे वेग (ऊत् ईरते) ऊपर जाते हैं, जैसे (सिन्धोः ऊर्मेः स्वनः इव) सिन्धुके तरंगका शब्द होता है । वह तूं (वाणस्य) बाणके (पविं) शब्दको (चोदय) प्रेरित कर ॥ १ ॥

सोमका रस निकालकर उस रसको पात्रमें रखनेके समय सोमरसका शब्द सुनाई देता है, जैसा जलके तरंगोंका शब्द होता है ।

३५३ प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः । यदव्य एषि सानवि ॥ २ ॥
३५४ अव्यो वारे परि प्रियं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । पवमानं मधुश्चुतम् ॥ ३ ॥
३५५ आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे । अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ४ ॥
३५६ स पवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अक्तुभिः । इन्दविन्द्राय पीतये ॥ ५ ॥

[५१]

(ऋषिः- उचथ्य आङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३५७ अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ सृज । पुनीहीन्द्राय पातवे ॥ १ ॥
३५८ दिवः पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे । सुनोता मधुमत्तमम् ॥ २ ॥

अर्थ— [३५३] (ते प्रसवे) तेरे उत्पन्न होनेके समय (मखस्युवः) यज्ञकर्ता ऋत्विज (तिस्रः वाचः उदीरते) ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद की तीन वाणियोंके मंत्र बोलते हैं। (यत्) जब तू सोम (सानवि अव्ये एषि) ऊंचे भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे तू जाता है ॥ २

जब सोमसे रस याजक लोग निकालते हैं उस समय ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदके मंत्र बोलते है और उस रसको छानते हैं।

[३५४] (प्रियं हरिं) देवोंको प्रिय हरे रंगके (अद्रिभिः) पत्थरोंसे कूटकर निकाले (मधुश्चुतं) मधुर रस (पवमानं) सोमको (अव्यः वारे परि हिन्वन्ति) भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे छानते हैं ॥ ३ ॥

यह सोमरस देवोंको प्रिय है। यह हरे रंगका होता है। पत्थरोंके द्वारा कूटकर इस सोमरसको ऋत्विज लोग यज्ञके समय निकालते हैं। भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे इस रसको छाना जाता है। छाननेके पश्चात् इस रसको पीते हैं।

[३५५] हे (मदिंतम) अत्यंत आनन्द देनेवाले (कवे) क्रान्तदर्शी सोम ! (अर्कस्य योनिं आसदं) पूजनिय इन्द्रके स्थानको प्राप्त करनेके लिये (पवित्रं) छाननीमेंसे (धारया आ पवस्व) धारासे नीचेके पात्रमें जा ॥ ४ ॥

पूजनीय इन्द्रको प्राप्त करनेके लिये सोमरस धारासे छाननीमेंसे नीचे रखे पात्रमें उतरता है। और छाननेके पश्चात् वह रस इन्द्रको दिया जाता है।

[३५६] (मदिन्तम) आनन्द देनेवाले सोम ! (अक्तुभिः गोभिः) तुम्हारे अन्दर मिलाने योग्य गौके दूधके साथ (अञ्जानः) मिलाये जाने पर हे (इन्दो) सोम ! (इन्द्राय पीतये पवस्व) इन्द्रको पीनेके लिये छाना जा ॥ ५ ॥

सोमरस आनंद देनेवाला है, वह गोदुग्धके साथ मिलाया जाता है, और इन्द्रको पीनेके लिये दिया जाता है।

[५१]

[३५७] हे (अध्वर्यो) यज्ञके करनेवाले ऋत्विज ! (अद्रिभिः सुतं) पत्थरोंसे कूटकर निकाले गये (सोमं) सोमरसको (पवित्रे आ सृज) छाननीमेंसे छान (इन्द्राय पातवे) इन्द्रको पीनेको देनेके लिये (पुनीहि) छाननीसे छान ॥ १ ॥

[३५८] हे अध्वर्युजनो ! (दिवः उत्तमं पीयुषं मधुमत्तमं सोमं) द्युलोकके उत्तम अमृत जैसे अति मधुर सोमरसको (वज्रिणे इन्द्राय) वज्रधारी इन्द्रको देनेके लिये (सुनोत) तैयार करो ॥ २ ॥

१ दिवः उत्तमं पीयूषं मधुमत्तमं सोमं सुनोत— द्युलोकके उत्तम अमृत जैसा सोमके रसको निकालो।
२ वज्रिणे इन्द्राय सुनोत— वज्रधारी इन्द्रके लिये सोमका रस निकालो।

३५९ तव त्य इन्दो अन्धसो देवा मधोर्व्यश्नते । पवमानस्य मरुतः ॥ ३ ॥
३६० त्वं हि सोम वर्धयन् त्सुतो मदाय भूर्णये । वृषन् त्स्तोतारमूतये ॥ ४ ॥
३६१ अभ्यर्ष विचक्षण पवित्रं धारया सुतः । अभि वाजमुत श्रवः ॥ ५ ॥

[५२]

(ऋषिः– उचथ्य आङ्गिरसः । देवताः– पवमानः सोमः । छन्दः– गायत्री ।)

३६२ परि द्युक्षः सनद्रयि–र्भरद्वाजं नो अन्धसा । सुवानो अर्ष पवित्र आ ॥ १ ॥
३६३ तव प्रत्नेभिरध्वभि–रव्यो वारे परि प्रियः । सहस्रधारो यात् तना ॥ २ ॥
३६४ चरुर्न यस्तमीङ्खये–न्दो न दानमीङ्खय । वधैर्वधस्नवीङ्खय ॥ ३ ॥
३६५ नि शुष्ममिन्दवेषां पुरुहूत जनानाम् । यो अस्माँ आदिदेशति ॥ ४ ॥
३६६ शतं न इन्द ऊतिभिः सहस्रं वा शुचीनाम् । पवस्व मंहयद्रयिः ॥ ५ ॥

अर्थ—[३५९] हे (इन्दो) सोम ! (तव मधोः पवमानस्य) तुझ मधुर रसरूप (अन्धसः) अन्नको (त्ये देवाः मरुतः) वे देव और मरुत (व्यश्नते) प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

सब देव तथा सब मरुत् नामक सैनिक सोमके मधुर अन्नरूप रसका सेवन करते हैं।

[३६०] हे (सोम) सोम ! (सुतः) रस निकाला (त्वं) तू (वर्धयन्) देवोंकी शक्ति बढाते हुए (वृषन्) कामनाकी पूर्ति करते हुए (भूर्णये मदाय) उत्तम आनंद प्राप्त करनेके लिये (ऊतये) और संरक्षण करनेके लिये (हि वृषन्) सहायक होता है ॥ ४ ॥

[३६१] हे (विचक्षण) विशेष रीतिसे देखनेवाले सोम ! (धारया) धारासे (पवित्रं अभि अर्ष) छाननीमेंसे छाना जा। (सुतः) और तेरा रस (वाजं उत श्रवः अभि अर्ष) अन्न तथा यश हमें देवे ॥ ५ ॥

सोमरस छाननीमेंसे छाना जाता है और अन्न तथा यश देता है। यज्ञ करनेसे यश मिलता है।

[५२]

[३६२] (द्युक्षः) तेजस्वी (सनद् रयिः) धन देनेवाला सोम (नः) हमारे लिये (वाजं) बल (अन्धसा) अन्नके साथ (परि भरत) भरपूर देवे। हे सोम ! तू (सुवानः) रस निकाला हुआ (पवित्रे आ अर्ष) छाननीमेंसे नीचेके पात्रमें उतर ॥ १ ॥

[३६३] हे सोम ! (तव प्रियः) तुझे प्रिय (सहस्रधारः रसः) सहस्रों धाराओंसे पात्रमे आनेवाला (तना) विस्तृत रस (प्रत्नेभिः अध्वभिः) पुराने मार्गोंसे (अव्यः वारे) भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे (परियात्) नीचे उतरता है ॥ २ ॥

[३६४] (चरुः न) चरुके समान (यः) जो है उसको (तं ईङ्खय) हमारे पास प्रेरित करो। और हे (इन्दो) सोम ! (नः) अभी (दानं ईङ्खय) दान भी प्रेरित करो। हे (वधस्नो) कूटे जानेवाले सोम ! (वधैः) पत्थरोंके कूटनेके आघातोंसे (ईङ्खय) रसको बाहर प्रेरित करो ॥ ३ ॥

सोम हमारे पास आवे। उस सोमको यज्ञमें हम लेते हैं और उसको पत्थरोंसे कूटते हैं और उससे रस निकालते हैं।

[३६५] हे (पुरुहूत इन्दो) बहुत स्तुति किये गये सोम ! (यः) जो तू (शुष्मं) बल बढानेका (अस्मान् जनानां) हम लोगोंको (आदि देशति) आदेश दे रहा है। वह हमारे लिये उत्तम उपदेश है ॥ ४ ॥

[३६६] हे (इन्दो) सोम ! (मंहयद्–रयिः) धन देनेवाला तू (नः ऊतिभिः) हमारे संरक्षणोंसे (शुचीनां वा सहस्रं) सहस्रों प्रकारके शुद्धिके साधनोंसे (रयिः मंहयत् पवस्व) धन देकर रस निकालो ॥ ५ ॥

[५३]

(ऋषिः- अवत्सारः काश्यपः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३६७ उत् ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः । नुदस्व याः परिस्पृधः ॥ १ ॥
३६८ अया निजघ्निरोजसा रथसङ्गे धने हिते । स्तवा अबिभ्युषा हृदा ॥ २ ॥
३६९ अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या । रुज यस्त्वा पृतन्यति ॥ ३ ॥
३७० तं हिन्वन्ति मदच्युतं हरिं नदीषु वाजिनम् । इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥ ४ ॥

[५४]

(ऋषिः- अवत्सारः काश्यपः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री)

३७१ अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः । पयः सहस्रसामृषिम् ॥ १ ॥

---

[५३]

राक्षसोंका नाश करके
अर्थ— [३६७] हे (अद्रिवः) सोम! (ते शुष्मासः) तेरे वेग (रक्षः भिन्दन्तः) (उत् अस्थुः) ऊपर ही विजयी होकर रहते हैं। (याः स्पृधः) जो शत्रुकी सेनाएं हमें दुःख देती हैं उन शत्रुओंको (नुदस्व) प्रतिबंध कर ॥ १ ॥

१ ते शुष्मासः रक्षः भिन्दन्तः उत् अस्थुः— तेरे सैनिकोंके वेग दुष्ट राक्षसोंका नाश करके सदा विजयी होकर ऊपर ही रहते हैं। शत्रुसे तेरे बल अधिक सामर्थ्यवान हैं अतः सदा विजयी हो कर रहते हैं।

२ याः स्पृधः नुदस्व— जो हमसे स्पर्धा करनेवाले हमारे शत्रु हैं, उनको दूर करके रखो। वे समीप न आ सके ऐसा करो।

[३६८] हे सोम! तू (अया) इस कार्यसे (ओजसा) अपने बलसे (निजघ्निः) शत्रुओंका नाश करता है (रथसंगे धने हिते) रथोंके द्वारा युद्ध होनेपर हम (अबिभ्युषा हृदा) निर्भय हृदयसे (स्तवै) तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

तू इस प्रकार अपने बलसे शत्रुका नाश करता है और निर्भय हृदयसे प्रभुकी स्तुति करते है।

[३६९] हे सोम! (अस्य पवमानस्य व्रतानि) इस सोमके कर्म (दूढ्या) दुर्बुद्धिके राक्षसों द्वारा (नाधृषे) नष्ट करनेकी शक्यता नहीं है। (यः) जो दुष्ट राक्षस (त्वा पृतन्यति) तेरे ऊपर सेना भेजता है उसका (रुज) नष्ट कर ॥ ३ ॥

दुष्ट शत्रुओंके द्वारा इस सोमके कर्म नष्ट करना अशक्य है। जो शत्रु तुम्हारे ऊपर सेना भेजकर तुम्हारी हानि करना चाहता है उस शत्रुका नाश करो।

[३७०] (तं मदच्युतं) उस आनंद देनेवाले (हरिं) हरे रंगके (मत्सरं) संतोष देनेवाले (वाजिनं) बलवान (इन्दुं) तेजस्वी सोमको (नदीषु) नदीके जलोंमें (इन्द्राय) इन्द्रको देनेके लिये (हिन्वन्ति) मिलाते हैं ॥ ४ ॥

यज्ञ करनेवाले याजक सोमरसको नदीके जलोंको यज्ञ स्थानमें लाकर उनमें मिलाते हैं, और वह जलोंसे मिश्रित सोम इन्द्रको समर्पण करके देते हैं।

[५४]

[३७१] (अह्रयः) याजक लोग (अस्य) इस सोमके (प्रत्नां द्युतं अनु) पुराने तेजस्वी शरीरके अनुकूल (शुक्रं दुदुह्रे) शुद्ध रसको निकालते हैं वह रस (सहस्रसां ऋषिं) हजारों प्रकारके धन देता है तथा जो द्रष्टा होता है ॥ २ ॥

याजक लोग इस सोमसे प्रथमसे चली आयी यज्ञकी रीतिसे अनुसार इस सोमका रस निकालते हैं। यह सोमका रस यज्ञमें सहस्रों प्रकार लाभ पहुंचाता है।

३७२ अयं सूर्य इवोपदृगयं सरांसि धावति । सप्त प्रवत आ दिवम् ॥ २ ॥
३७३ अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि । सोमो देवो न सूर्यः ॥ ३ ॥
३७४ परि णो देववीतये वाजाँ अर्षसि गोमतः । पुनान इन्दविन्द्रयुः ॥ ४ ॥

[५५]

(ऋषिः- अवत्सारः काश्यपः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३७५ यवंयवं नो अन्धसा पुष्टंपुष्टं परि स्रव । सोम विश्वा च सौभगा ॥ १ ॥
३७६ इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः । नि बर्हिषि प्रिये सदः ॥ २ ॥
३७७ उत नो गोविदश्ववित् पवस्व सोमान्धसा । मक्षूतमेभिरहभिः ॥ ३ ॥

अर्थ— [३७२] (अयं) यह सोम (सूर्यः इव) सूर्यके समान (उपदृक्) सबको देखनेवाला है। (अयं) यह सोम (सरांसि) जल पात्रोंके प्रति (धावति) दौडता है और यह सोम (दिवं) द्युलोकमें देवोंके पास जानेके लिये (सप्त आ प्रवत) सात नदियोंके जलोंमें मिलकर रहता है ॥ २ ॥

यह सोम तेजसे चमकता है। यह जलोंमें मिलकर रहता है। यह सोम सात नदियोंके जलोंमें मिलकर देवोंके समीप जानेके लिये तैयार रहता है। नदियोंके जलके साथ मिलता है।

[३७३] (पुनानः) छाना जाकर (अयं सोमः) यह सोम (विश्वानि भुवना उपरि) सब भुवनोंके ऊपर (सूर्यः देवः न) सूर्य देवके समान (तिष्ठति) रहता है ॥ ३ ॥

यज्ञमें सोम सबसे अधिक माना गया है, अतः वह सब पदार्थोंमें मुख्य कहा है, जैसा सूर्य अपनी ग्रह मालामें मुख्य रहता है।

[३७४] हे (इन्दो) सोम ! (इन्द्रयुः) इन्द्रके पास जानेकी इच्छा करनेवाला (पुनानः) शुद्ध होनेवाला तू (देववीतये) देवोंके समीप जानेके लिये (गोमतः वाजान्) गोदुग्ध युक्त सब अन्नोंको (परि अर्षसि) सब प्रकारसे देता है ॥ ४ ॥

सोमरस शुद्ध होकर इन्द्र तथा अन्य देवोंके समीप जानेके लिये गौके दूधके साथ मिले अन्नोंके साथ यज्ञमें रहता है।

[५५]

[३७५] हे (सोम) सोमरस ! तू (नः) हमारे लिये (पुष्टं पुष्टं) पुष्टि कारक (यवं यवं) रस युक्त खाद्य पदार्थ (अन्धसा) अन्नके रूपमें (परिस्रव) दे दो ; तथा (विश्वा च सौभगा) सब प्रकारके सौभाग्य भी दे दो ॥ १ ॥

हमें पोषण करनेवाला धान्य, तथा सब प्रकारका अन्न और सब प्रकारके सौभाग्य दे दो ॥

[३७६] हे (इन्दो) सोम ! (अन्धसः तव यथा स्तवः) अन्न रूप तेरा जैसा यह स्तोत्र है (यथा ते जातं) जैसा तेरा जन्म हुआ है, वैसा तू (बर्हिषि) इस यज्ञमें (प्रिये) प्रिय स्थानमें (निषदः) बैठ कर रहो ॥ २ ॥

यज्ञमें सोम महत्त्वपूर्ण स्थानमें रखा जाता है। वह अन्नके रूपसे यज्ञमें रहता है और यज्ञीय पदार्थोंमें मुख्य यज्ञीय पदार्थ होता है।

[३७७] (उत) और हे (सोम) सोम ! (नः गोविद्) हमें गौवें देनेवाला तथा (अश्ववित्) घोडे देनेवाला (मक्षूतमेभिः अहभिः) अति शीघ्रतासे आनेवाले दिनोंमें (अन्धसा पवस्व) अन्नके साथ तेरा रस निकाल कर दे दो ॥ ३ ॥

याजकोंके पास पर्याप्त गौवें हों और घोडे भी हों। तथा पर्याप्त अन्न भी उनके पास रहे। इनसे यज्ञमें सफलता होती है।

३७८ यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य । स पवस्व सहस्रजित् ॥ ४ ॥

[५६]

(ऋषिः- अवत्सारः काश्यपः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३७९ परि सोम ऋतं बृहदाशुः पवित्रे अर्षति । विघ्नन् रक्षांसि देवयुः ॥ १ ॥

३८० यत् सोमो वाजमर्षति शतं धारा अपस्युवः । इन्द्रस्य सख्यमाविशन् ॥ २ ॥

३८१ अभि त्वा योषणो दश जारं न कन्यानूषत । मृज्यसे सोम सातये ॥ ३ ॥

३८२ त्वमिन्द्राय विष्णवे स्वादुरिन्दो परि स्रव । नॄन् स्तोतॄन् पाह्यंहसः ॥ ४ ॥

[५७]

(ऋषिः- अवत्सारः काश्यपः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३८३ प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टयः । अच्छा वाजं सहस्रिणम् ॥ १ ॥

अर्थ-- [३७८] हे (सहस्रजित्) सहस्रों शत्रुओंको जीतनेवाला सोम (यः) जो (जिनाति) शत्रुओंको मारता है, परंतु (न जीयते) शत्रुओंसे पराभूत नहीं होता। वह (अभीत्य) हमला करके (शत्रुं) शत्रुओंको (हन्ति) मारता है ॥ ४ ॥

१ सहस्रजित्— सहस्रों शत्रुओंको जीतनेवाला।

२ यः जिनाति, न जीयते— जो शत्रुओंका नाश करता है, पर जिसका नाश शत्रु नहीं कर सकते।

३ अभीत्य शत्रुं हन्ति— वह हमला करके शत्रुका नाश करता है।

[५६]

[३७९] (आशुः) कार्य शीघ्रतासे करनेवाला (देवयुः) देवोंके पास जानेवाला (सोमः) सोम (पवित्रे) छाननीमें रहकर (रक्षांसि निघ्नन्) राक्षसोंका नाश करता हुआ (बृहत् ऋतं) बडा अन्न हमें (परि अर्षति) देता है ॥ १ ॥

[३८०] (यत्) जिस समय (अपस्युवः) यज्ञकी इच्छा करनेवाली (शतं धाराः) सैंकडो सोमरसकी धाराएं (इन्द्रस्य सख्यं आविशन्) इन्द्रके साथ मित्रता करनेके लिये प्राप्त हुईं, तब यह (सोमः) सोम (वाजं अर्षति) अन्न देता रहा ॥ २ ॥

जब सोमरसकी अनेक धाराएं यज्ञमें शुद्ध हो चुकी, तब सोमसे यज्ञमें अन्न मिलना प्रारंभ हुआ। सोमकी धाराएं अन्नरस भी देती हैं। सोम अन्न रूप भी होता है।

[३८१] हे (सोम) सोम ! (त्वा) तुझे (दश योषणः) दस अंगुलियां (कन्या) पुत्रियां (जारं न) प्रिय पतिको बुलाती है वैसो (अभि अनूषत) बुलाती हैं। उन अंगुलियोंसे (सातये) रसके लाभके लिये (मृज्यसे) तू सोम शुद्ध किया जाता है ॥ ३ ॥

सोमको दोनों हाथोंकी मिलकर दस अंगुलियां दबाकर उससे रस निकालती हैं। मानो ये अंगुलियां पतिको ही पकडती है।

[३८२] हे (इन्दो) सोम ! (स्वादुः) तू मीठा रस (इन्द्राय विष्णवे) इन्द्रके लिये और विष्णुके लिये (परिस्रव) निकालो। (नॄन् स्तोतॄन्) स्तुति करनेवाले ऋत्विज जनोंको (अंहसः पाहि) पापसे बचाओ ॥ ४ ॥

[५७]

[३८३] हे सोम ! (ते असश्चतः धाराः) तेरी सतत गिरनेवाली धाराएं (सहस्रिणं वाजं अच्छ) सहस्र प्रकारका अन्न हमें देती हैं। (न) जिस प्रकार (दिवः वृष्टयः यन्ति) द्युलोकसे वृष्टियां गिरती हैं और अन्न देती हैं। ॥ १ ॥

३८४ अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति । हरिस्तुञ्जान आयुधा ॥ २ ॥
३८५ स मर्मृजान आयुभि–रिभो राजेव सुव्रतः । श्येनो न वंसु षीदति ॥ ३ ॥
३८६ स नो विश्वा दिवो वसू–तो पृथिव्या अधि । पुनान इन्दवा भर ॥ ४ ॥

[५८]

(ऋषिः– अवत्सारः काश्यपः । देवताः– पवमानः सोमः । छन्दः– गायत्री ।)

३८७ तरत् स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः । तरत् स मन्दी धावति ॥ १ ॥
३८८ उस्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवसः । तरत् स मन्दी धावति ॥ २ ॥
३८९ ध्वस्रयोः पुरुषन्त्यो–रा सहस्राणि दद्महे । तरत् स मन्दी धावति ॥ ३ ॥
३९० आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च दद्महे । तरत् स मन्दी धावति ॥ ४ ॥

अर्थ— [३८४] (हरिः) हरे रंगका यह सोम (विश्वा प्रियाणि काव्या) सब प्रिय कर्मोंको (चक्षाणः) देखनेवाला (आयुधा तुंजानः) अपने शस्त्रोंको शत्रुओंपर फेंकता हुआ (अभि अर्षति) आगे बढता है ॥ २ ॥

यह सोम सब प्रिय स्तोत्रोंको सुनता है, सब कर्मोंको देखता है, शस्त्रोंको शत्रुपर फेंकता है और आगे बढता है । वीर लोग सोमरस पीकर शत्रुसे उत्तम प्रकार लडते रहते हैं । सोमरस पीनेसे उत्साह बढता है ।

[३८५] (सुव्रतः सः) उत्तम यज्ञकर्म करनेवाला वह सोम (आयुभिः मर्मृजानः) ऋत्विजोंसे शुद्ध होता हुआ (इभः) निर्भय (राजा इव) राजाके समान तथा (श्येनः न) श्येन पक्षीके समान (वंसु सिदति) उदकोंमें जाकर बैठता है ॥ ३ ॥

सोम यज्ञकर्म करनेमें मुख्य पदार्थ है इसलिये वह उत्तम व्रत करता है । उत्तम व्रत यज्ञका व्रत ही है । वह सोम-रस उदकमें मिलाया जाता है । और उससे यज्ञ किया जाता है ।

[३८६] हे (इन्दो) सोम ! (सः पुनानः) वह सोम शुद्ध होता हुआ (दिवः अधि) द्युलोकमें तथा (पृथिव्याः अधि) पृथिवीपर रहे (विश्वा वसु) सब धन (नः आभर) हमें भरपूर प्रमाणमें देओ ॥ ४ ॥

[५८]

[३८७] (मन्दी) आनंद देनेवाला (सः) वह सोम (तरत्) तारण करनेवाला (धावति) पात्रोंमें जाता है, दौडकर शीघ्रतासे पात्रोंमें जाता है । (सुतस्य अन्धसः) रस निकाले अन्नरूप सोमकी (धारा) धाराएं दौडती हैं । (तरत् स मन्दी धावती) तारण करता हुआ वह आनंद देनेवाला सोम यज्ञके पात्रोंमें दौडता जाता है ॥ १ ॥

[३८८] (वसूनां उस्रा) धनोंको देनेवाली सोमवल्ली (देवी) दिव्य शक्तिवाली (मर्तस्य) मनुष्यका, यजमानका (अवसः वेद) संरक्षण करना जानती है (तरत् स मन्दी धावती) तारण करनेवाली वह सोमवल्ली आनंद देनेके लिये अपने पात्रमें दौडकर जाती है ॥ २ ॥

[३८९] (ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योः) ध्वस्र और पुरुषन्ति नामक राजाओंके (सहस्राणि आदद्महे) सहस्रों प्रकारके धन हमने प्राप्त किये हैं । (तरत् स मन्दी धावती) उनका तारण करनेके लिये वह सोम आनंदसे दौडता है ॥ ३ ॥

[३९०] (ययोः) जिन ध्वस्र और पुरुषन्ती के (त्रिशतं सहस्राणि) तीनसौं सहस्र (तना) वस्त्र हमने (आ दद्महे) लिये हैं । (तरत् स मन्दी धावती) उसका तारण करनेवाला यह सोम आनंदसे दौडता है ॥ ४ ॥

×

[५९]

(ऋषिः- अवत्सारः काश्यपः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३९१ पवस्व गोजिदश्वजि-द्विश्वजित् सोम रण्यजित् । प्रजावद्रत्नमा भर ॥ १ ॥

३९२ पवस्वाद्भ्यो अदाभ्यः पवस्वौषधीभ्यः । पवस्व धिषणाभ्यः ॥ २ ॥

३९३ त्वं सोम पवमानो विश्वानि दुरिता तर । कविः सीद नि बर्हिषि ॥ ३ ॥

३९४ पवमान स्वर्विदो जायमानोऽभवो महान् । इन्दो विश्वाँ अभीदसि ॥ ४ ॥

[६०]

(ऋषिः- अवत्सारः काश्यपः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री, ३ पुरउष्णिक् ।)

३९५ प्र गायत्रेण गायत पवमानं विचर्षणिम् । इन्दुं सहस्रचक्षसम् ॥ १ ॥

३९६ तं त्वा सहस्रचक्षस-मथो सहस्रभर्णसम् । अति वारमपाविषुः ॥ २ ॥

---

[५९]

अर्थ—[३९१] हे (सोम) सोम! (गोजित्) शत्रुकी गौवोंको जीतकर उनको अपने अधिकारमें लानेवाले, (अश्वजित्) शत्रुके घोडोंको जीतनेवाले (विश्वजित्) शत्रुके सर्वस्वको जीतनेवाले (रण्यजित्) शत्रुके पासके रमणीय पदार्थोंको जीतनेवाले तू (पवस्व) रसकी धारा पात्रमें छोडो और (प्रजावत् रत्नं आभर) प्रजायुक्त धन हमें भरपूर देओ ॥ १ ॥

[३९२] (अद्भ्यः पवस्व) जलोंमें मिला देनेके लिये रस निकालो, (अदाभ्यः ओषधिभ्यः पवस्व) न दब जानेवाला तू औषधियोंके उन्नतिके लिये रस निकालो (धिषणाभ्यः पवस्व) यज्ञमें सोम कुटनेके पत्थरोंके हितार्थ अपना रस निकालो ॥ २ ॥

[३९३] हे (सोम) सोम ! तू (पवमानः) शुद्ध होनेवाला (विश्वानि दुरिता तर) सब राक्षसों द्वारा बनाये संकट दूर करो और (कविः) ज्ञानी होकर (बर्हिषि निषीद) अपने आसन पर बैठ ॥ ३ ॥

[३९४] हे (पवमान) सोम ! तू (स्वर्विदः) सब जाननेवाला है, अतः सब उत्तम फल यजमानके लिये दे। तथा तू (जायमानः) उत्पन्न होतेही (महान् अभवः) बडा हुआ है। हे (इन्दो) सोम! तू (विश्वान् इत्) सब शत्रुओंको (अभि असि) दूर कर ॥ ४ ॥

१ स्वः विदः— तू सब जाननेवाला है । जो सब जानता है वह सबसे बडा होता है ।

२ जायमानः महान् अभवः— उत्पन्न होतेही बडा हुआ है । जन्मसे ही बडी शक्तिसे युक्त तू है ।

३ विश्वान् इत् अभि असि— सब शत्रुओंको परास्त करके सब शत्रुओंको दूर करनेवाला तू है ।

[६०]

[३९५] (विचर्षणिं) विशेष रीतिसे सबका निरीक्षण करनेवाले (सहस्र-चक्षसं) हजारों अवस्थाओंको देखनेवाले (पवमानं इन्दुं) छाने जानेवाले सोमको (गायत्रेण) गायत्री छंदके सामगानसे उसकी स्तुति स्तोत्रोंका (गायत) गायन करो ॥ १ ॥

सोमरस निकालनेके समय गायत्री छंदके स्तोत्रोंका सामगान करना चाहिये ।

[३९६] हे सोम ! (सहस्र चक्षसं) हजारोंको देखनेवाले (अथो) और (सहस्र भर्णसं) हजारोंका भरण पोषण करनेवाले (तं त्वा) उस तुझे (वारं अति अपाविषुः) बालोंकी छाननीमेंसे छानते हैं ॥ २ ॥

सोमरसको मेंढीके बालोंकी छाननीमेंसे छानकर ऋत्विज लोक शुद्ध करके लेते हैं ।

३९७ अति वारान् पवमानो असिष्यदत् कलशाँ अभि धावति । इन्द्रस्य हार्द्याविशन् ॥ ३ ॥
३९८ इन्द्रस्य सोम राधसे शं पवस्व विचर्षणे । प्रजावद्रेत आ भर ॥ ४ ॥

[६१]

(ऋषिः- अमहीयुराङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३९९ अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा । अवाहन् नवतीर्नव ॥ १ ॥
४०० पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शम्बरम् । अध त्यं तुर्वशं यदुम् ॥ २ ॥
४०१ परि णो अश्वमश्वविद्गोमदिन्दो हिरण्यवत् । क्षरा सहस्रिणीरिषः ॥ ३ ॥
४०२ पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः । सखित्वमा वृणीमहे ॥ ४ ॥

अर्थ— [३९७] (पवमानः) शुद्ध होनेवाला सोम (वारान् अति असिष्यत्) बालोंकी छाननीसे छाना जाता है। तथा (इन्द्रस्य हार्दि आविशन्) इन्द्रके हृदयमें प्रवेश करता हुआ (कलशान् अभि धावति) कलशोंमें दौडकर पहुंचता है ॥ ३ ॥

सोमरस शुद्ध करनेके लिये मेंढीके बालोंकी छाननीमेंसे छाना जाता है। और छाननेके पश्चात् इन्द्रके हृदयमें वह प्रवेश करनेके लिये कलशोंमें जाकर बैठता है।

[३९८] हे (विचर्षणे) विशेष रीतिसे देखनेवाले सोम ! तू (इन्द्रस्य राधसे) इन्द्रके प्रेमके लिये (शं पवस्व) शान्ति देनेवाला रस देवो और हमें (प्रजावत् रेतः आ भर) संतान देनेवाला वीर्य भरपूर दओ ॥ ४ ॥

१ इन्द्रस्य राधसे शं पवस्व— इन्द्रका प्रेम प्राप्त होनेके लिये उत्तम रस दे।

२ प्रजावत् रेतः आभर— प्रजा उत्पन्न कर सकनेवाला वीर्य हममें भरपूर बढाओ।

[६१]

[३९९] हे (इन्दो) सोम ! (अया वीती) इस रसको इन्द्रके भक्षणके लिये (परी स्रव) निकालो। (ते) तेरा (यः) जो रस (मदेषु) संग्रामोंमें (नवतीः नव) निन्यानवे शत्रुके नगरोंको (जधान) विनष्ट करता है ॥ १ ॥

१ ते यः मदेषु नवतीः नव जघान— तेरा वह रस संग्रामोंमें शत्रुके निन्यानवे नगरोंको नष्ट करता है। रस पीकर जो उत्साह सैनिकोंमें बढता है, उससे शत्रुके अनेक किले परास्त किये जा सकते हैं। और उन किलों पर अपना स्वामित्व प्रस्थापित किया जा सकता है।

[४००] (सद्यः) उसी समय (पुरः) शत्रुके नगरोंको तोडकर (इत्थाधिये दिवोदासाय) सत्यकर्म करनेवाले दिवोदासके हितार्थ (शंबरं तुर्वशं यदुं) शंबर, तुर्वश तथा यदुको जीतकर सोमने यश प्राप्त किया ॥ २ ॥

सैनिकोंने सोमरस पीकर उत्साह बढाया और दिवोदासके हितार्थ शंबर, तुर्वश तथा यदुको जीतकर विजय प्राप्त किया और उनके नगर तोड दिये।

[४०१] (नः) हमारे लिये, हे (इन्दो) सोम ! तू (अश्ववित्) अश्वविद्या जाननेवाला होकर (अश्वं) घोडे दे दो, तथा (गोमत्) गौवोंसे युक्त (हिरण्यवत्) सुवर्ण आदि धनसे युक्त (सहस्रिणीः इषः क्षर) सहस्रों प्रकारके अन्न युक्त धन प्रदान करो ॥ ३ ॥

हमारे लिये घोडे, गौवें तथा सुवर्ण आदि सहस्रों प्रकारका धन प्राप्त हो ऐसा करो।

[४०२] हे सोम ! (ते पवमानस्य) तुम सोमकी (वयं) हम (पवित्रं अभ्युन्दतः) पवित्रीकरण करते हुए (सखित्वं आ वृणीमहे) मित्रता संपादन करना चाहते हैं ॥ ४ ॥

४०३ ये ते पवित्रमूर्मयो ऽभिक्षरन्ति धारया । तेभिर्नः सोम मृळय ॥ ५ ॥
४०४ स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम् । ईशानः सोम विश्वतः ॥ ६ ॥
४०५ एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम् । समादित्येभिरख्यत ॥ ७ ॥
४०६ समिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ । सं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ ८ ॥
४०७ स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान् । चारुर्मित्रे वरुणे च ॥ ९ ॥
४०८ उच्चा ते जातमन्धसो दिवि षद्भूम्या ददे । उग्रं शर्म महि श्रवः ॥ १० ॥
४०९ एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् । सिषासन्तो वनामहे ॥ ११ ॥
४१० स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः । वरिवोवित् परि स्रव ॥ १२ ॥

अर्थ— [४०३] (ते ये ऊर्मयः) जो तेरे रस (धारया अभि क्षरन्ति) धारासे छाननीके नीचे उतरते हैं, हे (सोम) सोम ! (तेभिः नः मृळय) उनसे हमें सुखी कर ॥ ५ ॥

[४०४] हे (सोम) सोम ! (विश्वतः ईशानः) संपूर्ण जगत्का स्वामी (सः पुनानः) वह पवित्र होनेवाला सोम तू (नः) हमारे लिये (विरवतीं इषं) वीरपुत्र उत्पन्न करनेवाला अन्न तथा (रयिं) धन (आभर) भरपूर दे दो ॥ ६ ॥

[४०५] (सिन्धुमातरं त्यं) नदियां जिसकी माताएं हैं (एतं) इस सोमको (दशक्षिपः) दस अंगुलियां (मृजन्ति) शुद्ध करती हैं वह सोम (आदित्येभिः सं अरव्यत) आदित्य प्रकाशसे मिलकर रहता है ॥ ७ ॥

नदीके पानीमें सोमरस मिलाया जाता है और वह शुद्ध करनेके बाद सूर्य प्रकाशमें रखा जाता है ।

[४०६] (सुतः) रस निकाला सोम (पवित्रे आ एति) छाननीके ऊपर जाता है वहां (इन्द्रेण वायुना) इन्द्र तथा वायुके द्वारा (सूर्यस्य रश्मिभिः) सूर्यके किरणोंसे उस सोमका संबंध हो जाता है ॥ ८ ॥

[४०७] हे सोम ! (मधुमान् चारुः) मधुर और सुंदर (सः) वह रस (नः) हमारे यज्ञमें (भगाय वायवे) भग और वायुके लिये (पूष्णे) पूषाके लिये (मित्रे वरुणे च) मित्र और वरुणके लिये मिले ॥ ९ ॥

[४०८] हे सोम ! (ते अन्धसः) तेरे संबंधी रसका जन्म (उच्चा जातं) ऊंचे स्थानमें हुआ है । (दिवि-षद्) द्युलोकमें तू रहता है वह (भूमिः आददे) लेती है । वह (उग्रं शर्म) बडा सुखकारक और (महिश्रवः) महान अन्नरूप है ॥ १० ॥

सोमका जन्म ऊंचे पहाडके शिखरपर हुआ है । वहांसे वह सोम पृथिवी पर लाया जाता है । वह सोम बडा सुख देनेवाला अन्नरूप रहता है ।

[४०९] (एना) इस सोमसे (मानुषाणां विश्वा द्युम्नानि) मनुष्योंके सब अन्न हम (आ अर्यः) प्राप्त करते हैं, और उनका (वनामहे) उपभोग भी करते हैं ॥ ११ ॥

सोमसे अनेक अन्न तैयार किये जा सकते हैं, पकानेकी विधासे ये सोमके अनेक खाद्य पदार्थ तैयार हो सकते हैं ।

[४१०] हे सोम ! (वरिवोवित्) धनसे युक्त सोम (नः यज्यवे) हमारे यज्ञके योग्य (इन्द्राय वरुणाय मरुद्भ्यः) इन्द्र, वरुण तथा मरुतोंके लिये (परिस्रव) रस निकाल कर देओ ॥ १२ ॥

इस सोमका रस तैयार करेंगे और वह रस इन्द्र, वरुण तथा मरुतोंको अर्पण करेंगे । यज्ञमें यह समर्पण किया जाता है ।

४११ उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ १३ ॥
४१२ तमिद्वर्धन्तु नो गिरो वत्सं संशिश्वरीरिव । य इन्द्रस्य हृदंसनिः ॥ १४ ॥
४१३ अर्षा णः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् । वर्धा समुद्रमुक्थ्यम् ॥ १५ ॥
४१४ पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम् । ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥ १६ ॥
४१५ पवमानस्य ते रसो मदो राजन्नदुच्छुनः । वि वारमव्यमर्षति ॥ १७ ॥
४१६ पवमान रसस्तव दक्षो वि राजति द्युमान् । ज्योतिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥ १८ ॥

अर्थ— [४११] (सुजातं) उत्तम रीतिसे उत्पन्न हुए (अप्तुरं) जलमें मिश्रित होनेके लिये सिद्ध हुए (भङ्गं) शत्रुका नाश करनेवाले (गोभिः परिष्कृतं) गोदुग्धसे मिश्रित हुए (इन्दुं) सोमके पास (देवाः) सब देव (उप अयासिषुः) पहुंचे ॥ १३ ॥

सोमसे रस निकाला, उस रसमें जलका मिश्रण किया, गौका दूध उस रसमें मिलाया, ऐसे सोमका सेवन करनेके लिये यज्ञमें सब देव आकर पहुंचे हैं ॥

[४१२] (यः) जो सोम (इन्द्रस्य हृदंसनिः) इन्द्रके अंतःकरणमें रहता है, (तं इत्) उस सोमको ही (नः गिरः) हमारी स्तुतिरूप वाणियां (सं शिश्वरीः वत्सं इव) माता अपने बालकका सहाय्य करती है उसके समान स्तुति करके संवर्धन करें ॥ १४ ॥

[४१३] हे (सोम) सोम ! तू (नः गवे शं अर्ष) हमारी गौके लिये सुख दे दो । और (पिप्युषीं इषं धुक्षस्व) पोषक अन्न देओ । तथा (उक्थ्यं समुद्रं वर्ध) प्रशंसनीय जलको बढाओ ॥ १५ ॥

१ नः गवे शं अर्ष— हमारी गौवोंको सुख देओ ।

२ पिप्युषीं इषं धुक्षस्व — पोषण करनेवाला अन्न देवो ।

३ उक्थ्यं समुद्रं वर्ध — प्रशंसनीय जलको वृद्धिंगत करो । उत्तम शुद्ध जल पर्याप्त प्रमाणमें लेना योग्य है ।

[४१४] (पवमानः) सोम (बृहत् वैश्वानरं ज्योतिः) बडी वैश्वानर अग्निकी ज्योति (तन्यतुं चित्रं न) विद्युतके समान विशेष शोभायमान (अजीजनत्) उत्पन्न करता है ॥ १६ ॥

सोमरस चमकता है उसका तेज शोभायमान दीखता है । ज्योतीके समान वह सोम दीखता है । विद्युतके समान वह चमकता है ।

[४१५] हे (राजन्) सोम ! (पवमानस्य ते रसः) छाने जानेवाले तेरा रस (अदुच्छुनः) दुष्टता रहित तथा (मदः) आनंद बढानेवाला होकर (अव्यं वारं वि अर्षति) मेंढाके बालोंकी छाननीमेंसे नीचे उतरता हुआ छाना जाता है ॥ १७ ॥

सोमरस आनंद बढाता है, किसी प्रकार हानि नहीं करता । ऐसा यह रस मेंढीके बालोंकी छाननीमेंसे छाना जाता है ।

[४१६] हे (पवमान) सोम ! (तव रसः) तेरा रस (दक्षः) बलवान होकर (द्युमान्) तेजस्वी तथा (विराजति) विशेष प्रकाशमान होता है (विश्वं ज्योतिः स्वर्दृशे) सर्व विश्वको प्रकाशमान करता है ॥ १८ ॥

१ ते रसः दक्षः द्युमान् विराजति— तेरा रस बलवर्धक तथा तेजस्वी होकर शोभता है ।

२ विश्वं ज्योतिः स्वर्दृशे— सब विश्वको अपने प्रकाशसे प्रकाशित करता है ।

४१७ यस्ते मदो वरेण्य—स्तेना पवस्वान्धसा । देवावीरघशंसहा ॥ १९ ॥
४१८ जघ्निर्वृत्रममित्रियं सस्निर्वाजं दिवेदिवे । गोषा उ अश्वसा असि ॥ २० ॥
४१९ संमिश्लो अरुषो भव सूपस्थाभिर्न धेनुभिः । सीदञ्छ्येनो न योनिमा ॥ २१ ॥
४२० स पवस्व य आविथे—न्द्रं वृत्राय हन्तवे । वव्रिवांसं महीरपः ॥ २२ ॥
४२१ सुवीरासो वयं धना जयेम सोम मीढ्वः । पुनानो वर्ध नो गिरः ॥ २३ ॥
४२२ त्वोतासस्तवावसा स्याम वन्वन्त आमुरः । सोम व्रतेषु जागृहि ॥ २४ ॥

अर्थ— [४१७] हे सोम ! (यः ते मदः) जो तेरा आनंद देनेवाला (वरेण्यः) श्रेष्ठ (देवावीः) देवोंको प्रिय तथा (अघशंसहा) पापियोंका नाश करनेवाला रस है (तेन) उस रसके साथ (अन्धसा पवस्व) अन्नरूपमें प्राप्त होओ ॥ १९ ॥

सोमरस आनंद देनेवाला अतः देवोंको प्रिय है, पापका भाव नष्ट करता है और वह रस उत्तम अन्नके रूपमें प्राप्त होता है । सोमरस उत्तम अन्न है ।

[४१८] हे सोम ! तू (अमित्रिय मित्रं जघ्निः) शत्रुरूप अमित्रका नाश करता है । तथा (दिवे दिवे) प्रतिदिन (वाजं सस्निः) युद्ध करता है तथा तू (गोषा) गौवें देनेवाला तथा (अश्वसा) घोडे देनेवाला (असि) हो ॥ २० ॥

१ अमित्रियं मित्रं जघ्नि— शत्रुरूप होकर भी मित्रके भावको बतानेवाले शत्रुका नाश करो ।

२ दिवे दिवे वाजं सस्निः— प्रतिदिन शत्रुसे युद्ध कर ।

६ गोषा अश्वसा असि— गौवें और घोडे हमें देनेवाला तू हो ।

[४१९] हे सोम ! तू (सु उपस्थाभिः धेनुभिः) सुखसे रहनेवाली गौओंके दूधके साथ मिश्रित होकर (अरुषः भव) तेजस्वी होता है जैसा (श्येनः न) श्येन पक्षी (योनिं आ सीदन्) अपने स्थानमें आकर बैठता है । वैसा सोम गौके दूधसे मिश्रित होकर यज्ञमें बैठा रहे, और तेजस्वी दीखे ॥ २१ ॥

[४२०] हे सोम ! (यः) जो तू (महीः अपः वव्रिवांसं) बडे जलप्रवाहोंको रोकनेवाले (वृत्राय हन्तवे) वृत्रका नाश करनेके लिये (इंद्रं आविथ) इन्द्रका संरक्षण करता है वह तू (पवस्व) रसके रूपमें यहां रहो ॥ २२ ॥

[४२१] (सुवीरासः) उत्तम वीर पुरुष होकर (वयं) हम (धना जयेम) शत्रुके धनोंको जीतेंगे । (मीढ्वः सोम) रस निकाले सोम ! (पुनानः) शुद्ध होकर (नः गिरः वर्ध) हमारी स्तुतियोंको बढाओ ॥ २३ ॥

१ सुवीरासः वयं धना जयेम— उत्तम वीर पुरुष बनकर हम शत्रुके धनोंको जीतकर उन धनोंको अपने आधीन करेंगे ।

२ नः गिरः वर्ध— हमारी स्तुतिके स्तोत्रोंको बढावो ।

[४२२] हे (सोम) सोम ! (तव अवसा) तेरे रक्षणसे (त्वोतासः) सुरक्षित बने हमे (वन्वन्तं) शत्रुके समान आचरण करनेवालोंको (आमुरः) नाश करनेवाले (स्याम) होंगे । हे (सोम) सोम ! तू (व्रतेषु जागृहि) अपने नियमोंमें जाग्रत रहो ॥ २४ ॥

१ व्रतेषु जागृहि— अपने सुनियमोंमें जाग्रत रहकर उन सुनियमोंका पालन करना योग्य है ।

२ वन्वन्तं आमुरः— शत्रुका नाश करना चाहिये ।

४२३ अपघ्नन् पवते मृधो ऽप सोमो अराव्णः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ २५ ॥
४२४ महो नो राय आ भर पवमान जही मृधः । रास्वेन्दो वीरवद्यशः ॥ २६ ॥
४२५ न त्वा शतं चन हुतो राधो दित्सन्तमा मिनन् । यत् पुनानो मखस्यसे ॥ २७ ॥
४२६ पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने । विश्वा अप द्विषो जहि ॥ २८ ॥
४२७ अस्य ते सख्ये वयं तवेन्दो द्युम्न उत्तमे । सासह्याम पृतन्यतः ॥ २९ ॥

अर्थ— [४२३] (मृधः अपघ्नन्) शत्रुओंको मारकर, (अराव्णः अपघ्नन्) दान न देनेवाले शत्रुओंको मारकर (सोमः) सोमरस (इन्द्रस्य निष्कृतिं गच्छन्) इन्द्रके स्थानको जाता है ॥ २५ ॥

१ मृधः अपघ्नन्— शत्रुओंका नाश करना चाहिये ।

२ अराव्णः अपघ्नन्— दान न देनेवाले शत्रुओंका नाश करना चाहिये ।

३ इन्द्रस्य निष्कृतिं गच्छन्— इन्द्रके यज्ञीय स्थानके पास जाना चाहिये ।

[४२४] हे (पवमान) सोम (नः) हमारे लिये (महः रायः आभर) बहुत धन भरपूर दो, (मृधः जहि) हिंसक शत्रुओंको पराजित करो और हे (इन्दो) सोम ! तू हमें (वीरवत् यशः रास्व) वीर पुत्रवाला यश दे ॥ २६ ॥

१ नः महः रायः आभर— हमें बहुत धन दे ।

२ मृधः जहि— हिंसक शत्रुओंको पराजित करो ।

३ वीरवत् यशः रास्व— वीरपुत्र युक्त यश दो ।

[४२५] हे सोम ! (यत्) जब तू (पुनानः) शुद्ध होकर (मखस्यसे) यज्ञ करनेकी इच्छा करता है और (राधः दित्सन्तं) यज्ञ कर्ताओंको धन देनेकी इच्छा करता है, तब (शतं हुतः) सेंकडो शत्रु भी (न आ मिनन्) तेरी हिंसा नहीं कर सकते । ॥ २७ ॥

१ पुनानः मखस्यसे, राधः दित्सन्तं शतं हुतः न आ मिनन्— शुद्ध होकर यज्ञमें अपना समर्पण करता है और यज्ञके लिये धन देता है, उसको सेंकडो शत्रु भी विनष्ट नहीं कर सकते ।

[४२६] हे (इन्दो) सोम ! (वृषा सुतः) बलवान् रस निकाला तू (पवस्व) रस भरपूर रीतिसे दे । (जने) जनोंमें (नः यशसः कृधी) हमें यशस्वी कर । (विश्वाः द्विषः अपजहि) सब शत्रुओंको पराभूत कर ॥ २८ ॥

१ जनेनः यशसः कृधी— लोकोंमें हमें यशस्वी कर ।

२ विश्वाः द्विषः अपजहि— सब हमारे शत्रुओंको पराभूत कर ।

३ वृषा सुतः पवस्व— बलवर्धन करनेवाला तेरा रस हमें दे ।

[४२७] हे (इन्दो) सोम ! (अस्य ते सख्ये) इस तेरी मित्रतामें (वयं) हम (उत्तमे द्युम्ने) उत्तम अन्नमें तृप्त हुए (पृतन्यतः सासह्याम) सैन्य लेकर हमारे ऊपर आनेवाले शत्रुओंका हम पराभव कर सकेंगे ॥ २९ ॥

१ वयं पृतन्यतः सासह्याम— सैन्य लेकर हमारे उपर हमला करनेवाले शत्रुके आक्रमणका हम नाश करेंगे ।

२ अस्य ते सख्ये उत्तमे द्युम्ने पृतन्यतः सासह्याम— तेरी मित्रतामें और उत्तम तेजस्वितामें रहकर हम सैन्यसे हमपर हमला करनेवाले शत्रुका पराभव कर सकेंगे ।

४२८ या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे । रक्षा समस्य नो निदः ॥ ३० ॥

[६२]

(ऋषिः- जमदग्निर्भार्गवः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

४२९ एते असृग्रमिन्दव- स्तिरः पवित्रमाशवः । विश्वान्यभि सौभगा ॥ १ ॥
४३० विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः । तना कृण्वन्तो अर्वते ॥ २ ॥
४३१ कृण्वन्तो वरिवो गवे ऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम् । इळामस्मभ्यं संयतम् ॥ ३ ॥
४३२ असाव्यंशुर्मदाया- ऽप्सु दक्षो गिरिष्ठाः । श्येनो न योनिमासदत् ॥ ४ ॥

अर्थ— [४२८] (ते) तेरे (भीमानि आयुधा) भयंकर आयुध (धूर्वणे) शत्रुका वध करनेके लिये हैं वे आयुध (तिग्मानि सन्ति) अति तीक्ष्ण हैं, अतः उनसे (समस्य निदः नः रक्ष) सब हमारे शत्रुओंसे हमारी उत्तम सुरक्षा कर ॥ ३० ॥

वीरोंके पास उत्तम तीक्ष्ण आयुध रहे । वे आयुध शत्रुका नाश करनेमें समर्थ हों । हमारे शत्रुका पराभव करके हमारी उत्तम रक्षा करनेमें वे आयुध समर्थ हों ।

[६२]

[४२९] (आशवः) शीघ्रगामी (एते इन्दवः) ये सोमरस (पवित्रं) छाननीमेंसे (तिरः असृग्रं) नीचे उतर रहे हैं । (विश्वानि सौभगा अभि) सब प्रकारके सौभाग्य ये देते हैं ॥ १ ॥

सोमरस छाननीमेंसे छाना जाता है । यह सब प्रकारकी सुस्थिताएं देता है ।

[४३०] बलवान सोम (पुरु दुरिता विघ्नन्तः) बहुत पापोंका नाश करते हैं, (तोकाय) हमारे पुत्रोंके लिये तथा (वाजिनः) घोडोंके लिये (सुगा) सुख तथा (तना) धन (कृण्वन्तः) करते हुए छाननीमेंसे जाते हैं ॥ २ ॥

१ वाजिनः पुरु दुरिता निघ्नन्तः— सोम पापोंको दूर करते हैं ।

२ तोकाय वाजिनः सुगा तना कृण्वन्तः— पुत्रोंके लिये तथा घोडोंके लिये अथवा सामर्थ्यवानोंके लिये धन उत्तम रीतिसे प्राप्त हो ऐसा करते हैं ।

[४३१] (गवे) गौओंके लिये और (अस्मभ्यं) हमारे लिये (संयतं वरिवः) आकर्षित करनेवाला धन और (इळां) अन्न (कृण्वन्तः) तैयार करके देनेवाले ये सोम (सुष्टुतिं अभ्यर्षन्ति) उत्तम स्तुतिको प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

सोमसे गौवोंको तथा हमको धन और अन्न प्राप्त होता है, इसलिये इस सोमकी स्तुति की जाती है ।

[४३२] (गिरिष्ठाः) पर्वत पर उत्पन्न हुए (अंशुः) सोमका (मदाय असावि) आनंद देनेके लिये रस निकाला है । (अप्सु दक्षः) जलोंमें वह मिश्रित किया है । वह सोम (श्येनः न) श्येन पक्षीके समान यज्ञमें (योनिं आसदत्) अपने स्थान पर बैठता है ॥ ४ ॥

सोम पर्वतके शिखरपर उत्पन्न होता है, उसका रस पीनेसे आनंद होता है । वह सोमरस जलमें मिश्रित किया जाता है, और उस सोमरसको यज्ञमें अपने स्थानमें रखा जाता है ।

४३३ शुभ्रमन्धो देववात—मप्सु धूतो नृभिः सुतः । स्वदन्ति गावः पयोभिः ॥ ५ ॥
४३४ आदीमश्वं न हेतारो ऽशूशुभन्नमृताय । मध्वो रसं सधमादे ॥ ६ ॥
४३५ यास्ते धारा मधुश्चुतो ऽसृग्रमिन्द ऊतये । ताभिः पवित्रमासदः ॥ ७ ॥
४३६ सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो रोमाण्यव्यया । सीदन् योना वनेष्वा ॥ ८ ॥
४३७ त्वमिन्दो परि स्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः । वरिवोविद्घृतं पयः ॥ ९ ॥
४३८ अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति । हिन्वान आप्यं बृहत् ॥ १० ॥
४३९ एष वृषा वृषव्रतः पवमानो अशस्तिहा । करद्वसूनि दाशुषे ॥ ११ ॥

अर्थ— [४३३] (देववातं) देवोंको प्रिय यह सोमरस (शुभ्रं अन्धः) उत्तम स्वच्छ अन्न (गावः पयोभिः स्वदन्ति) गौवें अपने दूधसे स्वादु बनाती हैं। यह सोम (नृभिः सुतः) ऋत्विजोंके द्वारा रस निकाला (अप्सु धूतः) जलोंमें मिश्रित किया और शुद्ध किया है ॥ ५ ॥

१ देववातं शुभ्रं अन्धः— देवोंके लिये प्रिय ऐसा यह सोमरस तेजस्वी अन्न ही है।
२ गावः पयोभिः स्वदन्ति — गौवें अपने दूधसे उसको स्वादु बनाती हैं।
३ नृभिः सुतः अप्सु धूतः— याजकोंने यह रस निकाला और जलोंमें मिश्रित किया है।

[४३४] (आत्) पश्चात् (होतारः) याज्ञिक लोग (सधमादे) यज्ञमें (ईं) इस (मध्वः) मधुर सोमके रसको (अमृताय अश्वं न) अमर बननेके लिये जिस तरह घोडेको (अशूशुभन्) सुशोभित करते हैं वैसे दूध आदिके मिश्रणसे सोमको सुशोभित करते हैं ॥ ६ ॥

अश्वमेधमें घोडेको सुशोभित करते हैं, उस प्रकार सोमयागमें सोमरसको गोदुग्ध आदिके मिश्रणसे सुशोभित करते हैं।

[४३५] हे (इन्दो) सोम ! (ऊतये) संरक्षणके लिये (याः ते धाराः) जो तेरी रसकी धारायें (मधुश्च्युतः) मधु रसको स्रवनेवाला (ऊतये असृग्रन्) संरक्षणके लिये स्रवती हैं, उन धाराओंके साथ तू (पवित्रं आसदः) छाननीमें बैठ ॥ ७ ॥

यज्ञ सबके संरक्षणके लिये होता है। उस यज्ञमें सोमरसकी मधुर धारायें छाननीमेंसे छानी जाती हैं।

[४३६] (सः) वह सोम (इन्द्राय पीतये) इन्द्रके पीनेके लिये (अव्यया रोमाणि तिरः) मेंढीके बालोंकी छाननीमेंसे (अर्ष) नीचे उतरता है और (वनेषु योना आसीदन्) यज्ञके पात्रोंमें बैठता है ॥ ८ ॥

यज्ञमें सोमरस इन्द्रको पीनेके लिये दिया जाता है। वह रस मेंढीके बालोंकी छाननीसे छाना जाता है और छाना जानेपर वह यज्ञ पात्रोंमें रखा जाता है।

[४३७] हे (इन्दो) सोम ! (त्वं) तू (अंगिरोभ्यः) अंगिरोंके लिये (स्वादिष्ठः) मधुर लगनेवाला (वरिवो वित् घृतं पयः) अन्नके साथ घी और दूध (परिस्रव) दे दो ॥ ९ ॥

[४३८] (अयं) यह सोम (विचर्षणिः) विशेष दृष्टि देनेवाला (पवमानः) छाना जानेवाला (आप्यं बृहत् हिन्वानः) जलसे उत्पन्न होनेवाला बहुत अन्न देनेवाला (हितः) यज्ञ स्थानमें रखा है ॥ १० ॥

[४३९] (एषः वृषा) यह इच्छा पूर्ण करनेवाला (वृषव्रतः) बलवर्धक कार्य करनेवाला (अशस्ति- हा) दुष्टोंका नाश करनेवाला (पवमानः) सोम (वसूनि दाशुषे करत्) धनोंको दाताके लिये दिया करता है ॥ ११ ॥

१ दाशुषे वसूनि पवमानः करत्— दाताके लिये धन यह सोम देता है।
२ एष वृषा अशस्तिहा— यह बलवान सोम दुष्टोंका नाश करता है।

×

४४० आ पंवस्व सहस्रिणं रयिं गोमन्तमश्विनम् । पुरुश्चन्द्रं पुरुस्पृहंम् ॥ १२ ॥
४४१ एष स्य परि षिच्यते मर्मृज्यमान आयुभिः । उरुगायः कविक्रतुः ॥ १३ ॥
४४२ सहस्रोतिः शतामंघो विमानो रजंसः कविः । इन्द्राय पवते मदः ॥ १४ ॥
४४३ गिरा जात इह स्तुत इन्दुरिन्द्राय धीयते । विर्योना वसताविव ॥ १५ ॥
४४४ पवमानः सुतो नृभिः सोमो वाजमिवासरत् । चमूषु शक्मनासदम् ॥ १६ ॥
४४५ तं त्रिपृष्ठे त्रिवन्धुरे रथे युञ्जन्ति यातवे । ऋषीणां सप्त धीतिभिः ॥ १७ ॥
४४६ तं सोतारो धनस्पृतमाशुं वाजाय यातवे । हरिं हिनोत वाजिनम् ॥ १८ ॥

अर्थ— [४४०] (गोमन्तं) गौओंसे युक्त (अश्विनं) घोडोंसे युक्त (पुरुश्चन्द्रं) तेजस्वी (पुरुस्पृहं) अनेकोंके लिये अभीप्सित (सहस्रिणं रयिं) सहस्रों प्रकारका धन (आ पवस्व) हमें दे दो ॥ १२ ॥

[४४१] (उरुगायः) जिसकी बहुत स्तुति होती है, (कविक्रतुः) जो ज्ञान पूर्वक कर्म करता है, (आयुभिः मर्मृज्यमानः) याजकों द्वारा शुद्ध होनेवाला (एषः स्यः) यह वह सोम (परिषिच्यते) रस निकाला जाता है ॥ १३ ॥

यज्ञमें यज्ञ करनेवाले ऋत्विज सोमका रस निकालनेके समय उसकी स्तुति करते हैं और उसका रस निकालते हैं।

[४४२] (सहस्रोतिः) सहस्रों प्रकारोंसे रक्षण करनेवाला (शतामघः) सैंकडो प्रकारोंके धन देनेवाला (रजसः विमानः) रजो लोकको निर्माण करनेवाला (कविः) ज्ञानी (मदः) आनंद बढानेवाला सोम (इन्द्राय पवते) इन्द्रको देनेके लिये शुद्ध किया जाता है ॥ १४ ॥

[४४३] (जातः इन्दुः) रस निकाला सोम (गिरा स्तुतः) हमारी वाणीसे स्तुति किया गया (इह) इस यज्ञमें (इन्द्राय धीयते) इन्द्रके लिये रखा रहता है (विः) पक्षी जैसा (योना वसतौ इव) अपने घरमें रहता है ॥ १५ ॥

यज्ञमें ऋत्विज लोक सोमकी तथा इन्द्रकी स्तुति गाते हैं और सोमसे रस निकालकर वह रस इन्द्रको देनेके लिये रखते हैं।

[४४४] (पवमानः नृभिः सुतः सोमः) शुद्ध किया गया याजकोंके द्वारा रस निकाला सोम (वाजं इव) वीर युद्धमें जाते हैं वैसा (चमूषु शक्मना आसदम्) पात्रोंमें अपने सामर्थ्यसे जाता है।

याजक सोमका रस निकालते हैं और उस रसको शुद्ध करके यज्ञके पात्रोंमें रखते हैं।

[४४५] (त्री-पृष्ठे) तीन सवनोंके (त्रि वन्धुरे) तीन वेदोंके (ऋषीणां रथे) ऋषियोंके यज्ञरूपी रथमें (सप्त धीतिभिः) सात छंदोंके द्वारा (यातवे) देवोंके पास जानेके लिये ऋषि इसकी योजना करते हैं ॥ १७ ॥

सोमरसको यज्ञके रथमें बिठलाते हैं और उसको इन्द्रादि देवोंके समीप पहुंचाते हैं। उस समय सात छंदोंके मंत्र बोले जाते हैं।

तीन यज्ञके सवन होते हैं, प्रातः सवन, माध्यंदिन सवन और सायं सवन। इन तीन सवनोंमें तीन स्वरोंमें वेदमंत्र बोले जाते हैं।

[४४६] (सोतारः) सोमसे रस निकालनेवाले ऋत्विज (वाजाय यातवे) युद्धमें जानेके लिये वीर (तं आशुं धनस्पृतं हरिं) उस त्वरासे युद्धमें जानेके लिये सिद्ध हुए घोडेको जैसे युद्धमें भेजते हैं उस प्रकार (वाजिनं हरिं हिनोत) बलवान् हरे रंगके सोमको यज्ञमें प्रेरित करें ॥ १८ ॥

सोमसे रस निकालकर उस रसको देवोंको देनेके लिये यज्ञमें समर्पित करें।

४४७ आविशन् कलशं सुतो विश्वा अर्षन्नभि श्रियः । शूरो न गोषु तिष्ठति ॥ १९ ॥
४४८ आ तं इन्दो मदाय कं पयो दुहन्त्यायवः । देवा देवेभ्यो मधु ॥ २० ॥
४४९ आ नः सोमं पवित्र आ सृजता मधुमत्तमम् । देवेभ्यो देवश्रुत्तमम् ॥ २१ ॥
४५० एते सोमा असृक्षत गृणानाः श्रवसे महे । मदिन्तमस्य धारया ॥ २२ ॥
४५१ अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि । सनद्वाजः परि स्रव ॥ २३ ॥
४५२ उत नो गोमतीरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुभः । गृणानो जमदग्निना ॥ २४ ॥
४५३ पवस्व वाचो अग्रियः सोम चित्राभिरूतिभिः । अभि विश्वानि काव्या ॥ २५ ॥

अर्थ— [४४७] (सुतः) रस निकाला सोम (कलशं आविशन् तिष्ठति) कलशमें आकर रहता है और (विश्वाः श्रियः) सब शोभाएं देता हुआ (गोषु शूरः न तिष्ठति) गौवोंमें जैसा शूर रहता है वैसा सोम यज्ञोंमें रहता है ॥ १९ ॥

१ सोमः विश्वा श्रियः— सोम सब शोभाएं देता है । सब प्रकारकी शोभाएं बढानी योग्य हैं । पर शोभाएं बढानेके कार्यमें अपना कर्तव्य भूलना नहीं चाहिये ।

२ गोषु शूरः तिष्ठति— गौओंका रक्षण शूर पुरुष करता है । शूर पुरुष गौओंमें रहे और उनका संरक्षण करे ।

[४४८] हे (इन्दो) सोम ! (देवाः) सब देव तथा (आयवः) सब ऋत्विज लोग (देवेभ्यः) देवोंको (मदाय) आनंद देनेके लिये (मधु पयः) मधुर दुग्धमिश्रित रस (दुहन्ति) निकालते हैं ॥ २० ॥

यज्ञमें देवोंको देनेके लिये सब देव तथा सब ऋत्विज लोग मिलकर सोमका रस निकालते हैं, और वह रस यज्ञमें देवोंको दिया जाता है । उस रसको पीकर सब आनंदित होते हैं ।

[४४९] हे ऋत्विजो ! (देवेभ्यः देवश्रुत्तमं) देवोंके लिये अत्यंत प्रिय (मधुमत्तमं) अतिमधुर (नः सोमं) हमारे सोमको (पवित्रे) छाननीमें (आ सृजत) रखो ॥ २१ ॥

[४५०] (गृणानाः) स्तुती किये गये (एते सोमाः) ये सोमरस (महे श्रवसे) बडे अन्नके प्राप्तिके लिये (मदिन्तमस्य धारया) आनंद बढानेवाले रसकी धारासे (असृक्षत) उत्पन्न होते हैं ॥ २२ ॥

सोम उत्तम अन्न है और वह बडा आनंद देनेवाला है । यह सोमरूपी अन्न धारासे यज्ञके पात्रोंमें छाननीमेंसे उतरता है ।

[४५१] हे सोम ! (पुनानः) पवित्र होता हुआ (वीतये) भक्षण करनेके समय (गव्यानि नृम्णा) गौओंसे मिलनेवाले दूध आदि पदार्थोंके साथ (अभि अर्षसि) मिलता है, ऐसा तू (सनद्वाजः) अन्न देता हुआ (परि-स्रव) छाना जा ॥ २३ ॥

सोमरस पीनेके लिये उसमें गौका दूध मिलाया जाता है और वह उत्तम रीतिसे छाननेके पश्चात् पीया जाता है ।

[४५२] (जमदग्निना गृणानः) जमदग्नि ऋषिके द्वारा (परिष्टुभः) स्तुति किया गया तू (उत नः गोमतीः विश्वाः इषः) हमारे गोदुग्ध मिश्रित सब अन्नोंको (अर्ष) प्राप्त हो ॥ २४ ॥

जमदग्नि ऋषि सोमकी स्तुति करते हैं । गोदुग्ध मिश्रित अनेक प्रकारके अन्नोंके साथ सोमरस तैयार होता है । पश्चात् वह रस और अन्न देवोंको यज्ञमें दिया जाता है ।

[४५३] हे (सोम) सोम ! (अग्रियः) तू मुख्य है, (चित्राभिः ऊतिभिः) शक्ति युक्त संरक्षणोंके तथा (वाचः पवस्व) हमारी स्तुतिरूप वाणियोंके साथ यज्ञमें छाना जा और (विश्वानि काव्या अभि पवस्व) सब प्रकारकी स्तुतिरूपी काव्योंको प्राप्त हो ॥ २५ ॥

४५४ त्वं समुद्रिया अपो ऽग्रियो वाचं ईरयन् । पवस्व विश्वमेजय ॥ २६ ॥
४५५ तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे । तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः ॥ २७ ॥
४५६ प्र ते दिवो न वृष्टयो धारा यन्त्यसश्चतः । अभि शुक्रामुपस्तिरम् ॥ २८ ॥
४५७ इन्द्रायेन्दुं पुनीतनो ग्रं दक्षाय साधनम् । ईशानं वीतिराधसम् ॥ २९ ॥
४५८ पवमान ऋतः कविः सोमः पवित्रमासदत् । दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ३० ॥

[६३]

(ऋषिः- निध्रुविः काश्यपः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

४५९ आ पवस्व सहस्रिणं रयिं सोम सुवीर्यम् । अस्मे श्रवांसि धारय ॥ १ ॥

अर्थ— [४५४] हे (विश्वमेजय) विश्वमें प्रेरणा करनेवाले सोम ! (अग्रियः) मुख्य तू है, (वाचः ईरयन्) वाणीको प्रेरित करता हुआ (समुद्रिया अपः) अन्तरिक्षके जलोंको चलानेकी प्रेरणा कर और (पवस्व) रस उत्पन्न कर ॥ २६ ॥

सोम स्तुति करनेवाले याजकोंको स्तुति करनेकी प्रेरणा देता है, और जलोंको अपने अन्दर लाकर अपनेमें मिश्रित होनेकी प्रेरणा देता है ।

[४५५] हे (कवे सोम) काव्यकी प्रेरणा देनेवाले सोम ! (तुभ्यं) तेरे (महिम्ने) महिमाके लिये ही (इमा भुवना) ये सब भुवन (तस्थिरे) सुस्थिर होकर रहे हैं। तथा (सिन्धवः) नदीयां (तुभ्यं अर्षन्ति) तुम्हारे लिये ही चल रही हैं ॥ २७ ॥

सोमकी इतनी महत्ती है कि ये सब भुवन सोमके लिये स्थिर रहे हैं और नदियां उस सोमरसमें अपना जल मिलानेके लिये ही चल रही हैं । सोमरसमें नदियोंका जल मिलाया जाता है और सोमयज्ञसे ही यह विश्व सुरक्षित रहा है ।

[४५६] हे सोम ! (दिवः वृष्टयः न) द्युलोकसे वृष्टि होनेके समान (ते) तेरी (असश्चतः धाराः) चलनेवाली रसकी धाराएं (शुक्रां उपस्तिरं अभि) शुद्ध छाननीके पाससे चल रही हैं ॥ २८ ॥

[४५७] हे ऋत्विजो ! (उग्रं) विशेष प्रभावी (दक्षाय साधनं) बलका साधन (ईशानं) धनोंके स्वामी ऐसे (वीतिराधसं) धन देनेवाले (इन्दुं) सोमको (इन्द्राय पुनीतन) इन्द्रके लिये रस निकालो ॥ २९ ॥

सोम बल बढानेका मुख्य साधन है । वह सोम याजकोंके लिये धन देता है । उस सोमका रस इन्द्रको देनेके लिये निकालो ।

[४५८] (ऋतः कविः) सत्यदर्शी कवि (पवमानः सोमः) रस निकाला सोम (स्तोत्रे सुवीर्यं दधत्) स्तोताके लिये उत्तम बल देता हुआ (पवित्रं आसदत्) छाननीपर आता है ॥ ३० ॥

[६३]

[४५९] हे (सोम) सोम ! तू (सुवीर्यं सहस्रिणं रयिं) उत्तम वीर्ययुक्त सहस्र प्रकारका धन (आ पवस्व) हमारे लिये दे, तथा (अस्मे) हमारे लिये (श्रवांसि धारय) अन्नोंको देओ ॥ १ ॥

१ सुवीर्यं सहस्रिणं रयिं आ पवस्व— उत्तम पराक्रम करनेवाला सहस्रों प्रकारका धन हमें दे ।

२ अस्मे श्रवांसि धारय— हमारे लिये अनेक प्रकारके अन्न दे ।

४६० इषमूर्जं च पिन्वस इन्द्राय मत्सरिन्तमः	। चमूष्वा नि षीदसि	॥ २ ॥
४६१ सुत इन्द्राय विष्णवे सोमः कलशे अक्षरत्	। मधुमाँ अस्तु वायवे	॥ ३ ॥
४६२ एते असृग्रमाशवो ऽति ह्वरांसि बभ्रवः	। सोमा ऋतस्य धारया	॥ ४ ॥
४६३ इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्	। अपघ्नन्तो अराव्णः	॥ ५ ॥
४६४ सुता अनु स्वमा रजो ऽभ्यर्षन्ति बभ्रवः	। इन्द्रं गच्छन्त इन्दवः	॥ ६ ॥
४६५ अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः	। हिन्वानो मानुषीरपः	॥ ७ ॥
४६६ अयुक्त सूर एतशं पवमानो मनावधि	। अन्तरिक्षेण यातवे	॥ ८ ॥

अर्थ— [४६०] हे सोम ! (मत्सरिन्तमः) अत्यंत आनंद देनेवाला तू (इन्द्राय) इन्द्रके लिये (इषं ऊर्जं च) अन्न और रस (पिन्वसे) निकालो । तू (चमूषु आ सीदसि) यज्ञ पात्रोंमें बैठता है ॥ २ ॥

१ सोमः मत्सरिन्तमः— सोमरस अत्यंत आनंद देनेवाला है ।

२ इन्द्राय इषं ऊर्जं पिन्वसे— इन्द्रके लिये अन्न तथा रस तू देता है ।

[४६१] (इन्द्राय विष्णवे वायवे) इन्द्र, विष्णु और वायुके लिये (सुतः सोमः) रस निकाला सोम (कलशे अक्षरत) कलशमें जाता है । वह सोमरस (मधुमान् अस्तु) मीठा होकर रहे ॥ ३ ॥

[४६२] (बभ्रवः एते आशवः सोमाः) भूरे रंगके ये शीघ्रगामी सोमरस (ऋतस्य धारया असृग्रं) जलकी धाराके साथ उत्पन्न किये जाते है ।

जलमें सोमरस मिलाया जाता है । पश्चात् उसका यज्ञ किया जाता है ।

[४६३] (इन्द्रं वर्धन्तः) इन्द्रका सन्मान बढानेवाले (अप्तुरः) उदकके साथ जानेवाले (विश्वं आर्यं कृण्वन्तः) विश्वको आर्य बनानेवाले (अराव्णः अपघ्नन्तः) दान न देनेवालोंको मारनेवाले ये सोम हैं ॥ ५ ॥

१ इन्द्रं वर्धन्तः— इन्द्रका सन्मान बढानेवाले सोम हैं ।

२ अप्तुरः— जलके साथ मिश्रित ये सोमरस होते हैं ।

३ विश्वं आर्यं कृण्वन्तः— संपूर्ण विश्वको आर्यधर्ममें लेनेवाले ये हैं ।

४ अराव्णः अपघ्नन्तः— दान न देनेवाले दुष्टोंका नाश ये करते हैं ।

[४६४] (बभ्रवः) भूरे रंगके (सुताः इन्दवः) रस निकाले सोम (इन्द्रं आ गच्छन्तः) इन्द्रके समीप जाते हैं उस समय वे (स्वं रजः अनु अभ्यर्षन्ति) अपने स्थानको प्राप्त करते हैं ॥ ६ ॥

इन्द्रके पास जानेके लिये सोमरस तैयार रहते हैं, उस समय वे अपने स्थानमें प्रथम जाते हैं और पश्चात् इन्द्रके पास जाते हैं ।

[४६५] हे सोम (मानुषीः अपः हिन्वानः) मनुष्योंके लिये हितकारी जलोंको प्रेरणा करनेवाला (यया धारया सूर्यं अरोचयः) जिस धारासे तूने सूर्यको प्रकाशित किया (अया पवस्व) उस धारासे यहां रस निकालो ॥ ७ ॥

[४६६] (पवमानः) सोमरस (अन्तरिक्षेण यातवे) अन्तरिक्षमेंसे जानेके लिये (मनौ आधि) मनुष्यमें (सूरः एतशं अयुक्त) सूर्यके घोडेके साथ मिलता है ॥ ८ ॥

सूर्यके किरणोंसे सोमरस अन्तरिक्षमें गमन करता है । सूर्यके किरण उस सोमरसको लेकर अन्तरिक्षमें जाते हैं । सूर्य किरणोंके द्वारा सोमरस अन्तरिक्षमें जाते हैं ।

४६७ उत त्या हरितो दश सूरो अयुक्त यातवे । इन्दुरिन्द्र इति ब्रुवन् ॥ ९ ॥
४६८ परीतो वायवे सुतं गिर इन्द्राय मत्सरम् । अव्यो वारेषु सिञ्चत ॥ १० ॥
४६९ पवमान विदा रयिमस्मभ्यं सोम दुष्टरम् । यो दूणाशो वनुष्यता ॥ ११ ॥
४७० अभ्यर्ष सहस्रिणं रयिं गोमन्तमश्विनम् । अभि वाजमुत श्रवः ॥ १२ ॥
४७१ सोमो देवो न सूर्योऽद्रिभिः पवते सुतः । दधानः कलशे रसम् ॥ १३ ॥
४७२ एते धामान्यार्या शुक्रा ऋतस्य धारया । वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥ १४ ॥
४७३ सुता इन्द्राय वज्रिणे सोमासो दध्याशिरः । पवित्रमत्यक्षरन् ॥ १५ ॥
४७४ प्र सोम मधुमत्तमो राये अर्ष पवित्र आ । मदो यो देववीतमः ॥ १६ ॥
४७५ तमीं मृजन्त्यायवो हरिं नदीषु वाजिनम् । इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥ १७ ॥

अर्थ—[४६७] (उत) और (इन्दुः) सोम (इन्द्रः इति ब्रुवन्) इन्द्र ऐसा बोलता हुआ (सूरः) सूर्यके (यातवे) जानेके लिये (त्या दश हरितः) उन दस घोडोंको जोडता है ॥ ९ ॥

[४६८] हे (गिरः) स्तुति करनेवाले ऋत्विजो ! तुम (वायवे) वायुके लिये और (इन्द्राय) इन्द्रके लिये (सुतं मत्सरं) रस निकाले आनंददायक सोमरसको (अव्यः वारेषु) मेंढीके बालोंकी छाननीयोंमें (इतः परि सिंचत) छानो ॥ १० ॥

[४६९] (पवमान सोम) हे शुद्ध होनेवाला सोमरस ! (यः वनुष्यता दूणाशः) शत्रुसे नष्ट न होनेवाला धन है उस (दुष्टरं रयिं) विनष्ट न होनेवाले धनको (अस्मभ्यं विदा) हमें देओ ॥ ११ ॥

हमें ऐसा धन मिले जो शत्रुसे विनष्ट न हो सके ।

[४७०] हे सोम ! (गोमन्तं आश्विनं) गौवोंसे युक्त तथा घोडोंसे युक्त (सहस्रिणं रयिं) सहस्रों प्रकारका धन (अभ्यर्ष) हमें दे और (वाजं उत श्रवः अभि अर्ष) बल और अन्न हमें दो ॥ १२ ॥

[४७१] (देवः न) देवके समान (सूर्यः) तेजस्वी (सोमः) सोम (अद्रिभिः सुतः) पत्थरोंसे कूटकर निकाला रस (कलशे रसं दधानः) कलशमें रसको रखता है ॥ १३ ॥

[४७२] (एते) ये (आर्याः शुक्राः) श्रेष्ठ और स्वच्छ सोमरस (ऋतस्य धारया) जलकी धाराके साथ (धामानि) याजकोंके गृहोंमें (गोमन्तं वाजं) गौके दूधके साथ अन्न (अक्षरन्) देते हैं ॥ १४ ॥

इन सोमके रसोंमें जल मिलाया जाता है तथा गौका दूध भी उस सोमरसमें मिलाया जाता है । पश्चात् उस सोमरसका उपयोग यज्ञमें किया जाता है ।

[४७३] (सोमासः सुताः) सोमका रस निकाला (दध्याशिरः) दहीके साथ उसका मिश्रण किया (इन्द्राय वज्रिणे) वज्रधारी इन्द्रके लिये देनेके कारण (पवित्रं अक्षरन्) छाननीमेंसे छाने जाने लगा ॥ १५ ॥

सोमका रस निकालते हैं, उसका दहीके साथ मिश्रण किया जाता है और इन्द्रको देनेके पूर्व वह छाननीसे छाना जाता है । छानकर उस रसको पात्रमें रख देते हैं और पश्चात् इन्द्रको अर्पण किया जाता है ।

[४७४] हे (सोम) सोम ! तेरा (यः मदः देववीतमः) जो आनंद देनेवाला तथा देवोंके लिये अति प्रिय रस है (राये) ऐश्वर्य बढानेके लिये वह रस (पवित्रे आ अर्ष) छाननीमेंसे छाना जाय ॥ १६ ॥

[४७५] (तं हरिं इन्दुं) उस हरे वर्णके (इन्द्राय मत्सरं) इन्द्रको आनंद देनेवाला (आयवः) ऋत्विज लोग (वाजिनं नदीषु) बल बढानेवाले सोमको नदीके जलमें (मृजन्ति) शुद्ध करते हैं ॥ १७ ॥

सोमका इन्द्रको देनेके लिये रस निकाला जाता है, उस रसमें जल मिलाकर उस रसको छाननीमेंसे छानते हैं और वह रस इन्द्रको यज्ञ करनेवाले ऋत्विज देते हैं ।

४७६ आ पवस्व हिरण्यव — दश्वावत् सोम वीरवत् । वाजं गोमन्तमा भर ॥ १८ ॥
४७७ परि वाजे न वाजयु — मव्यो वारेषु सिञ्चत । इन्द्राय मधुमत्तमम् ॥ १९ ॥
४७८ कविं मृजन्ति मर्ज्यं धीभिर्विप्रा अवस्यवः । वृषा कनिक्रदर्षति ॥ २० ॥
४७९ वृषणं धीभिरप्तुरं सोममृतस्य धारया । मती विप्राः समस्वरन् ॥ २१ ॥
४८० पवस्व देवायुष — गिन्द्रं गच्छतु ते मदः । वायुमा रोह धर्मणा ॥ २२ ॥
४८१ पवमान नि तोशसे रयिं सोम श्रवाय्यम् । प्रियः समुद्रमा विश ॥ २३ ॥
४८२ अपघ्नन् पवसे मृधः क्रतुवित् सोम मत्सरः । नुदस्वादेवयुं जनम् ॥ २४ ॥

अर्थ— [४७६] हे (सोम) तू हमारे लिये (हिरण्यवत् सुवर्ण आदि धनसे युक्त (अश्वावत्) घोडोंसे युक्त (वीरवत्) वीरपुत्रोंसे युक्त धन (आ पवस्व) देवो तथा (गोमन्तं वाजं आभर) गौओंके दूधसे युक्त अन्न भरपूर दो ॥ १८ ॥

[४७७] (वाजे न वाजयुं) युद्धमें युद्ध करनेकी इच्छा करनेवाले वीरको जैसा भेजते हैं, उस प्रकार (अव्यः वारेषु) मेंढोंके बालोंकी छाननीमें (इन्द्राय मधुमत्तमं) इन्द्रके लिये अति मधुर रसको (परि सिंचत) छाननेके लिये छोडो ॥ १९ ॥

१ वाजे वाजयुं न — युद्धमें युद्धकी इच्छा करनेवाले वीरको भेजते हैं उस प्रकार तुम इस रसको इन्द्रके लिये देवो ।

[४७८] (अवस्यवः विप्राः) अपना संरक्षण करनेकी इच्छा करनेवाले विद्वान् (धीभिः) अपनी अंगुलियोंसे (मर्ज्यं कविं मृजन्ति) शुद्ध होनेवाले ज्ञानवर्धन करनेवाले सोमको शुद्ध करते हैं, वह (वृषा) बलवर्धन करनेवाला सोम (कनिक्रदत् अर्षति) शब्द करता हुआ पात्रमें गिरता है ॥ २० ॥

[४७९] (वृषणं) बल बढानेवाले (अप्तुरं) जलके साथ मिलनेवाले (सोमं) सोमरसकी (ऋतस्य धारया) जलकी धाराके साथ (धीभिः) स्तोत्रोंके द्वारा (मती) अपनी बुद्धिके अनुसार (विप्राः समस्वरन्) ज्ञानी स्तुति गाते हैं ॥ २१ ॥

[४८०] हे (देव) देव सोम ! (पवस्व) तूं छाना जा (ते मदः) तेरा यह आनंद देनेवाला रस (इन्द्रं गच्छतु) इन्द्रके पास जावे । (धर्मणा वायुं आरोह) अपने कर्तव्यके साथ वायुपर चढ ॥ २२ ॥

१ ते मदः इन्द्रं गच्छतु — तेरा आनंद बढानेवाला रस इन्द्रके पास जावे ।

२ धर्मणा वायुं आरोह — अपनी शक्तिसे तू वायुमें चढो । सोम रस पीनेसे शक्ति बढती है और उस शक्तिके कारण वह मनुष्य ऊंचे स्थान पर अच्छी प्रकार चढ सकता है ।

[४८१] हे (पवमान सोम) रस निकाले सोम ! (श्रवाय्यं रयिं) वर्णनीय ऐसे शत्रुके धनको (नितोशसे) शत्रुसे निकाल कर देता है ऐसा तू (प्रियः) सबको प्रिय होकर (समुद्रं आ विश) जलमें मिलकर रह ॥ २३ ॥

१ श्रवाय्यं रयिं नितोशसे — प्रशंसनीय धन देता है ।

२ प्रियः समुद्रं आ विश — प्रिय होकर उत्तम जीवन चलाओ ।

४८३ पव॑माना असृक्षत सोमा॑: शुक्रास॒ इन्द॑वः । अ॒भि विश्वा॑नि॒ काव्या॑ ॥ २५ ॥
४८४ पव॑मानास आ॒शवः॑ शु॒भ्रा अ॑सृग्रमिन्द॑वः । घ्नन्तो॒ विश्वा॒ अप॒ द्विषः॑ ॥ २६ ॥
४८५ पव॑माना दि॒वस्प॒र्यन्तरि॑क्षादसृक्षत । पृ॒थि॒व्या अधि॒ सान॑वि ॥ २७ ॥
४८६ पु॒नानः सो॑म॒ धार॒येन्दो॒ विश्वा॒ अप॒ स्रिधः॑ । ज॒हि रक्षां॑सि सुक्रतो ॥ २८ ॥
४८७ अ॒प॒घ्नन् त्सो॑म र॒क्षसो॒ऽभ्य॑र्ष॒ कनि॑क्रदत् । द्यु॒मन्तं॒ शुष्म॑मुत्त॒मम् ॥ २९ ॥
४८८ अ॒स्मे वसू॑नि धारय॒ सोम॑ दि॒व्यानि॒ पार्थि॑वा । इन्दो॒ विश्वा॑नि॒ वार्या॑ ॥ ३० ॥

अर्थ— [४८२] हे (सोम) सोम ! (मत्सरः) आनंद बढानेवाला तू (मृधः अपघ्नन्) दुष्ट शत्रुओंका विनाश करता है और (क्रतुवित्) उत्तम कर्म करना जानता है (अदेवयुं जनं नुदस्व) राक्षस वर्गके लोगोंको दूर कर ॥ २४ ॥

१ मत्सरः मृधः अपघ्नन्— आनंद बढानेवाला वीर शत्रुओंको दूर करता है ।

२ क्रतुवित् अदेवयुं जनं नुदस्व— अच्छे कर्मोंको जाननेवाला तू राक्षसों जैसे जनोंको दूर करो।

[४८३] (पवमानाः) रस निकाले (शुक्रासः इन्दवः सोमाः) शुद्ध चमकनेवाले सोमरस (विश्वानि काव्या अभि असृक्षत) अनेक स्तोत्र निर्माण करता है ॥ २५ ॥

सोमपर अनेक स्तोत्र किये जाते हैं और वे गाये जाते हैं ।

[४८४] (पवमानासः) रस निकाले (आशवः शुभ्रा इन्दवः) शीघ्रगामी शुभ्र वर्णके सोमरस (विश्वाः द्विषः अपघ्नन्तः) सब शत्रुओंका नाश करते हुए (असृग्रं) उत्पन्न होते हैं ॥ २६ ॥

[४८५] (पवमानाः) रस निकाले सोम (दिवः परि) द्युलोकके उपरसे (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्षसे (पृथिव्या सानवि अधि) तथा पृथिवी परके ऊंचे भागसे (असृक्षत) तैयार किये जाते हैं ॥ २७ ॥

द्युलोक, अन्तरिक्ष तथा पृथिवीके ऊंचे पर्वतके जैसे स्थानसे सोम लाया जाता है । सोम वनस्पति पर्वत जैसे ऊंचे स्थानमें उगती है, अतः यह सोम ऊंचे स्थानसेही लाया जाता है ।

[४८६] हे (इन्दो सुक्रतो सोम) तेजस्वी उत्तम यज्ञरूप कर्म करनेवाले सोम ! (विश्वाः स्रिधः अप-जहि) सब शत्रुओंको पराजित करके दूर कर (रक्षांसि अप जहि) राक्षसोंको दूर कर और (धारया पुनानः) धारासे छाननीमेंसे शुद्ध बनो ॥ २८ ॥

१ विश्वाः स्रिधः अप जहि— सब शत्रुओंको पराजित करके दूर कर।

२ रक्षांसि अप जहि— सब राक्षसोंको पराजित करके दूर कर ।

३ पुनानः— स्वयं शुद्ध रहो, शुद्ध होकर विराजो ।

[४८७] हे (सोम) सोम ! (राक्षसः अपघ्नन्) राक्षसोंका विनाश करके (कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ तू (उत्तमं द्युमन्तं शुष्मं) उत्तम तेजस्वी बल (अभि अर्ष) हमें दे ॥ २९ ॥

१ रक्षसः अपघ्नन्— राक्षसोंका नाश कर ।

२ उत्तमं द्युमन्तं शुष्मं अभि अर्ष— उत्तम तेजस्वी बल हमें प्राप्त हो ऐसा कर ।

[४८८] हे सोम ! (दिव्यानि) द्युलोकमें उत्पन्न हुए तथा (पार्थिवा) पृथिवी पर उत्पन्न हुए (विश्वानि वार्या) सब स्वीकारने योग्य (वसूनि) धन (अस्मे धारय) हमें देओ ॥ ३० ॥

द्युलोकमें तथा पृथिवीपर जो जो अनेक प्रकारके धन हैं वे सब धन हमें प्राप्त हों ।

[६४]

(ऋषिः- कश्यपो मारीचः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

४८९ वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः । वृषा धर्माणि दधिषे ॥ १ ॥
४९० वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा मदः । सत्यं वृषन् वृषेदसि ॥ २ ॥
४९१ अश्वो न चक्रदो वृषा सं गा इन्दो समर्वतः । वि नो राये दुरो वृधि ॥ ३ ॥
४९२ असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया । शुक्रासो वीरयाशवः ॥ ४ ॥
४९३ शुम्भमाना ऋतायुभि- र्मृज्यमाना गभस्त्योः । पवन्ते वारे अव्यये ॥ ५ ॥
४९४ ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा । पवन्तामान्तरिक्ष्या ॥ ६ ॥

---

[६४]

अर्थ— [४८९] हे (सोम) सोम ! तू (वृषा द्युमान्) बलवान तथा तेजस्वी (असि) हो । हे (देव) दिव्य सोम ! तू (वृषव्रतः) बल बढानेका व्रत चलानेवाला है । तू (वृषा) बलवान होकर (धर्माणि दधिषे) कर्तव्य कर्म करता है ॥ १ ॥

१ वृषा द्युमान्— बलवान तथा तेजस्वी होना चाहिये ।

२ वृषव्रतः— बल बढानेका व्रत करनेवाला है ।

३ वृषा धर्माणि दधिषे— बलवान होनेके कर्तव्य धारण करता है ।

[४९०] हे (वृषन्) बलको बढानेवाले सोम (ते वृष्णः) तुझ बलवानका (शवः वृष्ण्यं) सामर्थ्य बल बढानेवाला है । तेरा (वनं वृषा) रस बलवर्धक है (मदः वृषा) तेरेसे प्राप्त होनेवाला आनंद बल बढानेवाला है । यह (सत्यं) सत्य है कि तू (वृषा इत् असि) सच्चा सामर्थ्य बढानेवाला है ॥ २ ॥

बलका संवर्धन करना अत्यंत आवश्यक है । सोमरस पीनेसे यह बल प्राप्त होता है ।

[४९१] हे (इन्दो) सोम ! (वृषा) बलवान तू (अश्वः न) घोडेके समान (संचक्रदः) शब्द करता है । तथा तू (गाः) गौवें (अर्वतः) घोडे (सं) देता है । ऐसा तू (नः राये) हमारे धनके लिये (दुरः वि वृधि) द्वार खोल दो ॥ ३ ॥

१ नः राये दुरः वि वृधि — हमारे पास धन आ जावे इसके लिये दरवाजे खोलकर रखो, जिन द्वारोंसे धन हमारे समीप आ जाय ।

२ नः अर्वतः गाः सं— हमारे पास गौवें और घोडे आ जाय और हमारे पास रहें ।

[४९२] (वाजिनः) बलवान (शुक्रासः) उज्वल (आशवः) और वेगवान (सोमासः) सोमके रस (गव्या) गौकी इच्छासे (अश्वया) घोडेकी इच्छासे (वीरया) वीर पुत्रकी इच्छासे ऋत्विजोंके द्वारा (प्र असृक्षत) निकाले जाते हैं ॥ ४ ॥

[४९३] (ऋतायुभिः शुम्भमानाः) यज्ञ करनेवाले ऋत्विजोंने सुशोभित किये (गभस्त्योः मृज्यमानाः) दोनो हाथोंसे संशोधित किये सोमरस (अव्यये) भेडीके बालोंकी (वारे पवन्ते) छाननीमें छाने जाते हैं ॥ ५ ॥

[४९४] (ते सोमाः) वे सोमरस (दिव्यानि) द्युलोकमें उत्पन्न (अन्तरिक्ष्या) अन्तरिक्षमें उत्पन्न (पार्थिवा) पृथिवीपर उत्पन्न हुए (विश्वा वसु) सब प्रकारके धन (दाशुषे) यज्ञमें धनका दान करनेवाले यजमानके लिये (आ पवन्तां) प्रदान करें ॥ ६ ॥

×

४९५ पवमानस्य विश्ववित् प्र ते सर्गा असृक्षत । सूर्यस्येव न रश्मयः ॥ ७ ॥
४९६ केतुं कृण्वन् दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि । समुद्रः सोम पिन्वसे ॥ ८ ॥
४९७ हिन्वानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि । अक्रान् देवो न सूर्यः ॥ ९ ॥
४९८ इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मती । सृजदश्वं रथीरिव ॥ १० ॥
४९९ ऊर्मिर्यस्ते पवित्र आ देवावीः पर्यक्षरत् । सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ ११ ॥
५०० स नो अर्ष पवित्र आ मदो यो देववीतमः । इन्दविन्द्राय पीतये ॥ १२ ॥
५०१ इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः । इन्दो रुचाभि गा इहि ॥ १३ ॥

अर्थ— [४९५] हे (विश्व वित्) सब विश्वको देखनेवाले सोम! (पवमानस्य) छाननीमेंसे गिरनेवाले (ते सर्गाः) तेरे प्रवाह (सूर्यस्य रश्मयः न) सूर्यके किरणोंके समान (प्र असृक्षत) तेजस्वी दीख रहे हैं ॥ ७ ॥

सूर्यके किरण जैसे चमकते हैं वैसे सोमरसके धारा प्रवाह चमकते हुए नीचेके पात्रमें उतरते हैं ॥ ७ ॥

[४९६] हे (सोम) सोम! (समुद्रः) समुद्रके समान रसमय तू (केतुं कृण्वन्) ज्ञान देनेवाला (विश्वा रूपाणि अभि अर्षसि) अनेक रूपोंको भी देता है और साथ साथ (पिन्वसे) अनेक धनोंको देता है ॥ ८ ॥

जो ज्ञान देता है वह ज्ञानके द्वारा अनेक प्रकारके धनोंको देता है। ज्ञान धन देनेवाला होता है।

[४९७] हे (पवमान) सोम! (हिन्वानः) यज्ञमें प्रेरित होनेवाला तू (वाचं इष्यसि) स्तुति करनेकी प्रेरणा देता है (विधर्मणि) धारण करनेमें समर्थ छाननीमें जब जाता है जैसा (देवः सूर्यः न अक्रान्) जैसा सूर्य चलकर प्रेरणा देता है ॥ ९ ॥

जब छाननीमें सोम छाना जाता है तब वह सोम स्तुति करनेकी प्रेरणा यज्ञकर्ता ऋत्विजोंको देता है। सोमरस छाना जानेके समय ऋत्विज उसकी स्तुति करते हैं।

[४९८] (चेतनः) उत्साह देनेवाला (प्रियः इन्दुः) देवोंको प्रिय यह सोमरस (कवीनां मती) ज्ञानीयोंकी की हुई स्तुतिसे (पविष्ट) छाना जाता है (रथि अश्वं सृजत् इव) रथ चलानेवाला जैसा घोडेको चलानेको प्रेरणा देता है ॥ १० ॥

रथ चलानेवाला जैसा घोडेको चलाता है उस प्रकार यज्ञ करनेवाले याजक सोमको स्तुति करते हैं और सोम यज्ञक कार्य चलाते हैं।

[४९९] हे सोम! (यः ते) जो तेरी (देवावीः ऊर्मिः) देवको प्राप्त करनेवाली लहर है (पवित्रे पर्यक्षरत्) छाननीमेंसे नीचे गिरती है (ऋतस्य योनिं आसीदन्) यज्ञके स्थानपर वह रहती है ॥ ११ ॥

सोमरसकी धारा देवोंको प्राप्त होनेकी इच्छा करती है और छाननीमेंसे कलशमें आकर रहती है।

[५००] हे (इन्दो) सोम! (यः देववीतमः मदः) जो देवोंको अति प्रिय ऐसा आनंदकारक सोमरस है, वह (इन्द्राय पीतये) इन्द्रके पीनेके लिये (नः पवित्रे) हमारी छाननीमेंसे (आ अर्ष) नीचे पात्रमें उतर ॥ १२ ॥

[५०१] हे (इन्दो) सोम! (मनीषिभिः मृज्यमानः) मननशील याजकोंके द्वारा संशोधित होनेवाला तू (इषे) अन्नके लिये (धारया पवस्व) धारासे शुद्ध हो जाओ। (रुचा गाः अभि इहि) अपने तेजसे गौवोंके पास जा ॥ १३ ॥

ज्ञानी यज्ञकर्ता ऋत्विजोंसे शुद्ध होनेवाला सोमरस हमारे अन्नके लिये धारासे संशोधित होकर गौके दूधमें मिश्रित होवे। सोमरसमें गौका दूध मिलाकर अन्नके समान उस सोमरसका उपयोग किया जाता है।

५०२ पुनानो वरिवस्कृध्यू१र्जं जनाय गिर्वणः । हरे सृजान आशिरम् ॥ १४ ॥
५०३ पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् । द्युतानो वाजिभिर्यतः ॥ १५ ॥
५०४ प्र हिन्वानास इन्दवोऽच्छा समुद्रमाशवः । धिया जूता असृक्षत ॥ १६ ॥
५०५ मर्मृजानास आयवो वृथा समुद्रमिन्दवः । अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥ १७ ॥
५०६ परि णो याह्यस्मयु१र्विश्वा वसून्योजसा । पाहि नः शर्म वीरवत् ॥ १८ ॥
५०७ मिमाति वह्निरेतशः पदं युजान ऋक्वभिः । प्र यत् समुद्र आहितः ॥ १९ ॥

अर्थ— [५०२] हे (गिर्वणः) स्तुतियोंसे प्रशंसित (हरे) हरे रंगके सोम ! (आशिरं सृजानः) गोदुग्धके साथ मिलकर (पुनानः) छाना जाकर शुद्ध होता हुआ सोम (जनाय) लोकोंके लिये (वरिवः ऊर्जं कृधि) धन और अन्न तैयार करे । ॥ १४ ॥

सोमरसमें गौका दूध मिलाकर वह मिश्रण छाननीमेंसे छाना जानेपर वह जनोंके लिये उत्तम अन्न रूपी धन बनता है । उस मिश्रणका यज्ञ करके, उसको देवोंको अर्पण करके यज्ञ करके शेष रहा यज्ञकर्ता पीते हैं ।

[५०३] हे सोम ! (द्युतानः) तेजस्वी (वाजिभिः यतः) बलवान यजमानोंके द्वारा लिया हुआ (देववीतये पुनानः) यज्ञमें देवोंको देनेके लिये शुद्ध किया हुआ तू (इन्द्रस्य निष्कृतं याहि) इन्द्रके स्थानको पहुंच ॥ १५ ॥

तेजस्वी सोम याजकोंके द्वारा लिया जाता है और वह इन्द्रको समर्पण किया जाता है ।

[५०४] (आशवः इन्दवः) वेगवान सोम (समुद्रं) अन्तरिक्षमें होते हैं । वे सोम (हिन्वानाः) यज्ञ भूमिमें प्रेरित करनेपर (धिया जूताः) अंगुलिसे दबानेपर (प्र असृक्षत) रस देते हैं ॥ १६ ॥

सोम वनस्पति हिमालयके पर्वत शिखर पर होती है । वहांसे वह यज्ञ स्थानमें लायी जाती है. और उससे रस निकाला जाता है । और उस रसका यज्ञमें देवोंके लिये समर्पण किया जाता है ।

[५०५] (मर्मृजानासः आयवः) शुद्ध होनेवाले गमनशील (इन्दवः) सोमरस (वृथा) सहजहीसे (समुद्रं) अन्तरिक्षमें होते हैं । वे (ऋतस्य योनिं) यज्ञके स्थानमें (अग्मन्) जाते हैं ॥ १७ ॥

शुद्ध करनेके समय सोमरस सहजहीसे पानीमें मिलकर छाने जाते हैं और यज्ञके स्थानमें रखे रहते हैं । पश्चात् यज्ञमें अर्पण किया जाता है ।

[५०६] हे सोम ! (अस्मयुः) हमारे यज्ञमें आनेकी इच्छा करनेवाला तू (विश्वा वसूनि) संपूर्ण धनोंको (ओजसा) अपने सामर्थ्यसे (परि याहि) प्राप्त कर तथा (नः) हमारे (वीरवत् शर्म पाहि) पुत्र युक्त घरका संरक्षण कर ॥ १८ ॥

१ विश्वा वसूनि ओजसा परि पाहि— सब धनोंका संरक्षण अपने बलसे कर ।
२ नः वीरवत् शर्म पाहि— हमारे पुत्रोंसे युक्त घरका रक्षण कर ।

[५०७] हे सोम ! (यत्) जब (वह्निः) वहन करनेवाला (एतशः) घोडा अर्थात् सोम (मिमाति) शब्द करता है (ऋक्वभिः) ऋत्विजोंके द्वारा (पदं युञ्जानः) यज्ञके स्थानमें आता है तब (समुद्रे आहितः) जलमें वह मिश्रित किया जाता है ॥ १९ ॥

जब ऋत्विज लोग सोमको यज्ञस्थानमें लाते हैं और उस सोमको जलमें मिलाते हैं, तब वह शब्द करता हुआ जलमें मिलता है ।

५०८ आ यद्योनिं हिरण्ययमाशुर्ऋतस्य सीदति । जहात्यप्रचेतसः ॥ २० ॥
५०९ अभि वेना अनूषतेयक्षन्ति प्रचेतसः । मज्जन्त्यविचेतसः ॥ २१ ॥
५१० इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः । ऋतस्य योनिमासदम् ॥ २२ ॥
५११ तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति वेधसः । सं त्वा मृजन्त्यायवः ॥ २३ ॥
५१२ रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्ति वरुणः कवे । पवमानस्य मरुतः ॥ २४ ॥
५१३ त्वं सोम विपश्चितं पुनानो वाचमिष्यसि । इन्दो सहस्रभर्णसम् ॥ २५ ॥
५१४ उतो सहस्रभर्णसं वाचं सोम मखस्युवम् । पुनान इन्दवा भर ॥ २६ ॥

अर्थ—[५०८] (यत्) जब (हिरण्ययं योनिं) सुवर्णसदृश स्थानमें (ऋतस्य) यज्ञमें आकर (आशुः) वेगसे आनेवाला सोम (सीदति) बैठता है तब वह (अ प्रचेतसः जहाति) अज्ञानियोंको दूर करता है ॥ २० ॥

जब यज्ञके स्थानमें सोम आकर अपने स्थानमें बैठता है, तब अज्ञानियोंको यज्ञके स्थानसे दूर करता है, और ज्ञानियोंके साथ रहकर यज्ञस्थानमें विराजता है ।

[५०९] (वेनाः) स्तुति करनेवाले ज्ञानी (अभि अनूषत) स्तुति करते हैं । (प्रचेतसः इयक्षन्ति) ज्ञानी लोग यजन करनेकी इच्छा करते हैं । (अविचेतसः) अज्ञानी (मज्जन्ति) अज्ञानमें डूब जाते हैं ॥ २१ ॥

१ वेनाः अभि अनूषत— ज्ञानी लोग परमात्माकी स्तुति करते हैं ।
२ प्रचेतसः इयक्षन्ति— विशेष ज्ञानी यज्ञ करना चाहते हैं ।
३ अविचेतसः मज्जन्ति— अज्ञानी अज्ञानमें डूबते हैं ।

[५१०] हे (इन्दो) सोम ! (मधुमत्तमः) अति मधुर तू (ऋतस्य योनिं आसदं) यज्ञके स्थानमें बैठनेकी इच्छासे (मरुत्वते इन्द्राय) मरुतोंके साथ रहनेवाले इन्द्रके लिये (पवस्व) रस निकालो ॥ २२ ॥

यज्ञके स्थानमें मरुत वीरोंके साथ इन्द्रको देनेके लिये सोमका रस निकालते हैं और वह रस मरुतोंको तथा इन्द्रको देते हैं ।

[५११] हे सोम ! (तं त्वा) उस तुझे (वचोविदः विप्राः) स्तुति करनेवाले (वेधसः) कर्म करनेमें प्रवीण ज्ञानी (परिष्कृण्वन्ति) अलंकृत करते हैं तथा (आयवः) विज्ञानी लोग (त्वा सं मृजन्ति) तुझे योग्य रीतिसे शुद्ध करते हैं ॥ २३ ॥

ज्ञानी लोग सोमको यज्ञ करनेके लिये तैयार करते हैं ।

[५१२] हे (कवे) ज्ञानी सोम ! (ते पवमानस्य रसं) तुझ शुद्ध होनेवाले सोमके रसको मित्र, अर्यमा, वरुण और (मरुतः) सब मरुत (पिबन्ति) पीते हैं ॥ २४ ॥

सोमके रसको शुद्ध करके सब मित्र वरुण आदि देव पीते हैं ।

[५१३] हे (इन्दो सोम) तेजस्वी सोम ! (त्वं) तू (पुनानः) शुद्ध होता हुआ (विपश्चितं सहस्रभर्णसं वाचं) पवित्र सहस्र प्रकारके स्तोत्र (इष्यसि) प्रेरित करता है ॥ २५ ॥

सोमरस शुद्ध करनेके समय सहस्र प्रकारके उत्तम स्तोत्र गाये जाते हैं ।

[५१४] (उतो) और (सहस्रभर्णसं मखस्युवं वाचं) सहस्र प्रकारके यज्ञोंके स्तोत्र (पुनानः इन्दो) शुद्ध होनेवाला तू सोम (आ भर) बोलनेकी प्रेरणा कर ॥ २६ ॥

५१५ पुनान इन्दवेषां पुरुहूत जनानाम् । प्रियः समुद्रमा विश ॥ २७ ॥
५१६ दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा । सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥ २८ ॥
५१७ हिन्वानो हेतृभिर्यत आ वाजं वाज्यक्रमीत् । सीदन्तो वनुषो यथा ॥ २९ ॥
५१८ ऋधक् सोम स्वस्तये संजग्मानो दिवः कविः । पवस्व सूर्यो दृशे ॥ ३० ॥

[९५]

(ऋषिः- भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

५१९ हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिम् । महामिन्दुं महीयुवः ॥ १ ॥
५२० पवमान रुचारुचा देवो देवेभ्यस्परि । विश्वा वसून्या विश ॥ २ ॥
५२१ आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः । इषे पवस्व संयतम् ॥ ३ ॥

अर्थ - [५१५] (इन्दो) हे सोम ! (एषां जनानां) इन लोकोंके द्वारा (पुरुहूत) अनेक प्रकारसे प्रार्थना करनेपर उनके लिये (प्रियः) प्रिय हुआ तू (पुनानः) पवित्र होता हुआ (समुद्रं आविश) जलमें मिल जावो ॥ २७ ॥

[५१६] (शुक्राः) शुद्ध हुए (दविद्युतत्या रुचा) तेजस्वी प्रकाशसे युक्त (परिष्टोभन्त्या कृपा) चारों ओरसे शब्द करनेवाली धारासे (सोमाः) सोमरस (गवाशिरः) गौके दूधके साथ मिलते हैं ॥ २८ ॥

[५१७] (वाजी) बलवान सोम (हेतृभिः हिन्वानः) स्तोताओंके द्वारा प्रेरित होकर वीर जैसा (यतः) नियमित रीतिसे (वाजं आ अक्रमीत्) यज्ञमें जाता है (यथा वनुषः सीदन्तः) जैसे वीर युद्धमें जाते हैं ॥ २९ ॥

जैसे वीर आनंदसे युद्धमें जाते हैं, वैसा यह सोम आनंदसे यज्ञमें जाता है ।

[५१८] हे (सोम) सोम ! तू (कविः) ज्ञानी तथा (सूर्यः दृशे) सूर्यके समान तेजस्वी (ऋधक्) होकर (संजग्मानः) साथ रहकर (दिवः) द्युलोकमेंसे (दृशे पवस्व) दर्शन करनेके लिये रस निकालो ॥ ३० ॥

सोमरस ज्ञान बढाता है, सूर्यके समान चमकता है, द्युलोकसे प्रकाश देनेके समान तेजस्वी होता है ।

[९५]

[५१९] (उस्रयः) कर्म करनेमें कुशल (स्वसारः जामयः) बहिने जैसी (पतिं) पतिका अर्थात् स्त्रियां जैसी अपने पतिको उत्साहित करती हैं, उस प्रकार (महीयुवः) सामर्थ्यवान् (उस्रयः) कर्म करनेकी इच्छा करनेवाले ऋत्विज (महां इन्दुं हिन्वन्ति) महान सोमको यज्ञमें प्रेरित करते हैं ॥ १ ॥

[५२०] हे (पवमान) शुद्ध सोम ! (रुचा रुचा देवः) तेजस्वी प्रकाशमय ऐसा तू देव (देवेभ्यः परि) देवोंके पाससे (विश्वा वसूनि) सब धन लाकर (आ विश) यज्ञस्थानमें प्रविष्ट हो ॥ २ ॥

[५२१] हे (पवमान) सोम ! (सुष्टुतिं वृष्टिं) उत्तम स्तुतिके साथ की हुई सोमरससे सेवाके (देवेभ्यः दुवः) तथा देवोंसे संरक्षण प्राप्त करनेके लिये तथा (इषे) अन्नके लिये (संयतं पवस्व) तूं अपना रस देवो ॥ ३ ॥

सोमरस देवोंको समर्पण करनेसे देवोंकी सेवा होती है, देवोंसे संरक्षण होता है तथा सोमरससे अन्न भी प्राप्त होता है ।

५२२ वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे । पवमान स्वाध्यः ॥ ४ ॥
५२३ आ पवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध । इहो ष्विन्दवा गहि ॥ ५ ॥
५२४ यदद्भिः परिषिच्यसे मृज्यमानो गभस्त्योः । द्रुणा सधस्थमश्नुषे ॥ ६ ॥
५२५ प्र सोमाय व्यश्ववत् पवमानाय गायत । महे सहस्रचक्षसे ॥ ७ ॥
५२६ यस्य वर्णं मधुश्चुतं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ ८ ॥
५२७ तस्य ते वाजिनो वयं विश्वा धनानि जिग्युषः । सखित्वमा वृणीमहे ॥ ९ ॥
५२८ वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः । विश्वा दधान ओजसा ॥ १० ॥

अर्थ— [५२२] हे (पवमान) सोम ! तू (वृषा असि हि) निश्चयसे बलवान हो अतः हम (भानुना द्युमन्तं त्वा) स्वकीय तेजसे प्रकाशनेवाले तुझे (हवामहे) बुलाते हैं ॥ ४ ॥

१ वृषा असि हि— तू सचमुच बलशाली हो ।

२ भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे— स्वकीय तेजसे प्रकाशित रहनेवाले तुझे अपने पास बुलाते हैं । स्वकीय तेजसे जो प्रकाशित होते हैं उनको ही अपने पास बुलाना योग्य है ।

[५२३] हे (स्वायुध) उत्तम शस्त्रास्त्र रखनेवाले (पवमान) सोम ! (मन्दमानः) आनंदित रहनेवाला तू (सुवीर्यं आ पवस्व) उत्तम पराक्रम करनेका सामर्थ्य प्रदान कर । (इह उ) यहां (इन्दो) हे सोम (सु आगहि) उत्तम रीतिसे आओ ॥ ५ ॥

१ मन्दमानः सुवीर्यं पवस्व— आनंदित रहकर पराक्रम कर ।

[५२४] हे सोम ! (गभस्त्योः मृज्यमानः) दोनों हाथोंसे शुद्ध होनेवाला तूं (यत् अद्भिः परिषिच्यसे) जब जलोंके साथ मिलाया जाता है (द्रुणा सधस्थं अश्नुषे) तब तू पात्रोंमें अपना स्थान प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

सोम दोनों हाथोंसे दबाकर शुद्ध किया जाता है, और उस रसमें जल मिलाया जाता है तब वह सोम यज्ञस्थानके पात्रोंमें रखा जाता है ।

[५२५] (महे सहस्रचक्षसे) महान और सहस्रों प्रकारसे देखनेवाले (व्यश्ववत्) व्यश्व ऋषिके समान (पवमानाय सोमाय) शुद्ध होनेवाले सोमके गुणोंका (गायत) गायन करो ॥ ७ ॥

व्यश्व ऋषिने जैसा सामगान किया था, उस प्रकार इस सोमके मंत्रोंका गायन करो । " या ऋक् तत् साम " पादवत् काव्य गाया जाता है । व्यश्व ऋषिने वैसा गायन किया था, उस रीतिसे तुम भी वेदमंत्रोंका गायन करो ।

[५२६] (यस्य वर्णं मधुश्चुतं) जिसका रस मधुर है और शत्रुका विनाश करनेवाला है उस (हरिं) हरे रंगके सोमको (अद्रिभिः हिन्वन्ति) पत्थरोंसे कूटकर रस निकालते हैं, वह (इन्दुं) सोमरस (इन्द्राय पीतये) इन्द्रको पीनेके लिये दिया जाता है ॥ ८ ॥

सोमरस मधुर है, उस रसको पीकर वीर पुरुष शत्रुके नाश करनेका अपना सामर्थ्य बढाते हैं । अतः वह सोमरस इन्द्रको पीनेके लिये देते हैं, जिससे इन्द्र शत्रुओंका नाश करनेमें सामर्थ्यवान होता है ।

[५२७] (विश्वा धनानि जिग्युषः) सब धनोंको विजयसे प्राप्त करनेवाले (तस्य ते) उस तेरे हम (सखित्वं आवृणीमहे) मित्रभाव रखना चाहते हैं ॥ ९ ॥

सब धनोंको विजयसे प्राप्त करनेवाले तेरे साथ हम मित्रभावसे रहना चाहते हैं ।

[५२८] (धारया वृषा पवस्व) धारासे बलवान होकर नीचे गिरो (मरुत्वते च मत्सरः) मरुतोंके साथ रहनेवाले इन्द्रको आनंद देनेवाला हो और (ओजसा) अपने बलसे (विश्वा दधानः) सबका धारण करनेवाला हो ॥ १० ॥

५२९ तं त्वा धर्तारमोण्योः पवमान स्वर्दृशम् । हिन्वे वाजेषु वाजिनम् ॥ ११ ॥
५३० अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया । युजं वाजेषु चोदय ॥ १२ ॥
५३१ आ न इन्दो महीमिषं पवस्व विश्वदर्शतः । अस्मभ्यं सोम गातुवित् ॥ १३ ॥
५३२ आ कलशा अनूषतेन्दो धाराभिरोजसा । एन्द्रस्य पीतये विश ॥ १४ ॥
५३३ यस्य ते मद्यं रसं तीव्रं दुहन्त्यद्रिभिः । स पवस्वाभिमातिहा ॥ १५ ॥
५३४ राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि । अन्तरिक्षेण यातवे ॥ १६ ॥
५३५ आ न इन्दो शतग्विनं गवां पोषं स्वश्व्यम् । वहा भगत्तिमूतये ॥ १७ ॥

अर्थ— [५२९] हे (पवमान) सोम ! (ओण्योः धर्तारं) द्युलोक और पृथिवीका धारण करनेवाले (स्वर्दृशं) और सबका निरीक्षण करनेवाले (वाजेषु वाजिनं) युद्धोंमें बलवान (तं त्वा) उस तुझे (हिन्वे) मैं प्रेरित करता हूं ॥ ११ ॥

सबको धारण करनेवाले, उत्तम निरीक्षक, बलवान वीरको मैं यज्ञमें कार्य करनेकी प्रेरणा करता हूं। ऐसा वीर यज्ञमें आकर बिराजे और यज्ञका कार्य करे।

[५३०] (अया विपा चित्तः) इन अंगुलियोंसे प्रेरित हुआ (हरिः) हरे रंगका सोम (अनया धारया पवस्व) इस उत्तम धारासे पात्रमें गिरे (वाजेषु युजं चोदय) और युद्धोंमें मित्र इन्द्रको जानेकी प्रेरणा देवे ॥ १२ ॥

अंगुलियोंसे दबाकर सोमसे रस निकाले, उस रसको इन्द्रको पीनेके लिये दें, और वह इन्द्र सोमरस पीकर युद्धमें जावे और युद्धमें शत्रुके वीरोंका विनाश करे।

[५३१] हे (इन्दो) सोम ! (विश्वदर्शतः) संपूर्ण विश्वका दर्शन करानेवाला तू (महीं इषं) बहुत अन्न (नः) हमारे लिये (आ पवस्व) प्रदान कर। हे (सोम) सोम ! तू (अस्मभ्यं गातुवित्) हमारा मार्गदर्शक है ॥ १३ ॥

[५३२] हे (इन्दो) सोम ! (ओजसा) अपने सामर्थ्यसे (धाराभिः) रसकी धाराओंके साथ (कलशाः) कलशोंकी (आ अनूषत) स्तुति की जाती है (इन्द्रस्य पीतये आविश) इन्द्रको पीनेको देनेके लिये इन कलशोंमें तू प्रविष्ट होकर रहो ॥ १४ ॥

यज्ञमें ऋत्विज लोक कलशोंमें रखे सोमरसकी स्तुति करते हैं। वह सोमरस इन्द्रादि देवोंको पीनेके लिये दिया जाता है।

[५३३] (यस्य ते) जिस तेरे (तीव्रं रसं) तीक्ष्ण (मद्यं) आनंद देनेवाले रसको (अद्रिभिः दुहन्ति) पत्थरोंसे कूटकर निकालते हैं, (सः) वह (अभिमातिहा) शत्रुओंका नाशक होकर (पवस्व) निकाला जाय ॥ १५ ॥

[५३४] (मनौ अधि) यज्ञके अन्दर (पवमानः) सोम (राजा) राजा (मेधाभिः ईयते) स्तुति मंत्रोंसे गाया जाता है। यह (अन्तरिक्षेण) अन्तरिक्षसे द्रोण कलशमें (यातवे) जानेके समय गान होता है ॥ १६ ॥

[५३५] हे (इन्दो) सोम ! (शतग्विनं) सेकडों गौवोंसे युक्त (गवां पोषं) गौवोंके पोषण करनेवाले (स्वश्व्यं) उत्तम घोडोंको पास रखनेवाले (भगत्तिं) भाग्यको (ऊतये वह) हमारे रक्षणके लिये हमें देओ ॥ १७ ॥

हमारे पास सेकडों गौवें हों, उत्तम घोडे हों, तथा उत्तम गौवें उत्पन्न हों ऐसा धन भी हमारे संरक्षणके लिये हमारे पास हो ॥

५३६ आ नः सोम सहो जुवों रूपं न वर्चसे भर । सुष्वाणो देववीतये ॥ १८ ॥
५३७ अर्षा सोम द्युमत्तमो ऽभि द्रोणानि रोरुवत् । सीदञ्छ्येनो न योनिमा ॥ १९ ॥
५३८ अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमो अर्षति विष्णवे ॥ २० ॥
५३९ इषं तोकाय नो दधदस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणम् ॥ २१ ॥
५४० ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे । ये वादः शर्यणावति ॥ २२ ॥
५४१ य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम् । ये वा जनेषु पञ्चसु ॥ २३ ॥
५४२ ते नो वृष्टिं दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्यम् । सुवाना देवास इन्दवः ॥ २४ ॥
५४३ पवते हर्यतो हरिर्गृणानो जमदग्निना । हिन्वानो गोरधि त्वचि ॥ २५ ॥

अर्थ— [५३६] हे (सोम) सोम ! (देववीतये) देवोंको पीनेको देनेके लिये (सुष्वाणः) रस निकाला तू (सहः आजुवः) सामर्थ्ययुक्त हो तथा (नः) हमारे लिये (जुवः) शक्ति बढावो (न) और (वर्चसं रूपं भर) तेजको बढानेवाला रूप दे दो ॥ १८ ॥

[५३७] हे (सोम) सोम ! तू (द्युमत्तमः) तेजस्वी होकर (रोरुवत्) शब्द करता हुआ (द्रोणानि अभि अर्ष) पात्रोंमें निवास कर (न) जिस प्रकार (श्येनः) श्येन पक्षी (योनिं आ सीदन्) अपने घरमें आकर रहता है ॥ १९ ॥

[५३८] इन्द्र, वायु, वरुण, मरुत् तथा विष्णुको देनेके लिये (अप्सा) जलके साथ मिलकर (सोमः अर्षति) सोमरस पात्रोंमें रखा जाता है ॥ २० ॥

[५३९] हे (सोम) सोम ! (नः तोकाय) हमारे पुत्रोंके लिये तथा (अस्मभ्यं) हमारे लिये (इषं दधत्) अन्न देकर (सहस्रिणं) सहस्र प्रकारका धन (आ पवस्व) दे दो ॥ २१ ॥

[५४०] (ये सोमासः परावति) जो सोम दूरके देशोंमें है तथा (ये) जो सोम (अर्वावति) समीपके प्रदेशमें इन्द्रको देनेके लिये (सुन्विरे) रस निकालनेके लिये रखे हैं (ये वा अदः शर्यणावति) जो इस शर्यणावतके प्रदेशमें हैं वे हमें अभीष्ट फल देते हैं ॥ २२ ॥

[५४१] (ये आर्जीकेषु) जो आर्जीकोंके देशोंमें, (ये कृत्वसु) जो कृत्व देशोंमें तथा (पस्त्यानां मध्ये) पस्त्य स्थानमें तथा (ये वा पञ्च जनेषु) जो पंच जनोंमें जो सोम हैं वे सोम यज्ञमें लिये जाते हैं ॥ २३ ॥

१ आर्जीकेषु, कृत्वसु, पस्त्यानां मध्ये पंच जनेषु— आर्जीक, कृत्व, पस्त्य, इनमें जो पंचजन है उनमें सोमका उपयोग किया जाता है । और सोमसे यज्ञ किया जाता है ।

[५४२] (देवासः इन्दवः) सोमदेव (सुवानाः) रस निकालनेसे (नः) हमें (दिवस्परि वृष्टिं) द्युलोकके स्थानसे वृष्टि तथा (सुवीर्यं) उत्तम पराक्रम करनेका सामर्थ्य (आ पवन्तां) देवे ॥ २४ ॥

[५४३] (हर्यतः हरिः) दिव्यत्वकी शक्ति प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाला हरे रंगका सोम (जमदग्निना गृणानः) जमदग्नि ऋषिके द्वारा स्तुति किया गया (हिन्वानः) यज्ञमें प्रेरित किया हुआ (गोः त्वचि अधि) गौके चर्मपर (पवते) रहकर रस निकाला जाता है ॥ २५ ॥

सोमकी स्तुति ऋषि करते हैं । गौके चर्मपर रखे पात्रोंमें सोमका रस रखा रहता है । और उसका प्रयोग यज्ञमें किया जाता है ।

५४४ प्र शुक्रासो वयोजुवो हिन्वानासो न सप्तयः । श्रीणाना अप्सु मृञ्जत ॥ २६ ॥
५४५ तं त्वा सुतेष्वाभुवो हिन्विरे देवतातये । स पवस्वानया रुचा ॥ २७ ॥
५४६ आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ २८ ॥
५४७ आ मन्द्रमा वरेण्य-मा विप्रमा मनीषिणम् । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ २९ ॥
५४८ आ रयिमा सुचेतुन-मा सुक्रतो तनूष्वा । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ ३० ॥

[६६]

(ऋषिः- शतं वैखानसाः । देवताः- पवमानः सोमः, १९-२१ अग्निः पवमानः । छन्दः- गायत्री, १८ अनुष्टुप् ।)

५४९ पवस्व विश्वचर्षणे ऽभि विश्वानि काव्या । सखा सखिभ्य ईड्यः ॥ १ ॥
५५० ताभ्यां विश्वस्य राजसि ये पवमान धामनी । प्रतीची सोम तस्थतुः ॥ २ ॥

अर्थ— [५४४] (शुक्रासः) स्वच्छ (वयोयुजः) अन्न देनेवाले (श्रीणानः) जलकेसाथ मिश्रित हुए (हिन्वानासः सप्तयः न) चलनेवाले घोडोंके समान (अप्सु प्र मृञ्जत) जलोंमें स्वच्छ किये जाते हैं ॥ २६ ॥

जैसे दौडनेवाले घोडे जलोंमें स्वच्छ करनेके लिये धोये जाते हैं, उस प्रकार ये सोमरस पानीमेंसे मिलाकर स्वच्छ किये जाते हैं।

[५४५] (आभुवः) ऋत्विज लोग (देवतातये) देवोंको देनेके लिये (सुतेषु) यज्ञोंमें (तं त्वा) उस तुझ सोमको (हिन्विरे) प्रेरित करते हैं। (सः) वह प्रेरित हुआ तूं (अनया रुचा) इस प्रकारके प्रकाशके साथ (पवस्व) रस निकालकर दे ॥ २७ ॥

[५४६] (ते) तेरे (मयोभुवं) सुखदायक (पुरुस्पृहं) बहुतों द्वारा प्रशंसित (पान्तं) संरक्षण करनेवाले (दक्षं) बलको (आ वृणीमहे) हम स्वीकार करते हैं। तुम्हारा बल (वह्निं) धनादि ऐश्वर्य देनेवाला है ॥ २८ ॥

[५४७] (मन्द्रं) आनंद देनेवाले (वरेण्यं) श्रेष्ठ (विप्रं) ज्ञान देनेवाले (मनीषिणं) बुद्धिको बढानेवाले (पुरुस्पृहं पान्तं) अनेकों द्वारा प्रशंसित और सुरक्षा करनेवाले तुझे हम स्वीकारते हैं ॥ २९ ॥

[५४८] हे (सुक्रतो) उत्तम रीतिसे यज्ञ करनेवाले ! (रयिं आ) तेरेसे हम धन चाहते हैं, (सुचेतुनं आ) उत्तम ज्ञान चाहते हैं (तनुषा आ) पुत्र पौत्रादिकोंको चाहते हैं (पुरुस्पृहं पान्तं) सब लोकोंने प्रशंसित उत्तम सुरक्षा करके संरक्षण करनेके सामर्थ्यको चाहते हैं ॥ ३० ॥

[६६]

[५४९] हे (विश्वचर्षणे) सबका निरीक्षण करनेवाले सोम ! (विश्वानि काव्या अभि) सब काव्योंके अनुसार जैसा (सखा सखिभ्यः ईड्यः) मित्र मित्रोंकी स्तुतिके योग्य होता है, वैसा तूं हमारे स्तुतिके काव्य सुनकर अपना उत्तम रस हमें देओ ॥ १ ॥

[५५०] हे (पवमान सोम) रस देनेवाले सोम ! (ये धामनी) जो तेरे दो स्थान यज्ञमें हैं, (ताभ्यां विश्वस्य राजसि) इन दोनों स्थानोंसे तू विश्वमें राजा, मुख्य, हुआ है। (प्रतीची तस्थतुः) वे दो स्थान पूर्व तथा पश्चिम स्थानमें यज्ञमें रहते हैं ॥ २ ॥

×

५५१ परि धामा॑नि यानि॑ ते त्वं सो॑मासि वि॒श्वतः॑ । पव॑मान ऋ॒तुभि॑ः कवे ॥ ३ ॥
५५२ पव॑स्व ज॒नय॒न्निषो॒ ऽभि विश्वा॑नि॒ वार्या॑ । स॒खा सखि॑भ्य ऊ॒तये॑ ॥ ४ ॥
५५३ तव॑ शु॒क्रासो॑ अ॒र्चयो॑ दि॒वस्पृ॒ष्ठे वि त॑न्वते । प॒वित्रं॑ सोम॒ धाम॑भिः ॥ ५ ॥
५५४ तवे॒मे स॒प्त सिन्ध॑वः प्र॒शिषं॑ सोम सिस्रते । तुभ्यं॑ धावन्ति धे॒नवः॑ ॥ ६ ॥
५५५ प्र सो॑म याहि॒ धार॑या सु॒त इन्द्रा॑य मत्स॒रः । दधा॑नो॒ अक्षि॑ति॒ श्रवः॑ ॥ ७ ॥
५५६ समु॑ त्वा धी॒भिर॑स्वरन् हि॒न्वतीः॑ स॒प्त जा॒मयः॑ । विप्र॑मा॒जा वि॒वस्व॑तः ॥ ८ ॥
५५७ मृ॒जन्ति॑ त्वा॒ सम॒ग्रुवो॒ ऽव्ये॑ जी॒राव॒धि ष्वणि॑ । रे॒भो यद॒ज्यसे॒ वने॑ ॥ ९ ॥

अर्थ— [५५१] हे (पवमान सोम) रस निकाला गया सोम! (ते) तेरे (यानि धामानि) जो स्थान (विश्वतः परि) सब विश्वमें (असि) हैं। हे (कवे) ज्ञानी सोम ! वे स्थान (ऋतुभिः) ऋतुओंके अनुसार हैं ॥ ३ ॥

सोमके जो स्थान देशमें अनेक हैं, वे ऋतुओंके अनुकूल वहां हैं। अमुक ऋतुमें अमुक स्थानमें सोम प्राप्त होता है।

[५५२] हे सोम ! तू (सखा) सबका मित्र है, तू (विश्वानि वार्या अभि) सब स्वीकार करने योग्य स्तोत्र देखकर (सखिभ्यः ऊतये) मित्रोंके संरक्षणके लिये (इषः जनयन्) अनेक प्रकारके अन्न उत्पन्न करके (पवस्व) तू अपनेमेंसे रस यज्ञमें उत्पन्न करके दे ॥ ४ ॥

[५५३] हे (सोम) सोम ! (तव शुक्रासः अर्चयः) तेरे तेजस्वी प्रकाशके किरण (दिवः पृष्ठे) द्युलोकके अधो भाग पर अर्थात् पृथिवीपर (पवित्रं) पवित्र जल (धामभिः वितन्वते) अपने अपने स्थानोंसे फैलाते हैं ॥ ५ ॥

[५५४] हे (सोम) सोम ! (इमे सप्त सिन्धवः) ये सात नदियां (तव प्रशिषं) तेरी आज्ञाको मानकर (सिस्रते) चल रही हैं और (धेनवः) गौवें (तुभ्यं धावन्ति) तेरे समीप दौडकर आती हैं ॥ ६ ॥

१ सप्त सिन्धवः तव प्रशिषं सिस्रते— सात नदियोंके जल तेरी-सोमकी-आज्ञाका पालन करते हैं। सोमरसमें वे जल मिलाये जाते हैं।

२ धेनवः तुभ्यं धावन्ति— गौवें सोमके पास दौडकर आती हैं। सोमरसमें गौओंका दूध मिलाया जाता है।

[५५५] हे सोम ! (अक्षिति श्रवः दधानः) अक्षय अन्नका धारण करनेवाला तू (इन्द्राय) इन्द्रको देनेके-लिये (मत्सरः सुतः) आनंद देनेवाला रस निकाला तू (धारया) धारासे (प्रयाहि) चलो। इन्द्रके पास पहुंचो ॥ ७ ॥

[५५६] हे सोम ! (हिन्वतीः) प्रेरणा देनेवाले (सप्त जामयः) सात ऋत्विज (त्वा विप्रं) तुझ ज्ञानीका (विवस्वतः आजौ) यज्ञकार्यमें (धीतिभिः) स्तुतियोंसे (सं अस्वरन् उ) उत्तम प्रकार वर्णन करते हैं ॥ ८ ॥

सात ऋत्विज यज्ञमें सोमकी स्तुति करते हैं।

[५५७] हे सोम ! (अग्रुवः) अंगुलियोंसे (अव्ये जीरौ स्वणि अधि) भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे छाननेके समय तू शब्द करता हुआ छाना जाता है, उस समय (त्वा सं मृजन्ति) तुझे शुद्ध करती हैं। (यत् रेभः वने अज्यसे) जब शब्द करता हुआ तू पानीमें मिलाया जाता है ॥ ९ ॥

ऋत्विजोंकी अंगुलियां सोमको पकडती हैं और पानीमें सोमरस मिलाया जाता है और छाना जाता है, उस समय सोमरस शब्द करता हुआ पानीमें गिरता है।

५५८ पवमानस्य ते कवे वाजिन् त्सर्गा असृक्षत	। अर्वन्तो न श्रवस्यवः	॥ १० ॥
५५९ अच्छा कोशं मधुश्चुत–मसृग्रं वारे अव्यये	। अवावशन्त धीतयः	॥ ११ ॥
५६० अच्छा समुद्रमिन्दवो ऽस्तं गावो न धेनवः	। अग्मन्नृतस्य योनिमा	॥ १२ ॥
५६१ प्र ण इन्दो महे रण आपो अर्षन्ति सिन्धवः	। यद्गोभिर्वासयिष्यसे	॥ १३ ॥
५६२ अस्य ते सख्ये वय–मियक्षन्तस्त्वोतयः	। इन्दो सखित्वमुश्मसि	॥ १४ ॥
५६३ आ पवस्व गविष्टये महे सोम नृचक्षसे	। एन्द्रस्य जठरे विश	॥ १५ ॥

अर्थ— [५५८] हे (कवे वाजिन्) ज्ञानी और अन्नवान सोम ! (ते पवमानस्य) तुझ शुद्ध होनेवाले सोमरसकी (सर्गाः असृक्षत) धाराएं चलने लगती हैं, (न) जैसे (श्रवस्यवः अर्वन्तः) अश्वशालासे घोडे छोडे जाते हैं ॥ १० ॥

अपने बांधनेके स्थानसे छोडनेसे घोडे चलने लगते हैं, उस प्रकार सोमसे रसकी धाराएं वेगसे नीचे पात्रमें उतरती हैं।

[५५९] (मधुश्चुतं) मधुर रस रखनेके स्थानमें रहे (कोशं) पात्रमें (अव्यये वारे) भेडोंके बालोंकी छाननीमेंसे (असृग्रं) रस छानकर रखा जाता है, (धीतयः) अंगुलियां (अवा वशन्तः) पुनः पुनः उस रसको शुद्ध करती हैं ॥ ११ ॥

[५६०] (इन्दवः) सोमरस (समुद्रं अच्छ अभि) जलमें मिलनेके लिये जाते हैं और (गावः धेनवः न) प्रसूत हुई गौवें (अस्तं) घरमें आती हैं उनके समान (ऋतस्य योनिं आ अग्मन्) सोम यज्ञके स्थानमें जाते हैं ॥ १२ ॥

सोमरस जलमें मिलाते हैं, तथा गौवें अपने बछडेको मिलनेकी इच्छासे अपने निवास स्थानमें आती है वैसे सोमरस यज्ञमें आते हैं।

[५६१] हे (इन्दो) सोम ! (न महे रणे) हमारे बडे यज्ञमें (सिन्धवः आपः) नदियोंके जल (अर्षन्ति) आते हैं और सोमरसमें मिलाये जाते हैं, जब सोमरस (यत् गोभिः वासयिष्यसे) जब सोमरस गोदुग्धसे मिश्रित किया जाता है ॥ १३ ॥

नदियोंके जल सोमरसमें मिलाये जाते हैं और गौका दूध भी सोम रसमें मिलाया जाता है। इस मिश्रिणका यज्ञ होता है। पश्चात् उसका सेवन किया जाता है।

[५६२] हे (इन्दो) सोम ! (अस्य ते सख्ये) इस तेरी मित्रतामें रहे (वयं) हम (त्वोतयः) तेरेसे सुरक्षितता (इयक्षन्तः) चाहते हुए हम (सखित्वं उश्मसि) तेरी मित्रता चाहते हैं ॥ १४ ॥

[५६३] हे (सोम) सोम ! (महे नृचक्षसे) बडे मानवोंका निरीक्षण करनेवाले (गविष्टये) गौओंका रक्षण करनेवाले इन्द्रके लिये (आ पवस्व) तू रस निकालो और (इन्द्रस्य जठरे आ विश) इन्द्रके पेटमें जा ॥ १५ ॥

१ महे नृचक्षसे— मानवोंके कर्मोंका निरीक्षण करनेवाला इन्द्र है।

२ गविष्टये— गौओंका रक्षण करनेवाला इन्द्र है।

ऐसे इन्द्रके पेटमें सोमरस यज्ञमें जावे। यज्ञमें सोमरस इन्द्रको अर्पण किया जाता है।

५६४ म॒हाँ अ॑सि सोम॒ ज्येष्ठ॑ उ॒ग्राणा॑मिन्द॒ ओजि॑ष्ठः । युध्वा॒ सञ्छश्व॑ज्जिगेथ ॥ १६ ॥
५६५ य उ॒ग्रेभ्य॑श्चि॒दोजी॑या॒ञ्छूरे॑भ्यश्चि॒च्छूर॑तरः । भू॒रि॒दाभ्य॑श्चि॒न्मंही॑यान् ॥ १७ ॥
५६६ त्वं सो॑म॒ सूर॒ एष॒स्तो॒कस्य॑ सा॒ता त॒नूना॑म् ।
वृ॒णी॒महे॑ स॒ख्याय॑ वृ॒णी॒महे॒ युज्या॑य ॥ १८ ॥
५६७ अग्न॒ आयूं॑षि पवस॒ आ सु॒वोर्ज॒मिषं॑ च नः । आ॒रे बा॑धस्व दु॒च्छुना॑म् ॥ १९ ॥
५६८ अ॒ग्निर्ऋषि॒: पव॑मान॒: पाञ्च॑जन्यः पु॒रोहि॑तः । तमी॑महे महाग॒यम् ॥ २० ॥

अर्थ— [५६४] हे (सोम) सोम ! तू (महान् असि) तूं बडा है, तूं (ज्येष्ठः) श्रेष्ठ है । हे (इन्दो) सोम ! तू (उग्राणां ओजिष्ठः) वीरोंमें श्रेष्ठ है । (युध्वा सन्) युद्ध करके ही (शश्वत् जिगेथ) हमेशा जीतता है ॥ १६ ॥

१ महान् ज्येष्ठः असि— तू बडा श्रेष्ठ है ।
२ उग्राणां ओजिष्ठः — शूरोंमें अधिक श्रेष्ठ वीर है ।
३ युध्वा सन् शश्वत् जिगेथ — युद्ध करके सदा शत्रुपर विजय करता है ।

[५६५] (यः) जो सोम (उग्रेभिः ओजीयान् चित्) उग्रवीरोंसे अधिक उग्र है, (यः शूरेभिः शूरतरः चित्) जो शूरोंसे भी अधिक शूर है, तथा (भूरिदाभ्यः चित्) अधिक दान देनेवालोंसे (महीयान्) भी बडा दानी है ॥ १७ ॥

१ यः उग्रेभिः ओजीयान्— उग्रवीरोंसे जो अधिक उग्र है ।
२ यः शूरेभिः शूरतरः— जो शूरोंसे अधिक शूर है ।
३ भूरिदाभ्यः महीयान्— अधिक दान देनेवालोंसे भी अधिक दान देता है ।

ये बडे पुरुष प्रशंसनीय हैं ।

[५६६] हे (सोम) सोम ! तू (सूरः) उत्तम वीर्यवान (इषः) अन्न हमें दे दो तथा (तोकस्य तनूनां साता) पुत्र पौत्रोंके शरीरोंके साथ संबंध हमारा उत्तम रीतिसे रहे । (सख्याय वृणीमहे) मित्रताका संबंध हम चाहते हैं । (युज्याय वृणीमहे) सहायकका संबंध तुमसे हम चाहते हैं ॥ १८ ॥

१ सूरः इषः— तू वीर्यवान हो, हमें अन्न दो ।
२ तोकस्य तनूनां साता— पुत्र पौत्रोंके साथ संबंध हो जाय ।
३ सख्याय युज्याय वृणीमहे— तुम्हारे साथ मित्रता तथा सहायकका संबंध जोडना चाहते हैं ।

[५६७] हे (अग्ने) अग्ने ! (आयूंषि पवसे) हमारे जीवनोंका संरक्षण तू करता है । (नः) हमारे लिये (इषं ऊर्जं च सुव) अन्न और बल दे । (दुच्छुनां आरे बाधस्व) दुष्टोंको दूर कर ॥ १९ ॥

१ नः आयूंषि पवसे— हमारी आयुका संरक्षण कर ।
२ नः इषं ऊर्जं च सुव— हमारे लिये अन्न और बल दे ।
३ दुच्छुनां आरे बाधस्व— दुष्टोंको दूर करके नष्ट कर ।

[५६८] (अग्निः ऋषिः) अग्निऋषि अर्थात् ज्ञानी या ज्ञान देनेवाला है । (पांचजन्यः पवमानः पुरोहितः) पंच जनोंका हित करनेवाला पवमान सामने रखा है (तं महागयं ईमहे) उस बडे घरवाले अग्निकी हम स्तुति गाते हैं ॥ २० ॥

अग्नि ज्ञान देता है, अपने प्रकाशसे सबका ज्ञान करता है । पंच जनोंका हित करनेवाला पवमान सोम यज्ञमें अग्रस्थानमें रखा है । उसकी हम स्तुति करते हैं । अग्निकी उष्णता शरीरमें रहनेसे मनुष्यको ज्ञान प्राप्त होता है । शरीर ठंडा हो जायगा तो ज्ञान नहीं होता । अग्निका यह महत्त्व है ।

५६९ अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधद्रयिं मयि पोषम् ॥ २१ ॥
५७० पवमानो अति स्रिधो ऽभ्यर्षति सुष्टुतिम् । सूरो न विश्वदर्शतः ॥ २२ ॥
५७१ स मर्मृजान आयुभिः प्रयस्वान् प्रयसे हितः । इन्दुरत्यो विचक्षणः ॥ २३ ॥
५७२ पवमान ऋतं बृहच्छुक्रं ज्योतिरजीजनत् । कृष्णा तमांसि जङ्घनत् ॥ २४ ॥
५७३ पवमानस्य जङ्घ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षत । जीरा अजिरशोचिषः ॥ २५ ॥
५७४ पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः । हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ॥ २६ ॥

अर्थ— [५६९] हे (अग्ने) अग्ने ! (स्वपा) उत्तम कर्म करनेवाला तू (अस्मे) हमारे लिये (सुवीर्यं) उत्तम पराक्रम करनेका बल, (वर्चः) तेज (पवस्व) उत्पन्न करके देओ। (मयि रयिं पोषं दधत्) मेरे अंदर धन और पुष्टी धारण कर ॥ २१ ॥

१ स्वपा अस्मे सुवीर्यं वर्चः पवस्व— उत्तम कर्म करनेवाला तू हमारेमें उत्तम पराक्रम करनेकी शक्ति और तेज बढावो।

२ मयि रयिं पोषं दधत्— मेरे अन्दर धन तथा पोषण करनेकी शक्ति रखो।

[५७०] (पवमानः स्रिधः अति) सोम शत्रुओंका अतिक्रमण करके दूर जाता है, (सुष्टुतिं अभ्यर्षति) उत्तम स्तुति प्राप्त करता है। यह पवमान (सूरः न) सूर्यके समान (विश्वदर्शतः) सबको बतानेवाला है ॥ २२ ॥

१ पवमानः स्रिधः अति— यह सोम शत्रुको दूर करता है।

२ सूरः न विश्वदर्शतः— यह सोम सूर्यके समान सबको दर्शाता है।

३ सुष्टुतिं अभ्यर्षति— उत्तम स्तुति प्राप्त करता है।

[५७१] (आयुभिः मर्मृजानः सः इन्दुः) ऋत्विजोंके द्वारा शुद्ध होनेवाला वह सोम (अत्यः) देवोंके पास जाता है। वह सोम (प्रयस्वान्) देवोंके पास जानेवाला (प्रयसे हितः) यज्ञमें अर्पण करनेके लिये रखा है। यह (विचक्षणः) तेजस्वी है ॥ २३ ॥

[५७२] यह (पवमानः) सोम (बृहत् ऋतं शुक्रं ज्योतिः) बडा सत्य तेजस्वी प्रकाश (अजीजनत्) उत्पन्न करता है और (कृष्णा तमांसि जंघनत्) काले अन्धकारका नाश करता है ॥ २४ ॥

सोम प्रकाशसे चमकता है, इस कारण वह सोम अंधेरेका नाश करके प्रकाश देता है।

[५७३] (जंघ्नतः) अंधकारका नाश करनेवाली (हरेः) हरे रंगके (पवमानस्य) सोमकी (चन्द्राः असृक्षत) किरणे बाहेर आ रही हैं। ये प्रकाश किरणें (जीराः) जलदीसे जानेवाली तथा (अजिरशोचिषः) चारों ओर प्रकाश देनेवाली हैं ॥ २५ ॥

सोमरस चमकता है। उससे प्रकाश किरणें बाहेर आती हैं। इससे अन्धकार दूर होता है।

[५७४] (पवमानः) सोम (रथीतमः) उत्तम रथवान है (शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः) शुभ्र किरणोंसे अति स्वच्छ दीखता है। (मरुद्गणः) मरुतोंके गणोंके साथ रहनेवाला यह सोम (हरिः चन्द्रः) हरे रंगका प्रकाश देता है ॥ २६ ॥

सोम अति शुभ्रवर्णका होता है, वह उत्तम रथवीरके समान बडा शूर है, वीरके समान कार्य करनेवाला है। मरुतों के समान वीरताके कार्य यह करता है। इसका रंग हरा है और यह प्रकाशमान होता है।

५७५ पवमानो व्यश्नव-द्रश्मिभिर्वाजसातमः । दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ २७ ॥
५७६ प्र सुवान इन्दुरक्षाः पवित्रमत्यव्ययम् । पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥ २८ ॥
५७७ एष सोमो अधि त्वचि गवां क्रीळत्यद्रिभिः । इन्द्रं मदाय जोहुवत् ॥ २९ ॥
५७८ यस्य ते द्युम्नवत् पयः पवमानाभृतं दिवः । तेन नो मृळ जीवसे ॥ ३० ॥

[६७]

(ऋषिः- १-३ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, ४-६ कश्यपो मारीचः, ७-९ गोतमो राहूगणः, १०-१२ अत्रिर्भौमः, १३-१५ विश्वामित्रो गाथिनः, १६-१८ जमदग्निर्भार्गवः, १९-२१ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः, २२-३२ पवित्र आङ्गिरसो वा वसिष्ठो वा उभौ वा । देवताः- पवमानः सोमः, १०-१२ पवमानः पूषा वा, २३-२७ पवमानोऽग्निः, २५ पवमानः सविता वा, २६ पवमानाग्निसवितारः, २७ विश्वेदेवा वा, ३१-३२ पावमान्यध्येता । छन्दः- गायत्री १६-१८ नित्यद्विपदा गायत्री, ३० पुरउष्णिक्; २७, ३१, ३२ अनुष्टुप् ।)

५७९ त्वं सोमासि धारयु-र्मन्द्र ओजिष्ठो अध्वरे । पवस्व मंहयद्रयिः ॥ १ ॥
५८० त्वं सुतो नृमादनो दधन्वान् मत्सरिन्तमः । इन्द्राय सूरिरन्धसा ॥ २ ॥

अर्थ— [५७५] (पवमानः) सोम (रश्मिभिः व्यश्नवत्) अपने तेजके किरणोंसे विश्वमें व्यापता है । यह (वाजसातमः) उत्तम अन्न देता है, तथा (स्तोत्रे सुवीर्यं दधत्) स्तोताके लिये उत्तम शौर्य प्रदान करता है ॥ २७ ॥

[५७६] (सुवानः इन्दुः) रस निकाला सोम (अव्ययं) भेडाके बालोंसे बनायी (पवित्रं) छाननीमेंसे (पुनानः) छाना जानेवाला (इन्द्रं प्र आ) इन्द्रके पास (अक्षाः) जाता है ॥ २८ ॥

[५७७] (एषः सोमः) यह सोम (गवां त्वचि) गौके चर्मपर (अद्रिभिः) पत्थरोंके साथ (क्रीडति) खेलता है और (इन्द्रं) इन्द्रको (मदाय जोहुवत्) आनंद प्राप्त करनेके लिये बुलाता है ॥ २९ ॥

गौवोंके चर्म पर पात्रमें रखा यह सोम पत्थरोंसे कूटा जाता है और वह सोम आनंद प्राप्त करनेके लिये इन्द्रको बुलाता है । सोमरस पीनेसे आनंद प्राप्त होता है ।

[५७८] (यस्य ते) जिस तेरा (द्युम्नवत् पयः) तेजस्वी सोमरसरूपी दुग्ध जैसा अन्न (दिवः आभृतं) द्युलोकसे लाया है । हे (पवमान) सोम ! (तेन) उस सोमरससे (जीवसे) दीर्घजीवन प्राप्त करनेके लिये (नः मृळ) हमें सुखी रख ॥ ३० ॥

सोम स्वर्गसे अर्थात् हिमालयके शिखरके ऊपरसे लाया है । उस सोमरसके पानसे दीर्घजीवन तथा सुख प्राप्त करें ।

[६७]

[५७९] हे (सोम) सोम ! तू (मन्द्रः) आनंद देनेवाला (ओजिष्ठः) बल बढानेवाला और (अध्वरे) हिंसा रहित यज्ञमें (धारयुः असि) धारासे रस देनेवाला है । ऐसा तू (मंह्रयत्) आनंद देता हुआ (रयिः पवस्व) धन दे ॥ १ ॥

सोमरस पीनेसे उत्साहमय आनंद प्राप्त होता है । आनंद देनेवाला यह सोम धन देकर हमारा आनंद बढावे ।

[५८०] (त्वं सुतः) तेरा रस निकालनेपर वह (नृमादनः) मनुष्योंका अर्थात् ऋत्विजोंका आनंद बढाता है, (दधन्वान्) यजमानोंको धन देनेवाला और (मत्सरिन्तमः) आनंद देनेवाला होता है, ऐसा तू (इन्द्राय) इन्द्रके लिये (अन्धसा सूरिः) अन्नके साथ आनंद देनेवाला हो ॥ २ ॥

५८१ त्वं सुष्वाणो अद्रिभि- रभ्यर्ष कनिक्रदत्	। द्युमन्तं शुष्ममुत्तमम्	॥ ३ ॥
५८२ इन्दुर्हिन्वानो अर्षति तिरो वाराण्यव्यया	। हरिर्वाजमचिक्रदत्	॥ ४ ॥
५८३ इन्दो व्यव्यमर्षसि वि श्रवांसि वि सौभगा	। वि वाजान् त्सोम गोमतः	॥ ५ ॥
५८४ आ न इन्दो शतग्विनं रयिं गोमन्तमश्विनम्	। भरा सोम सहस्रिणम्	॥ ६ ॥
५८५ पवमानास इन्दव- स्तिरः पवित्रमाशवः	। इन्द्रं यामेभिराशत	॥ ७ ॥
५८६ ककुहः सोम्यो रस इन्दुरिन्द्राय पूर्व्यः	। आयुः पवत आयवे	॥ ८ ॥
५८७ हिन्वन्ति सूरमुस्रयः पवमानं मधुश्चुतम्	। अभि गिरा समस्वरन्	॥ ९ ॥
५८८ अविता नो अजाश्वः पूषा यामनियामनि	। आ भक्षत् कन्यासु नः	॥ १० ॥
५८९ अयं सोमः कपर्दिने घृतं न पवते मधु	। आ भक्षत् कन्यासु नः	॥ ११ ॥

अर्थ— [५८१] हे सोम ! (अद्रिभिः सुष्वानः त्वं) पत्थरोंसे कूटकर रस निकाला तू (द्युमन्तं उत्तमं शुष्मं) तेजस्वी उत्तम बलवर्धक अन्न (कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ हमें दे ॥ ३ ॥

[५८२] (हिन्वानः इन्दुः) प्रेरित हुआ सोम (अव्यया वाराणि तिरः) भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे (अर्षति) नीचे उतरता है। उस समय (हरिः) हरे रंगका यह सोम (वाजं अचिक्रदत्) शब्द करता हुआ नीचेके पात्रमें उतरता है ॥ ४ ॥

[५८३] हे सोम ! (अव्यं वि अर्षसि) तू भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे छाना जाता है। (श्रवांसि वि) हविष्यान्नोंको प्राप्त करता है। (सौभगा वि) अनेक सौभाग्य प्राप्त करता है। (गोमतः वाजानि वि अर्षसि) गौओंसे प्राप्त होनेवाले विविध अन्न प्राप्त करता है ॥ ५ ॥

[५८४] हे (इन्दो सोम) प्रकाशमान सोम। (शतग्विनं) सैंकडों गौवोंसे युक्त (सहस्रिणं रयिं) सहस्र प्रकारका (अश्विनं) अनेक घोडोंसे युक्त धन (नः आ भर) हमें भरपूर दो ॥ ६ ॥

[५८५] (पवित्रं तिरः) छाननीमेंसे छाने जानेवाले (पवमानासः आशवः) शुद्ध होनेवाले शीघ्रगामी (इन्दवः) सोमरस (यामेभिः) अपनी गतियोंसे (इन्द्रं आशत) इन्द्रको प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

[५८६] (ककुहः) सोमरस (सोम्यः रसः) सोमनामक वनस्पतिसे निकाला रस है। (आयुः) इन्द्रके पास जानेवाला यह (इन्दुः) सोम (आयवे इन्द्राय पूर्व्यः) सर्वत्र गमन करनेवाले इन्द्रको देनेके लिये (पवते) यह प्रथम निकाला रस है ॥ ८ ॥

[५८७] (उस्रियः) अंगुलियां (मधुश्चुतं) मधुर रस देनेवाले (सूरं पवमानं) उत्तम वीर्ययुक्त सोमको (हिन्वन्ति) प्रेरित करती हैं। उस समय (गिरा) स्तुतिका (सं अभिस्वरन्) गान ऋत्विज करते हैं ॥ ९ ॥

सोमको अंगुलियां पकडती हैं, उस सोमको दबाकर उससे रस निकालती हैं। उस समय ऋत्विज मंत्रपाठ करते हैं।

[५८८] (अजाश्वः) भेडोंको अश्वस्थानोंमें जोडनेवाला (पूषा) पूषा देव (यामनि यामनि) सब गमन स्थानोंमें (नः अविता) हमारा रक्षण करनेवाला हो। यह (कन्यासु) कन्याओंके विषयमें (नः आ भक्षत्) हमारी सहायता करे ॥ १० ॥

[५८९] (अयं सोमः) यह सोम (कपर्दिने) मुकुटधारी पूषाके लिये (मधु घृतं न) मधुर घृतके समान (पवते) रस देता है। और (नः कन्यासु आ भक्षत्) हमारी कन्याओंके विषयमें सहायता करता है ॥ ११ ॥

५९० अयं त आघृणे सुतो घृतं न पवते शुचि । आ भक्षत् कन्यासु नः ॥ १२ ॥
५९१ वाचो जन्तुः कवीनां पवस्व सोम धारया । देवेषु रत्नधा असि ॥ १३ ॥
५९२ आ कलशेषु धावति श्येनो वर्म वि गाहते । अभि द्रोणा कनिक्रदत् ॥ १४ ॥
५९३ परि प्र सोम ते रसो ऽसर्जि कलशे सुतः । श्येनो न तक्तो अर्षति ॥ १५ ॥
५९४ पवस्व सोम मन्दय न्निन्द्राय मधुमत्तमः ॥ १६ ॥
५९५ असृग्रन् देववीतये वाजयन्तो रथा इव ॥ १७ ॥
५९६ ते सुतासो मदिन्तमाः शुक्रा वायुमसृक्षत ॥ १८ ॥
५९७ ग्राव्णा तुन्नो अभिष्टुतः पवित्रं सोम गच्छसि । दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ १९ ॥
५९८ एष तुन्नो अभिष्टुतः , पवित्रमति गाहते । रक्षोहा वारमव्ययम् ॥ २० ॥
५९९ यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह । पवमान वि तज्जहि ॥ २१ ॥

अर्थ – [५९०] हे (आघृणे) तेजस्वी ! (सुनः अयं) रस देनेवाला यह सोम (ते) तेरे लिये (शुचि घृतं न पवते) शुद्ध घीके समान रस देता है । (नः कन्यासु आ भक्षत्) और हमारी कन्याओंके विषयमें सहायता करता है ॥ १२ ॥

[५९१] हे (सोम) सोम ! (कवीनां वाचः जन्तुः) ज्ञानियोंकी स्तुतियोंको प्रेरणा देनेवाला तू (धारया पवस्व) धारासे रस दे । (देवेषु रत्नधा असि) देवोंमें तू रमणीय पदार्थ देनेवाला है ॥ १३ ॥

[५९२] जैसा (श्येनः वर्म विगाहते) श्येन पक्षी अपने घरमें जाता है, वैसा सोम (कलशेषु आ धावति) कलशोंमें जाता है । सोमरस (कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ (द्रोणा अभि) पात्रोंमें जाता है ॥ १४ ॥

[५९३] हे सोम ! (कलशे सुतः ते रसः) कलशमें रखा तेरा रस (परि प्र असर्जि) अलग अलग पात्रोंमें यज्ञमें रखा जाता है । (श्येनः न तक्तः अर्षति) जैसा श्येन पक्षी अपने स्थानमें आकर रहता है ॥ १५ ॥

[५९४] हे (सोम) सोम ! (इन्द्राय मन्दयन्) इन्द्रको आनन्द देनेके लिये (मधुमत्तमः पवस्व) अति मधुर रस दे ॥ १६ ॥

[५९५] (वाजयन्तः रथा इव) शत्रुको पराभूत करनेवाले रथोंके समान (देववीतये असृग्रन्) देवोंको पीनेको देनेके लिये ये रस निकाले हैं ॥ १७ ॥

[५९६] (मदिन्तमाः शुक्रा) आनंद देनेवाले तेजस्वी सोमरस (वायुं) वायुके समान शब्द (असृक्षत) करते हैं ॥ १८ ॥

[५९७] हे (सोम) सोम ! (ग्राव्णा तुन्नः) पत्थरसे कूटा हुआ सोम (पवित्रं गच्छति) छाननीमेंसे जाता है । यह सोम (स्तोत्रे) स्तुति करनेवालेके लिये (सुवार्यं दधत्) उत्तम बल धारण करता है ॥ १९ ॥

[५९८] (एषः) यह सोम (तुन्नः) कूटा हुआ तथा (अभिष्टुतः) स्तुति किया गया (पवित्रं अति गाहते) छाननीसे छाना जाता है । यह (रक्षोहा) राक्षसोंका नाश करता है, यह सोमरस (अव्ययं वारं) भेडीकी छाननीमेंसे छाना जाता है ॥ २० ॥

शरीरमें जो दोष रहते हैं वे यहां राक्षस करके कहे हैं ।

[५९९] हे (पवमान) सोम ! (यत् अन्ति) जो भय पास है (यत् च दूरके) जो भय दूर है, (भयं मां इह विन्दति) जो भय मुझे यहां प्राप्त होता है (तत् विजहि) उस भयको दूर कर ॥ २१ ॥

६०० पवमानः सो अद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः । यः पोता स पुनातु नः ॥ २२ ॥
६०१ यत् ते पवित्रमर्चिष्य -ग्ने विततमन्तरा । ब्रह्म तेन पुनीहि नः ॥ २३ ॥
६०२ यत् ते पवित्रमर्चिव -दग्ने तेन पुनीहि नः । ब्रह्मसवैः पुनीहि नः ॥ २४ ॥
६०३ उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च । मां पुनीहि विश्वतः ॥ २५ ॥
६०४ त्रिभिष्ट्वं देव सवित -र्वर्षिष्ठैः सोम धामभिः । अग्ने दक्षैः पुनीहि नः ॥ २६ ॥
६०५ पुनन्तु मां देवजनाः पुनन्तु वसवो धिया ।
विश्वे देवाः पुनीत मा जातवेदः पुनीहि मा ॥ २७ ॥
६०६ प्र प्यायस्व प्र स्यन्दस्व सोम विश्वेभिरंशुभिः । देवेभ्य उत्तमं हविः ॥ २८ ॥
६०७ उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतीवृधम् । अगन्म बिभ्रतो नमः ॥ २९ ॥
६०८ अलाय्यस्य परशुर्ननाश त -मा पवस्व देव सोम । आखुं चिदेव देव सोम ॥ ३० ॥

अर्थ— [६००] (सः विचर्षणिः पवमानः) वह सर्वदर्शक सोम (यः पोता) जो पवित्र करनेवाला है वह (पवित्रेण) छाननीसेंसे (सः नः पुनातु) हमें पवित्र करे ॥ २२ ॥

[६०१] हे (अग्ने) अग्ने ! (यत् ते अन्तरा) जो तेरे अन्दर (अर्चिषि पवित्रं) पवित्र करनेवाला तेज (विततं) फैला हैं (तेन नः ब्रह्म पुनीहि) उसके द्वारा हमारा ज्ञान पवित्र कर ॥ २३ ॥

[६०२] हे (अग्ने) अग्ने ! (यत् ते पवित्रं अर्चिवत्) जो तेरा पवित्र करनेवाला तेज है (तेन नः पुनीहि) उस तेजसे हमें पवित्र कर (ब्रह्मसवैः) ज्ञानके स्तोत्रोंसे (नः पुनीहि) हमें पवित्र कर ॥ २४ ॥

[६०३] हे (सवितः देव) सूर्य देव ! तू (पवित्रेण सवेन च उभाभ्यां) छाननी और रस निकालने इन दोनोंसे (विश्वतः मां पुनीहि) सब प्रकारसे मुझे पवित्र कर ॥ २५ ॥

[६०४] हे (सवितः देव) सविता देव ! (त्वं) तू (त्रिभिः वर्षिष्ठैः धामभिः) तीनों श्रेष्ठ स्थानोंसे हे (सोम) सोम तथा (अग्ने) हे अग्ने (दक्षैः नः पुनीहि) अपने सामर्थ्योंसे हमें पवित्र कर ॥ २६ ॥

[६०५] (देवजनाः मा पुनन्तु) दिव्य जन हमें पवित्र करें, (वसवः) अष्ट वसु (धिया) बुद्धिके द्वारा हमें (पुनन्तु) पवित्र करें । (विश्वे देवाः मा पुनीत) सब देव मुझे पवित्र करें। (जातवेद) जातवेद ! (मा पुनीहि) मुझे पवित्र कर ॥ २७ ॥

[६०६] हे (सोम) सोम ! (प्र प्यायस्व) हमारा संवर्धन कर तथा (विश्वेभिः अंशुभिः) सब प्रकारसे (देवेभ्यः उत्तमं हविः) देवोंको अर्पण करने योग्य हविष्य पदार्थ (स्यन्दस्व) हमारे पास हो ऐसा कर ॥ २८ ॥

[६०७] (प्रियं) उपासकोंको प्रिय (पनिप्नतं) शब्द करनेवाले (युवानं) तरुण (आहुति वृधं) आहुतियोंसे बढनेवाले पवमानको हम (नमः) नमन करते हैं और (उप अगन्म) उसके समीप जाते हैं ॥ २९ ॥

[६०८] (अलाय्यस्य) हमला करनेवाले शत्रुका (परशुः) शस्त्र (ननाश) नष्ट होता है । हे (सोम देव) देव सोम ! (आ पवस्व) आकर अपना रस दे । (आखुं चित् एव) शत्रुका नाश कर ॥ ३० ॥

१ अलाय्यस्य परशुः ननाश— हमला करनेवाले शत्रुके शस्त्र नष्ट करने योग्य होते हैं। अपने प्रयत्नसे शत्रुके शस्त्र अस्त्र नष्ट करना योग्य है ।

२ आखुं चित् एव— शत्रुका नाश करो।

×

६०९ यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम् । ॥ ३१ ॥
सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना

६१० पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम् । ॥ ३२ ॥
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम्

[६८]

(ऋषिः- वत्सप्रिर्भालन्दनः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती, १० त्रिष्टुप् ।)

६११ प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्दवो ऽसिष्यदन्त गाव आ न धेनवः । ॥ १ ॥
बर्हिषदो वचनावन्त ऊधभिः परिस्रुतमुस्रिया निर्णिजं धिरे

अर्थ— [६०९] (यः) जो मनुष्य (पावमानीः) पवमान देवताकी स्तुति करनेवाले मंत्रोंका अर्थात् (ऋषिभिः संभृतं रसं) ऋषियोंके द्वारा संग्रह किये सारभूत मंत्रोंका (अध्येति) अध्ययन करता है (सः) वह मनुष्य (सर्वं पूतं अश्नाति) सब पवित्र अन्न ही भक्षण करता है (मातरिश्वना स्वदितं) वायुने जो प्रथम भक्षण किया होता है ॥ ३१ ॥

शुद्ध वायुसे खाया हुआ, अर्थात् शुद्ध वायुसे पवित्र हुआ पवमान है। इस पवमान सूक्तोंका अध्ययन ऋषि करते थे और उससे बोध प्राप्त करते थे ।

[६१०] (यः) जो (पवमानीः) पवमान अर्थात् सोम देवताके मंत्रोंके संग्रहका (अध्येति) अध्ययन करता है, यह पवमानके मंत्रोंका संग्रह (ऋषिभिः संभृतं रसं) ऋषियोंने एकत्रित किया ज्ञानका रस ही है, (तस्मै) उस अध्ययन करनेवालेके हित करनेके लिये (सरस्वती) विद्यादेवी (क्षीरं) दूध, (सर्पिः) घी, (मधु) मध (उदकं दुहे) जल दुहकर देती है ॥ ३२ ॥

जो इन पवमानके मंत्रोंका अध्ययन करता है, उसको पर्याप्त मधुर अन्न प्राप्त होता है । और इसके सेवनसे उसका अत्यंत कल्याण होता है ।

[६८]

[६११] (मधुमन्त इन्दवः) मधुर सोमरस (देवं) इन्द्र देवके पास पहुंचनेके लिये (अच्छ) उत्तम रीतिसे (प्र असिष्यदन्त) प्रवाहित हुए । (गावः धेनवः आ) दूध देनेवाली गौवें जैसी अपने बछेके पास दूध पिलानेके लिये जाती है । (बर्हिषदः उस्रियाः) यज्ञमें बैठनेवाली गौवें (ऊधभिः) अपने दूध देनेके भागोंके साथ (वचनावन्तः) हंबारव शब्द करती हुई (परिस्रुतं निर्णिजं धिरे) दूध इन्द्रके लिये धारण करती हैं ॥ १ ॥

१ मधुमन्त इन्दवः देवं अच्छ प्र असिष्यन्त— मधुर सोमरस इन्द्रको देनेके लिये उत्तम रीतिसे तैयार किये हैं ।

२ गावः धेनवः आ— गौवें अपने बछेको दूध देनेके लिये जैसी तैयार रहती हैं, वैसे सोमरस इन्द्रको देनेके लिये तैयार हुए ।

३ बर्हिषदः उस्रियाः ऊधभिः वचनावन्तः परिस्रुतं निर्णिजं धिरे— यज्ञ स्थानमें बैठी हुई गौवें जिस प्रकार अपने दुग्धाशयमें दूध धारण करती हैं और यज्ञ करनेवालोंके वचन सुननेकी इच्छा करती हैं, उस प्रकार ये सोमरस यज्ञमें तैयार होकर यज्ञमें जानेकी इच्छा करते हैं ।

६१२ स रोरुवदभि पूर्वा अचिक्रद-दुपारुहः श्रथयन् त्स्वादते हरिः ।
तिरः पवित्रं परियन्नुरु जयो नि शर्याणि दधते देव आ वरम् ॥ २ ॥
६१३ वि यो ममे यम्या संयती मदः साकंवृधा पयसा पिन्वदक्षिता ।
मही अपारे रजसी विवेविद-दभिव्रजन्नक्षितं पाज आ ददे ॥ ३ ॥
६१४ स मातरा विचरन् वाजयन्नपः प्र मेधिरः स्वधया पिन्वते पदम् ।
अंशुर्यवेन पिपिशे यतो नृभिः सं जामिभिर्नसते रक्षते शिरः ॥ ४ ॥

अर्थ— [६१२] (रोरुवत् सः) शब्द करनेवाला वह सोम (पूर्वा अभि) पहिली मुख्य स्तुतियां (अचिक्रदत्) सुनता है । (हरिः) हरे रंगका वह सोम (उपारुहः) ऊपर रहकर (श्रथयन्) विशेष रूपसे (स्वादते) मीठा रस बनाता है । (पवित्रं तिरः) छाननीका तिरस्कार करके (परियन्) आगे जानेवाला यह सोम (उरु जयः) बडा वेग धारण करता है (शर्याणि नि दधते) शत्रुओंको दूर करता है और यह (देवः) दिव्य सोम (वरं आ दधते) श्रेष्ठको धारण करता है ।

१ रोरुवत् पूर्वा अभि अचिक्रदत्— शब्द करता हुआ यह सोमरस पात्रमें गिरते समय शब्द करता हुआ गिरता है । पात्रमें गिरनेका इसका शब्द होता है ।

२ हरिः उपारुहः श्रथयन् स्वदते— हरे रंगका यह सोम ऊपरसे नीचेके पात्रमें गिरता हुआ शब्द करते हुए गिरता है ।

३ पवित्रं तिरः परियन् उरु जयः— छाननीसे नीचे गिरनेके समय बडे वेगसे नीचे गिरता है ।

४ शर्याणि निदधते— शत्रुओंको दूर करता है ।

५ देवः वरं आ दधते— यह दिव्य सोम श्रेष्ठोंको धारण करता है । श्रेष्ठोंको अपना आश्रय देकर उनको सुरक्षित रखता है ।

[६१३] (यः मदः) जो आनंद बढानेवाला सोमरस (यम्या संयती) परस्पर साथ रहनेवाली द्यावा पृथिवीको (विममे) विशेष रीतिसे साथ रखता है, इससे वे दोनों (साकं वृधा) साथ रहकर उन्नति करता हैं, तथा (अक्षिता) क्षीण नहीं होती, इसके लिये यह सोमरस (पयसा अपिन्वत्) दूधके साथ मिश्रित होता है । तथा (मही अपारे रजसी) बडे अपार द्यावा पृथिवी है यह (विवेविदत्) जानता है और (अभिव्रजन्) आगे बढता हुआ (अक्षितं पाजः) अक्षय अन्नको (आददे) स्वीकारता है ॥ ३ ॥

१ यः मदः यम्या संयती विममे— जो आनंद बढानेवाला सोम द्युलोक और पृथिवीको साथ रखता है।

२ साकं वृधा अक्षिता— साथ रहकर बढनेवाली अक्षय ऐसी ये द्यावा पृथिवी हैं यह जानना चाहिये ।

३ मही अपारे रजसी विवेविदत्— ये द्यावा पृथिवी बडे विशाल है यह जानता है ।

४ अक्षितं पाजः आददे— अविनाशी अर्थात् कम न होनेवाला अन्न यह प्राप्त करता है ।

[६१४] (मेधिरः) बुद्धिमान (सः) वह सोम (मातरा) मातारूपी द्यु और पृथिवी (विचरन्) के ऊपरसे विचरण करता है, और (अपः वाजयन्) जलोंको प्रेरित करता है । यह (स्वधया) अपनी शक्तिसे (पदं प्र पिन्वते) अपना पांव प्रेरता है । (अंशुः) यह सोम (यवेन पिपिशे) जवके अन्नसे पुष्ट होता है । यह सोम (नृभिः जामिभिः) ऋत्विजोंकी अंगुलियोंसे (सं नसते) मिलकर रहता है (शिरः रक्षते) सब भूतमात्रका रक्षण करता है ॥ ४ ॥

१ मेधिरः सः मातरा विचरन्— वह बुद्धिमान सोम द्युलोक और पृथिवीपर भ्रमण करता है । इस सोमको हिमालयके शिखरके ऊपरसे याज्ञिक लोग लाते हैं और देशभर ले जाकर यज्ञ करते हैं ।

२ अपः वाजयन्— यह सोम अन्तरिक्षसे जलोंको नीचे पृथिवी पर भेजता है । इससे वृष्टि होती है । यह पर्वतके शिखरपर रहता है अतः वह वहांसे वृष्टिको पृथिवी पर भेजता है ऐसा वर्णन किया गया है ।

३ नृभिः जामिभिः सं नसते— यह सोम यज्ञकर्ता ऋत्विजोंके साथ रहता है । यज्ञकर्ताके साथ सोम रहता है ।

४ रक्षते— सबका रक्षण करता है । यह सोम उत्तम अन्न है, बल बढाता है । अतः यह सबका रक्षक होता है ।

६१५ सं दक्षेण मनसा जायते कविर्ऋतस्य गर्भो निहितो यमा परः ।
यूना ह सन्ता प्रथमं वि जज्ञतुर्गुहा हितं जनिम नेममुद्यतम् ॥ ५ ॥
६१६ मन्द्रस्य रूपं विविदुर्मनीषिणः श्येनो यदन्धो अभरत् परावतः ।
तं मर्जयन्त सुवृधं नदीष्वाँ उशन्तमंशुं परियन्तमृग्मियम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [६१५] (दक्षेण मनसा) दक्ष मनसे (संजायते) सम्यक् रीतिसे यह सोम उत्पन्न होता है । यह (ऋतस्य गर्भः) यज्ञका उत्पत्ति स्थान है । यह (यमा) नियमके अनुसार (परः निहितः) ऊपरके स्थानमें रखा है । (यूना) ये दोनों, सूर्य और सोम (प्रथमं विजज्ञतुः) प्रथम मालूम हुए । (गुहा हितं) गुप्त स्थानमें रहा इनका (जनिम) जन्म (नेमं उद्यतं) नियमानुसार प्रकाशित होता है ॥ ५ ॥

१ दक्षेन मनसा संजायते— दक्षतासे संयुक्त मनसे यह सोम उत्पन्न होता है । सोमरस पीनेसे मनमें विशेष स्फुरण उत्पन्न होता है और यह स्फुरण मनुष्यको यज्ञ करनेका उत्साह बढाता है ।

२ ऋतस्य गर्भः— यह सोम यज्ञका गर्भ है ऐसा कहते हैं । यज्ञकी उत्पत्ति सोमकी प्राप्ति होनेके पश्चात् ही हो गयी है ।

३ परः निहितः— यह सोम पर्वतके शिखर पर रहता है ।

४ युना प्रथमं विजज्ञतुः— सूर्य और चन्द्र ये प्रथम दीखे । इनमें चन्द्र ही सोम है । चन्द्रका नाम इस कारण सोम है ।

५ गुहाहितं जनिम— ये गुहामें, गुप्त स्थानमें, उदयके पूर्व रहते हैं ।

६ नेमं उद्यतं— नियमानुसार ये सूर्य और सोम (चन्द्र) प्रकाशित होते हैं । नियमानुसार इनका उदय होता है, और इनका अस्त भी नियमानुसार ही होता है । ये नियमानुसार घूमते रहते दीखते हैं ।

[६१६] (मनीषिणः) ज्ञानी जनोंने (मन्द्रस्य रूपं विविदुः) आनंद बढानेवाले इस सोमका स्वरूप जाना । (यत् अन्धः) जो सोमरूप अन्न (श्येनः परावतः अभरत्) श्येन पक्षीने दूरसे लाया था । (तं सुवृधं) उस उत्तम रीतिसे बढनेवाले सोमको (नदीषु) जलोंमें (आ मर्जयन्तः) उत्तम रीतिसे छानते हैं । यह सोम (उशंतं) देवोंके पास जानेकी इच्छा करता है, (परियन्तं) देवोंके समीप जाता है और यह सोम (ऋग्मियं) स्तुति करने योग्य है ॥ ६ ॥

१ मनीषिणः मन्द्रस्य रूपं विविदुः— ज्ञानी जनोंने इस आनंद बढानेवाले सोमके रूपों तथा गुणोंको जान लिया था । इस कारण वे ज्ञानी जन इसका यज्ञ करते और सेवन करते थे ।

२ यत् अन्धः श्येनः परावतः अभरत्— जिस अन्नरूप इस सोमको श्येन पक्षीने दूरसे लाया था । पर्वतके शिखर परसे लाया था ।

३ तं सुवृधं नदीषु आ मर्जयन्तः— उस उत्तम प्रकार आनंद बढानेवाले इस सोमको नदीके जलमें ऋत्विजोंने शुद्ध किया ।

४ उशंतं परियन्तं ऋग्मियं— यह सोम देवोंको अर्पण करने योग्य है, वह देवोंके पास जाता है अतः स्तुतिके योग्य है । यज्ञमें सोम देवोंको अर्पण किया जाता है और पश्चात् यज्ञकर्ता उस सोमरसका सेवन करते हैं ।

६१७ त्वां मृजन्ति दश योषणः सुतं सोम ऋषिभिर्मतिभिर्धीतिभिर्हितम् ।
अव्यो वारेभिरुत देवहूतिभिर्नृभिर्यतो वाजमा दर्षि सातये ॥ ७ ॥
६१८ परिप्रयन्तं वय्यं सुषंसदं सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभः ।
यो धारया मधुमाँ ऊर्मिणा दिव इयर्ति वाचं रयिषाळमर्त्यः ॥ ८ ॥
६१९ अयं दिव इयर्ति विश्वमा रजः सोमः पुनानः कलशेषु सीदति ।
अद्भिर्गोभिर्मृज्यते अद्रिभिः सुतः पुनान इन्दुर्वरिवो विदत् प्रियम् ॥ ९ ॥

अर्थ — [६१७] हे (सोम) सोम ! (योषणः दश) दस अंगुलियां (त्वां सुतं) तुझ रस निकाले सोमको (मृजन्ति) शुद्ध करती हैं । यह सोम (ऋषिभिः) ऋषियोंने (मतिभिः) बुद्धिपूर्वक (धीतिभिः हितं) यज्ञकर्मोंके द्वारा यज्ञस्थानमें रखा होता है । यह सोम (अव्यः वारेभिः) भेडीके बालोंकी छाननीसे छाना (नृभिः देवहूतिभिः यतः) देवोंकी स्तुति करनेवाले ऋत्विजोंने रखा (सातये) दानके लिये (वाजं आ दर्षि) अन्न देता है ॥ ७ ॥

१ दश योषणः त्वां सुतं मृजन्ति— ऋत्विजकी दश अंगुलियां सोमको दबाकर रस निकालती हैं और उसको छानकर शुद्ध करती हैं ।

२ ऋषिभिः मतिभिः धीतिभिः हितः— ऋषियोंने अपनी बुद्धिसे यज्ञकर्मके स्थानपर इस सोमको रखा है ।

३ नृभिः देवहूतिभिः सातये यतः— ऋत्विजोंने देवोंकी स्तुतिके साथ देवोंको देनेके लिये यज्ञस्थानमें रखा यह सोम है ।

४ सातये वाजं आदर्षि— दान देनेके लिये यह सोम पर्याप्त अन्न देता है ।

[६१८] (परिप्रयन्तं) यज्ञ पात्रोंमें आनेवाले (वय्यं) देवोंके लिये प्रिय अर्थात् इच्छा करने योग्य (सुषंसदं) उत्तम संगति करने योग्य (सोमं) सोमरसकी (मनीषा स्तुभः अभ्यनूषत्) मनः पूर्वक स्तुतियां की जाती हैं । (मधुमान् यः) मधुर रसवाला यह सोम (धारया) धारासे (उर्मिणा) उर्मिके साथ (दिवः इयर्ति) द्युलोकसे आता है और (रयिषाट् अमर्त्यः) शत्रुके धनपर अपना अधिकार करनेवाला यह अमर सोम (वाचं इयर्ति) स्तुति करनेकी प्रेरणा करता है ।

१ परिप्रयन्तं वय्यं सुषंसदं सोमं मनीषा स्तुभः अभ्यनूषत— यज्ञके पात्रोंमें रखे, देवोंके लिये प्रिय, उत्तम संगति करने योग्य सोमरसकी मनःपूर्वक स्तुति यज्ञमें ऋत्विज करते हैं ।

२ मधुमान् यः धारया उर्मिणा दिवः इयर्ति— तेजस्वी यह सोमरस धारासे ऊर्मीके साथ उपरसे नीचेके पात्रमें पडता है ।

३ रयिषाट् अमर्त्यः वाचं इयर्ति— शत्रुके धनपर अपना अधिकार करनेवाला यह सोमरस स्तुति करने की प्रेरणा करता है । इस कारण ऋत्विज लोग यज्ञमें इसकी स्तुति करते हैं ।

[६१९] (अयं सोमः) यह सोम (दिवः) द्युलोकसे (विश्वं रजः) सब जल (आ इयर्ति) पृथिवीपर प्रेरीत करता है । (पुनानः सोमः) शुद्ध किया हुआ सोमरस (कलशेषु सीदति) यज्ञके कलशोंमें बैठता–रहता है । (अद्रिभिः सुतः) पत्थरोंसे कूटकर निकाला यह रस (पुनानः इन्दुः) छाना जानेपर यह सोमरस (प्रियं वरिवः) प्रिय धन (विदत्) प्राप्त करता है । अर्थात् स्तुति करनेवालोंको– ऋत्विजोंको देता है ॥ ९ ॥

१ अयं सोमः दिवः विश्वं रजः आ इयर्ति— यह सोम द्युलोकसे सब जल पृथिवीपर वृष्टिके रूपसे भेजता है । सोम पर्वतके शिखर पर रहता है और वृष्टि ऊपरसे होती है । इसलिये कहा है कि सोम बरसाद नीचे भेजता है ।

२ पुनानः सोमः कलशेषु सीदती— छाना गया सोमरस कलशोंमें रखा रहता है ।

३ अद्रिभिः सुतः पुनानः इन्दुः प्रियं वरिवः ददत्— पत्थरोंसे कूटकर निकाला सोमरस प्रिय धन याजकोंको देता है ।

६२० एवा नः सोम परिषिच्यमानो वयो दधच्चित्रतमं पवस्व ।
अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ॥ १० ॥

[६९]

(ऋषिः- हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती, ९-१० त्रिष्टुप् ।)

६२१ इषुर्न धन्वन् प्रति धीयते मति- र्वत्सो न मातुरुप सर्ज्यूधनि ।
उरुधारेव दुहे अग्र आय- त्यस्य व्रतेष्वपि सोम इष्यते ॥ १ ॥
६२२ उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि ।
पवमानः संतनिः प्रघ्नतामिव मधुमान् द्रप्सः परि वारमर्षति ॥ २ ॥

अर्थ— [६२०] हे (सोम) सोम ! तू (परिषिच्यमानः) जल या गौके दूधसे मिलाया हुआ (एव) ही (चित्रतमं वयः दधत्) अनेक प्रकारका अन्न धारण करके (पवस्व) हमें दे । (अद्वेषे) द्वेष रहित (द्यावा-पृथिवी) द्युलोक और पृथिवीको हम (हुवेम) बुलाते हैं । (देवाः) देव (अस्मे सुवीरं रयिं धत्त) हमारे लिये उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त धन दें ॥ १० ॥

१ परिषिच्यमानः चित्रतमं वयः दधत्-- गौके दूध या जलके साथ मिलाया सोमरस हमें अनेक प्रकार-का अन्न देवे ।

२ अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम— द्वेष रहित हुऐ द्युलोक और पृथिवीके हम पास रहते हैं । द्युलोकसे पृथिवी पर्यंत सब स्थान द्वेष रहित अर्थात् शत्रु रहित हों । यहां पृथिवीसे आकाशतकके स्थानमें हमारा कोइ शत्रु न रहे । सब हमारे मित्र बनकर रहें ।

३ देवाः अस्मे सुवीरं रयिं धत्त— देव हमें उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त धन प्रदान करें । हमें धन मिले और उत्तम वीर पुत्र भी प्राप्त हों । पुत्र उत्तम वीर हों । डरनेवाले संबंधी या पुत्रपौत्र हमें न हों ।

[६९]

[६२१] इस इन्द्रकी (मतिः) स्तुति (प्रति धीयते) हमारे द्वारा की जाती है । (न) जिस प्रकार (इषुः धन्वन) बाण धनुष्यपर लगाया जाता है । अथवा (वत्सः न) जैसा पुत्र (मातुः ऊधनि उप सर्जि) माताकी गोदमें बैठता है । (उरुधारा इव) दूध देनेवाली गौके समान (अग्रे आयती) समीप आनेवाली (दुहे) दूध देती है (अस्य व्रतेषु अपि) इसके व्रतोंमें भी (सोम) सोम (इष्यते) प्रेरित किया जाता है ॥ १ ॥

१ मतिः प्रति धीयते— इन्द्रकी स्तुति की जाती है । स्तुति करनेवालोंके मनमें दूसरा कोई विषय नहीं होता।

२ इषु धन्वन् न— जैसा बाण धनुष्यपर धारण करते हैं, उस समय बाणका लक्ष्य निश्चित रहता है । उस प्रकार देवकी स्तुति करनेके समय स्तुति करनेवालेका ध्यान देवताके ऊपर ही रहना चाहिये ।

३ वत्सः मातुः ऊधनि उपसर्जि— पुत्र माताके गोदमें बैठता है उस समय पुत्रका ध्यान माताके ऊपर ही रहता है । वैसा उपासना करनेवालेका ध्यान उपास्य पर हि होना चाहिये । इधर उधर मन भटकना योग्य नहीं है ।

[६२२] इन्द्रकी (मतिः) स्तुति (उपो पृच्यते) की जाती है तथा (मधु) मधुर सोमरसकी धारा (सिच्यते) दी जाती है । वह (मन्द्राजनी) आनन्द दनेवाली रसधारा (आसनि अन्तः चोदते) इन्द्रके मुखमें प्रेरित की जाती है । (मधुमान् द्रप्सः) मधुर प्रवाहित होनेवाला रस (प्रघ्नतां संतनिः इव) शत्रुपर आघात करने वालोंके बाणोंके समान (पवमानः) सोमरस (वारं परि अर्षति) भेडीके बालोंकी छाननोमेंसे शीघ्रतासे जाता है ॥ २ ॥

१ मतिः उपो पृच्यते— देवताकी स्तुति की जाती है ।

२ मधु सिच्यते— मधुर सोमरस निकाला जाता है ।

३ मन्द्राजनी आसनि अन्तः चोदते— आनन्द देनेवाला सोमरस इन्द्रके मुखमें दिया जाता है ।

४ मधुमान् द्रप्सः पवमानः प्रघ्नतां संतनिः इव वारं परि अर्षति— मीठा सोमरस आघात करनेवालोंके बाणोंके समान बालोंकी छाननीमेंसे नीचे उतरता है ।

६२३ अव्ये वधूयुः पवते परि त्वचि श्रथ्नीते नप्तीरदितेर्ऋतं यते ।
हरिरक्रान् यजतः संयतो मदो नृम्णा शिशानो महिषो न शोभते ॥ ३ ॥
६२४ उक्षा मिमाति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरुप यन्ति निष्कृतम् ।
अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत ॥ ४ ॥
६२५ अमृक्तेन रुशता वाससा हरिरमर्त्यो निर्णिजानः परि व्यत ।
दिवस्पृष्ठं बर्हणा निर्णिजे कृतोपस्तरणं चम्वोर्नभस्मयम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [६२३] (वधूयुः) वधूके समान सोम (अव्ये त्वचि) मेंढीके चर्मपर (परि पवते) स्वच्छ किया जाता है । (अदितेः नप्ती) अदीन पृथिवीकी नात सोम औषधि (ऋतं यते) यज्ञमें जानेवाले यजमानके लिये (श्रथ्नीते) अग्र भागमें जानेकी प्रेरणा करती है । (हरिः) हरे रंगका (यजतः) यज्ञके लिये योग्य (संयतः मदः) प्राप्त किया हुआ यह आनंद देनेवाला सोम (अक्रान्) आगे बढता है । यह सोम (नृम्णा) बलोंको (शिशानः) तीक्ष्ण करके बढाता है । (महिषः न) बडे वीरके समान (शोभते) सुशोभित दीखता है ॥ ३ ॥

१ वधूयुः अव्ये त्वचि परि पवते— वधूके समान शुद्ध सोम मेंढीके चर्मपर स्वच्छ किया जाता है । मेंढीके चर्मपर पात्रोंमें रखा सोम छाना जाकर शुद्ध किया जाता है ।

२ अदितेः नप्ती ऋतं यते श्रथ्नीते— अदितिकी नात यह सोमवल्ली यज्ञमें जानेकी प्रेरणा यजमानको देती है । अदितिसे देव, देवोंसे वर्षा, वर्षासे सोम औषधि होती है । अतः यह अदितिकी नात है ।

३ हरिः यजतः संयतः मदः अक्रान्— हरे रंगका यह सोम यज्ञ करनेवालेका आनंद बढाता हुआ यज्ञमें आगे जाता है ।

४ नृम्णा शिशानः महिषः न शोभते— अपने बलोंसे वीरके समान शोभता है ।

[६२४] (उक्षा मिमाति) बैल पुकारता है, (धेनवः प्रति यन्ति) उसका अनुकरण गौवें करती हैं । (देवस्य निष्कृतं) तेजस्वी पुरुषके स्थानको (देवीः उपयन्ति) देवियां जाती हैं । यह सोमरस (अव्ययं वारं) मेंढीके बालोंकी छाननीमेंसे (अत्यक्रमीत्) छाना जाता है और यह (सोमः) सोम (अत्कं न निक्तं) अपने कवचको (परि अव्यत) प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

१ उक्षा मिमाति, परि धेनवः यन्ति— बैल पुकारता है उसका शब्द सुनकर गौवें उसके समीप जाती है।

२ देवस्य निष्कृतं देवीः उपयन्ति— देवके स्थानपर देवियां जाकर रहती हैं । पुरुषके स्थानमें जाकर रहती हैं ।

३ अव्ययं वारं अत्यक्रमीत् — मेंढीके बालोंकी छाननीमेंसे सोमरस छाना जाता है ।

४ सोमः अत्कं न निक्तं परि अव्यत्— सोमरस अपने कवचको अर्थात् जलको अपने ऊपर धारण करता है अर्थात् सोमरस जलमें मिलाया जाता है ।

[६२५] (अमर्त्यः हरिः) अमर हरे रंगका सोम (निर्णिजानः) जलके साथ मिश्रित होकर शुद्ध होता हुआ (अमृक्तेन रुशता वाससा) शुद्ध किये तेजस्वी वस्त्रसे (परिव्यत) आच्छादित होता है । (दिवस्पृष्ठं) द्युलोकके पृष्ठ भागपर रहनेवाले सूर्यको निर्माण करके (बर्हणा निर्णिजे) तेजसे युक्त करता है । यह सोम (चम्वोः नभस्मयं) पात्रमें प्रकाशमय रस देता है ॥ ५ ॥

१ अमर्त्यः हरिः अमृक्तेन रुशता वाससा परिव्यत— यह अमर हरे रंगका सोमरस अमर तेजस्वी वस्त्रसे आच्छादित होता है । सोमरसमें गौका श्वेत वर्णका दूध मिलाया जाता है । वह मिश्रण तेजस्वी दीखता है ।

२ दिवस्पृष्ठं बर्हणा निर्णिजं, चम्वोः नभस्मयं— यह सोम द्युलोकके समान तेजस्वी दीखता है, अतः वह पात्रके अन्दर चमकता रहता है । सोमरस तेजस्वी होता है, अतः वह पात्रमें रखनेपर भी चमकता रहता है । अतः वह तेजस्वी दीखता है ।

६२६ सूर्य॑स्येव र॒श्मयो॑ द्रावयि॒त्नवो॑ मत्स॒रासः॑ प्र॒सुपः॑ सा॒कमी॑रते ।
तन्तुं॑ त॒तं परि॒ सर्गा॑स आ॒शवो॒ नेन्द्रा॑दृ॒ते प॑वते॒ धाम॒ किं च॒न ॥ ६ ॥
६२७ सिन्धो॑रिव प्रव॒णे नि॒म्न आ॒शवो॒ वृष॑च्युता॒ मदा॑सो गा॒तुमा॑शत ।
शं नो॑ निवे॒शे द्वि॒पदे॒ चतु॑ष्पदे॒ ऽस्मे वाजाः॑ सोम तिष्ठन्तु कृ॒ष्टयः॑ ॥ ७ ॥
६२८ आ नः॑ पवस्व॒ वसु॑म॒द्धिर॑ण्यव॒दश्वा॑व॒द्गोम॒द्यव॑मत् सु॒वीर्य॑म् ।
यू॒यं हि सो॑म पि॒तरो॒ मम॒ स्थन॑ दि॒वो मू॒र्धानः॑ प्रस्थि॑ता वय॒स्कृतः॑ ॥ ८ ॥

अर्थ— [६२६] (सूर्यस्य रश्मयः इव) सूर्यकी किरणोंके समान (द्रावयित्नवः मत्सरासः) गमनशील तथा आनंद देनेवाले (प्रसुपः) शत्रुओंका विनाश करनेवाले (आशवः) त्वराशील (सर्गासः) सोमरस (ततं तन्तुं) तने हुए धागोंमेंसे (साकं ईरते) साथ छाने जाते है। वे सोमरस (इन्द्रात् ऋते) इन्द्रके सिवाय (किंचन धाम) कोई भी स्थानको (न पवते) जाते नहीं ॥ ६ ॥

१ मत्सरासः सर्गासः साकं ईरते— आनंद देनेवाले ये सोमरस साथ साथ छाननीसे नीचेके पात्रमें उतरते हैं।

२ इन्द्रात् ऋते किंचन धाम न पवते— इन्द्रके सिवाय दूसरा कोई स्थान उनको पसंत नहीं हैं।

३ प्रसुपः— ये सोमरस शत्रुका नाश करते हैं।

इन सोमरसोंका प्रथम यज्ञमें देवताओंकि लिये अर्पण करके पश्चात् उनका सेवन करना योग्य है।

[६२७] (वृषच्युताः) ऋत्विजोंके द्वारा रस निकाले सोमरस (मदासः) आनंद देते हैं। वे इन्द्रके पास (गातुं आशत) जानेकी इच्छा करते हैं। (सिन्धोः प्रवणे इव) नदीके प्रवाह जैसे निम्न भागमें जाते हैं वैसे वे इन्द्रके पास जाते हैं। (नः निवेशे) हमारे घरमें (द्विपदे चतुष्पदे शं) दो पांववाले अर्थात् मनुष्योंका तथा गौ आदि पशुओंका कल्याण हो। हे सोम ! (अस्मे वाजाः) हमारे पास सब अन्न तथा (कृष्टयः तिष्ठन्तु) पुत्र आदि जन रहें ॥ ७ ॥

१ वृषच्युताः मदासः गातुं आशत— ऋत्विजोंने तैयार किये सोमरस इन्द्रके पास जानेकी इच्छा करते हैं। यज्ञमें इन्द्रको सोमरस देते हैं और पश्चात् यज्ञकर्ता उसका स्वीकार करते हैं।

२ सिन्धो प्रवणे इव— नदीके जल जैसे नीचेके भागमें जाते हैं वैसे ये रस यज्ञके स्थानमें जाते हैं। सोम पर्वतके शिखरपर होता है वहांसे वह यज्ञमें लाया जाता है। अर्थात् वह सोम पर्वतके शिखरपरसे नीचे लाया जाता है।

३ नः निवेशे द्विपदे चतुष्पदे शं— हमारे स्थानमें मनुष्यों तथा पशुओंका कल्याण होता रहे।

४ अस्मे वाजाः कृष्टयः तिष्ठन्तु— हमारे पास सब प्रकारके अन्न तथा पुत्र पौत्र आदि सब आनंद प्रसन्न स्थितिमें रहें।

[६२८] हे (सोम) सोम ! (नः) हमारे लिये (वसुमत्) धनसे युक्त (हिरण्यवत्) सुवर्णसे युक्त (अश्वावत्) घोडोंसे युक्त (गोमत्) गौवोंसे युक्त (यवमत्) यव आदि धान्यसे युक्त (सुवीर्यं) उत्तम पराक्रम की शक्तिसे युक्त धन (आ पवस्व) प्राप्त हो। (यूयं हि मम पितरः स्थन) आप ही हमारे पिता हैं। (दिवः मूर्धानः प्रस्थिताः) द्युलोकके शिखरपर तुम रहते हो तथा तुम (वयस्कृतः) अन्न देनेवाले हो ॥ ८ ॥

सोम हम मानवोंके लिये नीचे लिखे जैसा होता है।

१ वसुमत्— धनसे युक्त।

२ हिरण्यवत्— सुवर्ण देनेवाला।

६२९ एते सोमाः पवमानास इन्द्रं रथा इव प्र ययुः सातिमच्छ ।
सुताः पवित्रमति यन्त्यव्यं हित्वी वव्रिं हरितो वृष्टिमच्छ ॥ ९ ॥
६३० इन्दविन्द्राय बृहते पवस्व सुमृळीको अनवद्यो रिशादाः ।
भरा चन्द्राणि गृणते वसूनि देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥ १० ॥

अर्थ— ३ अश्वावत् – घोडे देनेवाला ।
४ गोमत्— गौवोंसे युक्त ।
५ यवमत्— अन्न देनेवाला ।
६ सुवीर्य— उत्तम वीर्य देनेवाला ।
७ युयं हि मम पितरः— तुम हमारे पितर हो ।
८ दिवः मूर्धानः प्रस्थिताः — द्युलोकमें रहते हो ।
९ वयस्कृतः— अन्न देते हैं ।

सोमसे इनकी प्राप्ती हो सकती है ।

[६२९] (पवमानासः एते सोमाः) स्वच्छ किये जानेवाले ये सोमरस (रथाः सातिः इव) रथ जैसे शत्रुका धन लूटकर लानेके लिये (अच्छ प्रययुः) अच्छी तरह जाते हैं वैसे (इन्द्रं) इन्द्रके पास जाते हैं । ये सोमरस (सुताः) रसरूपमें (अव्ययं पवित्रं अति यन्ति) मेढीके बालोंकी छाननीमेंसे जाते हैं । (वव्रिं हित्वी) वृद्धताको दूर करके तरुण होकर (वृष्टिं अच्छ) वृष्टीके स्थान पर जाते हैं ॥ ९ ॥

१ पवमानासः एते सोमाः इन्द्रं अच्छ प्रययुः— स्वच्छ किये ये सोमरस सीधे इन्द्रके पास जाते हैं ।
२ रथा सातिं इव— रथ जैसे शत्रुका धन लूटनेके लिये जाते हैं ।
३ सुताः अव्ययं पवित्रं अति यन्ति— रस निकाले सोम मेढीकी छाननीमेंसे छाने जाते हैं ।
४ वव्रिं हित्वी— वृद्धावस्थाको दूर किया जा सकता है ।
५ वृष्टिं अच्छ— जहां वृष्टि होती है उस प्रदेशमें जाकर रहना अच्छा है । वृष्टि न होनेवाले स्थानकी अपेक्षा वृष्टि जहां अच्छी होती है वह स्थान रहनेके लिये अच्छा होता है । वृष्टी जहां होती है, वहां हरियावल होती है । जहां वृष्टि नहीं होती वहां धान्य आदि नहीं उत्पन्न होता । अतः वृष्टि होती है वह स्थान अच्छा होता है ।

[६३०] हे (इन्दो) सोम ! (बृहते इन्द्राय पवस्व) बडे इन्द्रके लिये रस निकालकर दे । (सु-मृळीकः) उत्तम सुख देनेवाला (अनवद्यः रिशादाः) अनिंदनीय और शत्रुका नाश करनेवाला तू हो । (गृणते) स्तुति करनेवालेके लिये (वसूनि आभर) धन भरपूर दो । हे (द्यावा पृथिवी) द्युलोक और पृथिवी लोको ! (नः) हमारा (देवैः) दिव्य धनोंके द्वारा (प्रावतं) संरक्षण करो ॥ १० ॥

१ बृहते इन्द्राय पवस्व— महान इन्द्रको देनेके लिये रस निकाल कर दो ।
२ सुमृळीकः अनवद्यः रिशादाः— उत्तम सुख देनेवाला हो, अनिंदनीय बनो और शत्रुओंका नाश करनेवाला बनो ।
३ गृणते वसूनि आभर— स्तुति करनेवालेके लिये भरपूर धन दो ।
४ द्यावा पृथिवी नः देवैः प्रावतं – द्युलोक और पृथिवी ये दोनों लोक दिव्य शक्तियोंसे हमारा संरक्षण करें ।

×

[७०]

(ऋषिः- रेणुर्वैश्वामित्रः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती, १० त्रिष्टुप् ।)

६३१ त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रे सत्यामाशिरं पूर्व्ये व्योमनि ।
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥ १ ॥

६३२ स भिक्षमाणो अमृतस्य चारुण उभे द्यावा काव्येना वि शश्रथे ।
तेजिष्ठा अपो मंहना परि व्यत यदी देवस्य श्रवसा सदो विदुः ॥ २ ॥

६३३ ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवो ऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु ।
येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत आदिद्राजानं मनना अगृभ्णत ॥ ३ ॥

[७०]

अर्थ -- [६३१] (पूर्वे व्योमनी) पूर्व समयमें किये यज्ञमें (त्रिः सप्त धेनवः) तीन वार सात अर्थात् इक्कीस गौवें (सत्यां आशिरं) उत्तम दूध आदि (दुदुह्रे) देती रहीं । (चत्वारि अन्या भुवनानि) इसने चार अन्य स्थान (चारूणि चक्रे) सुन्दर निर्माण किये । (यत् ऋतैः अवर्धत) जो यज्ञोंके द्वारा बढते रहे हैं ॥ १ ॥

१ पूर्वे व्योमनि त्रिः सप्त धेनवः सत्यां आशिरं दुदुह्रे— पूर्व समयमें किये यज्ञोंमें इक्कीस गौवें दूध देती थीं । इनके दूधसे घी बनता था और उससे यज्ञ किया जाता था । गौका घी यज्ञमें हवनके किये प्रयुक्त होता था । गौके घीका हवन ही रोगकृमियोंको विनष्ट करनेमें समर्थ रहता है । किसी दूसरे घीमें यह शुभ गुण नहीं हैं, इसी लिये यज्ञमें गौके घीका ही होना उचित है ।

२ चत्वारि अन्या भुवनानि चारूणि चक्रे यत् ऋतैः अवर्धत— चार अन्य ऐसे सुन्दर स्थान बनाये गये जो यज्ञोंसे बढ रहे थे । जहां यज्ञ होता है वह स्थान रहनेके लिये अच्छा होता है । यज्ञ स्थानमें यज्ञ होते हैं, इससे वह स्थान रोगरहित होता है, अतः वह रहनेके लिये योग्य होता है ।

[६३२] (सः) वह पवमान सोम (चारुणः अमृतस्य) सुन्दर उदककी (भिक्षमाणः) मांग करता है । (उभे द्यावा) दोनों द्युलोक और पृथिवी (काव्येन विशश्रथे) काव्यके द्वारा विभक्त रही हैं । (तेजिष्ठा अपः) तेजस्वी जल (मंहना) अपने महत्वसे (परि व्यत) व्याप्त होता है । (यदि) जब (देवस्य श्रवसा) तेजस्वी सोमका स्थान यज्ञके द्वारा (विदुः) जानते हैं ॥ २ ॥

१ सः चारुणः अमृतस्य भिक्षमाणः— वह सोम सुंदर उदक चाहता है । सोमरस अपनेमें स्वच्छ उदक मिलानेकी इच्छा करता है । सोममें स्वच्छ जल मिलाया जाता है ।

२ उभे द्यावा पृथिवी काव्येन विशश्रथे— दोनों द्युलोक और पृथिवी काव्यके वर्णनसे पृथक् प्रतीत होती दीखती हैं ।

३ तेजिष्ठा अपः मंहना परिव्यत— तेजस्वी जल अपनी महिमासे व्यापता है । इन द्यावा पृथिवीमें फैलता है ।

४ यदि देवस्य श्रवसा विदुः— यदि सोम देवका स्थान ये जानते हैं उनका कल्याण सोम कर सकता है । सोमके गुण जानने चाहिये और उनका उपयोग यज्ञकर्ममें योग्य रीतिसे करना चाहिये ।

[६३३] (अस्य केतवः) इस सोमके किरण (अमृत्यवः) अमर तथा (अदाभ्यासः) अहिंसित होकर (उभे जनुषी) दोनों स्थावर तथा जंगम पदार्थोंको (अनु सन्तु) अनुकूल होकर सुरक्षित रखते रहें । (येभिः) जिनके किरणोंके द्वारा (नृम्णा) बल और (देव्या) दिव्य अन्न (पुनते) पवित्र करता है । (आदित्) इसके अनन्तर (राजानं) सोमको (मनना) माननीय स्तुतियां (अगृभ्णत) प्रशंसित करती हैं ॥ ३ ॥

६३४ स मृज्यमानो दशभिः सुकर्मभिः प्र मध्यमासु मातृषु प्रमे सचा ।
व्रतानि पानो अमृतस्य चारुण उभे नृचक्षा अनु पश्यते विशौ ॥ ४ ॥
६३५ स मर्मृजान इन्द्रियाय धायस ओभे अन्ता रोदसी हर्षते हितः ।
वृषा शुष्मेण बाधते वि दुर्मती रादेदिशानः शर्यहेव शुरुधः ॥ ५ ॥

अर्थ— १ अस्य अमृत्यवः अदाभ्यः केतवः अजुषन्तु— इस सोमके किरण अमर तथा किसीके सामर्थ्यसे न दबनेवाले हैं। वे हमारे सहायक होकर रहें। सोमके किरण सहायक होते हैं।

२ येभिः नृम्णा देव्या पुनते— जिन सोमके प्रकाशके किरणोंसे मनुष्यके बल और अन्न पुनीत होते हैं। मनुष्यका बल बढाते हैं।

३ आदित् राजानं मनसा अगृभ्णीत — इस कारण इस सोमराजाकी मनकी अनुकूलता करके स्तुति करते हैं। मनन करके उसका सामर्थ्य जानकर उसकी प्रशंसा करते हैं। जो राजा ऐसी सहायता करता है उस प्रजाकी सहायता करनेवाले राजाकी प्रशंसा करनी चाहिये।

[६३४] (सः) वह (सुकर्मभिः दशभिः) उत्तम कर्म करनेवाली दस अंगुलियोंसे (मृज्यमानः) शुद्ध होनेवाला सोम (सचा) सच्चे सहायक (प्रमे) लोकोंको जानता है, उनकी योग्यतासे उनको यथा योग्य रीतिसे जानता है। अतः वह सोम (मातृषु) माताके समान (मध्यमासु प्र) मध्य स्थानमें- यज्ञस्थानमें रहता है। वह सोम! (नृचक्षाः) मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाला सोम (चारुणः अमृतस्य) उत्तम जलकी वृष्टी करनेके लिये (व्रतानि पानः) यज्ञादि व्रतोंका पालन करता है (उभे विशौ) दोनों प्रकारके मनुष्योंको (अनु पश्यते) उत्तम निरीक्षण करता है ॥ ४ ॥

१ सः सुकर्मभिः दशभिः मृज्यमानः सचा प्रमे— वह सोम उत्तम कर्म करनेवाली दस अंगुलियोंसे शुद्ध होता हुआ सच्चे सहायकोंको जानता है। जो उत्तम शुद्धता करते हैं वे उत्तम सहाय्यकारी हैं। यह सहाय्य करनेवालोंकी परीक्षा है।

२ सः मातृषु मध्यमासु प्र मे — वे माताओंमें उत्तम तथा मध्यमको ठीक प्रकारसे जानता है।

३ सः नृचक्षाः— वह मनुष्योंके आचरणका निरीक्षण करता है।

४ चारुणः अमृतस्य व्रतानि पानः — सुंदर अमर व्रतोंका पालन करता है।

५ उभे विशौ अनु पश्यते— वह दोनों प्रकारके- उत्तम तथा नीच मनुष्योंका उत्तम रीतिसे परीक्षण करता है।

[६३५] (मर्मृजानः सः) शुद्ध होता हुआ वह सोम (धायसे इन्द्रियाय) सबका धारण करनेवाले इन्द्रके सामर्थ्यके लिये (उभे रोदसी) दोनों द्युलोक और पृथिवीके मध्यमें (हितः) रखा हुआ (हर्षते) आनंदित होता है। (वृषा) कामनाओंकी पूर्णता करनेवाला (शुष्मेण) शत्रुका शोषण करनेवाले बलसे (दुर्मतीः विबाधते) दुष्ट बुद्धिके शत्रुओंका विनाश करता है। (आदेदिशानः) पुनः पुनः शत्रुओंको आह्वान देता है, (शर्यहा इव शुरुधः) शत्रुको मारनेमें समर्थ वीर जैसा शत्रुको आह्वान देता है ॥ ५ ॥

१ मर्मृजानः सः धायसे इन्द्रियाय उभे रोदसी हितः हर्षते— शुद्ध होनेवाला सबका धारण करनेवाले इन्द्रको देनेके लिये यज्ञस्थानमें रखा वह सोम आनंदित होता हुआ वहां रहता है। शुद्ध होनेका पहिला आनंद है, सबका आधार होकर रहना दूसरा आनंद है। ये दोनों प्रकारके आनंद सोममें रहते हैं।

२ शुद्ध होकर परिशुद्ध रहना यह हरएकके लिये आनंद देनेवाला है।

३ वृषा शुष्मेण दुर्मतीः विबाधते— बलवान होकर अपने बलसे दुष्ट बुद्धिवालोंकी दुष्ट बुद्धिको दूर करना यह सज्जनोंका कर्तव्य है।

४ आदेदिशानः शर्यहा इव शुरुधः— शत्रुको आह्वान करनेवाला वीर शत्रुका नाश करनेमें समर्थ होकर अपना वीरत्व दर्शाता है। ऐसा करना योग्य है।

६३६ स मातरा न ददृशान उस्रियो नानददेति मरुतामिव स्वनः ।
जानन्नृतं प्रथमं यत् स्वर्णरं प्रशस्तये कमवृणीत सुक्रतुः ॥ ६ ॥
६३७ रुवति भीमो वृषभस्तविष्यया शृङ्गे शिशानो हरिणी विचक्षणः ।
आ योनिं सोमः सुकृतं नि षीदति गव्ययी त्वग्भवति निर्णिगव्ययी ॥ ७ ॥
६३८ शुचिः पुनानस्तन्वमरेपसमव्ये हरिर्न्यधाविष्ट सानवि ।
जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे त्रिधातु मधु क्रियते सुकर्मभिः ॥ ८ ॥

अर्थ — [६३६] (सः) वह सोम (मातरा) द्यावापृथिवीरूपी दोनों माताओंकी (ददृशानः) वारंवार देखता हुआ (नानदत्) शब्द करता हुआ (एति) सर्वत्र जाता है। (उस्रियः न) गौका बच्चा जैसा गौके पीछे शब्द करता हुआ जाता है, उस प्रकार यह सोम द्यावा पृथिवीके पास जाता है। जैसा (मरुतां इव स्वनः) मरुतोंका शब्द करते हुए गमन होता है। (यत्) जो उदक (स्वर्णरं) सब मानवोंका हित करता है, उस उदकके समान (प्रथमं ऋतं जानन्) मुख्य सच्चा उदक है यह जानकर (सुक्रतुः) उत्तम यज्ञ करनेवाला यह सोम (प्रशस्तये) स्तुति करनेके लिये (कं अवृणीत) मनुष्यका अर्थात् ऋत्विजोंको प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

१ सः मातरा ददृशानः नानदत् एति— यह सोम द्यावा पृथिवीरूपी दोनों माताओंको प्रेमसे देखकर शब्द करता हुआ, यज्ञ स्थानमें पहुंचता है।

२ उस्रियः न— जैसा गौका बच्चा माता गौके पास जाता है।

३ मरुतां स्वनः इव— मरुत् वीरोंका जैसा शब्द करते हुए गमन होता है, वैसा सोम शब्द करते हुए यज्ञ पात्रमें जाता है।

४ स्वर्णरं जानन् ऋतं सुक्रतुः— उदकको जानकर शुद्ध उदकको उत्तम यज्ञ करनेवाला सोम जानकर उस उदकमें मिल जाता है।

५ प्रशस्तये कं अवृणीत— यज्ञ करनेके लिये उदकके साथ मिलाता है। यज्ञ करनेवाले ऋत्विज सोमरसको जलमें मिलाते हैं, और उससे यज्ञ करते हैं।

[६३७] (भीमः) शत्रुओंके लिये भयंकर (वृषभः) कामनाओंको पूर्ण करनेवाला (विचक्षणः) उत्तम रीतिसे सबका निरीक्षण करनेवाला यह सोम (तविष्यया) अपना बल बढानेकी इच्छा करनेवाला (हरिणी शृंगे) हरे रंगके दो सींगोंको (शिशानः) तीक्ष्ण करनेवाला (रुवति) शब्द करता है। यह (सोमः) सोम (सुकृतं योनिं) उत्तम रीतिसे किये अपने स्थानको (आ निषीदती) उत्तम रीतिसे बैठता है। इस सोमको स्वच्छ करनेवाली (निर्णिक्) निश्चयसे (गव्ययी त्वक् भवति) मेंढीके बालोंकी छाननी है जिस पर वह स्वच्छ किया जाता है ॥ ७ ॥

१ भीमः वृषभः विचक्षणः— भयंकर सामर्थ्य बढानेवाला, कामनाओं पूर्ण करनेवाला तथा उत्तम निरीक्षण करनेवाला यह सोम है। सोमका सेवन करनेसे सामर्थ्य बढता है, इच्छाओंकी पूर्ति होती है। तथा कार्यका उत्तम निरीक्षण करनेकी दक्षता बढती है।

२ हरिणी शृंगे शिशानः— दोनों सींग शत्रुओंको मारनेके लिये तैयार करता है। युद्धकी तैयारी करता है।

३ गव्ययी त्वक् भवति— जिस पर पात्र रखकर उनमें सोम स्वच्छ किया जाता है वह मेंढीके बालोंकी छाननी होती है।

४ अव्ययी— मेंढीके बालोंकी छाननी होती है जिसमेंसे सोमरस छाना जाता है।

[६३८] (अरेपसं) निष्पाप (तन्वं पुनानः) शरीरको पवित्र करनेवाला (शुचिः) शुद्ध (हरिः) हरे रंगका सोम (सानवि) यज्ञ स्थानमें ऊपर रखे (अव्ये न्यधाविष्ट) मेंढीके बालोंकी छाननीमेंसे रखा है। वह यज्ञकर्ता (सुकर्मभिः) ऋत्विजोंने मित्र, वरुण, वायु आदि देवताओंके लिये (क्रियते) दिया जाता है।

६३९ पव॑स्व सोम देववी॑तये वृषे॒न्द्र॑स्य हार्दि॑ सोम॒धान॒मा वि॑श ।
पु॒रा नो॑ बा॒धाद्दु॑रि॒ताति॑ पारय क्षेत्र॒विद्धि॒ दिश॒ आहा॑ विपृच्छ॒ते ॥ ९ ॥
६४० हि॒तो न सप्ति॑र॒भि वाज॑म॒र्षे॒न्द्र॑स्येन्दो ज॒ठर॒मा प॑वस्व ।
ना॒वा न सिन्धु॒मति॑ पर्षि वि॒द्वा॒ञ्छूरो॒ न युध्य॒न्नव॑ नो नि॒दः स्पः ॥ १० ॥

अर्थ— १ अरेपसं तन्वं पुनानः— निष्पाप कर्म करनेवालोंका शरीर पवित्र होता है ।

२ हरिः सानवि अव्ये न्यधाविष्ट— हरे रंगका सोम मेंढीके बालोंकी छाननीमें रखा होता है ।

३ सुकर्मभिः मित्राय, वरुणाय वायवे त्रिधातु मधु क्रियते— उत्तम यज्ञ करनेवाले मित्र, वरुण, वायु आदि देवोंको देनेके लिये तीन धारण शक्तियोंसे युक्त यह सोमका मधुर रस तैयार किया जाता है ।

यह सोमका रस तैयार किया जाता है, और उक्त देवोंको समर्पण किया जाता है । इसके पश्चात् उस सोमरसका पान यज्ञकर्ता लोग करते हैं ।

[६३९] हे (सोम) सोम ! (वृषा) कामनाओंको पूर्ण करनेवाला तू (देववीतये) देवोंको देनेके लिये (पवस्व) रस निकाल कर दे । (इन्द्रस्य हार्दि) इन्द्रके लिये प्रिय तू (सोमधानं आ विश) सोमरस रखनेके पात्रमें प्रविष्ट होकर रह । (पुरा) पहलेसे ही (नः बाधात्) हमें पीडा देनेवाले (दुरिता अति पारय) पाप हमसे दूर कर । (क्षेत्रवित् हि) क्षेत्रका मार्ग जाननेवाला हि (विपृच्छते) मार्ग पूछनेवालेको (दिश आह) दिशा बताता है ॥ ९ ॥

१ वृषा देववीतये पवस्व— शक्तिमान तू सोम देवोंको पीनेको देनेके लिये रस निकाल कर देवो ।

२ इन्द्रस्य हार्दि— इन्द्रके लिये तू प्रिय है ।

३ पुरा नः बाधात् दुरिता अति पवस्व-- पहिलेसे हमें कष्ट देनेवाले पाप हमसे दूर कर ।

४ क्षेत्रवित् हि विपृच्छते दिश आह-- स्थान जाननेवाला ही मार्ग पूछनेवालेको योग्य मार्ग बता सकता है । जो मार्ग जानता नहीं वह योग्य मार्ग बता नहीं सकता ।

[६४०] हे (सोम) सोम ! तू (वाजं अभि अर्ष) अपने कलशमें जाकर रह । (हितः न सप्तिः) प्रेरणा दिया हुआ घोडा जैसा (वाजं अर्ष) युद्धस्थानमें जाता है वैसा तू कलशमें जा । तथा हे (इन्दो) सोम ! (इन्द्रस्य जठरं आ पवस्व) इन्द्रके पेटमें जाकर रह । जैसा नौका चलानेवाला (नावा) नौकासे (सिन्धुं न) नदीके (अति पर्षि) पार जाता है । (विद्वान् शूरः न) विद्वान् शूर पुरुषके समान (युध्यन्) युद्ध करता हुआ (नः अव) हमारा संरक्षण कर और (निदः स्पः) हमारे निंदकोंको पराजित करके दूर कर ॥ १० ॥

१ वाजं अभि अर्ष— [illegible] आगे बढो ।

२ हितः सप्तिः न— प्रेरित किया घोडा जैसा युद्धमें जाता है वैसा तू युद्धमें आगे बढ ।

३ इन्द्रस्य जठरं आ विश— इन्द्रके पेटमें जा ।

४ नावा सिन्धुं न-- नौकासे जैसा नदीके पार होते है वैसा तू हमें दुःखोंसे पार कर ।

५ विद्वान शूरः न — विद्वान् शूरके समान तू विद्वान् और शूर बन ।

६ युध्यन् नः अव-- युद्ध करके हमारा रक्षण कर ।

७ निदः स्पः— हमारे शत्रुओंको दूर कर ।

[७१]

(ऋषिः- ऋषभो विश्वामित्रः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती, ९ त्रिष्टुप् ।)

६४१ आ दक्षिणा सृज्यते शुष्म्या३सदं वेति द्रुहो रक्षसः पाति जागृविः ।
हरिरोपशं कृणुते नभस्पयं उपस्तिरे चम्वो३र्ब्रह्म निर्णिजे ॥ १ ॥

६४२ प्र कृष्टिहेव शूष एति रोरुवदसुर्यं१ वर्णं नि रिणीते अस्य तम् ।
जहाति वव्रिं पितुरेति निष्कृतमुपप्रुतं कृणुते निर्णिजं तना ॥ २ ॥

६४३ अद्रिभिः सुतः पवते गभस्त्योर्वृषायते नभसा वेपते मती ।
स मोदते नसते साधते गिरा नेनिक्ते अप्सु यजते परीमणि ॥ ३ ॥

---

[७१]

अर्थ— [६४१] यज्ञमें (दक्षिणा आ सृज्यते) दक्षिणा दी जाती है। (शुष्मी) बल बढानेवाला सोम (आसदं वेति) अपने स्थानमें जाकर रहता है। (जागृविः) जाग्रत रहनेवाला सोम (द्रुहः रक्षसः पाति) द्रोह करनेवाले राक्षसोंसे संरक्षण करता है। (हरिः सोमः) हरे रंगका सोम (नभः पयः ओपशं कृणुते) आकाशसे जल सबका धारण करनेके लिये करता है। (चम्वोः उपस्तिरे) द्युलोक और पृथिवीके मध्यमें (ब्रह्म निर्णिजे) सूर्य प्रकाश देनेके लिये करता है ॥ १ ॥

१ दक्षिणा आ सृज्यते— यज्ञके पश्चात् ज्ञानियोंको योग्य दक्षिणा दी जाती है।

२ शुष्मी आसदं वेति— बल बढानेवाला सोम अपने स्थानमें यज्ञमें बैठता है।

३ जागृविः द्रुहः रक्षसः पाति— जागृत रहा वीर द्रोह करनेवाले राक्षसोंसे संरक्षण करता है।

४ हरिः सोमः नभः पयः ओपशं कृणुते— हरे रंगका सोम आकाशसे गिरनेवाले जलको अपना घर बनाता है।

५ चम्वोः उपस्तिरे ब्रह्म निर्णिजे— द्यु और पृथिवीके मध्यमें प्रकाश देनेके लिये सूर्य बनाया है।

[६४२] (शूषः) शत्रुओंका शोषण करनेवाला सोम (रोरुवत्) शब्द करता हुआ (कृष्टिहा इव) शत्रुके वीर मनुष्योंकी हत्या करनेवाले शूरके समान (प्रेहेति) आगे बढता है। (असुर्यं अस्य तं वर्णं) असुर राक्षसोंका नाश करनेवाला इसका वह बल (नि रिणीते) बढता जाता है। (वव्रिं जहाति) वार्धक्य दूर करता है। (पितुः निष्कृतं एति) यह सोम अन्नरूपमें सुसंस्कृत होकर यज्ञमें जाता है। (तना) मेंढोके बालोंकी छाननीमेंसे (निर्णिजं) छानकर नीचे उतरनेके लिये (कृणुते) स्थान तैयार करता है ॥ २ ॥

१ कृष्टिहा इव शूषः रोरुवत् प्रेहेति— शत्रुके वीरोंकी हत्या करनेवाले शूरके समान यह सोम शब्द करता हुआ आगे जाता है।

२ असुर्यं अस्य तं वर्णं निरिणीते— राक्षसोंका नाश करनेका इसका सामर्थ्य बढता है।

३ पितुः निष्कृतं एति— अन्नरूप यह सोम आगे बढता है।

४ तना निर्णिजं कृणुते— मेंढोके बालोंकी छाननीमेंसे अपना स्थान यह सोम निर्माण करता है। सोमरस छाननीमेंसे छाना जाता है और पश्चात् पीया जाता है।

[६४३] (अद्रिभिः) पत्थरोंसे (गभस्त्योः) हाथों द्वारा कूटकर (सुतः) रस निकाला यह सोम (पवते) यज्ञके पात्रोंमें जाता है। (वृषायते) बलवान होता है। (मती) स्तुतिसे (नभसा वेपते) आकाशमें सर्वत्र जाता है। (सः मोदते) वह आनंदित होता है, तथा (नसते) पात्रोंमें जाता है। (गिरा साधते) स्तुति करनेपर अभीष्ट सिद्ध करता है। (अप्सु नेनिक्ते) जलोंमें मिश्रित होकर शुद्ध होता है। (परीमणि) यज्ञमें (यजते) पूजित होता है ॥ ३ ॥

६४४ परिं द्युक्षं सहसः पर्वतावृधं मध्वः सिञ्चन्ति हर्म्यस्यं सक्षणिम् ।
आ यस्मिन् गावः सुहुताद ऊर्धनि मूर्धञ्छ्रीणन्त्यग्रियं वरीमभिः ॥ ४ ॥
६४५ समी रथं न भुरिजोरहेषत दश स्वसारो अदितेरुपस्थ आ ।
जिगादुप ज्रयति गोरपीच्यं पदं यदस्य मतुथा अजीजनन् ॥ ५ ॥

अर्थ— १ अद्रिभिः गभस्त्योः सुतः पवते— पत्थरोंसे कूटकर हाथों द्वारा दबाकर निकाला यह सोमरस यज्ञमें शुद्ध होता है। .

२ वृषायते— यह सोम बल बढानेवाला होता है।

३ मती नभसा वेपते— स्तुति करनेसे वह सोम सर्वत्र पहुंचता है।

४ नसते— वह सोम यज्ञ पात्रोंमें जाकर रहता है।

५ गिरा साधते-- स्तुति करनेवालोंकी इच्छा पूर्ण करता है।

६ अप्सु नेनिक्ते— जलोंमें मिश्रित किया जाता है।

७ परिमाणि यजते-- यज्ञमें सोम उत्तम रीतिसे पूज्य माना जाता है।

[६४४] (सहसः मध्वः) बलवान मधुर सोमरस (द्युक्षं) द्युलोकमें रहनेवाले तथा (पर्वता वृधं) पर्वत पर रहनेवाले (हर्म्यस्य सक्षिणं) शत्रुके नगरको तोडनेवाले इन्द्रके (परि सिंचन्ति) पास जाते हैं। (सुहुतादः गावः) उत्तम हवन योग्य अन्न खानेवाली गौवें (मूर्धन् ऊधनि) बडे दुग्धाशयमें रहे (अग्रियं) मुख्य दूधको (वरीमभिः) श्रेष्ठ गुणोंके साथ इन्द्रके लिये (श्रीणन्ति) देती है ॥ ४ ॥

१ सहसः मध्वः द्युक्षं पर्वतावृधं हर्म्यस्य सक्षिणं परि सिंचन्ति— बल बढानेवाले, मधुर सोमरस द्युलोकमें रहनेवाले तथा पर्वतपर रहनेवाले, शत्रुके किलोंको तोडनेवाले इन्द्रको दिये जाते हैं।

२ द्युक्षं पर्वतावृधं हर्म्यस्य साक्षिणं परिषिंचन्ति— द्युलोकमें रहनेवाले पर्वत पर किलेमें रहनेवाले, शत्रुके नगरोंको तोडनेवाले इन्द्रको सोमरस दिये जाते हैं।

३ सुहुतादः गावः मूर्धन् ऊधनि अग्रियं वरीमभिः श्रीणन्ति— उत्तम अन्न खानेवाली गौवें अपने श्रेष्ठ दुग्धाशयमें रहे दूधको उत्तम श्रेष्ठ गुणोंके साथ देती हैं।

[६४५] (भुरिजोः) दोनों बाहुओंकी (दश स्वसारः) दश अंगुलियां इस सोमको (आदितेः उपस्थे) भूमिके पास– यज्ञस्थानमें (सं अहेषत) उत्तम रीतिसे प्रेरित करती हैं। जैसे (रथं इव) रथको अंगुलियां प्रेरित करती हैं। यह सोमरस (जिगात्) पात्रोंमें जाता है तथा (गोः अपीच्यं पदं) गौके अन्दर रहनेवाले दूधको (ज्रयति) प्राप्त करता है (यत् अस्य) जो इसकी (मतुथा) स्तोते ऋत्विज स्तुति करते हुए (अजीजनन्) उत्पन्न करते हैं ॥ ५ ॥

१ भुरिजोः दश स्वसारः अदिते उपस्थे सं अहेषत— दोनों हाथोंकी दस अंगुलिया यज्ञके स्थानमें सोमके रसको निकालती हैं।

२ रथं इव— जैसे रथको अंगुलियां चलाती हैं।

३ जिगात्— यह सोमरस यज्ञ पात्रोंमें जाता है।

४ गोः अपीच्यं पदं ज्रयति— गौसे दूधको प्राप्त करता है।

५ यत् अस्य मतुथा अजीजनन्— जो इस सोमकी स्तुति करनेवाले ऋत्विज सोमसे रस निकालते हैं।

६४६ श्येनो न योनिं सदनं धिया कृतं हिरण्ययमासदं देव एषति ।
ए रिंणन्ति बर्हिषि प्रियं गिरा ऽश्वो न देवाँ अप्येति यज्ञियः ॥ ६ ॥
६४७ परा व्यक्तो अरुषो दिवः कवि–र्वृषा त्रिपृष्ठो अनविष्ट गा अभि ।
सहस्रणीतिर्यतिः परायतीं रेभो न पूर्वीरुषसो वि राजति ॥ ७ ॥
६४८ त्वेषं रूपं कृणुते वर्णो अस्य स यत्राशयत् समृता सेधति स्रिधः ।
अप्सा याति स्वधया देव्यं जनं सं सुष्टुती नसते सं गोअग्रया ॥ ८ ॥

अर्थ–[६४६] (देवः) तेजस्वी सोम (धिया कृतं) अपने कर्तव्य द्वारा किये (हिरण्ययं आसदं) सुवर्ण निर्मित (सदनं) स्थान पर (एषति) जाकर विराजता है। जैसा (श्येनो न योनिं) श्येन पक्षी अपने स्थान पर जाता है। पश्चात् (ई) इस (प्रियं) प्रिय सोमको (गिरा) स्तुतिसे (बर्हिषि) यज्ञमें (आ रिणन्ति) प्रेरित करते हैं। जैसा (यज्ञियः) यज्ञके लिये (अश्वः) घोडा (देवान् अपि एति) देवोंके पास त्वरासे जाता है ॥ ६ ॥

१ देवः धिया कृतं हिरण्ययं आसदं सदनं एषति– दिव्य सोम स्तुति करने पर सुवर्णमय आसन पर जाकर बैठता है। यज्ञमें उच्च स्थान पर जाकर सोम रहता है।

२ ई प्रियं गिरा आ रिणन्ति– इस सोमकी प्रीति पूर्वक स्तोता ऋत्विज स्तुति करते हैं।

३ यज्ञीय अश्वः देवान् अपि एति– यज्ञका घोडा देवोंके पास जैसा जाता है वैसा सोमरस देवोंके पास जाता है।

[६४७] (अरुषः) तेजस्वी (कविः) ज्ञानका संवर्धन करनेवाला (व्यक्तः) स्पष्ट रीतिसे दीखनेवाला सोम (दिवः परा) उच्च स्थानपर रहता है। (वृषा) बलवान (त्रिपृष्ठः) यज्ञमें तीन स्थानोंमें रहनेवाला सोम (गाः अभि अनविष्ट) स्तुति प्राप्त करता है, अथवा गोदुग्धमें मिलाया जाता है। (सहस्रणीतिः) हजारों प्रकारसे देखनेवाला (यतिः परायतिः) यज्ञपात्रोंमें जानेवाला और यज्ञपात्रोंमेंसे बाहेर आनेवाला (रेभः न) स्तोताके समान (पूर्वीः उषसः) बहुत पूर्व उषःकालोंमें (वि राजति) विशेष प्रकाशित होता है ॥ ७ ॥

१ अरुषः कविः व्यक्तः दिवः परा– तेजस्वी ज्ञानीरूपसे व्यक्त हुआ यह सोम उच्च स्थानपर विराजता है।

२ वृषा त्रिपृष्ठः गाः अभि अनविष्ट– बलवान और तीन यज्ञ स्थानोंमें रहनेवाला यह सोम गौओंके दूधमें मिलता है।

३ पूर्वीः उषसः विराजति– प्रथम उषःकालोंमें यह सोम चमकता है।

४ सहस्रणीतिः यतिः परायतिः विराजति– हजारों प्रकारोंसे यह सोम यज्ञ स्थानोंमें लाया जाता है, और उसका समर्पण भी अनेक प्रकारोंसे किया जाता है। ऐसा यह सोम यज्ञस्थानमें रहता है।

[६४८] (अस्य) इस सोमका (वर्णः) रंग, किरण (त्वेषं रूपं कृणुते) तेजस्वी रूप बनाता है। (सः) वह प्रकाश किरण (यत्र समृता) जहां मिलता है, वहां वह (अशयत्) रहता है और वह किरण (स्रिधः सेधति) शत्रुओंका विनाश करता है। (अप्सा) उदकोंको देनेवाला (स्वधया) हविरूपसे (दैव्यं जनं याति) दिव्य जनोंके पास जाता है। तथा (सुष्टुती सं नसते) उत्तम स्तुतिको प्राप्त करता है। तथा वह सोम (गो अग्रया) गौको मुख्य रूपसे मांगता है, उस मांगनेकी भाषासे (सं नसते) सम्यक् रीतिसे वह मिलकर रहता है ॥ ८ ॥

६४९ उक्षेव यूथा परियन्नरावीदधि त्विषीरधित सूर्यस्य ।
दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षत क्षां सोमः परि क्रतुना पश्यते जाः ॥ ९ ॥

[७२]

(ऋषिः- हरिमन्त आङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती ।)

६५० हरिं मृजन्त्यरुषो न युज्यते सं धेनुभिः कलशे सोमो अज्यते ।
उद्वाचमीरयति हिन्वते मती पुरुष्टुतस्य कति चित् परिप्रियः ॥ १ ॥

अर्थ— १ अस्य वर्णः त्वेषं रूपं कृणुते— इस सोमका रंग तेजस्वी होता है ।

२ सः यत्र समृता, अशयत् — वह सोम जहां मिलता है वहां ही वह रहता है । हिमालयके शिखर पर वह होता है और वहां ही वह प्राप्त होता है ।

३ स्निधः सेधति— यह सोम शत्रुओंका नाश करता है ।

४ अप्सा स्वधया दैव्यं जनं यन्ति— पानीके साथ मिलकर दिव्य जनोंको प्राप्त होता है । पानीके साथ मिलाकर उसको श्रेष्ठ लोक सेवन करते हैं ।

५ सुष्टुतीः संनसते— सोमकी उत्तम स्तुति की जाती है ।

६ गो अग्रया संनसते – गौके दूधसे सोमरस मिलाया जाता है । पश्चात् वह पीया जाता है ।

[६४९] (उक्षा इव) जैसा बैल (यूथा) गौओंके झुंड (परियन्) चारों ओर देखकर (अरावीत्) शब्द करता है, वैसा (सूर्यस्य त्विषीः) सूर्यके जैसा तेज (अधि अधित) चारों ओर सोम फैलाता है । (दिव्य सुपर्णः) यह द्युलोकमें उत्पन्न हुआ सोम (क्षां अवचक्षते) पृथिवीको देखता है । तथा यह (सोम) सोम (जाः) प्रजाओंको (क्रतुना परि पश्यते) यज्ञके साथ संबंध रखकर देखता है ॥ ९ ॥

१ उक्षा इव यूथा परियन् अरावीत्-- बैल गौओंके झुंडोको देखकर शब्द करता है । वैसा सोम यज्ञमें यजमानादिकोंको देखकर शब्द करके अपनेमेंसे रस निकाल कर देता है ।

२ सूर्यस्य त्विषीः अधि अधिते-- सूर्यके तेजके समान यह सोम अपना तेज यज्ञस्थानमें फैलाता है ।

३ दिव्यः सुपर्णः क्षां अवचक्षते-- यह दिव्य उत्तम पानोंवाला सोम पृथिवीका निरीक्षण करता है। पृथिवी पर यज्ञकर्ता उस सोमको लाते हैं ।

४ सोमः जाः क्रतुना परि पश्यते-- सोम यज्ञमें सब प्रजाजनोंको देखता है । यज्ञस्थानमें वह याजकोंको देखता है । उन याजकोंका निरीक्षण करता है ।

[७२]

[६५०] यज्ञ करनेवाले ऋत्विज (हरिं मृजन्ति) हरे सोमको शुद्ध करते हैं । वह (अरुषः) तेजस्वी सोम (धेनुभिः सं युज्यते) गौके दूधके साथ मिलाया जाता है । वह (कलशे) कलशमें रहा (सोमः) सोम (अज्यते) शब्द करता है । (यत् उत् ईरयति) जब यह सोम शब्द करता है तब वह (मती हिन्वते) स्तुतियोंको प्रेरित करता है । (पुरुष्टुतस्य) अधिक स्तुति किये गये सोमके (कतिचित् परिप्रियः) कई प्रकारके धन प्रिय होकर उनके साथ रहते हैं ॥ १ ॥

१ हरिं मृजन्ति-- हरे रंगके सोमको शुद्ध किया जाता है ।

२ अरुषः धेनुभिः संयुज्यते-- तेजस्वी सोम गौओंके दूधके साथ मिलाया जाता है ।

३ कलशे सोमः अज्यते-- सोमरस कलशमें रखा जाता है ।

४ यत् उत् ईरयति मती हिन्वते-- जब यह सोम शब्द करता हुआ पात्रमें जाता है तब उसकी स्तुति की जाती है ।

५ पुरुष्टुतस्य कतिचित् परिप्रियः-- अच्छी स्तुति करनेपर यजमानके पास कई प्रकारके धन आते हैं । यजमानको धन अनेक प्रकारसे प्राप्त होते हैं ।

×

६५१ साकं वदन्ति बहवो मनीषिण इन्द्रस्य सोमं जठरे यदादुहुः ।
यदीं मृजन्ति सुगभस्तयो नरः सनीळाभिर्दशभिः काम्यं मधु ॥ २ ॥
६५२ अरममाणो अत्येति गा अभि सूर्यस्य प्रियं दुहितुस्तिरो रवम् ।
अन्वस्मै जोषमभरद्विनंगृसः सं द्वयीभिः स्वसृभिः क्षेति जामिभिः ॥ ३ ॥
६५३ नृधूतो अद्रिषुतो बर्हिषि प्रियः पतिर्गवां प्रदिव इन्दुर्ऋत्वियः ।
पुरंधिवान् मनुषो यज्ञसाधनः शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते ॥ ४ ॥

अर्थ— [६५१] (बहवः मनीषिणः) बहुत बुद्धिमान (साकं वदन्ति) साथ मंत्रोंको बोलते हैं। (यत्) जब (इन्द्रस्य जठरे) इन्द्रके पेटमें डालनेके लिये (सोमं आदुहुः) सोमका रस निकालते हैं। जब (सुगभस्तयः नरः) उत्तम हाथवाले ऋत्विज (यदि) जब (काम्यं मधु) प्रिय मधुर रस (दशभिः सनीळाभिः) दस अंगुलियोंसे (मृजन्ति) शुद्ध करते हैं ॥ २ ॥

१ बहवः मनीषिणः साकं वदन्ति— बहुत बुद्धिमान ऋत्विज एक स्थान पर यज्ञके समीप बैठकर मंत्रोंको बोलते हैं।

२ यत् इन्द्रस्य जठरे सोमं आदुहुः— जब इन्द्रके पेटमें सोमरस डालनेके लिये सोमका रस निकालते हैं।

३ सुगभस्तयः नरः दशभिः सनीळाभिः काम्यं मधु मृजन्ति— उत्तम हाथोंवाले ऋत्विज अपने दोनों हाथोंकी दस अंगुलियोंसे प्रिय मधुर सोमका रस निकालते हैं, और उसको शुद्ध करते हैं।

[६५२] वह सोम (अरममाणः) रममाण न होकर (गाः अत्येति) गौओंके दूधमें जाता है। (सूर्यस्य दुहितुः) सूर्यकी पुत्री उषाके लिये (रवं) शब्दको (तिरः) दूर करता है। (विनंगृसः) स्तुति करनेवाला ऋत्विज (अस्मै) इस सोमके लिये (जोषं अनु अभरत्) स्तोत्र बोलता है। यह सोम (द्वयीभि स्वसृभिः जामिभिः) दोनों हाथोंकी अंगुलियोंसे— बहिनों जैसे अंगुलियोंसे (संक्षेति) संबंध रखता है ॥ ३ ॥

१ अरममाणः गाः अत्येति— दूसरे स्थानमें न रममाण होनेवाला यह सोमरस गौओंके दूधमें मिल जाता है।

२ सूर्यस्य दुहितुः रवं तिरः— सूर्यकी पुत्री उषाके समय यह सोम दूसरे शब्दोंको दूर करके अपना शब्द ही ऋत्विजोंको सुनाता है। इस समय सोमका शब्द ही सुनाई देता है।

३ विनंगृसः अस्मै जोषं अनु अभरत्— स्तुति करनेवाले ऋत्विज इस सोमके स्तोत्र बोलते हैं।

४ द्वयीभिः स्वसृभिः जामिभिः संक्षेति— दोनों हाथोंकी बहिनोंके समान अंगुलियोंसे इस सोमका संबंध होता है। दोनों हाथोंकी अंगुलियां इस सोमका रस निकालती हैं।

[६५३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते बर्हिषि प्रियः) तेरे यज्ञमें यह प्रिय (सोमः) सोम (धिया पवते) अपने यज्ञकर्ममें शुद्ध होता है। (नृधूतः) ऋत्विजोंके द्वारा शुद्ध हुआ (अद्रिषुतः) पत्थरोंसे कूटकर रस निकाला (गवां पतिः) गौओंका स्वामी (प्रदिवः) प्राचीन कालसे (प्रियः) देवोंके लिये प्रिय (इन्दुः ऋत्वियः) यह सोम (पुरंधिवान्) अनेक कर्म करनेवाला (मनुषः यज्ञसाधनः) मनुष्यके यज्ञका साधन (शुचिः) शुद्ध ऐसा यह सोम हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते पवते) तेरे लिये रस देता है ॥ ४ ॥

१ हे इन्द्र ते बर्हिषि प्रियः सोमः धिया पवते— हे इन्द्र तेरे लिये यज्ञमें प्रिय सोम यज्ञस्थानमें शुद्ध होता है।

६५४ नृबाहुभ्यां चोदितो धारया सुतो ऽनुष्वधं पवते सोम इन्द्र ते ।
आप्राः क्रतून् त्समजैरध्वरे मती–र्वेर्न द्रुषच्चम्वोरासददुद्धरिः ॥ ५ ॥
६५५ अंशुं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितं कविं कवयोऽपसो मनीषिणः ।
समी गावो मतयो यन्ति संयत ऋतस्य योना सदने पुनर्भुवः ॥ ६ ॥

अर्थ— २ नृधूतः अद्रिषुतः गवां पतिः प्रदिवः प्रियः इन्दुः ऋत्वियः— ऋत्विजोंने शुद्ध किया, पत्थरोंसे कूटकर निकाला, गौके दूधके साथ मिलाया, प्राचीन कालसे देवोंके लिये प्रिय हुआ यह सोम यज्ञमें उपयोगी है ।

३ पुरंधिवान् मनुषः यज्ञसाधनः शुचिः इन्दुः पवते— अनेक यज्ञकर्मोंमें उपयोगी, मनुष्यों द्वारा किये जानेवाले यज्ञोंमें उपयोगी शुद्ध ऐसा यह सोम यज्ञस्थानमें रस निकालनेके यज्ञकर्ममें उपयोगी होता है ।

[६५४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नृबाहुभ्यां) यज्ञ कर्म करनेवाले ऋत्विजोंकी बाहुओंके द्वारा (चोदितः) प्रेरित होकर (धारया सुतः) धारासे रस निकाला (सोमः) सोम (ये अनुष्वधं) तेरे बलको बढानेके लिये (पवते) शुद्ध होता है । इस सोमरसके पान करनेसे (क्रतून् आ प्राः) यज्ञोंको करता है और शत्रुओंको (समजैः) जीतता है । (अध्वरे) अहिंसामय यज्ञमें (मतीः समजैः) अभिमानी शत्रुओंपर विजय प्राप्त करता है । वह (हरिः) हरे रंगका सोम (चम्वोः आसदत्) कलशोंमें रहता है, जैसा (वेः न द्रुषद्) पक्षी वृक्षपर रहता है ॥ ५ ॥

१ हे इन्द्र ! नृबाहुभ्यां चोदितः धारया सुतः सोमः ते अनुष्वधं पवते— हे इन्द्र ! ऋत्विजोंके बाहुओंसे प्रेरित हुआ, धारासे रस देनेवाला सोम तेरा बल बढानेके लिये यज्ञमें आता है । यह सोम पीकर इन्द्र आदि सब देवता अपना बल बढाते है । यह सोमरस बल बढानेवाला है ।

२ क्रतून् आप्राः— यह सोम यज्ञोंको करता है ।

३ समजैः— यह सोम शत्रुओंको जीतता है । सोमरस पीनेसे वीरोंका बल बढता है और वे वीर शत्रुको पराजित करते हैं ।

४ हरिः चम्वोः आसदत्— यह हरे रंगका सोम पात्रोंमें रहता है ।

[६५५] (कवयः) ज्ञानी (अपसः मनीषिणः)कर्म करनेवाले बुद्धिमान मनुष्य (स्तनयन्तं) शब्द करनेवाले (अक्षितं कविं) क्षीण न होनेवाले ज्ञान बढानेवाले (अंशुं) सोमका (दुहन्ति) रस निकालते हैं । (पुनः भुवः) पुनः पुनः प्रसूत होनेवाली (गावः) गौवें और (मतयः) ज्ञानी याजक (ईं) इस सोमको (संयन्ति) मिलकर, इकट्ठे होकर (ऋतस्य योना) यज्ञके स्थान पर सोमका रस निकाला करते हैं ॥ ६ ॥

१ कवयः अपसः मनीषिणः स्तनयन्तं अक्षितं कविं दुहन्ति— ज्ञानी यज्ञकर्मको करनेके समय शब्द करनेवाले, क्षीण न होनेवाले, ज्ञान बढानेवाले सोमका रस निकालते हैं ।

२ पुनः भुवः गावः मतयः ईं संयन्ति— बारंबार प्रसूत होनेवाली तरुण गौवें और ज्ञानी ऋत्विज मिलकर इस यज्ञको करते हैं ।

३ ऋतस्य योना— यज्ञके स्थानमें किया जाता है ।

४ स्तनयन्तं अक्षितं कविं दुहन्ति— शब्द करनेवाले, क्षीण न होनेवाले, ज्ञान बढानेवाले सोमका यज्ञमें रस निकालते हैं । सोम ज्ञान बढाता है, शरीरको क्षीण होनेसे बचाता है । यह सोमरस पीनेसे शरीर बलवान बनता है, बुद्धि तथा मन विकसित होता है । तथा उत्साह भी बढता है ।

६५६ नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवो३ ऽपामूर्मौ सिन्धुष्वन्तरुक्षितः ।
इन्द्रस्य वज्रो वृषभो विभूवसुः सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥ ७ ॥
६५७ स तू पवस्व परि पार्थिवं रजः स्तोत्रे शिक्षन्नाधून्वते च सुक्रतो ।
मा नो निर्भाग्वसुनः सादनस्पृशो रयिं पिशङ्गं बहुलं वसीमहि ॥ ८ ॥
६५८ आ तू न इन्दो शतदात्वश्व्यं सहस्रदातु पशुमद्धिरण्यवत् ।
उप मास्व बृहती रेवतीरिषो ऽधि स्तोत्रस्य पवमान नो गहि ॥ ९ ॥

अर्थ— [६५६] (महः दिवः धरुणः) बड़े द्युलोकका धारण करनेवाली (पृथिव्याः नाभा) पृथिवीके उच्च स्थानमें रहनेवाला (सिन्धुषु अपां ऊर्मौ) नदीयोंके जलोंमें (उक्षितः) रहनेवाला (इन्द्रस्य वज्रः) इन्द्रके वज्रके समान (वृषभः) कामनाओंको पूर्ण करनेवाला (विभूवसुः) बहुत धनसे युक्त यह (चारु मत्सरः सोमः) सुन्दर आनंद देनेवाला यह सोम (हृदे पवते) मनको आनंद देनेके लिये रस देता है ॥ ७ ॥

१ महः दिवः धरुणः— यह सोम द्युलोकका धारण करता है। यह पर्वतके शिखर पर होता है, इसलिये वह वहांसे द्युलोकको धारण करता है, ऐसा माना जाता है।

२ पृथिव्या नाभा— पृथिवीमें जो वनस्पतियां है उन सबमें यह सोम मुख्य है। अतः पृथिवीपर उत्पन्न होनेवाले पदार्थोंमें इस सोमको मुख्य कहा है।

३ इन्द्रस्य वज्रः— इन्द्रका वज्र जैसा श्रेष्ठ है वैसा यह सोम श्रेष्ठ है।

४ वृषभः— यह सोम बलको बढानेवाला है।

५ विभूवसुः— अनेक धन इसके सामर्थ्यसे प्राप्त होते हैं।

६ चारु मत्सरः सोमः— यह सोम अत्यंत आनंद बढानेवाला है।

७ हृदे पवते— मनको आनंद देनेवाला रस यह सोम देता है।

[६५७] हे (सुक्रतो) उत्तम कर्म करनेवाले सोम ! तू (पार्थिवं रजः) पृथिवीके लोकको देखकर (तु) त्वरासे (परिपवस्व) पूर्ण रीतिसे रस निकाल दो। (आधुन्वते स्तोत्रे) यज्ञ करनेवालेके लिये धनादिक (शिक्षन्) देकर तैयार करो। (नः) हमें (वसुनः) धनसे (मा निर्भाक्) पृथक् न कर। (सादन स्पृशः) घरके धनोंसे हमें युक्त कर। (बहुलं पिशंगं रयिं) बहुत नाना प्रकारका धनसे (वसीमहि) युक्त होकर हम रहेंगे ॥ ८ ॥

१ सः तु पार्थिवं रजः परिपवस्व— वह तू सोम पृथिवी लोकके ऊपर चारों ओर अपना रस दो।

२ आधुन्वते स्तोत्रे शिक्षन्— यज्ञ करनेवालेके लि[ये] धनादि पर्याप्त प्रमाणमें दे।

३ नः वसुनः मा निर्भाक्— हमें धनसे पृथक् न कर। हमें पर्याप्त धन दे।

४ सादनस्पृशः बहुलं पिशंगं रयिं वसीमहि— घरमें रहे धनोंसे हमें संयुक्त कर। हमारे घरमें की पुत्र तथा धन धान्य आदि सब भरपूर रहे ऐसा कर।

[६५८] हे (इन्दो) सोम ! (नः तु) हमको अति शीघ्र धन (आ) दे दो। (शतदातु) सैंकडों प्रकारके दातृत्वसे युक्त (अश्व्यं) घोडोंसे युक्त (सहस्रदातु) सहस्रों प्रकारोंके दान जिससे दिये जा सकते हैं ऐसा धन दे दो। (पशुमत् हिरण्यवत्) वह धन पशुओंसे युक्त तथा सुवर्णसे युक्त हो। हे (पवमान) सोम ! (नः) हमारे (स्तोत्रस्य) स्तोत्रके श्रवण करनेके लिये (अधि गहि) आओ। तथा (बृहतीः रेवती इषः) बडे धनयुक्त अन्न हमें (उप मास्व) दे दो ॥ ९ ॥

[७२]

(ऋषिः- पवित्र आङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती ।)

६५९ स्रक्के द्रप्सस्य धमतः समस्वरन्नृतस्य योना सममन्त नाभयः ।
त्रीन् स मूर्ध्नो असुरश्चक्र आरभे सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन् ॥ १ ॥
६६० सम्यक् सम्यञ्चो महिषा अहेषत सिन्धोरूर्मावधि वेना अवीविपन् ।
मधोर्धाराभिर्जनयन्तो अर्कमित् प्रियामिन्द्रस्य तन्वमवीवृधन् ॥ २ ॥

अर्थ— १ नः तु शतदातु सहस्रदातु अश्व्यं आ — हमें सैकडों प्रकारका तथा हजारों प्रकारका अश्व युक्त धन दो।

२ पशुमत्— अनेक पशुओंसे युक्त वह धन दो।

३ हिरण्यवत्— सुवर्ण आदिसे युक्त वह धन दो।

४ बृहतीः रेवतीः इषः उपमास्व — बहुत धनसे युक्त अन्न हमें पर्याप्त प्रमाणमें दे दो।

हमें धन, अन्न, तथा घोडे और गौवें चाहिये। यह सब प्रकारका धन हमें पर्याप्त प्रमाणमें दे दो।

[७२]

[६५९] (स्रक्के) यज्ञके मुख्य स्थानमें रहनेवाले पात्रोंमें (धमतः) रस निकालनेके समय (द्रप्सस्य) सोमके अंश (समस्वरन्) शब्द करते हुए उतर रहे हैं। (ऋतस्य योना) यज्ञके स्थानमें (नाभयः समस्वरन्त) सोमरस आ रहे हैं। (असुरः सः) बलशाली वह सोम (मूर्ध्नः त्रीन् आरभे) मुख्यतः तीनों लोकोंमें अपने पवित्र कार्यका आरंभ करता है और (चक्रे) अपना कार्य करता है। (सत्यस्य नावः) सत्य स्वरूपी सोमकी नौकाएं अर्थात् यज्ञपात्र (सुकृतं अपीपरन्) सत्कर्म करनेवाले यजमानको सहायता करते हैं ॥ १ ॥

१ स्रक्के धमतः द्रप्सस्य समस्वरन्-- यज्ञपात्रोंमें जानेवाले सोमरसके अंश यज्ञपात्रोंमें जानेके समय शब्द करते हुए जाते हैं।

२ ऋतस्य योना नाभयः समस्वरन्— यज्ञके स्थानमें सोमरस यज्ञपात्रमें पहुंचनेका शब्द कर रहे हैं।

३ असुरः सः मूर्ध्ना त्रीन् आरभे-- बलवान् वह सोम मुख्यतः तीन पात्रोंमें गमन करना प्रारंभ करता है।

४ सत्यस्य नावः सुकृतं अपीपरन्-- यज्ञकी नौकाएं यज्ञकर्ताको पूर्णरूपसे सहायता करती हैं।

[६६०] (महिषाः) बडे ऋत्विज (सम्यञ्चः) उत्तम रीतिसे संगठित होकर (सम्यक् अहेषत) उत्तम प्रेरणा देते हैं। पश्चात् (वेनाः) उत्तम फल चाहनेवाले ऋत्विज (सिन्धोः ऊर्मौ अधि) उदककी ऊर्मीमें (अवीविपन्) सोमको रखते या मिलाते हैं। (अर्क जनयन्तः) स्तोत्र कहते हुए (इन्द्रस्य प्रियां तन्वं) इन्द्रके प्रिय शरीरको (मधोः धाराभिः) सोमकी मधुर धाराओंसे (अवीवृधन्) परिपुष्ट करते हैं ॥ २ ॥

१ महिषाः सम्यञ्चः सम्यक् अहेषत— ज्ञानी बडे ऋत्विज उत्तम रीतिसे मिलकर सोमको यज्ञमें प्रेरित करते हैं। सोमयज्ञ ज्ञानी लोग करते हैं।

२ वेनाः सिन्धोः ऊर्मौ अधि अवीविपन्-- उत्तम ज्ञानी ऋत्विज जलमें सोमको मिलाते हैं। सोमरसमें जल मिलाते हैं।

३ अर्क जनयन्तः— स्तोत्र करके उसको बोलते हैं।

४ इन्द्रस्य प्रियां तन्वं मधोः धाराभिः अवीवृधन्-- इन्द्रके शरीरको सोमके मधुर रससे बढाते हैं। सोमरस पीकर वीरोंके शरीर हृष्ट पुष्ट होते हैं।

६६१ पवित्रवन्तः परि वाचमासते पितैषां प्रत्नो अभि रक्षति व्रतम् ।
महः समुद्रं वरुणस्तिरो दधे धीरा इच्छेकुर्धरुणेष्वारभम् ॥ ३ ॥
६६२ सहस्रधारेऽव ते समस्वरन् दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः ।
अस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवः ॥ ४ ॥
६६३ पितुर्मातुरध्या ये समस्वरन्नृचा शोचन्तः संदहन्तो अव्रतान् ।
इन्द्रद्विष्टामप धमन्ति मायया त्वचमसिक्नीं भूमनो दिवस्परि ॥ ५ ॥

अर्थ— [६६१] (पवित्रवन्तः) पवित्रता करनेके सामर्थ्यसे युक्त सोम (वाचं) स्तुतिको (परि आसते) प्राप्त करता है। पश्चात् (एषां प्रत्नः पिता) इनका पुराणा पिता यह सोम (व्रतं अभि रक्षति) अपने व्रतका रक्षण करता है। (वरुणः) अपने तेजसे सबको आच्छादित करनेवाला (महः समुद्रं) बडे अन्तरिक्षको (तिरः दधे) भर देता है। (धीराः) बुद्धिमान् ऋत्विज (धरणेषु) सबको धारण करनेवाले उदकोंमें (आरभं शेकुः) सोमको रखनेके लिये समर्थ होते हैं ॥ ३ ॥

१ पवित्रवन्तः वाचं परि आसते-- सोमरसको शुद्ध करनेवाले स्तुतिकी वाणी बोलते रहते हैं। सोमरसको छाननेके समय उसकी स्तुति याजक लोक करते हैं।

२ एषां प्रत्नः पिता व्रतं अभि रक्षति-- इन स्तुति करनेवालोंका संरक्षक पिता यह सोम अपना यज्ञ करनेका व्रत सुरक्षित रखता है।

३ वरुणः महः समुद्रं तिरः दधे-- श्रेष्ठ सोम बडे आकाशरूपी महासागरको अपने प्रकाशसे भर देता है।

४ धीराः धरुणेषु आरभं शेकुः-- बुद्धिमान् ऋत्विज सबका धारण करनेवाले जलोंमें सोमको मिश्रित करनेमें समर्थ होते हैं।

सोमरसको जलमें मिलाते हैं और पश्चात् उसका यज्ञ करते हैं। तथा देवोंको अर्पण करते हैं और पश्चात् सेवन करते हैं।

[६६२] (सहस्रधारे) सहस्रों जलधाराओंसे युक्त अन्तरिक्षमेंसे (ते) वे सोमके किरण (अव समस्वरन्) पृथिवी पर आ रहे हैं। (दिवः नाके) द्युलोकके ऊपर (मधुजिह्वाः असश्चतः) मधुरतासे युक्त होकर ये रहते हैं। (अस्य स्पशः) इस सोमके किरण (भूर्णयः) शीघ्र जानेवाले होते हैं अतः वे (न निमिषन्ति) स्थिर नहीं रहते। (पदे पदे) प्रत्येक स्थान पर (सेतवः सन्ति) सेतु जैसे होते हैं तथा (पाशिनः) पापियोंको बाधक होते हैं ॥ ४ ॥

१ सहस्रधारे ते अव समस्वरन्— सहस्रधाराओंसे अर्थात् जलधाराओंसे वे सोमके किरण पृथिवी पर पर्जन्यके रूपसे आते हैं। पर्जन्यकी वृष्टिमेंसे सोमके रसपूर्ण किरण पृथिवी पर आते हैं।

२ मधुजिह्वाः असश्चतः अस्य स्पशः भूर्णयः न निमिषन्ति— मधुरतासे युक्त, सतत चलनेवाले इस सोमके किरण एक स्थान पर स्थिर नहीं रहते।

३ पदे पदे सेतवः पाशिनः सन्ति— प्रत्येक स्थानमें पापियोंको बाधक होकर ये सोम रहते हैं।

[६६३] (पितुः मातुः) पिता और माताके समान ये द्युलोक और भूलोकसे (ये) जो सोमके किरण (अधि आ समस्वरन्) आ रहे हैं वे (ऋचा) स्तुतिसे (शोचन्तः) प्रकाशित होते हैं। वे (अव्रतान्) कुकर्म करनेवालोंको (संदहन्तः) उत्तम रीतिसे नष्ट करते हैं। वे सोमके प्रकाश किरण (इन्द्रद्विष्टात् असिक्नीं) इन्द्र जिसका द्वेष करता है वैसी रात्रीरूप (त्वचं) राक्षसको (अपधमन्ति) दूर करते हैं अर्थात् (भूमनः दिवः परि) विस्तृत द्युलोकके ऊपरसे दुष्टोंको (मायया अप धमन्ति) अपनी शक्तिसे दुष्टोंको दूर कर सकते हैं ॥ ५ ॥

६६४ प्रत्नान्मानादध्या ये समस्वरञ्छ्लोकयन्त्रासो रभसस्य मन्तवः ।
अपानक्षासो बधिरा अहासत ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः ॥ ६ ॥
६६५ सहस्रधारे वितते पवित्र आ वाचं पुनन्ति कवयो मनीषिणः ।
रुद्रास एषामिषिरासो अद्रुहः स्पशः स्वञ्चः सुदृशो नृचक्षसः ॥ ७ ॥

अर्थ— १ पितुः मातुः ये अधि आ समस्वरन्, ते ऋचा शोचन्त अव्रतान् संदहन्तः— द्युलोक तथा पृथिवी में जो सोमके प्रकाश किरण आ रहे हैं, उनकी प्रशंसा वेदकी ऋचाएं करती हैं, वे व्रतका पालन न करनेवालोंका नाश करते हैं। धर्मके व्रतोंका पालन अवश्य करना चाहिये।

२ इन्द्रद्विष्टान् अपधमन्ति— इन्द्र जिनका द्वेष करता है उनको सोम दूर करता है।

३ भूमनः दिवः परि मायया अपधमन्ति— बडे विस्तृत द्युलोकके ऊपरसे अपनी शक्तिसे वे सोम दुष्टोंको दूर करते हैं। दुष्टोंको सब स्थानोंसे दूर करना योग्य है।

[६६४] (श्लोकयन्त्रासः) स्तुति करने योग्य और (रभसस्य मन्तवः) वेगसे चलनेवाले (ये) जो सोमके प्रकाश किरण हैं (प्रत्नात् मानात्) वे प्रथम अन्तरिक्षमेंसे (अधि आ समस्वरन्) चलते रहे हैं। उनको (अनक्षासः) शुद्ध दृष्टि हीन (बधिराः) देवोंकी स्तुतिका श्रवण न करनेवाले दुष्ट मनुष्य (अप अहासत) देख नहीं सकते। (ऋतस्य पन्थां) सत्य यज्ञके मार्गको (दुष्कृतः) दुष्ट कर्म करनेवाले लोक (न तरन्ति) पार नहीं कर सकते ॥ ६ ॥

१ श्लोकयन्त्रासः रभसस्य मन्तवः ये प्रत्नासः मानात् अधि आ समस्वरन्— स्तुतिके योग्य और वेगसे गमन करनेवाले सोमके प्रकाश किरण हैं, वे अन्तरिक्षमेंसे चलते हैं। इसका कारण यह है कि सोम पर्वतके शिखरपर रहता है। वहांसे उसके प्रकाश किरण चलते हैं। वे अन्तरिक्षमें चलते हैं।

२ अनक्षासः बधिरा अप अहासत— दृष्टि हीन और बहिरे लोग उन किरणोंको नहीं देख सकते। ज्ञानहीन जो होते हैं वे उन किरणोंको नहीं देख सकते।

३ ऋतस्य पन्थां दुष्कृतः न तरन्ति— यज्ञके सत्य मार्ग परसे दुष्ट मनुष्य जा नहीं सकते। दुष्ट मनुष्य सत्य मार्ग पर चल नहीं सकते।

[६६५] (कवयः मनीषिणः) ज्ञानी विद्वान (सहस्रधारे वितते पवित्रे) सहस्रधाराओंसे नीचे गिरनेवाले सोमरसको छाननीमेंसे जानेके समय (एषा वाचं आ पुनन्ति) इनको अपनी स्तुतिरूपी वाणीसे पवित्र करते हैं। (रुद्रासः) रुद्रके पुत्र मरुत् (स्पशः) स्तुतिसे वश होनेवाले (अद्रुहः) द्रोह न करनेवाले (सुदृशः) सुन्दर दीखनेवाले (नृचक्षाः) मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाले (स्वञ्चः) सुंदर कार्य करनेवाले (इषिरासः) उत्तम आक्रमण शत्रुपर करनेवाले होते हैं ॥ ७ ॥

१ कवयः मनीषिणः सहस्रधारे वितते पवित्रे वाचं आ पुनन्ति— ज्ञानी मनीषी ऋत्विज सहस्रों धाराओंसे सोमरसको नीचेके पात्रमें गिरनेवाले छाननीमेंसे सोमरसके गिरनेके समय उसकी स्तुति करते हैं।

२ रुद्रासः स्पशः अद्रुहः सुदृशः नृचक्षाः स्वञ्चः इषिरासः— रुद्रके पुत्र मरुत् गण स्तुतिसे वश होनेवाले, द्रोह न करनेवाले, उत्तम सुंदर दीखनेवाले, मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाले, सुंदर कार्य करनेवाले, शत्रुपर हमला करनेवाले होते हैं। मरुद्वीरोंके गुण ये हैं।

रुद्रासः— भयंकर कार्य करनेवाले, २ स्पशः— स्तुति करनेके योग्य कार्य करनेवाले, ३ अद्रुहः— विना कारण किसीका द्रोह न करनेवाले, ४ सुदृशः— देखनेमें सुन्दर, ५ नृचक्षाः— मानवोंकी परीक्षा करनेवाले, ६ स्वञ्चः— सुन्दर कार्य करनेवाले, ७ इषिरासः— शत्रुपर उत्तम प्रकारसे आक्रमण करनेवाले ये मरुत् नामक वीर होते हैं।

६६६ ऋतस्य गोपा न दभाय सुक्रतु—स्त्री ष पवित्रा हृद्य१न्तरा दधे ।
विद्वान् त्स विश्वा भुवनाभि पश्य—त्यवाजुष्टान् विध्यति कर्ते अव्रतान् ॥ ८ ॥
६६७ ऋतस्य तन्तुर्वितत: पवित्र आ जिह्वाया अग्रे वरुणस्य मायया ।
धीराश्चित् तत् समिनक्षन्त आशता—ऽत्रा कर्तमव पदात्यप्रभुः ॥ ९ ॥

[७४]

(ऋषिः- कक्षीवान् दैर्घतमसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती, ८ त्रिष्टुप् ।)

६६८ शिशुर्न जातोऽव चक्रदद्वने स्व१र्यद्वाज्यरुषः सिषासति ।
दिवो रेतसा सचते पयोवृधा तमीमहे सुमती शर्म सप्रथः ॥ १ ॥

---

[७४]

अर्थ— [६६६] (ऋतस्य गोपाः) यज्ञका संरक्षक (सुक्रतुः) उत्तम कर्म करनेवाला यह सोम (दभाय न) किसी दुष्टसे दबनेवाला नहीं है। (सः) वह सोम (त्री) तीन (पवित्रा) पवित्र करनेवालोंको (हृदि अन्तः आदधे) अपने हृदयमें धारण करता है। (विद्वान् सः) वह ज्ञानी सोम (विश्वा भुवनानि) सब भुवनोंको (अभि पश्यति) विशेष रीतिसे देखता है। (कर्ते अव्रतान्) कर्म करनेवालोंमें जो नियम रहित रीतिसे कार्य करते हैं, (अजुष्टान्) उन अप्रिय करनेवालोंको (अव विध्यति) ताडन करता है।

१ ऋतस्य गोपाः सुक्रतुः न दभाय— सच्चे कर्मका संरक्षक स्वयं उत्तम कर्म करनेवाला किसीसे कभी दबता नहीं।

२ सः त्री पवित्रा हृदि अन्तः आदधे— वह तीन पवित्र कर्मोंको अपने हृदयमें रखता है। शरीर, मन तथा बुद्धिसे तीन पवित्र करनेके कार्य करता है।

३ विश्वा भुवनानि विद्वान् सः अभिपश्यति— सब भुवनोंको वह विद्वान् विशेष सूक्ष्म दृष्टिसे देखता रहता है।

४ कर्ते अव्रतान् अजुष्टान् अवविध्यति— कार्य करनेवालोंमें जो अयोग्य रीतिसे कार्य करते हैं उन अयोग्य कार्य कर्ताओंको वह ताडन करता है, मारता है, उनको दण्ड देता है।

[६६७] (ऋतस्य तन्तुः) यज्ञका विस्तार करनेवाला (पवित्रे विततः) पवित्रमें फैला हुआ सोम है। (वरुणस्य जिह्वाया अग्रे) वह वरुणकी जिह्वाके अग्रभागमें (मायया आ) अपनी शक्तिसे रहा है। (धीराः चित्) बुद्धिमान लोक (तत् समिनक्षन्त) उसको व्यापते हैं और (आशत) प्राप्त करते हैं। (कर्ते अप्रभुः) जो कर्तृत्वमें असमर्थ होता है वह (अव पदाति) नीचे गिरता है ॥ ९ ॥

१ ऋतस्य तन्तुः पवित्रे विततः— यज्ञकर्मका विस्तार करनेवाला सोम छाननीमें फैला है। छाना जा रहा है।

२ वरुणस्य जिह्वाया अग्रे मायया आ— वरुणकी जिह्वाके अग्रभागमें अर्थात् जलमें वह सोम अपनी शक्तिसे मिलता है।

३ धीराः चित् तत् समिनक्षन्त— ज्ञानी लोक उसको देखते हैं। याजक ऋत्विज उस सोमको देखते हैं।

४ आशत— उस सोमको प्राप्त करते हैं, देखते हैं।

५ अप्रभुः कर्ते अव पदाति— जो कर्म करनेमें असमर्थ होता है वह नीचे गिरता है।

[६६८] (वने जातः) जलमें उत्पन्न हुआ (शिशुः न) बालकके समान यह सोम (अव चक्रदत्) शब्द करता है। (यत्) जब (वाजी अरुषः) घोडा जानेकी इच्छा करता है, वैसा सोम (स्वः) स्वर्गलोकमें (सिषासति) जानेकी इच्छा करता है। यह सोम (अरुषः) चमकता है (पयो वृधा) दूधसे मिश्रित होनेवाला (दिवः रेतसा) दिव्य उदकके साथ (सचते) मिलता है। उस सोमको (सुमती) उत्तम बुद्धिवाले हम (सप्रथः) धनसे युक्त (शर्म) गृह मिले ऐसा हम (तमीमहे) चाहते हैं ॥ १ ॥

६६९ दिवो यः स्कम्भो धरुणः स्वातत आपूर्णो अंशुः पर्येति विश्वतः ।
सेमे मही रोदसी यक्षदावृता समीचीने दाधार समिषः कविः ॥ २ ॥
६७० महि प्सरः सुकृतं सोम्यं मधू-र्वी गव्यूतिरदितेर्ऋतं यते ।
ईशे यो वृष्टेरित उस्रियो वृषा ऽपां नेता य इतऊतिर्ऋग्मियः ॥ ३ ॥

अर्थ— १ शिशुः न, वने जातः अवचक्रदत्— उत्पन्न हुए बालकके समान, यह सोम शब्द करता है ।

२ यत् वाजी अरुषः स्वः सिषासति— जैसा घोडा जानेकी इच्छा करता हुआ शब्द करता है वैसा सोम देवोंके पास जानेके समय शब्द करता है ।

३ अरुषः पयोवृधा दिवः रेतसा सचते— तेजस्वी सोम दूधमें मिलाया जानेपर दिव्य उदकके साथ भी मिलता है ।

४ सुमती सप्रथः शर्म तमीमहे— उत्तम बुद्धिवाले हम हमें धनसे युक्त घर मिले ऐसा हम चाहते हैं ।

[६६९] (दिवः स्कंभः) द्युलोकका आधारस्तंभ (धरुणः) सबका धारण कर्ता (स्वाततः) सर्वत्र व्याप्त होकर रहनेवाला (आपूर्णः) सर्वत्र पूर्णरूपसे भरा हुआ (यः अंशुः) जो सोमरस (विश्वतः पर्येति) सवत्र व्यापता है (सः) वह सोम (इमे मही रोदसी) ये बडे द्यु और पृथिवी ये लोकोंमें (आवृता यक्षत्) अपने कर्मसे यजन करे । तथा यह (समीचीने दाधार) द्युलोक और पृथिवीको मिलकर धारण करता है । यह (कविः) ज्ञानी सोम (इषः संदाधार) अन्नोंको धारण करता है ॥ २ ॥

१ दिवः स्कंभः धरुणः स्वाततः आपूर्णः यः अंशुः विश्वतः पर्येति— द्युलोकका आधार, विश्वका धारण करनेवाला, सर्वत्र व्यापक, सर्वत्र परिपूर्ण रीतिसे भरा हुआ यह सोम सर्वत्र व्यापता है ।

२ दिवः स्कंभः— द्युलोकका आधार स्तंभ । सोम पर्वत शिखर पर होता है, अतः वह द्युलोकका धारण कर्ता कहा है ।

३ अंशुः विश्वतः पर्येति— सोम सर्वत्र व्यापता है । सर्वत्र प्रिय है ।

४ समीचीने दाधार— द्यु और पृथिवीका धारण सोम करता है । दोनों लोकोंमें वह सन्मान प्राप्त करता है ।

५ कविः इषः संदाधार— ज्ञान बढानेवाला सोम सब प्रकारके अन्नोंको धारण करता है ।

[६७०] (ऋतं यते) यज्ञमें जानेवाले इन्द्रके लिये (सुकृतं सोम्यं मधु) उत्तम यज्ञकर्ममें प्रयुक्त होनेवाला सोमका रस (प्सरः) पीनेके लिये उत्तम होता है । (अदितेः गव्यूतिः) पृथिवीका मार्ग (उर्वी) विस्तीर्ण होता है । (यः) जो इन्द्र (इतः वृष्टेः ईशे) यहांकी वृष्टिका स्वामी है । इह इन्द्र (उस्रियः) गौओंका हित करता है । (अपां वृषा) जलोंकी वृष्टि करता है । (नेता) सबका नियामक है । तथा (इत ऊतिः) यज्ञमें जो जाता है तथा वह (ऋग्मियः) प्रशंसाके योग्य है ॥ ३ ॥

१ ऋतं यते सुकृतं सोम्यं मधु प्सरः— यज्ञमें जानेवाले इन्द्रके लिये उत्तम रीतिसे तैयार किया सोमरस पीनेके योग्य मधुर है ।

२ अदितेः गव्यूतिः उर्वी— पृथिवीका मार्ग विस्तृत है ।

३ यः इतः वृष्टेः ईशे उस्रियः— जो यहां वृष्टि करता है वह गौओंका हित करता है । वृष्टिसे घांस उत्पन्न होता है जिस पर गौवें उपजीविका करती हैं, अतः वृष्टि करनेवाला गौवोंका हित करनेवाला कहलाता है ।

४ अपां वृषा नेता— जलोंकी वृष्टि जो करता है वह नियामक है ।

५ इत ऊतिः ऋग्मियः— यज्ञमें जो जाता है वह प्रशंसनीय है । अतः यज्ञमें जाना चाहिये । यज्ञसे दूर नहीं रहना चाहिये ।

६७१ आत्मन्वन्नभों दुह्यते घृतं पय ऋतस्य नाभिरमृतं वि जायते ।
समीचीनाः सुदानवः प्रीणन्ति तं नरो हितमव मेहन्ति पेरवः ॥ ४ ॥
६७२ अरावीदंशुः सचमान ऊर्मिणा देवाव्यं१ मनुषे पिन्वति त्वचम् ।
दधाति गर्भमदितेरुपस्थ आ येन तोकं च तनयं च धामहे ॥ ५ ॥
६७३ सहस्रधारेऽव ता असश्चत—स्तृतीये सन्तु रजसि प्रजावतीः ।
चतस्रो नाभो निहिता अवो दिवो हविर्भरन्त्यमृतं घृतश्चुतः ॥ ६ ॥

अर्थ— [६७१] (आत्मन्वत् घृतं पयः) सारस्पी घीके सदृश जल (नभसः दुह्यते) आकाशमेंसे दुहा जाता है। यह (ऋतस्य नाभिः) यज्ञका मध्य स्थान है। वहांसे (अमृतं विजायते) अमर जीवन देनेवाला जलरूपी अमृत विशेष करके उत्पन्न होता है। (सुदानवः) उत्तम दान करनेवाले (समीचीनाः) एकत्र बैठनेवाले यजमान (तं प्रीणन्ति) उस सोमको स्तुतिसे प्रसन्न करते हैं। और (नरः) नेता लोग (पेरवः) रक्षक होते हैं, वे (हितं अव मेहन्ति) हितकारक पदार्थोंकी वृष्टी करते हैं। हित करते हैं ॥ ४ ॥

१ नभसः आत्मन्वत् घृतं पयः दुह्यते अन्तरिक्षसे जीवनका सारभूत जल वृष्टिके रूपमें पृथिवीके ऊपर बरसता है। इस जीवनरससे प्राणियोंका जीवन सुखमय हो जाता है।
२ ऋतस्य नाभिः— यह यज्ञका मध्य अर्थात् मुख्य स्थान है।
३ अमृतं विजायते— उससे अमृत उत्पन्न होता है। यह जल अमृत ही है।
४ सुदानवः समीचीनाः तं प्रीणयन्ति— उत्तम दान देनेवाले यज्ञकर्ता एकत्र यज्ञस्थानमें बैठते हैं और उसको प्रसन्न करते हैं। सोमरसमें जल मिश्रित करके उसको आनंद देनेवाला पेय बनाते हैं।
५ नरः पेरवः— नेता लोग उसका रक्षण करते हैं।
६ हितं अवमेहन्ति— हितकारक पदार्थ सबके हितार्थ सबको प्रदान करते हैं। इस दानसे सबका हित होता है।

[६७२] (ऊर्मिणा) जलसे (सचमानः) मिश्रित होनेवाला (अंशुः) सोम (अरावीत्) शब्द करता है। (देवाव्यं त्वचं) देवोंका रक्षण करनेवाले अपने शरीरको (मनुषे पिन्वति) मानवी हितके लिये अर्पण करता है। (अदितेः उपस्थे) पृथिवीके ऊपर (गर्भं आ दधाति) अपना गर्भ- मुख्य भाग- स्थापन करता है। (येन) जिससे (तोकं तनयं च) पुत्र और संतान (धामहे) हम धारण करते हैं ॥ ५ ॥

१ ऊर्मिणा सचमानः अंशुः अरावीत्— जलमें मिलानेवाला सोमरस शब्द करता हुआ जलके साथ मिलता है।
२ देवाव्यं त्वचं मनुषे पिन्वति — देवोंका रक्षण करनेवाला अपना शरीर याजकोंको देता है। याजक इससे यज्ञ करते हैं।
३ अदितेः उपस्थे गर्भं आ दधाति— पृथिवीके ऊपर यह सोम अपना गर्भ स्थापन करता है। इससे भूमिपर औषधियां उत्पन्न होकर लोगोंके रोगोंको दूर करती हैं और उनको नीरोग बनाती हैं।
४ येन तोकं तनयं च धामहे — इससे पुत्र पौत्रोंको हम धारण करके उनका रक्षण करनेमें हम समर्थ होते हैं।

[६७३] (सहस्रधारे) बहुत उदकयुक्त (तृतीये रजसि) तृतीय लोकमें अर्थात् स्वर्गमें (असश्चतः) परस्पर दूर रहनेवाले (ताः) वे सोमके रस (अव सन्तु) पृथिवीपर नीचे गिर जांय। (प्रजावतीः) प्रजाके लिये वे सहायक हो जांय। (चतस्रः नाभः) चार प्रकारके सोमके प्रकाश किरण (दिवः अवः हिताः) द्युलोकसे नीचे आते हैं। वे (घृतश्चुतः) उदक देनेवाले सोमरस (अमृतं हविः भरन्ति) अमरत्व देनेवाला हविष्य भरपूर देते हैं। वह (अवः) रक्षणशक्तिसे युक्त होता है ॥ ६ ॥

६७४ श्वेतं रूपं कृणुते यत् सिषासति सोमो मीढ्वाँ असुरो वेद भूमनः ।
धिया शमी सचते सेमभि प्रवद् दिवस्कवन्धमव दर्षदुद्रिणम् ॥ ७ ॥
६७५ अध श्वेतं कलशं गोभिरक्तं कार्ष्मन्ना वाज्यक्रमीत् ससवान् ।
आ हिन्विरे मनसा देवयन्तः कक्षीवते शतहिमाय गोनाम् ॥ ८ ॥

अर्थ— १ सहस्रधारे तृतीये रजसि अवश्चतः ताः अव सन्तु — बहुत जलमय तीसरे लोकमें अर्थात् स्वर्गमें रहनेवाले वे सोमरस पृथिवीपर आजांय । सोम पर्वत शिखरपर होता है, वहांसे वह पृथिवीपर यज्ञ-स्थानमें आ जाय ।

२ प्रजावतीः चतस्रः नाभः दिवः अवहिताः— प्रजाके लिये हितकारक सोमके चार प्रकारके प्रकाश द्युलोकसे नीचे आते हैं । (१) सोम पर्वतपर रहता है, (२) वहांसे उसको नीचे लाया जाता है, (३) यज्ञमें उसको रखते है और (४) देवोंको समर्पित होता है । ये सोमके चार स्थान हैं और वहांके चार प्रकारके प्रकाश हैं ।

३ घृतश्चुतः अमृतं हविः भरन्ति— उदकमें मिश्रित सोम यज्ञमें हविरूप होकर रहते हैं ।

४ अवः— वे सोमके रस यज्ञ करनेवालोंका तथा जहां यज्ञ होता है वहांके जनताका वे सोमरस संरक्षण करते हैं । सोम यज्ञसे रोग दूर होते हैं, इससे जनताका संरक्षण होता है ।

[६७४] (श्वेतं रूपं कृणुते) सोम अपना श्वेत रूप करता है (यत्) जब वह (सिषासति) स्वर्गमें जानेकी इच्छासे यज्ञमें बैठता है । (ततः) तब (मीढ्वान्) कामनाओंको पूर्ण करनेवाला (असुरः) बलवान (सोमः) सोम (भूमनः वेद) अनेक धन याजकोंको देना चाहता है । (सः) वह सोम (धिया प्रवत् शमी) बुद्धिसे विशेष कर्मोंको (अभि सचते) पूर्ण करता है । और (दिवः) अन्तरिक्षमेंसे (उद्रिणं कवंधं) उदक देनेवाले मेघको (अवदर्षत्) नीचे भेजता है । वृष्टि करता है ॥ ७ ॥

१ यत् सिषासति श्वेतं रूपं कृणुते— जब सोम यज्ञमें अपने स्थानमें बैठता है, तब सोमरसका रूप श्वेत दीखता है ।

२ ततः मीढ्वान् असुरः सोमः भूमनः वेद— तब यज्ञमें याजकोंकी कामना पूर्ण करनेके लिये यह सोम अनेक प्रकारके धन याजकोंको देता है ।

३ सः धिया प्रवत् शमी अभि सचते— वह सोम बुद्धिपूर्वक अनेक प्रकारके यज्ञमें कर्म करता है ।

४ उद्रिणं कवंधं अवदर्षत्— जलकी वृष्टि करनेवाले मेघोंको पृथिवीपर भेजता है और वृष्टि करवा कर सब जनोंको जल देता है ।

[६७५] (अध) पश्चात् (श्वेतं गोभिः अक्तं) श्वेत वर्ण गोदुग्धसे युक्त होकर (कार्ष्मन्) अपनी दिशामें-स्थानमें (ससवान्) रहनेवाला सोम (कलशं) कलशमें (आ अक्रमीत्) रहता है । जैसा (वाजी) घोडा युद्धमें आक्रमण करता है । उस सोमकी (देवयन्तः) देवोंको प्राप्त करनेवाले ऋत्विज (मनसा आ हिन्विरे) मनसे उत्तम रीतिसे उस सोमको प्रेरित करते हैं जिस प्रकार (शतहिमाय कक्षीवते गोनाम्) सैंकडों प्रकारसे स्तुति करनेवाले कक्षीवान् ऋषिको देनेके लिये गौवें प्रेरित होती हैं ॥ ८ ॥

१ अध श्रेष्ठं गोभिः अक्तं कार्ष्मन् ससवान् कलशं आ अक्रमीत्— पश्चात् उत्तम गोदुग्धसे भरे हुए कलशमें सोमरस गोदुग्धके साथ मिलनेके लिये जाता है । गोदुग्धसे सोमरस मिश्रित होता है ।

२ वाजी आ अक्रमीत्— जैसा घोडा युद्धभूमिमें जाता है वैसा सोमरस गोदुग्धके साथ मिलता है ।

३ देवयन्तः मनसा आ हिन्विरे— देवताओंको प्राप्त करनेवाले ऋत्विज मनसे उस सोमकी स्तुति करके यज्ञमें प्रेरित करते हैं ।

४ शतहिमाय कक्षीवते गोनाम्— सौ वर्षके कक्षीवान् ऋषिको अनेक गौवें दीं गयीं । यज्ञमें गौओंको दानमें दिया जाता था ।

६७६ अद्भिः सोम पपृचानस्य ते रसो ऽव्यो वारं वि पवमान धावति ।
स मृज्यमानः कविभिर्मदिन्तम स्वदस्वेन्द्राय पवमान पीतये ॥ ९ ॥

[७५]

(ऋषिः- कविर्भार्गवः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती ।)

६७७ अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते ।
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥ १ ॥
६७८ ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः ।
दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यं नाम तृतीयमधि रोचने दिवः ॥ २ ॥

अर्थ- [६७६] हे (पवमान सोम) शुद्ध होनेवाले सोम ! (अद्भिः) जलोंसे (पपृचानस्य ते) मिश्रित होनेवाले तेरा (रसः) रस (अव्यः वारं) भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे (विधावति) छाना जाता है। तब (मदिन्तम) आनंद देनेवाले (पवमान) सोम ! तू (कविभिः मृज्यमानः) ऋत्विजोंके द्वारा शुद्ध होनेवाला (इन्द्राय पीतये) इन्द्रको पीनेको देनेके लिये (स्वदस्व) रस दो ॥ ९ ॥

१ अद्भिः पपृचानस्य ते रसः अव्यं वारं विधावति— जलके साथ मिश्रित होनेवाले तेरा रस- सोमरस- भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे छाना जाता है। शुद्ध और स्वच्छ किया जाता है।

२ हे मदिन्तम ! पवमान ! कविभिः मृज्यमानः इन्द्राय पीतये स्वदस्व— हे आनंद देनेवाले सोम ! ज्ञानी ऋत्विजोंके द्वारा शुद्ध किया हुआ सोमरस इन्द्रको पीनेके लिये दिया जाता है।

[६७७] (चनो हितः) अन्नके लिये हितकारक सोम (प्रियाणि नामानि) प्रिय उदकोंको (अभि पवते) प्राप्त करता है। (येषु) जिन उदकोंमें (यह्वः) महान यह सोम (अधि वर्धते) बढता रहता है। (बृहन्) यह महान् सोम (बृहत सूर्यस्य) बडे सूर्यके (विश्वंचं रथं अधि) सर्वगामी रथके ऊपर (विचक्षणः) सबको देखनेवाला होकर (आरुहत्) आरोहण करता है ॥ १ ॥

१ चनो हितः प्रियाणि नामानि अभि पवते— अन्नका सहायक यह सोम प्रिय उदकमें मिश्रित किया जाता है। पश्चात् उसका यज्ञमें समर्पण होता है और तदनंतर वह पीया करता है।

२ यह्वः येषु अधि वर्धते— यह महान् सोम जलोंके साथ मिश्रित होनेसे बढता है।

३ बृहन् विचक्षणः बृहतः सूर्यस्य विष्वंचं रथं आरुहत्— यह बडा ज्ञान बढानेवाला सोम बडे सूर्यके चारों ओर घुमनेवाले रथ पर चढता है।

" अग्नौ प्रास्ताहुतिः आदित्यमुपतिष्ठते "— अग्निमें डाली हुई आहुति सूर्यपर जाती है। इस तरह यह सोमकी आहुति सूर्य किरणसे सूर्यपर पहुंचती है।

[६७८] (ऋतस्य जिह्वा) यज्ञकी जिह्वारूप यह सोम (प्रियं मधु पवते) प्रिय मधुर रस देता है। (वक्ता) स्तुतियोंको बोलनेवाला यजमान (अस्याः धियः) इस कर्मका- यज्ञके कर्मका (पतिः) पालन करनेवाला (अदाभ्यः) न दबनेवाला होता है। (पुत्रः) यजमान (पित्रोः अपीच्यं नाम) मातापिताका गुप्त नाम (अधि दधाति) जानता है। यह (तृतीयं नाम) तीसरा नाम (दिवः रोचने अधि दधाति) द्युलोकको तेजस्वी करनेवाले सोमका होता है ॥ २ ॥

६७९ अवं द्युतानः कलशाँ अचिक्रद्—न्नृभिर्येमानः कोश आ हिरण्यये ।
अभीमृतस्य दोहना अनूषता—ऽधि त्रिपृष्ठ उषसो वि राजति ॥ ३ ॥
६८० अद्रिभिः सुतो मतिभिश्चनोहितः प्ररोचयन् रोदसी मातरा शुचिः ।
रोमाण्यव्या समया वि धावति मधोर्धारा पिन्वमाना दिवेदिवे ॥ ४ ॥
६८१ परि सोम प्र धन्वा स्वस्तये नृभिः पुनानो अभि वासयाशिरम् ।
ये ते मदा आहनसो विहायस—स्तेभिरिन्द्रं चोदय दातवे मघम् ॥ ५ ॥

अर्थ— १ ऋतस्य जिह्वा प्रियं मधु पवते— यज्ञकी जिह्वारूपी यह सोम प्रिय मधुर रस देता है। यज्ञमें यह सोमसे रस निकालते हैं।

२ वक्ता अस्याः धियः पतिः अदाभ्यः— स्तुति करनेवाला यजमान इस देवताओंकी स्तुतिका न दब जानेवाला पालन कर्ता होता है। वह यज्ञस्थानमें स्तुति करता है।

३ पुत्रः पित्रोः अपीच्यं नाम अधि दधाति— पुत्र मातापिताका तीसरा गुप्त नाम जानता है। पुत्र जैसा अपने मातापिताके नाम जानता है, उस प्रकार यजमान सोमके सब नाम जानता है। यजमान सोमके गुणोंके सब नाम जानता है।

[६७९] (द्युतानः) तेजस्वी (नृभिः) ऋत्विजोंने (हिरण्यये कोशे) सुवर्णके पात्रमें (येमानः) रखा सोम होता है। (ऋतस्य) यज्ञके समय (दोहनाः) रस निकालनेवाले ऋत्विज (ईं) इस सोमकी (अभि अनूषत) स्तुति करते हैं। (त्रिपृष्ठः) तीन सवनोंमें रहनेवाला यह सोम (उषसः अधि विराजति) उषःकालमें चमकता है ॥ ३ ॥

१ द्युतानः नृभिः हिण्यये कोशे येमानः— यह तेजस्वी सोम ऋत्विजोंने सुवर्णके पात्रमें रखा रहता है। यज्ञस्थानमें यह सोम रहता है।

२ ऋतस्य दोहनाः ईं अभि अनूषत— यज्ञको करनेवाले ऋत्विज इस सोमकी स्तुति गाते हैं।

३ त्रिपृष्ठः उषसः अधि विराजति— यह तीन सवनोंमें रहनेवाला सोम उषःकालमें चमकने लगता है।

[६८०] (अद्रिभिः सुतः) पत्थरोंसे कूटकर निकाला (मतिभिः) बुद्धिवालोंने (चनो हितः) अन्न-रूपसे रखा और (शुचिः) शुद्ध हुआ सोम (रोदसी मातरा) द्युलोक तथा पृथिवीरूपी माताओंको (प्ररोचयन्) तेजस्वी करता है। यह सोम (समया) यज्ञके समीप (वि धावति) जाता है और (दिवे दिवे) प्रतिदिन (मधोः धाराः पिन्वमानाः) मधुर सोमरसकी धाराओंको शुद्ध कर देता है ॥ ४ ॥

१ अद्रिभिः सुतः— यह सोम पत्थरोंसे कूटकर रस निकाला गया है।

२ मतिभिः चनो हितः— बुद्धिमान याज्ञिकोंने उस सोमको अन्नके रूपमें यज्ञस्थानमें लिया और रखा है।

३ शुचिः मातरा रोदसी प्ररोचयन्— यह शुद्ध सोम द्यावापृथिवीको तेजस्वी करता है।

४ समया वि धावति— वह सोम यज्ञके समीप जाकर रहता है।

५ दिवे दिवे मधोः पिन्वमानाः— प्रतिदिन यह सोम मधुर रसको धाराओंसे शुद्ध करके देता है।

[६८१] हे (सोम) सोम! (स्वस्तये) कल्याण करनेके लिये (परि प्र धन्व) तू आकर यहां रहो। (नृभिः पुनानः) यज्ञकर्ता विद्वानोंके द्वारा शुद्ध हुआ तू (आशिरं अभिवासय) दूध आदिमें जाकर रहो। (ते ये मदाः) तेरे जो ये आनद देनेवाले रस हैं तथा (आहनसः) शत्रुओंको मारनेवाले हैं वे (विहायसः) बडे शक्ति-संपन्न हैं (तेभिः) उनके साथ हमें (मघं दातवे) धन देनेके लिये (इन्द्रं चोदय) इन्द्रको उत्तेजित कर ॥ ५ ॥

[७६]

(ऋषिः- कविर्भार्गवः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती ।)

६८२ धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः ।
हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभि- र्वृथा पाजांसि कृणुते नदीष्वा ॥ १ ॥

६८३ शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्वः सिषासन् रथिरो गविष्टिषु ।
इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्नपस्युभि- रिन्दुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः ॥ २ ॥

अर्थ— १ स्वस्तये परि प्रधन्व— हम सबका कल्याण करनेके लिये तू यहां आकर, उत्साह बढानेके लिये, रहो । यहां रहो और सबका उत्साह बढाओ ।

२ नृभिः पुनानः आशिरं अभिवासय— नेताओं द्वारा शुद्ध किया हुआ तू दूध आदिका सेवन करके यहां रहो । सोमरसमें दूध आदिका मिश्रण किया जाता है और पश्चात् उसका सेवन किया जाता है ।

३ ते ये मदाः आहनसः विहायसः— तेरे जो आनंद तथा उत्साह बढनेवाले श्रेष्ठ रस हैं वे सेवन करने योग्य हैं ।

४ तेभिः मघं दातये इन्द्रं चोदयः— उनके द्वारा धन देनेके लिये इन्द्रको प्रेरणा दे । इन्द्र हमको धन देवे, ऐसा तू उस इन्द्रको प्रेरित कर ।

[७६]

[६८२] (दिवः धर्ता) द्युलोकका धारण करनेवाला सोमरस (पवते) शुद्ध किया जाता है । वह (कृत्व्यः) शुद्ध किया करने योग्य है । (रसः) उस सोमका रस (देवानां दक्षः) देवोंका बल बढानेवाला है, तथा (नृभिः अनुमाद्यः) ऋत्विज मनुष्यों द्वारा प्रशंसनीय है । यह सोमरस (हरिः) हरे रंगका है । वह (अत्यः न) घोडेके समान बलके कार्योंमें प्रगति करनेवाला है । वह (सत्वभिः) अपने बलोंसे (नदीषु) जलोंमें (वृथा) विना आयास (पाजांसि कृणुते) अनेक बलके कार्य करता है ॥ १ ॥

१ दिवः धर्ता पवते— यह सोम द्युलोकका धारण करता है । यह सोम पर्वतोंके शिखर पर होता है अतः वह द्युलोकका धारण कर्ता कहा है ।

२ कृत्व्यः— वह सोम शुद्ध करके सेवन करने योग्य है । यह रस छाना जाकर सेवन करने योग्य होता है ।

३ रसः दक्षः— यह सोमरस बल बढाता है । सोमरस पीनेसे बल बढता है ।

४ नृभिः अनुमाद्यः— मनुष्योंके द्वारा यह सोम प्रशंसनीय है ।

५ हरिः अत्यः न सत्वभिः नदीषु वृथा पाजांसि कृणुते— यह हरे रंगका सोम अपने बलोंसे जलोंमें सहज मिश्रित होकर सेवन किया, तो वह अनेक बलके कार्य कराता है ।

[६८३] यह सोम (गभस्त्योः आयुधा) हाथोंमें आयुधोंको (शूरः न) शूरके समान धारण करता है । (स्वः सिषासन्) यज्ञमें बैठनेकी इच्छा करता है । (रथिरः) यह रथसे युक्त होता है । (गविष्टिषु) गौवों संबंधी यज्ञोंमें (इन्द्रस्य शुष्मं ईरयन्) इन्द्रके बलको प्रेरणा देता है । वह (इन्दुः) सोम (अपस्युभिः मनीषिभिः) कर्म करनेवाले ज्ञानियोंके द्वारा (हिन्वानः) प्रेरित हुआ गौओंके दूधके साथ (अज्यते) स्तुतिसे प्रशंसित किया जाता है ॥ २ ॥

६८४ इन्द्र॑स्य सोम॒ पव॑मान ऊ॒र्मिणा॑ तवि॒ष्यमा॑णो ज॒ठरे॒ष्वा वि॑श ।
प्र णः॑ पिन्व वि॒द्युद॒भ्रेव॒ रोद॑सी धि॒या न वाजाँ॒ उप॑ मासि॒ शश्व॑तः ॥ ३ ॥
६८५ विश्व॑स्य॒ राजा॑ पवते स्व॒र्दृशः॑ ऋ॒तस्य॑ धी॒तिमृ॑षि॒षाळ॑वीवशत् ।
यः सूर्य॒स्यासि॑रेण मृ॒ज्यते॑ पि॒ता म॑ती॒नामस॑मष्टकाव्यः ॥ ४ ॥

अर्थ— १ शूरः न गभस्त्योः आयुधा— शूरके समान यह हाथोंमें आयुध धारण करता है । युद्धमें जानेके समय शूर पुरुष हाथमें शस्त्र लेता है ।

२ स्वः सिषासन्— यह यज्ञ करनेके लिये यज्ञके स्थानपर बैठता है ।

३ रथिरः— यह रथमें बैठकर गमन करनेमें चतुर है ।

४ गविष्टिषु इन्द्रस्य शुष्मं ईरयन्— यज्ञोंमें तथा युद्धोंमें यह इन्द्रका बल बढाता है ।

५ इन्दुः अपस्युभिः मनीषिभिः हिन्वानः अज्यते— यह सोम यज्ञकर्म करनेवाले बुद्धिमान लोकों द्वारा प्रेरित होकर स्तुतिसे प्रशंसित होता है ।

[६८४] हे (सोम) सोम ! (पवमानः) शुद्ध होता हुआ तू (तावष्यमाणः) बढता हुआ (इन्द्रस्य जठरेषु) इन्द्रके पेटमें (उर्मिणा आविश) प्रवेश कर (विद्युत् अभ्रा इव) विद्युत् मेघोंको- मेघोंमेंसे जलको दुहती है, उस प्रकार (प्र पिन्व) दोहन करके वृष्टि कर । तथा (धिया) कर्मके द्वारा (न) अब (शश्वतः) बहुत (वाजान्) अन्नोंको (उप मासि) निर्माण करता है ॥ ३ ॥

१ हे सोम ! पवमानः तविष्यमाण इन्द्रस्य जठरेषु उर्मिणा आविश— हे सोम ! तू शुद्ध होकर, छाना जाकर, गोदुग्ध आदिसे मिश्रित होनेसे बढकर इन्द्रके पेटमें जाकर निवास कर ।
सोमरस प्रथम छानकर शुद्ध किया जाता है और पश्चात् गोदुग्ध आदिको मिलानेके पश्चात् पिया जाता है ।

२ विद्युत अभ्रा इव प्र पिन्व— बिजली अभ्रोंसे वृष्टि कराती है उस प्रकार सोमसे रस निकालो ।

३ धिया न शश्वत् वाजान् उपमासि— कर्मसे बहुत अन्न उत्पन्न किये जाते हैं । उस प्रकार तू बहुत अन्न उत्पन्न कर । बुद्धि और कर्मसे अन्न बहुत प्रकारके उत्पन्न किये जा सकते हैं । वैसे अन्न उत्पन्न करने चाहिये ।

[६८५] (विश्वस्य राजा) संपूर्ण विश्वका राजा यह सोम है । (स्वर्दृशः ऋतस्य) सबके निरीक्षक इन्द्रके (धीतिं) कर्मको (ऋषिषाट्) ऋषियोंके द्वारा स्तुतिको प्राप्त हुआ सोम (अवीवशत्) प्रशंसित करता है । (यः) जो सोम (सूर्यस्य) सूर्यके (असिरेण) किरणोंसे (मृज्यते) शुद्ध किया जाता है । (मतीनां पिता) यह सोम स्तुतियोंका रक्षक है । यह (असमष्टकाव्यः) उत्तम पूर्ण रीतिसे वर्णनीय है ॥ ४ ॥

१ विश्वस्य राजा— यह सोम विश्वका राजा अर्थात् मुख्य है ।

२ स्वर्दृशः ऋतस्य धीतिं ऋषिषाट् अवीवशत् - सब विश्वके निरीक्षक इन्द्र देवके कर्मकी ऋषियों द्वारा प्रशंसित हुआ यह सोम प्रशंसा करता है । इन्द्रके गुणोंका वर्णन करता है ।

३ यः सूर्यस्य असिरेण मृज्यते— यह सोम सूर्यके किरणोंमें रखकर शुद्ध किया जाता है ।

४ मतीनां पिता— यह सोम बुद्धिद्वारा की हुई स्तुतिका सच्चा संरक्षक है । बुद्धियोंका संरक्षण करता है ।

५ असमष्टकाव्यः— यह सोम उत्तम प्रकार वर्णन करने योग्य है । सब प्रकारसे प्रशंसनीय है ।

६८६ वृषेव यूथा परि कोशमर्ष—न्यपामुपस्थे वृषभः कनिक्रदत् ।
स इन्द्राय पवसे मत्सरिन्तमो यथा जेषाम समिथे त्वोतयः ॥ ५ ॥

[७७]

(ऋषिः- कविर्भार्गवः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती ।)

६८७ एष प्र कोशे मधुमाँ अचिक्रदु—दिन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टरः ।
अभीमृतस्य सुदुघा घृतश्चुतो वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः ॥ १ ॥

६८८ स पूर्व्यः पवते यं दिवस्परि श्येनो मथायदिषितस्तिरो रजः ।

अर्थ— [६८६] (वृषा यूथा इव) जैसा बैल बैलोंके समूहमें जाता है वैसा तू सोम (कोशं परि अर्षसि) पात्रमें जाता है । (अपां उपस्थे) जलोंके पास अन्तरिक्षमें (कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ जैसा मेघ जाता है वैसा यह सोम यज्ञपात्रोंमें शब्द करता हुआ जाता है । (सः) वह सोम तू (इन्द्राय पवसे) इन्द्रको देनेके लिये शुद्ध होता है । तू (मत्सरिन्तमः) अति आनंद देनेवाला है । तू हमें सहाय कर जिससे (त्वा ऊतयः) तेरे द्वारा सुरक्षित हुए हम (समिथे) युद्धमें (जोषाम) विजयी होंगे ॥ ५ ॥

१ वृषा यूथा इव— बैल बैलोंके समूहमें जाता है वैसा सोम (कोशं अर्षति) पात्रमें जाता है ।
२ अपां उपस्थे कनिक्रदत्— जलमें शब्द करता हुआ सोमरस मिश्रित होता है ।
३ स इन्द्राय पवसे— वह सोम तू इन्द्रको देनेके लिये छाना जाता है ।
४ मत्सरिन्तमः— सोम अत्यन्त आनंद देता है ।
५ त्वा ऊतयः समिथे जोषाम— तेरेसे सुरक्षित हुए हम युद्धमें विजय प्राप्त करेंगे ।

[७७]

[६८७] (एषः) यह सोम (मधुमान्) मधुर स्वादयुक्त (कोशं) द्रोण पात्रमें (प्र अचिक्रदत्) शब्द करता हुआ जाता है । (इन्द्रस्य वज्रः) यह सोम इन्द्रके वज्रके समान (वपुषः वपुष्टरः) शरीरसे बलवान है । (ईं) इस (ऋतस्य) यज्ञके उपयोगी सोमरसकी धाराएं (अभि अर्षन्ति) चलती हैं । (घृतश्चुतः) घी देनेवाली (वाश्राः धेनवः इव) शब्द करती हुई आनेवाली गौवोंके समान यह सोम पात्रमें आता है ॥ १ ॥

१ एषः मधुमान् कोशं प्र अचिक्रदत्— यह मीठा सोमरस पात्रमें शब्द करता हुआ जाता है ।
२ इन्द्रस्य वज्रः वपुषः वपुष्टरः— इन्द्रके वज्रके समान यह सोम शरीरका बल बढानेवाला है ।
३ ईं ऋतस्य अभि अर्षन्ति— इस यज्ञीय सोमरसकी धाराएं चलती हैं ।
४ घृतश्चुतः वाश्राः धेनवः इव— घी देनेवाली शब्द करती हुई आनेवाली जैसी गौवें होती हैं, वैसे ये सोमरसकी धाराएं आती हैं ।

[६८८] (सः) वह सोम (पूर्व्यः) पूर्व कालसे (पवते) छाना जाकर शुद्ध होता है । (यं) जिस सोमके (दिवः) द्युलोकसे (श्येनः इषितः) प्रेरित किया हुआ श्येन पक्षी (परिमथायत्) विघ्नोंको दूर करके (तिरः) संकटोंका तिरस्कार करके (रजः) रजो लोकसे (सः) वह सोम (मध्वः आ युवते) मधुरताके साथ मिलता है । (वेविजानः इत्) वह नीचे आता हुआ (कृशानोः अस्तु) सोमके पालकका होता है । (बिभ्युषा मनसा इव) भयभीत हुए मनसे जैसा कोई कार्य करता है वैसा यह सोम यज्ञमें रहता है ॥ २ ॥

१ सः पूर्व्यः पवते — वह सोम पहिलेसे शुद्ध होता है ।
२ दिवः श्येनः इषितः परिमथायत्— द्युलोकसे श्येन पक्षीने प्रेरित होकर लाया है ।
३ रजः तिरः सः मध्वः आ युवते-- रजो लोकसे आया वह सोम मधुरतासे युक्त होता है ।
४ बिभ्युषा मनसा इव-- भयभीत मनसे जैसा कोई मनुष्य कार्य करता है वैसा यह सोम यज्ञके कार्य करता है ।

स मन्द्र आ युवते वेविजान इत् कृशानोरस्तुर्मनसाह बिभ्युषा ॥ २ ॥
६८९ ते नः पूर्वास उपरास इन्दवो महे वाजाय धन्वन्तु गोमते ।
ईक्षेण्यासो अह्यो३ न चारवो ब्रह्मब्रह्म ये जुजुषुर्हविर्हविः ॥ ३ ॥
६९० अयं नो विद्वान् वनवद्वनुष्यत इन्दुः सत्राचा मनसा पुरुष्टुतः ।
इनस्य यः सदने गर्भमादधे गवामुरुब्जमभ्यर्षति व्रजम् ॥ ४ ॥
६९१ चक्रिर्दिवः पवते कृत्व्यो रसो महाँ अदब्धो वरुणो हुरुग्यते ।
असावि मित्रो वृजनेषु यज्ञियोऽत्यो न यूथे वृषयुः कनिक्रदत् ॥ ५ ॥

अर्थ— [६८९] (ते) वे (पूर्वासः) पूर्व समयके (उपरासः) तथा नंतरके समयके (इन्दवः) सोमरस (महे गोमते) महान गौवोंके दूध आदिसे युक्त (नः वाजाय) हमारे अन्नके लिये हमें (धन्वन्तु) प्राप्त हों। वे सोमरस (ईक्षेणमासः) दर्शनीय (अह्यः न) स्त्रियोंके समान (चारवः) रमणीय (ये) जो सोमरस (ब्रह्म ब्रह्म) सर्व स्तुतियां तथा (हविः हविः) सब हवि (जुजुषुः) सेवन करते हैं ॥ ३ ॥

१ ते पूर्वासः उपरासः इन्दवः महे गोमते वाजाय नः धन्वन्तु— वे पूर्व कालके तथा नवीन सोमरस बडे गोदुग्धादिसे युक्त अन्नके रूपसे हमको प्राप्त हों।

२ ईक्षेण्यासः अह्यः न चारवः ये ब्रह्म ब्रह्म हविः हविः जुजुषुः— प्रेक्षणीय स्त्रियोंके समान वे सोमरस उत्तम स्तुतियां तथा हविरूप अन्न होकर प्रशंसाको प्राप्त होते हैं।

३ ब्रह्म ब्रह्म— अनेक प्रकारकी स्तुतियां सोमरसकी होती हैं।

४ हविः हविः — अनेक प्रकारकी हविरूप सामग्री सोमकी होती है। सोमके स्वाहाकारसे उत्तम रीतिसे नीरोगता होती है। वायुमंडलकी उत्तम शुद्धता होती है।

[६९०] (अयं इन्दुः) यह सोम (नः वनुष्यतः) हमारा नाश करनेवाले शत्रुओंको (विद्वान्) जानता है, उन शत्रुओंका (वनवत्) उनका वह नाश करे। (सत्राचा मनसा पुरुष्टुतः) एकत्रित हुए मनोंसे उत्तम स्तुति की जाती है। (यः) जो सोम (इनस्य) अग्निके (सदने) यज्ञगृहमें (गर्भं आदधे) औषधियोंमें गर्भ रूपसे रहता है। जो (गवां) गौवोंके अन्दर तथा (उरुब्जं) जलोंके मध्यमें (वज्रं अभ्यर्षति) उत्पादकके रूपसे रहता है ॥ ४ ॥

१ अयं इन्दुः नः वनुष्यतः विद्वान् वनवत्— यह सोम हमारा नाश करनेकी इच्छा करनेवाले हमारे शत्रुओंको जानता है, अतः वह उन शत्रुओंका नाश करे।

२ सत्राचा मनसा पुरुष्टुतः— अनेक मनुष्य एकत्रित होकर एकाग्रतासे युक्त मनसे इसकी स्तुति अनेक प्रकारोंसे की जाती है।

३ यः इनस्य सदने गर्भं आदधे— जो अग्निके यज्ञस्थानमें मुख्य रूपसे रहता है। औषधियोंके मध्यमें यह रहता है।

४ गवां उरुब्जं वज्रं अभ्यर्षति— गौओंमें तथा जलोंमें यह सोम आनंदका उत्पादक होकर रहता है। गौवें सोमको खाती हैं अतः वह गौवोंके पेटमें रहता है। तथा जलोंमें मिश्रित होकर सोमरस रहता है।

[६९१] (चक्रिः) सबका निर्माणकर्ता (कृत्व्यः) कर्म करनेमें कुशल (रसः) रसरूप यह सोम (महान्) बडा है। वह (अदब्धः) अविनाशी (हुरुक् यते) दुष्टोंको दूर करता है। (असावि) सोमका रस निकालते हैं। (वृजनेषु मित्रः) शत्रुओंका हमारे ऊपर हमला होनेपर यह मित्र होकर रहता है। यह सोम (यज्ञियः) यज्ञमें मुख्य होकर रहता है (यूथे अत्यः न) समूहके चपल घोडेके समान यह मुख्य रहता है। यह (वृषयुः कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ मुख्य स्थानमें रहता है ॥ ५ ॥

[७८]

(ऋषिः- कविर्भार्गवः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती ।)

६९२ प्र राजा वाचं जनयन्नसिष्यद॒दपो वसानो अभि गा इयक्षति ।
गृभ्णाति रिप्रमविरस्य तान्वा शुद्धो देवानामुप याति निष्कृतम् ॥ १ ॥
६९३ इन्द्राय सोम परि षिच्यसे नृभि-र्नृचक्षा ऊर्मिः कविरज्यसे वने ।
पूर्वीर्हि ते स्रुतयः सन्ति यातवे सहस्रमश्वा हरयश्चमूपदः ॥ २ ॥

अर्थ-- १ चक्री कृत्व्यः रसः महान् अदब्धः दुरुग्यते-- सबका निर्माण करनेवाला, कर्म करनेमें कुशल, साररूप महान और न दबनेवाला यह सोम दुष्टोंको दूर करता है। यह किसीसे दबनेवाला नहीं है।

२ वृजनेषु मित्रः-- शत्रुसे हमला होनेपर यह मित्ररूपसे सहायता करता है।

३ यज्ञियः-- यह परम पूजनीय होता है।

४ यूथे अत्यः न-- समूहमें चपल घोडेके समान यह आगे रहता है।

५ वृषयुः कनिक्रदत्-- शब्द करता हुआ यह मुख्य स्थानपर रहता है।

[७८]

[६९२] (राजा) यज्ञका राजा यह सोम (वाचं जनयन्) शब्द करता हुआ (असिष्यदत्) रस प्रदान करता है। (अपः वसानः) जलमें मिश्रित होकर रहनेवाला यह सोम (गाः अभि इयक्षति) स्तुतियां प्राप्त करता है। (अस्य रिप्रं) इस सोमका आवरण (अविः) बकरीके बालोंसे बनायी छानती (तान्वा गृभ्णाति) अपने शरीरसे स्वीकारता है। (शुद्धः) शुद्ध होकर (देवानां निष्कृतं) देवोंके स्थानमें (उपयाति) जाता है ॥ १ ॥

१ राजा वाचं जनयन् असिष्यदत्-- यज्ञका राजा यह सोम शब्द करता हुआ अपने स्थानमें यज्ञमें बैठा रहता है।

२ अपः वसानः गाः अभि इयक्षति-- जलमें मिश्रित होकर गौवोंके दूधसे मिश्रित होता है, अथवा स्तुतियां सुनता रहता है।

३ अस्य रिप्रं अविः तान्वा गृभ्णाति-- इसका आवरण भेडीके बालोंका होता है, उस आवरणको अपने शरीरसे धारण करता है। भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे सोमरस छाना जाता है।

४ शुद्धः देवानां निष्कृतं उपयाति-- शुद्ध होकर अर्थात् छाना जाकर यह सोमरस देवोंके पास जाता है। देव इसका स्वीकार करते हैं।

[६९३] हे (सोम) सोम ! तू (इन्द्राय) इन्द्रके लिये (नृभिः) यज्ञकर्ता याजकोंने (परि षिच्यसे) रस निकाला जाता है। (नृचक्षा) याजकोंके द्वारा निरीक्षण किया (ऊर्मिः कविः) प्रेरित हुआ ज्ञानी सोम (वने अज्यसे) जलमें मिलाया जाता है। (पूर्वीः ते स्रुतयः) पूर्व कालसे तेरे अनेक मार्ग (यातवे सन्ति) यज्ञमें जानेके लिये हुए हैं। (सहस्रं हरयः अश्वाः) हजारों हरे रंगके घोडोंके समान (चमूषदः) रस निकालनेके समय यज्ञस्थानमें बैठनेवाले होते हैं ॥ २ ॥

१ हे सोम ! नृभिः इन्द्राय परि षिच्यसे -- हे सोम ! याजकोंके द्वारा इन्द्रको देनेके लिये तेरा रस निकाला जाता है।

२ नृचक्षा ऊर्मिः कविः वने अज्यसे-- याजकोंके द्वारा उत्तम रीतिसे जिसका निरीक्षण होता है ऐसा सोमरस जलमें मिलाया जाता है।

३ पूर्वीः ते स्रुतयः यातव सन्ति-- प्राचीन कालसे तेरे यज्ञमें जानेके अनेक मार्ग प्रसिद्ध हुए हैं।

४ सहस्र हरयः अश्वाः चमूपदः-- युद्धमें जानेवाले सहस्रों घोडोंके समान यज्ञस्थानमें जाकर बैठनेवाले सहस्रों मनुष्य होते हैं। यज्ञमें अनेक मनुष्य जांय और यज्ञको देखें।

६९४ समुद्रियां अप्सरसो मनीषिण—मासीना अन्तरभि सोममक्षरन् ।
ता ईं हिन्वन्ति हर्म्यस्य सक्षणिं याचन्ते सुम्नं पवमानमक्षितम् ॥ ३ ॥
६९५ गोजिन्नः सोमो रथजिद्धिरण्यजित् स्वर्जिदब्जित् पवते सहस्रजित् ।
यं देवासश्चक्रिरे पीतये मदं स्वादिष्ठं द्रप्समरुणं मयोभुवम् ॥ ४ ॥
६९६ एतानि सोम पवमानो अस्मयुः सत्यानि कृण्वन् द्रविणान्यर्षसि ।
जहि शत्रुमन्तिके दूरके च य उर्वीं गव्यूतिमभयं च नस्कृधि ॥ ५ ॥

अर्थ-- [६९४] (समुद्रियाः) अन्तरिक्ष स्थानीय (अप्सरसः) जल (अन्तः) अन्दर (आसीनाः) रहनेवाले (मनीषिणं सोमं) बुद्धिवर्धक सोमके समीप (अभि अक्षरन्) पहुंचते हैं। (ताः) वे जल (ईं) इस सोमको (हर्म्यस्य सक्षणिं) यज्ञगृहके समीप (हिन्वन्ति) प्रेरित करते हैं। और (अक्षितं पवमानं) अविनाशी सोमको (सुम्नं याचन्ते) सुख मांगते हैं ॥ २ ॥

१ समुद्रिया अप्सरसः अन्तः आसीनाः मनीषिणं सोमं अभि अक्षरन्— अन्तरिक्षमें रहे जलोंके अन्दर बुद्धिकी शक्ति बढानेवाले सोम जाते हैं। जलमें सोमरस मिलाया जाता है।

२ ताः ईं हर्म्यस्य सक्षणिं हिन्वन्ति— वे जल इस सोमको यज्ञमें जानेकी प्रेरणा करते हैं। यज्ञस्थानमें सोमरसमें जल मिलाया जाता है।

३ अक्षितं पवमानं सुम्नं याचन्ते— अविनाशी सोमके पास सुख प्राप्त होनेकी मांग याजक करते हैं। सोम सुख और आनंद देता है तथा सुख बढाता है। सोमरस पीनेसे आनंद बढता है।

[६९५] (नः) हमारे लिये (गोजित्) गौंको जितनेवाला (रथजित्) रथोंको जीतनेवाला (हिरण्यजित्) सुवर्णको जितनेवाला (अब्जित्) जलोंको जितनेवाला (सहस्रजित्) सहस्रों प्रकारके धनोंको जितनेवाला (सोमः पवते) सोमरस निकालनेके लिये शुद्ध किया जाता है। (यं) जिस सोमको (देवासः) सब देवोंने (पीतये) पीनेके लिये (मदं) आनंद बढानेवाला (स्वादिष्ठं) मधुर (द्रप्सं) रसरूपी (अरुणं) अरुण रंगवाला (मयोभुवं) सुख बढानेवाला (चक्रिरे) बनाया है ॥ ४ ॥

(नः) हमारे लिये (सोमः पवते) सोमका रस निकाला जाता है, वह सोम ऐसा होता है।

१ गोजित्— गोदुग्धमें मिलाया जाता है।

२ रथजित्— रथमें बैठनेवाले वीर शत्रुओंको जानते हैं।

३ अब्जित्— जलोंको जीतकर अपने आधीन करके रखते हैं।

४ सहस्रजित्— सहस्रों प्रकारके धनोंको जीतते हैं।

५ देवासः यं पीतये मदं स्वादिष्ठं द्रप्सं अरुणं मयोभुवं चक्रिरे— देवोंने इस सोमको अपने पीनेके लिये आनंददायक, स्वादिष्ट, रसरूप भूरे रंगका सुखदायी ऐसा बनाया।

[६९६] हे (सोम) सोम! (एतानि द्रविणानि) ये धन (सत्यानि कृण्वन्) सत्य रीतिसे सहायक करनेवाला तू (पवमानः अर्षसि) शुद्ध होकर आगे जाता है। (जहि शत्रुं) पराजित करो शत्रुको (यः दूरके अन्तिके च) जो शत्रु दूर है तथा जो पास है, उन सब शत्रुओंको दूर करो। तथा (उर्वीं गव्यूतिं) बडा विस्तीर्ण मार्ग (च) तथा (अभयं) निर्भयता (नः कृधि) हमारे लिये करो ॥ ५ ॥

[७९]

(ऋषिः- कविर्भार्गवः। देवताः- पवमानः सोमः। छन्दः- जगती।)

६९७ अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दवः प्र सुवानासो बृहद्दिवेषु हरयः।
वि च नशन् न इषो अरातयो ऽर्यो नशन्त सनिषन्त नो धियः ॥ १ ॥
६९८ प्र णो धन्वन्त्विन्दवो मदच्युतो धना वा येभिरर्वतो जुनीमसि।
तिरो मर्तस्य कस्य चित् परिह्वृतिं वयं धनानि विश्वधा भरेमहि ॥ २ ॥

अर्थ-- १ एतानि द्रविणानि सत्यानि कृण्वन्— वे सब धन हमारे लिये सत्य धन करो। वे सब हमें प्राप्त हों ऐसा करो।

२ यः दूरके यः अन्तिके च, शत्रुं जहि— जो शत्रु दूर होगा अथवा जो शत्रु पास होगा, उन सब शत्रुओंको पराजित करो।

३ ऊर्वीं गव्यूतिं नः कृधि— विस्तीर्ण मार्ग हमारी उन्नतिके लिये कर। हम उस मार्गसे जांय और उन्नति प्राप्त करें।

४ नः अभयं कृधि— हमारे लिये निर्भयता सर्वत्र प्राप्त होती रहे ऐसा कर।

[७९]

[६९७] (अचोदसः) बिना दूसरेकी प्रेरणासे स्वयं प्रेरित हुए (इन्दवः) सोम (नः धन्वन्तु) हमें प्रेरित करें। (बृहद्दिवेषु) अति तेजस्वी यज्ञोंमें (हरयः प्र सुवानासः) हरे रंगके सोम अपना रस देते हैं। (नः इषः अरातयः) हमारे अन्नके जो शत्रु है वे शत्रु (वि नशन्त च) विशेष रीतिसे नष्ट हो जांय। तथा (अर्यः) सब शत्रु (नशन्त) विनष्ट हो जांय और (नः धियः) हमारे बुद्धिपूर्वक किये कर्मोंको (सनिषन्त) सफलता प्राप्त होती रहे ॥ १ ॥

१ अचोदसः इन्दवः न धन्वन्तु— स्वयं प्रेरित हुए सोम हमें सत्कर्म करनेकी प्रेरणा देते रहें।

२ बृहद्दिवेषु हरयः प्रसुवानासः— यज्ञोंमें हरे रंगके सोम रस देते रहें।

३ नः इषः अरातयः च विनशन्त— हमारे अन्नके शत्रु विशेष रीतिसे नष्ट हो जांय। अन्नका नाश करनेवाले शत्रु नष्ट हो जांय।

४ अर्यः विनशन्त— हमारे शत्रु नष्ट हो जांय।

५ नः धियः सनिषन्त— हमारी बुद्धियोंसे किये कर्मोंको सफलता प्राप्त हो जांय। हमारे कर्म यशस्वी हो जांय।

[६९८] (नः इन्द्रवः) हमारे सोमरस (मदच्युतः) आनंद बढाते हुए (धना प्र धन्वन्तु) धनोंको हमारे पास प्रेरित करें। (येभिः) इन सोमोंसे (अर्वतः जुनीमसि) बलवान शत्रुके साथ हम मुकाबला कर सकें। (कस्य चित् मर्तस्य) किसी शत्रुकी (परिह्वृतिं) बाधा करनेकी प्रवृत्तिको (तिरः) दूर करके (वयं) हम (धनानि) धनोंको (विश्वधा भरेमहि) सब प्रकारोंसे भरपूर प्राप्त करेंगे ॥ २ ॥

१ इन्दवः मदच्युतः धना प्र धन्वन्तु— सोमरस आनंद बढाते हुए धनोंको हमारे पास प्रेरित करें।

२ येभिः अर्वतः जुनीमसि— जिन सोमरसोंसे शक्ति प्राप्त करके शत्रुसे मुकाबला कर सकेंगे।

३ कस्यचित् मर्तस्य परिह्वृतिं तिरः— किसी भी दुष्ट शत्रुकी हमारे लिये दुःख देनेकी प्रवृत्तिको हम दूर करेंगे। ऐसे समर्थ वीर हम बनेंगे।

४ वयं धनानि विश्वधा भरेमहि— हम धनोंको अनेक प्रकारके प्रयत्नोंसे भरपूर भर देंगे। धनोंको अनेक सदुपायोंसे प्राप्त करेंगे।

६९९ उत स्वस्या अरात्या अरिर्हि ष उतान्यस्या अरात्या वृको हि षः ।
धन्वन् न तृष्णा समरीत ताँ अभि सोम जहि पवमान दुराध्यः ॥ ३ ॥
७०० दिवि ते नाभा परमो य आददे पृथिव्यास्ते रुरुहुः सानवि क्षिपः ।
अद्रयस्त्वा बप्सति गोरधि त्वच्यप्सु त्वा हस्तैर्दुदुहुर्मनीषिणः ॥ ४ ॥
७०१ एवा त इन्दो सुभ्वं सुपेशसं रसं तुञ्जन्ति प्रथमा अभिश्रियः ।
निदंनिदं पवमान नि तारिष आविस्ते शुष्मो भवतु प्रियो मदः ॥ ५ ॥

अर्थ-- [६९९] (उत) और (सः) वह सोम (स्वस्याः अरात्याः) अपने शत्रुको (अरिः) नाश करनेवाला है तथा (सः) वह सोम (अन्यस्याः अरात्याः) दूसरे शत्रुका भी (वृकः हि) नाश करनेवाला है। (धन्वन् तृष्णा न) मरु देशमें रहनेवालेकी इच्छा (समरीत) जैसी होती है (तां अभि) उसके अनुकूल कार्य करो। (सोमं) सोम (पवमान) रस ! (दुराध्यः अभि जहि) दुष्ट शत्रुका विनाश करो ॥ ३ ॥

१ उतः सः स्वस्याः अरात्याः अरिः-- वह सोम अपने शत्रुका विनाश करनेवाला है।

२ सः अन्यस्याः अरात्याः वृकः हि— वह दूसरे शत्रुका भी विनाश करनेवाला है।

३ धन्वन् तृष्णो न समरीत तां अभि— मरु देशमें, जलहीन देशमें रहनेवालेकी इच्छा होती है वैसी इच्छा धारण करो। मरु देशमें सबको जल प्राप्त करनेकी इच्छा होती है, वैसी जीवन प्राप्त करनेकी इच्छा करो।

४ दुराध्यः अभि जहि— दुष्ट शत्रुओंका नाश करो।

[७००] हे सोम ! (ते) तेरा (परमः) उत्तम अंश (दिवि) द्युलोकमें (नाभा) मुख्य स्थानमें रहता है। (यः आददे) जो हविष्यान्नका स्वीकार करता है। (पृथिव्याः सानवि) पृथिवीपरके ऊंचे स्थानमें (क्षिपाः रुरुहुः) रहकर वे बढते हैं। (अद्रयः त्वा बप्सन्ति) पत्थर तुझे कूटते हैं। (गोः अधि त्वचि) गौके चर्मपर तुझे रखते हैं। (त्वा हस्तैः अप्सुः) तुझे जलोंमें हाथोंसे (मनीषिणः दुदुहुः) विद्वान् मिलाकर तेरा रस निकालते हैं ॥ ४ ॥

१ ते परमा दिवि नाभा— हे सोम ! तेरा मुख्य भाग द्युलोकके मुख्य उच्च स्थानमें उगता है। पर्वतके शिखरपर सोम उगता है। वह स्थान द्युलोकका होता है। हिमालयके ऊंचे शिखरपर सोम होता है। वह द्युलोक ही है।

२ पृथिव्याः सानवि क्षिपाः रुरुहुः— पृथिवीके ऊंच भागमें ये सोमवल्लियां उगती और बढती हैं।

३ अद्रयः त्वा बप्सन्ति— पत्थर सोमको कूटते हैं और उससे रस निकालते हैं।

४ गोः त्वचि अधि त्वा हस्तैः अप्सु दुदुहुः-- गौके चर्मपर सोमको रखकर हाथोंसे जलोंमें मिलाकर तुम्हारा रस यज्ञकर्ता निकालते हैं।

[७०१] हे (इन्दो) सोम ! (एव) इस प्रकार (ते सुभ्वं सुपेशसं) तरा उत्तम यज्ञभवनमें उत्तम रूप-संपन्न (रसं) रस (प्रथमाः) मुख्य अध्वर्यु (अभिश्रियः) मिलकर (तुञ्जन्ति) निकालते हैं। हे (पवमान) सोम ! (निदं निदं) हमारे निंदकको अर्थात् हमारे शत्रुको (नितारिषः) विनष्ट कर। (ते शुष्मः) तेरा बल बढानेवाला (प्रियः मदः) आनंद बढानेवाला रस (आविः) बाहर (भवतु) आ जांय ॥ ५ ॥

[८०]

(ऋषिः- वसुर्भारद्वाजः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती ।)

७०२ सोम॑स्य॒ धारा॑ पवते नृ॒चक्ष॑स ऋ॒तेन॑ दे॒वान् ह॑वते दि॒वस्परि॑ ।
बृह॒स्पते॑ र॒वथे॑ना॒ वि दि॑द्युते समु॒द्रासो॒ न सव॑नानि विव्यचुः ॥ १ ॥

७०३ यं त्वा॑ वाजिन्न॒घ्न्या अ॒भ्यनू॑षता॒ऽयो॑हतं॒ योनि॒मा रो॑हसि द्यु॒मान् ।
म॒घोना॒मायु॑ः प्रति॒रन् महि॒ श्रव॒ इन्द्रा॑य सोम पवसे॒ वृषा॒ मदः॑ ॥ २ ॥

---

१ हे इन्दो ! पव ते सुभ्वं सुपेशसं रसं प्रथमाः अभिश्रियः तुञ्जन्ति— हे सोम ! तेरा उत्तम सुंदर रस मुख्य अध्वर्यु मिलकर निकालते हैं ।
२ निदं निदं नि तारिष— हमारे सब शत्रुओंका नाश कर ।
३ ते शुष्मः प्रियः मदः आविः भवतु— तेरा बल बढानेवाला आनंद बढानेवाला रस बाहर आ जाय । सोमका रस पीनेवालेका बल बढाता है इस कारण वीर लोग इस सोमरसको पीते हैं और युद्धमें पराक्रम करते हैं ।

[८०]

[७०२] (सोमस्य धारा पवते) सोमरसकी धाराएं शुद्ध हो रही हैं । (नृचक्षसः) यज्ञकर्ताओंको देखनेवाला सोम (ऋतेन देवान्) यज्ञके द्वारा देवोंको (हवते) हवन करता है (दिवस्परि) द्युलोकके ऊपर पहुंचनेके लिये (बृहस्पतेः) बृहस्पतिके (रवथेन) शब्दोंके द्वारा (वि दिद्युते) प्रकाशित होता है । (समुद्रासः न) समुद्रोंके समान पृथिवीको (सवनानि विव्यचुः) यज्ञके स्तोत्र व्यापते हैं ॥ १ ॥

१ सोमस्य धारा पवते— सोमरसकी धारा शुद्ध हो रही है ।
२ नृचक्षसः ऋतेन देवान् हवते— मनुष्योंका- यज्ञकर्ताओंका निरीक्षण करनेवाला सोम यज्ञके द्वारा देवोंके पास हवनीय पदार्थ पहुंचाता है ।
३ दिवस्परि बृहस्पतेः रवथेन विदिद्युते — द्युलोकके ऊपर बृहस्पतिके शब्दोंके द्वारा सोमका प्रकाश जाता है ।
४ समुद्रासः न सवनानि विव्यचुः— पृथिवीपर जैसे समुद्र व्याप रहे हैं, वैसे सोमके रस यज्ञमें व्याप रहे हैं ।

[७०३] हे (वाजिन्) अन्न युक्त सोम ! (यं त्वा) जिस तेरी (अघ्न्याः) गौवे (अभ्यनूषते) स्तुति करती हैं वह तू (अयोहतं) सुवर्णका आभूषण धारण करनेवाले हाथसे सुसंस्कार युक्त किया हुआ (योनिं आरोहसि) यज्ञके स्थान पर बैठता है और वहां (द्युमान्) तेजस्वी होता है । हे (सोम) सोम ! (मघोनां) हवन करनेवालोंकी (आयुः) आयुष्य तथा (महिश्रवः) बहुत अन्न (प्रतिरत्) बढाता है और (इन्द्राय) इन्द्रके लिये (वृषा मदः पवसे) बल और आनंद बढानेवाला होता है ॥ २ ॥

१ त्वा अघ्न्याः अभ्यनूषत— हे सोम ! गौवें तेरी प्रशंसा करती हैं ।
२ अयोहतं योनिं आरोहसि— सुवर्णका आभूषण धारण करनेवाले याजकोंके यज्ञस्थानमें तू रहता है । जहां यज्ञ होता है वहां सोम रहता है । (द्युमान्) सोम तेजस्वी दीखता है ।
३ मघोनां आयुः महिश्रवः प्रतिरत्— यज्ञ कर्ताओंकी आयु तथा अन्न आदि ऐश्वर्य सोम बढाता है ।
४ इन्द्राय वृषा मदः पवसे— इन्द्रका बल तथा आनंद सोम बढाता है । सोमरस पीनेसे बल तथा आनंदमय उत्साह बढता है ।

७०४ ऐन्द्र॑स्य कु॒क्षा प॑वते म॒दिन्त॑म॒ ऊर्जं॒ वसा॑नः॒ श्रव॑से सुम॒ङ्गलः॑ ।
प्र॒त्यङ् स विश्वा॒ भुव॑ना॒भि प॑प्रथे॒ क्रीळ॒न् हरि॒रत्यः॑ स्यन्दते॒ वृषा॑ ॥ ३ ॥
७०५ तं त्वा॑ दे॒वेभ्यो॒ मधु॑मत्तमं॒ नरः॑ स॒हस्र॑धारं दुहते॒ दश॒ क्षिपः॑ ।
नृभिः॑ सोम॒ प्रच्यु॑तो॒ ग्राव॑भिः सु॒तो विश्वा॑न् दे॒वाँ आ प॑वस्वा सहस्रजित् ॥ ४ ॥
७०६ तं त्वा॑ ह॒स्तिनो॒ मधु॑मन्त॒मद्रि॑भि॒र्दुह॒न्त्यप्सु वृ॑ष॒भं दश॒ क्षिपः॑ ।
इन्द्रं॑ सोम॒ मा॒दय॒न् दैव्यं॒ जनं॒ सिन्धो॑रि॒वोर्मिः॒ पव॑मानो अर्षसि ॥ ५ ॥

अर्थ— [७०४] यह सोम (इन्द्रस्य कुक्षा) इन्द्रकी कुक्षीमें जानेके लिये (आ पवते) रस निकाला जाता है। (श्रवसे) अन्नके लिये यह सोमरस निकालते हैं। यह सोम (मदिन्तमः) आनंद देनेवाला (ऊर्जं वसानः) बल बढाता है। (सुमंगलः) उत्तम कल्याण करनेवाला है। (सः) वह सोमरस (प्रत्यङ्) प्रत्यक्ष रीतिसे (विश्वा भुवनानि) सब भुवनोंको (अभि पप्रथे) प्रकाशित करता है। यह (क्रीळन्) यज्ञ स्थानमें खेलकर (हरिः) हरे रंगका सोम (अत्यः) चपल घोडेके समान (वृषा स्यन्दते) बल बढाकर रसरूपसे प्रकट होता है ॥ ३ ॥

१ इन्द्रस्य कुक्षा आ पवते-- इन्द्रके पेटमें जानेके लिये यह सोमका रस निकाला जाता है।

२ श्रवसे-- अन्नके लिये यह सोमरस उपयोगी होता है।

३ मदिन्तमः ऊर्जं वसानः सुमंगलः-- यह सोमरस आनंद बढानेवाला, बल बढानेवाला तथा उत्तम कल्याण करनेवाला है।

४ सः प्रत्यङ् विश्वा भुवनानि अभि पप्रथे-- यह सोमरस सब यज्ञस्थानोंमें विशेषतः पहुंच कर रहता है।

५ क्रीडन् हरिः अत्यः वृषा स्यन्दते-- खेलोंमें प्रवीण, हरे रंगका यह सोम चपल घोडेके समान बलवान होकर खेलता रहता है।

[७०५] (तं त्वा) उस तुझे (देवेभ्यः) देवोंको देनेके लिये (मधुमत्तमं) अत्यन्त मधुर (सहस्र-धारं) हजारों धाराओंसे (नरः) याजक लोगोंकी (दश क्षिपः) दस अंगुलियां (दुहते) रस निकालती हैं। हे (सोम) सोम ! (नृभिः) याजकोंके द्वारा (ग्रावभिः सुतः) पत्थरोंसे कूटकर निकाला (सहस्रजित्) सहस्रों प्रकारोंसे विजय प्राप्त करनेवाला (विश्वान् देवान्) सब देवोंको देनेके लिये (आ पवस्व) रस निकाल दो ॥ ४ ॥

१ देवेभ्यः तं त्वा मधुमत्तमं सहस्रधारं नरः दश क्षिपः दुहते-- देवोंको पीनेके लिये देनेकी इच्छासे तेरा अति मधुर हजारों धाराओंसे निकलनेवाला रस याजकोंकी दस अंगुलियां निकालती हैं।

२ हे सोम ! नृभिः ग्रावभिः सुतः सहस्रजित् विश्वान् देवान् आ पवस्व— हे सोम ! याजकोंने पत्थरोंसे कूटकर निकाला सहस्रोंको अनेक प्रकार जीतनेवाला सब देवोंको देनेके लिये निकाला यह रस है।

[७०६] (तं) उस (मधुमन्तं) मधुर (वृषभं) कामना पूर्ण करनेवाले (त्वा) तेरा अर्थात् सोमका (हस्तिनः दश क्षिपः) उत्तम हाथवालेकी दस अंगुलियां (अद्रिभिः अप्सु दुहन्ति) पत्थरोंसे कूटकर जलमें रस दुहती हैं। (इन्द्रं) इन्द्रको तथा (अन्यं दैव्यं जनं) दूसरे दिव्य जनको (मादयन्) आनंद देनेके लिये हे (सोम) सोम (सिन्धोः ऊर्मिः इव) सिन्धुकी लहरीके समान (पवमानः अर्षसि) शुद्ध होकर आगे जाता है ॥ ५ ॥

१ तं मधुमन्तं वृषभं त्वा हस्तिनः दश क्षिपः अद्रिभिः अप्सु दुहन्ति-- उस मधुर बल बढानेवाले तुझ सोमका याजकोंकी दस अंगुलियां जलमें रस निकालकर मिलाती हैं।

२ इन्द्रं अन्यं दैव्यं जनं मादयन् सिन्धोः, ऊर्मिः इव पवमानः अर्षसि-- इन्द्रको तथा अन्य देवोंको आनंदित करनेके लिये सिन्धुकी लहरीके समान यह सोमरस निकाला जाता है।

[८१]

(ऋषिः- वसुर्भारद्वाजः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती, ५ त्रिष्टुप् ।)

७०७ प्र सोमस्य पवमानस्योर्मय इन्द्रस्य यन्ति जठरं सुपेशसः ।
दध्ना यदीमुन्नीता यशसा गवां दानाय शूरमुदमन्दिषुः सुताः ॥ १ ॥

७०८ अच्छा हि सोमः कलशाँ असिष्यद्—दत्यो न वोळ्हा रघुवर्तनिर्वृषा ।
अथा देवानामुभयस्य जन्मनो विद्वाँ अश्नोत्यमुत इतश्च यत् ॥ २ ॥

७०९ आ नः सोम पवमानः किरा व—स्विन्दो भव मघवा राधसो महः ।
शिक्षा वयोधो वसवे सु चेतुना मा नो गयमारे अस्मत् परा सिचः ॥ ३ ॥

---

[८१]

अर्थ--[७०७] (पवमानस्य) शुद्ध किये जानेवाले (सोमस्य) सोमरसकी (सुपेशसः) सुंदर (ऊर्मयः) लहरियां (इन्द्रस्य जठरं प्र यन्ति) इन्द्रके पेटमें जाती हैं । (यत्) जब (ईं सुताः सोमाः) ये रस निकाले सोम (गवां यशसा दध्ना) गौंके दही आदिके साथ (उन्नीताः) मिश्रित किये (दानाय) दान देनेके लिये (शूरं उदमन्दिषुः) शूर इन्द्रको उत्साहित करते है ॥ १ ॥

१ पवमानस्य सोमस्य सुपेशसः ऊर्मयः इन्द्रस्य जठरं प्रयन्ति-- शुद्ध होनेवाले सोमरसकी सुंदर लहरियां इन्द्रके पेटमें जाती हैं । सोमरस इन्द्र पीता है ।

२ यत् ईं सुतासः सोमाः गवां यशसा दध्ना उन्नीताः दानाय शूरं उदमन्दिषुः-- ये सोमरस गौओंके दूध या दहीके साथ मिलाये जानेपर वे शूर इन्द्रके पेटमें जाकर उस इन्द्रको उत्साहित करते हैं। सोमरस पीनेसे वीरोंका उत्साह बढ जाता है और वे अपना वीरताका कार्य अधिक उत्साहसे कर सकते हैं।

[७०८] यह (सोमः) सोमरस (कलशान्) कलशोंमें (अच्छ) ठीक रीतिसे (असिष्यदत्) जाता है, (अत्यः न वोळ्हा) घोडा जैसा गाडी ओढनेमें लगा होता है, जो घोडा (रघुवर्तनिः वृषा) जलद चालनेवाला तथा बलवान होता है । (अथ) जैसा (देवानां) देवोंके (उभयस्य जन्मनः विद्वान्) दोनों जन्मोंको जाननेवाला ज्ञानी होता है । (यत्) वह दो जन्म (अमुतः) द्युलोकसे तथा (इतः) इस भूलोकसे (अश्नोति) व्यापता है ॥ २ ॥

१ सोमः कलशान् अच्छ असिष्यदत्— यह सोमरस कलशोंमें जाकर रहता है ।

२ रघुवर्तनिः वृषा अत्यः वोळ्हा न— जैसे चपल बलवान् घोडा दौडकर चलता है ।

३ अथ देवानां उभयस्य जन्मनः विद्वान्, अमुतः इतः अश्नोति – जैसे देवोंके दोनों प्रकारके जन्मोंको जाननेवाला ज्ञानी द्युलोक और भूलोकमें उनके जन्मका वृत्त जानता है । देव द्युलोकमें तथा भूलोकमें आकर कार्य करते हैं । यह उनका कार्य ठीक प्रकार जानना चाहिये । सूर्य द्युलोकमें है, परंतु उसका प्रकाश भूमीपर आता है । ऐसा देवोंका कार्य दोनों स्थानोंमें होता है । यह जानना चाहिये।

[७०९] हे (सोम) सोम ! (पवमानः) शुद्ध होता हुआ तू (नः) हमारे लिये (वसु) धन (आ किर) दे । हे (इन्दो) सोम ! तू (महः राधसः मघवा भव) बडे धनको देनेवाला हो । हे (वयोधः) अन्नके दाता तू सोम (वसवे) यहां रहनेवाले हमारे जैसों किये (सु चेतुना) उत्तम ज्ञानके साथ (नः गयं) हमारे गृह आदि धनको (अस्मत् परा आरे मा सिचः) हमसे दूर प्रेरित न कर ॥ ३ ॥

७१० आ नः पूषा पवमानः सुरातयो मित्रो गच्छन्तु वरुणः सजोषसः ।
बृहस्पतिर्मरुतो वायुरश्विना त्वष्टा सविता सुयमा सरस्वती ॥ ४ ॥
७११ उभे द्यावापृथिवी विश्वमिन्वे अर्यमा देवो अदितिर्विधाता ।
भगो नृशंस उर्व१न्तरिक्षं विश्वे देवाः पवमानं जुषन्त ॥ ५ ॥

अर्थ— १ हे सोम ! पवमानः नः वसु आ किर — हे सोम ! शुद्ध होकर तू हम सबके लिये पर्याप्त धन दो।

२ हे इन्दो ! महः राधसः मघवा भव— हे सोम ! तू विपुल धनको देनेवाला होवो ।

३ हे वयोधः ! वसवे सुचेतुना नः गयं अस्मत् परा आरे मा सिचः-- हे अन्नके दान करनेवाले सोम ! यहां रहनेवाले हमारे जैसोंके लिये उत्तम ज्ञानके साथ हमारे गृह आदि धनको हमसे दूर न करो । हमारे रहनेके घर तथा सब प्रकारके अन्य धन हमारे पास सुस्थिर रूपसे रहें, कभी विनष्ट न हों ऐसा करो ।

[७१०] (सुरातयः) उत्तम दान देनेवाले पूषा, (पवमानः) सोम, मित्र, वरुण, (सजोषसः) साथ रहनेवाले बृहस्पति, मरुत्, वायु, अश्विनौ, त्वष्टा, सविता तथा (सुयमा) उत्तम रीतिसे नियमोंका पालन करनेवाली सरस्वती ये देवताएं (नः आ गच्छन्तु) हमारे पास आजांय ॥ ४ ॥

१ पूषा— पोषण करनेवाला पूषा देव है । वह हमारा पोषण करे ।

२ पवमानः — सोम देव हमें अपना रस दे और हमारा बल बढावे ।

३ मित्रः— मित्रवत् हमारे साथ आचरण करे ।

४ वरुणः— श्रेष्ठतासे हमें युक्त करे ।

५ बृहस्पति— हमें ज्ञान प्रदान करे, हमारा ज्ञान बढावे ।

६ मरुत्— युद्ध करनेवाले सैनिक हमें सैनिकीय शिक्षा दें और युद्धमें विजय मिले ऐसा करें ।

७ वायुः— प्राणकी शक्ति बढाकर हमें दीर्घायु करे ।

८ अश्विनौ-- ये वैद्य हमें रोगरहित अर्थात् नीरोग करें ।

९ त्वष्टा-- उत्तम कार्य करनेकी शिक्षा हमें दें । हमें उत्तम कारीगर बनावें ।

१० सविता-- (सर्वस्य प्रसविता) यह उत्पादक शक्ति हमें दें ।

११ सुयमा सरस्वती-- यह विद्या देवी हमें विद्या प्रदान करे । हमें ज्ञानी बनावे । यम नियमोंमें रहकर अपनी उन्नति करनेकी शिक्षा हमें दें ।

[७११] (विश्वं इन्वे) सर्वव्यापक (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवी ये (उभे) दोनों (अर्यमा देवः) तथा अर्यमा देव (अदितिः) प्रकृति देवी, विधाता देव, भग (नृशंसः उरु अंतरिक्षं) मनुष्यों द्वारा प्रशंसित यह विस्तृत अंतरिक्ष, (विश्वेदेवाः) सब देव (पवमानं जुषन्त) सोमको सेवन करें ॥ ५ ॥

१ विश्वमिन्वे उभे द्यावापृथिवी— सर्वत्र व्याप्त द्यु और पृथिवी ये दोनों देव ।

२ अर्यमा देवः— श्रेष्ठ तथा कनिष्ठकी परीक्षा करनेवाला देव ।

३ अदिति— मूल प्रकृति ।

४ विधाता — सबको उत्पन्न करनेवाला देव ।

५ भगः— ऐश्वर्यवान देव, भाग्यवान, धनवान देव ।

६ नृशंसः — मनुष्य जिसकी प्रशंसा करते हैं वह देव ।

७ उरु अन्तरिक्ष— विशाल अन्तरिक्ष ।

८ विश्वे देवाः— सब देव ।

९ पवमानं जुषन्त— वे सब देव सोमरसका सेवन करें ।

×

[८२]

(ऋषिः- वसुर्भारद्वाजः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती, ५ त्रिष्टुप् ।)

७१२ असा॑वि॒ सोमो॑ अरु॒षो वृषा॒ हरी॒ राजे॑व द॒स्मो अ॒भि गा अ॑चिक्रदत् ।
पु॒ना॒नो वारं॒ पर्ये॒त्यव्य॒यं श्ये॒नो न योनिं॑ घृ॒तव॑न्तमा॒सद॑म् ॥ १ ॥

७१३ क॒विर्वे॑ध॒स्या पर्ये॑षि॒ माहि॑न॒मत्यो॒ न मृ॒ष्टो अ॒भि वाज॑मर्षसि ।
अ॒प॒सेध॑न् दुरि॒ता सो॑म मृळय घृ॒तं वसा॑नः॒ परि॑ यासि नि॒र्णिज॑म् ॥ २ ॥

७१४ प॒र्जन्यः॑ पि॒ता म॑हि॒षस्य॑ प॒र्णिनो॒ नाभा॑ पृथि॒व्या गि॒रिषु॒ क्षयं॑ दधे ।
स्वसा॑र॒ आपो॑ अ॒भि गा उ॒तास॑र॒न् सं ग्राव॑भिर्नसते वी॒ते अ॑ध्व॒रे ॥ ३ ॥

---

[८२]

अर्थ-- [७१२] (अरुषः) तेजस्वी (वृषा) बलवर्धक (हरिः) हरे रंगका (दस्मः) दर्शनीय (राजा इव) राजाके समान यह सोम (गाः अभि) जलके पास (अचिक्रदत्) शब्द करता हुआ जाता है । यह (सोमः) सोमका (असावि) रस निकाला है । (पुनानः) यह छाना जानेके समय (अव्ययं वारं पर्येति) भेडोंके बालोंकी छाननीमेंसे छाना जाता है । (श्येनः योनिं न) श्येन पक्षी जैसा अपने स्थानमें आ जाता है वैसा यह सोम (घृतवन्तं आसदं) जलयुक्त स्थानमें आता है ॥ १ ॥

[७१३] (कविः) दूरदर्शी तू सोम (वेधस्या) यज्ञ करनेकी इच्छासे (माहिनं पर्येषि) प्रशंसनीय छाननीमेंसे गुजरता है (मृष्टः अत्यः न) जैसा स्नान किया घोडा (वाजं अभि अर्षसि) युद्धमें जाता है । हे (सोम) सोम ! (दुरिता अपसेधन्) हमारे पापोंको दूर कर और (मृळय) हमें सुखी कर । (घृतं वसानः) जलमें मिश्रित होकर (निर्णिजं परि यासि) तू छाननीमेंसे पवित्र होता है ॥ २ ॥

१ कविः वेधस्या माहिनं पर्येषि— दूरदर्शी सोम यज्ञ करनेकी इच्छासे प्रशंसनीय छाननीमेंसे गुजरता है । सोमरस छाना जाता है ।

२ मृष्टः अत्यः न वाजं अभि अर्षसि— जैसा स्नान किया घोडा युद्धमें जाता है वैसा शुद्ध हुआ सोम यज्ञमें जाता है ।

३ हे सोम ! दुरिता अपसेधन् मृळय— हे सोम ! तू हमारे पाप दूर कर और हमें सुखी कर ।

४ घृतं वसानः निर्णिजं परियासि— जलमें मिश्रित होकर तू छाननीमेंसे छाना जाता है ।

[७१४] (महिषस्य) इस महान (पर्णिनः) पानवाले सोमका (पिता पर्जन्यः) पिता पर्जन्य है । यह सोम (पृथिव्या नाभा) पृथिवीके नाभीमें (गिरिषु क्षयं दधे) पर्वतोंमें निवास स्थान करता है । (उत) और (स्वसारः आपः) इस सोमकी बहिने जल धाराएं हैं । (गाः) स्तुतियां (अभि असरन्) चलती है । (वीते अध्वरे) यज्ञके समयमें (ग्रावभिः सं नसते) पत्थरोंके साथ रहता है ॥ ३ ॥

१ महिषस्य पर्णिनः पिता पर्जन्यः— महान पानोंवाले इस सोमका पिता पर्जन्य है । वृष्टिके जलसे पर्वतपर यह उत्पन्न होता है ।

२ पृथिव्या नाभा गिरिषु क्षयं दधे— पृथिवीपर पर्वतोंके शिखर पर यह सोम रहता है । पर्वतोंके शिखर पर यह सोम उगता है ।

३ उत स्वसारः आपः-- इस सोमकी बहिनें जल धाराएं हैं ।

४ गाः अभि असरन्— यज्ञमें सोमकी स्तुतियां होती हैं । यह सोम गोदुग्धके साथ मिलकर रहता है ।

५ वीते अध्वरे ग्रावभिः सं नसते— यज्ञमें यह सोम पत्थरोंके साथ कूटा जाता है और इसका रस निकाला जाता है ।

७१५ जायेव पत्यावधि शेवं मंहसे पज्राया गर्भ शृणुहि ब्रवीमि ते ।
अन्तर्वाणीषु प्र चरा सु जीवसेऽनिन्द्यो वृजने सोम जागृहि ॥ ४ ॥
७१६ यथा पूर्वेभ्यः शतसा अमृध्रः सहस्रसाः पर्यया वाजमिन्दो ।
एवा पवस्व सुविताय नव्यसे तव व्रतमन्वापः सचन्ते ॥ ५ ॥

[८३]

(ऋषिः- पवित्र आङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती ।)

७१७ पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत् समाशत ॥ १ ॥

अर्थ—[७१५] (जाया इव पत्यौ) पत्नी जैसी पतिको (शेव) सुख (अधि मंहसे) देती है, उस प्रकार हे सोम ! तू यजमानको सुख देता है । (पज्राया गर्भ) हे पर्जन्यके पुत्र सोम ! (शृणुहि) सुन । (ते ब्रवीमि) तुझे मैं कहता हूं । वह तूं (वाणीषु अन्तः) स्तुतियोंके अन्दर (सु प्रचर) उत्तम रीतिसे रह और (जीवसे) हमारे जीवनके लिये हे (सोम) सोम ! (अनिन्द्यः) स्तुतिके लिये योग्य होकर (वृजने जागृहि) हमारे शत्रुके विषयमें जागृत रहो ॥ ४ ॥

१ जाया पत्यै इव शेव अधि मंहसे— स्त्री जैसी पतिको सुख देती है उस प्रकार सोम यजमानको सुख देता है ।

२ वाणीषु अन्तः सु प्रचर— स्तुतियोंके अन्दर तूं अपने शुभ गुणोंके साथ रह । स्तोत्रोंसे तेरा यथार्थ ज्ञान होता रहे ।

३ जीवसे जागृहि— हमारे जीवनमें हमें सुख मिले इस विषयमें जाग्रत रहकर यत्न कर ।

४ अनिंद्यः वृजने जागृहि— निंदाके योग्य न होकर हमारे शत्रुका जाग्रत रहकर सूक्ष्म दृष्टीसे निरीक्षण कर । शत्रु हमारे ऊपर आक्रमण न करे ऐसा कर ।

[७१६] हे (इन्दो) सोम ! तू (यथा) जैसा (पूर्वेभ्यः) पूर्व समयके ऋषियोंके लिये (शतसा) सैकडों प्रकारके धन (पर्ययाः) देता रहा तथा (सहस्रसाः) सहस्रों प्रकारके (वाजं) अन्न आदि धन सांप्रतके ज्ञानीयोंको देवो (अमृध्रः) अहिंसित होकर यह कार्य कर । (एव) इस प्रकार (नव्यसे सुविताय) नवीन ज्ञानीके सुखके लिये (पवस्व) रस देता रहो । (तव व्रतं) तेरा व्रत (आपः) ये यज्ञस्थानीय जल (अनुसचन्ते) अनुकूल होकर पूर्ण करते हैं ॥ ५ ॥

१ हे इन्दो ! यथा पूर्वेभ्यः शतसा पर्ययाः, सहस्रसाः वाजं अमृध्रः— हे सोम ! जैसा तूने पूर्वकालके ज्ञानियोंको सैंकडों प्रकारके धन दिये थे, वैसे सांप्रतके ज्ञानियोंको सहस्रों प्रकारके धन दे दो ।

२ अमृध्रः— तूं अहिंसित होकर कार्य करते रहो ।

३ नव्यसे सुविताय पवस्व— नवीन ज्ञानियोंको सुख देनेके लिये रस निकालकर दे दो ।

४ तव व्रतं आपः अनुसचन्ते— तेरे व्रतको ये यज्ञस्थानके जल अनुकूल होकर पूर्ण कर देंगे ।

[८३]

[७१७] हे (ब्रह्मणस्पते) ज्ञानके स्वामिन् ! (ते पवित्रं विततं) तेरा पवित्रता करनेका कार्य फैला है । (प्रभुः) तूं सबका प्रभु हो, तुम्हारे (गात्राणि) अंग (विश्वतः पर्येषि) सर्वत्र फैले हैं । (अतप्ततनूः) जिसका शरीर कार्य करनेसे तप्त नहीं हुआ है, वह (आमः तत् अश्नुते) अपरिपक्व मनुष्य उस सुखको प्राप्त नहीं कर सकता । (शृतासः इत्) वे परिपक्व हुए मनुष्य ही (तत् समाशत) उस आनंदको प्राप्त कर सकते हैं ॥ १ ॥

७१८ तपो॑ष्पवित्रं वित॑तं दि॒वस्प॒दे शोच॑न्तो अस्य॒ तन्त॑वो॒ व्य॑स्थिरन् ।
अव॑न्त्यस्य पवी॒तार॑मा॒शवो॑ दि॒वस्पृ॒ष्ठमधि॑ तिष्ठन्ति॒ चेत॑सा ॥ २ ॥
७१९ अरू॑रुचदु॒षस॒ः पृश्नि॑रग्रि॒य उ॒क्षा बि॑भर्ति॒ भुव॑नानि वाज॒युः ।
मा॒या॒विनो॑ ममिरे अस्य मा॒यया॑ नृ॒चक्ष॑सः पि॒तरो॒ गर्भ॒मा द॑धुः ॥ ३ ॥

अर्थ-- १ हे ब्रह्मणस्पते ! ते पवित्रं विततं— हे ज्ञानी प्रभु ! तेरा पवित्रता चारों ओर करनेका कार्य चल रहा है । ज्ञान प्रचार करके सुविचारोंको फैलाकर सबकी पवित्रता करनेका कार्य ज्ञानी लोक कर रहे हैं ।

२ प्रभुः गात्राणि विश्वतः पर्येषि— तू सबका प्रभु है । अपने ज्ञानका प्रसार करनेके सब अंग उपांग चारों ओर फैला रहा है ।

३ अतप्ततनूः तत् आमः न अश्नुते— अपरिपक्व मनुष्य उस परम सुखको प्राप्त नहीं कर सकता । शरीर कष्ट सहन करनेका अभ्यासी हो, वही परम सुख प्राप्त कर सकता है ।

४ शृतास इत् तत् समासते— परिपक्व हुए मनुष्य ही उस श्रेष्ठ सुखको प्राप्त कर सकते हैं ।

[७१८] (तपोः पवित्रं) शत्रुको तपानेवाले सोमका पवित्र करनेवाला अंग (दिवः पदे विततं) द्युलोकके उच्च स्थानमें फैला है । (अस्य) इस सोमके (तन्तवः शोचन्तः) अंश प्रकाशित होकर (व्यस्थिरन्) विविध प्रकारसे स्थिर हुए हैं । (अस्य तन्तवः) इस सोमके अंश (पवितारं अवन्ति) पवित्रता करनेवालेका संरक्षण करते हैं । वे (दिवः पृष्ठं) द्युलोकके पृष्ठ भागपर (चेतसा अधितिष्ठन्ति) बुद्धिसे युक्त होकर रहते हैं ॥ २ ॥

१ तपोः पवित्रं दिवः पदे विततम्— शत्रुको ताप देनेवाला सोमका अंग द्युलोकमें उच्च स्थानमें फैला है ।

२ अस्य तन्तवः शोचन्तः व्यस्थिरन्— इस सोमके अंश प्रकाशित होकर अनेक स्थानोंमें स्थिर हुए हैं । अनेक स्थानोंमें सोम उत्पन्न होकर बढता है ।

३ अस्य तन्तवः पवितारं अवन्ति— इस सोमके अंश उसको शुद्ध करनेवालेका संरक्षण करते हैं ।

४ दिवः पृष्ठं चेतसा अधि तिष्ठन्ति— द्युलोकके पृष्ठ भागपर वे अंश बुद्धिसे युक्त होकर रहते हैं । सोमके अंश द्युलोकमें रहते हैं और वे बुद्धिको बढाते हैं । सोमरस पीनेसे बुद्धि बढती है ।

[७१९] (उषसः) उषाके संबंधित (पृश्निः) आदित्यके विषयमें मुख्य यह सोम (अरूरुचत्) प्रकाशित होता है । वह (उक्षा) जलका सिंचन करनेवाला उदकसे सबका (बिभर्ति) पोषण करता है । अर्थात् (भुवनानि वाजयुः) भुवनोंको अन्न देता है । (मायाविनः) ज्ञानी लोग (अस्य मायया) इसकी प्रज्ञासे (ममिरे) जगत्का निवारण करते हैं । (नृचक्षसः पितरः) मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाले (पितरः) रक्षक लोग (गर्भं आ दधुः) गर्भका धारण करते हैं ॥ ३ ॥

१ उषसः पृश्निः अरूरुचत्— उसःकालमें सूर्य प्रकाशता है ।

२ उक्षा बिभर्ति— जलका सिंचन करनेवाला सबका धारण करता है ।

३ भुवनानि वाजयुः— भुवनोंको वह अन्न देता है । सूर्य प्रकाश तथा जल सिंचनसे सबको अन्न मिलता है ।

४ अस्य मायया ममिरे – इसका मायाशक्तिसे निरीक्षण किया जाता है ।

५ नृचक्षसः पितरः पितरः गर्भं आदधुः— मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाले रक्षक गर्भका धारण पोषण करते हैं । इससे सबकी उत्पत्ति होती है। गर्भका संरक्षण, पोषण तथा योग्य रीतिसे वृद्धि होनी योग्य है।

७२० गन्धर्व इत्था पदमस्य रक्षति पाति देवानां जनिमान्यद्भुतः ।
गृभ्णाति रिपुं निधया निधापतिः सुकृत्तमा मधुनो भक्षमाशत ॥ ४ ॥
७२१ हविर्हविष्मो महि सद्म दैव्यं नभो वसानः परि यास्यध्वरम् ।
राजा पवित्ररथो वाजमारुहः सहस्रभृष्टिर्जयसि श्रवो बृहत् ॥ ५ ॥

[८४]

(ऋषिः- वाच्यः प्रजापतिः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती ।)

७२२ पवस्व देवमादनो विचर्षणि-रप्सा इन्द्राय वरुणाय वायवे ।
कृधी नो अद्य वरिवः स्वस्तिम-दुरुक्षितौ गृणीहि दैव्यं जनम् ॥ १ ॥

अर्थ-- [७२०] (गंधर्वः) सूर्य (अस्य पदं) इस सोमके स्थानका (इत्था रक्षति) ऐसा रक्षण करता है। (देवानां) देवोंके (जनिमानि पाति) जीवनोंका रक्षण करता है । (रिपुं) शत्रुको (निधया) पाशसे (गृभ्णाति) पकडता है । (निधापतिः) पाशोंका स्वामी (मधुनः भक्षं) मधुर सोमरसका भक्षण (सुकृत्तमा आशत) उत्तम कार्य करनेवाला करता है ॥ ४ ॥

१ गंधर्वः अस्य पदं इत्था रक्षति— सूर्य इस सोमके स्थानका ऐसा संरक्षण करता है । सूर्यके किरण इस सोमका संरक्षण करते हैं ।

२ देवानां जनिमानि पाति— देवोंके जीवनोंका सूर्य रक्षण करता है ।

३ रिपुं निधया गृभ्णाति— शत्रुको पाशोंसे यह बांधता है ।

४ निधापतिः मधुनः भक्षः सुकृत्तमा आशत— पाशोंका स्वामी इस मधुर सोमरसका भक्षण उत्तम कार्य करनेके समय करता है । उत्तम कार्य करनेके समय इस मधुर सोमरसका सेवन करनेसे उत्साह बढता है और उससे उत्तम कार्य उत्तम रीतिसे होता है ।

[७२१] हे (हविष्मः) उदक युक्त सोम ! (हविः) पवित्र (नभः) जलके साथ (वसानः) रहनेवाला (महि दैव्यं सद्म) बडे दिव्य गृहमें रहकर (अध्वरं परियासि) यज्ञमें जाता है । (राजा) राजा (पवित्ररथः) पवित्र रथमें बैठकर (वाजं आरुहः) युद्धमें जाता है और (सहस्रभृष्टिः) अनेक आयुधोंसे युद्ध करके (बृहत् श्रवः) बहुत अन्न (जयसि) विजयसे प्राप्त करता है ॥ ५ ॥

१ हविष्मः हविः नभः वसानः महि दैव्यं सद्म अध्वरं परियासि— उदकके साथ पवित्र स्थानमें रहनेवाला सोम बडे यज्ञगृहमें होनेवाले यज्ञमें जाता है ।

२ अध्वर— (अ+ध्वरः) जिसमें हिंसा नहीं होती वह यज्ञ ।

३ राजा पवित्ररथः वाजं आरुहः— राजा उत्तम रथमें बैठकर यज्ञमें जाता है । और उस युद्धमें—

४ सहस्रभृष्टिः बृहत् श्रवः जयसि— हजारों आयुधोंका शत्रुके वध करनेके लिये उपयोग करके बहुत अन्न विजयसे प्राप्त करता है । युद्धमें अनेक शस्त्रों और अस्त्रोंका उपयोग करके शत्रुका पराभव करना योग्य है । शत्रुका पराभव करके बहुत अन्न प्राप्त करना योग्य है ।

[८४]

[७२२] हे सोम ! तू (देवमादनः) देवोंको आनंद देनेवाला (विचर्षणिः) विशेष रीतिसे निरीक्षण करनेवाला (अप्सा) जल देनेवाला (पवस्व) रस दे दो । (इन्द्राय वरुणाय वायवे) इन्द्र वरुण तथा वायुके लिये रस दे । (नः) हमारे लिये (अद्य) आज ही (वरिवः) धन (स्वस्तिमत्) कल्याण करनेवाला (कृधि) कर । (उरुक्षितौ) इस विशाल भूमिपर (दैव्यं जनं गृणीहि) दिव्य जनको सुखी कर ॥ १ ॥

७२३ आ यस्तस्थौ भुवनान्यमर्त्यो विश्वानि सोमः परि तान्यर्षति ।
कृण्वन् त्संचृतं विचृतमभिष्टय इन्दुः सिषक्त्युषसं न सूर्यः ॥ २ ॥
७२४ आ यो गोभिः सृज्यत ओषधीष्वा देवानां सुम्न इषयन्नुपावसुः ।
आ विद्युता पवते धारया सुत इन्द्रं सोमो मादयन् दैव्यं जनम् ॥ ३ ॥

अर्थ— १ देवमादनः विचर्षणिः अच्छा पवस्व— हे सोम ! तू देवोंको आनंद देनेवाला विशेष रीतिसे निरीक्षण करनेवाला रस निकालो ।

२ इन्द्राय वरुणाय वायवे— इन्द्र वरुण तथा वायु आदि देवोंके लिये रस देवो ।

३ नः अद्य वरिवः स्वस्तिमत् कृधि— हमारे लिये आज ही धन कल्याण करनेवाला कर ।

४ उरुक्षितौ दैव्यं जनं गृणीहि— इस विस्तीर्ण भूमीपर दिव्य जनको सुखी कर। उत्तम सदाचारी मनुष्य ही इस भूमीपर सुखसे रहें ऐसा कर ।

[७२३] (यः सोमः) जो सोम (अमर्त्यः) अमर होकर (विश्वानि भुवनानि) इन सब भुवनोंमें (आतस्थौ) रहा है। वह (तान् परि अर्षति) उनमें जाता है। वह (इन्दुः) सोम देव्यजनोंको (संचृतं) दिव्य भावोंसे संयुक्त करता है और (विचृतं) दुष्ट भावोंसे दूर (कृण्वन्) करता है और (अभिष्टये) इष्ट फल प्राप्ति के लिये (सिषक्ति) यज्ञमें आता है। जैसा (सूर्यः उषसं न) सूर्य उषाके साथ रहता है ॥ २ ॥

१ यः सोमः अमर्त्यः विश्वानि भुवनानि आ तस्थौ — यह अमर सोम सब भुवनोंमें-यज्ञोंमें-उपस्थित रहता है ।

२ तान् परि अर्षति— उन यज्ञोंमें जाता है ।

३ इन्दुः संचृतं विचृतं कृण्वन्— यह सोम मनुष्यको दैवी भावोंसे युक्त तथा राक्षसी भावोंसे दूर करता है ।

४ अभिष्टये सिषक्ति— अभीष्टकी सिद्धिके लिये यज्ञमें आता है ।

५ सूर्यः उषसं न— जैसा सूर्य उषाके साथ रहता है ।

[७२४] (यः सोमः) जो सोम (गोभिः) गौके दूधके साथ (औषधीषु) औषधिरसोंमें (आ सृज्यते) मिलाया जाता है। यह सोमरस (देवानां सुम्ने) देवोंके सुखके लिये निकाला जाता है। (इषयन्) देवोंको प्राप्त करनेकी इच्छा करता है तथा (उपावसुः) शत्रुओंका धन शत्रुओंको पराजित करके प्राप्त करता है। वह सोम (विद्युता धारया) तेजस्वी धारासे (आ पवते) रस देता है। यह (सुतः सोमः) रस निकाला सोम (इन्द्रं) इन्द्रको, तथा (दैव्यं जनं मादयन्) दिव्य जनोंको आनंद देता है ॥ ३ ॥

१ सोमः गोभिः ओषधीषु आसृज्यते— यह सोमरस गौके दूधके साथ- औषधिरसोंके साथ- जलोंके साथ मिलाया जाता है ।

२ इषयन्— देवोंके पास जानेकी इच्छा करता है ।

३ उपावसुः— शत्रुओंको पराजित करके उनका धन जीतकर लाता है ।

४ विद्युता धारया आ पवते— तेजस्वी धारासे रस देता है। सोमरस चमकता रहता है ।

५ सुतः सोम इन्द्रं दैव्यं जनं मादयन्— सोमरस इन्द्रको तथा दिव्यजनोंको आनंद देता है। सोमरस पीनेसे उत्साहमय आनंद बढता है ।

७२५ एष स्य सोमः पवते सहस्रजि॒द्धिन्वा॒नो वाच॑मिषि॒रामु॑ष॒र्बुध॑म् ।
इन्दुः॑ समु॒द्रमुदि॑यर्ति वा॒युभि॒रेन्द्र॑स्य॒ हार्दि॑ क॒लशे॑षु सीदति ॥ ४ ॥
७२६ अ॒भि त्यं गाव॒ः पय॑सा पयो॒वृधं॒ सोमं॑ श्रीणन्ति म॒तिभिः॑ स्व॒र्विद॑म् ।
ध॒नं॒ज॒यः प॑वते॒ कृत्व्यो॒ रसो॒ विप्र॑ः क॒विः काव्ये॑ना॒ स्व॑र्चनाः ॥ ५ ॥

[८५]

(ऋषिः- वेनो भार्गवः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती, ११-१२ त्रिष्टुप् ।)

७२७ इन्द्रा॑य सोम॒ सुषु॑तः॒ परि॑ स्र॒वा॒पामी॑वा भवतु॒ रक्ष॑सा स॒ह ।
मा ते॒ रस॑स्य मत्सत द्वया॒विनो॒ द्रवि॑णस्वन्त इ॒ह स॒न्त्विन्द॑वः ॥ १ ॥

अर्थ— [७२५] (एषः स्यः सोमः) यह वही सोम (पवते) रस देता है। यह सोम (सहस्रजित्) हजारों धनोंको जीतता है। (वाचं हिन्वानः) स्तुति करनेको प्रेरणा देता है। (इषिरां) सदिच्छाकी प्रेरणा (उषर्बुधं) उषः कालमें जाग्रत होनेकी प्रेरणा देता है। यह (इन्दुः) सोम (समुद्रं) रस प्रवाहको (उदियर्ति) ऊपर जानेकी प्रेरणा (वायुभिः) वायुके द्वारा देता है। यह (इन्द्रस्य हार्दि) इन्द्रके लिये प्रिय सोमरस (कलशेषु सीदति) कलशोंमें रहता है ॥ ४ ॥

१ एषः सोमः पवते सहस्रजित्-- यह सोमका रस निकाला है, वह हजारों प्रकारोंसे शत्रुको जीतता है और उनका धन प्राप्त करता है।

२ वाचं हिन्वानः-- यह सोम स्तुति करनेकी प्रेरणा देता है।

३ इषिरां उषर्बुधं-- सदिच्छाकी तथा उषःकालमें जाग्रत होकर उठनेकी प्रेरणा देता है।

४ इन्दुः समुद्रं उदियर्ति— यह सोमरस जलमें मिश्रित हो जाता है।

५ वायुभिः इन्द्रस्य हार्दि कलशेषु सीदति-- यह सोमरस वायुके साथ मिलकर इन्द्रके लिये यह प्रिय होकर कलशोंमें रहता है। इन्द्रको देनेके लिये इस सोमरसको कलशोंमें रखते हैं।

[७२६] (त्यं पयोवृधं सोमं) उस दूधके साथ मिश्रित होकर बढनेवाले सोमको (गावः) गौवें (स्वर्विदं) अपना ज्ञान बढानेवाले (मतिभिः श्रीणन्ति) स्तुतियोंके साथ अपने दूधमें मिलातीं हैं। (धनंजयः) शत्रुके धनको जीतनेवाला सोम (काव्येन पवते) स्तोत्र पाठके साथ रस देता है। यह (कृत्व्यः) कर्म करनेमें कुशलता बढानेवाला (विप्रः) बुद्धिमान (कविः) ज्ञानी (स्वर्चनाः) उत्तम अन्नसे युक्त (रसः) यह सोम (पवते) रस देता है ॥ ५ ॥

१ त्यं पयोवृधं स्वर्विदं सोमं मतिभिः श्रीणन्ति— उस दूधके मिश्रित होकर बढनेवाले ज्ञान बढानेवाले सोमको स्तुति पाठके साथ जल तथा दूधके साथ मिलाते हैं।

२ धनंजयः काव्येन पवते— युद्धको जीतनेवाला सोम स्तोत्रोंके गानके साथ रस देता है।

३ कृत्व्यः विप्रः कविः स्वर्चनाः रसः पवते— कर्म करनेमें चतुर, ज्ञानी, दूरदर्शी, उत्तम अन्नरूपी यह सोमरस निकाला जाता है।

[८५]

[७२७] हे (सोम) तू (इन्द्राय) इन्द्रको देनेके लिये (सुषुतः) उत्तम रीतिसे रस निकाला हुआ (परि स्रव) सब प्रकारसे रस निकालकर दो। (अमीवा) रोग (रक्षसासह) राक्षसके साथ (अप भवतु) दूर हो जांय। (ते) तेरे (द्वयाविनः) पुण्य और पाप करनेवाले (रसस्य) रसको पीकर (मा मत्सत) मदमत्त न हों। (इन्दवः) तेरे सोमरस (इह) इस यज्ञमें (द्रविणस्वन्तः) धनयुक्त हो जांय ॥ १ ॥

७२८ अस्मान् त्समर्ये पवमान चोदय दक्षो देवानामसि हि प्रियो मदः ।
जहि शत्रूँरभ्या भन्दनायतः पिबेन्द्र सोममव नो मृधो जहि ॥ २ ॥
७२९ अदब्ध इन्दो पवसे मदिन्तम आत्मेन्द्रस्य भवसि धासिरुत्तमः ।
अभि स्वरन्ति बहवो मनीषिणो राजानमस्य भुवनस्य निंसते ॥ ३ ॥

अर्थ— १ हे सोम! इन्द्राय सुषुतः परिस्रव— हे सोम! इन्द्रको देनेके लिये रस निकाला हुआ तू अच्छी तरह रसरूपमें हो जाओ ।

२ अमीवा रक्षसा सह अप भवतु— रोग राक्षसके साथ, दुष्टके साथ दूर हो जाय ।

३ द्वयाविनः ते रसस्य मा मत्सत— पापी लोक तेरे रससे आनंदित न हों । पापियोंको तेरा रस प्राप्त न हो । द्वयाविनः— दोनों प्रकारके कर्म करनेवालोंको सोमरस न मिले । अनिश्चित रूपसे अयोग्य कर्म करनेवाले, समय पर योग्य तथा अयोग्य कार्य करनेवालोंको यह सोम प्राप्त न हो ।

[७२८] हे (पवमान) सोम ! (समर्ये) युद्धमें (अस्मान्) हमको (चोदय) प्रेरित कर । (देवानां मध्ये) देवोंके मध्यमें तू (दक्षः) दक्षतासे युक्त तथा (प्रियः मदः) प्रिय आनंद बढानेवाला हो । (शत्रून् जहि) हमारे शत्रुओंको पराजित कर । (अभि आ) हमारे पास आओ । (भन्दनायतः) स्तुति चाहनेवाले ! हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सोमं पिब) सोमका रस पीओ और (नः मृधः अवजहि) हमारे शत्रुओंको पराभूत कर ॥ २ ॥

१ समर्ये अस्मान् चोदय— युद्धमें जानेकी हमें प्रेरणा करो ।
२ देवानां मध्ये दक्षः— देवोंके मध्यमें तू अति दक्ष हो ।
३ प्रियः मदः— देवोंमें तू सबको प्रिय तथा आनंद देनेवाला हो ।
४ शत्रून् जहि— हमारे शत्रुओंको पराभूत करके दूर करो ।
५ अभि आ— हमारे पास आकर रहो ।
६ भन्दनायतः— स्तुति करनेवालो ! तुम स्तुति करो ।
७ इन्द्र ! सोमं पिब— हे इन्द्र ! तू सोमरस पीओ ।
८ नः मृधः जहि— हमारे शत्रुओंको पराभूत करो । हमारे शत्रुगणोंको पराभूत करके दूर करो ।

[७२९] हे (सोम) सोम ! तू (अदब्धः) अहिंसित तथा (मदिन्तमः) आनंद देनेवाला होकर (पवसे) तेरा रस निकाला जाता है । तू (आत्मा इन्द्रस्य) इन्द्रका आत्मा (भवसि) होता है तथा (उत्तमः धासिः) उत्तम धारण सामर्थ्यसे युक्त अन्नरूप होता है । (अस्य भुवनस्य राजानं) इस भुवनके राजा सोमको (बहवः मनीषिणः) बहुत मननशील ज्ञानी (अभि स्वरन्ति) स्तुति करते हैं और (निंसते) उसको प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

१ हे सोम ! अदब्ध मदिन्तमः पवसे— हे सोम ! तू अहिंसित होकर तथा अत्यंत आनंद देनेवाला होकर रस निकाल कर दो ।

२ इन्द्रस्य आत्मा भवसि— तू इन्द्रका आत्मा अर्थात् इन्द्रके लिये अति प्रिय हो ।

३ उत्तमः धासि— तू उत्तम धारक शक्तिसे युक्त हो ।

४ बहवः मनीषिणः अभि स्वरन्ति— बहुत ज्ञानी तेरी स्तुति करते हैं ।

५ बहवः मनीषिणः निंसते— बहुत ज्ञानी तुझे प्राप्त करते हैं ।

७३० सहस्रणीथः शतधारो अद्भुत इन्द्रायेन्दुः पवते काम्यं मधु ।
जयन् क्षेत्रमभ्यर्षा जयन्नप उरुं नो गातुं कृणु सोम मीढ्वः ॥ ४ ॥
७३१ कनिक्रदत् कलशे गोभिरज्यसे व्य१व्ययं समया वारमर्षसि ।
मर्मृज्यमानो अत्यो न सानसि-रिन्द्रस्य सोम जठरे समक्षरः ॥ ५ ॥
७३२ स्वादुः पवस्व दिव्याय जन्मने स्वादुरिन्द्राय सुहवीतुनाम्ने ।
स्वादुर्मित्राय वरुणाय वायवे बृहस्पतये मधुमाँ अदाभ्यः ॥ ६ ॥

अर्थ— [७३०] (सहस्रणीथः) सहस्रों प्रकारोंसे लाया गया (शतधारः) सैंकडों धाराओंसे रस देनेवाला (अद्भुतः इन्दुः) अद्भुत सोम (इन्द्राय) इन्द्रको देनेके लिये (काम्यं मधु) इष्ट मधुर (पवते) रस देता है। हमारे लिये (क्षेत्रं जयन्) स्थानको जीत कर (अभ्यर्ष) आगे चल (अपः जयन्) जलोंको जीत कर, हे (सोम) सोम ! (मीढ्वः) सिंचन करनेवाला तू (नः) हमारे लिये (गातुं) उन्नतिका मार्ग (कृणु) कर ॥ ४ ॥

१ सहस्रणीथः शतधारः अद्भुतः इन्दुः इन्द्राय काम्यं मधु पवते-- सहस्र रीतियोंसे लाया हुआ, सैंकडो धाराओंसे रस देनेवाला यह सोम मधुर तथा प्रिय रस देता है ।

२ क्षेत्रं जयन्-- स्थानोंको जीत कर हमें दे दो ।

३ अभ्यर्ष-- आगे प्रगति कर । पीछे न रह ।

४ अपः जयन्— जल स्थानोंको विजय करके प्राप्त करो ।

५ हे सोम ! मीढ्वः नः गातुं कृणु-- हे सोम ! रस देनेवाला तूं हमारी उन्नति करनेके लिये उत्तम मार्ग करो । उस मार्गसे हम जांय और अपनी उन्नति करेंगे । ऐसा सुगम मार्ग कर ।

[७३१] हे (सोम) सोम ! (कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ तू (कलशे) कलशमें (गोभिः अज्यसे) गौके दूधके साथ मिलकर रहता है । (अव्ययं वारं) भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे (समया) उसके पास (अर्षसि) जाता है । (मर्मृज्यमानः) शुद्ध होकर (अत्यः न) चपल घोडेके समान (सानसिः) सेवनीय होकर (इन्द्रस्य जठरं) इन्द्रके पेटमें (समक्षरः) जाता है ।

१ हे सोमः कनिक्रदत् कलशे गोभिः अज्यसे— हे सोम ! तूं शब्द करता हुआ कलशमें गौके दूधके साथ मिश्रित होकर जाता है । गौके दूधके साथ मिश्रित होकर सोमरस कलशमें रखा जाता है ।

२ अव्ययं वारं समया अर्षसि— भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे उसी समय नीचेके पात्रमें छाना जाता है ।

३ मर्मृज्यमानः इन्द्रस्य जठरं समक्षर-- हे सोम ! छाननेके बाद इन्द्रके पेटमें प्रवेश कर ।

४ सानसिः-- सेवन करने योग्य छाना जाकर शुद्ध हो जाओ ।

[७३२] हे सोम ! तू (दिव्याय जन्मने) दिव्य जन्मवाले देवगणोंके लिये (स्वादुः पवस्व) मीठा रस निकालो । (सुहवीतु नाम्ने इन्द्राय) प्रशंसनीय नामवाले इन्द्रके लिये (स्वादुः) स्वादिष्ठ रस देवो । (मित्राय वरुणाय वायवे बृहस्पतये) मित्र, वरुण, वायु, बृहस्पति आदि देवोंके लिये (अदाभ्यः) न दब जानेवाला होकर तू (मधुमान्) मधुर रस देनेवाला हो ॥ ६ ॥

दिव्य जन्मवाले देवोंके लिये अर्थात् इन्द्र, मित्र, वरुण, वायु, बृहस्पति आदि देवोंके लिये पीनेको देनेके लिये सोमका रस मिले । यह मीठा रस इन सब देवोंको दिया जाय ।

दिव्य जन्म— द्युलोकमें, आकाशमें देवोंका जन्म हुआ है । तथा इन देवोंका दिव्य जन्म हैं । दिव्य कर्म ये देव करते हैं । इस कारण सोमरस इन देवोंको दिया जाता है ।

इन्द्र, मित्र, वरुण, वायु, बृहस्पति आदि देवोंको यह रस देना चाहिये । यह यज्ञमें समर्पणसे दिया जाता है ।

×

७३३ अत्यं मृजन्ति कलशे दश क्षिपः प्र विप्राणां मतयो वाच ईरते ।
पवमाना अभ्यर्षन्ति सुष्टुति-मेन्द्रं विशन्ति मदिरास इन्दवः ॥ ७ ॥
७३४ पवमानो अभ्यर्षा सुवीर्य-मुर्वीं गव्यूतिं महि शर्म सप्रथः ।
माकिर्नो अस्य परिषूतिरीशते-न्दो जयेम त्वया धनंधनम् ॥ ८ ॥
७३५ अधि द्यामस्थाद्वृषभो विचक्षणो ऽरूरुचद्वि दिवो रोचना कविः ।
राजा पवित्रमत्येति रोरुवद्-दिवः पीयूषं दुहते नृचक्षसः ॥ ९ ॥

अर्थ— [७३३] (अत्यं) घोडेके समान इस सोमको (कलशे) कलशमें रखकर (दश क्षिपः दस अंगुलियां (मृजन्ति) शुद्ध करती हैं । तथा (विप्राणां मतयः) विप्रोंके मध्यमें स्तुति करनेवाले विद्वान् (वाचः ईरते) स्तुति करते हैं । (पवमानाः) सोमके शुद्ध होनेवाले रस (सुष्टुतिं अभ्यर्षन्ति) स्तुतिको सुनते हैं । (इन्द्रं) इन्द्रको (मदिरास इन्दवः) आनंददायक सोमरस (विशन्ति) प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

१ अत्यं कलशे दश क्षिपः मृजन्ति— घोडेके समान इस सोमको दस अंगुलियां शुद्ध करती हैं ।
२ विप्राणां मतयः वाचः ईरते— ब्राह्मणोंकी बुद्धियां स्तुति करती हैं ।
३ पवमानाः सुष्टुतिं अभ्यर्षन्ति - सोमरस उत्तम स्तुतिको सुनते रहते हैं । सोमका रस निकालनेके समय स्तोत्र पाठ होता रहता है ।
४ इन्द्रं मदिरासः इन्दवः विशन्ति— इन्द्रके पेटमें आनंद देनेवाले सोमके रस जाते हैं ।

[७३४] हे सोम ! (पवमानः) स्वच्छ होता हुआ तू (सुवीर्यं) उत्तम पराक्रम तथा (उर्वीं गव्यूतिं) बडे गौओंको प्राप्त करनेके मार्गोंको और (महि सप्रथः शर्म) बडा व्यापक घर अथवा सुख (अभ्यर्ष) हमें दे । (नः) हमें (अस्य) इस कर्मका (परिषूतिः मा किः) हिंसा रूपी फल न दे । हे (इन्दो) सोम ! (त्वया) तेरे साथ रहकर (धनं धनं जयेम) सब प्रकारका धन हम प्राप्त करेंगे ॥ ८ ॥

१ हे पवमान ! सुवीर्यं अभ्यर्ष— हे सोम ! हमें पराक्रम करनेका सामर्थ्य देओ ।
२ उर्वीं गव्यूतिं-- गौओंको प्राप्त करनेकी शक्तिसे हमें प्राप्त हो ।
३ महि सप्रथः शर्म— बडा घर, बडा सुख हमें प्राप्त हो ।
४ नः अस्य परिषूतिः मा किः— हमें हिंसा किसी प्रकारकी प्राप्त न हो ।
५ हे इन्दो ! त्वया वयं धनं धनं जयेम— हे सोम ! तेरे साथ रहकर हम अनेक प्रकारका धन प्राप्त करके सुखसे रहेंगे ।

[७३५] यह सोम (वृषभः) बलवान् (द्यां अस्थात्) द्युलोकमें रहा है । यह (विचक्षणः) विशेष देखनेवाला (कविः) ज्ञानी (दिवः रोचना) द्युलोकके प्रकाशको (अधि अरूरुचत्) विशेष प्रकाशित करता है । (राजा) राजा सोम (रोरुवत्) शब्द करता हुआ (पवित्रं अत्येति) छाननीमेंसे छाना जाकर नीचेके पात्रमें उतरता है । (नृचक्षसः) मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाले ये सोम (पीयूषं दुहते) अमृत समान रस देते हैं ॥ ९ ॥

१ वृषभः द्यां अस्थात्-- बलवान सोम द्युलोकमें रहता है ।
२ कविः दिवः रोचना अधि अरूरुचत्— यह ज्ञानी सोमरस द्युलोकका तेज अधिक तेजस्वी करता है ।
३ राजा रोरुवत् पवित्रं अत्येति-- यह सोम राजा शब्द करता हुआ छाननीमेंसे नीचेके पात्रमें उतरता है ।
४ नृचक्षसः पीयूषं दुहते— मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाले अमृत रसका दोहन करते हैं ।

७३६ दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतो वेना दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम् ।
अप्सु द्रप्सं वावृधानं समुद्र आ सिन्धोरूर्मा मधुमन्तं पवित्र आ ॥ १० ॥
७३७ नाके सुपर्णमुपपप्तिवांसं गिरो वेनानामकृपन्त पूर्वीः ।
शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतं हिरण्ययं शकुनं क्षामणि स्थाम् ॥ ११ ॥
७३८ ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थाद्विश्वा रूपा प्रतिचक्षाणो अस्य ।
भानुः शुक्रेण शोचिषा व्यद्यौत् प्रारूरुचद्रोदसी मातरा शुचिः ॥ १२ ॥

अर्थ — [७३६] (दिवः नाके) द्युलोकके सुखमय यज्ञस्थानमें (मधुजिह्वाः) मधुर वाणीहि बोलनेवाले (असश्चतः) पृथक् रहनेवाले (वेनाः) महर्षिगण (गिरिष्ठां) पर्वतपर रहनेवाले (अप्सु वा वृधानं) जलोंमें बढनेवाले (द्रप्सं) रसरूपमें वर्तमान (समुद्रे) जलोंमें (सिंधौ ऊर्मा) सिन्धूके लहरीमें मिलनेवाले (मधुमन्तं) मीठे सोमरसको (पवित्रे) छाननामें छानकर (आ दुहन्ति) रस निकालते हैं ॥ १० ॥

१ दिवः नाके — द्युलोकके सुख बढानेवाले यज्ञस्थानमें,

२ मधुजिह्वः असश्चतः वेनाः दुहन्ति — मीठा रस देनेवाले यज्ञमें पृथक् पृथक् अपने अपने स्थानमें बैठनेवाले याजक सोमरस निकालते हैं ।

३ पवित्रे — छाननोमेंसे सोमरस छानते हैं । स्वच्छ करते है ।

४ गिरिष्ठां, अप्सु वावृधानं, द्रप्सं मधुमन्तं — पर्वत पर उगनेवाला, जलोंसे बढानेवाला, रसरूप तथा मीठा सोम होता है । पर्वत शिखरपर सोम उगता है, सोमरस जलोंमें मिलाया जाता है तथा वह मीठा रस होता है ।

५ आ दुहन्ति — यज्ञकर्ता जन सोमका रस यज्ञस्थानमें निकालते है ।

[७३७] (नाके) द्युलोकमें (उपपतिवांसं सुपर्णं) उत्पन्न होनेवाले सोमकी स्तुति (वेनानां गिरः) ज्ञानीयोंकी वाणियां (पूर्वीः) पहिलेसेही (उपकृपन्त) करती रहीं हैं । (शिशुं) बलके समान इस संस्कारके योग्य सोमको (मतयः) स्तुतियां (रिहन्ति) प्राप्त होती हैं । (पनिप्नतं) शब्द करनेवाले (शकुनं) पक्षीके समान (क्षामणि स्थां) यज्ञस्थानमें रहे (हिरण्ययं) सुवर्ण जैसे तेजस्वी सोमकी स्तुति होती है ॥ ११ ॥

१ नाके उपपतिवांसं सुपर्णं वेनानां गिरः पूर्वीः उपकृपन्त — द्युलोकमें उत्पन्न होनेवाले, उत्तम पात्रोंवाले सोमकी स्तुति ज्ञानियोंकी वाणियां पहिलेसे करती रहीं हैं ।

२ मतयः शिशुं रिहन्ति — ज्ञानियोंकी बुद्धियां बालकके समान आदरणीय सोमकी स्तुति करती हैं ।

३ पनिप्नतं क्षामणिस्थां हिरण्ययं शकुनं रिहन्ति — शब्द करनेवाले, यज्ञस्थानमें रहनेवाले, सुवर्णके समान तेजस्वी, पक्षीके समान पर्वतपर रहनेवाले सोमकी ज्ञानी स्तुति करते हैं ।

[७३८] (ऊर्ध्वः गन्धर्वः) ऊंचे स्थानमें किरणोंको धारण करनेवाला सोम (नाके अधि अस्थात्) स्वर्गके ऊपर रहा है । (अस्य) इस आदित्यकी (विश्वा रूपाणि प्रतिचक्षाणः) अनेक रूपें देखता है । (भानुः) सूर्य (शुक्रेण शोचिषा व्यद्योत्) तेजस्वी प्रकाशसे चमकता है । (शुचिः) तेजस्वी सूर्य (मातरा रोदसी) माताके समान द्यु और पृथिवी ये दोनोंको (प्रारूरुचत्) प्रकाशित करता है ॥ १२ ॥

१ ऊर्ध्वः गंधर्वः नाके अधि अस्थात् — ऊंचे स्थानमें रहनेवाला सोम स्वर्गमें उच्च स्थान पर रहता है । ऊंचे पहाडोंके शिखर पर सोम उगता और बढता है ।

२ विश्वा रूपाणि प्रतिचक्षाणः — सब रूपोंको वहांसे देखता है ।

३ भानुः शुक्रेण शोचिषा व्यद्यौत् — सूर्य तेजस्वी प्रकाशसे चमकता है ।

४ शुचिः मातरा रोदसी प्रारूरुचत् — तेजस्वी सूर्य द्यु तथा पृथिवी इन दोनों माताओंको प्रकाशित करता है ।

[८६]

(ऋषिः– १-१० अकृष्टा माषाः, ११-२० सिकता निवावरी, २१-३० पृश्नयोऽजाः, ३१-४० अकृष्टमाषादयस्त्रयः, ४१-४५ भौमोऽत्रिः, ४६-४८ गृत्समदः शौनकः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती ।)

७३९ प्र त आशवः पवमान धीजवो मदा अर्षन्ति रघुजा इव त्मना ।
दिव्याः सुपर्णा मधुमन्त इन्दवो मदिन्तमासः परि कोशमासते ॥ १ ॥

७४० प्र ते मदासो मदिरास आशवो ऽसृक्षत रथ्यासो यथा पृथक् ।
धेनुर्न वत्सं पयसाभि वज्रिण- मिन्द्रमिन्दवो मधुमन्त ऊर्मयः ॥ २ ॥

७४१ अत्यो न हियानो अभि वाजमर्ष स्वर्वित् कोशं दिवो अद्रिमातरम् ।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्यये सोमः पुनान इन्द्रियाय धायसे ॥ ३ ॥

अर्थ— [७३९] हे (पवमान) सोम ! (ते) तेरे (आशवः) व्यापक (धीजवाः) मनके वेगके समान (मदाः) आनंद देनेवाले रस (रघुजाः इव) शीघ्र जानेवाले घोडेके समान (त्मना प्र अर्षन्ति) स्वयं चल रहे हैं। (दिव्याः सुपर्णाः) दिव्य रस (मधुमन्त इन्दवः) मधुर सोमरस (मदिन्तमासः) आनंद बढाते हुए (कोशं परि आसते) कलशमें जाते हैं ॥ १ ॥

१ हे पवमान ! आशवः धीजवाः ते मदाः रघुजा इव त्मना अर्षन्ति— हे सोम ! मनके समान वेगवान तेरे आनंद देनेवाले रस घोडेके समान स्वयं नीचे पात्रमें जाते हैं।

२ दिव्याः सुपर्णाः मधुमन्त इन्दवः मदिन्तमासः कोशं परि आसते— दिव्य रसरूपी मीठे सोमरस आनंद बढाते हुए पात्रमें जाते हैं। यज्ञके पात्रोंमें सोमरस छाननेके पश्चात् जाकर रहते हैं।

[७४०] (ते) तेरे (मदिरासः) आनंद देनेवाले (मदासः) रस (आशवः) गतिमान (यथा रथ्यासः) जैसे रथके घोडे वैसे (पृथक् असृक्षत) अलग होकर आते हैं। (धेनुः पयसा वत्सं न) गौ जैसी अपने बच्चेको दूधसे तृप्त करती है उस प्रकार (वज्रिणं इन्द्रं) वज्रधारी इन्द्रको (मधुमन्तः ऊर्मयः इन्दवः) मीठे लहरियोंसे आनेवाले सोमरस तृप्त करते हैं ॥ २ ॥

१ ते मदिरासः आशवः पृथक् असृक्षत, यथा रथ्यासः— तेरे आनंद देनेवाले गतिमान रस पृथक् होकर बाहर आ रहे हैं जैसे रथके घोडे पृथक् होकर चलते हैं।

२ धेनुः पयसा वत्सं न— गौ जैसी अपने दूधसे अपने बच्चेको तृप्त करती है, वैसे ये सोमरस देवोंको संतुष्ट करते हैं।

३ वज्रिणं इन्द्रं मधुमन्तः ऊर्मयः इन्दवः— वज्रधारी इन्द्रको ये सोमके मीठे रस तृप्त करते हैं।

[७४१] (अत्यः न) घोडेके समान (हियानः) प्रेरित किया हुआ तू (वाजं अभि अर्ष) संग्रामके स्थान पर जा। (स्वर्वित्) सर्वज्ञ तू (कोशं) पात्रमें (दिवः अद्रि मातरं) द्युलोकसे मेघसे जैसा उदक आता है वैसा तू जा। (वृषा) बलवान् तू (सोमः) सोम (अव्यये पवित्रे सानौ अधि) भेडीके छाननीके मध्यमें (पुनानः) छाना जाता हुआ (इन्द्राय धायसे) धारण करनेकी शक्तिवाले इन्द्रको देनेके लिये तैयार हो ॥ ३ ॥

१ अत्यः न हियानः वाजं अभि अर्ष— घोडा प्रेरित होनेपर जैसा युद्धमें जाता है, वैसा तू हे सोम ! यज्ञमें जा।

२ स्वर्वित् दिवः कोशं अद्रिमातरं— आत्मज्ञानी तू सर्वज्ञ मेघसे जैसा उदक पर्वतके शिखरपर आता है वैसा तू यज्ञमें जा और अपने स्थानमें रहो।

३ सोमः अव्यये पवित्रे सानौ अधि पुनानः— सोम भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे छाना जाता है।

४ इन्द्राय धायसे— धारण शक्तिवाले इन्द्रको देनेके लिये यह सोमरस छानकर तैयार किया जाता है।

७४२ प्र त आश्विनीः पवमान धीजुवो दिव्या असृग्रन् पयसा धरीमणि ।
प्रान्तर्ऋषयः स्थाविरीरसृक्षत ये त्वा मृजन्त्यृषिषाण वेधसः ॥ ४ ॥
७४३ विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः प्रभोस्ते सतः परि यन्ति केतवः ।
व्यानशिः पवसे सोम धर्मभिः पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि ॥ ५ ॥
७४४ उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परि यन्ति केतवः ।
यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरिः सत्ता नि योना कलशेषु सीदति ॥ ६ ॥

अर्थ— [७४२] हे (पवमान) सोम ! (ते) तेरी धाराएं (आश्विनीः) व्याप्त (धीजुवः) मनके समान वेगवान (दिव्याः) द्योतमान (पयसा) दूधसे मिश्रित होकर (धरीमणि) कलशमें (प्र असृग्रन्) विशेष प्रकार प्रवेश करती हैं। (ये) जो (वेधसः) ज्ञानी (ऋषयः) ऋषी लोग, हे सोम ! (ऋषिषाणः) ऋषियों द्वारा निकाले (त्वा) तुझे (मृजन्ति) शुद्ध करते हैं, वे (स्थाविरीः) स्थायी धारासे (अन्तः) पात्रमें (प्र असृक्षत) छोडते हैं ॥ ४ ॥

१ हे पवमान ! ते आश्विनीः धीजुवः दिव्याः पयसा धरीमणि प्र असृग्रन्— हे सोम ! तेरी वेगवान् बुद्धिवर्धक दिव्य तथा दूधसे मिश्रित धारायें कलशमें गिर रही हैं। सोमरसमें गौका दूध मिलाकर उसका प्रयोग यज्ञमें किया जाता है।

२ ये वेधसः ऋषयः ऋषिषाणः त्वा मृजन्ति स्थाविरीः अन्तः प्र असृक्षत— जो ज्ञानी ऋषि ऋषियोंद्वारा निकाले सोमरसको शुद्ध करते हैं और स्थिर धारासे यज्ञपात्रोंमें रखते हैं।

[७४३] हे (विश्वचक्षः) सबके निरीक्षक सोम ! (प्रभोः सतः ते) प्रभु रहनेवाले तेरे (ऋभ्वसः केतवः) बडे किरण (विश्वा धामानि) सब स्थानोंमें (परियन्ति) जाते हैं। हे (सोम) सोम ! (व्यानशिः) व्यापक होनेवाला तू (धर्मभिः पवसे) अपने गुणधर्मोंके साथ अपनेसे रस देते हो तथा (विश्वस्य भुवनस्य पतिः) सब भुवनोंका पालक होकर (राजसि) विराजता है ॥ ५ ॥

१ हे विश्वचक्षः ! प्रभोः सतः ते ऋभसः केतवः विश्वा धामानि परियन्ति— हे सबके निरीक्षण करनेवाले सोम ! तू सबके स्वामी हो। तेरे तेजस्वी किरण सब स्थानोंमें जाते हैं।

२ हे सोम ! व्यानशिः धर्मभिः पवस्व— हे सोम ! तू अपने व्यापक होकर अपने गुण धर्मोंके साथ रस दे।

३ विश्वस्य भुवनस्य पतिः राजसि— तू सब भुवनोंका स्वामी होकर चमकता रहता है। तू सबका स्वामी होकर चमकता रहता है।

[७४४] (पवमानस्य) रस निकाले जानेवाले (ध्रुवस्य सतः) स्थिर रहनेवाले तुझ सोमके (केतवः रश्मयः) प्रकाशमान किरण (उभयतः परियन्ति) दोनों ओरसे बाहर आते हैं (यदि) जब (हरिः) हरे रंगका यह सोम (पवित्रे अधि मृज्यते) छाननीमें शुद्ध किया जाता है तब (सत्ता) रहनेवाला यह सोम (कलशेषु योनौ) कलशोंके अपने स्थानमें (निषीदति) रहता है ॥ ६ ॥

१ पवमानस्य ध्रुवस्य सतः केतवः रश्मयः उभयतः परियन्ति— शुद्ध होनेवाले तथा स्वस्थानमें स्थिर रहनेवाले सोमके प्रकाश किरण दोनों ओरसे बाहर आ रहे हैं। सोम चमक रहा है।

२ यदि हरिः पवित्रे अधि मृज्यते, सत्ता कलशेषु योनौ निषीदति— यदि हरे रंगका यह सोम छाननीमें शुद्ध होता है उस समय वह शुद्ध होकर कलशोंमें रखा जाता है।

७४५ यज्ञस्य केतुः पवते स्वध्वरः सोमो देवानामुप याति निष्कृतम् ।
सहस्रधारः परि कोशमर्षति वृषा पवित्रमत्येति रोरुवत् ॥ ७ ॥
७४६ राजा समुद्रं नद्यो३ वि गाहते ऽपामूर्मिं सचते सिन्धुषु श्रितः ।
अध्यस्थात् सानु पवमानो अव्ययं नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवः ॥ ८ ॥
७४७ दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदद् द्यौश्च यस्य पृथिवी च धर्मभिः ।
इन्द्रस्य सख्यं पवते विवेविदत् सोमः पुनानः कलशेषु सीदति ॥ ९ ॥

अर्थ—[७४५] (यज्ञस्य केतुः) यज्ञका प्रकाशक (स्वध्वरः सोमः) उत्तम यज्ञ करनेवाला सोम (देवानां निष्कृतं) देवोंके स्थानके प्रति (उपयाति) जाता है और वहां (पवते) रस देता है। (सहस्रधारः) सहस्रों धाराओंसे (कोशं परि अर्षति) कलशमें जाता है। (वृषा) रस देनेवाला यह सोम (रोरुवत्) शब्द करता हुआ (पवित्रं अत्येति) छाननीमेंसे नीचे उतरता है ॥ ७ ॥

१ यज्ञस्य केतुः स्वध्वरः सोमः देवानां निष्कृतं उप याति— यज्ञमें मुख्य, उत्तम अहिंसामय यज्ञ करनेवाला सोम देवोंके स्थानके समीप जाता है।
२ पवते— और देवोंके स्थानमें- यज्ञमें- अपना रस देता है। जो रस यज्ञके द्वारा देवोंको प्राप्त होता है।
३ सहस्रधारः कोशं परि अर्षति— सहस्रों धाराओंसे यज्ञके पात्रोंमें यह रस जाकर रहता है।
४ वृषा रोरुवत् पवित्रं अत्येति— बलवान् यह सोमरस शब्द करता हुआ छाननीमेंसे गुजरता है और पात्रमें गिरता है।

[७४६] यह (राजा) राजा सोम (समुद्रं नद्यः) अन्तरिक्षके जलमें (वि गाहते) स्नान करता है, मिश्रित होता है तथा (अपां ऊर्मिं सचते) जलकी प्रवाहको प्राप्त करता है। (सिन्धुषु श्रितः) उदकमें मिश्रित होता है, (पवमानः) पवित्र होता है (अव्ययं सानु अध्यस्थात्) भेडोके बालोंकी छाननीपर चढता है। (महः दिवः धारुणः) बडे द्युलोकका धारण करनेवाला यह सोम है ॥ ८ ॥

१ राजा समुद्रं नद्यः वि गाहते— यह सोम राजा नदियोंके जलमें स्नान करता है। जलके साथ मिश्रित किया जाता है।
२ अपां ऊर्मिं सचते— जलोंके प्रवाहको प्राप्त करता है। जलके साथ मिश्रित होता है।
३ सिन्धुषु श्रितः— नदीके जलमें मिश्रित किया जाता है।
४ अव्ययं सानु अध्यस्थात्— भेडोके बालोंकी छाननीपर चढता है। छाना जाता है।
५ महः दिवः धरुणः— बडे द्युलोकका धारण करता है।

[७४७] (दिवः न सानु) द्युलोकके उच्च स्थानको (स्तनयन्) निनादित करता हुआ (अचिक्रदत्) शब्द करता है। (यस्य धर्मभिः) जिसके धारण सामर्थ्यसे (द्यौः च पृथिवी) द्युलोक और पृथिवी धारण की जाती है। ऐसा यह (सोमः) सोम (इन्द्रस्य सख्यं) इन्द्रके साथ मित्रता (विवेविदत्) करना जानता है। ऐसा यह (सोमः) सोमरस (पुनानः) स्वच्छ किया जाता है और (कलशेषु सीदति) कलशोंमें रहता है ॥ ९ ॥

१ यह सोम (दिवः सानुं न) द्युलोकके उच्च भागको (स्तनयन्) निनादित करता हुआ (अचिक्रदत्) शब्द करता है।
२ यस्य धर्मभिः द्यौः च पृथिवी— जिस सोमके सामर्थ्योंसे द्युलोक और पृथिवीका धारण हो रहा है।
३ सोमः इन्द्रस्य सख्यं विवेविदत्— यह सोम इन्द्रके साथ मित्रता करता है।
४ सोमः पुनानः कलशेषु सीदति— सोमरस छाना जाकर कलशोंमें रहता है।

७४८ ज्योतिर्य॒ज्ञस्य॑ पवते॒ मधु॑ प्रि॒यं पि॒ता दे॒वानां॑ जनि॒ता वि॒भूव॑सुः ।
दधा॑ति॒ रत्नं॑ स्व॒धयो॑रपी॒च्यं॑ म॒दिन्त॑मो मत्स॒र इ॑न्द्रि॒यो रसः॑ ॥ १० ॥
७४९ अ॒भि॒क्रन्द॑न् क॒लशं॑ वा॒ज्य॑र्षति॒ पति॑र्दि॒वः श॒तधा॑रो विचक्ष॒णः ।
हरि॑र्मि॒त्रस्य॒ सद॑नेषु सीदति मर्मृजा॒नोऽवि॑भिः॒ सिन्धु॑भि॒र्वृषा॑ ॥ ११ ॥
७५० अग्रे॒ सिन्धू॑नां॒ पव॑मानो अर्ष॒त्यग्रे॑ वा॒चो अ॑ग्रि॒यो गोषु॑ गच्छति ।
अग्रे॒ वाज॑स्य भजते महाध॒नं स्वा॑यु॒धः सो॒तृभिः॑ पूयते॒ वृषा॑ ॥ १२ ॥

अर्थ— [७४८] (यज्ञस्य ज्योतिः) यज्ञका प्रकाशक सोम (देवानां) देवोंके लिये (प्रियं मधु) प्रिय मधुर रसको (पवते) निकालकर देता है। यह सोम (पिता) रक्षक (देवानां जनिता) देवोंको उत्पन्न करनेवाला (विभूवसुः) अधिक धनसे युक्त यह सोम (अपीच्यं रत्नं) गुप्त धनको (स्वधयोः) द्यावा पृथिवीके लिये (दधाति) धारण करता है। यह सोमरस (मदिन्तमः) अतिशय आनंद देनेवाला (मत्सरः) प्रसन्नता करनेवाला (इन्द्रियः रसः) इन्द्रके लिये प्रिय यह सोमरस है ॥ १० ॥

१ यज्ञस्य ज्योतिः देवानां प्रियं मधु पवते— यज्ञका प्रकाशक देवोंके लिये प्रिय ऐसा यह मधुर सोमरस निकाला गया है।

२ देवानां जनिता पिता विभूवसुः अपीच्यं रत्नं स्वधयोः दधाति— देवोंमें देवत्व उत्पन्न करनेवाला, अनेक धनोंसे युक्त गुप्त धनको धारण करनेवाला द्यावा पृथिवीके लिये धारण करता है।

३ मदिन्तमः मत्सरः इन्द्रियः रसः— अति आनंद देनेवाला प्रसन्न करनेवाला इन्द्रके लिये आनन्द देनेवाला यह रस है।

[७४९] (वाजी) गमनशील यह सोम (अभिक्रन्दन्) शब्द करता हुआ (कलशं अभि अर्षति) कलशमें जाता है। यह (दिवः पतिः) द्युलोकका स्वामी (शतधारः विचक्षणः) सेकडों धाराओंसे पात्रमें आनेवाला उत्तम रीतिसे निरीक्षण करनेवाला है। (हरिः) हरे रंगका यह सोम (मित्रस्य सदनेषु सीदति) मित्ररूपी यज्ञके स्थानमें बैठता है। यह (वृषा) सामर्थ्यवान् सोम (अविभिः मर्मृजानः) भेडीके बालोंकी छाननीसे पवित्र होता हुआ (सिन्धुभिः) जलोंसे मिश्रित होकर रहता है ॥ ११ ॥

१ वाजी अभिक्रन्दन् कलशं अभि अर्षति— यह प्रगतिशील सोमरस शब्द करता हुआ कलशमें जाता है।

२ शतधारः विचक्षणः— सेंकडों धाराओंसे यह तेजस्वी रस देता है और वह उत्तम निरीक्षण करता है।

३ हरिः मित्रस्य सदनेषु सीदति— यह हरे रंगका सोम यज्ञके स्थानमें रहता है।

४ वृषा अविभिः मर्मृजानः सिन्धुभिः— यह बलवर्धक सोम भेडीके बालोंकी छाननीसे छाना जाकर जलके साथ मिश्रित होकर रहता है।

[७५०] (यः पवमानः) यह सोम (सिंधूनां अग्रे अर्षति) जलोंमें मिलकर रहता है। (अग्रियः) यह अग्रगण्य सोम (अग्रे) अग्रभागमें (वाचः) स्तुतियोंके प्राप्त होकर (गोषु गच्छति) गोदुग्धमें मिश्रित होता है। (वाजस्य) अन्नके लाभके लिये (महाधनं) युद्धमें (भजते) जाता है। यह (स्वायुधः) उत्तम शस्त्रोंके साथ रहनेवाला (वृषा) बलका संवर्धन करनेवाला सोम (सोतृभिः पूयते) रस निकालनेवाले इसका रस निकालते हैं ॥ १२ ॥

७५१ अयं मतवाञ्छकुनो यथा हितो ऽव्ये ससार पवमान ऊर्मिणा ।
तव क्रत्वा रोदसी अन्तरा कवे शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते ॥ १३ ॥
७५२ द्रापिं वसानो यजतो दिविस्पृश मन्तरिक्षप्रा भुवनेष्वर्पितः ।
स्वर्जज्ञानो नभसाभ्यक्रमीत् प्रत्नमस्य पितरमा विवासति ॥ १४ ॥
७५३ सो अस्य विशे महि शर्म यच्छति यो अस्य धाम प्रथमं व्यानशे ।
पदं यदस्य परमे व्योमन् यतो विश्वा अभि सं याति संयतः ॥ १५ ॥

अर्थ— १ यः पवमानः सिन्धूनां अग्रे अर्षति— यह सोम जलोंमें मिलकर आगे बढता जाता है ।
२ अग्रियः अग्रे वाचः गोषु गच्छति— अग्रगामी यह सोम अग्रभागमें स्तुतिको प्राप्त करके गोदुग्धमें मिश्रित किया जाता है ।
३ वाजस्य महाधनं भजते— अन्न प्राप्त करनेके लिये युद्धमें जाता है ।
४ महाधनं— बहुत धन युद्धमें विजय प्राप्त होनेसे प्राप्त हो सकता है ।
५ स्वायुधः— (सु-आयुधः) उत्तम शस्त्रास्त्र अपनेपास रखनेवाला वीर । यही धन प्राप्त कर सकता है ।
६ वृषा— बलवान, सामर्थ्यवान ।

[७५१] (अयं) यह (मतवान्) स्तोत्रोंसे स्तुति किया जानेवाला (पवमानः) सोम (हितः) यज्ञस्थानमें रखा है (यथा शकुनः) जैसा शकुन नामक पक्षी शीघ्र दौडता है, उस प्रकार हे (कवे) ज्ञानी सोम ! (ऊर्मिणा) लहरियोंसे (अव्ये ससार) मेढीके बालोंकी छाननीमेंसे नीचेके पात्रमें आता है । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (तव क्रत्वा) तेरे कर्तृत्वसे (रोदसी अन्तरा) द्युलोक और पृथिवी लोकके मध्यमें यह (शुचिः) शुद्ध (सोमः) सोम (धिया पवते) स्तुतिके साथ शुद्ध होता है ॥ १३ ॥

१ अयं मतवान पवमानः हितः— यह स्तुत्य शुद्ध सोम यज्ञस्थानमें रखा है ।
२ यथा शकुनः ऊर्मिणा अव्ये ससार— जैसा शकुन पक्षी दौडता है उस प्रकार यह सोम मेढीके बालोंकी छाननीमेंसे छाना जाकर नीचेके पात्रमें आता है ।
३ हे इन्द्र ! तव क्रत्वा रोदसी अन्तरा शुचिः सोमः धिया पवते— हे इन्द्र ! तेरे कर्तृत्वसे दोनों द्युलोक और भूलोकके मध्यमें यह शुद्ध होनेवाला सोम स्तोत्र पाठके साथ रस दे रहा है ।

[७५२] (दिविस्पृशं द्रापिं वसानः) द्युलोकको स्पर्श करनेवाले कवचको धारण करनेवाला (यजतः) पूजनीय (अन्तरिक्षप्राः) अन्तरिक्षको भरपूर रीतिसे भर देनेवाला सोम (भुवनेषु अर्पितः) उदकसे मिश्रित होकर (स्वः जज्ञान) स्वर्गसुख उत्पन्न करनेवाला (नभसा अभ्यक्रमीत्) जलके साथ रहनेवाला सोम यज्ञस्थानमें आता है । (अस्य पितरं) इसके पालन कर्ता (प्रत्नं) पुराणे इन्द्रकी (आ विवासति) परिचर्या करता है ॥ १४ ॥

१ दिविस्पृशं द्रापिं वसानः यजतः अन्तरिक्षप्राः भुवनेषु अर्पितः स्वः जज्ञानः नभसा अभ्यक्रमीत्— द्युलोकको स्पर्श करनेवाला, तेजका कवच पहननेवाला, पूज्य अन्तरिक्षको भरपूर भर देनेवाला भुवनोंमें भरा हुआ, सुख देनेवाला जलके साथ मिला हुआ सोमरस यज्ञस्थानमें आकर रहता है ।
२ अस्य पिता प्रत्नं आ विवासति— इसका पालनकर्ता यजमान पुराण पुरुष इन्द्रकी परिचर्या करता है । यज्ञ करके इन्द्रकी परिचर्या करता है ।

[७५३] (सः) वह सोम (अस्य विशे) इस इन्द्रके प्रवेशके लिये (महि शर्म यच्छति) बडा सुख देता है । (यः) जो सोम (अस्य धाम) इस इन्द्रके शरीरमें (प्रथमं व्यानशे) प्रथम प्रविष्ट हुआ है । (यत् अस्य) जो इस सोमका (परमे व्योमन्) उत्तम श्रेष्ठ द्युलोकमें (पदं) स्थान होता है । (यतः) जिससे तृप्त हुआ इन्द्र (विश्वाः संयतः) सब संग्रामोंमें (अभि संयाति) जाता है ॥ १५ ॥

७५४ प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्र मिनाति संगिरम् ।
मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयाम्ना पथा ॥ १६ ॥
७५५ प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवसनेष्वक्रमुः ।
सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभो ऽभि धेनवः पयसेमशिश्रयुः ॥ १७ ॥
७५६ आ नः सोम संयतं पिप्युषीमिष मिन्दो पवस्व पवमानो अस्रिधम्
या नो दोहते त्रिरहन्नसंश्चुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत् सुवीर्यम् ॥ १८ ॥

अर्थ— १ सः अस्य विशे महि शर्म यच्छति— वह सोम इन्द्रके प्रवेश करनेके समय बडा सुख देता है ।
२ यः अस्य धाम प्रथमं व्यानशे— जो सोम इस इन्द्रके स्थानमें प्रथम प्रविष्ट हुआ है ।
३ यत् अस्य परमे व्योमन् पदं— जो इस सोमका परम श्रेष्ठ द्युलोकमें स्थान है ।
४ यतः विश्वा संयतः अभि संयाति— जिससे बल प्राप्त कर इन्द्र अनेक युद्धोंमें जाता है, और शत्रुसे युद्ध करता है । वह बल बढानेवाला यह सोम है ।

[७५४] (इन्दुः) सोम (इन्द्रस्य निष्कृतं) इन्द्रके उदरके स्थानमें (प्रो अयासीत्) जाता है । (सखा) मित्र हुआ यह सोम (सख्युः) मित्ररूप इन्द्रके (संगिरं) उदरमें (न प्र मिनाति) कष्ट नहीं देता है । (मर्यः इव युवतिभिः) पुरुष जैसा स्त्रियोंके साथ (सं अर्षति) मिलकर रहता है वैसा (सोमः) सोम (शतयाम्ना पथा) सैंकडों मार्गोंसे (कलशे समर्षति) कलशमें जाता है ॥ १६ ॥

१ इन्दुः इन्द्रस्य निष्कृतं प्रो अयासीत्— सोमरस इन्द्रके पेटमें विशेष रीतिसे जाता है ।
२ सखा सख्युः संगिरं न प्र मिनाति— यह मित्र जैसा सोम मित्ररूपी इन्द्रके पेटमें किसी प्रकारके कष्ट नहीं देता है ।
३ मर्यः युवतिभिः सं अर्षति— पुरुष जैसा स्त्रियोंके साथ मिलजुलकर रहता है ।
४ सोमः शतयाम्ना पथा कलशे समर्षति— सोम सेंकडों मार्गोंसे कलशमें जाकर रहता है । अनेक रीतियोंसे निकाला यह सोमरस कलशोंमें छानकर रखा जाता है ।

[७५५] हे सोम ! (वः धियः) आपको सुबुद्धियां (मन्द्रयुवः) आनंददायक स्तुतिकी इच्छावाले (विपन्युवः) स्तोता (पनस्युवः) यज्ञकर्ता (संवसनेषु प्र अक्रमुः) यज्ञगृहोंमें प्राप्त करते हैं । (सोमं) सोमकी (मनीषाः) मनन करनेवाले (स्तुभः अभ्यनूषत) स्तुतियां करते हैं । और (धेनवः) गौवें (पयसा) अपने दूधसे (ईं) इस सोमको (अशिश्रयुः) मिलाती है ॥ १७ ॥

१ वः धियः मन्द्रयुवः विपन्युवः पनस्युवः संवसनेषु प्र अक्रमुः— आपकी उत्तम बुद्धियां स्तोता याजक यज्ञकर्ता यज्ञोंमें प्राप्त करते हैं ।
२ सोमं मनीषाः स्तुभः अभ्यनूषत— सोमकी स्तुतियां मननशील विद्वान करते हैं ।
३ धेनवः पयसा ईं अशिश्रियुः— गौवें अपने दूधको इस सोमरसके साथ मिलाती हैं ।

[७५६] हे (इन्दो सोम) चमनेवाले सोम ! (पवमानः) शुद्ध होनेवाला तू (नः) हमारे लिये (संयतं) एकत्रित हुआ (पिप्युषीं इषं) पुष्टिकारक अन्न (अस्रिधं पवस्व) क्षीणता न करके रसके रूपमें दओ । (या) जो (क्षुमत् वाजवत्) शब्द करता हुआ मधुता युक्त (असश्चुषी) प्रतिबंध रहित (दोहते) दुहा है । (क्षुमत्) शब्द युक्त (वाजवत्) अन्नरूप (मधुमत्) मीठा (सुवीर्यं) उत्तम रीतिसे वीर्य बढानेवाले पुत्र मिले ऐसा वीर्य बढानेवाला (अहन् त्रिः) एक दिनमें तीन बार दूध दो ॥ १८ ॥

×

७५७ वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नः प्रतरीतोषसो दिवः ।
क्राणा सिन्धूनां कलशाँ अवीवश- दिन्द्रस्य हार्दाविशन् मनीषिभिः ॥ १९ ॥
७५८ मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कवि- र्नृभिर्यतः परि कोशाँ अचिक्रदत् ।
त्रितस्य नाम जनयन् मधु क्षर- दिन्द्रस्य वायोः सख्याय कर्तवे ॥ २० ॥
७५९ अयं पुनान उषसो वि रोचय- दयं सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत् ।
अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरं सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥ २१ ॥

अर्थ— १ हे इन्दो सोम ! पवमानः नः संयतं पिप्युषीं इषं अस्रिधं पवस्व— हे चमकनेवाले सोम ! शुद्ध होता हुआ तूं हमारे लिये एकत्रित हुआ पुष्टिकारक अन्न, क्षीणता न करे, ऐसा दो।

२ या क्षुमत् वाजवत् असश्चुषी दोहते— जो गौ शब्द करती हुई प्रतिबंध रहित होकर दूध देती है।

३ क्षुमत् वाजवत् मधुमत् सुवीर्यं अहन् त्रिः— शब्द करके अन्नरूप मधुरता तथा उत्तम वीर्य बढानेवाला दिनमें तीनवार निकाला दूध होता है वैसा दूध हमें प्राप्त हो।

[७५७] यह (सोमः) सोम (मतीनां वृषा) बुद्धियोंको बढानेवाला (विचक्षणः) विशेष रीतिसे देखनेवाला (अह्नः) दिनका (उषसः दिवः) उषा तथा द्युलोकका (प्रतरीता) वर्धन करनेवाला (पवते) रस देता है। (सिन्धूनां क्राणा) उदकोंका कर्ता (कलशान् अवीवशत्) कलशोंमें जाता है। (इन्द्रस्य हार्दि आविशन्) इन्द्रके हृदयमें प्रविष्ट होता है। (मनीषिभिः) बुद्धिवानोंके द्वारा स्तुति किया जाता है ॥ १९ ॥

१ सोमः मतीनां वृषा— सोमरस बुद्धियोंको बढाता है।

२ विचक्षणः— विशेष निरीक्षण करनेकी शक्ति बढाता है।

३ अह्नः उषसः दिवः प्रतरिता— दिन, उषःकाल, द्युलोककी उन्नति करता है।

४ सिन्धूनां क्राणा-- नदियोंको चलाता है, निर्माण करता है।

५ कलशान् अवीवशत्-- कलशोंमें सोमरस रखा जाता है।

६ इन्द्रस्य हार्दि आविशत्— इन्द्रके हृदयको प्रिय है। शूर पुरुषको यह प्रिय होता है।

७ मनीषिभिः— बुद्धिमानोंको यह स्तुति करने योग्य है।

[७५८] यह सोम (मनीषिभिः पवते) ज्ञानियोंके द्वारा रस निकाला जाता है। यह (पूर्व्यः) प्राचीन कालसे (कविः) ज्ञान बढानेवाला करके प्रसिद्ध है। (नृभिः) याजकोंके द्वारा (यतः) नियमोंके अनुसार (कोशान्) पात्रोंमें (परि अचिक्रदत्) शब्द करता हुआ जाता है। (त्रितस्य नाम) इन्द्रके नामको (जनयन्) प्रसिद्ध करता हुआ (मधु क्षरन्) मधुर रस देता है (इन्द्रस्य वायोः) इन्द्र और वायुके (सख्याय कर्तवे) मित्रता करनेके लिये यह सोम अपना रस देता है ॥ २० ॥

१ मनीषिभिः पवते— ज्ञानी लोग इसका रस निकालते हैं।

२ पूर्व्यः कविः— यह सोम पूर्वकालसे ज्ञान बढानेवाला है।

३ नृभिः यतः कोशान् परि अचिक्रदत्— याजकोंके द्वारा नियमबद्ध हुआ यह सोम यज्ञपात्रोंमें शब्द करता हुआ जाता है।

४ त्रितस्य नाम जनयन् मधु क्षरत्— इन्द्रके नामको प्रकट करता हुआ यह सोम मधुर रस देता है।

५ इन्द्रस्य वायोः सख्याय कर्तवे— इन्द्र तथा वायुके साथ मित्रता करनेके लिये यह सोम रस देता है।

[७५९] (अयं पुनानः) यह सोम शुद्ध होता हुआ (उषसः विरोचयत्) उषःकालोंको तेजस्वी करता है। (अयं) यह सोम (सिन्धुभ्यः) सिंधुओंके जलोंसे युक्त होकर (लोककृत्) लोकोंका सहायक (अभवत्) होता है। (अयं सोमः) यह सोम (आशिरं दुहानः) रस निकालता हुआ (चारु मत्सरः) उत्तम आनंद देता हुआ (हृदे पवते) हृदयको देता हुआ रस निकाल देता है ॥ २१ ॥

७६० पर्वस्व सोम दिव्येषु धार्मसु सृजान इन्दो कलशे पवित्र आ ।
सीदन्निन्द्रस्य जठरे कनिक्रदुन्नृभिर्यतः सूर्यमारोहयो दिवि ॥ २२ ॥
७६१ अद्रिभिः सुतः पवसे पवित्र आँ इन्दुरिन्द्रस्य जठरेष्वाविशन् ।
त्वं नृचक्षा अभवो विचक्षण सोम गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरप ॥ २३ ॥
७६२ त्वां सोम पर्वमानं स्वाध्यो ऽनु विप्रासो अमदन्नवस्यवः ।
त्वां सुपर्ण आभरद् दिवस्परी न्दो विश्वाभिर्मतिभिः परिष्कृतम् ॥ २४ ॥

अर्थ— १ अयं पुनानः उषसः विरोचयत्— यह सोम शुद्ध होता हुआ उषाओंको तेजस्वी बनाता है ।

२ अयं सिन्धुभ्यः लोककृत् अभवत्— यह सिन्धुओंके जलमें मिलकर लोकसहायता करनेवाला होता है । लोगोंकी अर्थात् याजकोंकी सहायता करनेवाला होता है ।

३ अयं सोमः आशिरं दुहानः चारु मत्सरः हृदे पवते— यह सोमरस दूधके साथ मिलकर मधुर तथा आनंद देनेवाला होता है ।

[७६०] हे (इन्दो सोम) प्रकाश देनेवाले सोम (दिव्येषु धामसु) दिव्य यज्ञ स्थानोंमें (आ पवस्व) रस दे । (कलशे पवित्रे सृजानः) कलशमें छाननेके बाद रखा यह सोम है । (इन्द्रस्य जठरे) इन्द्रके पेटमें (कनिक्रदत् सीदन्) शब्द करता हुआ जाता है । (नृभिः यतः) याजकोंने यज्ञमें रखा यह सोम (दिवि) द्युलोकमें (सूर्यं आरोहयः) सूर्यको चढाता है ॥ २२ ॥

१ हे इन्दो सोम ! दिव्येषु धामसु आ पवस्व— हे सोम तू दिव्य यज्ञस्थानोंमें अपना रस दो ।

२ कलशे पवित्रे सृजानः— कलशमें तथा छाननीमेंसे गुजरता हुआ तू सोम हो ।

३ इन्द्रस्य जठरे कनिक्रदत् सीदन् दिवि सूर्यं आरोहयः— इन्द्रके पेटमें शब्द करता हुआ पहुंचता है और वह सोम द्युलोकमें सूर्यको पहुंचाता है ।

[७६१] हे (इन्दो) सोम ! तू (अद्रिभिः सुतः) पत्थरोंसे कूटकर निकाला रस (पवित्रे आ पवसे) छाननीमेंसे शुद्ध होता है । और (इन्द्रस्य जठरेषु आविशन्) इन्द्रके पेटमें प्रवेश करता है । हे (सोम) सोम ! (विचक्षण) विशेष निरीक्षण करनेवाला तथा (नृचक्षाः) मानवोंका निरीक्षण करनेवाला हो । (अंगिरोभ्यः) यज्ञकर्ता अंगिरोंके लिये (गोत्रं अपः) गौओंका रक्षण करनेवाला जल (अप अवृणोः) अपने पास रखता है ॥ २३ ॥

१ अद्रिभिः सुतः पवित्रे आ पवसे— पत्थरोंसे कूटकर निकाला यह सोमरस छाननीपर छाना जाता है ।

२ इन्द्रस्य जठरेषु आविशन्— इन्द्रके पेटमें यह सोमरस जाता है ।

३ हे विचक्षण सोम ! नृचक्षाः अंगिरोभ्यः गोत्रं अपः अप अवृणोः— हे विशेष रीतिसे निरीक्षण करनेवाले सोम ! तू मानवोंका निरीक्षण करता है, और यज्ञकर्ताओंके लिये गौओंका रक्षण करनेका सामर्थ्य देता है ।

४ गोत्रं— (गो-त्रं) गौओंका संरक्षण करनेकी शक्ति मानवोंमें बढे ।

[७६२] हे (सोम) सोम ! (पवमानं त्वां) रस निकाले तेरी (स्वाध्यः विप्रासः) स्वाध्याय करनेवाले ब्राह्मण (अवस्यवः) अपना संरक्षण करनेकी इच्छा करके (अनु अमदन्) स्तुति करते हैं । हे (इन्दो) सोम ! (त्वां सुपर्णः) तुझे श्येन पक्षी (दिवः परि) द्युलोकके ऊपरसे (आभरत्) ले आया है । तू (विश्वाभिः मतिभिः परिष्कृतं) स्तुतियोंसे प्रशंसित हुआ है ॥ २४ ॥

७६३ अव्ये॑ पुना॒नं परि॒ वार॑ ऊ॒र्मिणा॒ हरिं॑ नवन्ते अ॒भि स॒प्त धे॒नवः॑ ।
अ॒पामु॒पस्थे॑ अध्या॒यवः॑ क॒वि॒मृ॒तस्य॒ योना॑ महि॒षा अ॑हेषत ॥ २५ ॥
७६४ इन्दुः॑ पुना॒नो अति॑ गाहते॒ मृधो॒ विश्वा॑नि कृ॒ण्वन् त्सु॒पथा॑नि॒ यज्य॑वे ।
गाः कृ॑ण्वा॒नो नि॒र्णिजं॑ हर्य॒तः क॒वि॒रत्यो॒ न क्रीळ॒न् परि॒ वार॑मर्षति ॥ २६ ॥
७६५ अ॒स॒श्चतः॑ श॒तधा॑रा अ॒भि॒श्रियो॒ हरिं॑ नव॒न्तेऽव॒ ता उ॑द॒न्युवः॑ ।
क्षिपो॑ मृजन्ति॒ परि॒ गोभि॒रावृ॑तं तृ॒तीये॑ पृ॒ष्ठे अधि॑ रोच॒ने दि॒वः ॥ २७ ॥

अर्थ— १ हे सोम ! स्वाध्यः विप्रास पवमानं त्वां अवस्यवः अनु अमदन्— हे सोम स्वाध्याय करनेवाले ब्राह्मण शुद्ध करते हुए तेरी स्तुति, अपना संरक्षण करनेकी इच्छासे करते हैं ।

२ हे इन्दो सुपर्णः त्वां दिवः परि आभरत्— हे सोम ! श्येन पक्षीने तुझे द्युलोकके ऊपरसे लाया है । हिमालयके शिखरपर सोम उगता है । वहांसे उस सोमको भूमिपर लाते हैं ।

३ विश्वाभिः मतिभिः परिष्कृतम्— अनेक प्रकारकी स्तुतियां गाकर उस सोमको यज्ञकर्ता शुद्ध करते हैं।

[७६३] (अव्ये वारे) भेडीके बालोंकी छाननीके ऊपर (ऊर्मिणा परि पुनानं) रसरूपमें शुद्ध होनेवाले (हरिं) हरे रंगके सोमरसको (सप्त धेनवः) सात नदियां अथवा गौवें (अभि नवन्ते) प्राप्त करती हैं । (कविं) ज्ञान बढानेवाले सोमको (अपां उपस्थे) जलोंके समीप (ऋतस्य योनौ) यज्ञके स्थानमें (महिषाः आयवः) बडे ज्ञानी लोग (अधि अहेषत) प्रेरित करते हैं ॥ २५ ॥

१ अव्ये वारे ऊर्मिणा परिपुनानं हरिं सप्त धेनवः अभि नवन्ते— भेडीके बालोंकी छाननीपर लहरियोंसे शुद्ध होनेवाले सोमरसको सात गौवें अपने दूधमें प्राप्त करती हैं । गौओंके दूधके साथ सोमरस मिलाया जाता है ।

२ कविं अपां उपस्थे ऋतस्य योनौ महिषा आयवः अधि अहेषत— इस ज्ञान बढानेवाले सोमको यज्ञके स्थानमें जानेकी ज्ञानी पुरुष प्रेरणा करते हैं । यज्ञके स्थानमें सोम लाया जाता है और उसका रस इन्द्र आदि देवताओंको अर्पण किया जाता है । और पश्चात् यज्ञकर्ता जन उस रसका सेवन करते हैं ।

[७६४] यह (इन्दुः) सोमरस (पुनानः) शुद्ध होता हुआ (मृधः) हिंसक शत्रुओंको (अतिगाहते) लांघकर जाता है, तथा (यज्यवे) यज्ञ करनेवालेके लिये (सुपथानि कृण्वन्) उत्तम मार्ग करता है । (निर्णिजं गाः कृण्वानः) अपना रूप गौओंके समान करता है । (हर्यतः कविः) प्रगतिशील ज्ञानी जैसा यह सोम (अत्यः न) घोडेके समान (क्रीळन्) खेलता हुआ (वारं परि अर्षति) छाननीमेंसे शुद्ध होकर नीचेके पात्रमें आता है ॥ २६ ॥

१ इन्दुः पुनानः मृधः अतिगाहते— सोमरस शुद्ध होकर शत्रुओंको दूर करता है ।

२ यज्यवे सुपथानि कृण्वन्— यज्ञकर्ताके लिये उत्तम मार्ग उन्नति प्राप्त करनेके लिये कर देता है ।

३ हर्यतः कविः— प्रगति करनेवाले ज्ञानी जैसा यह सोम है ।

४ अत्यः न क्रीडन्— घोडेके समान यह क्रीडामें कुशलता बढाता है ।

५ वारं परि अर्षति — भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे शुद्ध होता हुआ यह गुजरता है और शुद्ध होकर यज्ञमें आ जाता है ।

[७६५] (असश्चतः) मिले हुए (शतधाराः) सैंकडों धाराओंसे (अभि श्रियः) चारों ओरसे साथ रहनेवाले (ताः) वे सूर्यकिरण (हरिं अव नवन्ते) हरे सोमके साथ रहते हैं । वे (उदन्युवः) उदककी इच्छा करते हैं । (क्षिपः) अंगुलियां (गोभिः आवृतं) गोदुग्धसे मिले सोमरसको (मृजन्ति) शुद्ध करती हैं । यह (दिवः रोचने) द्युलोकके (तृतीये पृष्ठे) तीसरे स्थानमें रहे सोमके लिये होता है ॥ २७ ॥

७६६ तवे॒माः प्र॒जा दि॒व्यस्य॒ रेत॑स॒स्त्वं विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य राजसि ।
अथे॒दं विश्वं॑ पवमान ते॒ वशे॒ त्वमि॑न्दो प्रथ॒मो धा॑म॒धा अ॑सि ॥ २८ ॥
७६७ त्वं स॑मु॒द्रो अ॑सि विश्व॒वित् क॑वे॒ तवे॒माः पञ्च॑ प्र॒दिशो॒ विध॑र्मणि ।
त्वं द्यां च॑ पृथि॒वीं चाति॑ जभ्रिषे॒ तव॒ ज्योतीं॑षि पवमान॒ सूर्यः॑ ॥ २९ ॥
७६८ त्वं प॒वित्रे॒ रज॑सो॒ विध॑र्मणि दे॒वेभ्यः॑ सोम पवमान पूयसे ।
त्वामु॒शिजः॑ प्रथ॒मा अ॑गृभ्णत॒ तुभ्ये॒मा विश्वा॒ भुव॑नानि येमिरे ॥ ३० ॥

अर्थ— १ असश्चतः शतधाराः अभिश्रियः ताः हरिं अव नमन्ते— साथ रहे सेंकडों धाराओंसे तेजस्वी वे किरण सोमके साथ रहते हैं। इस कारण सोमरस तेजस्वी दीखता है।

२ क्षिपः गोभिः आवृतं मृजन्ति— अंगुलियां गोदुग्धके साथ मिले सोमको शुद्ध करती हैं। दबाकर रस निकालती हैं।

३ दिवः रोचने तृतीये पृष्ठे— द्युलोकके चमकीले तीसरे स्थानमें सोम रहता है। इस सोमका रस निकाला जाता है, और इस रसका यज्ञ किया जाता है।

[७६६] (तव दिव्यस्य रेतसः) तेरे दिव्य वीर्यसे (इमाः प्रजाः) ये सब प्रजाएं उत्पन्न हुई हैं। (त्वं) तू (विश्वस्य भुवनस्य) सब भुवनोंका (राजसि) स्वामी है। हे (पवमान) सोम! (अथ इदं विश्वं) और यह सब विश्व (त्वे वशे) तेरे आधीन हुआ है। हे (इन्दो) सोम! (त्वं) तू (प्रथमः) पहिला (धामधा असि) विश्वको धारण करनेवाला हो ॥ २८ ॥

१ तव दिव्यस्य रेतसः इमाः प्रजाः— तेरे दिव्य वीर्यसे ये सब प्रजाएं उत्पन्न हुई हैं। इस सब विश्वका उत्पन्न करनेवाला तू है।

२ त्वं विश्वस्य भुवनस्य राजसि— तू इन सब भुवनोंका राजा है।

३ हे पवमान! अथ इदं विश्वं त्वे वशे— हे सोम! यह सब विश्व तेरे वशमें रहा है।

४ हे सोम! त्वं प्रथमः धामधाः असि— हे सोम! तू पहिला स्थानका धारण करनेवाला, सबका आश्रयदाता है। तेरे आश्रयसे यह सब रहा है।

[७६७] हे (कवे) ज्ञानी सोम! तू (समुद्रः) जलमय रसरूप (असि) हो, तथा (विश्ववित्) सर्वज्ञ हो, अतः (तव विधर्मणि) तेरी विशेष धारण करनेकी शक्तिसे ये (पञ्च प्रदिशः) पांचो दिशाएं रही हैं। (त्वं द्यां च पृथिवीं च) तू द्यौ और पृथिवीको (जभ्रिषे) धारण करता है। हे (पवमान) सोम! (सूर्यः) सूर्य (तव ज्योतींषि) तेरे तेजोंको बढाता है ॥ २९ ॥

१ कवे! समुद्रः असि— हे ज्ञानसंवर्धक सोम! तू रसका समुद्र ही हो।

२ विश्ववित्— सबको यथायोग्य रीतिसे जाननेवाला हो।

३ तव विधर्मणि पञ्च प्रदिशः तेरी विशेष धारण करनेकी शक्तिसे ये पांचो दिशाएं रही हैं। तेरा आधार इन दिशाओंमें रहे पदार्थोंको है।

४ त्वं द्यां च पृथिवीं च जभ्रिषे— तू द्यु और पृथिवीका धारण करता है।

५ हे पवमान! तव ज्योतींषि सूर्यः— हे सोम! तेरा प्रकाश सूर्यके रूपसे बाहर आया है।

[७६८] हे (पवमान सोम) शुद्ध होनेवाले सोम! (त्वं) तू (रजसः विधर्मणि) रसके धारक (पवित्रे) छाननीमेंसे (देवेभ्यः पूयसे) देवोंको देनेके लिये शुद्ध किया जाता है। (त्वां) तुझे (उशिजः) इच्छा करनेवाले (प्रथमाः) मुख्य ऋत्विज (अगृभ्णत) लेते हैं। (तुभ्यं) तेरे ऊपर (इमानि विश्वा भुवनानि) ये सब भुवन (येमिरे) प्रेम करते हैं ॥ ३० ॥

७६९ प्र रेभ एत्यति वारमव्ययं वृषा वनेष्वव चक्रदद्धरिः ।
सं धीतयो वावशाना अनूषत शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतम् ॥ ३१ ॥
७७० स सूर्यस्य रश्मिभिः परि व्यत तन्तुं तन्वानस्त्रिवृतं यथा विदे ।
नयन्नृतस्य प्रशिषो नवीयसीः पतिर्जनीनामुप याति निष्कृतम् ॥ ३२ ॥
७७१ राजा सिन्धूनां पवते पतिर्दिव ऋतस्य याति पथिभिः कनिक्रदत् ।
सहस्रधारः परि षिच्यते हरिः पुनानो वाचं जनयन्नुपावसुः ॥ ३३ ॥

अर्थ— १ हे पवमान सोम ! त्वं रजसः विधर्माणि पवित्रे देवेभ्यः पूयसे— हे पवित्र सोम ! तू रसका मुख्य आधार है, तू छाननीमेंसे देवोंको देनेके लिये शुद्ध होता है ।

२ त्वां उशिजः प्रथमाः अगृभ्णत— तुझे यज्ञ करनेवाले पहिले अर्थात् श्रेष्ठ ऋत्विज यज्ञके लिये प्राप्त करते हैं । सबसे पहिले तुझे प्राप्त करते हैं और पीछे यज्ञका प्रारंभ करते हैं ।

३ तुभ्यं इमानि विश्वानि भुवनानि येमिरे— तेरे ऊपर ये सब भुवन प्रेम करते हैं । सबके प्रेमका तू सोम ही मूल आधार है ।

[७६९] (रेभः) शब्द करनेवाला सोम (अव्ययं वारं) भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे (प्र अति एति) छाना जाता है । (वृषा) बलवान (हरिः) हरे रंगका सोम (वनेषु) उदकोंमें (अवचक्रदत्) शब्द करता हुआ जाता है । (धीतयः वावशानाः) छान करनेवाले याजक ऋत्विज (शिशुं) सोमकी (सं अनूषत) उत्तम रीतिसे स्तुति करते हैं । (मतयः पनिप्नतम्) स्तुतियां चलती रहती हैं ॥ ३१ ॥

१ रेभः अव्ययं वारं प्र अति एति— सोम भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे छाना जाता है ।

२ वृषा हरिः वनेषु अवचक्रदत्— बलवर्धक हरे रंगका सोम जलोंके साथ शब्द करता हुआ मिलता है ।

३ धीतयः वावशानाः शिशुं सं अनूषत— ध्यान करनेवाले ऋत्विज सोमकी स्तुति करते हैं ।

४ मतयः पनिप्नतम्— यज्ञस्थानमें सोमकी स्तुतियां चल रहीं हैं ।

[७७०] (सः) वह सोम (सूर्यस्य रश्मिभिः) सूर्यके किरणोंसे (परिव्यत) अपनेको घेरता है । (त्रिवृतं तन्तुं तन्वानः) तीन सवनोंसे युक्त यज्ञको फैलाता है (यथा विदे) यह कार्य करना वह जानता है । (ऋतस्य नवीयसीः प्रशिषः नयन्) यज्ञकी नवीन उत्तम इच्छाएं पूर्ण करता है । (जनीनां पतिः) याजकोंकी धर्मपत्नीयोंका यह स्वामी सोमरस (निष्कृतं उपयाति) अपने पात्रमें जाकर रहता है ॥ ३२ ॥

१ सः सूर्यस्य रश्मिभिः परिव्यत— वह सोम सूर्यके किरणोंसे अपने आपको घेर लेता है । सूर्यके किरण इसपर प्रकाशते रहते हैं ।

२ त्रिवृतं तन्तुं तन्वानः यथा विदे— तीन सवनोंवाला यज्ञ वह करता है, जैसा यज्ञ करना वह जानता है ।

३ ऋतस्य नवीयसी प्रशिषः नयन्— यज्ञके नवीन उद्देश्योंको वह ठीक रीतिसे करता है ।

४ जनीनां पतिः निष्कृतं उपयाति— स्त्रियोंका स्वामी यह सोम यज्ञमें अपने निश्चित स्थानमें आकर रहता है ।

[७७१] (सिन्धूनां राजा) जलोंका स्वामी (दिवः पतिः) द्युलोकका स्वामी (ऋतस्य पथिभिः) यज्ञके मार्गसे (कनिक्रदत् याति) शब्द करता हुआ जाता है । (सहस्रधारः) सहस्रों धाराओंसे आनेवाला (हरिः) हरे रंगका यह सोम याजकों द्वारा पात्रोंमें (परिषिच्यते) रखा जाता है । वह (पुनानः) शुद्ध होता हुआ (उपावसुः) यज्ञके पास रहनेकी इच्छा करनेवाला यह सोम (वाचं जनयन्) स्तुतिको निर्माण करता है ॥ ३३ ॥

७७२ पवमान महर्णो वि धावसि सूरो न चित्रो अव्ययानि पव्यया ।
गभस्तिपूतो नृभिरद्रिभिः सुतो महे वाजाय धन्याय धन्वसि ॥ ३४ ॥
७७३ इषमूर्जं पवमानाभ्यर्षसि श्येनो न वंसु कलशेषु सीदसि ।
इन्द्राय मद्वा मद्यो मदः सुतो दिवो विष्टम्भ उपमो विचक्षणः ॥ ३५ ॥

अर्थ— १ सिन्धूनां राजा— यह सोमरस नदियोंके जलके साथ मिलकर रहता है, अतः उसको नदियोंका राजा कहा जाता है।

२ दिवः पतिः— द्युलोकका यह स्वामी है। यह पर्वतोंके शिखरपर होता है, अतः यह द्युलोकका निवासी कहा है।

३ ऋतस्य पथिभिः कनिक्रदत् याति— यज्ञके मार्गोंसे यह सोम जाता है। यज्ञमें यह मुख्य पदार्थ है।

४ सहस्रधारः हरिः परिषिच्यते— हजारों धाराओंसे यह हरे रंगका सोम यज्ञपात्रोंमें रखा जाता है।

५ पुनानः उपावसुः वाचं जनयन्— छाना जानेवाला तथा यज्ञके समीप रहनेवाला यह सोम स्तुति-स्तोत्र याजकों द्वारा गानेकी प्रेरणा देता है।

[७७२] हे (पवमान) सोम ! (महि अर्णः) बहुत जलके पास (वि धावसि) तू जाता है। (सूरः न चित्रः) सूर्यके समान इष्ट या पूज्य होकर (अव्ययानि) मेंढीके बालोंके (पात्राणि) छाननेके पात्रोंमें (पव्यया) जाता है। (नृभिः आद्रिभिः सुतः) याजकोंने पत्थरोंसे कूटकर निकाला हुआ यह सोमरस (महे वाजाय) बडे युद्धके लिये (धन्याय) धन प्राप्त करनेके लिये (धन्वसि) जाता है ॥ ३४ ॥

१ हे पवमान ! महि अर्णः विधावसि— हे सोम ! तू बडे उदकमें दौडकर जाता है। उदकमें सोमरस मिलाया जाता है।

२ सूरः न चित्रः अव्ययानि पात्राणि पव्यया— सूर्यके समान तू पूजनीय है। ऐसा तू मेंढीके बालोंकी छाननीमेंसे छानकर यज्ञपात्रोंमें जाकर रहता है।

३ नृभिः अद्रिभिः सुतः— याजकोंने पत्थरोंसे कूटकर सोमका रस निकाला है।

४ महे वाजाय धन्याय धन्वसि— बडे युद्धमें धन प्राप्त करनेके लिये यह जाता है। वीर लोग सोमरस पीकर उत्साहित होकर युद्ध करते हैं और शत्रुको जीतकर उस शत्रुके धनपर अपना अधिकार जमाते हैं।

[७७३] हे (पवमान) सोम ! तू (इषं ऊर्जं) अन्न और बल (अभ्यर्षसि) बढाता है। (श्येनः न वंसु) श्येन पक्षी जैसा अपने घरमें आकर रहता है वैसा तू (कलशेषु सीदसि) कलशोंमें रहता है। (इन्द्राय) इन्द्रके लिये (मद्वा) उत्साह बढानेवाला (मद्यः) आनंदकारक (मदः सुतः) यह रस निकाला है। यह (दिवः विष्टम्भः) द्युलोकका धारण कर्ता (उपमा) उदाहरण देनेयोग्य (विचक्षणः) द्रष्टा है ॥ ३५ ॥

१ हे पवमान ! इषं ऊर्जं अभ्यर्षसि— हे सोम ! तू अन्न और बल बढाता है।

२ श्येनः न वंसु— श्येन पक्षी जैसा अपने स्थानमें जाकर रहता है।

३ कलशेषु सीदसि— वैसा तू यज्ञपात्रोंमें सोम रखा रहता है।

४ इन्द्राय मद्वा मद्यः मदः सुतः - इन्द्रको आनंद देनेवाला यह रस है।

५ दिवः विष्टम्भः— द्युलोकका यह आधार है।

६ उपमा विचक्षणः— उपमा देने योग्य यह सर्वद्रष्टा है।

७७४ सप्त स्वसा॑रो अ॒भि मा॒तर॒: शिशुं॒ नवं॑ जज्ञा॒नं जेन्यं॑ विप॒श्चित॑म् ।
अ॒पां ग॑न्ध॒र्वं दि॒व्यं नृ॒चक्ष॑सं॒ सोमं॒ विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य रा॒जसे॑ ॥ ३६ ॥
७७५ ई॒शा॒न इ॒मा भुव॑नानि॒ वीय॑से यु॒जा॒न इ॑न्दो ह॒रित॑: सुप॒र्ण्य॑: ।
तास्ते॑ क्षरन्तु॒ मधु॑मद्घृ॒तं पय॒स्तव॑ व्र॒ते सो॑म तिष्ठन्तु कृ॒ष्टय॑: ॥ ३७ ॥
७७६ त्वं नृ॒चक्षा॑ असि सोम वि॒श्वत॒: पव॑मान वृषभ॒ ता वि धा॑वसि ।
स न॑: पवस्व॒ वसु॑म॒द्धिर॑ण्यवद्व॒यं स्या॑म॒ भुव॑नेषु जी॒वसे॑ ॥ ३८ ॥

अर्थ— [७७४] (सप्त) सात (स्वसारः) बहिनें तथा (मातरः) माताएं (नवं जज्ञानं शिशुं) नवीन उत्पन्न हुए बालकको (जेन्यं) जयशील (विपश्चितं) ज्ञानी होने योग्य मानकर (अभि) पास जाती हैं, उस प्रकार (विश्वस्य भुवनस्य राजसे) सब भुवनका राज्य करनेकी इच्छासे (अपां गंधर्वं) पानीके साथ मिलाये गये (दिव्यं नृचक्षसं सोमं) दिव्य मानवोंका निरीक्षण करनेवाले सोमको (विश्वस्य भुवनस्य राजसे) सब भुवनोंके ऊपर विराजमान होनेके लिये रस निकालते हैं ॥ ३६ ॥

१ सप्त स्वसारः मातरः — सात नदियोंका जल यज्ञमें लाया जाता है और उस जलमें सोमरस मिलाया जाता है ।

२ नवं जज्ञानं शिशुं जेन्यं विपश्चितः अभि— नये उत्पन्न हुए पुत्रको जैसा प्रेमसे देखते हैं उस प्रकार याजक इस सोमको प्रेमसे देखते हैं ।

३ विश्वस्य भुवनस्य राजसे — सब भुवनको प्रकाशित करनेके लिये यज्ञमें सोम रखा रहता है ।

४ दिव्यं नृचक्षसं सोम— दिव्य रीतिसे सबका निरीक्षण करनेवाले सोमको यज्ञस्थानमें ऋत्विज रखते हैं ।

[७७५] हे (इन्दो) सोम ! (ईशानः) तू स्वामी है (इमा भुवनानि वीयसे) इन भुवनोंमें तू जाता है (हरितः सुपर्ण्यः) हरित वर्णके उत्तम गतिमान अश्वोंको रथमें (युजानः) जोडकर तू जाता है (ताः) वे (ते) तेरे लिये मधुमत् घृतं पयः ; मीठा घी और दूध (क्षरन्तु) देवें । हे (सोम) सोम ! (तव व्रते) तेरे व्रतमें (कृष्टयः तिष्ठन्तु) मनुष्य रहें ॥ ३७ ॥

१ हे इन्दो ! ईशानः, इमा भुवनानि वीयसे— हे सोम ! तू सबका स्वामी है । इन सब भुवनोंमें तू जाता है । यज्ञके लिये सोम लाया जाता है ।

२ हरितः सुपर्ण्यः युजानः— उत्तम गमन करनेवाले घोडोंको रथमें जोडता है । सोम लानेके रथको घोडे जोते जाते थे ।

३ ताः ते मधुमत् घृतं पयः क्षरन्तु— वे तेरे लिये मधुर घी और दूध देवें । सोममें ये मधुर दूध मिलाया जाता है ।

४ हे सोम तव व्रते कृष्टयः तिष्ठन्तु - हे सोम ! तेरे यज्ञरूपी व्रतमें मनुष्य आकर रहें ।

[७७६] हे (सोम) सोम ! (त्वं विश्वतः) तू सब प्रकारसे (नृचक्षाः असि) मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाला है । हे (पवमान वृषभ) सोमके बलवर्धक रस ! (ताः विधावसि) उन जलोंमें तू मिल जाता है । (सः नः पवस्व) वह तू हमारे लिये रस दे । वह तू हमें (वसुमत्) गौ आदिसे युक्त पशु तथा (हिरण्यवत्) सुवर्ण आदि धन दे दो । (वयं) हम (भुवनेषु) इन भुवनोंमें (जीवसे स्याम) दीर्घ जीवनसे युक्त हो जांय ॥ ३८ ॥

७७७ गोवित् पवस्व वसुविद्धिरण्यविद् रेतोधा इन्दो भुवनेष्वर्पितः ।
त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित् तं त्वा विप्रा उप गिरेम आसते ॥ ३९ ॥
७७८ उन्मध्व ऊर्मिर्वननां अतिष्ठिप दपो वसानो महिषो वि गाहते ।
राजा पवित्ररथो वाजमारुहत् सहस्रभृष्टिर्जयति श्रवो बृहत् ॥ ४० ॥
७७९ स भन्दना उदियर्ति प्रजावती र्विश्वायुर्विश्वाः सुभरा अहर्दिवि ।
ब्रह्म प्रजावद्रयिमश्वपस्त्यं पीत इन्दविन्द्रमस्मभ्यं याचतात् ॥ ४१ ॥

अर्थ – १ हे सोम ! त्वं विश्वतः नृचक्षाः असि— हे सोम ! तू सब प्रकारसे मानवोंका निरीक्षण करनेवाला है ।
२ हे पवमान वृषभ ! ताः विधावसि -- हे बलवान सोम ! तूं जलोंमें मिलता है । जलोंमें सोमरस मिलाकर पीया जाता है ।
३ सः नः पवस्व— वह तूं हमारे लिये रस दे ।
४ वसुमत् हिरण्यवत्— धन तथा सुवर्ण आदिसे युक्त हम होकर यहां रहें ।
५ वयं भुवनेषु जीवसे स्याम— हम इस भुवनमें दीर्घ जीवन प्राप्त करके सुखसे रहें ऐसा कर ।

[७७७] हे (सोम) सोम ! (गोवित्) गौवें प्राप्त करनेवाला, (वसुवित्) धनवान् (हिरण्यवित्) सुवर्ण युक्त, (रेतोधाः) उदकका धारण करनेवाला तथा (भुवनेषु अर्पितः) जलके साथ मिश्रित हुआ (पवस्व) रस दे दो । हे सोम ! (त्वं सुवीरः असि) तू उत्तम वीर है, तथा तू (विश्ववित्) सब जाननेवाला हो (तं त्वा) उस तुझको (इमे विप्राः) ज्ञानी लोग (गिरा उप आसते) स्तुति करते हुए तेरे पास बैठते हैं ॥ ३९ ॥

१ सोम ! गोवित— हे सोम ! तू गौवें प्राप्त करनेवाला है । गौवोंका दूध सोमरसमें मिलाया जाता है ।
२ वसुवित् हिरण्यवित् रेतोधाः भुवनेषु अर्पितः— हे सोम ! तू धन, सुवर्ण, वीर्य आदिसे युक्त होकर भुवनोंमें रहता है ।
३ भुवनेषु अर्पितः— तूं जलोंमें मिलाया जाता है ।
४ त्वं सुवीरः असि— तूं उत्तम वीर है । सोमरस वीरता बढाता है ।
५ विश्ववित्-- तू सबका ज्ञाता है ।
६ तं त्वा इमे विप्रा गिरा उप आसते— तेरी स्तुति ये ज्ञानी करते हुए यज्ञमें बैठे हैं ।

[७७८] (मध्वः ऊर्मिः) मधुर रसकी लहरें तथा (वनना) स्तुतियां (उत् अतिष्ठिपत्) ऊपर सुनाई दे रही हैं । (अपः वसानः) जलमें मिलाया (महिषः) महान सोमरस (वि गाहते) कलशमें जाता है । (पवित्ररथः राजा) पवित्र रथवाला राजा (वाजं आरुहत्) युद्धमें जाता है । तब यह सोम (सहस्रभृष्टिः) सहस्रों प्रकारके (बृहत् श्रवः) बहुत अन्न (जयति) विजय करके प्राप्त करता है ॥ ४० ॥

१ मध्वः ऊर्मिः वनना उदतिष्ठिपत्— मधुर सोमरसकी लहरें तथा उसकी स्तुतियां शुद्ध हो गयी हैं ।
२ अपः वसानः महिषः वि गाहते— जलमें मिलाया यह सोमरस कलशमें रखा गया है ।
३ पवित्ररथः राजा वाजं आरुहत्— उत्तम रथमें बैठा हुआ राजा युद्धमें जाता है वैसा यह सोम यज्ञमें जाता है ।
४ सहस्रभृष्टिः बृहत् श्रवः जयति— वीर सहस्रों प्रकारके अन्न तथा बडा यश युद्धमें विजय प्राप्त करनेसे प्राप्त होते हैं ।

[७७९] (सः) वह सोम (विश्वायुः) सबको चलानेवाली (प्रजावतीः) प्रजा देनेवाली (सुभराः) उत्तम अर्थवाली (विश्वाः) सब (भन्दनाः) स्तुतियां (अहः दिवि) दिनमें तथा रात्रीमें (उदियर्ति) प्रेरित करती हैं । (ब्रह्म) ज्ञानपूर्वक किया कर्म (प्रजावत्) प्रजायुक्त (रयिमत्) धन युक्त (अश्वपस्त्यं) गृहादिसे युक्त (पीतः) पीये हुए (इन्दो) सोम ! (इन्द्रं) इन्द्रके पास (अस्मभ्यं याचतात्) हमारे लिये मांगो ॥ ४१ ॥

×

७८० सो अग्रे अह्नां हरिर्हर्यतो मदः प्र चेतसा चेतयते अनु द्युभिः ।
द्वा जना यातयन्नन्तरीयते नरा च शंसं दैव्यं च धर्तरि ॥ ४२ ॥
७८१ अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते ।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमासु गृभ्णते ॥ ४३ ॥

अर्थ— १ सः विश्वायुः प्रजावतीः सुभराः विश्वाः मन्द्रना अहः दिवि उदियर्ति— वह पूर्ण आयुसे युक्त, प्रजासे युक्त, उत्तम भरपूर धन देनेवाली सब स्तुतियां दिन रात चल रही हैं। इन्द्र देवकी स्तुतियां चल रही हैं।

२ ब्रह्म प्रजावत् रयिमत् अश्वपस्त्यं इन्द्रं अस्मभ्यं याचतात्— प्रजायुक्त, धनयुक्त, गृहदार अश्व आदिसे युक्त, धन इन्द्रके पास हमारे लिये मांगो।

हमें धन चाहिये पर वह धन सन्तानोंके साथ, अश्व गौवें आदिके साथ रहनेवाला ही धन चाहिये। धन मिले और संतान न हों ऐसा धन हमें मांगना नहीं चाहिये।

[७८०] (सः) वह सोम (अग्रे) सबके सन्मुख (चेतसा) ज्ञानपूर्वक (अह्नां द्युभिः) दिनोंके प्रकाश-किरणोंसे (अनु प्र चेतयते) अनुकूल रीतिसे चेतना उत्पन्न करता है। (हरिः) हरे रंगका (हर्यतः) प्रिय (मदः) हर्ष उत्पन्न करनेवाला (द्वा जना) दो जनोंको अर्थात् स्तोता तथा यजन कर्ताको (यातयन्) योग्य स्थानको पहुंचाता है और (अंतः ईयते) द्यु और पृथिवीके मध्यमें पहुंचता है। (नराशंसं) मनुष्यों द्वारा प्रशंसित (दैव्यं) दिव्य धन (धर्तरि) यजमानके पास (यातयन्) पहुंचाता है ॥ ४२ ॥

१ सः अग्रे चेतसा अह्नां द्युभिः अनु प्र चेतयते- वह सोम सबके सन्मुख ज्ञानसे दिनोंके प्रकाशोंसे अनुकूल प्रेरणा देता है। सोम प्रकाशता है और दिन उत्पन्न होनेकी सूचना करता है। यज्ञस्थानमें सोम प्रकाशता है, इससे विदित होता है कि दिन ही प्रकाशता है।

२ हरिः हर्यतः मदः द्वा जना यातयन्— हरे रंगका पूज्य तथा आनंद बढानेवाला सोम स्तुति करनेवालेको तथा यज्ञ करनेवालेको उच्च स्थान पर पहुंचाता है।

३ नराशंसं दैव्यं धर्तरि यातयन्— मनुष्योंसे प्रशंसित ऐसा दिव्य धन यज्ञकर्ताओंके पास पहुंचाता है।

[७८१] ऋत्विज यज्ञके समय सोमरसको गौके दूधके साथ (अञ्जते) मिलाते हैं, (व्यञ्जते) अनेक प्रकारसे मिलाते हैं। (समञ्जते) योग्य रीतिसे मिलाते हैं। (क्रतुं रिहन्ति) यज्ञमें समर्पित पदार्थोंको देव स्वाद लेते हैं। (मधुना अभ्यञ्जते) मीठे दूधके साथ मिलाते हैं। (सिन्धोः उच्छ्वासे) नदीके जलमें पतयन्तं उक्षणं) मिश्रित होनेवाले (हिरण्यपावाः) सुवर्णसे शुद्ध होनेवाले सोमको (पशुं) देखनेवालेको (आसु गृभ्णते) इन जलोंमें प्राप्त करते हैं ॥ ४३ ॥

१ अञ्जते, व्यञ्जते, समञ्जते— सोमरसको गौके दूधके साथ मिलाते है, विशेष रीतिसे मिलाते हैं, तथा योग्य रीतिसे मिलाते हैं।

२ क्रतुं रिहन्ति— देव यज्ञमें समर्पित पदार्थकी स्वाद लेते हैं। उस पदार्थका स्वाद करके देखते हैं कि यह उत्तम है वा नहीं।

३ मधुना अभ्यञ्जते— मीठे दूधके साथ सोमरसको मिलाते हैं।

४ सिन्धोः उच्छ्वासे पतयन्तम् उक्षणं— नदीके जलमें मिलाये जानेवाले सोमको ऋत्विज लोग देखते हैं।

५ हिरण्यपावाः पशुं आसु गृभ्णते— सुवर्णसे शुद्ध होनेवाले सोमरसको इन नदियोंके जलोंके साथ मिलाते हैं।

७८२ विपश्चिते पवमानाय गायत मही न धारात्यन्धो अर्षति ।
अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वचमत्यो न क्रीळन्नसरद्वृषा हरिः ॥ ४४ ॥
७८३ अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्नां भुवनेष्वर्पितः ।
हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः ॥ ४५ ॥
७८४ असर्जि स्कम्भो दिव उद्यतो मदः परि त्रिधातुर्भुवनान्यर्षति ।
अंशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतं गिरा यदि निर्णिजमृग्मिणो ययुः ॥ ४६ ॥

अर्थ– [७८२] हे ऋत्विजो! (विपश्चिते) ज्ञानी (पवमानाय) सोमकी (गायत) स्तुतिके मंत्रोंका गायन करो। वह (मही धारा न) बडा वृष्टिकी धाराके समान (अन्धः) अन्नको (अति अर्षति) देता है। (अहिः न) सर्पके समान (जूर्णां त्वचं) जीर्ण त्वचाको (अति सर्पति) दूर करता है। (अत्यः न क्रीळन्) घोडेके समान खेलता हुआ यह (हरिः) हरे रंगका सोमरस (असरत्) कलशमें जाता है ॥ ४४ ॥

१ विपश्चिते पवमानाय गायत – ज्ञान बढानेवाले सोमकी स्तुतिके मंत्रोंका गान करो। उनके सामवेदके मंत्रोंका उत्तम गायन करो।

२ मही धारा न अन्धः अति अर्षति– बडी वृष्टिकी धाराके समान यह सोम अन्न देता है।

३ अहिः न जूर्णां त्वचं अति अर्षति– सर्पके समान यह सोम अपनी त्वचाको दूर करता है और रस देता है।

४ अत्यः न क्रीळन् हरिः असरत्– घोडेके समान यह खेलता हुआ, हरे रंगका सोमरस कलशमें जाकर रहता है।

[७८३] (अग्रेगः) अग्रगामी (राजा) राजमान्य (अप्यः) जलमें मिलाया सोमरस (तविष्यते) की स्तुति की जाती है जो (अह्नां विमानः) दिनोंका निर्माण करता है (भुवनेषु अर्पितः) जलोंमें मिश्रित हुआ है। (हरिः) हरे रंगका (घृतस्नुः) जलमें मिश्रित हुआ (सुदृशीकः) सुन्दर दीखनेवाला (अर्णवः) जलमें मिश्रित हुआ (ज्योतीरथः) तेजस्वी रथवाला राजा (राये) धन देता है तथा (ओक्यः) गृह भी देता है, (पवते) ऐसे सोमका रस निकालते हैं ॥ ४५ ॥

१ अग्रेगः राजा– आगे बढनेवाले राजाकी जैसी स्तुति होती है वैसी इस सोमकी स्तुति की जाती है।

२ अप्यः तविष्यते–– जलमें मिलाये सोमकी स्तुति की जाती है।

३ अह्नां विमानः भुवनेषु अर्पितः–– यज्ञके दिनोंको गिनता है और यज्ञके पात्रोंमें रखा यह सोम है।

४ हरिः घृतस्नुः सुदृशीकः अर्णवः–– हरे रंगका, जलमें मिश्रित किया, सुंदर दीखनेवाला जलके साथ रहा यह सोम है।

५ ज्योतीरथः राये ओक्यः पवते–– तेजस्वी रथवाले राजाके समान धन और घर देता हुआ, रस देता है।

[७८४] (दिवः स्कंभः) द्युलोकके आधार (उद्यतः) उद्यमशील सोमका (मदः असर्जि) रस निकालते हैं। (त्रिधातुः) तीन कलशोंमें (भुवनानि परि अर्षति) अपने स्थानमें प्राप्त करके रहता है। (अंशुं) सोम (पनिप्नतं) शब्द करनेवालेको (मतयः रिहन्ति) बुद्धिमान ऋत्विज स्तुति करते हैं। (यदि निर्णिजं) जब तेजस्वी सोमको (ऋग्मिणः गिरा ययुः) ऋत्विज स्तुति करते हुए प्राप्त करते हैं ॥ ४६ ॥

७८५ प्र ते धारा अत्यण्वानि मेष्यः पुनानस्य संयतो यन्ति रंहयः ।
यद्गोभिरिन्दो चम्वोः समज्यस आ सुवानः सोम कलशेषु सीदसि ॥ ४७ ॥
७८६ पवस्व सोम क्रतुविन्न उक्थ्यो ऽव्यो वारे परि धाव मधु प्रियम् ।
जहि विश्वान् रक्षस इन्दो अत्रिणो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ४८ ॥

[८७]

(ऋषिः– उशना काव्यः । देवताः– पवमानः सोमः । छन्दः– त्रिष्टुप् ।)

७८७ प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष ।
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तो ऽच्छा बर्ही रशनाभिर्नयन्ति ॥ १ ॥

अर्थ— १ दिवः स्कम्भः उद्यतः मदः असर्जि – द्युलोकके धारण करनेवाले श्रेष्ठ आनंददायक सोमरसको निकाला है ।

२ त्रिधातुः भुवनानि परि अर्षति— तीन कलशोंमें अपना स्थान प्राप्त करके वहां यह सोमरस रहता है ।

३ पनिप्नतं अंशुं मतयः रिहन्ति -- शब्द करनेवाले सोमकी बुद्धिवानोंकी बुद्धियां स्तुति करती हैं ।

४ यदि निर्णिजं ऋग्मिणः गिरा ययुः -- जब इस तेजस्वी सोमकी स्तुति ज्ञानी लोग करते रहते हैं ।

[७८५] (पुनानस्य) छाने जानेवाली (संयतः) मिली (रंहयः ते धाराः) शब्द करनेवाली तेरी धाराएं (मेष्यः अण्वानि) मेढाके बालोंकी छाननामेंसे (अति प्रयन्ति) छानी जाकर नीचे आ रही हैं। हे (इन्दो) सोम ! (यद् गोभिः) जब उदकके साथ (चम्वोः समज्यसे) पात्रमें मिलाया जाता है, उस समय (सुवानः) रस निकालने पर (सोमः) सोमरस (कलशेषु आ सीदति) कलशोंमें रखा जाता है ॥ ४७ ॥

१ पुनानस्य संयतः रंहयः ते धाराः मेष्यः अण्वानि अति प्रयन्ति— छानेजानेवाले सोमरसकी शब्द करती हुई धाराएं मेढीकी बालोंकी छाननीमेंसे छानी जाती हैं ।

२ यत् गोभिः चम्वोः समज्यसे-- जब सोमरस जलके साथ तथा गोदुग्धके साथ मिलाया जाता है ।

३ सुवानः सोमः कलशेषु आ सीदति-- रस निकाला सोम कलशोंमें जाकर बैठता है । कलशोंमें सोमरस रखते हैं ।

[७८६] हे (सोम) सोम ! (नः) हमारे यज्ञकर्मको (क्रतुवित्) जाननेवाला (उक्थ्यः) प्रशंसनीय तू (नः) हमारे यज्ञके लिये (पवस्व) रस निकाल कर दे । (अव्यः वारे) मेढोके बालोंकी छाननीमेंसे (मधु प्रियं) आनंद बढानेवाला रस देनेके लिये (परि धाव) जलदी गुजर जाओ । हे (इन्दो) सोम ! (अत्रिणः) भक्षण करनेवाले (विश्वान् रक्षसः) सब राक्षसोंको (जहि) जीता । (विदथे) युद्धमें अथवा यज्ञमें (सुवीराः) उत्तम वीर होकर तेरे विषयमें हम (बृहत् वदेम) बहुत स्तुतिके वक्तव्य बोलेंगे ॥ ४८ ॥

१ हे सोम ! क्रतुवित् उक्थ्यः नः पवस्व— हे सोम ! तू हमारे यज्ञको जाननेवाला तथा प्रशंसनीय हो ! वह तू हमारे लिये अपना रस दे ।

२ अव्यः वारे मधु प्रियं परि धाव— मेढीके बालोंकी छाननीमेंसे अपना मधुर रस जलदीसे निकाल दो ।

३ हे इन्दो ! विश्वान् अत्रिणः रक्षसः जहि— हे सोम ! सब सर्वभक्षक राक्षसोंको पराभूत करो ।

४ सुवीराः विदथे बृहद् वदेम— हम उत्तम वीर बनकर युद्धमें तुम्हारे विषयमें स्तुति रूप बहुत भाषण करेंगे ।

[८७]

[७८७] हे सोम ! (तु) शीघ्र ही (प्र द्रव) रस निकालकर दे । (कोशं) पात्रमें (परि नि षीद) जाकर रह । (नृभिः पुनानः) ऋत्विजों द्वारा शुद्ध किया हुआ (वाजं अभि अर्ष) अन्नके उद्देश्यसे आगे चल । (अश्वं न) घोडेके समान (त्वा वाजिनं मर्जयन्तः) तुझ बलवान सोमको शुद्ध करनेवाले (बर्हिः अच्छ) यज्ञके पास (रशनाभिः नयन्ति) अंगुलियोंसे पकड कर के जाते हैं ॥ १ ॥

७८८ स्वायुधः पवते देव इन्दु॑रशस्तिहा वृजनं रक्षमाणः ।
पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्याः ॥ २ ॥
७८९ ऋषिर्विप्रः पुरएता जनाना मृभुर्धीर उशना काव्येन ।
स चिद्विवेद निहितं यदासा मपीच्यं१ गुह्यं नाम गोनाम् ॥ ३ ॥
७९० एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णे परि पवित्रे अक्षाः ।
सहस्रसाः शतसा भूरिदावा शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात् ॥ ४ ॥

—अर्थ १ हे सोम ! तु प्र द्रव— हे सोम ! शीघ्र ही तेरा रस निकाल दो ।

२ कोशं परि निषीद— पात्रमें जाकर रह ।

३ नृभिः पुनानः वाजं अभि अर्ष— ऋत्विजोंके द्वारा शुद्ध किया जानेवाला तू अन्नके रूपमें आगे जा ।

४ अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तः— घोडेके समान तुझे सोमको ऋत्विज शुद्ध करते हैं ।

५ बर्हिः अच्छ रशनाभिः नयन्ति — सोमको यज्ञके समीप अंगुलियोंसे पकडकर यज्ञकर्ता ले जाते हैं ।

[७८८] (स्वायुधः) उत्तम आयुधोंसे युक्त यह (देवः इन्दुः) सोमदेव (पवते) रस निकाल देता है । (अशस्तिहा) दुष्टोंका नाश करनेवाला (वृजनं रक्षमाणः) उपद्रव करनेवालोंसे संरक्षण करनेवाला (देवानां पिता) देवोंका रक्षक (जनिता) उत्पादक (सुदक्षः) उत्तम बलवान (दिवः विष्टम्भः) द्युलोकको आधार देनेवाला (पृथिव्याः धरुणः) पृथिवीका धारण कर्ता यह सोम है ॥ २ ॥

१ स्वायुधः देवः इन्दुः पवते— उत्तम शस्त्रास्त्रोंसे युक्त सोमदेव रस देता है । वीर सोमरस पीकर शस्त्रास्त्रोंका उत्तम रीतिसे उपयोग करके विजय प्राप्त करते हैं ।

२ अशस्तिहा वृजनं रक्षमाणः देवानां पिता— निंदनीय दुष्टोंसे उत्तम मनुष्यका संरक्षण करनेवाला, देवोंका पालक सोम है ।

३ जनिता सुदक्षः दिवः विष्टम्भः पृथिव्या धरुणः— सबका उत्पादक, उत्तम दक्ष, द्युलोकका धारण करनेवाला तथा पृथिवीका आधार यह सोम है ।

[७८९] (कविः) अतीन्द्रिय स्थितिको देखनेवाला (विप्रः) ज्ञानी (जनानां पुर एता) जनोंके अग्रभागमें रहकर आगे जानेवाला (ऋभुः) तेजस्वी (धीरः) धैर्यवान् (उशना) वशमें रखनेवाला (काव्येन विवेद) कवित्वसे ज्ञान प्राप्त करता है । (यत्) जो (आसां गोनां) इन भाषणोंका (अपीच्यं) गुप्त (गुह्यं नाम) रीतिसे रखा हुआ स्थान जानता है ॥ ३ ॥

यह सोम (कविः) अतीन्द्रिय स्थितिको स्पष्ट रीतिसे देखता है, (विप्रः) विशेष जाननेवाला है, (जनानां पुर एतां) सब लोगोंके अग्रभागमें रहकर आगे बढनेवाला है, (ऋभुः) तेजस्वी है, (धीरः) धैर्यवान् है सब प्रसंगोंमें धैर्य धारण करके जनोंको आगे बढाता है । (उशना) सबको वशमें करनेवाला है (काव्येन विवेद) कवित्व शक्तिसे सब जानता है । (यत्) जो (आसां गोनां) इन भाषणोंमें (अपीच्यं गुह्यं नाम) अदृश्य गुप्त कारण है । यह सब यह सोम जानता है ।

सोमरस पीनेसे वीरमें ये शुभ गुण बढते हैं और वह वीर अधिक कार्य उत्तम रीतिसे करनेमें समर्थ हो जाता है ।

[७९०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वृष्णे ते) बलशाली ऐसे तेरे लिये (एषः स्यः सोमः) यह सोम (मधुमान्) मीठा (वृषा) बलवर्धक (पवित्रे परि अक्षाः) छाननीमेंसे छाना जाता है । (सहस्रसाः) यह सोम सहस्रों प्रकारके लाभ देनेवाला तथा (शतसाः) सैंकडों लाभ देनेवाला तथा (भूरिदावा) बहुत लाभ देनेवाला (वाजी) बलवान् (शश्वत्तमं) शाश्वत (बर्हिः) यज्ञमें (आ अस्थात्) आकर रहता है ॥ ४ ॥

७९१ एते सोमा अभि गव्या सहस्रा महे वाजायामृताय श्रवांसि ।
पवित्रेभिः पवमाना असृग्रञ्छ्रवस्यवो न पृतनाजो अत्याः ॥ ५ ॥
७९२ परि हि ष्मा पुरुहूतो जनानां विश्वासरद्भोजना पूयमानः ।
अथा भर श्येनभृत प्रयांसि रयिं तुञ्जानो अभि वाजमर्ष ॥ ६ ॥
७९३ एष सुवानः परि सोमः पवित्रे सर्गो न सृष्टो अदधावदर्वा ।
तिग्मे शिशानो महिषो न शृङ्गे गा गव्यन्नभि शूरो न सत्वा ॥ ७ ॥

अर्थ— १ हे इन्द्र ! वृष्णे ते एषः स्यः सोमः मधुमान् वृषा पवित्रे परि अक्षाः— हे इन्द्र ! बलशाली ऐसे तेरे लिये पीनेको देनेके लिये यह मीठा तथा उत्साह बढानेवाला सोम छाननीमें छाना जाता है ।

२ शतसाः सहस्रसाः भूरिदावा वाजी शश्वत्तमं बर्हिः आ अस्थात्— सैंकडो, सहस्रों तथा अधिक लाभ पहुंचानेवाला यह बल बढानेवाला सोम अनादि कालसे यज्ञमें आता रहा है । अनादि कालसे सोमका यज्ञ किया जाता है ।

[७९१] (एते सोमाः) ये सोमरस (गव्या सहस्रा श्रवांसि) गोदुग्धसे बने सहस्रों प्रकारके अन्न देनेके लिये (पवित्रेभिः पवमानाः) छाननीसे छाना जानेवाले (अमृताय) अमृत जैसे (महे वाजाय) बडे अन्नके लिये (अभि असृग्रन्) उत्पन्न हो रहे हैं । जैसे (श्रवस्यवः) अन्नकी इच्छा करनेवाले (पृतनाजः) शत्रुकी सेनाको जीतनेवाले (अत्याः न) घोडे जैसे हैं ॥ ५ ॥

१ एते सोमाः गव्या सहस्रा श्रवांसि पवित्रेभिः पवमानाः अमृताय महे वाजाय अभि असृग्रन्— ये सोम गोदुग्धसे बने सहस्रों प्रकारके अन्न देनेके लिये छाननीसे छाने जाकर अमृत जैसे बडे अन्नके लिये अपना रस दे रहे हैं ।

२ श्रवस्यवः पृतनाजः अत्याः न— अन्नकी इच्छा करनेवाले शत्रुकी सेनाको जीतनेवाले घोडे जैसे आगे बढते हैं, वैसे ये सोमरस छाननीसे आगे आ रहे हैं ।

[७९२] (पुरुहूतः) बहुतों द्वारा स्तुति किया हुआ (पूयमानः) शुद्ध किया जानेवाला (जनानां विश्वा भोजनानि) मनुष्योंके सब प्रकारके भोजनोंके लिये (परि असरत्) यह सोम यज्ञस्थानमें आता है । (श्येनभृत) श्येन पक्षीने लाये गये हे सोम ! (अथ प्रयांसि) अब अन्नोंको (आ भर) भरपूर भर दो । (रयिं तुंजानः) धन देता हुआ (वाजं अभि अर्ष) अन्न सब प्रकारसे देओ ॥ ६ ॥

१ पुरुहूतः पूयमानः जनानां विश्वा भोजनानि परि असरत्— बहुत ज्ञानियोंके द्वारा प्रशंसित, शुद्ध होनेवाला, लोगोंके सब प्रकारके भोजनोंमें यह सोमरस आता है ।

२ श्येनभृत ! अथ प्रयांसि आ भर— हे श्येन पक्षीसे लाये गये सोम ! सब प्रकारके अन्न भरपूर देओ ।

३ रयिं तुंजानः वाजं अभि अर्ष— धन देकर साथ अन्नभी देओ ।

[७९३] (एषः सुवानः) यह रस निकालते समय (सोमः) सोमरस (अर्वा) गमन करनेमें कुशल (सर्गो न सृष्टः) बंधनसे छोडा हुआ (अदधावत्) घोडा जैसा दौडता है वैसा (पवित्रे) छाननीमेंसे (परि) दौडता है । (तिग्मे शृंगे शिशानः) तीक्ष्ण शृंगोंको अधिक तीक्ष्ण करता है जैसा (महिषः) महिष (गा गव्यन्) गौवोंकी इच्छा करता हुआ (शूरः न) शूरवीरके समान (सत्वा) अपने स्थानको जैसा जाता है । वैसा यह सोम यज्ञस्थानमें जाता है ॥ ७ ॥

७९४ एषा ययौ परमादुन्तरद्रेः कूचित् सतीरूर्वे गा विवेद ।
दिवो न विद्युत् स्तनयन्त्यभ्रैः सोमस्य ते पवत इन्द्र धारा ॥ ८ ॥
७९५ उत स्म राशिं परि यासि गोना—मिन्द्रेण सोम सरथं पुनानः ।
पूर्वीरिषो बृहतीर्जीरदानो शिक्षा शचीवस्तव ता उपष्टुत् ॥ ९ ॥

अर्थ— १ एषः सुवानः सोमः, अर्वा सर्गो न सृष्टः अदधावत्, तथा पवित्रे परि अदधावत्— यह रस निकालनेके समय सोम, घोडा जैसा बंधनसे छूटने पर दौडता है, वैसा छाननीमेंसे गुजरता है।

२ तिग्मे शृंगे शिशानः महिषः सत्वा— तीक्ष्ण सींगोंको अधिक तीक्ष्ण करनेवाला भैसा जैसा अपने बलसे जाता है वैसा यह सोमरस छाननीमेंसे जाता है।

[७९४] (एषा) यह सोमरसकी धारा (परमात्) ऊंचे स्थानसे (ययौ) चलती है। यह (अद्रेः अन्तः) पर्वतके ऊपरसे तथा (कूचित्) कहांसे (परमात् ऊर्वे) दूसरे प्रकारके देशसे (सतीः) होती हुई (गाः विवेद) गौवोंको प्राप्त करती है। (दिवः न विद्युत्) द्युलोकसे जैसी विद्युत् (स्तनयन्ती) शब्द करती हुई (अभ्रैः) मेघोंसे प्रेरित होकर जाती है वैसो है (इन्द्र) इन्द्र ! (ते) तेरे लिये (सोमस्य धारा) सोमरसकी धाराएं (पवते) चलती हैं ॥ ८ ॥

१ एषा परमात् ययौ — यह सोमरसकी धारा ऊंचे स्थानसे चलती है।

२ अद्रेः अन्तः— पर्वतके ऊपरसे सोमकी धारा चलती है।

३ कूचित् परमात् ऊर्वे सतीः गाः विवेद— कहांसे दूसरे उच्च स्थानसे जाती है और गौवें प्राप्त करती है। गौके दूधसे सोमरसको धारा मिलती है। सोमरसमें गोदुग्ध मिलाया जाता है।

४ दिवः विद्युत् न स्तनयन्ती अभ्रैः – द्युलोकसे बिजली जैसी शब्द करती हुई अभ्रोंके साथ चलती है।

५ हे इन्द्र ! ते सोमस्य धारा पवते— हे इन्द्र ! तेरे लिये सोमरसकी धारा शुद्ध होती है।

[७९५] हे (सोम) सोम ! (उत स्म) और (पुनानः) छाना जाता हुआ तू (गोनां राशिं परि यासि) गौवोंके समूहके पास जाता है। (इन्द्रेण सरथं) इन्द्रके साथ एक रथमें बैठा हुआ तू (जीर दानो) त्वरित दान देनेकी इच्छा करनेवाला (उपष्टुत्) स्तुति जिसकी चल रही है ऐसा (पूर्वीः बृहतीः इषः) बहुत अधिक अन्न (शिक्ष) हमें देओ। हे (शचीवः) अन्नवान् सोम ! (ताः तव) वे अन्न तुम्हारे ही हैं ॥ ९ ॥

१ हे सोम ! उत स्म पुनानः गोनां राशिं परि यासि— हे सोम ! तू छाना जाकर गौवोंके समूहको प्राप्त होता है। सोमरस गौवोंके दूधमें मिलाया जाता है।

२ इन्द्रेण सरथं जीर दानो उपष्टुत्— इन्द्रके रथमें बैठनेवाले सोमकी दान देनेके कारण अच्छी प्रकार स्तुति की जाती है।

३ पूर्वीः बृहतीः इषः शिक्ष— प्रथम बडे अन्न हमें दे।

४ शचीवः ता तव— हे अन्नवाले सोम ! वे सब अन्न तुम्हारे ही हैं। सब अन्न सोमके साथ रहते हैं।

[८८]

(ऋषिः- उशना काव्यः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७९६ अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि ।
त्वं ह यं चकृषे त्वं ववृष इन्दुं मदाय युज्याय सोमम् ॥ १ ॥
७९७ स ईं रथो न भुरिषाळयोजि महः पुरूणि सातये वसूनि ।
आदीं विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्षाता वन ऊर्ध्वा नवन्त ॥ २ ॥
७९८ वायुर्न यो नियुत्वाँ इष्टयामा नासत्येव हव आ शंभविष्ठः ।
विश्ववारो द्रविणोदा इव त्मन् पूषेव धीजवनोऽसि सोम ॥ ३ ॥

[८८]

अर्थ— [७९६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अयं सोमः) यह सोम (तुभ्यं सुन्वे) तेरे लिये रस निकाल कर देता है। (तुभ्यं पवते) तेरे लिये छाना जा रहा है। (अस्य त्वं पाहि) इसको तू पी। (त्वं ह) तूं ही (यं चकृषे) जिसको करता है। (त्वं ववृषे) तू ही इसका स्वीकार करता है। (इन्दुं) इस सोमको (मदाय) आनंदके लिये (युज्याय) सहाय्यके लिये (सोमं) सोमरसको प्राप्त कर ॥ १ ॥

१ इन्द्र ! अयं सोमः तुभ्यं सुन्वे— हे इन्द्र ! यह सोमरस तेरे लिये तैयार किया है।
२ तुभ्यं पवते— तेरे लिये यह रस शुद्ध करते हैं।
३ अस्य त्वं पाहि— इसको तू पी।
४ यं त्वं ह चकृषे— जिसको तू करता है, उत्पन्न करता है।
५ त्वं ववृषे— तू इसका स्वीकार करता है।
६ इन्दुं मदाय युज्याय सोमं पाहि— सोमरसको आनंद प्राप्त करनेके लिये, योग्य सहाय्य प्राप्त करनेके लिये इस सोमरसको पी।

[७९७] (सः ईं) वह यह सोम (भूरिषाट् रथः न) बहुत भार ले जानेवाले रथके समान (अयोजि) बहुत भार ले जानेकी योजना करता है अर्थात् (महः पुरूणि वसूनि सातये) बडे विपुल धन देनेके लिये तैयारी करता है। (आत् ईं) उसके बाद (विश्वा नहुष्याणि) सब मानवोंके संबंधमें (जाता) उत्पन्न हुए हमारे विरोध (ऊर्ध्वा वने स्वर्षाता) करनेको प्राप्त हुए संग्रामोंमें (नवन्त) प्राप्त करते हैं।

१ सः ईं भूरिषाट् रथः न अयोजि— वह सोम बहुत भार ले जानेवाले रथके समान बहुत भार ले जानेका कार्य करता है।
२ महः पुरूणि वसूनि सातये— बडे विशाल धन देनेकी तैयारी वह सोम करता है। बहुत धन देता है।
३ आत् ईं विश्वा नहुष्याणि जाता ऊर्ध्वा वने स्वर्षाता नवन्त— इसके पश्चात् सब मानव समाजके संबंधमें उत्पन्न हुए बडे संग्रामोंमें सहायता करता है। अनुयायियोंका संरक्षण करता है।

[७९८] (यः) जो सोम ! (नियुत्वान्) घोडोंवाले (वायुः न) वायुके समान (इष्ट यामा) इष्ट स्थानमें जानेवाला है। (नासत्या इव) अश्विनौके समान (हवे) निमंत्रण (आ शंभविष्ठः) सुखकारक मानता है। (द्रविणोदाः इव) धनके दाताके समान (त्मन्) अपनेको (विश्ववारा) विश्वने स्वीकार करने योग्य मानता है। हे (सोम) सोम ! (पूषा इव) पोषक देवके समान (धीजवनः असि) तू मनके वेगसे यज्ञमें जानेवाले हो ॥ ३ ॥

७९९ इन्द्रो न यो महा कर्माणि चक्रि-र्हन्ता वृत्राणामसि सोम पूर्भित् ।
पैद्वो न हि त्वमहिनाम्नां हन्ता विश्वस्यासि सोम दस्योः ॥ ४ ॥
८०० अग्निर्न यो वन आ सृज्यमानो वृथा पाजांसि कृणुते नदीषु ।
जनो न युध्वा महत उपब्दि-रियर्ति सोमः पवमान ऊर्मिम् ॥ ५ ॥

अर्थ— १ यः सोमः, नियुत्वान् वायुः न, इष्टयामा— यह सोम घोडोंको वाहन करनेवाले वायुके समान इष्ट स्थानमें अपनी इच्छानुसार जाता है । यज्ञमें सोम जाकर वहां रहता है ।

२ नासत्या इव हवे आशंभविष्ट— अश्विनौके समान बुलाया जानेपर बुलानेवालेके पास आनंदसे जाता है ।

३ द्रविणोदाः इव त्मन् विश्ववारा— धन देनेवालेके समान अपने आपको सबके स्वीकार करने योग्य मानता है ।

४ पूषा इव धीजवनः असि— पूषा देवके समान मनोवेगसे इष्ट स्थानमें गमन करता है ।

[७९९] (इन्द्रः न) इन्द्रके समान (यः) जो तू (महा कर्माणि चक्रिः) बडे कर्म करता है, वह तू हे (सोम) सोम ! (वृत्राणां हन्ता असि) हमें घेरनेवाले शत्रुओंका वध करनेवाला तू है । तू (पूः भित्) शत्रुके नागरिक किले तोडनेवाला है । (पैद्वः न) घोडेके समान (त्वं) तू (अहिनाम्नां हन्ता) अहि नामक शत्रुओंका विनाश करनेवाला हो । हे (सोम) सोम ! (विश्वस्य दस्योः हन्ता असि) सब शत्रुओंका विनाश करनेवाला तू है ॥ ४ ॥

१ इन्द्रः न यः महा कर्माणि चक्रिः— इन्द्रके समान जो सोम बडे कर्मोंको करता है ।

२ हे सोम ! वृत्राणां हन्ता असि— हे सोम ! तू घेरकर आक्रमण करनेवाले शत्रुओंको मारनेवाला है । वृत्र— घेरकर आक्रमण करनेवाला शत्रु । घेरनेवाले शत्रुको शीघ्र मारना योग्य है ।

३ पूर्भित्— " पूः, पुर " ये नगरवाचक पद हैं । नगरोंके चारों ओर किला अर्थात् पत्थरोंकी मजबूत दिवारके रूपमें होता है । शत्रुके ऐसे नागरिक किले तोडकर शत्रुको विनष्ट किया जाता था ।

४ अहिनाम्नां हन्ता— अहि नामके शत्रुओंका विनाशक तू है ।

५ विश्वस्य दस्योः हन्ता असि— सब शत्रुओंको मारनेवाला तू है ।

[८००] (अग्निः न) अग्निके समान (यः) जो सोम (वने सृज्यमानः) वनमें उत्पन्न होता हुआ (वृथा) सहज रीतिसे (नदीषु) नदीके जलोंमें (पाजांसि कृणुते) सामर्थ्यके कार्य करता है । (युध्वा जनः न) युद्ध करनेवाला वीर जैसा (महतः उपब्दिः) बडे शत्रुजनको पुकार करनेका अवसर देता है वैसा यह (पवमानः सोमः) छाना जानेवाला सोम (ऊर्मिं इयर्ति) रसकी लहरोंको प्रेरित करता है ॥ ५ ॥

१ अग्निः न यः वने सृज्यमानः वृथा नदीषु पाजांसि कृणुते— अग्निके समान यह सोम वनमें उत्पन्न होकर नदीके जलमें शब्द करता हुआ सामर्थ्य प्रकाशित करता है । नदीके जलमें मिलकर यज्ञमें जाता है ।

२ युध्वा जनः न महतः उपब्दिः पवमानः सोमः ऊर्मिं इयर्ति— युद्ध करनेवाला वीर पुरुष जैसा बडे शत्रुको बडे शब्द करनेका अवसर देता है, वैसा यह पवमान सोम अपनी रसकी लहरें शब्द करता हुआ बाहर प्रेरित करता है ।

×

८०१ एते सोमा अति वाराण्यव्या दिव्या न कोशासो अभ्रवर्षाः ।
वृथा समुद्रं सिन्धवो न नीचीः सुतासो अभि कलशाँ असृग्रन् ॥ ६ ॥
८०२ शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वाऽनभिशस्ता दिव्या यथा विट् ।
आपो न मक्षू सुमतिर्भवा नः सहस्राप्साः पृतनाषाण्न यज्ञः ॥ ७ ॥
८०३ राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद्गभीरं तव सोम धाम ।
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम ॥ ८ ॥

अर्थ— [८०१] (एते सोमाः) ये सोमरस (अव्या वाराणि अति) भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे छाने जाते हैं। (दिव्या न कोशासः) द्युलोकके कोशोंके समान (अभ्रवर्षाः) मेघोंसे नीचे वृष्टि करते हैं। (वृथा) सहज रीतिसे (समुद्रं) समुद्रके पास (सिन्धवः न) नदियोंके समान (नीचीः) नीचे जानेवाले (सुतासः) सोमसे निकाले रस (कलशान् अभि असृग्रन्) कलशोंमें जाते हैं ॥ ६ ॥

१ एते सोमाः अव्या वाराणि अति— ये सोमरस मेंढीके बालोंकी छाननीमेंसे छाने जाते हैं।
२ दिव्याः कोशासः न अभ्रवर्षाः— अभ्रोंसे वृष्टि करनेवाले द्युलोकमें रहे जलके कोशोंके समान ये सोम नीचेके पात्रोंमें रस देते रहते हैं।
३ समुद्रं सिन्धवः वृथा न— समुद्रके पास जैसी सहज नदियां जाती हैं और समुद्रमें मिलती हैं, उस प्रकार ये सोमरस जलमें मिलते हैं।
४ सुतासः कलशान् अभि असृग्रन्— सोमरस कलशोंमें जाकर रहते हैं।

[८०२) हे सोम ! (शुष्मी) बलवान तू (मारुतं शर्धः न) मरुतोंके बल बलके समान (पवस्व) रस दे। (यथा दिव्या विट्) जैसा दिव्य प्रजा (अनभिशस्ता) निंदनीय नहीं होती। (आपः न) जलोंके समान (मक्षू) शीघ्र (सुमतिः भव) उत्तम बुद्धिमान हो जावो। (सहस्राप्साः) अनेक रूपोंवाला तू (पृतनाषाट्) युद्धमें विजय प्राप्त करनेवाले इन्द्रके समान (यज्ञः न) यज्ञके योग्य हो ॥ ७ ॥

१ हे सोम ! शुष्मी मारुतं शर्धः न पवस्व - हे सोम ! बलवान हुआ तू मरुतोंके बलके समान बल बढानेवाला रस दे।
२ यथा दिव्या विट अनभिशस्ता— जैसी दिव्य प्रजा निंदनीय नहीं होती, वैसे तुम, हे सोम ! निंदनीय नहीं हो।
३ आप न मक्षू सुमतिः भव— जलोंके समान तू शीघ्र उत्तम शांति अथवा सुमति देनेवाला हो।
४ सहस्राप्सा पृतनाषाट् यज्ञ न— सहस्रों प्रकारके रूपोंवाला तू युद्धोंमें विजय प्राप्त करनेवाला, यज्ञके समान पूज्य हो। सहस्राप्सा- हजारों रूप धारण करनेवाला, पृतनाषाट्- युद्धमें विजय प्राप्त करनेवाला, यज्ञः न-यज्ञके समान पूज्य हो।

[८०३] हे (सोम) सोम ! (ते वरुणस्य राज्ञः) तुझ श्रेष्ठ राजाके (व्रतानि) व्रत है उनको हम करते हैं। (तव धाम) तेरा स्थान (बृहत् गभीरं) बडा गभीर है। (प्रियः मित्रः न) प्रिय मित्रके समान (त्वं शुचिः असि) तूं शुद्ध है। (अर्य एव) श्रेष्ठका तूं (दक्षाय्यः) दक्ष रहता है ॥ ८ ॥

१ ते वरुणस्य राज्ञः व्रतानि— तुझ श्रेष्ठ राजाके व्रतोंका हम उत्तम रीतिसे पालन करते हैं।
२ तव धाम बृहत् गभीरं— तेरा स्थान बडा विशाल और गंभीर है।
३ प्रियः मित्रः न त्वं शुचिः असि— प्रिय मित्रके समान तूं अत्यंत पवित्र है।
४ अर्य एव दक्षाय्यः असि— श्रेष्ठका संरक्षण करनेमें सदा दक्ष रहता है।

[८९]

(ऋषिः- उशना काव्यः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

८०४ प्रो स्य वह्निः पथ्याभिरस्यान् दिवो न वृष्टिः पवमानो अक्षाः ।
सहस्रधारो असदन्न्यस्मे मातुरुपस्थे वन आ च सोमः ॥ १ ॥
८०५ राजा सिन्धूनामवसिष्ट वास ऋतस्य नावमारुहद्रजिष्ठाम् ।
अप्सु द्रप्सो वावृधे श्येनजूतो दुह ईं पिता दुह ईं पितुर्जाम् ॥ २ ॥
८०६ सिंहं नसन्त मध्वो अयासं हरिमरुषं दिवो अस्य पतिम् ।
शूरो युत्सु प्रथमः पृच्छते गा अस्य चक्षसा परि पात्युक्षा ॥ ३ ॥

अर्थ – [८०४] (प्रो अस्थान्) उस सोमका रस निकाला जाता है (स्यः) वह (पथ्याभिः) मार्गोंसे (वह्निः) चलानेवाला है । (दिवः वृष्टिः न) द्युलोकसे वृष्टी होनेके समान (पवमानः अक्षाः) रस निकालता हुआ सोम यज्ञ पात्रोंमें व्यापता है । (सः) वह (सोमः) सोमरस (सहस्रधारः) अनेक धाराओंसे (अस्मे) हमारे पास (नि आसदत्) रहे ॥ १ ॥

१ प्रो अस्थान् – उस सोमका रस निकाला जा रहा है ।

२ सः पथ्याभिः वह्निः— वह सोम योग्य मार्गसे सबको चलाता है ।

३ दिवः वृष्टिं न— द्युलोकसे वृष्टि होती है वैसा यह रस सोमसे निकलता है ।

४ सः सोमः सहस्रधाराः अस्मे नि असदत्— वह सोम सहस्रों धाराओंसे हमें अपना रस देवे । उस रसके सेवन करनेसे हम रोग रहित हो जांय ।

[८०५] यह (सिन्धूनां राजा) जलोंका राजा सोम (वासः) अपना निवास स्थान गौका दूध करके (अवसिष्ट) उसमें रहता है तथा (रजिष्ठां) यज्ञकी (ऋतस्य नावं आरुहत्) सत्य नौका पर आरोहण करता है । (श्येनजूतः) श्येन पक्षीने लाया (द्रप्सः) सोमरस (अप्सु वावृधे) जलोंमें मिश्रित होकर बढता है । (ईं पिता दुहे) इसका पालन कर्ता इसका रस निकाले । (पितुः जां) द्युलोकसे उत्पन्न हुआ सोमका रस यज्ञकर्ता निकाले ॥ २ ॥

१ सिन्धूनां राजा वासः रजिष्ठां ऋतस्य नावं आरुहत्— जलोंमें मिश्रित होनेवाला तेजस्वी सोम यज्ञकी नौकापर आरोहण करता है । यज्ञस्थानमें रहता है और यज्ञ करता है । सोमरसमें नदियोंका जल मिलाया जाता है ।

२ श्येनजूतः द्रप्सः अप्सु वावृधे— श्येन पक्षीने लाया यह सोम जलोंमें मिश्रित होनेसे बढता है ।

३ ईं पिता दुहे— इस यज्ञका कर्ता इस सोमसे रस निकाले ।

४ पितुः जां दुहे— द्युलोकरूपी पिता है, इसका पुत्र सोम है, यज्ञकर्ता यज्ञमें इस सोमका रस निकाले ।

[८०६] (सिंहं) शत्रुका नाश करनेवाले (मध्वं अयासं) मधुर उदकको प्रेरणा करनेवाले (हरिं) हरे रंगके (अरुषं) प्रकाश देनेवाले (अस्य दिवः पतिं) इस द्युलोकके पालक सोमरसका (नसन्त) रस निकालते हैं । (युत्सु शूरः) युद्धोंमें शूर है (प्रथमः) प्रथमसे ही (गाः पृच्छते) गौवोंके विषयमें पूछता है । (अस्य चक्षसा) इस सोमके सामर्थ्यसे (उक्षा) इन्द्र देव (परि पाति) सबका संरक्षण करता है ॥ ३ ॥

८०७ मधुपृष्ठं घोरमयासमश्वं रथे युञ्जन्त्युरुचक्र ऋष्वम् ।
स्वसार ईं जामयो मर्जयन्ति सनाभयो वाजिनमूर्जयन्ति ॥ ४ ॥
८०८ चतस्र ईं घृतदुहः सचन्ते समाने अन्तर्धरुणे निषत्ताः ।
ता ईमर्षन्ति नमसा पुनाना स्ता ईं विश्वतः परि षन्ति पूर्वीः ॥ ५ ॥

अर्थ— १ सिहं मध्वः अयासं हरिं अरुणं अस्य दिवः पतिं नसन्त— शत्रुका नाश करनेवाले, मधुर रसके साथ जलसे मिश्रित होनेवाले, हरे रंगके तेजस्वी द्युलोकके स्वामी सोमका यज्ञकर्ता रस निकालते हैं।

२ युत्सु शूरः— यह सोमरस युद्धमें शूरोंकी शूरता बढाता है।

३ प्रथमः गाः पृच्छते— सबसे प्रथम यह गौओंके विषयमें पूछता है। यह सोम गौके दूधके साथ मिश्रित होना चाहता है।

४ अस्य चक्षसा उक्षा परिपाति— इसके सामर्थ्य इन्द्र सबका संरक्षण करता है। इन्द्रके अन्दरकी संरक्षण करनेकी शक्ति सोमरस पीनेसे बढती है।

[८०७] (मधुपृष्ठं) मधुर पृष्ठभागवाले (घोरं) भयानक (अयासं) रीतिसे जानेवाले (ऋष्वं) दर्शनीय ऐसे सोमको (उरुचक्रे) विशेष चक्रवाले (रथे) रथमें (युञ्जन्ति) युक्त करते हैं। यज्ञमें उपयुक्त करते हैं। (ईं) इस सोमको (स्वसारः) अंगुलियां (मर्जयन्ति) शुद्ध करती हैं। (सनाभयः) समान बंधनमें रहे (वाजिनं) बलशाली सोमको (ऊर्जयन्ति) बलवान करते हैं॥ ४॥

१ मधुपृष्ठं घोरं अयासं ऋष्वं उरुचक्रे रथे युञ्जन्ति— मधुर पृष्ठ भागवाले घोर भयानक रीतिसे चलनेवाले दर्शनीय सोमको यज्ञके चक्रमें ऋत्विज लोग लगाते हैं। वहां वह सोम ऋत्विजोंके द्वार यज्ञ कराता है और सबका कल्याण करता है।

२ ईं स्वसारः मर्जयन्ति— इस सोमको अंगुलियां पकडती हैं और उससे रस निकालती हैं। वह सोमरस छाना जाता है।

३ सनाभयः वाजिनं ऊर्जयन्ति— समान बंधनमें रहे ऋत्विज इस बल बढानेवाले सोमको अधिक बलवान करते हैं और इसका यज्ञ करते हैं।

[८०८] (चतस्रः घृतदुहः) चार घी देनेवाली गौवें (ईं सचन्ते) इस सोमकी सेवा करती हैं जो (समाने धरुणे अन्तः) समान आश्रय स्थानमें रहती हैं। (ताः ईं अर्षन्ति) वे गौवें इस सोमको प्राप्त करती हैं। और (नमसा पुनानाः) अन्नके साधनसे पवित्र करती हैं, (ताः पूर्वीः) वे बहुत गौवें (विश्वतः परि यन्ति) चारों ओरसे इसको घेरती हैं॥ ५॥

१ चतस्रः घृतदुहः ईं सचन्ते— चार घी देनेवाली गौवें अपने दूध घी आदिसे इस सोमकी सेवा करती हैं। इनका दूध आदि इस सोमरसमें मिलाया जाता है।

२ समाने धरुणे अन्तः ताः ईं अर्षन्ति— समान आधारके अन्दर वे गौवें इस सोमरसको प्राप्त करती हैं और अपना दूध सोमरसमें मिलाती हैं।

३ नमसा पुनानाः ताः पूर्वीः विश्वतः परियन्ति— वे गौवें अपने दूध आदि अन्नसे सबको पवित्र करती हैं और इस सोमरसमें पहिलेसे चारों ओरसे अपना दूध मिलाती हैं। सोमरसमें गौओंका दूध मिलाया जानेपर ही वह पिया जाता है।

८०९ विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्या विश्वा उत क्षितयो हस्ते अस्य ।
अस॑त् त उत्सो गृणते नियुत्वान् मध्वो अंशुः पवत इन्द्रियाय ॥ ६ ॥
८१० वन्वन्नवातो अभि देववीति-मिन्द्राय सोम वृत्रहा पवस्व ।
शग्धि महः पुरुश्चन्द्रस्य रायः सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ७ ॥

[९०]

(ऋषिः- वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

८११ प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजं सनिष्यन्नयासीत् ।
इन्द्रं गच्छन्नायुधा संशिशानो विश्वा वसु हस्तयोरादधानः ॥ १ ॥

अर्थ- [८०९] यह सोम (दिवः विष्टम्भः) द्युलोकका आधार है तथा (पृथिव्याः धरुणः) पृथिवीका आधार है तथा (उत विश्वाः क्षितयः) सब प्रजाएं (अस्य हस्ते) इस सोमके हाथमें रहीं है। (उत्सः) उत्साह वर्धक इस सोम (गृणते) की स्तुति की जाती है। यह सोम! (ते) तेरा स्थान (नियुत्वान्) घोडोंसे युक्त (असत्) होता है। (मध्वः अंशुः) यह मधुर सोमरस (इन्द्रियाय पवते) इन्द्रको अर्पण करनेके लिये इस सोमका रस निकालते हैं ॥ ६ ॥

१ अंशुः दिवः विष्टम्भः पृथिव्या धरुणः— यह सोम द्युलोकका आधार और पृथिवीका आश्रय है।
२ उत विश्वाः क्षितयः अस्य हस्ते— और सब प्रजाएं इसके हाथके आश्रयसे रहती हैं।
३ उत्सः गृणते— उत्साह वर्धक इस सोमकी स्तुति होती है।
४ नियुत्वान् असत् — यह सोम घोडोंके साथ रहता है। इसके साथ घोडे रहते हैं।
५ अंशुः इन्द्रियाय पवते— यह सोम इन्द्रको पीनेके लिये रस निकाल देता है।

[८१०] (वन्वन् अवातः) हे सोम ! शत्रुओंके द्वारा पराभूत न हुआ तू (देववीतिं अभि) यज्ञके पास जा। हे (सोम) सोम ! (वृत्रहा इन्द्राय) वृत्रका वध करनेवाले इन्द्रके लिये (पवस्व) तू रस दे। (पुरुश्चन्द्रस्य महः रायः) तेजस्वी धन बहुत (शग्धि) दे दो। हम (सुवीर्यस्य पतयः स्याम) उत्तम पराक्रमके हम स्वामी बने ॥ ७ ॥

१ वन्वन् अवातः— शत्रुओंको दूर करके हम विजयी बने।
२ देववीतिं अभि— यज्ञमें हम जायें। जहां यज्ञ हो रहा हो वहां अवश्य जाना चाहिये।
३ हे सोम ! वृत्रहा इन्द्राय पवस्व— हे सोम ! वृत्रका वध करनेवाले इन्द्रके लिये तू अपना रस निकालकर दे।
४ पुरुश्चन्द्रस्य महः रायः शग्धि— तेजस्वी धन हमें बहुत दो।
५ सुवीर्यस्य पतयः स्याम— हम उत्तम पराक्रम करनेवाले हो जांय। उत्तम पराक्रम करनेसे ही धन प्राप्त होता है।

[९०]

[८११] (हिन्वानः) प्रेरणा देनेवाला (रोदस्योः जनिता) द्युलोक और पृथिवीका उत्पन्न करनेवाला सोम (वाजं सनिष्यन्) अन्न देता है (प्र आयासीत्) और आगे चलता है। (इन्द्रं गच्छन्) इन्द्रके पास जाता है (आयुधा संशिशानः) शस्त्रोंको तीक्ष्ण करता है और हमें देनेके लिये (विश्वा वसु) सब धन (हस्तयोः आदधानः) हाथोंमें धारण करता है ॥ १ ॥

८१२ अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधा—माङ्गूशाणामवावशन्त वाणीः ।
वना वसानो वरुणो न सिन्धून् वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥ २ ॥
८१३ शूरग्रामः सर्ववीरः सहावा—ञ्जेता पवस्व सनिता धनानि ।
तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्व—षाळ्हः साह्वान् पृतनासु शत्रून् ॥ ३ ॥

अर्थ— १ हिन्वानः— उत्तम कार्य करनेकी प्रेरणा यह सोम देता है ।
२ रोदस्योः जनिता— द्यावापृथिवीसे उत्साह उत्पन्न करता है ।
३ वाजं सनिष्यन्— अन्न देता है और अन्नसे सबका पोषण करता है ।
४ प्र अयासीत्— प्रगति करता है, प्रगतिका मार्ग दिखाता है ।
५ इन्द्रं गच्छन्— इन्द्रके पास जाकर रहता है ।
६ आयुधा संशिशानः— शस्त्रास्त्रोंको तीक्ष्ण करता है ।
७ विश्वा वसु हस्तयोः आदधानः— सब धन दान करनेके हेतुसे अपने हाथोंमें धारण करता है ।

[८१२] (त्रिपृष्ठं) तीन स्थानोंमें रहनेवाले (वृषणं) वर्षा करनेवाले (वयोधां) अन्नका दान करनेवाले (आंगूषाणां) स्तोताओंकी सोमकी (वाणीः) स्तुतियां (अभि वावशन्त) चल रही हैं । (वना वसानः) जलमें रहनेवाला (वरुणः न) वरुणके समान (सिन्धून्) नदी जलोंके साथ मिश्रित होकर रहता है । (रत्नधाः) रत्नोंका धारण करनेवाला यह सोम (वार्याणि दयते) धनोंको देता है ॥ २ ॥

१ त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधां आंगूषाणां वाणीः अभि वावशन्त— तीन स्थानमें रहनेवाले, बल बढानेवाले, अन्न देनेवाले सोमकी स्तुतियां याजक लोग कर रहे हैं ।
२ वनाः वसानः वरुणः न सिन्धून्— जलमें मिश्रित होनेवाला सोमरस, वरुणके समान नदियोंके जलमें मिश्रित होता है ।
३ रत्नधा वार्याणि दयते— रत्नोंका धारण करनेवाला सोमरस इष्ट धनोंको देता है ।

[८१३] (शूरग्रामः) शूरोंका समूह (सर्ववीरः) सब वीरोंसे युक्त महाशूर (सहावान्) कष्टोंको सहन करनेवाला (जेता) विजय प्राप्त करनेवाला (धनानि सनिता) धनोंको पास रखनेवाला (तिग्मायुधः) तीक्ष्ण आयुधोंवाला (क्षिप्रधन्वा) धनुष्यबाण शीघ्र चलानेवाला (समत्सु असाळ्हः) संग्रामोंमें शत्रुको जीतनेवाला (पृतनासु शत्रून् साह्वान) युद्धोंमें शत्रुओंका पराभव करनेवाला यह सोम है ॥ ३ ॥

१ शूरग्रामः— जिसके साथ शूरवीर पुरुषोंका बडा समाज सदा रहता है ।
२ सर्ववीरः— सब प्रकारकी वीरता जिसमें है ।
३ सहावान्— कष्टोंको सहन करनेवाला है ।
४ जेता— युद्धमें विजय प्राप्त करता है ।
५ धनानि सनिता— धनोंका दान करता है, सहायकोंको धन देता है ।
६ तिग्मायुधः— जिसके आयुध तीक्ष्ण होते हैं ।
७ क्षिप्रधन्वा— धनुष्य शीघ्रताके साथ चलाता है ।
८ समत्सु असाळ्हः— युद्धोंमें शत्रुके लिये असह्य होता है ।
९ पृतनासु शत्रून् आह्वान्— युद्धोंमें शत्रुका हमला सहन करनेमें समर्थ ।

ये गुण वीर पुरुषोंमें होने चाहिये । इन शुभ गुणोंसे ही मनुष्यका युद्धमें विजयी हो सकता है ।

८१४ उरुगव्यूतिरभयानि कृण्वन् त्समीचीने आ पवस्वा पुरंधी ।
अपः सिषासन्नुषसः स्व१र्गाः सं चिक्रदो महो अस्मभ्यं वाजान् ॥ ४ ॥
८१५ मत्सि सोम वरुणं मत्सि मित्रं मत्सीन्द्रमिन्दो पवमान विष्णुम् ।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान् मत्सि महामिन्द्रमिन्दो मदाय ॥ ५ ॥
८१६ एवा राजेव क्रतुमाँ अमेन विश्वा घनिघ्नद्दुरिता पवस्व ।
इन्दो सूक्ताय वचसे वयो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

अर्थ— [८१४] हे सोम ! (उरुगव्यूतिः) विस्तीर्ण मार्गसे जानेवाला (अभयानि कृण्वन्) निर्भयता करनेवाला तू (पुरंधी समीचीने) द्यावापृथिवीको परस्पर सहायक करके (आ पवस्व) तू अपना रस दे । (अपः) जलप्रवाह (उषसः) उषाएं (स्वः) सूर्य तथा (गाः) सूर्य किरणोंको (सिषासन्) अपने पोषण करनेके लिये रखता हुआ (सं चिक्रदः) शब्द करता है । (अस्मभ्यं) हमारे लिये (महः वाजान्) बडा अन्न देनेकी इच्छा करता है ॥ ४ ॥

१ उरुगव्यूतिः अभयानि कृण्वन्— विस्तीर्ण मार्गसे जानेवाला तू सर्वत्र निर्भयता उत्पन्न करता है ।
२ पुरंधी समीचीने— द्यु और पृथिवीमें परस्पर एकता करता है ।
३ अपः उषसः स्वः गाः सिषासन्— जलप्रवाह, उषा, द्यु, किरण या गौवें इनको सुव्यवस्थित रीतिसे रखता है ।
४ अस्मभ्यं महः वाजान्—हमें बहुत अन्न दे ।
५ अभयानि कृण्वन्— सर्वत्र निर्भयता करो ।

[८१५] हे (पवमान) सोम ! (वरुणं मत्सि) वरुणको आनंदित करता है । (मित्रं मत्सि) मित्रको प्रसन्न करता है । (इन्द्रं मत्सि) इन्द्रको प्रसन्न करता है । हे (इन्दो) सोम ! (पवमान) सोमरस ! (विष्णुं) विष्णुको आनंदित करता है । (मारुतं शर्धः मत्सि) मरुतोंके समुदायको प्रसन्न करता है । हे (इन्दो) सोम ! तू (देवान् मत्सि) देवोंको आनंदित करता है । (महां इन्द्रं मदाय) बडे इन्द्रको तू आनंद देता है ॥ ५ ॥

हे सोम ! तू वरुण, मित्र, इन्द्र, विष्णु, मरुद्गण, सब देव इन सबको आनंदित करता है । सोमरस पीनेसे सब देव आनंदित होते हैं ।

१ हे इन्दो ! देवान् मत्सि— हे सोम ! तू सब देवोंको आनंद देता है । ये सब देव यज्ञमें आते हैं, यज्ञमें सोमरस पीते हैं और आनंद प्रसन्न होते हैं । सोमरस पीनेसे मन आनंदसे प्रसन्न होता है ।

[८१६] हे सोम ! (एव) इस प्रकार स्तुति किया हुआ तू (क्रतुमान्) यज्ञ करनेवाला (राजा इव) राजाके समान (अमेन) बलसे (विश्वा दुरिता) सब दुष्ट कृत्य (घनिघ्नन्) विनाश करके (पवस्व) रस निकालो । हे (इन्दो) सोम ! (सूक्ताय वचसे) उत्तम स्तोत्रके लिये (वयो धाः) अन्न दो और (यूयं) तुम सब देव (स्वस्तिभिः) कल्याणके मार्गोंसे (सदा नः पात) सदा हमारा रक्षण करो ॥ ६ ॥

१ एव क्रतुमान् राजा इव अमेन विश्वा दुरिता घनिघ्नन्— इस प्रकार शुभकर्म करनेवाले राजाके समान अपने बलसे सब दुष्ट कृत्योंका विनाश करो । स्वयं शुभ कर्म करो और जो दुष्ट कृत्य करते हैं उनका विनाश करो ।
२ सूक्ताय वचसे वयो धाः— उत्तम स्तुति करनेवालेके लिये अन्नका दान करो ।
३ यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात— तुम उत्तम आचरणसे सदा हमारा संरक्षण करो ।

[९१]

(ऋषिः- कश्यपो मारीचः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

८१७ असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमो मनीषी ।
दश स्वसारो अधि सानो अव्ये ऽजन्ति वह्निं सदनान्यच्छ ॥ १ ॥
८१८ वीती जनस्य दिव्यस्य कव्यै- रधि सुवानो नहुष्येभिरिन्दुः ।
प्र यो नृभिरमृतो मर्त्येभि- र्मर्मृजानोऽविभिर्गोभिरद्भिः ॥ २ ॥
८१९ वृषा वृष्णे रोरुवदंशुरस्मै पवमानो रुशदीर्ते पयो गोः ।
सहस्रमृक्वा पथिभिर्वचोवि- दध्वस्मभिः सूरो अण्वं वि याति ॥ ३ ॥

---

[९१]

अर्थ— [८१७] (वक्वा) वक्ता, शब्द करनेवाला सोम (आजौ) यज्ञरूप (धिया) बुद्धिपूर्वक किये कर्ममें (असर्जि) रस निकाल देता है (यथा रथ्ये आजौ) जैसे रथोंके युद्धमें घोडा (धिया) बुद्धिसे प्रेरित किया जाता है वैसा यह (मनोता) मननशील (प्रथमः मनीषी) प्रमुख ज्ञानी यज्ञकार्यमें प्रेरित किया जाता है उस प्रकार (दश स्वसारः) दस बहिनें, दस अंगुलियां (अव्ये सानौ) मेढीके बालोंकी बनी छाननीके (अधि) ऊपर (सदनानि अच्छ) यज्ञस्थानोंके पास (वन्हि अजन्ति) तेजस्वी सोमको प्रेरित करती हैं ॥ १ ॥

१ वक्वा आजौ धिया असर्जि— शब्द करनेवाला सोम यज्ञमें स्तुतिके साथ रस निकालता है ।
२ यथा रथ्ये आजौ धिया— जैसा रथयुद्धमें बुद्धिसे प्रेरित घोडा चलाया जाता है ।
३ मनोता प्रथमः मनीषी— मननशील मुख्य विद्वान् यज्ञमें मुख्य होता है ।
४ दश स्वसारः अव्ये सानौ अधि सदनानि अच्छ वन्हि अजन्ति— दस अंगुलियां मेढीके बालोंकी छाननीके ऊपर यज्ञके स्थानमें इस तेजस्वी सोमको प्रेरित करती हैं ।

[८१८] (कव्यैः) कवियों द्वारा (नहुष्येभिः) विद्वानों द्वारा (अधि सुवानः इन्दुः) रस निकाला सोम (दिव्यस्य जनस्य वीती) दिव्य जनोंके भक्षणके लिये यज्ञमें (अधि) जाता है । (यः अमृतः) मरण धर्मरहित यह सोम (नृभिः मर्त्येभिः मृजानः) मनुष्यों अर्थात् याजकों द्वारा शुद्ध किया जाता है । (अविभिः गोभिः अद्भिः) मेढीके बालोंसे शुद्ध होकर गोदुग्ध तथा जलसे मिश्रित होकर सोम यज्ञमें आता है ॥ २ ॥

१ कव्यैः नहुष्येभिः अधि सुवानः इन्दुः— विद्वान कवियों द्वारा इस सोमका रस निकाला जाता है ।
२ दिव्यस्य जनस्य वीती अधि— दिव्य जन इसका भक्षण करते हैं ।
३ यः अमृतः मर्त्येभिः नृभिः मृजानः— यह सोम अमृत जैसा उत्तम पेय है, वह मानवोंके द्वारा निकाला रस है ।
४ अविभिः गोभिः अद्भिः मृजानः— मेढीके बालोंकी छाननीपर गोदुग्धमें तथा जलोंमें मिलाकर शुद्ध किया जाता है ।

[८१९] (वृषा) इच्छाकी तृप्ती करनेवाला (रोरुवत्) शब्द करनेवाला (अंशुः पवमानः) सोम शुद्ध होता हुआ (अस्मै वृष्णे) इस वृष्टी करनेवाले इन्द्रके लिये (रुशत्) अपना तेज दिखाता है । और (गोः पयः ईर्ते) गौका दूध उसमें मिलाया जाता है । (वचोवित्) स्तुतिको जाननेवाला (सूरः) उत्तम वीर्यवान प्रेरक सोम (अध्वस्मभिः) अहिंसाशील (सहस्रं पथिभिः) हजारों मार्गोंसे (अण्वं वि याति) छाननीमेंसे छाना जाता है ॥ ३ ॥

८२० रुजा दृळ्हा चिद्रक्षसः सदांसि पुनान इन्द ऊर्णुहि वि वाजान् ।
वृश्चोपरिष्टात् तुजता वधेन ये अन्ति दूरादुपनायमेषाम् ॥ ४ ॥
८२१ स प्रत्नवन्नव्यसे विश्ववार सूक्ताय पथः कृणुहि प्राचः ।
ये दुष्षहासो वनुषा बृहन्त—स्तांस्ते अश्याम पुरुकृत् पुरुक्षो ॥ ५ ॥
८२२ एवा पुनानो अपः स्व१र्गा अस्मभ्यं तोका तनयानि भूरि ।
शं नः क्षेत्रमुरु ज्योतींषि सोम ज्योङ्नः सूर्यं दृशये रिरीहि ॥ ६ ॥

अर्थ — १ वृषा रोरुवत् अंशुः पवमानः अस्मै वृष्णे रुशत्— वृष्टि करनेवाला शब्द करनेवाला शुद्ध होनेवाला सोम इस बलशाली इन्द्रके लिये अपना तेज दिखाता है ।

२ गोः पयः ईर्ते— गौका दूध उस सोमरसमें मिलाया जाता है ।

३ सूरः अध्वस्मभिः सहस्रं पथिभिः अण्वं वि याति— यह उत्तम प्रेरणा देनेवाला सोम हजारों अहिंसाके मार्गोंसे छाननीमेंसे छाना जा रहा है ।

[८२०] हे (इन्दो) सोम ! तू (रक्षसः) राक्षसोंके (दृळ्हा सदांसि) सुदृढ स्थानोंको (रुज) विनष्ट कर । (पुनानः) शुद्ध होकर (वाजान् वि ऊर्णुहि) उनके बलोंको विनष्ट कर । उनके अन्नोंको नष्ट कर । (ये उपरिष्टात्) जो ऊपरसे आते हैं, (ये अन्ति) जो हमारे समीप हैं, (दूरात्) जो दूरसे आते हैं (एषां उपनायं) इनके मुख्य नायकको (वधेन वृश्च) वध करके विनष्ट करो ॥ ४ ॥

१ हे इन्दो ! रक्षसः दृळ्हा सदांसि रुज— हे सोम ! तू राक्षसोंके मजबूत किलों जैसे स्थानोंको विनष्ट कर ।

२ पुनानः वाजान् वि ऊर्णुहि— शुद्ध होकर उन राक्षसोंके सामर्थ्योंको विनष्ट कर ।

३ ये उपरिष्टात्, ये अन्ति, ये दूरात् एषां उपनायं वधेन वृश्च— जो शत्रु ऊपरसे आते हैं, जो पास हैं, जो दूर हैं, उनके मुख्य संचालकको वध करके विनष्ट कर ।

[८२१] हे (विश्ववार) सबके स्वीकार करने योग्य सोम ! (सः) वह तू (प्रत्नवत्) प्राचीनके समान (नव्यसे) नवीन (सूक्ताय) सूक्तके लिये (पथः प्राचः कृणुहि) मार्गोंको प्राचीन जैसा करो । हे (पुरुकृत्) बहुत कर्म करनेवाले (पुरुक्षो) बहुत स्तुतिके योग्य हे सोम ! जो (दुः सहासः) शत्रुरूपी राक्षसोंसे सहन करनेके लिये अयोग्य (वनुषा) हिंसासे युक्त (बृहन्तः) बडे (ये) जो तेरे अंश हैं (तान् ते अश्याम) उन तुम्हारे गुणोंको हम प्राप्त करेंगे ॥ ५ ॥

१ हे विश्ववार ! सः प्रत्नवत् नव्यसे सूक्ताय पथः प्राचः कृणुहि— हे सबको स्वीकार करने योग्य सोम ! वह तू प्राचीन सूक्तोंके समान नवीन सूक्तोंके लिये उत्तम मार्ग तैयार करो ।

२ पुरुकृत् पुरुक्षो— बहुत कर्म करनेवाले और बहुत स्तुतिके योग्य सोम ।

३ दुःसहासः वनुषा बृहन्तः ये तान् ते अश्याम— शत्रुरूपी राक्षसोंके लिये सहन करनेके लिये कठिन ऐसे जो तेरे बडे श्रेष्ठ शुभ गुण हैं उनको हम प्राप्त करके अपने अंदर धारण करेंगे ।

[८२२] हे (सोम) सोम ! (एव) इस प्रकार (पुनानः) शुद्ध होता हुआ तू (अस्मभ्यं) हमारे लिये (अपः रिरीहि) जल दे । (स्वः गाः) स्वर्ग, गौवें (भूरि तोका तनयानि) बहुत पुत्र पौत्र दे । (नः) हमारा (क्षेत्रं) स्थान (शं) सुखदायक कर । हे (सोम) सोम ! (ज्योतींषि) इन नक्षत्रोंको (उरु) विस्तीर्ण कर । तथा (नः) हमारे लिये (सूर्य) सूर्यके (ज्योक्) देखनेके लिये (दृशये कुरु) दर्शनीय कर ॥ ६ ॥

×

[९२]

(ऋषिः- कश्यपो मारीचः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

८२३ परि सुवानो हरिरंशुः पवित्रे रथो न सर्जि सनये हियानः ।
आपच्छ्लोकमिन्द्रियं पूयमानः प्रति देवाँ अजुषत प्रयोभिः ॥ १ ॥

८२४ अच्छा नृचक्षा असरत् पवित्रे नाम दधानः कविरस्य योनौ ।
सीदन् होतेव सदने चमूषू-पेमग्मन्नृषयः सप्त विप्राः ॥ २ ॥

अर्थ— १ हे सोम ! एव पुनानः अस्मभ्यं अपः रिरीहि— इस प्रकार शुद्ध होकर हे सोम ! तू हमें जल देओ ।

२ स्वः गाः भूरि तोका तनयानि— सुख, स्वर्ग, गौवें, तथा बहुत पुत्र और पौत्र दे ।

३ नः क्षेत्र शं— हमारा स्थान हमें सुख देनेवाला हो जाय ।

४ ज्योतींषि ऊरु— ये नक्षत्र विस्तीर्ण होकर हमें विशेष सुख दें ।

५ सूर्यं ज्योक् दृशये कुरु— सूर्य बहुत काल दीखे ऐसा कर । हमें दीर्घायु कर जिससे हमें सूर्य बहुत वर्षतक दीखता रहे ।

[९२]

[८२३] (सुवानः) रस निकाला गया (हियानः) प्रेरित किया गया (हरिः अंशुः) हरे रंगका सोम (पवित्रे) छाननीमेंसे (सनये) देवोंकी प्रसन्नताके लिये (परि सर्जि) छाना जाता है । (रथः न) रथ जैसा शत्रु वधके लिये प्रेरित किया जाता है । (पूयमानः) शुद्ध किया जानेवाला (इन्द्रियं श्लोकं आपत्) इन्द्रकी स्तुतिको सुनता है । और यह सोम (प्रयोभिः) अन्नोंके द्वारा (देवान् प्रति अजूषत) देवोंकी सेवा करता है ॥ १ ॥

१ सुवानः हियानः हरिः अंशु पवित्रे सनये परि सर्जि— रस निकाला प्रेरित होनेपर यह सोम छाननीमेंसे देवोंको देनेके लिये छाना जाता है ।

२ रथः न— रथ जैसा युद्धमें जाता है वैसा यह सोम यज्ञमें जाता है ।

३ पूयमानः इन्द्रियं श्लोकं आपत्— छाना जाकर यह सोम इन्द्रकी की हुई स्तुति सुनता है ।

४ प्रयोभिः देवान् प्रति अजूषत— अन्नोंके साथ देवोंके पास यह पहुंचता है ।

[८२४] (नृचक्षाः) मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाला (कविः) ज्ञानी सोम (नाम दधानः) जलके साथ मिलकर रहनेवाला (अस्य योनौ) इस यज्ञके स्थानमें (पवित्र अच्छ असरत्) छाननीमेंसे अच्छी तरह छाना जाता है । (होता इव) हवन करनेवालेके समान (सदने) यज्ञके स्थानमें (चमूषु सीदन्) पात्रोंमें रहता है । उस समय (सप्त विप्राः) सात ज्ञानी ऋत्विज (ऋषयः) तत्त्वज्ञानी (ईं) इस सोमके समीप (उप अग्मन्) स्तोत्र कहते हुए बैठते हैं ॥ २ ॥

१ नृचक्षाः कविः नाम दधानः अस्य योनौ पवित्रे अच्छ असरत्— मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाला ज्ञानी सोम जलके साथ मिलकर इस यज्ञके स्थानमें छाननीमेंसे छाना जाता है ।

२ होता इव सदने चमूषु सीदन्— हवन करनेवालेके समान यज्ञस्थानमें पात्रोंमें यह सोमरस रहता है ।

३ सप्त विप्राः ऋषयः ईं उप अग्मन्— सात ज्ञानी ऋषि इस सोमके पास जाते हैं और यज्ञमें उस सोमको लाते हैं और यज्ञमें देवताओंको देते हैं ।

८२५ प्र सुमेधा गातुविद्विश्वदेवः सोमः पुनानः सद एति नित्यम् ।
भुवद्विश्वेषु काव्येषु रन्ता ऽनु जनान् यतते पञ्च धीरः ॥ ३ ॥
८२६ तव त्ये सोम पवमान निण्ये विश्वे देवास्त्रय एकादशासः ।
दश स्वधाभिरधि सानो अव्ये मृजन्ति त्वा नद्यः सप्त यह्वीः ॥ ४ ॥
८२७ तन्नु सत्यं पवमानस्यास्तु यत्र विश्वे कारवः संनसन्त ।
ज्योतिर्यदह्ने अकृणोदु लोकं प्रावन्मनुं दस्यवे करभीकम् ॥ ५ ॥

अर्थ — [८२५] (सुमेधाः) उत्तम बुद्धिमान (गातुवित्) मार्गका ज्ञाता (विश्वदेवः) सब प्रकाशमय (पुनानः सोमः) छाना जानेवाला सोम (नित्यं) सदा (सदः) कलशके पास (प्र एति) जाता है (विश्वेषु काव्येषु) सब काव्योंमें (रन्ता भुवत्) रममाण होता है ! (धीरः) धैर्यवान यह सोम (पञ्च जनान्) पांच प्रकारके लोगोंके (अनु यतते) अनुकूल बनकर उनकी उन्नतिके लिये प्रयत्न करता है ॥ ३ ॥

१ सुमेधाः गातुवित् विश्वदेवः पुनानः सोमः नित्यं सदः प्र एति— उत्तम बुद्धिमान, प्रगतिका मार्ग जाननेवाला, सर्वदेव सदृश शुद्ध होनेवाला सोम सदा यज्ञस्थानमें जाता है ।

२ विश्वेषु काव्येषु रन्ता भुवत्— सब स्तुतिके काव्योंमें वह सोम आनंदित होता है ।

३ धीरः पञ्चजनान् अनुयतते— यह धैर्यधारी सोम पांच जनोंके हित करनेका यत्न करता है । ज्ञानी, शूर, व्यापारी, कर्मचारी तथा सेवक ये पांच प्रकारके लोग हैं । इनके अनुकूल सब कार्य करने चाहिये ।

[८२६] हे (पवमान सोम) पवित्र होनेवाले सोम ! (तव त्ये) तुम्हारे वे (त्रयः एकादशासः) तीन-बार ग्यारह अर्थात् तैंतीस (देवाः) देवताएं (विश्वे देवाः) अर्थात् सब देव (निण्ये) द्युलोकमें हैं । (दश) दस अंगुलियां (अव्ये सानौ अधि) भेडीके बालोंकी छाननीके ऊपर (स्वधाभिः) जलोंसे (यह्वीः सप्त नद्यः) बडी सात नदियां (मृजन्ति) शुद्ध करती हैं ॥ ४ ॥

१ हे पवमान सोम ! तव त्ये त्रयः एकादशासः देवाः विश्वे देवाः निण्ये— हे पवमान सोम ! तेरे वे तैंतीस देव अर्थात् सब देव द्युलोकमें गुप्त रीतिसे रहते हैं ।

२ दश अव्ये सानो अधि स्वधाभिः यह्विः सप्त नद्यः मृजन्ति— दस अंगुलियां भेडीके बालोंकी छाननीके ऊपर सात नदियोंके जलोंसे तुझे शुद्ध करती हैं ।

सात नदियोंका जल यज्ञमें लाया जाता है और उस जलको सोमरसके साथ मिलाकर वह मिश्रण भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे छाना जाता है ।

[८२७] (सत्यं तत्) सत्य वह प्रसिद्ध (पवमानस्य नु) सोमका स्थान (अस्तु) है (यत्र) जहां (विश्वे कारवः) सब स्तोता लोग (संनसन्त) एकत्रित होकर बैठते हैं । इस सोमकी (यत् ज्योतिः) जो ज्योति (अह्ने) दिनके लिये (लोकं) प्रकाश (अकृणोत्) करती है वह ज्योति (मनुं प्रावत्) मनुका संरक्षण करती है । तथा सोम अपना तेज (दस्यवे अभीकं) दस्युओंके लिये विनाशक (कः) करता है ॥ ५ ॥

१ तत् पवमानस्य सत्यं अस्तु— वह सोमका यज्ञमें सत्य स्थान है ।

२ यत्र विश्वे कारवः संनसन्त— जहां सब स्तोता लोग मिलकर बैठते हैं । वह यज्ञका स्थान है जहां सोमके साथ याजक बैठते हैं ।

३ यत् ज्योतिः अह्ने लोकं अकृणोत्— जो ज्योति दिनके लिये प्रकाश देती है ।

४ मनुं प्रावत्— मनुष्यका संरक्षण वह ज्योति करती है ।

५ दस्यवे अभीकं कः— शत्रुके लिये विनाश करनेवाला वह तेज होता है ।

८२८ परि सद्मेव पशुमान्ति होता राजा न सत्यः समितीरियानः ।
सोमः पुनानः कलशाँ अयासीत् सीदन् मृगो न महिषो वनेषु ॥ ६ ॥

[९३]

(ऋषिः- नोधा गौतमः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

८२९ साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥ १ ॥

८३० सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः ।
मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन् सं गच्छते कलश उस्रियाभिः ॥ २ ॥

अर्थ— [८२८] (होता) ऋत्विज (पशुमन्ति सद्म इव) पशु युक्त यज्ञगृहमें जैसा जाता है अथवा (राजा) राजा (सत्यः) सत्य कर्म करनेवाला जैसा (समितीः इयानः) राज समितिको जानेवाला होता है वैसा (पुनानः सोमः) स्वच्छ छाना जानेवाला सोम (कलशान् अयासीत्) कलशोंमें जाता है। (मृगः महिषः वनेषु सीदन् न) मृग महिष जैसा उदकोंमें जाता है ॥ ६ ॥

१ होता पशुमन्ति सद्म इव— यज्ञ करनेवाला गौ आदि पशुओंसे युक्त यज्ञके गृहमें जैसा जाता है ।

२ सत्यः राजा समितीः इयानः— सच्चा राजा जैसा प्रजाकी समितिको जाता है । राष्ट्रसभा यह " समिति " है । ग्रामसभा " सभा " कहती है । ग्रामसभा, राष्ट्र समिति, आमंत्रण मंत्रीमंडल ये तीन सभाओं द्वारा वैदिक समय राज्यशासन चलाया जाता था ।

३ पुनानः सोमः कलशान् अयासीत्— स्वच्छ हुआ सोमरस कलशोंमें जाकर रहता है । जैसा राजा सभा, समिति और मंत्रीमंडलमें जाकर रहता है, वैसा यह सोम कलशोंमें जाकर रहता है ।

४ मृगः न महिषः वनेषु सीदन् न— महिष जैसा जलोंमें बैठता है वैसा राजा सभाओंमें विराजता है।

[९३]

[८२९] (साकं- उक्षाः) साथ रहकर सींचनेवाली (स्वसारः) बहिनोंके समान (दश) दस (धीतयः) अंगुलियां (मर्जयन्त) सोमको शुद्ध करती हैं । ये अंगुलियां (धीरस्य) वीर सोमको (धनुत्रीः) प्रेरणा देती हैं । (हरिः) हरे रंगका सोम (सूर्यस्य जाः) सूर्यसे उत्पन्न हुई दिशाओंमें (पर्यद्रवत्) जाकर रस देता है और (अत्यः वाजी न) शीघ्र दौडनेवाले घोडेके समान (द्रोणं ननक्षे) कलशमें जाता है ॥ १ ॥

१ साकं उक्षाः स्वसारः दश मर्जयन्त— साथ जलका सिंचन करनेवाली बहिनोंके समान दस अंगुलियां इस सोमको शुद्ध करती हैं ।

२ धीरस्य धनुत्रीः— वीर सोमको ये प्रेरणा देती हैं । देवताओंके समीप पहुंचनेकी प्रेरणा देती हैं ।

३ हरिः सूर्यस्य जाः पर्यद्रवत्— हरे रंगका सोम सूर्यसे उत्पन्न हुई दिशाओंमें रस देता है । चारों दिशाओंमें सोमसे रस निकलता है ।

४ द्रोणं ननक्षे— कलशमें यह रस जाता है ।

५ अत्यः वाजी न— दौडनेवाले घोडेके समान यह सोमरस कलशमें जाता है ।

[८३०] (वावशानः) देवोंको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाला (वृषा) कामनाओंकी पूर्णता करनेवाला (पुरुवारः) अनेकों द्वारा स्वीकार करने योग्य सोम (अद्भिः सं दधन्वे) जलोंके साथ मिलता है । (मातृभिः शिशुः न) माताओंसे जैसा बालक मिलकर रहता है । (मर्यः न योषां) पुरुष जैसा स्त्रीके पास जाता है । वैसा (निष्कृतं अभियन्) अपने नियत स्थानके पास जाता है। वैसा (उस्रियाभिः) गौओंके दूधके साथ मिलकर (कलशं संगच्छते) कलशमें मिल जाता है ॥ २ ॥

८३१ उत प्र पिंप्य ऊधरघ्न्याया इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः ।
मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति वसुभिर्न निक्तैः ॥ ३ ॥
८३२ स नो देवेभिः पवमान रदेन्दो रयिमश्विनं वावशानः ।
रथिरायतामुशती पुरंधिरस्मद्र्यगा दावने वसूनाम् ॥ ४ ॥

अर्थ— १ वावशानः वृषा पुरुवारः अद्भिः सं दधन्वे— देवोंको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाला, वृष्टि करनेवाला, अनेकों द्वारा स्वीकृत किया हुआ सोमरस जलोंके साथ मिलता है ।

२ मातृभिः शिशुः न— माताओंके साथ जैसा बालक मिलता है वैसा यह मिलता है ।

३ मर्यः योषां न— पुरुष जैसा स्त्रीके साथ मिलकर रहता है, वैसा यह सोमरस जलके साथ मिलकर रहता है ।

४ निष्कृतं अभियन्, उस्रियाभिः कलशं संगच्छते— सोम अपने नियत स्थानको प्राप्त करता है और गोदुग्धके साथ मिलकर कलशमें जाता है ।

[८३१] (उत) और (अघ्न्यायाः) गौका (ऊधः) दूधका स्थान यह सोम (प्र पिप्ये) विशेष रीतिसे पुष्ट करता है । (सुमेधाः) उत्तम बुद्धिमान यह (इन्दुः) सोम (धाराभिः सचते) रसधाराओंसे मिश्रित होता है । (गावः) गौवें (पयसा) अपने दूधसे (मूर्धानं) मुख्य सोमको (चमूषु) कलशोंमें (अभि श्रीणन्ति) मिश्रित करती हैं । (निक्तैः वसुभिः न) जैसा धौत वस्त्रोंसे शरीर आच्छादित होता है ॥ ३ ॥

१ अघ्न्यायाः ऊधः उत प्र पिप्ये— यह सोम गौका दूधका स्थान विशेष पुष्ट करता है । सोम खानेसे गौका दुग्धाशय पुष्ट होता है ।

२ सुमेधाः इन्दुः धाराभिः सचते— उत्तम बुद्धि बढानेवाला यह सोम अपनी रस धाराओंसे दूधमें मिल जाता है ।

३ गावः पयसा मूर्धानं चमूषु अभि श्रीणन्ति— गौवें अपने दूधके साथ इस श्रेष्ठ सोमको कलशोंमें मिश्रित करती हैं । कलशोंमें दूधके साथ सोमका रस मिश्रित किया जाता है ।

४ निक्तैः वसुभिः न— जैसा शुभ्र वस्त्रसे शरीर वेष्टित होता है वैसा सोमरस दूधसे परिवेष्टित अर्थात् मिश्रित किया जाता है ।

[८३२] हे (पवमान) सोम ! (सः) वह तू (नः) हमारे लिये (देवेभिः) देवोंके साथ वह धन (रद) प्रदान करो । हे (इन्दो) सोम ! (वावशानः) इच्छा करता हुआ तू (अश्विनं रयिं) घोडोंसे युक्त धन प्रदान (नः) हमारे लिये करो । (रथिरायतां) रथी वीरोंकी इच्छानुसार (उशती) इच्छा करनेवाली (पुरंधिः) श्रेष्ठ बुद्धि (वसूनां दावने) धनोंका दान करनेके लिये (आ) हमारे पास आवे ॥ ४ ॥

१ हे पवमान ! सः नः देवेभिः रद— हे सोम ! वह तू हमारे पास देवोंके साथ धन भेज दो ।

२ हे इन्दो ! वावशानः अश्विनं रयिं नः रद— हे सोम ! तू इच्छापूर्वक घोडोंके साथ धन हमें प्रदान करो । हमें धन मिले तथा घोडे भी मिलें ।

३ रथिरायतां उशती पुरंधिः वसूनां दावने आ— रथोंमें बैठनेवाले वीरोंकी बडी बुद्धि धन देनेके लिये प्रवृत्त हो । रथमें बैठनेवाले वीर भी धनका दान करें ।

८३३ नू नो रयिमुप मास्व नृवन्तं पुनानो वाताप्यं विश्वश्चन्द्रम् ।
प्र वन्दितुरिन्दो तार्यायुः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ ५ ॥

[९४]

(ऋषिः- कण्वो घोरः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

८३४ अधि यदस्मिन् वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः सूर्ये न विशः ।
अपो वृणानः पवते कवीयन् व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म ॥ १ ॥

अर्थ—[८३३] हे सोम ! (पुनानः) छाना जानेवाला तू (नः) हमारे लिये (नु) त्वरासे (नृवन्तं) पुत्र पौत्रोंसे युक्त (रयिं) धन (उप मास्व) प्राप्त कराओ । तथा (विश्वश्चन्द्रं) सबको आनंद देनेवाला (वाताप्यं) जलसे युक्त धन हमें दे दो । हे (इन्दो) सोम ! (वन्दितुः) तेरी स्तुति करनेवालेका (आयुः प्र तारि) आयु दीर्घ करो । हे सोम ! (धियावसुः) बुद्धिसे युक्त धन देनेवाला तू (प्रातः मक्षु) सबेरे अथवा शीघ्र ही हमारे यज्ञके पास (जगम्यात्) आ जाओ ॥ ५ ॥

१ पुनानः नः नु नृवन्तं रयिं उप मास्व— शुद्ध होकर तू, हे सोम ! हमारे लिये पुत्र पौत्रोंसे युक्त धन प्राप्त कर दो ।

२ विश्वश्चन्द्रं वाताप्यं— सबका आनंद बढानेवाला जलयुक्त, सुखसे पूर्ण जीवनवाला धन हमें प्राप्त हो।

३ हे इन्दो ! वन्दितुः आयुः प्र तारि— हे सोम ! तेरी स्तुति करनेवालेकी आयु तू बढा दो ।

४ धियावसुः प्रातः मक्षु प्र जगम्यात्— बुद्धिसे धन बढानेवाला तू सबेरे तथा शीघ्र ही हमारे पास आकर हमें मिलो ।

[९४]

[८३४] (यत्) जिस समय (अस्मिन्) इस सोमरसमें (वाजिनि इव) घोडे पर जैसे (शुभः) अलंकार शोभते हैं तथा (सूर्ये न विशः) सूर्यमें जैसे किरण शोभते हैं वैसी (धियः अधि स्पर्धन्ते) अंगुलियां स्पर्धा करती हैं । तब यह सोम (अपः वृणानः) जलके साथ मिश्रित हुआ (पवते) पात्रोंमें अपना रस देता है (कवीयन्) और कविकी इच्छा करता है जैसा (पशुवर्धनाय) गौ आदि पशुओंके संवर्धनके लिये (मन्म व्रजं न) माननीय गोशालामें कोई जाता है ॥ १ ॥

१ यत् अस्मिन् धियः अधि स्पर्धन्ते— जिस समय इस सोममें अंगुलियां रस निकालनेकी स्पर्धा करती हैं । अंगुलियां इसको दबातीं और रस निकालतीं हैं ।

२ वाजिनि इव शुभः— घोडे पर जैसे अलंकार होते हैं वैसी सोमपर अंगुलियां खेलती हैं, सोमको दबाकर उससे रस निकालती हैं ।

३ सूर्ये न विशः— सूर्यके किरण वैसी ये अंगुलियां सोमपर चलायी जाती हैं ।

४ अपः वृणानः पवते— जलसे मिश्रित होकर सोम रस देता है ।

५ कवीयन्— स्तुति करनेवालोंकी इच्छा सोम करता है ।

६ पशुवर्धनाय मन्म व्रजं न— गौ आदि पशुओंकी संख्या बढे इस लिये निरीक्षण करनेके लिये जैसे गोशालामें जाते हैं, उस प्रकार यज्ञमें सोमका निरीक्षण ऋत्विज लोक करते हैं ।

८३५ द्विता व्यूर्ण्वन्नमृतस्य धाम स्वर्विदे भुवनानि प्रथन्त ।
धियः पिन्वानाः स्वसरे न गाव ऋतायन्तीरभि वावश्र इन्दुम् ॥ २ ॥
८३६ परि यत् कविः काव्या भरते शूरो न रथो भुवनानि विश्वा ।
देवेषु यशो मर्ताय भूषन् दक्षाय रायः पुरुभूषु नव्यः ॥ ३ ॥
८३७ श्रिये जातः श्रिय आ निरियाय श्रियं वयो जरितृभ्यो दधाति ।
श्रियं वसाना अमृतत्वमायन् भवन्ति सत्या समिथा मितद्रौ ॥ ४ ॥

अर्थ— [८३५] सोम (अमृतस्य धाम) जलके स्थानको (द्विता) दो प्रकारोंसे (व्यूर्ण्वन्) अपने तेजसे व्यापता है । उस समय (स्वर्विदे) सर्वज्ञ सोमके लिये (भुवनानि प्रथन्त) भुवन विस्तीर्ण हो जाते हैं । उस समय (पिन्वानाः धियः) स्तुति करनेवाली वाणियां (ऋतायन्तीः) यज्ञकी इच्छा करती हुई (इन्दुं) सोमकी (स्वसरे) यज्ञके दिन (अभि वावश्रे) स्तुति करती हैं । (गावः न) जैसी गौवें गोशालामें रहकर शब्द करती हैं ॥ २ ॥

१ अमृतस्य धाम द्विता व्यूर्ण्वन्— जलके स्थानको सोम दो प्रकारसे प्राप्त करता है । सोममें दो बार जल मिलाया जाता है ।

२ स्वर्विदे भुवनानि प्रथन्त— सोमके लिये भुवन विस्तीर्ण होते हैं ।

३ पिन्वानाः धियः ऋतायन्तीः इन्दुं स्वसरे अभि वावश्रे— स्तुति करनेवाली वाणियां यज्ञ करनेकी इच्छा करती हुई यज्ञस्थानमें सोमकी स्तुति करती हैं ।

४ गावः न— गौवें गोशालामें रहती हैं उस प्रकार सोम यज्ञस्थानमें रहता है ।

[८३६] (कविः) ज्ञानी सोम (काव्या) काव्य अर्थात् स्तोत्र (यत्) जिस समय (परि भरते) सुनता है । (शूरः न) वीर पुरुषके समान (विश्वा भुवनानि) सब युद्धोंमें (रथः) रथ जैसा जाता है । तब (देवेषु यशः) देवोंके पास जो धन होता है वह (मर्ताय) मनुष्यके लिये (भूषन्) भूषण जैसा होता है । उस समय वह सोम (रायः दक्षाय) धनकी वृद्धि करनेके लिये (पुरुभूषु) यज्ञोंमें (नव्यः) स्तुतिके लिये योग्य होता है ॥ ३ ॥

१ कविः यत् काव्या परिभरते, शूरः न विश्वा भुवनानि रथः— यह ज्ञानी सोम जिस समय स्तुतिके काव्य सुनता है, उस समय शूर जैसा अपना रथ सब भुवनोंमें चलाता है । स्तुतिसे वह सर्वत्र प्रिय होता है और सर्वत्र वह पहुंचता है ।

२ देवेषु यशः मर्ताय भूषन्— देवोंके पासका धन मानवोंके लिये भूषणरूप होता है ।

३ रायः दक्षाय पुरुभूषु नव्यः— सोम धनकी वृद्धि करनेके लिये यज्ञोंमें स्तुतिके लिये योग्य समझा जाता है ।

[८३७] वह सोम (श्रिये जातः) संपत्ति बढानेके लिये उत्पन्न हुआ है । (श्रिये आ निरियाय) धनके लिये वह यज्ञमें जाता है । वह (जरितृभ्यः) स्तुति करनेवालोंके लिये (श्रियं वयः) धन और अन्न (दधाति) देता है । (श्रियं वसानाः) शोभाको धारण करनेवाले स्तुति करनेवाले ऋत्विज (अमृतत्वं आयन्) अमरपनको प्राप्त करते हैं । उस (मितद्रौ) नियमपूर्वक आक्रमण करनेवाले सोममें (समिथा) युद्ध (सत्या भवन्ति) सत्य होते हैं ॥ ४ ॥

८३८ इषमूर्जमभ्यर्षाश्वं गामुरु ज्योतिः कृणुहि मत्सि देवान् ।
विश्वानि हि सुषहा तानि तुभ्यं पवमान बाधसे सोम शत्रून् ॥ ५ ॥

[९५]

(ऋषिः- प्रस्कण्वः काण्वः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

८३९ कनिक्रन्ति हरिरा सृज्यमानः सीदन् वनस्य जठरे पुनानः ।
नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गा अतो मतीर्जनयत स्वधाभिः ॥ १ ॥

अर्थ— १ श्रिये जातः— धनके लिये यह सोम उत्पन्न हुआ है ।

२ श्रिये आ निरियाय - धनके लिये सोम यज्ञमें लाया जाता है ।

३ जरितृभ्यः श्रियं वयः दधाति— स्तुति करनेवालोंके लिये यह सोम धन तथा अन्न देता है ।

४ श्रियं वसानाः अमृतत्वं आयन्— स्तुति करनेवाले अमर होते हैं ।

५ मितद्रौ समिथा सत्या भवन्ति— नियमपूर्वक आक्रमण करनेवाले वीरोंके युद्ध सच्चे युद्ध होते हैं ।

[८३८] हे (पवमान) सोम ! (इषं उर्जा) अन्न और बलवर्धक रस (अभ्यर्ष) हमें प्रदान कर । (गां) गौको तथा (उरुज्योतिः) विशेष प्रकाश देनेवाला सूर्य (कृणुहि) निर्माण कर । (देवान् मत्सि) सब देवोंको आनन्द प्रसन्न कर । (तुभ्यं) तुम्हारे लिये (विश्वानि तानि) सब वे राक्षस (सुषहा) सहज पराभूत होनेवाले हैं । तूं (शत्रून् बाधसे) शत्रुओंको पराजित कर सकता है ॥ ५ ॥

१ हे पवमान ! इषं उर्जं अभ्यर्ष — हे सोम ! तू हमें अन्न और रस या बल दे दो । अन्न और सामर्थ्य हमें प्रदान कर ।

२ गां उरुज्योतिः कृणुहि— गौ तथा विशेष प्रकाश निर्माण कर । प्रकाश होता रहा तो गौवें बढेंगी, और गौओंसे मानवोंका कल्याण होगा ।

३ देवान् मत्सि— देवोंको आनंद प्रसन्न करो । सब देव आनंद प्रसन्न होंगे, तो सबको सुरक्षित स्थितिमें रखेंगे ।

४ तुभ्यं तानि विश्वानि सुषहा— तुम्हारे लिये वे सब राक्षस रूपी शत्रु सहज पराभूत होनेवाले हो और तू विजयी होओ ।

५ शत्रून् बाधसे— तू शत्रुओंका पराभव करता है ।

[९५]

[८३९] (आ सृज्यमानः) रस निकाला जानेवाला (हरिः) हरे रंगका सोम (कनिक्रन्ति) शब्द करता है । (पुनानः) शुद्ध होता हुआ (वनस्य जठरे सीदन्) कलशके अन्दर रहता है । (नृभिः यतः) ऋत्विजोंने अपने यज्ञमें रखा यह सोम (गाः निर्णिजं कृणुते) गौके दूधको अपना रूप बनाता है । (अतः) इस सोमके लिये (मतीः) स्तुतियां (स्वधाभिः जनयत) हविके साथ ऋत्विज करते हैं ॥ १ ॥

१ सृज्यमानः हरिः कनिक्रन्ति— रस निकाला हरे रंगका सोम शब्द करता है । सोमके रस निकालने-का शब्द होता है ।

२ पुनानः वनस्य जठरे सीदन् — छाना जानेवाला सोम कलशके अन्दर रहता है ।

३ नृभिः यतः गाः निर्णिजं कृणुते— ऋत्विजोंने यज्ञमें रखा यह सोम गोदुग्धमें मिलकर अपना रूप श्वेत बनाता है ।

४ अतः मतीः स्वधाभिः जनयत — इस सोमके लिये स्तुतियां हवीके देनेके समय याजक करते हैं ।

८४० हरिः सृजानः पथ्यामृतस्येयर्ति वाचमरितेव नावम् ।
देवो देवानां गुह्यानि नामाऽऽविष्कृणोति बर्हिषि प्रवाचे ॥ २ ॥
८४१ अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ ।
नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चा ऽऽ च विशन्त्युशतीरुशन्तम् ॥ ३ ॥
८४२ तं मर्मृजानं महिषं न सानावंशुं दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम् ।
तं वावशानं मतयः सचन्ते त्रितो बिभर्ति वरुणं समुद्रे ॥ ४ ॥

अर्थ—[८४०] (सृजानः हरिः) रस निकाला हरे रंगका सोम (ऋतस्य) यज्ञकी (पथ्यां वाचं) मार्ग दर्शक स्तुतिरूप वाणीको (इयर्ति) प्रेरित करता है, (अरिता नावं इव) नौका चलानेवाला जैसा नौकाको चलाता है। (देवः) तेजस्वी यह सोम (देवानां गुह्यानि नाम) देवोंके गुप्त नामोंको (प्रवाचे) कहनेके लिये (बर्हिषि) यज्ञमें (आविः कृणोति) प्रकट करता है ॥ २ ॥

१ सृजानः हरिः ऋतस्य पथ्यां वाचं इयर्ति— सोमका रस यज्ञमें स्तुतिकी वाणीको प्रेरित करता है।

२ अरिता नावं इव— नौका चलानेवाला जैसा नौकाको चलाता है।

३ देवः देवानां गुह्यानि नाम प्रवाचे बर्हिषि आविः कृणोति— तेजस्वी सोम देवोंके गुह्य गुणोंकी स्तुति करनेके लिये याजकोंको प्रवृत्त करता है। स्तोता लोग सोमकी स्तुतिके मंत्र गाते हैं और यज्ञकर्म करते हैं। इन स्तुतियोंके नाम गुह्य अर्थ बतानेवाले होते हैं। पदोंके गुह्य अर्थ ही मुख्य होते हैं। मंत्रोंके तथा पदोंके गुह्य अर्थको ही देखना आवश्यक रहता है।

[८४१] (अपां इव ऊर्मयः) जलोंकी ऊर्मियोंके समान त्वरासे चलते हैं यह (इत्) सत्य है। उस प्रकार (तर्तुराणाः) त्वरा करनेवाले ऋत्विज (मनीषा) स्तुति (सोमं अच्छ) सोमके पास (प्र ईरते) प्रेरित करते हैं। (नमस्यन्तीः) सोमको नमन करनेवाली स्तुतियां (उप सं यन्ति च) सोमके पास जाती हैं। (उशतीः) सोमकी इच्छा करनेवाली स्तुतियां (उशन्तं) इच्छा करनेवाले सोमको (आ विशन्ति) प्राप्त होती हैं ॥ ३ ॥

१ अपां ऊर्मयः इव इत् तर्तुराणाः सोमं अच्छ मनीषा प्र ईरते— जलोंकी लहरियोंके समान त्वरासे यज्ञका कार्य करनेवाले ऋत्विज सोमकी स्तुति अच्छी रीतिसे करते हैं।

२ नमस्यन्तीः उप सं यन्ति— सोमको नमन करती हुई पास जाती हैं।

३ उशतीः उशन्तं आ विशन्ति— सोमकी इच्छा करनेवाली स्तुतियां सोमको प्राप्त करती हैं। स्तुतियां सोममें प्रवेश करती हैं अर्थात् सोमके अति समीप पहुंचती हैं।

[८४२] (मर्मृजानं) शुद्ध होनेवाले (महिषं न) महिष पशुके समान (सानौ उक्षणं) ऊंचे स्थानमें (गिरिष्ठां) पर्वत पर रहनेवाले (तं अंशुं) उस सोमका (दुहन्ति) रस निकालते हैं। (तं) उस (वावशानं) इच्छा करनेवाले सोमको (मतयः सचन्ते) स्तुतियां प्राप्त होती हैं। (त्रितः) तीन स्थानोंमें रहनेवाला इन्द्र (वरुणं) शत्रुनाशक सोमको (समुद्रे) अन्तरिक्षमें अथवा जलमें (बिभर्ति) धारण करता है ॥ ४ ॥

१ मर्मृजानं महिषं न सानौ उक्षणं गिरिष्ठां तं अंशुं दुहन्ति— शुद्ध होनेवाले बलवानके समान उच्च स्थानमें रहनेवाले सोमका रस यज्ञकर्ता लोग निकालते हैं।

२ तं वावशानं मतयः सचन्ते— उस शुभ इच्छा करनेवाले सोमकी बुद्धियां स्तुति करती हैं।

३ त्रितः वरुणं समुद्रे बिभर्ति— तीन स्थानमें रहनेवाला इन्द्र शत्रुका नाश करनेवाले सोमको धारण करता है। सोमका रस इन्द्र पीता है।

×

८४३ इष्यन् वाचमुपवक्तेव होतुः पुनान इन्दो वि ष्या मनीषाम् ।
इन्द्रश्च यत् क्षयथः सौभगाय सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ५ ॥

[९६]

(ऋषिः- दैवोदासिः प्रतर्दनः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

८४४ प्र सेनानीः शूरो अग्रे रथानां गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना ।
भद्रान् कृण्वन्निन्द्रहवान् त्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते ॥ १ ॥

८४५ सर्मस्य हरिं हरयो मृजन्त्य–श्वहयैरनिशितं नमोभिः ।
आ तिष्ठति रथमिन्द्रस्य सखा विद्वाँ एना सुमतिं यात्यच्छ ॥ २ ॥

अर्थ—[८४३] हे (इन्दो) सोम! (वाचं इष्यन्) स्तुति करनेकी प्रेरणा देनेवाला (होतुः उपवक्ता इव) यज्ञ करनेवालेके सहायके समान (पुनानः) शुद्ध होनेवाला (मनीषां विष्य) तू बुद्धिको यज्ञ करनेकी प्रेरणा कर। (यत्) जब (इन्द्रः च) इन्द्र और तू यज्ञमें (क्षयथः) साथ बैठते हो तब हम उपासक । सौभगाय) उत्तम भाग्यके स्वामी होंगे और (सुवीर्यस्य पतयः स्याम) उत्तम पराक्रम करनेवाले हो जायगे ॥ ५ ॥

१ हे सोम ! वाचं इष्यन्— हे सोम ! तू स्तुति करनेकी प्रेरणा कर।

२ होतुः प्रवक्ता इव— यज्ञ करनेवालेके सहायके समान तू सहायक हो और हमसे यज्ञके समान उत्तम कर्म कराओ ।

३ मनीषां विष्य— बुद्धिको यज्ञ करनेकी प्रेरणा दो ।

४ यत् इन्द्रः च क्षयथः— जब इन्द्र और तू सोम यज्ञमें बैठते हैं।

५ सौभगाय— वह सौभाग्यके लिये होता है।

६ सुवीर्यस्य पतयः स्याम— उत्तम पराक्रम उत्तम रीतिसे करनेवाले हम होंगे ।

[९६]

[८४४] (सेनानीः) सेनाका संचालन करनेवाला (शूरः) वीर (सोमः) सोम (गव्यन्) शत्रुकी गौवोंकी इच्छा करनेवाला (रथानां अग्रे) रथोंके अग्र भागमें (प्र एति) जाता है। (अस्य सेना हर्षते) इसके सैन्यको आनंद होता है। (सखिभ्यः) मित्रोंके लिये (इन्द्रहवान्) इन्द्रके लिये आह्वानोंको (भद्रान् कृण्वन्) कल्याणरूप करके यह (सोमः) सोम (रभसानि वस्त्राणि) श्वेत रंगके वस्त्र (दत्ते) धारण करता है। सोम दूधके साथ मिलकर रहता है ॥ १ ॥

१ शूरः सेनानीः रथानां अग्रे प्र एति— शूर सेनापति रथोंके आगे गमन करता है। कभी पीछे नहीं रहता।

२ सोमः गव्यन् अग्रे प्र एति— सोमरस ही गोदुग्ध मिलाकर यज्ञस्थानमें आगे जाता है ।

३ अस्य सेना हर्षते— इस सेनापतिकी सेना आनंदित होती है। उत्साहसे शत्रुपर हमला चढाती है।

४ सखिभ्यः इन्द्रहवान् भद्रान् कृण्वन्— मित्रोंके लिये इन्द्रके आह्वानोंको कल्याणकारी करता है ।

५ सोमः रभसानि वस्त्राणि दत्ते— सोम श्वेत वस्त्र धारण करता है। सोमरसमें दूध मिलानेसे वह सोमरस श्वेत वस्त्रधारी जैसा दीखने लगता है।

[८४५] (हरयः) ऋत्विज लोग (हरिं) हरे रंगके (अस्य) इस सोमके रसको (सं मृजन्ति) अच्छी रीतिसे शुद्ध करते हैं। (अश्वहयैः अनिशितं रथं) घोडे आदि जिसमें नहीं लगते ऐसे यज्ञस्थानमें (नमोभिः) स्तुतियोंसे प्रसन्न करते हैं। वहां वह सोम (आ तिष्ठति) रहता है। (इन्द्रस्य सखा) इन्द्रका मित्र यह (विद्वान्) ज्ञानी सोम (एना) इस यज्ञ साधनसे (सुमतिं अच्छ याति) उत्तम स्तुति करनेवाले यज्ञकर्ताके पास सीधा जाता है ॥ २ ॥

८४६ स नों देव देवताते पवस्व महे सोम प्सरस इन्द्रपानः ।
कृण्वन्नपो वर्षयन् द्यामुतेमा-मुरोरा नों वरिवस्या पुनानः ॥ ३ ॥
८४७ अजीतयेऽहतये पवस्व स्वस्तये सर्वतातये बृहते ।
तदुशन्ति विश्वं इमे सखाय-स्तदहं वश्मि पवमान सोम ॥ ४ ॥

अर्थ— १ हरयः अस्य हरिं सं मृजन्ति— यज्ञकर्ता ऋत्विज लोग इस सोमके हरे रंगके रसको उत्तम रीतिसे शुद्ध करते हैं । उस रसको छानते हैं ।

२ अश्वहयैः अनिशितं रथं नमोभिः आ तिष्ठति— घोडे जिसमें नहीं लगाये जाते ऐसे यज्ञके रथके लिये स्तुतिके स्तोत्र पढकर करते हैं ।

३ इन्द्रस्य विद्वान् सखा एना सुमतिं अच्छ याति— इन्द्रका ज्ञानी मित्र यह सोम इस यज्ञके अन्दर उत्तम स्तुतिको प्राप्त करता है ।

[८४६] हे (देव सोम) दिव्य सोम ! (सः इन्द्रपानः) वह इन्द्रके लिये पीनेके योग्य तू (नः) हमारे (देवताते) देवोंके लिये चलाये हुए इस यज्ञमें (महे प्सरसे) बडे इन्द्रके पीनेके लिये (पवस्व) रस निकाल कर दे । (अपः कृण्वन्) जलके साथ मिश्रण करनेवाला तू (उत इमां द्यां) और इस द्युलोकको (वर्षयन्) वृष्टिके जलसे युक्त करके (उरोः) विस्तीर्ण अन्तरिक्षसे (आ) आनेवाला तू (पुनानः) छाना जाकर (नः) हमारे लिये (वरिवस्य) धनका देनेवाला तू है ॥ ३ ॥

१ हे देव सोम ! सः इन्द्रपानः नः देवताते महे प्सरसे पवस्व— हे दिव्य सोम ! वह तू इन्द्रके पीनेके योग्य हो, इसलिये हमारे इस देवोंके लिये चलाये यज्ञमें इन्द्रादि देवोंको पीनेके लिये रस निकाल कर दे ।

२ अपः कृण्वन्— जलोंके साथ मिश्रण करनेके लिये तू तैयार रह ।

३ उत इमां द्यां वर्षयन्— इस द्युलोकको वृष्टिसे युक्त करो ।

४ उरोः आ पुनानः नः वरिवस्य— विस्तीर्ण इस अन्तरिक्षसे आकर शुद्ध होकर हमें यज्ञ करनेके लिये धन प्रदान कीजिये । उस धनसे हम यज्ञ करेंगे, इन यज्ञोंसे सब देव प्रसन्न होंगे ।

[८४७] (अजीतये) शत्रुसे अजिक्य होनेके लिये, (अहतये) शत्रुसे मारे न जांय इस लिये, (स्वस्तये) हमारा उत्तम जीवन हो इस लिये, (बृहते सर्वतातये) बडे सब प्रकारके यज्ञोंके लिये हे सोम ! तू (पवस्व) शुद्ध रस देनेवाला हो जाओ । (विश्वे इमे सखायः) सब ये मित्र (तत् उशन्ति) यही चाहते हैं । हे (पवमान सोम) रस देनेवाले सोम ! (तत् अहं वश्मि) यही मैं चाहता हूं ॥ ४ ॥

१ अजीतये— शत्रुसे अजिक्य होनेके लिये यत्न करो ।

२ अहतये— शत्रुके द्वारा अपना वध न हो ऐसा यत्न करो ।

३ स्वस्तये— अपना अस्तित्व उत्तम रीतिसे कल्याणपूर्ण हो ।

४ बृहते सर्वतातये— बडे यज्ञ करनेकी हमारी शक्ति बढे ।

५ पवस्व— अजिक्यत्व, अहनन, स्वास्थ्य, बडे यज्ञ करनेकी शक्ति प्राप्त होनेके लिये अपना रस देओ ।

६ विश्वे इमे सखायः तत् उशन्ति— हमारे सब मित्र यही चाहते हैं ।

७ तत् अहं वश्मि— मैं भी यही चाहता हूं कि हमारा विजय हो, हम दीर्घायु तक जीवित रहें, शत्रुसे हमारा घात न हो, हमारा सदा कल्याण होता रहे, हम बडे यज्ञ कर सकें । हर एक मनुष्य यही इच्छा सदा करे ।

८४८ सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥ ५ ॥
८४९ ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीना- मृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् ।
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥ ६ ॥
८५० प्रावीविपद्वाच ऊर्मिं न सिन्धु- र्गिरः सोमः पवमानो मनीषाः ।
अन्तः पश्यन् वृजनेमावरा- ण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन् ॥ ७ ॥

अर्थ— [८४८] (सोमः पवते) सोम रस निकालकर देता है । यह सोम (मतीनां जनिता) बुद्धियोंका निर्माण करता है। (दिवः जनिता) द्युलोकको निर्माण करता है। (पृथिव्याः जनिता) पृथिवीका निर्माण करता है, (अग्निः जनिता) अग्निको निर्माण करता है, (सूर्यस्य जनिता) सूर्यका निर्माण करता है, (इन्द्रस्य जनिता) इन्द्रका निर्माण करता है और (उत विष्णोः जनिता) विष्णुका निर्माण करता है ॥ ५ ॥

१ सोमः मतीनां जनिता— सोम बुद्धियोंको निर्माण करता है । सोमरस पीनेसे बुद्धियां बढती हैं ।

२ सोमः दिवः पृथिव्याः अग्नेः सूर्यस्य, इन्द्रस्य उत विष्णोः जनिता— सोमरस द्युलोक, पृथिवी, अग्नि, सूर्य, इन्द्र और विष्णु आदिको यज्ञमें लाता है और उपास्य रूपमें यज्ञस्थानमें रखता है । यज्ञमें ये देव रहते हैं और सोमयाग पूर्ण करते हैं । यज्ञमें सब देव उपस्थित रहते हैं । हर एक वैदिक यज्ञमें सब देव उपस्थित रहते हैं । इस कारण यज्ञस्थान देवस्थान कहलाता है ।

[८४९] यह (सोमः) सोम (देवानां ब्रह्मा) देवोंमें ब्रह्माके समान, (कवीनां पदवीः) ज्ञानियोंमें मुख्य पदधारीके समान, (विप्राणां ऋषिः) विशेष विद्वानोंमें ऋषिके समान, (मृगाणां महिषः) मृगोंमें महिषके समान महा बलिष्ठ, (गृध्राणां श्येनः) पक्षियोंमें श्येन पक्षीके समान (वनानां स्वधितिः) हिंसकोंमें शस्त्रके समान यह सोमरस (रेभन्) शब्द करता हुआ (पवित्रं अत्येति) छाननीमेंसे छाना जाता है ॥ ६ ॥

१ देवानां ब्रह्मा— देवोंमें ब्रह्मा जैसा मुख्य है वैसा यह सोम यज्ञमें मुख्य है ।

२ कवीनां पदवीः— ज्ञानियोंमें मुख्य पद धारण करनेवाला यह सोम है ।

३ विप्राणां ऋषिः— विशेष ज्ञानियोंमें ऋषि जैसा यह सोम है ।

४ मृगोंमें महिषः— पशुओंमें भैंसेके समान यह श्रेष्ठ सोम है ।

५ गृध्राणां श्येनः— पक्षियोंमें श्येन पक्षी जैसा यह सोम श्रेष्ठ है ।

६ वनानां स्वधितिः— हिंसकोंमें शस्त्रके समान यह सोम है ।

७ रेभन् पवित्रं अत्येति— शब्द करता हुआ छाननीमेंसे छाना जाता है ।

[८५०] (पवमानः सोमः) रस निकाला हुआ सोम (मनीषाः गिरः) मनके लिये प्रिय लगनेवाली स्तुतियां (प्रावीविपत्) प्रेरित करता है । (सिन्धुः) नदी (वाचः ऊर्मिं न) जैसी शब्दको प्रेरित करती है । (वृषभः) बैल जैसा (अन्तः पश्यन्) गुप्त स्थितिको देखकर (अवराणि) दुर्बलोंके द्वारा अनिवारणीय (इमा वृजना) इन बलोंको (आ तिष्ठति) धारण करके खडा रहता है। जैसा (वृषभः) बैल जैसा (गोषु जानन् तिष्ठति) गौवोंमें ज्ञानपूर्वक रहता है ॥ ७ ॥

१ पवमानः सोमः मनीषा गिरः प्रावीविपत्— सोमरस शुद्ध होता हुआ मनन पूर्वक किये स्तोत्रोंको प्रेरित करता है ।

२ सिन्धुः वाचः ऊर्मिं न— नदी जैसी अपने गतिमान जलका शब्द करती है ।

३ वृषभः अन्तः पश्यन् अवराणि इमा वृजना आ तिष्ठति— बैल जैसा अन्दर देखता है और अनिवारणीय इन बलोंको धारण करके खडा रहता है ।

४ वृषभः गोषु जानन् तिष्ठति— बैल जैसा जानता हुआ गौओंमें रहता है । उस प्रकार सोम यज्ञस्थानमें रहता है ।

८५१ स मत्सरः पृत्सु वन्वन्नवातः सहस्ररेता अभि वाजमर्ष ।
इन्द्रायेन्दो पवमानो मनी--ष्यं१शोरूर्मिमीरय गा इषण्यन् ॥ ८ ॥
८५२ परि प्रियः कलशे देववात इन्द्राय सोमो रण्यो मदाय ।
सहस्रधारः शतवाज इन्दु--र्वाजी न सप्तिः समना जिगाति ॥ ९ ॥
८५३ स पूर्व्यो वसुविज्जायमानो मृजानो अप्सु दुदुहानो अद्रौ ।
अभिशस्तिपा भुवनस्य राजा विदद्गातुं ब्रह्मणे पूयमानः ॥ १० ॥

अर्थ— [८५१] हे (मत्सरः) आनंद बढानेवाला (सः) वह सोम (पृत्सु वन्वन्) युद्धोंमें शत्रुका नाश करके (अवातः) शत्रुके लिये अनाक्रमणीय होकर (सहस्ररेताः) हजारों बलोंसे युक्त होकर (वाजं) शत्रुके बलपर (अभि अर्ष) आक्रमण कर । हे (इन्दो) सोम ! (पवमानः) शुद्ध होता हुआ (मनीषी) ज्ञानी तू (गाः इषण्यन्) स्तुतियोंको प्रेरित करता हुआ (इन्द्राय) इन्द्रको देनेके लिये (गाः इषण्यन्) गोदुग्धमें मिलकर (अंशोः ऊर्मिं ईरय) सोमरसकी लहरको प्रेरित कर ॥ ८ ॥

१ मत्सरः सः पृत्सु वन्वन् अवातः सहस्ररेताः वाजं अभि अर्ष— आनंद बढानेवाला वह सोम युद्धोंमें शत्रुका नाश करता है, शत्रुके लिये अनिवारणीय होता है, हजारों बलोंसे युक्त होकर शत्रुपर हमला करता है । सोमरस पीनेसे सैनिकोंका बल बढता है और वे सैनिक शत्रुपर वेगसे आक्रमण कर सकते हैं ।

२ हे इन्दो ! पवमानः मनीषा गा इषण्यन् इन्द्राय अंशोः ऊर्मिं ईरय— हे सोम ! शुद्ध होकर मनन शक्ति बढाकर गौके दूधमें मिलकर इन्द्रके लिये सोमरसकी लहर अर्पण कर ।

[८५२] (प्रियः) सबको प्रिय इस कारण (देववातः) देव जिसको प्राप्त करते हैं ऐसा (रण्यः सोमः) रमणीय सोम (इन्द्राय मदाय) इन्द्रके आनंदके लिये (कलशे परि जिगाति) कलशमें जाता है । (सहस्रधारः) हजारों धाराओंसे (शतवाजः) सैकडों बलोंसे बलवान (इन्दुः) सोम (सप्तिः वाजी न) बलवान घोडा जैसा (समना जिगाति) युद्धमें जाता है वैसा सोमरस कलशमें जाता है ॥ ९ ॥

१ प्रियः देववातः रण्यः सोमः इन्द्राय मदाय कलशे परि जिगाति— सबको प्रिय देव जिसको प्राप्त करते हैं, वह सोम इन्द्रको आनंद देनेके लिये कलशमें जाकर रहता है ।

२ सहस्रधारः शतवाजः इन्दुः समना जिगाति, सप्तिः न— सहस्रों धाराओंसे रस देनेवाला, सैकडों बलोंको बढानेवाला यह सोम, घोडा जैसा युद्धमें जाता है उस प्रकार यह सोम यज्ञस्थानमें आता है ।

३ सप्तिः समना जिगाति— घोडा युद्धमें न डरता हुआ जाता है । वैसा वीर न डरता हुआ युद्धमें जाकर शत्रुका सामना करे और विजय प्राप्त करे ।

[८५३] (पूर्व्यः) पूर्व कालसे ऋत्विजों द्वारा यज्ञमें लाया गया (वसुवित्) धनसे युक्त (जायमानः) होनेवाला (सः) वह सोम (अप्सु मृजानः) जलोंमें मिलकर छाना जानेवाला (अद्रौ दुदुहानः) पत्थरोंसे कूट-कर रस निकाला (अभिशस्तिपाः) शत्रुओंसे रक्षण करनेवाला (भुवनस्य राजा) सब उत्पन्न हुए पदार्थोंका राजा (पूयमानः) छाना जाता हुआ (ब्रह्मणे गातुं विदत्) यज्ञके लिये मार्ग जानता है ॥ १० ॥

१ पूर्व्यः वसुवित् जायमानः सः अप्सु मृजानः अद्रौ दुहानः अभिशस्तिपाः भुवनस्य राजा पूयमानः ब्रह्मणे गातुं विदत्— प्राचीन कालसे यज्ञमें लाया हुआ, धनवान होनेवाला वह सोम, जलोंमें मिलकर शुद्ध होता हुआ, पत्थरोंसे कूटकर रस निकाला, छाननीसे छाना जाकर यज्ञमें आता है । इस सोमरसका यज्ञमें देवोंको अर्पण होनेके पश्चात् ऋत्विज आदि याजक सेवन करते हैं ।

८५४ त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः ।
वन्वन्नवातः परिधीँरपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः ॥ ११ ॥
८५५ यथापवथा मनवे वयोधा अमित्रहा वरिवोविद्धविष्मान् ।
एवा पवस्व द्रविणं दधान इन्द्रे सं तिष्ठ जनयायुधानि ॥ १२ ॥
८५६ पवस्व सोम मधुमाँ ऋतावाऽपो वसानो अधि सानो अव्ये ।
अव द्रोणानि घृतवान्ति सीद मदिन्तमो मत्सर इन्द्रपानः ॥ १३ ॥

अर्थ— [८५४] हे (पवमान सोम) छाने जानेवाले सोम ! (धीराः नः पितरः) कर्म करनेमें बुद्धिमान् ऐसे हमारे पूर्वज (पूर्वे) प्राचीन कालमें (त्वया हि) तेरी सहायतासे (कर्माणि चक्रुः) यज्ञके कार्य करते रहे। (वन्वन्) शत्रुका निःपात करनेवाले (अवातः) शत्रुसे अहिंसित होकर (परिधीः अपोर्णु) शत्रुओंको दूर कर, शत्रुओंका पराजय कर और (वीरेभिः अश्वैः) वीरोंसे तथा घोडोंसे युक्त हमें करो तथा (नः) हमें (मघवा भव) धन देनेवाला हो ॥ ११ ॥

१ हे पवमान सोम ! नः पूर्वे धीराः पितरः त्वया हि कर्माणि चक्रुः— हे पवमान सोम ! हमारे प्राचीन बुद्धिमान पितरोंने तेरी सहायतासे हि अनेक यज्ञ याग किये थे ।
२ वन्वन्— शत्रुओंका निःपात कर ।
३ अवातः— शत्रुओंसे तुमको दुःख न हो । शत्रुओंसे तुम हिंसित न होवो ।
४ परिधीः अपोर्णु— चारों ओरसे घेरनेवाले शत्रुओंको तू दूर कर ।
५ वीरेभिः अश्वैः — वीरोंसे तथा घोडोंसे हम युक्त होकर रहें ।
६ नः मघवा भव— हमें धन देनेवाला तू हो ।

[८५५] हे सोम ! (यथा) जिस प्रकार तू पूर्व समयमें (मनवे) मननशील राजाके लिये (वयोधाः) अन्न देनेवाला (अमित्रहा) शत्रुका विनाश करनेवाला (वरिवोवित्) धनसे युक्त (हविष्मान्) हवनीय द्रव्योंसे युक्त होकर (अपवथाः) धन देनेके लिये यज्ञकर्ताके पास आते थे उस प्रकार (द्रविणं दधानः) धन लेकर (पवस्व) हमारे पास आ तथा (इन्द्रे संतिष्ठ) इन्द्रके पास जाकर रहो तथा (आयुधानि जनय) शस्त्रास्त्रोंको निर्माण करो ॥ १२ ॥

१ यथा मनवे वयोधा अमित्रहा— जैसा तू मननशीलके लिये अन्न देनेवाला तथा शत्रुओंको विनष्ट करनेवाला होता है ।
२ वरिवोवित् हविष्मान् अपवथाः— धन देनेवाला यज्ञ करनेवाला होकर रस देता है । यज्ञमें सोम रस देता है ।
३ द्रविणं दधानः पवस्व— धन देकर सोमका रस निकालकर दे दो ।
४ इन्द्र संतिष्ठ— इन्द्रको अर्पण करनेके लिये यज्ञमें रह ।
५ आयुधानि जनय— शस्त्रास्त्र निर्माण कर । और वे शस्त्रास्त्र योग्य समयमें वीरोंको प्राप्त हों ।

[८५६] हे सोम ! (मधुमान्) मीठे रसको देनेवाला (ऋतावा) यज्ञ करनेवाला (अपः वसानः) जलोंसे मिश्रित होकर (अधि अव्ये सानौ) भेडीके बालोंकी छाननीके ऊपर जाकर तू (पवस्व) रस दे दो । पश्चात् (मदिन्तमः) आनंद देनेवाला (इन्द्रपानः) इन्द्रको पीनेको देनेके लिये (मत्सरः) हर्ष बढानेवाला (घृतवन्ति द्रोणानि) जलसे युक्त पात्रोंमें (अव सीद) जाकर बैठ ॥ १३ ॥

८५७ वृष्टिं दिवः शतधारः पवस्व सहस्रसा वाजयुर्देववीतौ ।
सं सिन्धुभिः कलशे वावशानः समुस्रियाभिः प्रतिरन् न आयुः ॥ १४ ॥
८५८ एष स्य सोमो मतिभिः पुनानो ऽत्यो न वाजी तरतीदरातीः ।
पयो न दुग्धमदितेरिषिर-मुर्विव गातुः सुयमो न वोळ्हा ॥ १५ ॥
८५९ स्वायुधः सोतृभिः पूयमानो ऽभ्यर्ष गुह्यं चारु नाम ।
अभि वाजं सप्तिरिव श्रवस्या ऽभि वायुमभि गा देव सोम ॥ १६ ॥

अर्थ— १ मधुमान्— सोमरस मीठा होता है ।
२ ऋतावा— सोमरस यज्ञ कराता है ।
३ अपः वसानः— पानीमें सोमरस मिलाया जाता है ।
४ अव्ये सानौ अधि पवस्व— मेढीके बालोंकी छाननीसे सोमका रस छाना जाता है ।
५ मदिन्तमः इन्द्रपानः मत्सरः— आनंद बढानेवाला यह रस इन्द्रको पीनेको देनेके लिये तैयार किया है ।
६ घृतवन्ति द्रोणानि अवसीद्— जलयुक्त पात्रोंमें सोमरस मिलाकर रखा जाता है ।

[८५७] हे सोम ! (शतधारः) सैकडों धाराओंसे तू (दिवः वृष्टिं पवस्व) द्युलोकसे वर्षा कर। (देववीतौ) यज्ञमें (सहस्रसा) सहस्रों प्रकारके धन दो और (वाजयुः) अन्न देनेकी इच्छा करता हुआ (सिन्धुभिः कलशे सं) जलोंमें मिलकर कलशमें जाकर रह । तथा (नः आयुः प्रतिरन्) हमारी आयु बढाकर (उस्रियाभिः सं) गोदुग्धसे मिश्रित होकर यज्ञमें आओ ॥ १४ ॥

१ शतधारः दिवः वृष्टिं पवस्व— सैकडों जलधाराओंसे द्युलोकसे वृष्टि करो ।
२ देववीतौ सहस्रसा— यज्ञमें हजारों प्रकारोंसे धन दो ।
३ वाजयुः— अन्न देनेकी इच्छा कर ।
४ सिन्धुभिः कलशे सं पवस्व— जलोंके साथ मिश्रित होकर कलशमें अपना रस सुरक्षित रखो ।
५ नः आयुः प्रतिरन्— हमारी आयु बढा दो ।
६ उस्रियाभिः सं पवस्व— गौओंके दूधके साथ मिश्रित होकर सोम यज्ञस्थानमें रहे। यज्ञस्थानमें सोमरस गौके दूधके साथ मिश्रित करके रखा जाय ।

[८५८] (एषः स्यः सोमः) यह वह सोम (मतिभिः पुनानः) बुद्धिवानोंके द्वारा शुद्ध होनेवाला (अत्यः वाजी न) चपल घोडेके समान (अरातीः तरति इव) शत्रुओंको दूर करता है । (अदितेः इषिरं दुग्धं पयः न) गौका स्वीकार करने योग्य दूधके समान सोमरस पवित्र है । (उरुः गातुः इव) विस्तीर्ण मार्गके समान (वोळ्हा सुयमः न) घोडा जैसा उत्तम रीतिसे स्वाधीन रहता है वैसा यह सोमरस यज्ञकर्ताओंके आधीन रहता है ॥ १५ ॥

१ एषः स्यः सोमः मतिभिः पुनानः अरातीः इव् तरति, अत्यः वाजी न— यह सोमरस याजकोंके द्वारा शुद्ध होकर शत्रुओंको दूर करता है, कष्टोंको दूर करता है । जैसा घोडा शत्रुको दूर करता है ।
२ अदितेः इषिरं दुग्धं पयः न— गौका दूध जैसा शारीरिक कष्टोंको दूर करता है ।
३ उरुः गातुः न— विस्तीर्ण मार्ग जैसा प्रवास करनेवालेके कष्टोंको दूर करता है ।
४ वोळ्हा सुयमः न— स्वाधीन रहनेवाला घोडा जैसा सुख देता है, वैसा यह सोम सुख देता है ।

[८५९] (स्वायुधः) उत्तम यज्ञीय साधनोंसे युक्त (सोतृभिः पूयमानः) यज्ञकर्ताओंके द्वारा शुद्ध किया जानेवाला तू सोम (गुह्यं चारु नाम) गुह्य सुन्दर रसात्मक स्वरूप (अभ्यर्ष) प्राप्त कर। रसरूप हो जाओ। (सप्तिः इव) घोडेके समान तू (श्रवस्या) हमारी इच्छाके अनुसार (वाजं अभि गमय) अन्न हमें प्राप्त हो ऐसा कर । हे (सोमदेव) सोमदेव (वायुं अभि) प्राणको प्राप्त करावो (गाः अभि) गोदुग्धको प्राप्त करावो ॥ १६ ॥

८६० शिशुं जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति शुम्भन्ति वह्निं मरुतो गणेन ।
कविर्गीर्भिः काव्येना कविः सन् त्सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥ १७ ॥
८६१ ऋषिमना य ऋषिकृत् स्वर्षाः सहस्रणीथः पदवीः कवीनाम् ।
तृतीयं धाम महिषः सिषासन् त्सोमो विराजमनु राजति ष्टुप् ॥ १८ ॥

अर्थ– १ स्वायुधः सोतृभिः पूयमानः गुह्यं चारु नाम अभ्यर्ष– उत्तम यज्ञसाधनोंसे युक्त होकर यज्ञकर्ताओं द्वारा शुद्ध होनेवाला सोम यज्ञमें सुंदर रसका स्वरूप प्राप्त करता है । यज्ञमें सोमवल्लीसे रस निकालते हैं और उस रसका यज्ञ करते हैं ।

२ सप्तिः इव श्रवस्या वाजं गमय– घोडेके समान हमारी इच्छाके अनुकूल हमें अन्न प्राप्त कराओ । हमें इष्ट अन्न विपुल प्राप्त हो ।

३ हे सोमदेव ! वायुं अभि गमय– हे सोम ! हमें उत्तम प्राण प्राप्त हो । हमें दीर्घ जीवन प्राप्त हो ।

४ गाः अभि गमय– हमें गौओंका दूध भरपूर मिले ।

[८६०] (शिशुं) पापोंको दूर करनेवाले (जज्ञानं) नये उत्पन्न हुए (हर्यतं) सब जिसको चाहते हैं ऐसे सोमको यज्ञस्थानमें याज्ञिक (मृजन्ति) शुद्ध करते हैं । (मरुतः) मरुत् गण (गणेन) संघके द्वारा (वह्निं शुम्भन्ति) वहन करनेवाले सोमको शुद्ध करते हैं । (कविः) ज्ञानी (सोमः) सोम (काव्येन) स्तोत्रपाठके साथ (कविः सन् रेभन्) कविके समान शब्द करता हुआ (गीर्भिः) स्तुतिसे (पवित्रं अत्येति) छाननीमेंसे छाना जाता है ॥ १७ ॥

१ जज्ञानं हर्यतं शिशुं मृजन्ति– नये उत्पन्न हुए प्रिय बालकको शुद्ध करनेके समान सोमको शुद्ध करते हैं । नये बालकको शुद्ध स्थितिमें रखना चाहिये ।

२ मरुतः गणेन वह्निं शुम्भन्ति– मरुत गणशः सोमको शुद्ध करते हैं ।

३ कविः सोमः काव्येन कविः सन् रेभन् गीर्भिः पवित्रं अत्येति– क्रांतदर्शी सोम स्तोत्रपाठके साथ कविके समान काव्य सुनता हुआ छाननीमेंसे छाना जाता है । सोमरस पीनेसे काव्य करनेकी स्फूर्ति होती है इस कारण सोमरसको यहां कवि करके कहा है ।

[८६१] (ऋषिमनाः) ऋषियोंके समान मननशील (ऋषिकृत्) ऋषियोंके समान कार्य करनेवाला (स्वर्षाः) स्वयं प्रकाशी (सहस्रणीथः) सहस्रों स्तुतिस्तोत्र जिसके गाये जाते हैं, (कवीनां पदवीः) कवियोंके पदका धारण करनेवाला (यः) जो सोम है वह (महिषः) बडा महान (सोमः) सोम (तृतीयं धाम सिषासन्) तीसरे महान स्थानमें रहनेवाला (स्तुप्) स्तुतिसे प्रशंसित होकर (विराजं) तेजस्वी इन्द्रको (अनुराजति) प्रकाशित करता है ॥ १८ ॥

१ ऋषिमनाः ऋषिकृत् स्वर्षा– ऋषियोंके समान मनन शक्ति देनेवाला ऋषियोंके समान कार्य करनेवाला स्वयं प्रकाशमान सोम है ।

२ कवीनां पदवीः सहस्रणीथः महिषः सोमः– कवित्वका पद लेनेवाला अनेक स्तुतिस्तोत्र जिसके गाये जाते हैं वह महान सोम है ।

३ तृतीयं धाम सिषासन् स्तुप् विराजं अनुविराजति– तीसरे श्रेष्ठ स्थानमें बैठनेवाला स्तुतिसे आनंदित होकर तेजस्वी इन्द्रको प्रकाशित करता है । यज्ञस्थानमें सोम श्रेष्ठ स्थानमें रहता है और वहांसे वह इन्द्रको अधिक तेजस्वी बनाता है । यज्ञस्थानमें जो सबसे श्रेष्ठ स्थान होता है वहां सोम रहता है और वहांसे वह इन्द्रको दिया जाता है ।

८६२ चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत् ।
अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥ १९ ॥
८६३ मर्यो न शुभ्रस्तन्वं मृजानोऽत्यो न सृत्वा सनये धनानाम् ।
वृषेव यूथा परि कोशमर्षन् कनिक्रदच्चम्वोरा विवेश ॥ २० ॥
८६४ पवस्वेन्दो पवमानो महोभिः कनिक्रदत् परि वाराण्यर्ष ।
क्रीळञ्चम्वोरा विश पूयमान इन्द्रं ते रसो मदिरो ममत्तु ॥ २१ ॥
८६५ प्रास्य धारा बृहतीरसृग्रन्नक्तो गोभिः कलशाँ आ विवेश ।
साम कृण्वन् त्सामन्यो विपश्चित् क्रन्दन्नेत्यभि सख्युर्न जामिम् ॥ २२ ॥

अर्थ—[८६२] (चमूषत्) कलशमें रहनेवाला (श्येनः) प्रशंसनीय (शकुनः) शक्तिमान (विभृत्वा) यज्ञ पात्रोंमें जानेवाला (गोविन्दुः) गौओंके दूधमें मिलनेकी इच्छा करनेवाला (द्रप्सः) रसके रूप (आयुधानि बिभ्रत्) यज्ञके पात्रोंमें रहनेवाला (अपां उर्मिं समुद्रं) अन्तरिक्षमें बहनेवाले जलमें (सचमानः) रहनेवाला (महिषः) महान् सोम (तुरीयं धाम विवक्ति) चतुर्थस्थानमें रहता है ॥ १९ ॥

यज्ञस्थानमें सोम रहता है वह सोमरस इन गुणोंसे युक्त है-चमूषत्-कलशोंमें सोमरस रहता है । वह (श्येनः) प्रशंसनीय होता है, (शकुनः) बडी शक्तिसे युक्त होता है, (विभृत्वा) यज्ञके कालमें यज्ञ पात्रोंमें रखा होता है, (गोविन्दुः) गौवोंके दूधके साथ मिलकर रखा जाता है, (द्रप्सः) वह सोम यज्ञके समय रसके रूपमें रहता है, (आयुधानि बिभ्रत्) यज्ञके पात्रोंमें रहता है, यज्ञके पात्रोंको धारण करता है, अथवा यज्ञके पात्र उस सोमरसको धारण करते हैं (अपां ऊर्मिं समुद्रं सचमानः) जलोंमें मिश्रित होकर सोमरस रहता है, (महिषः) महान् शक्ति देनेवाला यह सोमरस है । यह सोम यज्ञस्थानमें श्रेष्ठ स्थानमें रखा रहता है ।

[८६३] (शुभ्रः मर्यः न) गौर वर्ण या अलंकारोंसे युक्त मनुष्यके समान (तन्वं मृजानः) अपने शरीरको स्वच्छ करता हुआ (धनानां सनये) धनोंको प्राप्त करनेके लिये (अत्यः न) चपल घोडेके समान (सृत्वा) शीघ्रतासे जानेवाला (वृषा इव युथा) घोडा जैसा समूहमें जाता है (कोशं परि अर्षन्) यज्ञपात्रमें जाते हुए यह सोमरस (कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ (चम्वोः आ विवेश) कलशमें प्रवेश करता है ॥ २० ॥

[८६४] हे (इन्दो) सोम ! (महोभिः पवमानः) बडे याजकोंके द्वारा छाना जानेवाला (कनिक्रतत्) शब्द करता हुआ (वाराणि परि अर्ष) छाननीमेंसे चला जा अर्थात् छाना जा । (क्रीळन्) खेलता हुआ (चम्वोः आ विश) यज्ञ पात्रोंमें जाकर रह । (पूयमानः) स्वच्छ होकर (ते रसः) तेरा रस (मदिरः) आनंद बढानेवाला होकर (इन्द्रं ममत्तु) इन्द्रका आनंद बढावे ॥ २१ ॥

[८६५] (अस्य) इस सोमरसकी (बृहतीः धाराः) बडी रसधाराएं (प्र असृग्रन्) विशेष रीतिसे चलने लगी । पश्चात् (गोभिः अक्तः) गौके दूधसे मिला हुआ सोमरस (कलशान् आ विवेश) कलशोंमें प्रविष्ट हुआ । (साम कृण्वन्) सामगायन करनेवाला (सामान्यः) सामवेदी (विपश्चित्) ज्ञानी याजक (क्रन्दन्) साम गायन करता हुआ (अभि एति) आगे जाता है । (सख्युः जामिं न) मित्ररूपी स्त्रीके पास जैसा पुरुष जाता है ॥ २२ ॥

×

८६६ अपघ्नन्नेषि पवमान शत्रून् प्रियां न जारो अभिगीत इन्दुः ।
सीदन् वनेषु शकुनो न पत्वा सोमः पुनानः कलशेषु सत्ता ॥ २३ ॥
८६७ आ ते रुचः पवमानस्य सोम योषेव यन्ति सुदुघाः सुधाराः ।
हरिरानीतः पुरुवारो अप्स्व चिक्रदत् कलशे देवयूनाम् ॥ २४ ॥

[९७]

(ऋषिः- १-३ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः, ४-६ वासिष्ठ इन्द्रप्रमतिः, ७-९ वासिष्ठो वृषगणः, १०-१२ वासिष्ठो मन्युः, १३-१५ वासिष्ठ उपमन्युः, १६-१८ वासिष्ठो व्याघ्रपाद्, १९-२१ वासिष्ठः शक्तिः, २२-२४ वासिष्ठः कर्णश्रुद्, २५-२७ वासिष्ठो मृळीकः, २८-३० वासिष्ठो वसुक्रः, ३१-४४ पराशरः शाक्त्यः, ४५-५८ कुत्स आङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

८६८ अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन् मितेव सद्म पशुमान्ति होता ॥ १ ॥

अर्थ — [८६६] हे (पवमानः) सोम ! (अभिगीतः इन्दुः) स्तुति किया गया सोमरस (शत्रुन् अपघ्नन्) शत्रुओंका नाश करके (एषि) आता है । (जारः प्रियां न) जार जैसा प्रिय स्त्रीके समीप जाता है । (पत्वा शकुनः) अपने स्थान पर आनेवाला पक्षी जैसा आता है वैसा (वनेषु सीदन् सोमः) जलके साथ मिलनेवाला सोम (पुनानः) शुद्ध होकर (कलशेषु सत्ता) कलशोंमें बैठता है ॥ २३ ॥

[८६७] हे (सोम) सोम ! (पवमानस्य ते) रस निकाले जानेवाले (रुचः) तेरे प्रकाश (योषा इव) स्त्रीके समान (सुधारा सुदुघाः यन्ति) उत्तम धारासे दूधकी धाराके समान जाते हैं । (हरिः) हरे रंगका यह सोम (आनीतः) ऋत्विजोंने लाया हुआ (पुरुवारः) बहुत बार स्वीकार करने योग्य (अप्सु) जलमें (देवयूनां कलशे) देवोंकी प्राप्तीकी इच्छा करनेवाले याजकोंके यज्ञस्थानीय कलशमें (अचिक्रदत्) शब्द करता हुआ जाता है ॥ २४ ॥

१ हे सोम ! पवमानस्य ते रुचः यन्ति— हे सोम ! रस निकाले तुझसे प्रकाश किरण बाहर आते हैं ।
२ योषा इव— स्त्रियां जैसी आती हैं वैसी ये प्रकाश धाराएं आती हैं ।
३ सुधाराः सुदुघाः यन्ति— उत्तम दूधकी धाराके समान सोमकी रस धाराएं चलती हैं ।
४ हरिः आनीतः पुरुवारः देवयूनां कलशे अचिक्रदत्— यह हरे रंगका सोम लाया जानेपर अनेक बार देवोंके लिये रखे कलशमें शब्द करता हुआ प्रविष्ट होता है ।

[९७]

[८६८] (अस्य प्रेषा) इस सोमकी प्रेरक शक्ति (हेमना पूयमानः) सुवर्णके साथ शुद्ध होकर (देवः) यह दिव्य सोम (रसं) अपने रसको (देवेभिः) दिव्य गुणोंके साथ (समपृक्त) देता है । (सुतः) रस निकाला यह सोम (रेभन्) शब्द करता हुआ (पवित्रं परि एति) छाननामेंसे छाना जाता है जैसा (होता) हवनकर्ता (पशुमान्ति मिता सद्म) गौ आदि पशु जहां बांधे होते हैं उस घरके समीप जाता है ॥ १ ॥

१ अस्य प्रेषा हेमना पूयमानः देवः देवेभिः रसं समपृक्त — इस सोमकी दिव्य शक्ति सुवर्णके साथ शुद्ध होकर यह दिव्य सोम अपने दिव्य शक्ति युक्त रसको देता है । सोमका रस निकालनेके समय हाथकी अंगुलिमें सोनेकी अंगठी रखनी चाहिये । इससे सोमसे रस निकालनेके समय उस सुवर्णका स्पर्श उस रसको हो जाय । इस सुवर्णके स्पर्शसे सोमरसमें दिव्य शक्ति प्रकट होती है ।

८६९ भ॒द्रा व॒स्त्रा स॑म॒न्या॒३ वसा॑नो म॒हान् क॒विर्नि॒वच॑नानि॒ शंस॑न् ।
आ व॑च्यस्व च॒म्वोः॑ पू॒यमा॑नो विचक्ष॒णो जागृ॑वि॑र्दे॒ववी॑तौ ॥ २ ॥
८७० सम्‌ प्रि॒यो मृ॑ज्यते॒ सानो॒ अव्ये॑ य॒शस्त॑रो य॒शसां॒ क्षैतो॑ अ॒स्मे ।
अ॒भि स्व॑र॒ धन्वा॑ पू॒यमा॑नो यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ॥ ३ ॥
८७१ प्र गा॑यता॒भ्य॑र्चाम दे॒वान् सोमं॑ हिनोत मह॒ते धना॑य ।
स्वा॒दुः प॑वाते॒ अति॒ वार॒मव्य॒मा सी॑दाति क॒लशं॑ देव॒युर्नः॑ ॥ ४ ॥

अर्थ— २ सुतः रेभन् पवित्रं परि एति— सोमरस शब्द करता हुआ छाननीमेंसे छाना जाता है ।

३ होता पशुमन्ति मिता सद्म परि एति— होता याजक गौ आदि पशु बांधे रहते हैं उस घरके समीप पशुओंका निरीक्षण करनेके लिये जाता है और वहां गौ आदि पशु कैसे हैं इसका निरीक्षण करता है ।

[८६९] (भद्रा) कल्याण करनेवाले (समन्या) संग्रामके योग्य (वस्त्रा) वस्त्रोंको (वसानः) धारण करनेवाला (महान् कविः) बडा काव्य कर्ता (निवचनानि शंसन्) उत्तम स्तोत्र बोलनेवाला (विचक्षणः) महा ज्ञानी (जागृविः) जाग्रत रहनेवाला सोम (देववीतौ) देवोंके प्राप्तिके लिये किये जानेवाले यज्ञमें (चम्वोः आ वच्यस्व) कलशमें प्रवेश करो ॥ २ ॥

१ भद्रा वस्त्रा वसानः— कल्याण करनेवाले वस्त्र मनुष्य पहने । हानि करनेवाले वस्त्र कदापि पहनने नहीं चाहिये ।

२ समन्या वस्त्रा वसानः— युद्धके समय युद्धके लिये अनुकूल हों, ऐसे वस्त्र पहनने योग्य हैं ।

३ महान् कविः निवचनानि शंसन् – उत्तम दूर दृष्टीसे युक्त ज्ञानी उत्तम उपदेश करें, जिससे उस उपदेशको सुननेवाले योग्य आचरण करनेमें समर्थ हो जांय ।

४ विचक्षणः जागृविः— महा ज्ञानी सदा जाग्रत रहें और योग्य उपदेश करते रहें, जिसको सुननेवाले सदा जाग्रत रहकर योग्य मार्गसे चलकर उन्नति प्राप्त करनेमें समर्थ हो जांय ।

५ देववीतौ चम्वोः आवच्यस्व— सोमरस यज्ञमें कलशोंमें रखा जाय ।

[८७०] (यशसां यशस्तरः) यशस्वियोंमें अधिक यशस्वी (क्षैतः) पृथिवीपर उत्पन्न होनेवाला (प्रियः) आनंद बढानेवाला सोम (सानौ अव्ये) ऊंचे भेडीके बालोंकी छाननीपर (अस्मे) हमारे लिये (सं मृज्यते उ) शुद्ध किया जाता है । (पूयमानः) स्वच्छ होनेवाला तू (धन्वा) अन्तरिक्षमें (अभि स्वर) शब्द करता हुआ जाकर रह । (यूयं) तुम सोमके रसों (स्वस्तिभिः) कल्याण करनेवाले मार्गोंसे (सदा नः पात) सदा हमारा रक्षण करो । ॥ ३ ॥

१ यशसां यशस्तरः क्षैतः प्रियः सानौ अव्ये अस्मे सं मृज्यते— यशसे अधिक यशस्वी भूमिपर उत्पन्न होनेवाला प्रिय सोम भेडीके बालोंकी छाननीपर छाना जाता है ।

२ पूयमानः धन्वा अभि स्वर— छाना जानेवाला यह सोम अन्तरिक्षके स्थानपर रहकर शब्द करता है ।

३ यूयं स्वस्तिभिः नः सदा पात— तुम कल्याण करनेके मार्गोंसे हमारा सर्वदा रक्षण करो । कल्याणु करनेके मार्ग उत्तम तथा सच्चा कल्याण करनेवाले हों । उन्हीं सत्य मार्गोंसे हमारा रक्षण होता रहे ।

[८७१] हे याजको ! (प्र गायत) सोमकी विशेष स्तुति करो । तथा (देवान् अभ्यर्चाम) देवोंकी अर्चना हम करेंगे (महते धनाय) बडा धन प्राप्त करनेके लिये (सोमं हिनोत) सोमको प्रेरित करो । (स्वादुः) मीठा सोमरस (अव्यं वारं) भेडीके बालोंकी छाननी पर (अति पवाते) छाना जाता है । (देवयुः नः) देवोंके पास जानेवाला यह हमारा सोम (कलशं आसीदति) कलशमें रहता है ॥ ४ ॥

८७२ इन्दुर्देवानामुप सख्यमायन् त्सहस्रधारः पवते मदाय ।
नृभिः स्तवानो अनु धाम पूर्व-मगन्निन्द्रं महते सौभगाय ॥ ५ ॥
८७३ स्तोत्रे राये हरिरर्षा पुनान इन्द्रं मदो गच्छतु ते भराय ।
देवैर्याहि सरथं राधो अच्छा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

अर्थ— १ प्र गायत— सोमकी विशेष स्तुति करो ।

२ देवान् अभ्यर्चाम— हम देवोंकी अर्चना करेंगे ।

३ महते धनाय सोमं हिनोत— बहुत धन प्राप्त करानेके लिये सोमके प्रेरित करो । सोमकी सहायसे यज्ञ करनेके लिये बहुत धन मिले ।

४ स्वादुः अव्यं वारं अति पवते— मीठा सोमरस भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे छाना जाता है ।

५ देवयुः नः कलशे आसीदति — देवोंके पास जानेवाला यह सोम कलशमें रहता है ।

[८७२] (देवानां सख्यं) देवोंसे साथ मित्रताको (उप आयन्) प्राप्त करके (सहस्रधारः इन्दुः) सहस्रों धाराओंसे यह सोमरस (मदाय) आनंदके लिये (पवते) रस देता है । (नृभिः स्तवानः) याजकों द्वारा स्तुति किया हुआ (पूर्वं धाम) पुराणे स्थानको प्राप्त करता है । (महते सौभगाय)-बडे सौभाग्यके लिये (इन्द्रं अनु अगन्) इन्द्रको प्राप्त करता है ॥ ५ ॥

१ देवानां सख्यं उप आयन् सहस्रधारः इन्दुः मदाय पवते— देवोंके साथ मित्रता करनेकी इच्छासे हजारों धाराओंसे छाननीमेंसे छाना जानेवाला सोम देवोंको आनंद देनेके लिये रस निकालता है ।

२ नृभिः स्तवानः— याजक जन सोमकी स्तुति करते हैं ।

३ पूर्वं धाम महते सौभगाय इन्द्रं अनु अगन् – पुराणे यज्ञस्थानमें महान सौभाग्य प्राप्त करनेके लिये यह सोमरस इन्द्रको प्राप्त करता है ।

[८७३] हे सोम ! (हरिः पुनानः) हरे रंगका तू शुद्ध होकर (स्तोत्रे) स्तोत्रपाठ होनेपर (राये अर्ष) धन यज्ञके लिये प्राप्त करनेके लिये आगे बढ । (ते मदः) तेरा आनंद देनेवाला रस (भराय) शत्रुको दूर करनेके लिये (इन्द्रं गच्छतु) इन्द्रके पास जाय । (सरथं) एक ही रथपर बैठकर (देवैः) देवोंके साथ (याहि) जा । (राधः अच्छ) धन प्राप्त करनेके लिये जा । (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) तुम अच्छे साधनोंसे सदा हम सबकी सुरक्षा करो ॥ ६ ॥

१ पुनानः हरिः स्तोत्रे राये अर्ष— छाना जानेवाला हरे रंगका सोम स्तुति करनेपर धन प्राप्त करनेके लिये आगे बढे ।

२ ते मदः भराय इन्द्रं गच्छतु— तेरा आनंद बढानेवाला रस शत्रुसे युद्ध करनेके समय इन्द्रके पास जाय ।

३ देवैः सरथं याहि— देवोंके साथ उनके रथमें रहकर सोमरस उनके साथ चले ।

४ राधः अच्छ— धन योग्य रीतिसे प्राप्त हो ।

५ यूयं स्वस्तिभिः नः सदा पात— तुम उत्तम मार्गोंसे सदा हमारी सुरक्षा करो ।

८७४ प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥ ७ ॥
८७५ प्र हंसासस्तृपलं मन्युमच्छा-मादस्तं वृषगणा अयासुः ।
आङ्गूष्यं पवमानं सखायो दुर्मर्षं साकं प्र वदन्ति वाणम् ॥ ८ ॥
८७६ स रंहत उरुगायस्य जूतिं वृथा क्रीळन्तं मिमते न गावः ।
परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्गो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः ॥ ९ ॥

अर्थ— [८७४] (उशना इव) उशना नामक ऋषिके समान (काव्यं ब्रुवाणः) काव्यका उच्चारण करनेवाला (देवः) स्तुति करनेवाला ऋषि (देवानां जनिम) देवोंकी उत्पत्तिका वृत्तान्त (प्र विवक्ति) कहता है । (महिव्रतः) बडा व्रत पालन करनेवाला (शुचिबन्धुः) शुद्ध तेजसे युक्त (पावकः) शुद्धता करनेवाला (वराहः) श्रेष्ठ दिन माननेवाला (रेभन्) शब्द करता हुआ सोम (पदा) अपने पात्रोंमें (अभ्येति) जाता है ॥ ७ ॥

१ उशना इव काव्यं ब्रुवाणः देवः देवानां जनिम प्रविवक्ति— उशना ऋषिके समान काव्य करके बोलनेवाला देव देवोंके जन्मके वृतान्त बोलता था ।

२ महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः वराहः रेभन् पदा अभ्येति— महान् नियमोंका पालन करनेवाला स्वयं शुद्ध और दूसरोंको पवित्र करनेवाला श्रेष्ठ दिन शब्द करता हुआ अपने पावोंसे आगे जाता है ।

[८७५] (हंसासः) शत्रुओंके द्वारा आक्रमण होनेपर (वृषगणाः) बलवान् वीरोंके समुदाय (अमात्) शत्रुसे त्रस्त होकर (तृपलं) शीघ्र शत्रुपर प्रहार करनेवाले (मन्युं) और शत्रुका विनाश करनेवाले सोमके समीप (अच्छ) उत्तम प्रकार (अस्तं अयासुः) यज्ञ गृहके पास गये । (आंगूष्यं) सबको प्राप्त करने योग्य (दुर्मर्षं) शत्रुके आक्रमण जहां नहीं होते ऐसे (पवमानं) सोमके उद्देश्यसे (साकं) साथ साथ (सखायः) मित्ररूप याजक (वाणं) वाद्यको (प्र वदन्ति) बजाते हैं ॥ ८ ॥

१ हंसासः वृषगणाः अमात् तृपलं मन्युं अच्छ अस्तं अयासुः— शत्रुओंका आक्रमण जिनपर हुआ है ऐसे बलवान् वीर शत्रुसे सन्त्रस्त होकर शीघ्रतासे शत्रुको नाश करनेवाल सोमके पास जाते हैं । सोमरस पीकर शीघ्र शत्रुका नाश करते हैं । सोमरस पीनेसे वीरता बढती है ।

२ आंगूष्यं दुर्मर्षं पवमानं साकं सखायः वाणं प्रवदन्ति— सबको प्राप्त करने योग्य, शत्रुसे आक्रमण जिसपर नहीं होते ऐसे सोमको संमानित करनेके लिये वाद्य बजाते हैं । सोम यज्ञमें वाद्यभी बजाये जाते हैं ।

[८७६] (सः रंहते) वह सोम शीघ्रतासे जाता है (उरुगायस्य जूर्तिं) बहु प्रशंसितके गमन सामर्थ्यका अनुकरण करता है । (वृथा) सहज (क्रीळन्तं) खेलनेवाले इस सोमको (गावः) गमन करनेवाले अन्य कोई (न मिमीते) अनुकरण कर नहीं सकते । (तिग्म शृंगः) तीक्ष्ण तेजसे युक्त सोम (परीणसं कृणुते) अनेक रीतिसे अपना तेज प्रकट करता है । (दिवाः हरिः ददृशे) दिनमें यह सोम हरे रंगका दीखता है (नक्तं ऋज्रः) और रातके समय स्पष्ट प्रकाशयुक्त दीखता है ॥ ९ ॥

१ सः रंहते— वह सोम शीघ्रतासे जाता है । पात्रोंमें प्रवेश करता है ।

२ उरुगायस्य जूर्तिं— चपलतासे गमन करनेवालेका अनुकरण करता है ।

३ वृथा क्रीडन्तं गावः न मिमीते— सहज खेलनेवाले इस सोमका अनुसरण कोई अन्य नहीं कर सकते, ऐसी इसकी गति होती है ।

८७७ इन्दु॑र्वा॒जी प॑वते॒ गोन्यो॑घा॒ इन्द्रे॒ सोमः॒ सह॒ इन्व॒न् मदा॑य ।
हन्ति॒ रक्षो॒ बाध॑ते॒ पर्यरा॑ती॒र्वरि॑वः कृ॒ण्वन् वृ॒जन॑स्य॒ राजा॑ ॥ १० ॥
८७८ अध॒ धार॑या॒ मध्वा॑ पृचा॒नस्ति॒रो रोम॑ पवते॒ अद्रि॑दुग्धः ।
इन्दु॒रिन्द्र॑स्य स॒ख्यं जु॒षा॒णो दे॒वो दे॒वस्य॑ मत्स॒रो मदा॑य ॥ ११ ॥
८७९ अ॒भि प्रि॒याणि॑ पवते॒ पु॒ना॒नो दे॒वो दे॒वान् त्स्वेन॒ रसे॑न पृ॒ञ्चन् ।
इन्दु॒र्धर्मा॑ण्यृतु॒था वसा॑नो॒ दश॒ क्षिपो॑ अव्यत॒ सानो॒ अव्ये॑ ॥ १२ ॥

अर्थ— ४ गावः— शीघ्रतासे गमन करनेवाले ।

५ तिग्मशृंगः परीणसं कृणुते— तीक्ष्ण तेजसे युक्त यह सोम अनेक रीतिसे अपना तेज प्रकाशित करता है ।

६ दिवा हरिः ददृशे— यह दिनमें हरा दीखता है ।

७ नक्तं ऋज्रः— रातमें तेजस्वी प्रकाशवाला दीखता है ।

[८७७] (इन्दुः वाजी) सोम बल बढानेवाला है (गोन्योघाः) वह गमयशील (सोमः) सोम (इन्द्रे) इन्द्रमें (सहः इन्वन्) बल बढानेवाले रसको प्रेरित करता है (मदाय पवते) उस इन्द्रके आनंद बढानेके लिये रस निकालकर देता है, (रक्षः हन्ति) राक्षसोंको मारता है । (अरातीः परि बाधते) शत्रुओंका चारों ओरसे संहार करता है, (वरिवः कृण्वन्) धन देता है और यह सोम (वृजनस्य राजा) बलका स्वामी है ॥ १० ॥

१ इन्दुः वाजी— सोमरस बल बढाता है ।

२ गोन्योघाः सोमः इन्द्रे सहः इन्वन्— वह प्रगतिशील सोम इन्द्रमें बल बढाता है ।

३ मदाय पवते— इन्द्रका आनंद बढानेके लिये रस निकालता है ।

४ रक्षः हन्ति— राक्षसोंका नाश करता है । देव सोमरस पीते हैं और अपना बल बढाकर दुष्ट राक्षसोंका नाश करते हैं ।

५ अरातीः परि बाधते— सोम शत्रुओंको विनष्ट करता है ।

६ वरिवः कृण्वन्— सोम धन देता है ।

७ वृजनस्य राजा— यह सोमरस बलका स्वामी है ।

[८७८] (अध) इसके नंतर (अद्रिदुग्धः) पत्थरोंसे कूटकर निकाला सोमरस (मध्वा धारया) मधुर धारासे (पृचानः) देवोंके साथ संबंध करके (रोम तिरः) बालोंकी छाननासे छाना जाकर (पवते) रस निकालकर देता है । (इन्द्रस्य सख्यं जुषाणः) इन्द्रके साथ मित्रता करता हुआ (देवः मत्सरः) प्रकाशयुक्त होकर आनंद देता है वह (इन्दुः) सोमरस (देवस्य मदाय पवते) देवोंके आनंदके लिये रस देता है ॥ ११ ॥

१ अध अद्रिदुग्धः मध्वा धारया पृचानः रोम तिरः पवते— जब पत्थरोंसे कूटकर निकाला सोमरस मधुर धारासे छाननीमेंसे छाना जाकर नीचेके पात्रोंमें उतरता है ।

२ इन्द्रस्य सख्यं जुषाणः— यह सोम इन्द्रके साथ मित्रता करना चाहता है ।

३ देवः मत्सरः इन्दुः देवस्य मदाय पवते — दिव्य आनंद बढानेवाला यह सोम देवोंका आनंद बढानेके लिये रस देता है ।

[८७९] (प्रियाणि धर्माणि) प्रिय गुणोंको, प्रिय तेजोंको (ऋतुथा वसानः) योग्य कालमें धारण करनेवाला (देवः इन्दुः) दिव्य सोमरस (पुनानः) छाना जाकर (अभि पवते) रस देता है । (स्वेन रसेन) अपने रससे (देवान् पृञ्चन्) देवोंको संयुक्त करता है । इसको (दश क्षिपः) दस अंगुलियां (सानौ अव्ये) उच्च स्थानमें स्थित छाननीमेंसे (अव्यत) छानती हैं ॥ १२ ॥

८८० वृषा शोणो अभिकनिक्रदद्गा नदयन्नेति पृथिवीमुत द्याम् ।
इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ प्रचेतयन्नर्षति वाचमेमाम् ॥ १३ ॥

८८१ रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम् ।
पवमानः संतनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः ॥ १४ ॥

८८२ एवा पवस्व मदिरो मदायो-दग्राभस्य नमयन् वधस्नैः ।
परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः ॥ १५ ॥

अर्थ— १ प्रियाणि धर्माणि ऋतुथा वसानः— प्रिय गुणधर्मोंको योग्य समयमें धारण करता है, ऐसा यह सोम गुणवान् है ।

२ देवः इन्दुः पुनानः अभि पवते— दिव्य सोम छाना जाकर रस निकालकर देता है ।

३ स्वेन रसेन देवान् पृञ्चन्— अपने रससे देवोंकों संतुष्ट करता है ।

४ दश क्षिपः अव्ये सानौ अव्यत— दस अंगुलियां उस सोमको मेढीके बालोंकी छाननीमेंसे छानती हैं ।

[८८०] (शोणः) लाल वर्णवाला (वृषा) बलवान् बैल (गाः) गौओंको देखकर (अभिकनिक्रदत्) शब्द करता है। वैसा (नदयन्) शब्द करनेवाला सोम (पृथिवीं उत द्यां एति) पृथिवीपर तथा द्युलोकपर जाता है। (वग्नुः) शब्द जैसा (इन्द्रस्य आजौ इव) इन्द्रका युद्धमें (आ शृण्वे) सुनाई देता है इस प्रकार (प्रचेतयन्) उत्साह देता हुआ (इमां वाचं अर्षति) इस शब्दको प्रकट करता है ॥ १३ ॥

१ शोणः वृषा गाः अभिक्रनिक्रदत्— लाल रंगका बैल गौओंको देखकर शब्द करता है ।

२ तथा नदयन् सोमः पृथिवीं उत द्यां एति— उस प्रकार शब्द करता हुआ सोम पृथिवीपर तथा द्युलोकपर जाता है ।

३ इन्द्रस्य आजौ इव वग्नुः आ शृण्वे— युद्धमें जैसा इन्द्रका शब्द सुनाई देता है ।

४ प्रचेतयन् इमां वाचं अर्षति— उत्साह बढाता हुआ इस शब्दको सोम करता है । सोमरस पात्रमें गिरता है उस समय शब्द करता हुआ गिरता है ।

[८८१] हे सोम ! (रसाय्यः) उत्तम मधुर रस देनेवाला (पयसा पिन्वमानः) दूधके साथ मिला हुआ (ईरयन् मधुमन्तं अंशुं) मीठे सोमरसको प्रेरित करके तू (एषि) जाता है । हे सोम ! (परिषिच्यमानः) जलके साथ मिलकर (पवमानः) छाना जाकर (संतनिं) सतत चलनेवाली धाराको (कृण्वन्) निर्माण करके (इन्द्राय एषि) इन्द्रके पास जाता है ॥ १४ ॥

१ रसाय्यः पयसा पिन्वमानः— रसरूप सोम दूधके साथ मिलाया जाता है ।

२ मधुमन्तं अंशुं ईरयन् एषि— मीठे सोमरसको प्रेरित करता है । सोमसे मीठा रस प्रवाहित होता है ।

३ परिषिच्यमानः पवमानः संतनिं कृण्वन् इन्द्राय एषि— जलके साथ मिलकर सोमरस धाराके रूपसे इन्द्रके पास जाता है । इन्द्र सोमरसका पान करता है ।

इन्द्र आदि देवोंको यह सोमरस दिया जाता है । वे देव इस सोमरसका सेवन करते हैं ।

[८८२] हे (सोम) सोम ! (मदिरः) आनंद देनेवाला तू (उदग्राभस्य) मेघको (वधस्नैः नमयन्) हनन करनेके साधनोंसे नम्र करता हुआ (मदाय पवस्व) देवोंको आनंद देनेके लिये रस निकालकर देओ । (रुशन्तं वर्णं) तेजस्वी वर्णको (परि भरमाणः) सब प्रकारसे धारण करके (सिक्तः) यज्ञके पात्रोंमें रखा तू (गव्युः) गौ दुग्धकी इच्छा करके (नः परि अर्ष) हमारे पास आ ॥ १५ ॥

८८३ जुष्ट्वी न इन्दो सुपथा सुगान्युरौ पवस्व वरिवांसि कृण्वन् ।
घनेव विष्वग्दुरितानि विघ्नन्नधि ष्णुना धन्व सानो अव्ये ॥ १६ ॥
८८४ वृष्टिं नो अर्ष दिव्यां जिगत्नुमिळावतीं शंगयीं जीरदानुम् ।
स्तुकेव वीता धन्वा विचिन्वन् बन्धूँरिमाँ अवराँ इन्दो वायून् ॥ १७ ॥
८८५ ग्रन्थिं न वि ष्य ग्रथितं पुनान ऋजुं च गातुं वृजिनं च सोम ।
अत्यो न क्रदो हरिरा सृजानो मर्यो देव धन्व पस्त्यावान् ॥ १८ ॥

अर्थ— १ हे सोम ! मदिरः उदग्राभस्य बधस्नैः नमयन् मदाय पवस्व— हे सोम ! आनंद देनेवाला तू मेघोंको तोडनेके साधनोंसे नम्र करके देवोंको आनंद देनेके लिये रस निकालकर दो । सोमरसमें जल मिलाकर उस रसको पीनेके लिये योग्य करो ।

२ रुशन्तं वर्णं परि भरमाणः— तेजस्वी प्रकाश चारों ओरसे बढाकर यज्ञपात्रोंमें रहो ।

३ गव्युः नः परि अर्ष— गौके दूधसे मिलकर हमारे पास आकर रहो ।

[८८३] हे (इन्दो) सोम ! (जुष्ट्वी) स्तुतिसे आनंदित होकर (नः) हमारे लिये (सुपथा) उत्तम मार्ग (वरिवांसि सुगानि कृण्वन्) तथा धन सुगमतासे प्राप्त होने योग्य करके (उरौ पवस्व) कलशमें अपना रस निकालकर रख । (घनेव) शस्त्रोंसे (विष्वक्) सब (दुरितानि विघ्नन्) राक्षसोंको विनष्ट करके (सानो) उच्च भागसे (अव्ये) भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे (स्नुना) धारासे (अधि धन्व) प्रवाहित हो ॥ १६ ॥

१ हे इन्दो ! जुष्ट्वी नः सुपथा वरिवांसि सुगानि कृण्वन्— हे सोम ! तू स्तुति की जानेपर हमारे लिये उत्तम मार्गोंसे धन प्राप्त होते रहें ऐसा कर ।

२ उरौ पवस्व— कलशमें रस निकालकर रखो ।

३ विष्वक् दुरितानि विघ्नन्— सब पापोंको पाप करनेवाले राक्षसोंको नष्ट कर दो ।

४ अव्ये सानौ स्नुना अधि धन्व— भेडीके बालोंकी छाननीके ऊपरसे धारासे प्रवाहित होवो ।

[८८४] हे सोम ! (नः) हमारे सुखके लिये (दिव्यां) द्युलोकमेंसे होनेवाली (जिगत्नुं) प्रगतिशील (इळावतीं) अन्नको उत्पन्न करनेवाली (शंगयीं) सुख देनेवाली (जीरदानुं) शीघ्रतासे दान देनेवाली (वृष्टिं) वृष्टिको (अर्ष) दे दो । हे (इन्दो) सोम ! तू (स्तुकेव वीता) सन्तानोंके समान (बन्धून् विचिन्वन्) संबंधियोंको प्राप्त करके (अवरान् वायून्) निम्न स्थानके वायु सदृश सुख देनेवाले संबंधियोंसे अपना संबंध कर ॥ १७ ॥

१ दिव्यां जगत्नुं इळावतीं शंगयीं जीरदानुं वृष्टिं अर्ष— द्युलोकसे आनेवाली, प्रगति करनेमें सहाय करनेवाली, अन्न उत्पन्न करनेवाली, सुख देनेवाली, दान देनेवाली वर्षा, हे सोम ! तू उत्पन्न कर ।

२ स्तुकेन वीता बन्धून् विचिन्वन् अवरान् वायून्— सन्तानोंके समान अपने बांधवोंको ढूंढकर प्राप्त कर और अपने सुखके लिये उत्तम शुद्ध वायुको प्राप्त कर । उत्तम शुद्ध वायु जहां होगी, वहां अपना स्थान करो । सुखी जीवन होनेके लिये उत्तम शुद्ध वायुकी आवश्यकता होती है । ऐसे शुद्ध वायुके स्थानमें ही निवास करना योग्य है ।

[८८५] (पुनानः) शुद्ध होकर तू (ग्रथितं) पापोंसे युक्त हुए मुझे (वि ष्य) पापोंसे मुक्त कर । (ग्रंथिं न) जैसा कोइ गांठको खोलता है । तथा हे सोम ! तू (ऋजुं गातुं च) सरल मार्ग तथा (वृजिनं च) बल हमें देओ । (हरिः आ सृजानः) हरे रंगका तू रस निकालनेपर (अत्यः न क्रद) घोडेके समान शब्द कर । हे (देव) दिव्य सोम ! (मर्यः) शत्रुओंके लिये मारनेवाला हो और (पस्त्यावान्) अपने लिये उत्तम घरसे युक्त होकर (धन्व) कलशोंमें आकर रहो ॥ १८ ॥

८८६ जुष्टो मदा॑य दे॒वता॑त इन्दो॒ परि॒ ष्णुना॑ धन्व॒ सानो॒ अव्ये॑ ।
स॒हस्र॑धारः सु॒र॒भिरद॑ब्धः॒ परि॑ स्रव॒ वाज॑सातौ नृ॒षह्ये॑ ॥ १९ ॥
८८७ अ॒र॒श्मानो॒ ये॑ऽर॒था अयु॑क्ता॒ अत्या॑सो॒ न स॑सृ॒जा॒नास॑ आ॒जौ ।
ए॒ते शु॒क्रासो॑ धन्वन्ति॒ सोमा॒ देवा॑स॒स्ताँ उप॑ याता॒ पिब॑ध्यै ॥ २० ॥

अर्थ— १ पुनानः ग्रथितं वि ष्य— तू पवित्र होकर हमें पापोंसे मुक्त कर ।
२ ग्रंथिं न— जैसा कोई गांठ खोलता है उस प्रकार हमें मुक्त कर ।
३ ऋजुं गातुं— सरल मार्ग हमें बताओ ।
४ वृजिनं— हमें बल प्राप्त हो ऐसा कर ।
५ हरिः सृजानः अत्यः न आक्रन्द— हरे रंगका सोमका रस तैयार होनेपर वह घोडेके समान शब्द करता है, और कलशमें जाता है ।
६ मर्धः— दुष्टोंको मारनेवाला बनो ।
७ पस्त्यानां धन्व— अपने लिये उत्तम घर तैयार करो और उसमें जाकर रहो ।

[८८६] हे (इन्दो) सोम ! (मदाय जुष्टः) आनंद बढानेके लिये योग्य ऐसा तू (देवताते) यज्ञमें (सानौ अव्ये) ऊंचे भेडीके बालोंकी छाननीपर (स्नुना) धारासे (परि धन्व) चलकर रह । छाना जा (सहस्रधारः सुरभिः) सहस्रों धाराओंसे चलकर सुगंधि युक्त तू (अदब्धः) अहिंसित होता हुआ (वाजसातौ) अन्नके लाभके लिये (नृषह्ये) युद्धमें जानेवाले वीरोंके लिये (परि स्रव) रस देओ ॥ १९ ॥

१ हे इन्दो ! मदाय जुष्टः देवताते सानौ अव्ये स्नुना परि धन्व— हे सोम ! आनंद देनेके लिये योग्य तू यज्ञमें उच्च स्थान पर रहे भेडीके बालोंकी छाननीके ऊपर अपनी रसकी धारासे छाना जा । छाना जाकर शुद्ध हो जाओ ।

२ सहस्रधारः सुरभिः— हजारों धाराओंसे छाना जाकर उत्तम सुगंधसे युक्त बनो । सोमरस उत्तम रीतिसे छाना जानेपर उत्तम सुगंध देता है ।

३ अदब्धः वाजसातौ नृषह्ये परि स्रव— किसी शत्रुसे हिंसित न होकर अन्नके लिये किये जानेवाले युद्धमें सोमका रस उपयोगी है । अर्थात वीर सोमरस पीकर शत्रुको पराजित करके अन्न प्राप्त करते हैं ।

[८८७] (अरश्मानः) रस्सीसे विरहित (अरथा) रथोंसे विरहित (अयुक्ताः) किसी सत्कार्यमें न जानेवाले (ये आजौ) जो युद्धमें (ससृज्यमानासः) जानेवाले (अत्यासः न) घोडोंके समान त्वरासे ध्येय तक पहुंचते हैं, उस प्रकार (एते शुक्रासः सोमाः) ये शुद्ध सोमरस (धन्वन्ति) कलशोंमें जाते हैं । (देवासः) देव (तान् पिबध्यै) उन रसोंको पीनेके लिये (उप यात) जाते हैं ॥ २० ॥

१ अरश्मयः अरथाः अयुक्ताः आजौ ससृज्यमानासः अत्यासः न — रश्मीरहित, रथके साथ न जोडे, पर युद्धमें लिये गये घोडे जैसे होते हैं वैसे ये सोमरस यज्ञस्थानमें रहते हैं ।

२ एते शुक्रासः सोमा धन्वन्ति— ये शुद्ध सोमरस कलशोंमें जाकर वहां रहते हैं ।

३ देवासः तान् पिबध्यै उपयात— देव उन सोमरसोंको पीवें इसलिये वे सोमरस कलशोंमें जाकर रहते हैं । सोमरस कलशोंमें रखे जाते हैं । पश्चात् वे सोमरस देवोंको अर्पण किये जाते हैं । इसके बाद देव उन रसोंको पीते हैं ।

८८८ एवा नं इन्दो अभि देववीतिं परिं स्रव नभो अर्णश्चमूषुं ।
सोमों अस्मभ्यं काम्यं बृहन्तं रयिं ददातु वीरवन्तमुग्रम् ॥ २१ ॥
८८९ तक्षद्यदी मनसो वेनतो वाग् ज्येष्ठस्य वा धर्मणि क्षोरनीके ।
आदीमायन् वरमा वावशाना जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्दुम् ॥ २२ ॥
८९० प्र दानुदो दिव्यो दानुपिन्व ऋतमृताय पवते सुमेधाः ।
धर्मा भुवद्वृजन्यस्य राजा प्र रश्मिभिर्दशभिर्भारि भूम ॥ २३ ॥

अर्थ— [८८८] हे (इन्दो) सोम! (नः एव देववीतिं) हमारे हि यज्ञमें (नभः) द्युलोकसे (अर्णः) जल (चमूषु परिस्रव) यज्ञके कलशोंमें भर दे । पश्चात् (सोमः) सोमरस (काम्यं) प्राप्त करने योग्य (बृहन्तं) बडा (उग्रं वीरवन्तं रयिं) उग्र पुत्रयुक्त धन (अस्मभ्यं ददातु) हमें देवे ॥ २१ ॥

१ इन्दो ! नः एव देववीतिं नभः अर्णः चमूषु परिस्रव— हे सोम ! हमारे यज्ञमें आकाशसे जल लाकर यज्ञके पात्रोंमें रख दे ।

२ सोमः काम्यं बृहन्तं उग्रं वीरवन्तं रयिं अस्मभ्यं ददातु— सोम इस इच्छा करने योग्य बडे उग्र सुपुत्र युक्त धनको हमें देवे । धन ऐसा चाहिये कि जिसके साथ वीरपुत्र भी हों । पुत्रपौत्रोंके बिना केवल धन नहीं चाहिये ।

३ उग्रं वीरवन्तं रयिं अस्मभ्यं ददातु— उग्र वीर पुत्रपौत्रोंसे युक्त धन चाहिये । साधारण पुत्रपौत्र न हों । वे पुत्रपौत्र उत्तम वीर शूर हों । पराक्रम करनेवाले हों ।

[८८९] (वेनतः) इच्छा करनेवाले (मनसः) मनःपूर्वक स्तुति करनेवालेकी (वाक्) स्तुति (यदि तक्षत्) यदि इस सोमपर संस्कार करेगी । जैसे (धर्मणि) धारण करनेवालेकी वाणी (क्षोः अनीके) बोलनेवालेके मुखमें (ज्येष्ठस्य) श्रेष्ठ राजाकी स्तुति रहती है, उस प्रकार (आत्) पश्चात् (वरं जुष्टं पतिं) श्रेष्ठ सेवनीय सबके पालक (कलशे ईं इन्दुं) कलशमें रखे इस सोमरसको (वावशानाः गावः) प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाली गौवें (आ आयन्) प्राप्त करती हैं ॥ २२ ॥

१ वेनतः मनसः वाक् यदि तक्षत्— इच्छा पूर्वक मनसे स्तुति करनेवालेकी स्तुति इस सोमपर संस्कार करती है । स्तुतिसे अच्छे संस्कार होते हैं ।

२ ज्येष्ठस्य धर्मणि क्षोः अनीके— श्रेष्ठ राजाकी स्तुति जैसी स्तुति करनेवालेके मुखमें होती है । श्रेष्ठकी स्तुति बोलनेवालेके मुखसे बाहर आती है ।

३ वावशानाः गावः वरं जुष्टं पतिं कलशे इन्दुं आयन्— इच्छा करनेवाली गौवोंका दूध श्रेष्ठ सेवनीय सोमरसके साथ कलशमें मिलाया जाता है । यज्ञस्थानमें गौवोंका दूध सोमरसमें मिलाया जाता है ।

[८९०] (दिव्यः) द्युलोकमें उत्पन्न हुआ (दानुदः) दाताओंको धन आदि देनेवाला (सुमेधाः) उत्तम बुद्धिमान सोम (ऋताय) इन्द्रके लिये (ऋतं) सोमके सच्चे रसको (पवते) रस देता है । (राजा) यह राजा सोम (वृजन्यस्य धर्मा) उत्तम बलको धारण करनेवाला होता है । (दशभिः) दस (रश्मिभिः) अंगुलियोंसे (भूम प्र भारि) विशेष रीतिसे उसको धारण किया जाता है ॥ २३ ॥

१ दिव्यः दानुदः सुमेधाः ऋताय ऋतं पवते— दिव्य दाता उत्तम बुद्धिमान यह सोम इन्द्रके पीनेके लिये रस देता है ।

२ राजा वृजनस्य धर्मा— यह राजा सोम बलको धारण करता है और वीरका बल बढाता है ।

३ दशभिः रश्मिभिः भूम प्र भारि— दस अंगुलियोंसे उस सोमको विशेष प्रकारसे धारण किया जाता है और उस सोमसे रस निकाला जाता है ।

८९१ पवित्रेभिः पवमानो नृचक्षा राजा देवानामुत मर्त्यानाम् ।
द्विता भुवद्रयिपती रयीणामृतं भरत् सुभृतं चार्विन्दुः ॥ २४ ॥
८९२ अर्वाँ इव श्रवसे सातिमच्छेन्द्रस्य वायोरभि वीतिमर्ष ।
स नः सहस्रा बृहतीरिषो दा भवा सोम द्रविणोवित् पुनानः ॥ २५ ॥
८९३ देवाव्यो नः परिषिच्यमानाः क्षयं सुवीरं धन्वन्तु सोमाः ।
आयज्यवः सुमतिं विश्ववारा होतारो न दिवियजो मन्द्रतमाः ॥ २६ ॥

अर्थ— [८९१] (पवित्रेभिः पवमानः) छाननीयोंमेंसे शुद्ध होनेवाला (नृचक्षाः) मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाला (देवानां) देवोंका तथा (मर्त्यानां राजा) मनुष्योंका राजा (रयीणां रयि पतिः) धनोंकी धनपति है। वह (द्विता) देवों और मनुष्योंमें (भुवत्) रहता है। वह (इन्दुः) सोम (सुभृतं चारु ऋतं) उत्तम तथा सुंदर रीतिसे जलको (भरत्) धारण करता है॥ २४ ॥

१ पवित्रेभिः पवमानः— वह सोम छाननीयोंसे छाना जाता है।

२ नृचक्षा देवानां मर्त्यानां राजा— यह सोम मनुष्योंका निरीक्षण करता है और यह देवों और मानवोंका राजा है।

३ रयीणां रयिपतिः— धनोंका यह स्वामी सच्चा धनपति है।

४ द्विता भुवत्— यह सोम देवों तथा मनुष्योंमें रहता है। दोनोंको प्रिय है।

५ इन्दुः सुभृतं चारु ऋतं भरत्— यह सोम उत्तम रीतिसे सुंदर जल अपनेमें धारण करता है। जलसे उत्तम रीतिसे मिश्रित होता है।

[८९२] हे सोम ! युद्धमें (अर्वान् इव) घोडा जैसा जाता है वैसा तू (श्रवसे) अन्नके लिये तथा (सातिं अच्छ) धनके लाभके लिये तथा (इन्द्रस्य वायोः) इन्द्र और वायुके (वीतिं अभि अर्ष) पीनेके लिये चल। (सः) वह तू (सहस्रा) हजारों (बृहतीः इषः) बडे अन्न (नः दाः) हमें दो। हे सोम ! (पुनानः) छाना जानेवाला तू (द्रविणोवित् भव) हमारे लिये धन देनेवाला हो जाओ॥ २५ ॥

१ अर्वान् इव – घोडा जैसा युद्धभूमीमें जाता है वैसा सोम यज्ञके स्थानमें जाता है।

२ श्रवसे सातिं अच्छ— अन्न और धनके लिये यज्ञमें आओ।

३ इन्द्रस्य वायोः वीतिं अभि अर्ष— इन्द्र और वायुके पीनेके लिये तुम आगे बढो।

४ सः सहस्रासः इषः नः दाः— वह तू सहस्रों प्रकारके अन्न हमें दो।

५ पुनानः द्रविणोवित् भव— छाना जाकर हमें धन देनेवाला हो।

[८९३] (देवाव्यः) देवोंकी तृप्ती करनेवाले (परिषिच्यमानाः) पात्रोंमें रहकर जलके साथ मिलनेवाले (सोमाः) सोमके रस (नः) हमारे लिये (सुवीरं क्षयं धन्वन्तु) उत्तम पुत्रोंसे युक्त घर देवें। (आयज्यवः) समन्तात् यज्ञ करनेवाले (विश्ववाराः) सबको स्वीकार करने योग्य (होतारः) हवन करनेवाले (दिवियजः) द्युलोकमें रहनेवाले देवोंके लिये हवन करनेवाले (मन्द्रतमाः) अत्यंत आनंद देनेवालोंके (न) समान ये सोमरस आनंद देनेवाले हैं॥ २६ ॥

१ देवाव्यः परिषिच्यमानाः सोमाः नः सुवीरं क्षयं धन्वन्तु— देवोंको तृप्त करनेवाले, पात्रोंमें जलके साथ मिलनेवाले सोमरस हमारे लिये उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त घर देवें।

२ आयज्यवः विश्ववाराः होतारः दिवियजः मन्द्रतमाः न सोमाः— यज्ञ करनेवाले सबके साथ मित्रता रखनेवाले हवन करनेवाले द्युलोकके देवोंके लिये यजन करनेवाले आनंद देनेवाले ये सोमरस हैं।

८९४ एवा देव देवताते पवस्व महे सोम प्सरसे देवपानः ।
महश्चिद्धि ष्मसि हिताः समर्ये कृधि सुष्ठाने रोदसी पुनानः ॥ २७ ॥
८९५ अश्वो न क्रदो वृषभिर्युजानः सिंहो न भीमो मनसो जवीयान् ।
अर्वाचीनैः पथिभिर्ये रजिष्ठा आ पवस्व सौमनसं न इन्दो ॥ २८ ॥
८९६ शतं धारा देवजाता असृग्रन् त्सहस्रमेनाः कवयो मृजन्ति ।
इन्दो सनित्रं दिव आ पवस्व पुरएतासि महतो धनस्य ॥ २९ ॥

अर्थ— [८९४] हे (सोमदेव) देव सोम ! (देवपानः) देवोंके पीनेके योग्य तू (देवताते) देवोंके द्वारा किये यज्ञमें (महे प्सरसे) देवोंके पीनेके लिये (एव पवस्व) ही रस दो। उस तेरी प्रेरणासे (हिताः) प्रेरित होकर हम (समर्ये) युद्धमें (महः चित्) बडे महान् शत्रुओंकोभी (स्मसि हि) पराजित कर सकेंगे। (पूयमानः) शुद्ध होकर तू (रोदसी) द्युलोक और पृथिवीको (सुस्थाने कृधि) उत्तम रीतिसे रहनेके लिये सुयोग्य कर ॥ २७ ॥

१ हे सोमदेव ! देवपानः देवताते महे प्सरसे एव पवस्व— हे देव सोम ! देवोंको पीनेके लिये योग्य तू यज्ञमें देवोंको पीनेको देनेके लिये रस निकालकर देओ ।

२ हिताः समर्ये महः चित् स्मसि हि— तेरी प्रेरणासे युद्धमें हम बडे शत्रुओंकोभी पराजित कर सकेंगे ।

३ पूयमानः रोदसी सुस्थाने कृधि— शुद्ध किया गया तू द्यु और पृथिवीको उत्तम रीतिसे रहनेके लिये योग्य कर ।

[८९५] हे सोम ! (वृषभिः युजानः) ऋत्विजों द्वारा संयुक्त किया हुआ तू (अश्वः न क्रदः) घोडेके समान शब्द करता है। (सिंहः न भीमः) सिंहके समान भयंकर है तथा (मनसः जवीयान्) मनसे वेगवान् है। (अर्वाचीनैः पथिभिः) आधुनिक मार्गोंसे अर्थात् (ये रजिष्ठाः) जो मार्ग सीधे रहते हैं उनसे हे (इन्दो) सोम ! (नः सौमनसं आपवस्व) हम सबके लिये उत्तम मनसे रस दे ॥ २८ ॥

१ वृषभिः युजानः— ऋत्विजों द्वारा यज्ञमें सोम समर्पण किया जाता है ।

२ अश्वः न क्रदः— घोडेके समान सोम शब्द करता है ।

३ सिंहः न भीमः— सिंहके समान वह भयंकर होता है ।

४ मनसः जवीयान्— मनसे भी वह सोम वेगवान् होता है। मनसे भी त्वरासे वह यज्ञकार्य करता है।

५ अर्वाचीनैः पथिभिः, ये रजिष्ठाः, नः सौमनसं आपवस्व— अर्वाचीन मार्गोंसे, जो सीधे मार्गसे हैं उनसे हमारे लिये उत्तम मनके विचार बढानेके लिये अपनेमेंसे रस निकालकर दे ।

[८९६] हे (इन्दो) सोम ! (देवजाताः शतं धाराः) देवोंके लिये उत्पन्न हुई सौ धाराएं (असृग्रन्) उत्पन्न हुई हैं। (कवयः) ज्ञानी लोग (सहस्रं एनाः) हजारों प्रकारोंसे इस सोमको (मृजन्ति) शुद्ध करते हैं। हे (इन्दो) सोम ! (सनित्रं) धनको (दिवः आ पवस्व) द्युलोकसे हमें देओ। तू (महतः धनस्य) बडे धनका (पुरः एता असि) पूर्ण रीतिसे दाता हो ॥ २९ ॥

१ हे इन्दो ! देवजाताः शतं धाराः असृग्रन्— हे सोम ! तुम दिव्य सोमसे सैकडों रसकी धाराएं चलने लगी ।

२ कवयः एनाः सहस्रं मृजन्ति — ज्ञानी ऋत्विज इस सोमको सहस्रों प्रकारोंसे शुद्ध करते हैं ।

३ हे इन्दो ! सनित्रं दिवः आ पवस्व— हे सोम ! तू धन द्युलोकसे हमें दे ।

४ महतः धनस्य पुर एता असि— तू बडे धनको देनेवाला हो। तू बहुत धन देनेवाला उत्तम दाता हो ।

८९७ दिवो न सर्गा असस्रग्रमह्नां राजा न मित्रं प्र मिनाति धीरः ।
पितुर्न पुत्रः क्रतुभिर्यतान आ पवस्व विशे अस्या अजीतिम् ॥ ३० ॥
८९८ प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन् वारान् यत् पूतो अत्येष्यव्यान् ।
पवमान पवसे धाम गोनां जज्ञानः सूर्यमपिन्वो अर्कैः ॥ ३१ ॥
८९९ कनिक्रदद्नु पन्थामृतस्य शुक्रो वि भास्यमृतस्य धाम ।
स इन्द्राय पवसे मत्सरवान् हिन्वानो वाचं मतिभिः कवीनाम् ॥ ३२ ॥

अर्थ— [८९७] (दिवः न) प्रकाश देनेवाले सूर्यके जैसे (अह्नां सर्गाः) दिनोंके प्रकाश किरण (असस्रग्रम्) चलते हैं उस प्रकार सोमकी रसधाराएं चलती हैं। (धीरः राजा) बुद्धि बढानेवाला यह राजा सोम (मित्रं न) मित्रके समान (न प्र मिनाति) किसीको दुःख नहीं देता। (क्रतुभिः यतानः पुत्रः) अपने कर्मोंसे उन्नतिका यत्न करनेवाले पुत्रके समान (अस्यै विशे) इस प्रजाके लिये (अजीतिं आ पवस्व) विजयके लिये, हे सोम ! तू रस दे ॥ ३० ॥

१ दिवः न अह्नां सर्गाः असृग्रन्— द्युलोकसे जैसे सूर्यके किरण चलते हैं, वैसी सोमसे रसकी धाराएं चलती हैं।

२ मित्रं न, धीरः राजा न प्र मिनाति— मित्रके समान धैर्यवान राजा किसीको दुःख नहीं देता।

३ क्रतुभिः यतानः पुत्रः अस्यै विशे अजीतिं आ पवस्व— यज्ञकार्य करनेवाला जैसा पुत्र सुख देता है, वैसा यह सोम इस प्रजाको विजय प्राप्त कराके सुख देता है। इस सुख देनेके लिये हे सोम ! तू रस दे।

[८९८] (ते) तेरी (मधुमतीः धाराः प्र असृग्रन्) मीठा रसधाराएं चल रही हैं। (यत्) जब (पूतः) छाना गया तू सोम (अव्यान् वारान् अत्येषि) भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे तू छाना जाता है। हे (पवमान) सोम ! (गोनां धाम) गौओंके स्थानमें (पवसे) रससे मिश्रित हो जाता है, तब (जज्ञानः) शुद्ध होकर (अर्कैः) अपने तेजसे (सूर्यं अपिन्वः) सूर्यकोभी पूर्ण प्रकाशित करता है ॥ ३१ ॥

१ ते मधुमतीः धारा प्र असृग्रन्— हे सोम ! तेरेसे मीठी रसकी धाराएं चल रही हैं।

२ यत् पूतः अव्यान् वारान् अत्येषि— जब तू छाना जाता है तब भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे छाना जाता है।

३ पवमान ! गोनां धाम पवसे— हे सोम ! तू गौओंके स्थानमें अपना रस निकालकर देता है। गोदुग्धमें सोमरस मिलाया जाता है।

४ जज्ञानः अर्कैः सूर्यं अपिन्वः— सोमरस तैयार होनेपर वह अपने तेजसे सूर्यको प्रकाशित करता है। सोमरस चमकता है।

[८९९] वह सोम ! (ऋतस्य पन्थां) यज्ञके मार्गको (अनु कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ आक्रमण करता है। (अमृतस्य धाम) अमृतके स्थानको (शुक्रः वि भासि) तेजस्वी होकर प्रकाशित करता है। (मत्सरवान्) आनंद बढानेवाला (सः) वह तू सोम (इन्द्राय पवसे) इन्द्रके लिये रस देता है। (कविनां मतिभिः) ज्ञानियोंकी की हुई स्तुतियोंके साथ (वाचं हिन्वानः) शब्द करता है ॥ ३२ ॥

९०० दिव्यः सुपर्णोऽव चाक्षि सोम पिन्वन् धाराः कर्मणा देववीतौ ।
एन्दो विश कलशं सोमधानं क्रन्दन्निहि सूर्यस्योप रश्मिम् ॥ ३३ ॥
९०१ तिस्रो वाचं ईरयति प्र वह्नि- ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥ ३४ ॥
९०२ सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः ।
सोमः सुतः पूयते अज्यमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ॥ ३५ ॥

अर्थ— १ ऋतस्य पन्थां अनु कनिक्रदत्— यज्ञके मार्गका आक्रमण शब्द करता हुआ यह सोम करता है ।
२ शुक्रः अमृतस्य धाम विभाति— शुद्ध हुआ यह सोम अमर यज्ञस्थानमें प्रकाशता है ।
३ मत्सरवान् सः इन्द्राय पवते— आनंद बढानेवाला यह सोम इन्द्रके लिये अपना रस देता है ।
४ कविनां मतिभिः वाचं हिन्वानः— ज्ञानियोंके स्तुतिसे स्तोत्रोंको प्रेरित करता है । ज्ञानी लोग यज्ञमें सोमकी स्तुति करते हैं ।

[९००] हे (सोम) सोम ! तू (दिव्यः सुपर्णः) स्वर्गमें उत्पन्न होनेवाला उत्तम पत्तोंसे युक्त है । तू (अव चक्षि) तू चारों तरफ देख । (देववीतौ) देवोंके लिये किये जानेवाले यज्ञमें (कर्मणा) यज्ञके कर्मके साथ (धाराः पिन्वन्) रसकी धाराएं निकालता है । हे (इन्दो) सोम ! (सोमधानं कलशं) सोमरस रखनेके कलशमें (आ विश) प्रविष्ट हो । (क्रन्दन्) शब्द करता हुआ (सूर्यस्य रश्मिं) सूर्यके किरणोंके (उप इहि) पास जा ॥ ३३ ॥

१ हे सोम ! दिव्यः सुपर्ण अव चाक्ष— हे सोम ! तू उत्तम पत्तोंसे युक्त है । तू चारों ओर देख ।
२ देववीतौ कर्मणा धाराः पिन्वन्— यज्ञमें यजनके कर्मके साथ अपने रसकी धारा देता रह ।
३ हे इन्दो ! सोमधानं कलशं आ विश— हे सोम ! तू सोमरस रखनेके कलशमें प्रविष्ट होओ ।
४ क्रन्दन् सूर्यस्य रश्मिं उप इहि — शब्द करता हुआ तू सूर्य प्रकाशको प्राप्त कर ।

[९०१] (वह्निः) यज्ञ करनेवाला (तिस्रः वाचः प्र ईरयति) तीन वाणियोंको अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदको बोलता है । तथा (ऋतस्य) यज्ञकी (धीतिं) धारण करनेवाली (ब्रह्मणः मनीषां) ब्राह्मणोंकी बुद्धिको प्रेरित करता है । (गावः) गौवें (गोपतिं पृच्छमानाः) सोमको पूछती हुई (यन्ति) जाती हैं । (वावशानाः मतयः) इच्छा करनेवाली बुद्धियां (सोमं यन्ति) सोमके पास जाती हैं ॥ ३४ ॥

१ वह्निः तिस्रः वाचः प्र ईरयति— यज्ञ करनेवाला तीन वेदोंको पढनेके लिये प्रेरित करता है । यज्ञमें तीनों वेदोंका अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदके मंत्रोंका पठन होता है ।
२ ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणः मनीषां प्र ईरयति— यज्ञको धारण करनेवाली ज्ञानीकी बुद्धि मनुष्योंको उत्तम प्रेरणा देती है । और इस प्रेरणासे मनुष्य उत्तम कर्म करके श्रेष्ठ बनता है ।
३ गावः गोपतिं यन्ति— गौवें गोपालके समीप जाती हैं । वाणियां वक्ताके पास रहती हैं ।
४ वावशानाः मतयः सोमं यन्ति— इच्छा करनेवालेकी बुद्धियां सोमकी स्तुति करती हैं । इससे उस स्तुति करनेवालेको उत्तम प्रेरणा प्राप्त होती है ।

[९०२] (धेनवः) आनंद देनेवाली (गावः) गौवें (सोमं वावशानाः) सोमके साथ रहनेकी इच्छा करनेवाली होती हैं । (विप्राः) ज्ञानी स्तुति करनेवाले (मतिभिः) अपनी बुद्धियोंसे (सोमं पृच्छमानाः) सोमके विषयमें विचार करते हैं । (अज्यमानः) गौओंके दूधके साथ मिश्र होनेवाला (सुतः सोमः) रस निकाला सोम (पूयते) छाना जाता है । (त्रिष्टुभः अर्काः) त्रिष्टुप् आदि छंदोंके मंत्र (सोमे संनवन्ते) सोमके साथ स्तुतिसे संमिलित होते हैं ॥ ३५ ॥

९०३ एवा नः सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति ।
इन्द्रमा विश बृहता रवेण वर्धया वाचं जनया पुरंधिम् ॥ ३६ ॥
९०४ आ जागृविर्विप्र ऋता मतीनां सोमः पुनानो असदच्चमूषु ।
सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ॥ ३७ ॥
९०५ स पुनान उप सूरे न धातोभे अप्रा रोदसी वि ष आवः ।
प्रिया चिद्यस्य प्रियसास ऊती स तू धनं कारिणे न प्र यंसत् ॥ ३८ ॥

अर्थ— १ धेनवः गावः सोमं वावशानाः — गौवें अपना दूध सोमरसमें मिलानेकी इच्छा करती हैं ।

२ विप्राः मतिभिः सोमं पृच्छमानाः— ज्ञानी लोग स्तोत्रोंसे सोमकी स्तुति करते हैं ।

३ अज्यमानः सुतः सोमः पूयते— गौके दूधसे मिलाया हुआ सोम छाना जाता है ।

४ त्रिष्टुभः अर्काः सोमे नवन्ते— त्रिष्टुप् आदि छंदोंके मंत्र सोमकी स्तुति करते हैं ।

[९०३] हे (सोम) सोम ! (परिषिच्यमानः) पात्रोंमें रखा हुआ तथा (पूयमानः) छाना हुआ तू (नः) हमारा (एव) निश्चयसे (स्वस्ति) कल्याण (आ पवस्व) कर । (बृहता रवेण) बडे शब्द करता हुआ (इन्द्रं आ विश) इन्द्रको प्राप्त हो जाओ । (वाचं वर्धय) स्तुति रूप वाणीकी वृद्धि करो (पुरंधिं जनय) श्रेष्ठ बुद्धिको बढाओ ॥ ३६ ॥

१ हे सोम ! परिषिच्यमानः पूयमानः नः एव स्वस्ति आ पवस्व— हे सोम ! तू पात्रोंमें रखा और छाना गया हमारा निश्चयसे कल्याण करनेके लिये रस निकालकर देओ ।

२ बृहता रवेण इन्द्रं आ विश— बडा शब्द करता हुआ तू इन्द्रके पास जा ।

३ वाचं वर्धय— स्तुति अधिक बढाओ ।

४ पुरंधिं जनय— बुद्धिको बढाओ । बुद्धिकी उत्तम रीतिसे वृद्धि करो । कृपा प्रकट कर । जनताका हित करनेकी कृपा कर । नगरका हित करनेकी कृपा कर ।

[९०४] (जागृविः) जाग्रत रहनेवाला (ऋता मतीनां) सत्य बुद्धियोंसे (विप्रः) विशेष ज्ञानी (सोमः) सोम (पुनानः) शुद्ध होता हुआ (चमूषु आसदत्) पात्रोंमें रहता है । (मिथुनासः) परस्पर मिलकर यज्ञ करनेवाले ऋत्विज (निकामाः) सदिच्छावाले (रथिरासः सुहस्ताः) याजक उत्तम हाथोंवाले (अध्वर्यवः) याजक (यं सपन्ति) इस सोमको अपने हाथोंसे स्पर्श करते हैं ॥ ३७ ॥

१ जागृविः ऋता मतीनां विप्रः सोमः पुनानः— जागृत बुद्धियोंको बढानेवाला यह ज्ञानी सोम छाना जाता है ।

२ चमूषु आसदत्— सोमरस यज्ञपात्रोंमें रखा रहता है ।

३ मिथुनासः निकामाः रथिरासः सुहस्ताः अध्वर्यवः यं सपन्ति— परस्पर मिलकर यज्ञ करनेवाले सदिच्छावाले याजक अपने उत्तम शुद्ध हाथोंसे इस सोमको पकडते हैं ।

[९०५] (पुनानः सः) शुद्ध किया जानेवाला वह सोम इन्द्रके (उप) पास जाता है । (सूरे न) जैसा सूर्यमें (धाता) संवत्सर जाता है । (उभे रोदसी) दोनों द्यावापृथिवी (आ अप्राः) अपनी महिमासे पूर्णता करती हैं । (सः) वह सोम (वि आवः) अपने तेजसे अंधकारको दूर करता है । (यस्य) जिस सोमकी (प्रिया) प्रिय (प्रियसासः) अति आनंद दायक धाराएं (ऊती चित्) रक्षण करनेके लिये चलती हैं । (सः तु) वह (धनं) धनको (नः प्रयंसत्) हमें दे दो (कारिणे न) जैसा कार्य करनेवालेको धन दिया जाता है ॥ ३८ ॥

९०६ स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाँ अभि नो ज्योतिषावीत् ।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमुष्णन् ॥ ३९ ॥
९०७ अक्रान् त्समुद्रः प्रथमे विधर्मन्-जनयन् प्रजा भुवनस्य राजा ।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत् सोमो वावृधे सुवान इन्दुः ॥ ४० ॥
९०८ महत् तत् सोमो महिषश्चकारा-ऽपां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् ।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजो ऽजनयत् सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥ ४१ ॥

अर्थ— १ पुनानः सः उप— शुद्ध होनेवाला सोम इन्द्रके पास जाता है ।
२ सूरे धाता न— जैसा सूर्यके साथ संवत्सर संबंधित होता है ।
३ उभे रोदसी आप्रा— द्यावापृथिवी दोनों सोमसे तेजस्वी होते हैं ।
४ सः वि आवः— वह सोम अपने तेजसे अंधकार दूर करता है ।
५ यस्य प्रिया प्रियसासः ऊती चित्— जिस सोमकी प्रिय रसधाराएं रक्षण करती हुई चलती हैं ।
६ स तु धनं नः प्रयंसत्— वह सोम धन हमें देता है ।
७ कारिणे न— जैसा कार्य करनेवाले कारीगरको धन दिया जाता है ।

[९०६] (वर्धिता) देवोंका संवर्धन करनेवाला (वर्धनः) स्वयं बढनेवाला (पूयमानः) स्वच्छ होनेवाला (मीढ्वान्) इच्छा तृप्त करनेवाला (सः सोमः) वह सोम (ज्योतिषा) अपने तेजसे (नः अभि आवीत्) हमारा रक्षण करता है । (येन) जिस सोमसे (पदज्ञाः) गौवोंके पदोंसे गौवोंको जाननेवाले (नः पूर्वे पितरः) हमारे पूर्व कालके पितर (स्वर्विदः) सर्वज्ञ होकर (अद्रिं उष्णन्) पर्वत पर ढूंढकर (गाः) गौवोंको प्राप्त कर सके ॥ ३९ ॥

१ वर्धिता वर्धनः पूयमानः ज्योतिषा नः अभि आवीत्— देवोंको बढानेवाला स्वयं बढनेवाला छाना जानेवाला सोम अपने तेजसे हमारा संरक्षण करता है ।
२ येन पदज्ञाः नः पूर्वे पितरः स्वर्विदः अद्रिं गाः उष्णन्— जिस सोमकी सहायतासे ज्ञानी हुए हमारे पूर्वज आत्म ज्ञानी होकर गौओंको पहाडोंमेंसे ढूंढकर प्राप्त कर सके ।

दुष्टोंने गौवें पकडकर पहाडोंमें रखी थीं । उनको प्राप्त किया और गौवोंको अपने आश्रममें लाया ।

[९०७] (समुद्रः) जल देनेवाला (राजा) राजा सोम (प्रथमे भुवनस्य विधर्मन्) विस्तृत उदकको धारण करनेवाले अन्तरिक्षमें (प्रजाः जनयन्) प्रजाको उत्पन्न करके (अक्रान्) परे जाता है । (वृषा) बलवान (सुवानः इन्दुः) रस निकालनेवाला (सोमः) सोम (अधि सानौ अव्ये) मेंढीके बालोंकी (पवित्रे) छाननीके ऊपर (बृहत् वावृधे) अधिक बढता है ॥ ४० ॥

१ समुद्रः राजा प्रथमे भुवनस्य विधर्मन् प्रजाः जनयन् अक्रान्— जलके साथ अपना संबंध रखनेवाला सोम राजा अन्तरिक्षमें जलको धारण करके विशेष रीतिसे प्रजाका पोषण करके प्रगति करता है ।
२ सुवानः इन्दुः सोमः अधि सानौ अव्ये पवित्रे बृहत् वावृधे— रस निकालनेवाला तेजस्वी सोम मेंढीके बालोंकी छाननीपर बढता रहता है । सोमरसमें जल मिलनेसे सोमरस बढता जाता है । पश्चात् उसको छानते हैं ।

[९०८] (महिषः सोमः) बडा सोम (तत् महत् चकार) उस महान कर्मको करता रहा है । (यत् अपां गर्भः) जो जलोंको उत्पन्न करनेवाला (देवान् अवृणीत) देवोंको अपने पास करता है । (पवमानः) सोम (इन्द्रे) इन्द्रमें (ओजः अदधात्) बल बढाता है तथा (इन्दुः) सोम (सूर्ये ज्योतिः अजनयत्) सूर्यमें तेज उत्पन्न करता है ॥ ४१ ॥

९०९ मत्सि वायुमिष्टये राधसे च मत्सि मित्रावरुणा पूयमानः ।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान् मत्सि द्यावापृथिवी देव सोम ॥ ४२ ॥
९१० ऋजुः पवस्व वृजिनस्य हन्ता ऽपामीवां बाधमानो मृधश्च ।
अभिश्रीणन् पयः पयसाभि गोना-मिन्द्रस्य त्वं तव वयं सखायः ॥ ४३ ॥

अर्थ— १ महिषः सोमः तत् महत् चकार— बडा सोम उस महान कार्यको करता है ।

२ यत् अपां गर्भः देवान् अवृणीत – जो जलोंका गर्भरूप सोम देवोंको अपने पास रखता है । यज्ञमें देवोंके स्थानमें सोम रखा होता है । सोम रखा होता है उस स्थानमें देव रहते हैं ।

३ पवमानः इन्द्रे ओजः अदधात्— सोम इन्द्रका बल बढाता है ।

४ इन्दुः सूर्ये ज्योतिः अजनयत्— सोम सूर्यमें प्रकाश उत्पन्न करता है ।

[९०९] हे (सोमदेव) सोमदेव ! तू (इष्टये) अन्नके लिये तथा (राधसे) धनके लिये (वायुं मत्सि) वायुको आनंदित कर । तू छाननीसे शुद्ध किया जाता हुआ (मित्रावरुणा मत्सि) मित्र और वरुणको आनंदित कर । (मारुतं शर्धः) मरुतोंके संघको प्रसन्न करता है । (देवान् मत्सि) इन्द्र आदि देवोंको आनंदित करता है तथा (द्यावा पृथिवी मत्सि) द्युलोक और पृथिवीको आनंदित करता है ॥ ४२ ॥

१ हे सोमदेव ! इष्टये राधसे वायुं मत्सि— हे देव सोम ! तू अन्नके लिये तथा धनके लिये वायु देवको प्रसन्न कर । वायु शुद्ध तथा प्रसन्न रहा तो सबको आनंद प्राप्त हो सकता है ।

२ मित्रा वरुणा मत्सि— मित्र और वरुणको तू आनंदित रखता है ।

३ मारुतं शर्धः मत्सि— मरुतोंके सैन्यको तू प्रसन्न रखता है ।

४ देवान् मत्सि— तू देवोंको प्रसन्न रखता है ।

५ द्यावा पृथिवी मत्सि— द्युलोक और पृथिवीको सोम प्रसन्न करता है ।

सोमरस वायु, मित्र, वरुण, मरुत्गण, अन्य सब देव, द्यावा पृथिवी आदि सब देवोंको आनंदित स्थितिमें रखता है । सोमरस पीनेसे सब आनंद प्रसन्न रहते हैं ।

[९१०] हे सोम ! तू (ऋजुः) सरलतासे (पवस्व) रस निकालकर दे । (वृजिनस्य हन्ता) दुष्टोंका नाश करनेवाला, (अमीवां अप बाधमानः) रोगोंका नाश करनेवाला, दुष्टोंका नाश करनेवाला (मृधः च बाधमानः) शत्रुओंका नाश करनेवाला हो । (पयः) अपने रसके साथ (गोनां पयसा) गौवोंके दूधके साथ (अभिश्रीणन्) मिश्रित करके (त्वं इन्द्रस्य) तू इन्द्रका मित्र है और (वयं तव सखायः) हम तेरे मित्र हैं ॥ ४३ ॥

१ हे सोम ! ऋजुः पवस्व— हे सोम सरलतासे रस दे ।

२ वृजिनस्य हन्ता— तू दुष्टोंका नाश करता है ।

३ अमीवां अप बाधमानः— तू रोग बीजोंका नाश करता है ।

४ मृधः च अप बाधमानः— तू अपने शत्रुओंका नाश करनेवाला है ।

५ पयः गोनां पयसा अभिश्रीणन्— तू अपने सोमरसको गौवोंके दूधके साथ मिलाता है ।

६ त्वं इन्द्रस्य सखा— तू इन्द्रका मित्र है ।

७ वयं तव सखायः— हम तेरे मित्र हैं ।

×

९११ मध्वः सूदं पवस्व वस्व उत्सं वीरं च न आ पवस्वा भगं च ।
स्वदस्वेन्द्राय पवमान इन्दो रयिं च न आ पवस्वा समुद्रात् ॥ ४४ ॥
९१२ सोमः सुतो धारयात्यो न हित्वा सिन्धुर्न निम्नमभि वाज्यक्षाः ।
आ योनिं वन्यमसदत् पुनानः समिन्दुर्गोभिरसरत् समद्भिः ॥ ४५ ॥
९१३ एष स्य ते पवत इन्द्र सोमश्चमूषु धीर उशते तवस्वान् ।
स्वर्चक्षा रथिरः सत्यशुष्मः कामो न यो देवयतामसर्जि ॥ ४६ ॥

अर्थ—[९११] हे सोम ! (मध्वः सूदः) मधुरताके घनीभूत (वस्वः उत्सं) धन देनेवाले (आ पवस्व) रसको देओ । (नः) हमारे लिये (वीरं च) वीर पुत्रको (आ पवस्व) देओ । तथा (भगं च) धन भी देओ । हे (पवमान इन्दो) शुद्ध किये जानेवाले सोम ! (इन्द्राय स्वदस्व) इन्द्रके लिये रस देओ । तथा (समुद्रात्) अन्तरिक्षसे (रयिं च) धनको (नः आ पवस्व) हमें देओ । ॥ ४४ ॥

१ हे सोम ! मध्वः सूदं वस्वः उत्सं आ पवस्व— हे सोम ! तू मधुरतासे परिपूर्ण तथा धन देनेवाले रसको देओ ।

२ नः वीरं च आ पवस्व— हमें वीर पुत्र देओ ।

३ भगं च आ पवस्व— हमें धन देओ ।

४ हे पवमान इन्दो ! इन्द्राय स्वदस्व— हे सोमरस ! तू इन्द्रके लिये रस देओ ।

५ समुद्रात् रयिं नः आ पवस्व— अन्तरिक्षसे धन हमारे लिये अपने रसके साथ देओ ।

[९१२] (सुतः सोमः) रस निकाला सोम (धारया) अपनी रसधारासे (अत्यः न) घोडेके समान (हित्वा) गमनशील रहता है । (वाजी) बलवान सोम (सिन्धुः न) नदीके समान (निम्नं) नीचे रखे कलशमें (अभि अक्षाः) जाता है । (पुनानः) शुद्ध होनेवाला सोम (वन्यं योनिं) वृक्षसे बने कलशमें (आ असदत्) बैठता है । वह (इन्दुः) सोम (गोभिः) गौवोंके दूधके साथ मिश्रित होकर (अद्भिः सं असरत्) जलके साथ मिश्रित होता है (पुनानः) तथा छाना जाता है ॥ ४५ ॥

१ सुतः सोमः धारया हित्वा अत्यः न— सोमका रस निकालने पर वह धारासे नीचे रखे पात्रमें जाता है जैसा घोडा जाता है ।

२ सिन्धुः न वाजी अभि अक्षाः— नदी जैसी निम्न भागमें जाती है वैसा यह बल बढानेवाला सोम नीचेके कलशमें जाता है ।

३ पुनानः वन्यं योनिं आ असदत्— छाना जानेवाला सोमरस वृक्षसे बने कलशमें जाकर रहता है ।

४ इन्दुः गोभिः अद्भिः समसरत् सोमरस गौओंके दूध तथा जलके साथ मिलाया जाता है ।

[९१३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (उशते ते) इच्छा करनेवाले तेरे लिये (धीरः तवस्वान्) धैर्यवान् तथा वेगवान् (स्यः एषः सोमः) वह यह सोम (चमुषु पवते) कलशोंमें रस देता है । (स्वर्चक्षाः) सबका निरीक्षक (रथिरः) रथमें बैठनेवाला वीर (सत्यशुष्मः) सच्चे बलसे युक्त (यः) जो सोम (देवयतां कामः) याजकोंकी इच्छा (न) के समान (असर्जि) कामना करता है ॥ ४६ ॥

१ हे इन्द्र ! ते उशते धीरः तवस्वान् स्यः एषः सोमः चमूषु पवते— हे इन्द्र ! तेरी इच्छाके अनुसार धैर्यशाली बलवान् यह सोम कलशोंमें अपना रस रखता है ।

२ स्वर्चक्षा रथिरः सत्यशुष्मः यः देवयतां कामः न असर्जि— सबका निरीक्षण करनेवाले रथमें बैठनेवाले सच्चे वीरके समान यह सोम यज्ञ करनेवालोंकी इच्छा तृप्त करता है ।

९१४ एष प्रत्नेन वयसा पुनान--स्तिरो वर्पांसि दुहितुर्दधानः ।
वसानः शर्म त्रिवरूथमप्सु होतेव याति समनेषु रेभन् ॥ ४७ ॥
९१५ नू नस्त्वं रथिरो देव सोम परि स्रव चम्वोः पूयमानः ।
अप्सु स्वादिष्ठो मधुमाँ ऋतावा देवो न यः सविता सत्यमन्मा ॥ ४८ ॥
९१६ अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानो३ ऽभि मित्रावरुणा पूयमानः ।
अभी नरं धीजवनं रथेष्ठा--मभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ॥ ४९ ॥

अर्थ— [९१४] (प्रत्नेन वयसा पुनानः) प्राचीन कालसे अन्नके द्वारा छाना जानेवाला (दुहितुः , पृथिवीके (वर्पांसि) रूपोंको (तिरः दधानः) दूर करता हुआ (त्रिवरूथं शर्म वसानः) शीत उष्ण वर्षारूप तीन प्रकारके स्थानमें रहनेवाला (अप्सु होता इव) कलशोंमें रहनेवाले जलमें रहनेवाला (रेभन्) शब्द करता हुआ (समनेषु याति) यज्ञोंमें जाता है ॥ ४७ ॥

१ प्रत्नेन वयसा पुनानः— पूर्व कालसे यज्ञके अन्नके साथ यह सोमरस छाना जाकर शुद्ध किया जाता है ।

२ दुहितुः वर्पांसि तिरः दधानः— पृथिवीके नाना प्रदेशोंके रूपोंको दूर रखता है । देशभेदसे रूपभेद होता है अतः यह सोम उस रूप भेदका विचार नहीं करता ।

३ त्रिवरूथं शर्म वसानः— शीत, उष्ण तथा पर्जन्य कालोंसे उत्पन्न होनेवाले विभिन्न रूपोंमें रहनेवाला यह सोम एकही रूप धारण करता है । तीनों कालोंमें यह सोम समान रूपसे रहता है ।

४ अप्सु रेभन् समनेषु याति— जलके साथ मिश्रित होकर यह सोम शब्द करता हुआ यज्ञमें जाता है । सोमरस यज्ञपात्रोंमें रखा जानेके समय शब्द करके पात्रोंमें गिरता है ।

[९१५] हे (सोमदेव) सोम देव ! (रथिरः त्वं) रथसे युक्त तू (नः) हमारे यज्ञमें (चम्वोः पूयमानः) यज्ञपात्रोंसे छाना जाकर (अप्सु नु) जलोंमें (परि स्रव) अपना रस देवो । (स्वादिष्ठः) स्वाद युक्त (मधुमान्) मधुर (ऋतावा) यज्ञवान् (सविता) सबका प्रेरक (यः) जो तू (देवः न) देवके समान (सत्यमन्मा) सत्य और मनन करने योग्य स्तुति सुनता हुआ अपनेमेंसे रस देवो ॥ ४८ ॥

१ हे सोम देव ! रथिरः त्वं नः चम्वोः पूयमानः अप्सु नु परिस्रव— हे दिव्य सोम ! रथमें रहनेवाला, यज्ञरूप रथमें रहनेवाला तू पात्रोंमें छाना जाकर जलोंमें मिश्रित होकर यज्ञमें रहो ।

२ स्वादिष्ठः मधुमान् ऋतावा सविता सत्यमन्मा— स्वादिष्ठ, मधुर, यज्ञमें रहनेवाला, सबको उत्तम कार्यकी प्रेरणा देनेवाला, सत्य स्तुति प्रिय ऐसा तू सोम हो ।

[९१६] हे सोम ! (गृणानः) स्तुति किया गया तू (वीती) पीनेके लिये (वायुं अभि अर्ष) वायुके पास जा । तथा छाननीसे (पूयमानः) शुद्ध किया हुआ तू (मित्रावरुणा अभि अर्ष) मित्र और वरुणके पास जा । तथा (नरं) नेता (धीजवनं) बुद्धिके समान वेगवान (रथेष्ठां) रथमें रहनेवाले अश्विनौ देवोंके (अभि अर्ष) पास जा । (वृषणं वज्रबाहुं इन्द्रं) बलवान वज्रके समान बाहुवाले इन्द्रके पास (अभि अर्ष) जाओ ॥ ४९ ॥

१ गृणानः वीती वायुं अभि अर्ष— स्तुति करनेपर पीनेके लिये, हे सोम ! तू वायुके पास जा ।
२ पूयमानः मित्रावरुणा अभि अर्ष— छाना जानेपर मित्र और वरुणके पास जा ।
३ नरं धीजवनं रथेष्ठां अभि अर्ष— बुद्धिके समान वेगवान रथमें बैठनेवाले अश्विनौ देवोंके पास जा ।
४ वृषणं वज्रबाहुं इन्द्रं अभि अर्ष— बलवान् वज्रके समान बाहुवाले इन्द्रके पास जा ।

९१७ अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षा—ऽभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः ।
अभि चन्द्रा भर्तवे नो हिरण्या ऽभ्यश्वान् रथिनो देव सोम ॥ ५० ॥
९१८ अभी नो अर्ष दिव्या वसू—न्यभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः ।
अभि येन द्रविणमश्नवामा—ऽभ्यार्षेयं जमदग्निवन्नः ॥ ५१ ॥
९१९ अया पवा पवस्वैना वसूनि माँश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व ।
ब्रध्नश्चिदत्र वातो न जूतः पुरुमेधश्चित् तकवे नरं दात् ॥ ५२ ॥

अर्थ—[९१७] हे सोम ! तू हमारे (सुवसनानि वस्त्रा) उत्तम वस्त्रोंके पास (अभि अर्ष) जा। तथा (पूयमानः) छाना जाकर (सुदुघाः धेनुः) उत्तम दूध देनेवाली गौवोंके पास (अभि अर्ष) जा। (भर्तवे) पोषणके लिये (चन्द्रा हिरण्यानि) चमकनेवाले सुवर्णके अलंकारोंके (अभि अर्ष) पास जा। हे (देव सोम) दिव्य सोम। (रथिनः अश्वान्) रथ चलानेवाले घोडोंको (अभि) प्राप्त कराओ ॥ ५० ॥

१ हे सोम ! सुवसनानि वस्त्रा अभि अर्ष— हे सोम ! तू उत्तम वस्त्रोंको प्राप्त करो। जहां उत्तम वस्त्र होते हैं ऐसे धन हमें प्राप्त हों।

२ पूयमानः सुदुघाः धेनुः अभि अर्ष— शुद्ध होकर उत्तम दूध देनेवाली गौवोंके दूधमें सोमरस मिलाया जाय।

३ भर्तवे चन्द्रा हिरण्यानि अभि अर्ष— पोषणके लिये चमकीले सुवर्णके अलंकारोंको प्राप्त कर।

४ हे सोम देव ! रथिनः अश्वान् अभि अर्ष— हे दिव्य सोम ! रथको जोडे जाने योग्य घोडोंको प्राप्त कर। जहां सोमरस निकाला जाता है ऐसे याजकके पास उत्तम रथको चलानेवाले उत्तम वेगवान घोडे हों।

[९१८] हे सोम ! (पूयमानः) छाना जाकर (दिव्या वसूनि) दिव्य धन (नः अभि अर्ष) हमें देवो। तथा (विश्वा पार्थिवा) सब पृथिवीपर उत्पन्न धनोंको (अभि अर्ष) हमें देवो। (येन) जिस सामर्थ्यसे (द्रविणं अभि अश्नवाम) हम धन प्राप्त कर सकेंगे वह सामर्थ्य हमें दो। (जमदग्निवत्) जमदग्निके समान (नः) हमारे लिये (आर्षेयं) ऋषिके योग्य मंत्र (अभि अर्ष) हमें दो ॥ ५१ ॥

१ पूयमानः दिव्या वसूनि नः अभि अर्ष—शुद्ध किया गया तू सोम दिव्य धन हमें दे।

२ विश्वा पार्थिवा अभि अर्ष— सब पार्थिव धन हमें दे।

३ येन द्रविणं अभि अश्नवाम— जिस सामर्थ्यसे हम धन प्राप्त कर सकेंगे, वह सामर्थ्य हमें दे।

४ जमदग्निवत् आर्षेयं नः अभि अर्ष— जमदग्निके समान ऋषिके योग्य सामर्थ्य हमें दो।

[९१९] हे (इन्दो) सोम ! (अया पवा) इस सोमकी धारासे (एना वसूनि पवस्व) इन धनोंको देओ। (मांश्चत्वे सरसि) मान देने योग्य जलमें (प्र धन्व) तू मिश्रित होओ। (अत्र) इस यज्ञमें (ब्रध्नः चित्) सबको अपने ज्ञानसे प्रदर्शित करनेवाला (वातः न जूतः) वायुके समान वेगवान (पुरुमेधः चित्) बहुत यज्ञोंसे सन्मानित (तकवे) यज्ञकर्मके लिये (नरं दात्) पुत्रको देता है ॥ ५२ ॥

१ हे सोम ! अया पवा एना वसूनि पवस्व— इस सोमरसकी धारासे इन धनोंको देओ।

२ मांश्चत्वे सरसि प्र धन्व— इन उत्तम जलोंमें तू मिश्रित हो जा।

३ अत्र ब्रध्नः चित् वातः न जूतः पुरुमेधः चित् तकवे नरं दात्— इस यज्ञमें अपने ज्ञानसे ज्ञान देनेवाला वायुके समान वेगवान अनेक यज्ञोंके करनेसे सन्मान जिसको प्राप्त हुआ है, ऐसा पुत्र यह सोम देता है।

९२० उत नं एना पंवया पंवस्वा- ऽधिं श्रुते श्रवाय्यंस्य तीर्थे ।
षुष्टिं सुहस्रां नैगुतो वसूंनि वृक्षं न पुक्कं धूंनवुद्रणांय ॥ ५३ ॥
९२१ महीमे अंस्य वृषनाम शूषे माँश्चंत्वे वा पृशंने वा वधंत्रे ।
अस्वांपयन्निगुतंः स्नेहयुच्चा- ऽपामित्राँ अपाचितों अचेतः ॥ ५४ ॥
९२२ सं त्री पुवित्रा विर्ततान्येष्य- न्वेकं धावसि पूयमानः ।
असि भगो असिं दुात्रस्यं दुाता ऽसिं मुघवां मुघवंद्भ्य इन्दो ॥ ५५ ॥

अर्थ— [९२०] हे सोम ! (उत) और (श्रवाय्यस्य) श्रवणीय ऐसे तुझ सोमका (श्रुते तीर्थे) श्रवणीय पवित्र (नः) हमारे यज्ञस्थानमें (एना पवया) इस पवित्र धारासे (अधि पवस्व) रस दे। (नैगुतः) शत्रुका नाश करनेवाला यह सोम (षष्टिं सहस्रा) साठ हजार (वसूनि) धन (रणाय धूनवत्) शत्रुओंका नाश करनेके लिये देता है। (पक्कं वृक्षं न) पके फलवाले वृक्षको जैसा हिलाया जाता है ॥ ५३ ॥

१ हे सोम ! उत श्रवाय्यस्य श्रुते तीर्थे नः एना पवया अधि पवस्व— हे सोम ! वर्णनके लिये योग्य ऐसे इस यज्ञस्थानमें हमारे लिये पवित्र धारासे अपना रस निकालकर दो।

२ नैगुतः षष्टं सहस्रा वसूनि रणाय धूनवत्— शत्रुका नाश करनेके लिये साठ हजार धन युद्धके लिये देता है।

३ पक्कं वृक्षं न— जैसे पके फलवाला वृक्ष हिलाकर उससे पके हुए फल लिये जाते हैं।

[९२१] (महि) महान (वृषनाम) शत्रुपर शस्त्रोंका वर्षण करके शत्रुको नम्र करना (इमे) ये दो काम (अस्य शूषे) इस सोमके लिये सुखकर हैं। (मांश्चत्वे) अश्व युद्ध (वा पृशने) अथवा बाहुयुद्ध ये दोनों (वधत्रे) युद्ध शत्रुका वध करनेमें समर्थ होते हैं। वह यह सोम (निगुतः) नीचेसे शत्रुको (अस्वापयन्) गिराकर (स्नेहयत् च) शत्रुको भगाता है। हे सोम ! तू (अमित्रान्) शत्रुओंको (अप अचितः) दूर कर। तथा (अचितः) नास्तिकोंको (इतः) यहांसे (अप अच) दूर कर ॥ ५४ ॥

१ महि वृष-नाम इमे अस्य शूषे— शत्रुपर शस्त्रोंकी वृष्टि करना और शत्रुको नरम करना ये दो कार्य इसके लिये सुखदायक है। ये दो कार्य यह करता है। 'वृष'— शत्रुपर शस्त्रोंका वर्षाव करना और 'नाम'— शत्रुको नरम करना ये वीरके दो कार्य हैं।

२ मांश्चत्वे वा पृशने वधत्रे— अश्वयुद्ध अथवा बाहुयुद्ध ये दोनों प्रकारके युद्ध शत्रुका नाश करनेमें समर्थ हैं।

३ निगुतः अस्वापयन् स्नेहयत् च— शत्रुको नीचे भगाकर उस शत्रुका नाश करता है।

४ अमित्रान् अप अचितः— शत्रुको दूर करता है।

५ अचितः इतः अप अच— नास्तिकोंको यहांसे दूर कर।

[९२२] हे सोम ! (विततानि) विस्तृत (त्री पवित्रा) तीन छाननियोंके पास तू (सं एषि) जाता है। और (पूयमानः) छाना जानेवाला तू (एकं) एकके पास (अनु धावसि) दौडकर पहुंचता है। तू (भगः असि) भाग्यवान है। तथा तू (दात्रस्य दाता असि) धनका दाता है। हे (इन्दो) सोम ! (मघवद्भ्यः) धनवानोंके लिये भी (मघवा असि) तू अधिक धनवान हो ॥ ५५ ॥

९२३ एष विश्ववित् पवते मनीषी सोमो विश्वस्य भुवनस्य राजा ।
द्रप्साँ ईरयन् विदथेष्विन्दु- र्वि वारमव्यं समयाति याति ॥ ५६ ॥
९२४ इन्दुं रिहन्ति महिषा अदब्धाः पदे रेभन्ति कवयो न गृध्राः ।
हिन्वन्ति धीरा दशभिः क्षिपाभिः समञ्जते रूपमपां रसेन ॥ ५७ ॥
९२५ त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता- मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ५८ ॥

अर्थ १ हे सोम ! त्री विततानि पवित्रा सं याषि— हे सोम ! तू तीन छाननीयोंमेंसे छाना जाता है ।
२ पूयमानः एकं अनु धावसि— छाना जानेवाला तू एक छाननीमेंसे शीघ्रतासे छाना जाता है ।
३ भगः असि— तू भाग्यवान है । तू धनवान है ।
४ दात्रस्य दाता असि— तू धनका दाता है ।
५ हे इन्दो ! मघवद्भ्यः मघवा असि— हे सोम ! तू धनवानोंसे भी अधिक धनवान है ।

[९२३] (विश्ववित्) सर्वज्ञ (मनीषी) बुद्धिमान (विश्वस्य भुवनस्य राजा) सब भुवनोंका राजा (एषः सोमः) यह सोम (पवते) रस देता है । (विदथेषु) यज्ञोंमें (द्रप्सान् ईरयन्) रसोंको देता है । यह (इन्दुः) सोम (अव्यं वारं) भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे (समया) दोनों तरफसे (वि अति याति) जाता है ॥ ५६ ॥

१ विश्ववित् मनीषी विश्वस्य भुवनस्य राजा एष सोमः पवते— सर्वज्ञ ज्ञानी सब भुवनोंका राजा यह सोम रस देता है ।
२ विदथेषु द्रप्सान् ईरयन्— यज्ञोंमें सोमके रसोंको प्रेरित करता है । यज्ञमें सोमरस निकाले जाते हैं ।
३ इन्दुः अव्यं वारं समया वि अति याति— यह सोमरस भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे एकसाथ दोनों ओरसे छाना जाता है ।

[९२४] (महिषाः) महान पूज्य (अदब्धाः) निर्भय देव (इन्दुं रिहन्ति) सोमके रसका स्वाद लेते हैं । (गृध्राः कवयः न) धनकी इच्छा करनेवाले कवियोंके समान (पदे) यज्ञस्थानमें विद्वान् (रेभन्ति) स्तुति करते हैं । (दशभिः क्षिपाभिः) दसों अंगुलियोंसे (धीराः हिन्वन्ति) याजक प्रेरित करते हैं । (अपां रसेन) जलोंके रसके साथ (रूपं समञ्जते) इस सोमका रस मिलाया जाता है ॥ ५७ ॥

१ महिषाः अदब्धाः इन्दुं रिहन्ति— बडे निर्भय देव सोमके रसका स्वाद लेते हैं ।
२ गृध्राः कवयः न— धनकी इच्छा करनेवाले कवि जैसा रसका स्वाद लेते हैं ।
३ पदे रेभन्ति— यज्ञस्थानमें स्तुति चलती रहती है ।
४ दशभिः क्षिपाभिः धीराः हिन्वन्ति— दसों अंगुलियोंसे ज्ञानी याजक सोमरसको प्रेरित करते हैं ।
५ अपां रसेन रूपं समंजते— जलके साथ सोमरस मिलाया जाता है ।

[९२५] हे (सोम) सोम ! (पवमानेन त्वया) छाना जानेवाले तेरी सहायतासे (भरे) युद्धमें (शश्वत् कृतं) बहुत कार्य (वयं वि चिनुयाम) हम करते हैं । (तत्) इस कारण मित्र, वरुण, अदिति, सिंधु, पृथिवी (उत) और (द्यौः) द्युलोक (नः मामहन्तां) हमारा धनादिके दानसे सत्कार करें । हमारी उन्नति करें ॥ ५८ ॥

१ भरे पवमानेन त्वया शश्वत् कृतं वयं विचिनुयाम— युद्धमें सोमरससे जो कार्य किया जाता है वह सब कार्य हम करते हैं । वीर सोमरस पीकर युद्धमें बडा कार्य करते हैं । वैसा हम बडा कार्य करेंगे ।
२ मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यु ये सब देव धन देकर हमारी सहायता करें और हमारी उन्नति करें ।

[९८]

(ऋषिः- अम्बरीषो वार्षागिरः, ऋजिश्वा भारद्वाजश्च । देवताः- पवमानः सोमः ।
छन्दः- अनुष्टुप्, ११ बृहती ।)

९२६ अभि नो वाजसातमं रयिमर्ष पुरुस्पृहम् ।
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभ्वासहम् ॥ १ ॥
९२७ परि ष्य सुवानो अव्ययं रथे न वर्माव्यत ।
इन्दुरभि द्रुणा हितो हियानो धाराभिरक्षाः ॥ २ ॥
९२८ परि ष्य सुवानो अक्षा इन्दुरव्ये मदच्युतः ।
धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा नैति गव्ययुः ॥ ३ ॥
९२९ स हि त्वं देव शश्वते वसु मर्ताय दाशुषे ।
इन्दो सहस्रिणं रयिं शतात्मानं विवाससि ॥ ४ ॥
९३० वयं ते अस्य वृत्रहन् वसो वस्वः पुरुस्पृहः ।
नि नेदिष्ठतमा इषः स्याम सुम्नस्याध्रिगो ॥ ५ ॥

---

[९८]

अर्थ— [९२६] हे (इन्दो) सोमरस ! तू (नः) हमें (वाजसातमं) अनेक तरहसे पोषक (पुरुस्पृहं) अत्यन्त स्तुत्य (सहस्रभर्णसं) हजारों शक्तियोंका पोषण करनेवाले (तुविद्युम्नं) अत्यन्त कीर्तिप्रद और (विश्वासहं) बडोंका पराभव करनेवाले (रयिं) धनको (अभि अर्ष) प्रदान कर ॥ १ ॥

[९२७] (वर्म रथे न) कवचधारी पुरुष जिस तरह रथमें बैठता है, उसी तरह (स्यः) वह सोमरस (सुवानः) निचोडनेके बाद (अव्ययं परि अव्यत) छलनीकी तरफ दौडता है । (हियानः इन्दुः) स्तुत होता हुआ सोमरस (द्रुणा हितः) द्रोण या बर्तनसे डाले जानेपर (धाराभिः अक्षाः) धाराओंसे बहता है ॥ २ ॥

[९२८] (अध्वरे ऊर्ध्वः यः) यज्ञमें मुख्य जो सोमरस (धारा) धाराके रूपमें (भ्राजा न) तेज या प्रकाशकी धाराके समान (गव्ययुः एति) गायके दूधमें मिलनेकी इच्छा करते हुए जाता है, (स्यः मदच्युतः सुवानः इन्दुः) वह आनंद उत्पन्न करनेवाला तथा निचोडा जाता हुआ सोम (अव्ये परि अक्षा) छलनीकी तरफ जाता है ॥ ३ ॥

[९२९] हे (देव इन्दो) देव सोम ! (सः त्वं) वह तू (शश्वते दाशुषे मर्ताय) सदा दान देनेवाले मनुष्यको (सहस्रिणं शतात्मानं रयिं) हजारों और सैंकडोंकी संख्यामें धनको (विवाससि) प्रदान करता है ॥ ४ ॥

[९३०] हे (वृत्रहन्) शत्रुओंको मारनेवाले सोम ! (वयं अस्य ते) हम तेरे ही हैं । हे (वसो) सबके आधाररूप सोम ! हम (पुरुस्पृहः वस्वः) अत्यन्त स्पृहणीय सम्पत्तिके (नेदिष्ठतमा) अत्यन्त समीप हों, हे (अध्रिगो) चंचल सोम ! हम तेरे (सुम्नस्य इषः स्याम) सुख और अन्न पानेके अधिकारी हों ॥ ५ ॥

९३१ द्विर्यं पञ्च स्वयशसं स्वसारो अद्रिसंहतम् ।
प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त्यूर्मिणम् ॥ ६ ॥
९३२ परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
यो देवान् विश्वाँ इत् परि मदेन सह गच्छति ॥ ७ ॥
९३३ अस्य वो ह्यवसा पान्तो दक्षसाधनम् ।
यः सूरिषु श्रवो बृहद् दधे स्वर्ण हर्यतः ॥ ८ ॥
९३४ स वां यज्ञेषु मानवी इन्दुर्जनिष्ट रोदसी ।
देवो देवी गिरिष्ठा अस्रेधन् तं तुविष्वणि ॥ ९ ॥
९३५ इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।
नरे च दक्षिणावते देवाय सदनासदे ॥ १० ॥
९३६ ते प्रत्नासो व्युष्टिषु सोमाः पवित्रे अक्षरन् ।
अपप्रोथन्तः सनुतर्हुरश्चितः प्रातस्ताँ अप्रचेतसः ॥ ११ ॥

अर्थ— [९३१] (द्विः पंच स्वसारः) दस बहिनें अर्थात् उंगलियां (यं स्वयशसं) जिस स्वयं यशस्वी (अद्रिसंहतं) पत्थरोंसे कूटे जानेवाले (इन्द्रस्य प्रियं) इन्द्रको प्रिय (काम्यं) कमनीय तथा (ऊर्मिणं) उत्साहकी लहर उत्पन्न करनेवाले सोमको (प्रस्नापयन्ति) नहलाती हैं ॥ ६ ॥

[९३२] (यः) जो सोम ! (विश्वान् देवान् इत्) सभी देवोंके पास (मदेन सह परि गच्छति) आनन्दसे युक्त होकर जाता है, (त्यं हर्यतं) उस स्पृहणीय (हरिं बभ्रुं) आकर्षण शक्ति तथा भरणपोषणकी शक्तिसे युक्त सोमरसको (वारेण पुनन्ति) छलनीसे छानकर पवित्र करते हैं ॥ ७ ॥

[९३३] (स्वः न हर्यतः यः) सूर्यके समान तेजस्वी जो (सूरिषु बृहत् श्रवः दधे) विद्वानोंको भरपूर देता है, ऐसे (अस्य) इस सोमके (अवसा) रक्षणशक्तिसे युक्त तथा (दक्षसाधनं) बलबढानेवाले रसको (वः पान्त) तुम पीओ ॥ ८ ॥

[९३४] (मानवी देवी रोदसी) हे मनुष्योंका हित करनेवाले तेजस्वी द्युलोक और पृथ्वीलोक ! (वां यज्ञेषु) तुम्हारे यज्ञोंमें (सः इन्दुः जनिष्ट) वह सोम उत्पन्न किया जाता है। (देवः) वह तेजस्वी सोमरस (गिरिष्ठाः) पर्वत पर रहता है। (तं) उस सोमको मनुष्य (तुविष्वणि अस्रेधन्) यज्ञमें तैयार करते हैं ॥ ९ ॥

[९३५] हे (सोम) सोम ! (वृत्रघ्ने इन्द्राय पातवे) वृत्रको मारनेवाले इन्द्रके पीनेके लिये (परि षिच्यसे) तू निचोडा जाता है। (दक्षिणावते नरे) दान देनेवाले मनुष्य और (सदनासदे देवाय) यज्ञमें बैठनेवाले विद्वान्के पीनेके लिये तू निचोडा जाता है ॥ १० ॥

[९३६] जो सोम (प्रातः) प्रातःकाल (सनुतः) छिपे हुए (अप्रचेतसः) अज्ञानी (हुरश्चितः) चोर हैं, (तान्) उन्हें (अपप्रोथन्तः) भगा देते हैं, (ते प्रत्नासः सोमाः) वे प्राचीन सोम (व्युष्टिषु) प्रातः-कालके समय (पवित्रे अक्षरन्) छलनीमें छाने जाते हैं ॥ ११ ॥

९३७ तं सखायः पुरोरुचं　यूयं वयं च सूरयः ।
अश्याम वाजगन्ध्यं　सनेम वाजपस्त्यम्　॥ १२ ॥

[९९]

(ऋषिः- रेभसूनू काश्यपौ । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- अनुष्टुप्, १ बृहती ।)

९३८ आ हर्यताय धृष्णवे　धनुस्तन्वन्ति पौंस्यम् ।
शुक्रां वयन्त्यसुराय निर्णिजं　विपामग्रे महीयुवः　॥ १ ॥

९३९ अध क्षपा परिष्कृतो　वाजाँ अभि प्र गाहते ।
यदी विवस्वतो धियो　हरिं हिन्वन्ति यातवे　॥ २ ॥

९४० तमस्य मर्जयामसि　मदो य इन्द्रपातमः ।
यं गाव आसभिर्दधुः　पुरा नूनं च सूरयः　॥ ३ ॥

९४१ तं गाथया पुराण्या　पुनानमभ्यनूषत ।
उतो कृपन्त धीतयो　देवानां नाम बिभ्रतीः　॥ ४ ॥

अर्थ—[९३७] हे (सखायः) मित्रो! (वयं यूयं च) हम और तुम तथा (सूरयः) अन्य सभी विद्वान् (पुरोरुचं) अत्यधिक तेजस्वी, (वाजगन्ध्यं) बलकारक तथा उत्तम सुगंधीवाले सोमरसको (अश्याम) पीएं और (वाजपस्त्यं सनेम) बलके स्वामित्वको प्राप्त करें ॥ १२ ॥

[९९]

[९३८] (हर्यताय धृष्णवे) इस स्पृहणीय और शत्रुओंका पराभव करनेवाले सोमके लिये (पौंस्यं धनुः) पराक्रमी धनुषको लोग (तन्वन्ति) फैलाते हैं। (महीयुवः) ऋत्विज (विपां अग्रे) विद्वानोंके आगे (असुराय निर्णिजं) बलशाली सोमको छाननेके लिये (शुक्रां वयन्ति) अपने तेजको विस्तृत करते हैं ॥ १ ॥

[९३९] (यदि विवस्वतः धियः) जब ऋत्विजोंकी बुद्धिपूर्वक की गई स्तुतियां (हरिं) सोमरसको (यातवे हिन्वन्ति) बहनेके लिये प्रेरित करती हैं, तब (क्षपः अध परिष्कृतः) रात्रीके बाद अर्थात् प्रातःकालमें तैय्यार किया हुआ सोम (वाजान् अभि प्र गाहते) बलकी तरफ जाता है ॥ २ ॥

[९४०] (यः मदः) जो आनन्ददायी रस (इन्द्रपातमः) इन्द्रके द्वारा अत्यधिक पीने योग्य है, तथा (यं) जिसे (गावः सूरयः) गायें और विद्वान् (पूरा नूनं च) पहले और आज भी (आसभिः दधुः) मुंहसे पीते हैं, ऐसे (अस्य तं) इस सोमके उस रसको हम (मर्जयामसि) शुद्ध करते हैं ॥ ३ ॥

[९४१] (उत) और जिसे (देवानां नाम बिभ्रतीः धीतयः) देवोंके नामको धारण करनेवाली बुद्धियां (कृपन्त) सामर्थ्य युक्त करते हैं, (पुनानं तं) पवित्र होते हुए उस सोमरसकी (पुराण्या गाथया) पुरानी गाथाओंसे (अभि अनूषत) लोग स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥

×

९४२ तमुक्षमाणमव्यये वारे पुनन्ति धर्णसिम् ।
दूतं न पूर्वचित्तय आ शासते मनीषिणः ॥ ५ ॥
९४३ स पुनानो मदिन्तमः सोमश्चमूषु सीदति ।
पशौ न रेत आदधत् पतिर्वचस्यते धियः ॥ ६ ॥
९४४ स मृज्यते सुकर्मभि-र्देवो देवेभ्यः सुतः ।
विदे यदासु संददि-र्महीरपो वि गाहते ॥ ७ ॥
९४५ सुत इन्दो पवित्र आ नृभिर्यतो वि नीयसे ।
इन्द्राय मत्सरिन्तम-श्चमूष्वा नि षीदसि ॥ ८ ॥

[१००]

(ऋषिः- रेभसूनू कश्यपौ । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- अनुष्टुप् ।)

९४६ अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
वत्सं न पूर्व आयुनि जातं रिहन्ति मातरः ॥ १ ॥
९४७ पुनान इन्दवा भर सोम द्विबर्हसं रयिम् ।
त्वं वसूनि पुष्यसि विश्वानि दाशुषो गृहे ॥ २ ॥

अर्थ - [९४२] (उक्षमाणं) गो-दुग्धसे सींचे जानेवाले तथा (धर्णसिं) सबको धारण करनेवाले सोमको (वारे अव्यये) बालोंवाली छलनीसे (पुनन्ति) छानकर पवित्र करते हैं। तथा (मनीषिणः) बुद्धिमान जन (दूतं न) दूतके समान (पूर्वचित्तये) प्रथम जाननेके लिये (आ शासते) इस सोमकी स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

[९४३] (पुनानः) पवित्र होता हुआ तथा (मदिन्तमः सोमः) अत्यन्त आनन्ददायक सोमरस (पशौ रेतः न) जिस तरह गौ आदिमें वीर्य स्थापित किया जाता है, उसी तरह (चमूषु सीदति) पात्रोंमें स्थापित किया जाता है, (आदधत्) पात्रमें रखा हुआ (धियः पतिः) बुद्धियोंका स्वामी वह सोम (वचस्यते) स्तुत होता है ॥ ६ ॥

[९४४] (यत्) जब सोम (आसु) इन मानवी प्रजाओंमें (संददिः विदे) दाताके रूपमें जाना जाता है, तब वह सोम (महीः अपः वि गाहते) बहुत सारे जलमें प्रविष्ट होता है, तथा तब (सुकर्मभिः) उत्तमकर्म करनेवालोंके द्वारा (देवेभ्यः सुतः देवः) देवोंके लिये निचोडा गया सोमदेव (मृज्यते) शुद्ध किया जाता है ॥ ७ ॥

[९४५] हे (इन्दो) सोमरस ! (सुतः आयतः) निचोडा गया तथा अत्यन्त विस्तृत तू (नृभिः पवित्रे वि नीयसे) ऋत्विजोंके द्वारा छलनीमें ले जाया जाता है, तब (मत्सरिन्तमः) अत्यन्त आनन्ददायक तू (इन्द्राय) इन्द्रके पीनेके लिए (चमूषु आ निषीदसि) पात्रोंमें जाकर बैठ जाता है ॥ ८ ॥

[१००]

[९४६] (न) जिस तरह (मातरः) गोमातायें (पूर्वे आयुनि जातं वत्सं) छोटी उम्रमें उत्पन्न हुए अपने बछडेको (रिहन्ति) चाटती हैं, उसी तरह (अद्रुहः) द्रोह न करनेवाले यज्ञकर्ता (इन्द्रस्य प्रियं) इन्द्रको प्रिय (काम्यं) सबके द्वारा चाहने योग्य सोमको (अभि नवन्ते) प्रणाम करते हैं ॥ १ ॥

[९४७] हे (इन्दो सोम) देदीप्यमान सोम ! तू (पुनानः) पवित्र होता हुआ (द्विबर्हसं रयिं) दोनों लोकोंको पुष्ट करनेवाले धनको हमें (आ भर) भरपूर दे, (त्वं) तू (दाशुषः गृहे) दाताके घरमें (विश्वानि वसूनि पुष्यसि) सभी धनोंको पुष्ट करता है ॥ २ ॥

९४८ त्वं धियं मनोयुजं सृजा वृष्टिं न तन्यतुः ।
त्वं वसूनि पार्थिवा दिव्या च सोम पुष्यसि ॥ ३ ॥
९४९ परि ते जिग्युषो यथा धारा सुतस्य धावति ।
रंहमाणा व्यव्ययं वारं वाजीव सानसिः ॥ ४ ॥
९५० क्रत्वे दक्षाय नः कवे पवस्व सोम धारया ।
इन्द्राय पातवे सुतो मित्राय वरुणाय च ॥ ५ ॥
९५१ पवस्व वाजसातमः पवित्रे धारया सुतः ।
इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तमः ॥ ६ ॥
९५२ त्वां रिहन्ति मातरो हरिं पवित्रे अद्रुहः ।
वत्सं जातं न धेनवः पवमान विधर्मणि ॥ ७ ॥
९५३ पवमान महि श्रव- श्चित्रेभिर्यासि रश्मिभिः ।
शर्धन् तमांसि जिघ्नसे विश्वानि दाशुषो गृहे ॥ ८ ॥

अर्थ— [९४८] हे (सोम) सोम! (तन्यतुः वृष्टिं न) मेघ जिस तरह वृष्टि करता है, उसी तरह (त्वं) तू (मनोयुजं धियं) मनको उत्तम बनानेवाली बुद्धिको (सृज) प्रेरित कर। (त्वं) तू (पार्थिवा दिव्या वसूनि) पृथ्वी और द्युलोक परके धनोंको (पुष्यसि) पुष्ट करता है ॥ ३ ॥

[९४९] हे सोम! (सुतस्य ते) निचोडे गए तेरी (सानसिः रंहमाणा धारा) सेवनीय तथा वेगसे बहनेवाली धारा (अव्ययं वारं) भेडके बालोंसे बनी हुई छलनीकी तरफ (जिग्युषः वाजी इव) वीरके घोडेके समान (धावति) दौडती है ॥ ४ ॥

[९५०] हे (कवे सोम) ज्ञानी सोम! (इन्द्राय वरुणाय मित्राय च पातवे सुतः) इन्द्र, वरुण और मित्रके पीनेके लिये निचोडा गया तू (नः क्रत्वे दक्षाय) हमें ज्ञानी तथा बलवान् बनानेके लिये (धारया पवस्व) धार बांधकर पवित्र हो ॥ ५ ॥

[९५१] हे (सोम) सोम! (वाजसातमः मधुमत्तमः सुतः) अत्यन्त श्रेष्ठ बलवाला, अत्यन्त मधुर और निचोडा गया तू (इन्द्राय विष्णवे देवेभ्यः) इन्द्र, विष्णु और अन्य देवोंको पीनेके लिये (पवित्रे धारया पवस्व) छलनीमें धार बांधकर पवित्र हो ॥ ६ ॥

[९५२] हे (पवमान) पवमान सोम! (पवित्रे) छलनीमें स्थित (त्वां हरिं) तुझ हरे वर्णके सोमरसको (विधर्मणि) यज्ञमें (अद्रुहः मातरः) द्रोह न करनेवाले तथा माताके समान प्रेम करनेवाले जल (जातं वत्सं धेनवः न) उत्पन्न हुए बछडेको गायोंके समान (रिहन्ति) चाटते हैं ॥ ७ ॥

[९५३] हे (पवमान) पवित्र सोम! तू (चित्रेभिः रश्मिभिः यासि) अपनी सुन्दर किरणोंके साथ सर्वत्र जाता है, और (महि श्रवः) महान यशको प्राप्त करता है, तू (दाशुषः गृहे) दाताके घरमें जाकर (शर्धन्) अपना पराक्रम दीखाते हुए तू (विश्वानि तमांसि जिघ्नसे) संपूर्ण अंधकारको नष्ट करता है ॥ ८ ॥

९५४ त्वं द्यां च॑ महिव्रत पृ॒थि॒वीं चाति॑ जभ्रिषे ।
प्रति॑ द्रा॒पिम॑मुञ्चथा॒: पव॑मान महि॒त्व॒ना ॥ ९ ॥

[१०१]

(ऋषिः- अन्धीगुः श्यावाश्विः, ४-६ ययातिर्नाहुषः, ७-९ नहुषो मानवः, १०-१२ मनुः सांवरणः, १३-१६ वैश्वामित्रो वाच्यो वा प्रजापतिः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- अनुष्टुप्, २-३ गायत्री ।)

९५५ पु॒रोजि॑ती वो॒ अन्ध॑सः सु॒ताय॑ मादयि॒त्नवे॑ ।
अप॒ श्वानं॑ श्नथिष्टन॒ सखा॑यो दीर्घजि॒ह्व्य॑म् ॥ १ ॥

९५६ यो धार॑या पाव॒कया॑ परिप्र॒स्यन्द॑ते सु॒तः । इन्दु॒रश्वो॒ न कृत्व्य॑: ॥ २ ॥

९५७ तं दु॒रोष॑म॒भी नर॒: सोमं॑ वि॒श्वाच्या॑ धि॒या । य॒ज्ञं हि॑न्व॒न्त्यद्रि॑भिः ॥ ३ ॥

९५८ सु॒तासो॒ मधु॑मत्तमा॒: सोमा॒ इन्द्रा॑य म॒न्दिन॑: ।
प॒वित्र॑वन्तो अक्षरन् दे॒वान् ग॑च्छन्तु वो॒ मदा॑: ॥ ४ ॥

९५९ इन्दु॒रिन्द्रा॑य पवत॒ इति॑ दे॒वासो॑ अब्रुवन् ।
वा॒चस्पति॑र्मखस्यते॒ विश्व॒स्येशा॑न॒ ओज॑सा ॥ ५ ॥

अर्थ— [९५४] हे (महिव्रत) महान कर्म करनेवाले सोम ! (त्वं) तू (द्यां च पृथिवीं च) द्युलोक और पृथ्वीलोकको (अति जभ्रिषे) उत्तम रीतिसे धारण करता है। हे (पवमान) पवमान सोम ! तू (महित्वना) अपने महत्त्वसे (द्रापिं प्रति अमुंचथाः) कवचको धारण करता है ॥ ९ ॥

[१०१]

[९५५] (पुरोजिती अन्धसः) सामने रखे हुए सोमरूपी अन्नके (सुताय मादयित्नवे) निचोडे गए आनन्दकारी रसको पीनेके लिये (दीर्घजिह्व्यं श्वानं) लम्बी जीभ निकाले हुए कुत्तेको; हे (सखायः) मित्रो ! (वः) तुम (अप श्नथिष्टन) दूर भगाओ ॥ १ ॥

[९५६] (सुतः कृत्व्यः) निचोडा गया तथा पराक्रमसे युक्त (यः इन्दुः) जो सोम (पावकया धारया) अपनी पवित्र धारासे (अश्वः न) अश्वके समान (परि प्र स्यन्दते) बह रहा है ॥ २ ॥

[९५७] (नरः) लोग (तं दुरोषं सोमं) उस अहिंस्य सोमको (यज्ञं) यज्ञमें (विश्वाच्या धिया) सम्पूर्ण उत्तम बुद्धिसे (अद्रिभिः हिन्वन्ति) पत्थरोंसे कूटते हैं ॥ ३ ॥

[९५८] (सुतासः मधुमत्तमाः) निचोडे गए, अत्यन्त मधुर (मन्दिनः) आनन्ददायक तथा (पवित्रवन्तः) पवित्र (सोमाः) सोमरस (इन्द्राय अक्षरन्) इन्द्रके लिये बहते हैं, हे सोमरसो ! (वः मदाः) तुम्हारे आनन्द (देवान् गच्छन्तु) देवोंके पास जाएं ॥ ८ ॥

[९५९] (इन्दुः) सोम (इन्द्राय पवते) इन्द्रके लिये बह रहा है, (इति) इस प्रकार (देवासः अब्रुवन्) देवोंने कहा तब (ओजसा विश्वस्य ईशानः) अपने सामर्थ्यसे सबपर शासन करनेवाला (वाचस्पतिः) वाचस्पति देव (मखस्यते) यज्ञकी इच्छा करता है ॥ ५ ॥

९६० सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः ।
सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥ ६ ॥
९६१ अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥ ७ ॥
९६२ समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः ।
सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्दवः ॥ ८ ॥
९६३ य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम् ।
यः पञ्च चर्षणीरभि रयिं येन वनामहै ॥ ९ ॥
९६४ सोमाः पवन्त इन्दवो ऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।
मित्राः सुवाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥ १० ॥
९६५ सुष्वाणासो व्यद्रिभिश्चिताना गोरधि त्वचि ।
इषमस्मभ्यमभितः समस्वरन् वसुविदः ॥ ११ ॥

अर्थ — [९६०] (समुद्रः) जलमय (वाचं ईङ्खयः) स्तुतिको प्रेरित करनेवाला (रयीणां पतिः) धनैश्वर्योंका स्वामी (दिवे दिवे इन्द्रस्य सखा) प्रतिदिन इन्द्रका मित्र तथा (सहस्रधारः सोमः पवते) हजारों धाराओंवाला सोमरस छाना जाता ॥ ६ ॥

[९६१] (पूषा) सबका पालन पोषण करनेवाला, (रयिः) धनवान् (भगः) ऐश्वर्यशाली (अयं सोमः) यह सोमरस (पुनानः अर्षति) सबको पवित्र करता हुआ छनता है, (विश्वस्य भूमनः पतिः) संपूर्ण प्राणियोंका पालक यह सोम (उभे रोदसी वि अख्यत्) दोनों द्युलोक और पृथ्वी लोकको प्रकाशित करता है ॥ ७ ॥

[९६२] (प्रियाः घृष्वयः गावः) प्रिय और तेजयुक्त गायें (मदाय अनूषत) इस आनन्दकारी सोमरसको पीनेके लिये शब्द करती हैं। (पवमानासः इन्दवः सोमासः) पवित्र होनेवाले तेजस्वी सोमरस (पथः कृण्वते) अपना मार्ग बनाते हैं ॥ ८ ॥

[९६३] हे (पवमान) पवित्र सोम ! तेरा (यः) जो रस (पंचचर्षणीः अभि) पांच जनोंमें व्याप्त है, (येन रयिं वनामहै) जिससे हम ऐश्वर्य प्राप्त कर सकें, तथा (यः ओजिष्ठः) जो अत्यन्त ओजयुक्त है, (तं श्रवाय्यं) उस यशसे युक्त रसको हमें (आ भर) भरपूर दे ॥ ९ ॥

[९६४] (मित्राः) मित्रके समान हित करनेवाले (सुवानाः) निचोडे जाते हुए (अरेपसः) निष्पाप (स्वाध्यः) उत्तम ज्ञानवाले (स्वर्विदः) ज्योति प्राप्त करानेवाले (गातु वित्तमाः) उत्तम रास्तोंको अच्छी तरह जाननेवाले तथा (इन्दवः सोमाः) तेजस्वी सोम (अस्मभ्यं पवन्ते) हमारे लिये बहते हैं ॥ १० ॥

[९६५] (गोः त्वचि अधि चितानाः) गायके चमडेके ऊपर रखकर (अद्रिभिः सुष्वाणासः) पत्थरोंसे कूटकर निचोडे गए (वसुविदः) धनको प्राप्त करानेवाले ये सोम (अस्मभ्यं इषं अभितः सं अस्वरन्) हमें अन्नको चारों ओरसे प्रदान करें ॥ ११ ॥

९६६ एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः ।
सूर्यासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते ॥ १२ ॥
९६७ प्र सुन्वानस्यान्धसो मर्तो न वृत तद्वचः ।
अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥ १३ ॥
९६८ आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः ।
सरज्जारो न योषणां वरो न योनिमासदम् ॥ १४ ॥
९६९ स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी ।
हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम् ॥ १५ ॥
९७० अव्यो वारेभिः पवते सोमो गव्ये अधि त्वचि ।
कनिक्रदद्वृषा हरि-रिन्द्रस्याभ्येति निष्कृतम् ॥ १६ ॥

[१०२]

(ऋषिः- त्रित आप्त्यः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- उष्णिक् ।)

९७१ क्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् । विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥ १ ॥

अर्थ— [९६६] (पूताः) पवित्र हुए (विपश्चितः) ज्ञानी (दध्याशिरः) दहीसे मिश्रित (घृते जिगत्नवः) जलमें जानेकी इच्छा करनेवाले तथा (ध्रुवा) स्थिर (एते सोमासः) ये सोमरस (सूर्यासः न दर्शतासः) सूर्यके समान दर्शनीय हैं ॥ १२ ॥

[९६७] (सुन्वानस्य अन्धसः) निचोडे जाते हुए इस अन्नरूप सोमको (तत् वचः) उस प्रशंसाको (मर्तः न प्र वृत) साधारण मनुष्य न सुन सके। हे मनुष्यो ! (भृगवः मखं न) भृगुओंने जिसतरह मखको दूर भगाया था, उसी तरह तुम (अराधसं श्वानं अप हत) ऐश्वर्यसे रहित कुत्तेको दूर भगाओ ॥ १३ ॥

[९६८] (ओण्योः भुजे पुत्रः न) माता पिताकी बाहोंमें जिसतरह पुत्र छिप जाता है, उसी तरह (जामिः) सबका भाईरूप यह सोमरस (अत्के आ अव्यत) अपने कवचमें छिप जाता है, तथा (जारः योषणां न) जिसतरह कोई व्यभिचारी व्यभिचारिणी स्त्रीके पास जाता है, अथवा (वरः न) जैसे कोई वर कन्याके पास जाता है, उसी तरह यह सोमरस (योनिं आसदं सरत्) पात्रमें बैठनेके लिए जाता है ॥ १४ ॥

[९६९] (दक्षसाधनः सः) बलको सिद्ध करनेवाला वह सोम (वीरः) वीर है, (यः रोदसी वि तस्तम्भ) जिसने द्युलोक और पृथ्वीलोकको और द्युलोकको स्थिर किया था। (हरिः) हरे रंगका यह सोमरस (वेधा न) ज्ञानीके समान (योनिं आसदं) अपने स्थानपर बैठनेके लिए (पवित्रे अव्यत) छलनीमें जाता है ॥ १५ ॥

[९७०] यह (सोमः) सोम (अव्यः वारेभिः) भेडके बालोंकी छलनीसे (पवते) छाना जाता है। (गव्ये त्वचि अधि) गायके चमडेके ऊपर रखा हुआ (वृषा हरिः) बलवान् सोम (कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ (इन्द्रस्य निष्कृतं अभि एति) इन्द्रके स्थानकी तरफ जाता है ॥ १६ ॥

[१०२]

[९७१] (क्राणा) कर्ता (महीनां शिशुः) पृथ्वीका पुत्र सोम (ऋतस्य दीधितिं हिन्वन्) यज्ञकी ज्वालाको प्रेरित करते हुए (द्विता) पृथ्वी और द्यु इन दोनों लोकोंमें रहनेवाले (विश्वा परि भुवत) सभी धनों पर अधिकार करता है ॥ १ ॥

९७२ उप त्रितस्य पाष्योरभक्त यद्गुहा पदम् । यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम् ॥ २ ॥
९७३ त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वेरया रयिम् । मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः ॥ ३ ॥
९७४ जज्ञानं सप्त मातरो वेधामशासत श्रिये । अयं ध्रुवो रयीणां चिकेत यत् ॥ ४ ॥
९७५ अस्य व्रते सजोषसो विश्वे देवासो अद्रुहः । स्पार्हा भवन्ति रन्तयो जुषन्त यत् ॥ ५ ॥
९७६ यमी गर्भमृतावृधो दृशे चारुमजीजनन् । कविं मंहिष्ठमध्वरे पुरुस्पृहम् ॥ ६ ॥
९७७ समीचीने अभि त्मना यह्वी ऋतस्य मातरा । तन्वाना यज्ञमानुषग्यदञ्जते ॥ ७ ॥
९७८ क्रत्वा शुक्रेभिरक्षभिर्ऋणोरप व्रजं दिवः । हिन्वन्नृतस्य दीधितिं प्राध्वरे ॥ ८ ॥

[१०३]

(ऋषिः- द्वित आप्त्यः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- उष्णिक् ।)

९७९ प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उद्यतम् । भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते ॥ १ ॥

अर्थ— [९७२] (यत्) जब सोम (त्रितस्य गुहा) त्रितके यज्ञमें (पाष्योः पदं) पत्थरोंके स्थान पर (उप अभक्त) जाकर बैठता है, (अध) इसके बाद (सप्त धामभिः) सात छन्दोंके द्वारा (यज्ञस्य प्रियं) यज्ञके प्रिय सोमकी स्तुति होती है ॥ २ ॥

[९७३] हे सोम ! तू (त्रितस्य) त्रित ऋषिके (त्रीणि धारया) तीनों सवनोंमें धारासे बह, तथा (पृष्ठेषु) उन यज्ञोंमें (रयिं आ ईरय) ऐश्वर्यको प्रेरित कर । (सुक्रतुः अस्य योजना वि मिमीते) उत्तम यज्ञ करनेवाला इस सोमकी सारी योजनाओं अच्छी तरह नाप लेता है ॥ ३ ॥

[९७४] (यत्) क्योंकि (ध्रुवः अयं) स्थिर यह सोम (रयीणां चिकेत) ऐश्वर्योंको जानता है, इसलिए (सप्त मातरः) सात छन्दरूपी मातायें (जज्ञानं वेधां) उत्पन्न हुए ज्ञानी इस सोमको (श्रिये अशासत) ऐश्वर्य प्रदान करनेके लिए प्रेरित करती हैं ॥ ४ ॥

[९७५] (यत्) जब (स्पार्हाः रन्तयः) स्पृहणीय तथा आनन्ददायी देव (जुषन्तः) सोमरसका सेवन करते हैं, तब (अस्य व्रते) इस सोमके व्रतमें (अद्रुहः विश्वे देवासः) द्रोह न करनेवाले सभी देव (सजोषसः भवन्ति) संगठित होते हैं ॥ ५ ॥

[९७६] (ऋतावृधः) यज्ञको बढानेवाले जलोंने (गर्भं) गर्भ स्थानीय जिस सोमको (अध्वरे) यज्ञमें (ईं चारुं कविं मंहिष्ठं पुरुस्पृहं) इस सुन्दर, ज्ञानी अत्यन्त पूजनीय और बहुतों द्वारा चाहे जाने योग्य (अजीजनन्) उत्पन्न किया ।

[९७७] (यत्) जब (यज्ञं तन्वानाः) यज्ञका विस्तार करनेवाले लोग सोमको (आनुषक् अंजते) एक साथ पानी मिलाते हैं, तब वह सोम (त्मना) स्वयं ही (समीचीने) परस्पर संयुक्त, (यह्वी) महान् तथा (ऋतस्य मातरा) यज्ञका निर्माण करनेवाली द्यावापृथिवीकी तरफ जाता है ॥ ७ ॥

[९७८] हे सोम ! तू (अध्वरे) हिंसा रहित यज्ञमें (ऋतस्य दीधितिं प्र हिन्वन्) यज्ञके तेजको अधिक प्रेरित करते हुए (क्रत्वा शुक्रेभिः अक्षभिः) ज्ञान तथा प्रदीप्त तेजोंसे (व्रजं) अन्धकारके समूहको (दिवः अप ऋणोः) द्युलोकसे नष्ट कर ॥ ८ ॥

[१०३]

[९७९] हे स्तोता ! (भराः भृतिं न) जिस तरह सेवक अपना वेतन लेते हैं, उसी तरह तू (पुनानाय वेधसे) पवित्र होनेवाले, ज्ञानी, (मतिभिः जुजोषते) स्तुतियोंसे प्रसन्न होनेवाले (सोमाय) सोमके लिए (उद्यतं वचः प्र भर) उन्नतिदायक वाणीको प्रदान करो ॥ १ ॥

९८० परि वाराण्यव्यया गोभिरञ्जानो अर्षति । त्री षधस्था पुनानः कृणुते हरिः ॥ २ ॥
९८१ परि कोशं मधुश्चुत-मव्यये वारे अर्षति । अभि वाणीर्ऋषीणां सप्त नूषत ॥ ३ ॥
९८२ परि णेता मतीनां विश्वदेवो अदाभ्यः । सोमः पुनानश्चम्वोर्विशद्धरिः ॥ ४ ॥
९८३ परि दैवीरनु स्वधा इन्द्रेण याहि सरथम् । पुनानो वाघद्वाघद्भिरमर्त्यः ॥ ५ ॥
९८४ परि सप्तिर्न वाजयु-र्देवो देवेभ्यः सुतः । व्यानशिः पवमानो वि धावति ॥ ६ ॥

[१०४]

(ऋषिः–पर्वतनारदौ काण्वौ, काश्यप्यौ शिखण्डिन्यावप्सरसौ वा ।
देवताः– पवमानः सोमः । छन्दः– उष्णिक्)

९८५ सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत । शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥ १ ॥
९८६ समीं वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम् । देवाव्यं मदमभि द्विशवसम् ॥ २ ॥

अर्थ— [९८०] (गोभिः अंजानः) गोदुग्धसे मिश्रित होता हुआ सोमरस (अव्यया वाराणि) भेडके बालोंकी बनी छलनीकी ओर (परि अर्षति) जाता है । (पुनानः हरिः) पवित्र होता हुआ हरितवर्णका सोमरस (त्री सधस्था) तीन स्थानों पर बैठता है ॥ २ ॥

[९८१] (मधुश्चुतं) मीठा रस (अव्यये वारे) भेडके बालोंकी बनी छलनीसे (कोशं) पात्रमें (परि अर्षति) जाकर गिरता है । (सप्त ऋषीणां वाणीः अभि नूषत) सात ऋषियोंकी वाणी सोमरसकी स्तुति करती है ॥ ३ ॥

[९८२] (मतीनां नेता) बुद्धियोंको उत्तमताकी तरफ प्रेरित करनेवाला (विश्वदेवः) सभी देवोंको प्रिय (अदाभ्यः) किसीसेभी हिंसित न होनेवाला तथा (पुनानः) पवित्र होता हुआ (हरिः सोमः) हरे वर्णका सोमरस (चम्वोः विशत्) कूटनेके पत्थरों पर जाकर बैठता है ॥ ४ ॥

[९८३] हे सोम ! (पुनानः) पवित्र होता हुआ (वाघद्भिः वाघत्) स्तोताओंसे स्तुत होता हुआ, (अमर्त्यः) मरण धर्मसे रहित तू (इन्द्रेण सरथं) इन्द्रके साथ एक ही रथ पर बैठकर (दैवीः स्वधाः अनु परि याहि) दिव्य बलोंके अनुकूल होकर चल ॥ ५ ॥

[९८४] (वाजयुः) बलकी इच्छा करनेवाला (देवः) तेजस्वी (देवेभ्यः सुतः) देवोंके लिए निचोडा हुआ (वि आनशिः) सर्वत्र व्याप्त (पवमानः) पवमान सोम (सप्तिः न) घोडेके समान (परि वि धावति) चारों ओर दौडता है ॥ ६ ॥

[१०४]

[९८५] (सखायः आ निषीदत) हे मित्रो ! आओ, बैठो (पुनानाय प्र गायत) पवित्र करनेवाले सोमके लिए गान करो, तथा (श्रिये) कल्याणके लिए (यज्ञैः) यज्ञोंसे सोमको (शिशुं न) बच्चेके समान (परि भूषत) अलंकृत करो ॥ १ ॥

[९८६] (वत्सं मातृभिः न) बच्चेको जिस तरह माताओंसे संयुक्त करते हैं, उसी तरह हे मनुष्यो ! (गयसाधनं) गृहके साधन (ईं) इस सोमको (सं सृजत) अच्छी रीतिसे तैयार करो । (देवाव्यं मदं द्विशवसं) देवोंके रक्षक, आनन्ददायी तथा शारीरिक और मानसिक इन दो तरहके बलोंको देनेवाले सोमको (अभि) तैय्यार करो ॥ २ ॥

९८७ पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये । यथा मित्राय वरुणाय शंतमः ॥ ३ ॥
९८८ अस्मभ्यं त्वा वसुविद—मभि वाणीरनूषत । गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि ॥ ४ ॥
९८९ स नो मदानां पत इन्दो देवप्सरा असि । सखेव सख्ये गातुवित्तमो भव ॥ ५ ॥
९९० सनेमि कृध्य१स्मदा रक्षसं कं चिदत्रिणम् । अपादेवं द्वयुमंहो युयोधि नः ॥ ६ ॥

[१०५]

(ऋषिः- पर्वतनारदौ काण्वौ । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- उष्णिक् ।)

९९१ तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत । शिशुं न यज्ञैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥ १ ॥
९९२ सं वत्स इव मातृभि—रिन्दुर्हिन्वानो अज्यते । देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ॥ २ ॥
९९३ अयं दक्षाय साधनो ऽयं शर्धाय वीतये । अयं देवेभ्यो मधुमत्तमः सुतः ॥ ३ ॥

अर्थ— [९८७] (शर्धाय वीतये) शक्तिकी प्राप्ति तथा पीनेके लिये (दक्षसाधनं) बलके साधक सोम-रसको (यथा) यथा योग्य (पुनात) पवित्र करो । (यथा) ताकि वह सोमरस (मित्राय वरुणाय शंतमः) मित्र और वरुणके लिये अत्यन्त सुखदायक हो ॥ ३ ॥

[९८८] (वसुविदं) धनको प्राप्त करानेवाले (त्वा) तेरी, हे सोम ! (अस्मभ्यं वाणीः अभि अनूषत) हमारी वाणियां स्तुति करती हैं । हे सोम ! (ते वर्णं) तेरे हरे रंगको हम (गोभिः) गोदुग्धसे (अभि वासयामसि) चारों ओरसे आच्छादित करते हैं ॥ ४ ॥

[९८९] (नः मदानां पते) हमारे आनंदके स्वामी (इन्दो) सोम ! (सः) वह तू (देवप्सरा असि) तेजस्वी रूपवाला है । तू (सखा इव सख्ये) मित्र जिस प्रकार अपने मित्रके लिये मार्गदर्शक होता है, उसी तरह तू (गातु वित्तमः) हमारे लिये उत्तम मार्गदर्शक हो ॥ ५ ॥

[९९०] हे सोम ! (अस्मत् सनेमि कृधि) हमसे पुरानी मित्रता कर, तथा (कं चित्) किसी भी (अत्रिणं) खानेवाले (अदेवं) देवको न माननेवाले नास्तिक (द्वयुं) दो तरहका व्यवहार करनेवाले (रक्षसं अप) राक्षसको दूर कर, तथा (नः अंहः युयोधि) हमसे पापको पृथक् कर ॥ ६ ॥

[१०५]

[९९१] हे (सखायः) मित्रो ! (वः) तुम (मदाय पुनानं) आनन्दके लिए पवित्र होते हुए (तं अभि गायत) उस सोमके लिए गान करो, तथा (शिशुं न) शिशुको जिस तरह अलंकारोंसे सुशोभित करते हैं, उसी तरह (यज्ञैः गूर्तिभिः स्वदयन्त) यज्ञों और स्तुतियोंसे उसे स्वादिष्ट बनाओ ॥ १ ॥

[९९२] (वत्सः मातृभिः इव) बछडे जिस तरह माताओंसे संयुक्त होते हैं, उसी तरह (देवावीः) देवोंका रक्षक (मदः) आनंददायी (मतिभिः परिष्कृतः) स्तुतियोंसे संस्कृत हुआ (हिन्वानः इन्दुः) प्रेरणा देनेवाला सोमरस (सं अज्यते) जलसे अच्छी तरह मिलाया जाता है ॥ २ ॥

[९९३] (अयं दक्षाय साधनः) यह सोम बलको सिद्ध करनेवाला है, (अयं शर्धाय वीतये) यह बल-प्राप्ति और पीनेके लिये तैयार किया जाता है, (मधुमत्तमः अयं) अत्यन्त मधुर यह सोमरस (देवेभ्यः सुतः) देवोंके लिये निचोडा गया है ॥ ३ ॥

×

९९४ गोमंन्न इन्दो अश्ववत् सुतः सुदक्ष धन्व । शुचिं ते वर्णमधि गोषु दीधरम् ॥ ४ ॥
९९५ स नों हरीणां पत इन्दों देवप्संरस्तमः । सखेंव सख्ये नर्यो रुचे भंव ॥ ५ ॥
९९६ सनेंमि त्वमस्मदाँ अदेंवं कं चिदत्रिणंम् । साह्वाँ इंन्दो परि बाधो अपं द्वयुम् ॥ ६ ॥

[१०६]

(ऋषिः- १-३, १०-१४ अग्निश्चाक्षुषः, ४-६ चक्षुर्मानवः, ७-९ मनुराप्सवः ।
देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- उष्णिक् ।)

९९७ इन्द्रमच्छं सुता इमे वृषंणं यन्तु हरंयः । श्रुष्टी जातास इन्दंवः स्वर्विदः ॥ १ ॥
९९८ अयं भराय सानसि—रिन्द्राय पवते सुतः । सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥ २ ॥
९९९ अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृंभ्णीत सानसिम् । वज्रं च वृषंणं भरत् समप्सुजित् ॥ ३ ॥
१००० प्र धंन्वा सोम जागृवि—रिन्द्रायेन्दो परिं स्रव । द्युमन्तं शुष्ममा भंरा स्वर्विदम् ॥ ४ ॥

अर्थ— [९९४] हे (सुदक्ष इन्दो) अत्यन्त बलवान् सोमरस ! (सुतः) निचोडा गया तू (नः) हमें (गोमत् अश्ववत्) गायों और घोडोंसे युक्त धन (धन्व) प्राप्त करा। तब मैं (ते शुचिं वर्णं) तेरे तेजस्वी वर्णको (गोषु अधि दीधरं) गोदुग्धमें मिलाता हू ॥ ४ ॥

[९९५] हे (हरीणां पते) हरित वर्णकी ओषधियोंके स्वामिन् (देवप्सरस्तम इन्दो) अत्यन्त तेजस्वी रूपवाले सोम ! (नर्यः सः) मनुष्योंका हित करनेवाला वह तू (सखा इव सख्ये) मित्र जिस प्रकार अपने दूसरे मित्रको तेजस्वी बनाता है, उसी तरह (नः रुचे भव) हमें तेजस्वी बनानेवाला हो ॥ ५ ॥

[९९६] हे (इन्दो) सोमरस ! (त्वं) तू (अस्मत्) हमें (सनेमि आ) प्राचीन धनको प्रदान कर। तथा (साह्वान्) शत्रुओंका पराभव करता हुआ तू (अ-देवं देवको न माननेवाले (अत्रिणं कं चित्) अतिशय खानेवाले किसी भी शत्रुको (परिबाधः) दूरसे ही रोक दे, तथा (द्वयुं अप) दो तरहका व्यवहार करनेवाले शत्रुको भी दूर कर ॥ ६ ॥

[१०६]

[९९७] (जातासः) उत्पन्न हुए (स्वर्विदः) प्राकाश मार्गको जाननेवाले (हरयः) हरे वर्णके (सुताः) तथा निचोडे गए (इमे इन्दवः) ये सोमरस (वृषणं इन्द्रं) बलवान् इन्द्रके पास (श्रुष्टी अच्छ यन्तु) शीघ्र ही सीधे जाएं ॥ १ ॥

[९९८] (भराय सानसि) संग्राममें बुलाये जाने योग्य (सुतः अयं सोमः) निचोडा गया यह सोम (इन्द्राय पवते) इन्द्रके लिए पवित्र किया जाता है। (यथा विदे) जिस तरह वह सोम अन्य देवोंको जानता है, उसी तरह यह (सोमः) सोम (जैत्रस्य चेतति) जयशील इन्द्रको जानता है ॥ २ ॥

[९९९] (इन्द्रः) इन्द्र (अस्य इत् मदेषु) इसी सोमके आनंदमें (सानसिं ग्राभं) ग्रहण करने योग्य धनुषको (गृभ्णीत) पकडता है, (अप्सुजित्) पराक्रमशालियोंको भी जीतनेवाला यह इन्द्र (वृषणं वज्रं च सं भरत्) बलयुक्त वज्रको धारण करता है ॥ ३ ॥

[१०००] हे (सोम) सोम ! (जागृविः) सदा जागृत रहनेवाला तू (प्र धन्व) बह। हे (इन्दो) सोम ! (इन्द्राय परि स्रव) तू इन्द्रके लिये बह। तथा (स्वर्विदं) प्रकाश मार्गको जाननेवाले तथा (द्युमन्तं शुष्मं आ भर) तेजस्वी बलको भरपूर दे ॥ ४ ॥

१००१ इन्द्राय वृषणं मदं पवस्व विश्वदर्शतः । सहस्रयामा पथिकृद्विचक्षणः ॥ ५ ॥
१००२ अस्मभ्यं गातुवित्तमो देवेभ्यो मधुमत्तमः । सहस्रं याहि पथिभिः कनिक्रदत् ॥ ६ ॥
१००३ पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा । आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥ ७ ॥
१००४ तव द्रप्सा उदप्रुत इन्द्रं मदाय वावृधुः । त्वां देवासो अमृताय कं पपुः ॥ ८ ॥
१००५ आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम् । वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः ॥ ९ ॥
१००६ सोमः पुनान ऊर्मिणाऽव्यो वारं वि धावति । अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥ १० ॥
१००७ धीभिर्हिन्वन्ति वाजिनं वने क्रीळन्तमत्यविम् । अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ॥ ११ ॥
१००८ असर्जि कलशाँ अभि मीळ्हे सप्तिर्न वाजयुः । पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत् ॥ १२ ॥

अर्थ – [१००१] हे सोम ! (विश्व दर्शतः) सबको देखनेवाले, (सहस्रयामा) अनेकों मार्गोंके ज्ञाता, (पथि कृत्) मार्गोंका निर्माण करनेवाले (विचक्षणः) बुद्धिमान तू (इन्द्राय) इन्द्रके लिये (वृषणं मदं पवस्व) बलवान् और आनन्दकारी रसको पवित्र कर ॥ ५ ॥

[१००२] (अस्मभ्यं गातुवित्तमः) हमारे लिये उत्तम रीतिसे मार्ग बतानेवाला, तथा (देवेभ्यः मधुमत्तमः) देवोंके लिये अत्यन्त मधुर तू हे सोम ! (कनिक्रदत्) शब्द करते हुए (सहस्रं पथिभिः याहि) हजारों मार्गोंसे जा ॥ ६ ॥

[१००३] हे (इन्दो) सोम ! (देववीतये) देवोंके भक्षणके लिए (ओजसा) तेजसे युक्त होकर (धाराभिः पवस्व) धाराओंसे पवित्र हो। हे (सोम) सोम ! (मधुमान्) मधुर रसवाला तू (नः कलशं आ सदः) हमारे कलशमें आकर बैठ ॥ ७ ॥

[१००४] हे सोम ! (उदप्रुतः तव द्रप्साः) जलकी तरफ जानेवाले तेरे रस (इन्द्रं मदाय) इन्द्रको आनन्द देनेके लिए (वावृधुः) बढते हैं। (कं) सुखरूप (त्वां) तुझे (देवासः अमृताय पपुः) देवगणोंने अमरता प्राप्त करनेके लिए पिया ॥ ८ ॥

[१००५] (वृष्टि द्यावः रीत्यापः स्वर्विदः) द्युलोकसे वृष्टि करके जल प्रवाहोंको पृथ्वीकी तरफ प्रेरित करनेवाले तथा सुखको प्राप्त करनेवाले (सुतासः इन्दवः) निचोडे गए सोमरसो ! (पुनानाः) पवित्र होते हुए तुम (नः रयिं आ धावत) हमें ऐश्वर्य प्रदान करो ॥ ९ ॥

[१००६] (पवमानः) पवित्र करनेवाला (वाचः अग्रे कनिक्रदत्) स्तुतियोंके पहले ही शब्द करनेवाला (सोमः) सोमरस (पुनानः) पवित्र होते समय (ऊर्मिणा) अपनी लहरोंके द्वारा (अव्यः वारं वि धावति) भेडके बालोंकी बनी छलनीकी तरफ दौडता है ॥ १० ॥

[१००७] (वाजिनं) बलशाली (वने क्रीळन्तं) जलमें खेलनेवाले तथा (अति अविं) छलनीसे गिरनेवाले सोमको लोग (धीभिः हिन्वन्ति) स्तुतियोंसे प्रेरित करते हैं। (त्रिपृष्ठं) तीन सवनोंमें रहनेवाले इस सोमका (मतयः) बुद्धियां (अभि सं अस्वरन्) अच्छी तरह वर्णन करती हैं ॥ ११ ॥

[१००८] (वाजयुः) बल प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाला मनुष्य सोमको (कलशान् अभि असर्जि) कलशोंकी तरफ उसी तरह प्रेरित करता है कि जिस तरह (मीळ्हे सप्तिः न) संग्राममें घोडेको प्रेरित करते हैं। (पुनानः) पवित्र होता हुआ सोम (वाचं जनयन्) स्तुतिको उत्पन्न करता हुआ (असिष्यदत्) पात्रोंमें बैठा ॥ १२ ॥

१००९ पर्वते हर्यतो हरि—रति ह्वरांसि रंह्या । अभ्यर्षन् त्स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥ १३ ॥

१०१० अया पवस्व देवयु—र्मधोर्धारा असृक्षत । रेभन् पवित्रं पर्येषि विश्वतः ॥ १४ ॥

[१०७]

ऋषिः- सप्तर्षयः (१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ कश्यपो मारीचः, ३ गोतमो राहूगणः, ४ भौमोऽत्रिः, ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ जमदग्निर्भार्गवः, ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः) देवता- पवमानः सोमः । छन्दः- प्रगाथः= (१, ४, ६, ८, ९, १०, १२, १४, १७, बृहती: २, ५, ७, ११, १३, १५, १८, सतोबृहती,) ३, १६, द्विपदा विराट्; १९-२६ प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।

१०११ परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः ।
दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्व१न्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥ १ ॥

१०१२ नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवा—ऽदब्धः सुरभिंतरः ।
सुते चित् त्वाप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम् ॥ २ ॥

१०१३ परि सुवानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः ॥ ३ ॥

अर्थ— [१००९] (हर्यतः हरिः) अत्यन्त सुन्दर और आकर्षक सोम (रंह्या) अपने वेगसे (स्तोतृभ्यः वीरवद्यशः अभ्यर्षन्) स्तोताओंको वीरतासे युक्त यशको प्रदान करता हुआ (ह्वरांसि अति पवते) दुष्टोंको भी अत्यन्त पवित्र करता है ॥ १३ ॥

[१०१०] (देवयुः) देवत्व प्राप्तिकी इच्छा करनेवाला तू हे सोम ! (अया पवस्व) इस धारासे सबको पवित्र कर । (मधोः धाराः असृक्षत) मधुर सोमकी धारायें बह रही हैं । हे सोम ! तू (रेभन्) शब्द करता हुआ (पवित्रं विश्वतः परि एषि) छलनीके चारों ओर जाता है ॥ १४ ॥

[१०७]

[१०११] (यः सोमः) जो सोम (उत्तमं हविः) उत्तम हवि है, (नर्यः यः) मनुष्योंका हित करनेवाला जो सोमरस (अप्सु अन्तः आ दधन्वान्) जलके अन्दर धारण किया जाता है, जिस (सोमं) सोमको (अद्रिभिः सुषाव) पत्थरोंसे कूटकर निचोडा गया था, उस (सुतं) निचोडे गये सोमरसको (इतः परि षिंचत) यहांसे चारों ओर सींचो ॥ १ ॥

[१०१२] हे सोमरस ! (अदब्धः) किसीसे भी हिंसित न होनेवाला (सुरभिंतरः) अत्यन्त सुगंधित तू (पुनानः) पवित्र होता हुआ तू (नूनं) निश्चयसे (अविभिः परि स्रव) भेडके बालोंकी बनी छलनीसे छनता रह । (सुते) निचोडनेके बाद (अप्सु) जलमें रहनेवाले (उत्तरं त्वा) श्रेष्ठ तेरी (अन्धसा गोभिः श्रीणन्तः) अन्न तथा गोदुग्धसे मिश्रित करते हुए हम (मदामः) स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

[१०१३] (देवमादनः) देवोंको आनन्दित करनेवाला (क्रतुः) कर्मशील (इन्दुः) तेजस्वी (विचक्षणः) बुद्धिमान् (सुवानः) निचुडा हुआ सोमरस (चक्षसे परि स्रवति) सबको देखनेके लिए छाना जाता है ॥ ३ ॥

१०१४ पुनानः सोम धारया ऽपो वसानो अर्षसि ।
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदु-स्युत्सो देव हिरण्ययः ॥ ४ ॥
१०१५ दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रत्नं सधस्थमासदत् ।
आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षति नृभिर्धूतो विचक्षणः ॥ ५ ॥
१०१६ पुनानः सोम जागृवि-रव्यो वारे परि प्रियः ।
त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तमो मध्वा यज्ञं मिमिक्ष नः ॥ ६ ॥
१०१७ सोमो मीढ्वान् पवते गातुवित्तम ऋषिर्विप्रो विचक्षणः ।
त्वं कविरभवो देववीतम आ सूर्यं रोहयो दिवि ॥ ७ ॥
१०१८ सोम उ षुवाणः सोतृभि-रधि ष्णुभिरवीनाम् ।
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥ ८ ॥

अर्थ— [१०१४] हे (सोम) सोम! (पुनानः) पवित्र होता हुआ तू (अपः वसानः) जलसे आच्छादित होकर (धारया अर्षसि) धारासे छलनीमें जाता है। इसके बाद (रत्नधाः) रत्नोंको धारण करनेवाला तू (ऋतस्य योनिं आ सीदसि) यज्ञके स्थानमें आकर बैठता है । हे (देव) तेजस्वी सोम ! (उत्सः) प्रवाह युक्त तू (हिरण्ययः) सोनेके समान वर्णवाला है ॥ ४ ॥

[१०१५] (दिव्यं मधु प्रियं) दिव्य, मधुर और प्रिय (ऊधः दुहानः) रसको दुहता हुआ (प्रत्नं सधस्थं आ सदत्) अपने प्राचीन स्थान पर आकर बैठता है । (नृभिः धूतः) मनुष्योंके द्वारा तैय्यार किया गया (विचक्षणः) बुद्धिमान् तथा (वाजी) बलवान् सोम (आ पृच्छयं धरुणं अर्षति) स्तुतिके योग्य तथा धारक पात्रमें जाता है ॥ ५ ॥

[१०१६] हे (सोम) सोम ! (जागृविः प्रियः) सदा जागृत रहनेवाला तथा सबका प्रिय तू (पुनानः) पवित्र होता हुआ (अव्यः वारे) भेडके बालोंकी बनी छलनीसे (परि) छनता है। (विप्रः त्वं) ज्ञानी तू (अंगिरस्तमः अभवः) अंगोंमें रहनेवाला श्रेष्ठतम रस हुआ है । तू (नः यज्ञं मध्वा मिमिक्ष) हमारे यज्ञको मधुर रससे सींच ॥ ६ ॥

[१०१८] (मीढ्वान्) अत्यन्त हर्षदायक (गातुवित्तमः) सन्मार्गको बतानेवालोंमें सर्व श्रेष्ठ (ऋषिः) ज्ञानी (विप्रः) मेधावी (विचक्षणः) सबको देखनेवाला यह (सोमः) सोमरस (पवते) पवित्र होता है । हे सोम ! (कविः) दूरदर्शी (त्वं) तू (देववीतमः अभवः) देवोंको अत्यन्त प्रिय हुआ है तथा (दिवि सूर्यं आ रोहयः) द्युलोकमें सूर्यको चढाया है ॥ ७ ॥

[१०१८] (सोतृभिः सुवानः सोमः) ऋत्विजोंके द्वारा निचोडा जाता हुआ सोम (स्नुभिः अधि याति) ऊंची छलनियोंसे नीचे जाता है । यह सोम (अश्वया इव) घोडीकी तरह (हरिता धारया मन्द्रया धारया याति) हरी और आनन्ददायक धारासे जाता है ॥ ८ ॥

१०१९ अनूपे गोमान् गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः ।
समुद्रं न संवरणान्यग्मन् मन्दी मदाय तोशते ॥ ९ ॥
१०२० आ सोम सुवानो अद्रिभि- स्तिरो वाराण्यव्यया ।
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दधिषे ॥ १० ॥
१०२१ स मामृजे तिरो अण्वानि मेष्यो मीळ्हे सप्तिर्न वाजयुः ।
अनुमाद्यः पवमानो मनीषिभिः सोमो विप्रेभिर्ऋक्वभिः ॥ ११ ॥
१०२२ प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।
अंशोः पयसा मदिरो न जागृवि- रच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥ १२ ॥
१०२३ आ हर्यतो अर्जुने अत्के अव्यत प्रियः सूनुर्न मर्ज्यः ।
तमीं हिन्वन्त्यपसो यथा रथं नदीष्वा गभस्त्योः ॥ १३ ॥

अर्थ— [१०१९] (गोमान्) प्रवाहित होनेवाला यह सोम (गोभिः) गोदुग्धसे मिश्रित होकर (अनुपे अक्षाः) कलशमें जाता है। (सोमः) यह सोमरस (दुग्धाभिः अक्षाः) दूधसे मिलकर छनता है। (समुद्रं न) जिस तरह नदियां समुद्रकी ओर जाती हैं, उसी तरह (संवरणानि अग्मन्) सेवनीय सोमरस बहते हैं। (मन्दी) आनन्द देनेवाला सोम (मदाय तोशते) आनन्दके लिए कूटा जाता है ॥ ९ ॥

[१०२०] हे (सोम) सोम ! (आद्रिभिः सुवानः) पत्थरोंसे निचोडा जाता हुआ तू (अव्यया वाराणि) भेडके बालोंकी बनी हुई छलनियोंसे (आ तिरः) छाना जाता है। (हरिः) सब रोगोंको हरण करनेवाला यह सोम (चम्वोः विशत्) पात्रोंमें उसी तरह प्रविष्ट होता है कि जिस तरह (जनः पुरि न) मनुष्य नगरमें प्रविष्ट होता है ॥ १० ॥

[१०२१] (अनुमाद्यः) आनन्द देनेवाला (मनीषिभिः विप्रेभिः) बुद्धिशाली तथा ज्ञानी मनुष्योंकी (ऋक्वभिः) स्तुतियोंसे (पवमानः) पवित्र होता हुआ (सोमः) सोम (वाजयुः) अन्न प्राप्तिकी इच्छा करनेवाला होकर (मेष्यः अण्वानि) भेडके बालोंकी बनी सूक्ष्म छलनोसे (तिरः) छाना जाकर उसी तरह (मामृजे) शुद्ध होता है, जिसतरह (मीळ्हे सप्तिः न) संग्राममें घोडा अलंकृत किया जाता है ॥ ११ ॥

[१०२२] हे (सोम) सोम ! (देववीतये) देवगण तुझे पी सके, इसलिए (अर्णसा) जलसे (प्र पिप्ये) उसी तरह तृप्त हो, कि जिसतरह (सिन्धुः न) समुद्र नदियोंके जलसे तृप्त होता है, तथा तू (मदिरः न जागृविः) आनन्ददायक रसके समान उत्साहको देनेवाला है। (अंशोः पयसा) सोमके रससे (मधुश्चुतं कोशं) मधुसे भरे हुए कलशकी ओर (अच्छ) सीधा जाता है ॥ १२ ॥

[१०२३] (हर्यतः प्रियः) स्पृहणीय और प्रिय लगनेवाला (सूनुः न मर्ज्यः) पुत्रके समान शुद्ध किया जानेवाला सोम (अर्जुने अत्के) गौर वर्णके रूपमें (आ अव्यत) आच्छादित करता है। (तं ईं) उस इस सोम रसको (नदीषु) जलमें (गभस्त्योः) दोनों हाथोंकी अंगुलियां (आ हिन्वन्ति) प्रेरित करती हैं (अपसो यथा रथं) जैसे वेगशाली मनुष्य युद्धमें रथको प्रेरित करते हैं ॥ १३ ॥

१०२४ अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।
समुद्रस्याधि विष्टपि मनीषिणो मत्सरासः स्वर्विदः ॥ १४ ॥

१०२५ तरत् समुद्रं पवमान ऊर्मिणा राजा देव ऋतं बृहत् ।
अर्षन्मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र हिन्वान ऋतं बृहत् ॥ १५ ॥

१०२६ नृभिर्येमानो हर्यतो विचक्षणो राजा देवः समुद्रियः ॥ १६ ॥

१०२७ इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः ।
सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमी मृजन्त्यायवः ॥ १७ ॥

१०२८ पुनानश्चमू जनयन् मतिं कविः सोमो देवेषु रण्यति ।
अपो वसानः परि गोभिरुत्तरः सीदन् वनेष्वव्यत ॥ १८ ॥

१०२९ तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे ।
पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधींरति ताँ इहि ॥ १९ ॥

अर्थ— [१०२४] (मनीषिणः आयवः) बुद्धिमान् ऋत्विज (मत्सरासः स्वर्विदः सोमरसः) आनन्द बढानेवाले सुखमय सोमरसोंको (समुद्रस्य अधि विष्टपे) जलपात्रके ऊपर रखी हुई छलनीमेंसे (मद्यं मदं अभि पवन्ते) आनन्द और उत्साह बढानेके लिये छानते हैं ॥ १४ ॥

[१०२५] (पवमानः देवः) शुद्ध किया जानेवाला (राजा) तेजस्वी सोम (बृहत् ऋतं समुद्रं) महान् जलसे युक्त कलशमें (ऊर्मिणा तरत्) लहरोंसे युक्त होकर बहता है, (हिन्वानः ऋतं बृहत्) प्रेरणा देनेवाला यह सत्य सोमरस (मित्रस्य वरुणस्य) मित्र और वरुण द्वारा (धर्मणा प्र अर्षन्) धारण किए जानेके लिए छाना जाता है, कलशमें गिरता है ॥ १५ ॥

[१०२६] (नृभिः येमानः) ऋत्विजोंके द्वारा तैयार होनेवाला (हर्यतः विचक्षणः) वर्णनीय, विशेष ज्ञान बढानेवाला (देवः राजा) दिव्य सोम राजा (समुद्रियः) जलोंमें इन्द्रके लिये छाना जाता है ॥ १६ ॥

[१०२७] (मदः सुतः सोमः) आनन्ददायक निचोडा हुआ सोम (मरुत्वते इन्द्राय पवते) मरुतोंके साथ रहनेवाले इन्द्रके लिये शुद्ध होता है, बादमें वह (सहस्र-धारः) अनेक धाराओंसे (अव्यं अत्यर्षति) बकरीके बालोंकी छलनीसे छनता है, (तं) उसे (ईं आयवः मृजन्ति) ऋत्विज करते हैं ॥ १७ ॥

[१०२८] (अपः वसानः) जलपात्रके ऊपरकी छलनीमेंसे शुद्ध किया जानेवाला (चमू पुनानः मतिं जनयन्) स्तुतिका प्रेरक ज्ञानको प्रकट करनेवाला (कविः) क्रान्तप्रज्ञ (सोमः) सोम (देवेषु रण्यति) इन्द्रादि देवोंके पास जाता है । (अपः वसानः) जलमें मिलकर और (वनेषु सीदन्) काष्ठ पात्रोंमें बैठकर (उत्-तरः) उत्कृष्टतर होकर (गोभिः परि अव्यत) दुग्ध आदिमें मिलाया जाता है ॥ १८ ॥

[१०२९] हे (इन्दो सोम) सोमरस ! (तव) तेरी (सख्ये) मित्रतामें (दिवे दिवे अहं) प्रतिदिन मैं (रराण) आनन्दित होऊं, (बभ्रो) हे सोम ! (पुरूणि मां न्यवचरन्ति) बहुतसे दुष्ट मनुष्य मुझे कष्ट देते हैं, (तान् परिधीन् अतीहि) उन दुष्टोंको नष्ट कर ॥ १९ ॥

१०३० उताहं नक्तमुत सोम ते दिवा सख्याय बभ्र ऊधनि ।
घृणा तपन्तमति सूर्यं परः शकुना इव पप्तिम ॥ २० ॥
१०३१ मृज्यमानः सुहस्त्य समुद्रे वाचमिन्वसि ।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥ २१ ॥
१०३२ मृजानो वारे पवमानो अव्यये वृषाव चक्रदो वने ।
देवानां सोम पवमान निष्कृतं गोभिरञ्जानो अर्षसि ॥ २२ ॥
१०३३ पवस्व वाजसातयेऽभि विश्वानि काव्या ।
त्वं समुद्रं प्रथमो वि धारयो देवेभ्यः सोम मत्सरः ॥ २३ ॥
१०३४ स तू पवस्व परि पार्थिवं रजो दिव्या च सोम धर्मभिः ।
त्वां विप्रासो मतिभिर्विचक्षण शुभ्रं हिन्वन्ति धीतिभिः ॥ २४ ॥
१०३५ पवमाना असृक्षत पवित्रमति धारया ।
मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रिया हया मेधामभि प्रयांसि च ॥ २५ ॥

अर्थ— [१०३०] हे (बभ्रो) भूरे रंगके सोम ! (उत नक्तं उत दिवा) रात अथवा दिन (तव ऊधानि अहं) तेरे पास मैं रहूं (ते घृणा) अपने तेजसे (तपन्तं) चमकनेवाले तुझे तथा (परं सूर्यं) दूर चमकनेवाले सूर्यको (शकुनाः इव अति पप्तिम) पक्षीके समान हम देखते हैं ॥ २० ॥

[१०३१] हे (सु- हस्त्या) उत्तम हाथोंकी अंगुलिसे निकाले गये सोम ! (मृज्यमानः) पवित्र करनेवाला तू (समुद्रे वाचं इन्वसि) नीचे पानीके वर्तनमें पडता हुआ शब्द करता है, हे (पवमान) शुद्ध होनेवाले सोम ! तू (पिशंगं) पीले रंगके (बहुलं पुरुस्पृहं रयिं) बहुत चाहने योग्य धन (अभ्यर्षसि) देता है ॥ २१ ॥

१ समुद्रः— पानीसे भरे हुए बर्तन

२ पिशंगं रयिं— पीले रंगका सोना, सोनेके सिक्के ।

[१०३२] (वृषा मृजानः) बल बढानेवाला, शुद्ध होनेवाला (अव्यये वारे पवमानः) भेडके बालोंकी छलनीसे छननेवाला (वने अव चक्रदः) पानीमें शब्द करता हुआ गिरता है । हे (पवमान) शुद्ध होनेवाले सोम ! तू (देवानां) देवताओंके लिये (गोभिः अंजानः) गायके दूधके साथ मिलाया जाता है और (निष्कृतं अर्षसि) शुद्ध किये हुए स्थानपर तू जाता है ॥ २२ ॥

[१०३३] हे (सोम) सोम ! (विश्वानि काव्या) सब स्तोत्रोंसे पवित्र ज्ञान युक्त और (अभि) मुख्य रूपसे (वाजसातये) अन्न प्राप्त करनेवाला तू (पवस्व) शुद्ध हो । हे सोम ! (देवेभ्यः मत्सरः) देवताओंको आनन्द देनेवाला तू (समुद्रं) पानीके बीचमें मिलकर (वि धारयः) विशेष गुणधर्मोंसे युक्त होकर (प्रथमे) श्रेष्ठ यज्ञमें पवित्र हो ॥ २१ ॥

[१०३४] हे (सोम) सोम ! तू (पार्थिवं रजः दिव्या धर्मभिः) पृथिवी लोक और दिव्य लोकको धारक सामर्थ्योंके साथ (परि पवस्व) पवित्र कर । हे (विचक्षण) कुशल समर्थ ! (विप्रासः) बुद्धिमान् लोग (मतिभिः धीतिभिः) स्तुतियों और अंगुलियोंके द्वारा (शुभ्रं त्वां) श्वेतवर्ण तुझे (हिन्वन्ति) निचोडते हैं ॥ २४ ॥

[१०३५] (मरुत्वन्तः) मरुतोंसे युक्त (मत्सराः) आनन्द देनेवाले (इन्द्रियाः) इन्द्रको चाहनेवाले, (मेधां प्रयांसि) स्तुति और अन्नको (अभि) सामने रखनेवाले (हयाः पवमानाः) यज्ञमें जानेवाले और शुद्ध होनेवाले सोमरस (धारया पवित्रं असृक्षत) धाराके रूपमें छाननीमेंसे नीचे गिरने लगते हैं ॥ २५ ॥

१०३६ अपो वसानः परि कोशमर्षतीन्दुर्हियानः सोतृभिः ।
जनयञ्ज्योतिर्मन्दना अवीवशद् गाः कृण्वानो न निर्णिजम् ॥ २६ ॥

[१०८]

(ऋषिः- १-२ गौरिवीतिः शाक्त्यः; ३, १४-१६ शक्तिर्वासिष्ठः; ४-५ ऊरुराङ्गिरसः, ६-७ ऋजिश्वा भारद्वाजः, ८-९ ऊर्ध्वसद्मा आङ्गिरसः, १०-११ कृतयशा आङ्गिरसः, १२-१३ ऋणंचयो राजर्षिः। देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः काकुभः प्रगाथः = (विषमा ककुप्, समा सतोबृहती), १३ यवमध्या गायत्री ।)

१०३७ पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः । महि द्युक्षतमो मदः ॥ १ ॥
१०३८ यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायते ऽस्य पीता स्वर्विदः ।
स सुप्रकेतो अभ्यक्रमीदिषो ऽच्छा वाजं नैतशः ॥ २ ॥
१०३९ त्वं ह्य१ङ्ग दैव्या पवमान जनिमानि द्युमत्तमः । अमृतत्वाय घोषयः ॥ ३ ॥
१०४० येना नवग्वो दध्यङ्ङपोर्णुते येन विप्रास आपिरे ।
देवानां सुम्ने अमृतस्य चारुणो येन श्रवांस्यानशुः ॥ ४ ॥

अर्थ— [१०३६] (सोतृभिः हियानः) ऋत्विजोंसे निचोडता हुआ और (अपः वसानः) जलमें मिलाया हुआ (इन्दुः) सोमरस (कोशम् परि अर्षति) कलशमें जाता है। (ज्योतिः जनयन्) दीप्तिमय प्रकाशको निर्माण कर और (मन्दनाः गाः कृण्वानः) दूध आदिको अपना वस्त्र बनाकर (निः निजम् कृण्वानः) अभी स्तुतिकी इच्छा करता है ॥ २६ ॥

[१०८]

[१०३७] हे सोम ! (मधुमत्तमः) बहुत मीठा (क्रतु वित्तमः) यज्ञके सम्बन्धमें सब कुछ जाननेवाला (महि द्युक्षतमः) महान् तेजस्वी और (मदः) हर्ष बढानेवाला तू (इन्द्राय मदः पवस्व) इन्द्रको आनन्द देनेके लिये पवित्र हो ॥ १ ॥

[१०३८] हे सोम ! (वृषभः) बलवान इन्द्र (यस्य ते पीत्वा) जिस तुझे पीकर (वृषायते) अधिक बलवान् होता है, (स्वः- विदः अस्य पीत्वा) आत्मज्ञानी भी इसे पीकर आनन्दित होता है। (सु-प्र-केतः सः) उत्तम ज्ञानी वह इन्द्र (इषः) शत्रुके अन्नोंको (एतशः वाजं अभि न) जिस प्रकार घोडा संग्राममें जाकर विजय प्राप्त करता है, उसी प्रकार (अभ्यक्रमीत्) अपने अधिकारमें करता है ॥ २ ॥

[१९३९] हे (पवमान) शुद्ध होनेवाले सोम ! (द्युमत्तमः) अत्यन्त तेजस्वी (त्वं हि) तू (दैव्यं जनिमानि) दिव्य जन्मोंको जानता है, और हे (अंग) प्रिय सोम ! तू (अमृतत्वाय घोषयन्) अमरताकी घोषणा करता है ॥ ३ ॥

[१०४०] (नव-ग्वा दध्यङ्) नौ गायोंका पोषण करनेवाला दध्यङ् ऋषि (येन अपोर्णुते) जिस सोमके द्वारा यज्ञका द्वार खोलता है। (विप्रासः येन आपिरे) यज्ञ करनेवाले विप्रोंने जिस सोमकी सहायतासे गायें प्राप्त कीं, (देवानां सुम्ने) देवोंके यज्ञसे सुख प्राप्त होनेपर (चारुणः अमृतस्य श्रवांसि) श्रेष्ठ अन्नको सहायतासे मिलनेवाले अन्नको (येन आनशुः) जिस सोमकी सहायतासे यजमान प्राप्त करते हैं, वह तू सोम देवोंको प्राप्त हो ॥ ४ ॥

×

१०४१ एष स्य धारया सुतो ऽव्यो वारेभिः पवते मदिन्तमः । क्रीळन्नूर्मिरपामिव ॥ ५ ॥
१०४२ य उस्रिया अप्या अन्तरश्मनो निर्गा अकृन्तदोजसा ।
अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज ॥ ६ ॥
१०४३ आ सोता परि षिञ्चता ऽश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम् । वनक्रक्षमुदप्रुतम् ॥ ७ ॥
१०४४ सहस्रधारं वृषभं पयोवृधं प्रियं देवाय जन्मने ।
ऋतेन य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत् ॥ ८ ॥
१०४५ अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुः । वि कोशं मध्यमं युव ॥ ९ ॥
१०४६ आ वच्यस्व सुदक्ष चम्वोः सुतो विशां वह्निर्न विश्पतिः ।
वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपां जिन्वा गविष्टये धियः ॥ १० ॥
१०४७ एतमु त्यं मदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवो दुहुः । विश्वा वसूनि बिभ्रतम् ॥ ११ ॥

अर्थ—[१०४१] (मदिन्तमः) अत्यन्त आनन्द देनेवाला (अपां ऊर्मिः इव क्रीडन्) जलके लहरके समान खेल करते हुए (स्यः एषः सुतः) यह सोमरस (अव्याः वारेभिः) बकरीके बालोंसे बने हुए छाननीसे (धारया पवते) धार बांधकर कलशमें छाना जाता है ॥ ५ ॥

[१०४२] (यः) जो (उस्रियाः अप्याः) फैलनेवाले और जलोंको धारण करनेवाले (अश्मनः अन्तः) मेघोंमें (गाः) जलोंको (निः अकृन्तत्) बलसे छिन्न भिन्न करते हुए तू (गव्यं अश्व्यं व्रजं) गाय और घोडोंके समूहको (अभि तत्निषे) चारों ओरसे घेरता है । हे (धृष्णो) शत्रुओंको मारनेवाले सोम ! (वर्मी इव आ रुज) कवच धारण करनेवाले वीरोंके समान तू शत्रुओंका नाश कर ॥ ६ ॥

[१०४३] हे ऋत्विजो ! (अश्वं न) घोडेके समान वेगवान् (स्तोमं) स्तुतिके योग्य (अप्तुरं) जलके समान वेगवान् (रजस्तुरं) प्रकाशकी किरणके समान शीघ्रता करनेवाले (वन- क्रक्षं) जलसे मिश्रित (उद प्लुतं) जलके साथ मिले हुए सोमका (सोत) रस निचोडो, (परि षिंचत) और उसमें दूध मिलाओ ॥ ७ ॥

[१०४४] (सहस्रधारं वृषभं) हजारों धाराओंसे छाना जानेवाला, बलवर्धक (पयोवृधं) दूधमें मिलाये गये पुष्टिवर्धक प्रिय सोमको (देवाय जन्मने) देवोंको देनेके लिये शुद्ध करो । (देवः ऋतं) दिव्य और यज्ञरूप (बृहत् ऋतजातः) महान् और यज्ञमें लाया गया (यः राजा) जो राजा सोम है, वह (ऋतेन वि वावृधे) जलसे बढाया जाता है ॥ ८ ॥

[१०४५] हे (इषस्पते) अन्नके स्वामी (देव) प्रकाशमान देव सोम ! (देवयुः) तू देवोंकी इच्छा करनेवाला है, तू हमें (द्युम्नं बृहत् यशः) तेजस्वी और श्रेष्ठ यश (अभि दिदीहि) दे और (मध्यमं कोशं) शहदके कोशमें (वि युव) जाकर भर जा ॥ ९ ॥

[१०४६] हे (सु-दक्ष) उत्तम बलशाली सोम ! (चम्वोः सुतः) कलसेमें रखा हुआ तू (वह्निः न) सब प्रजाओंका चालक या नेता जैसे राजा होता है, उसी प्रकार (विशां विश्पतिः) प्रजाओंका पालक होकर (आ वच्यस्व) कलसेमें आ, (गविष्टये) गाय पानेकी इच्छावाले यजमान की (धियः जिन्वा) बुद्धियोंको प्रेरित करते हुए (दिवः अपां वृष्टिं रीतिं) द्युलोकसे जैसे पानी गिरता है, उसी प्रकार (पवस्व) नीचेके बर्तनमें तू छानता जा ॥ १० ॥

[१०४७] (दिवः) तेजस्वी ऋत्विज (मदच्युतं सहस्रधारं) आनन्दके प्रेरक और हजारों धाराओंसे बर्तनमें गिरनेवाले (वृषभं) बलवर्धक (विश्वा वसूनि बिभ्रतं) सब धनोंके धारण करनेवाले (एतं त्यं उ) इस उस सोमका (दुहुः) रस निकालते हैं ॥ ११ ॥

१०४८ वृषा वि जज्ञे जनयन्नमर्त्यः प्रतपञ्ज्योतिषा तमः ।
स सुष्टुतः कविभिर्निर्णिजं दधे त्रिधात्वस्य दंससा ॥ १२ ॥
१०४९ स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इळानाम् । सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥ १३ ॥
१०५० यस्य न इन्द्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा भगः ।
आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्रमवसे महे ॥ १४ ॥
१०५१ इन्द्राय सोम पातवे नृभिर्यतः स्वायुधो मदिन्तमः । पवस्व मधुमत्तमः ॥ १५ ॥
१०५२ इन्द्रस्य हार्दि सोमधानमा विश समुद्रमिव सिन्धवः ।
जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे दिवो विष्टम्भ उत्तमः ॥ १६ ॥

[१०९]

(ऋषिः- अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वरयः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- द्विपदा विराट् ।)

१०५३ परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥ १ ॥
१०५४ इन्द्रस्ते सोम सुतस्य पेयाः क्रत्वे दक्षाय विश्वे च देवाः ॥ २ ॥

अर्थ— [१०४८] (वृषा जनयन्) शब्दको उत्पन्न करनेवाला बलवान् कामवर्षक (ज्योतिषा तमः प्र-तपन्) अपने तेजसे अन्धकारको दूर करनेवाला, और (अमर्त्यः) अमर सोमको (विजज्ञे) जाना जाता है । (कविभिः सुष्टुतः सः) क्रान्तदर्शी ऋत्विजोंके द्वारा स्तुत सोम (निः निजं दधे) विशुद्ध रूपसे मिलाया जाता है । (त्रि-धातु) तीन जगह रखा हुआ वह सोम (अस्य दंससाः) इसके कर्म सामर्थ्योंसे याज्ञिक कर्मोंके लिये धारण किया जाता है ॥ १२ ॥

[१०४९] (यः वसूनां) जो धनोंका (यः रायां) जो दूध आदि पदार्थोंका (यः इळानां) जो भूमियोंका (यः सुक्षितीनां) जो उत्तम सन्तानोंका (आनेता) देनेवाला है, (सः) उस सोमका रस (सुन्वे) निकाल लिया है ॥ १३ ॥

[१०५०] (न यस्य इन्द्रः पिबात्) हमारे जिस सोमरसको इन्द्र पीता है, (यस्य मरुतः) जिसका रस मरुत पीते हैं (वा) अथवा (यस्य अर्यमणा भगः) जिसके रसको अर्यमाके साथ भग देव पीते हैं, (येन महे अवसे) जिस सोमके द्वारा महान् संरक्षणके लिये (मित्रावरुणा आ करामहे) मित्र और वरुणको बुलाया जाता है, उसी प्रकार (इन्द्रः आ) इन्द्रको बुलाया है ॥ १४ ॥

[१०५१] हे (सोम) सोम ! (नृभिः यतः) ऋत्विजोंके द्वारा संयत (सु-आयुधः) उत्तम शस्त्रास्त्रोंसे युक्त (मधुमत्तमः) अतीव मधुर और (मन्दितमः) अत्यंत मदकर होकर तुम (इन्द्राय पातवे) इन्द्रके पीनेके लिये (पवस्व) बहो ॥ १५ ॥

[१०५२] हे सोम ! (सिन्धवः समुद्रं इव) जैसे नदियां समुद्रमें प्रवेश करती हैं वैसे ही (इन्द्रस्य हार्दि) इन्द्रके हृदयरूप (सोम धानम्) कलशमें (आ विश) प्रवेश करो । तू (मित्राय) मित्र, (वरुणाय) वरुण और (वायवे) वायुके लिये (जुष्टः) प्रीतियुक्त सेवित (दिवः) द्युलोकके (उत्तमः) सर्वोत्तम (वि-स्तम्भः) महान् आश्रय है ॥ १६ ॥

[१०९]

[१०५३] हे सोम ! (स्वादुः) स्वादिष्ट तू (इन्द्राय मित्राय पूष्णे) इन्द्र, मित्र और पूषाके लिये और (भगाय) भगके लिये (परि प्र धन्व) बर्तनमें भरा रह ॥ १ ॥

[१०५४] हे सोम ! (क्रत्वे दक्षाय) ज्ञान और बल प्राप्त करनेके लिये (सुतस्य ते) तेरा रस (इन्द्रः पेयात्) इन्द्र पिये और (विश्व च देवाः) सब देव भी पियें (१) ॥ २ ॥

१०५५ एवामृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्ष दिव्यः पीयूषः ॥ ३ ॥
१०५६ पवस्व सोम महान् त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥ ४ ॥
१०५७ शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं च प्रजायै ॥ ५ ॥
१०५८ दिवो धर्तासि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन् वाजी पवस्व ॥ ६ ॥
१०५९ पवस्व सोम द्युम्नी सुधारो महामवीनामनु पूर्व्यः ॥ ७ ॥
१०६० नृभिर्येमानो जज्ञानः पूतः क्षरद्विश्वानि मन्द्रः स्वर्वित् ॥ ८ ॥
१०६१ इन्दुः पुनानः प्रजामुराणः करद्विश्वानि द्रविणानि नः ॥ ९ ॥
१०६२ पवस्व सोम क्रत्वे दक्षाया-ऽश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥ १० ॥
१०६३ तं ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय ॥ ११ ॥

अर्थ— [१०५५] हे सोम ! (शुक्रः दिव्यः) तेजस्वी और स्वर्गमें उत्पन्न हुआ हुआ (पीयूषः सः) पीनेके योग्य तू (अमृताय) अमर होनेके लिये (महे क्षयाय एव) महान् स्थानको प्राप्त करनेकी इच्छासे (अर्ष) आगे जा ॥ ३ ॥

[१०५६] हे (सोम) सोम ! (महान् समुद्रः) महान् समुद्रके समान रससे युक्त (पिता) पालन करनेवाला तू (देवानां विश्वा धाम) देवोंके सब स्थानोंमें – पात्रोंमें (अभि पवस्व) भरा रह (२) ॥ ४ ॥

[१०५७] हे (सोम) सोम ! (शुक्रः) चमकनेवाला तू (देवेभ्यः पवस्व) देवोंके लिये छनता जा। (दिवे पृथिव्यै) द्युलोकको, पृथ्वी लोकको तथा (प्रजाभ्यः शं) प्रजाओंको सुख मिले ॥ ५ ॥

[१०५८] हे सोम ! तू (शुक्रः पीयूषः) तेजस्वी और पीनेके योग्य (दिवः धर्ता असि) द्युलोकका धारण करनेवाला है। (वाजी) बलवान् तू (सत्ये) यज्ञमें (विधर्मन् पवस्व) विविध कर्म करनेके समय छनता जा (३) ॥ ६ ॥

[१०५९] हे सोम ! तू (द्युम्नी) तेजस्वी, (सु- धारः) उत्तम प्रकारसे धार बंधकर बर्तनमें गिरनेवाला (अनु- पूर्व्यः महान्) पहलेके समानही महान् रहनेवाला है, अतः तू (अवीनां अनु पवस्व) रखे जानेवाले बर्तनमें मपलोमोंसे होकर ठीक प्रकारसे भर जा। बर्तनमें सोमरस भरा जाता है ॥ ७ ॥

[१०६०] वह सोम (नृभिः येमानः) ऋत्विजों द्वारा नियत- निचोडा गया (जज्ञानः) विशुद्ध (पूतः) पवित्र (मन्द्रः) प्रसन्न मद युक्त और (स्वः- वित्) सर्वज्ञ है। वह हमें (विश्वानि क्षरत्) सब प्रकारकी संपत्ति दे (४) ॥ ८ ॥

[१०६१] (इन्दुः) तेजस्वी सोम (उराणः) मेंढोंके बालोंकी छननीसे छाना गया (पुनानः) सबकी वृद्धि करनेवाला पवित्र (नः) हमें (प्रजाम) प्रजा और (विश्वानि द्रविणानि) सब प्रकारकी संपत्ति (करत्) देओ ॥ ९ ॥

[१०६२] हे सोम ! (अश्वः न) घोडेके समान (निक्तः) पानीसे धोकर शुद्ध किया गया (वाजी) बल बढानेवाला, वेगवान् तू (क्रत्वे दक्षाय) ज्ञान, बल और (धनाय) धनकी प्राप्तिके लिये (पवस्व) शुद्ध होकर बर्तनमें भरा रह (५) ॥ १० ॥

[१०६३] हे सोम ! (सोतारः) रस निकालनेवाले ऋत्विज (ते रसं) तेरे रसको (मदाय पुनन्ति) आनन्द प्राप्तिके लिए शुद्ध करते हैं, तथा (महे द्युम्नाय तं सोमं) महान् तेजस्वी सोमरसोंको छानते हैं ॥ ११ ॥

१०६४ शिशुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति　पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम् ॥ १२ ॥
१०६५ इन्दुः पविष्ट चारुर्मदाया-ऽपामुपस्थे कविर्भगाय ॥ १३ ॥
१०६६ बिभर्ति चार्विन्द्रस्य नाम　येन विश्वानि वृत्रा जघान ॥ १४ ॥
१०६७ पिबन्त्यस्य विश्वे देवासो　गोभिः श्रीतस्य नृभिः सुतस्य ॥ १५ ॥
१०६८ प्र सुवानो अक्षाः सहस्रधार-स्तिरः पवित्रं वि वारमव्यम् ॥ १६ ॥
१०६९ स वाज्यक्षाः सहस्ररेता　अद्भिर्मृजानो गोभिः श्रीणानः ॥ १७ ॥
१०७० प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा　नृभिर्येमानो अद्रिभिः सुतः ॥ १८ ॥
१०७१ असर्जि वाजी तिरः पवित्र-मिन्द्राय सोमः सहस्रधारः ॥ १९ ॥
१०७२ अञ्जन्त्येनं मध्वो रसेने-न्द्राय वृष्ण इन्दुं मदाय ॥ २० ॥
१०७३ देवेभ्यस्त्वा वृथा पाजसे　ऽपो वसानं हरिं मृजन्ति ॥ २१ ॥
१०७४ इन्दुरिन्द्राय तोशते नि तोशते　श्रीणन्नुग्रो रिणन्नपः ॥ २२ ॥

अर्थ— [१०६४] (शिशुं जज्ञानम्) नये पैदा हुए बच्चेको जैसे शुद्ध करते हैं उसी प्रकार ऋत्विग्गण (देवेभ्यः) देवोंके देनेके लिए (हरिं इन्दुं सोमं) हरे रंगके चमकनेवाले सोमको (पवित्रे मृजन्ति) छलनीसे शुद्ध करते हैं (६) ॥ १२ ॥

[१०६५] (चारुः कविः) कल्याण स्वरूप सुन्दर ज्ञानी (इन्दुः) यह सोम (अपां उपस्थे) अन्तरिक्षमें पानीके पास (भगाय मदाय) ऐश्वर्ययुक्त आनन्दके लिये (पविष्ट) पहुंचाता है, पानीमें मिलाया जाता है ॥ १३ ॥

[१०६६] वह सोम (इन्द्रस्य) इन्द्रका (चारुः नाम बिभर्ति) कल्याणकर शरीरको धारण करता है, (येन) जिससे (विश्वानि वृत्रा जघान) इन्द्रने सारे पापी राक्षसोंको मारा (७) ॥ १४ ॥

[१०६७] (नृभिः सुतस्य) ऋत्विजों द्वारा निचोडा हुआ हुआ और (गोभिः श्रीतस्य) गोदुग्धमें मिश्रित (अस्य) सोमके रसका (विश्वे देवासः पिबन्ति) समस्त देवता पान करते हैं ॥ १५ ॥

[१०६८] (सुवानः) उत्तम रीतिसे छाना जानेवाला (सहस्रधारः) सहस्रों धाराओंसे सम्पन्न सोम (अव्यं वारं पवित्रं तिरः प्र अक्षाः) बालोंकी बनी छलनीसे शुद्ध होकर चारों ओरसे छाना जाता है (९) ॥ १६ ॥

[१०६९] हे (सहस्र- रेताः) अनेक बलोंसे युक्त (अद्भिः मृजानः) जलसे धोया जानेवाला (गोभिः श्रीणानः सः वाजी) गायके दूधसे मिलाया जानेवाला वह बलवान् सोम (अक्षाः) छाना जाता है ॥ १७ ॥

[१०७०] हे (सोम) सोम ! (नृभिः येमानः) ऋत्विजोंके द्वारा नियममें रखा गया (अद्रिभिः सुतः) पत्थरोंसे कूटकर निचोडा गया तू (इन्द्रस्य कुक्षा) इन्द्रके पेटमें (प्र याहि) भर जा (९) ॥ १८ ॥

[१०७१] (पवित्रं) छलनीसे छाना गया शुद्ध हुआ (वाजी) बलवान् ज्ञानी और (सहस्रधारः) हजारों धाराओंसे युक्त (सोमः) सोम (इन्द्राय) इन्द्रके लिये (तिरः असर्जि) बनाया जाता है ॥ १९ ॥

[१०७२] (वृष्णः) काम वर्षक— सुखवर्षी (इन्द्राय मदाय) इन्द्रकी मत्तताके लिये ऋत्विक् जन (एनं इन्दुं) इस सोमको (मध्वः रसेन अञ्जन्ति) मधुर गोरसके साथ मिलाते है (१०) ॥ २० ॥

[१०७३] हे सोम ! (अपः वसानम्) जलमें मिले और (हरिं) हरितवर्ण कान्तियुक्त (त्वा) तुझे (देवेभ्यः पाजसे) देवोंके पान और बलके लिये ऋत्विक् लोग (मृजन्ति) शुद्ध करते है ॥ २१ ॥

[१०७४] (उग्रः इन्दुः) यह उग्र बलशाली सोम (इन्द्राय) इन्द्रके लिये (तोशते) प्रथम तपाया जाकर (नि तोशते) अच्छी तरहसे शुद्ध किया जाता है, फिर (श्रीणन्) छाना जाता हुआ (अपः रिणन्) पानीमें मेलाया जाता है (११) ॥ २२ ॥

[११०]

(ऋषिः- त्र्यरुणत्रैवृष्णः, त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः । देवताः- पवमानः सोमः ।
छन्दः- १-३ पिपीलिकमध्या अनुष्टुप्, ४-९ ऊर्ध्वबृहती, १०-१२ विराट् ।)

१०७५ पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईयसे ॥ १ ॥

१०७६ अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये ।
वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥ २ ॥

१०७७ अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः ।
गोजीरया रंहमाणः पुरंध्या ॥ ३ ॥

१०७८ अजीजनो अमृत मर्त्येष्वाँ ऋतस्य धर्मन्नमृतस्य चारुणः ।
सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत् ॥ ४ ॥

१०७९ अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कं चिज्जनपानमक्षितम् ।
शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः ॥ ५ ॥

१०८० आदीं के चित् पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत ।
वारं न देवः सविता व्यूर्णुते ॥ ६ ॥

---

[११०]

अर्थ— [१०७५] हे सोम ! तू (वाज- सातये) अन्नकी प्राप्तिके लिये (सु परि प्र धन्व) उत्तम रीतिसे बर्तनमें भरा रह, (सक्षणिः वृत्राणि परि) सामार्थ्यवान् होकर तू शत्रुपर हमला कर, (नः ऋणया) हमारे ऋणोंको नष्ट करनेवाला तू (द्विषः तरध्यै) शत्रुओंसे पार होनेके लिए (ईयसे) उन शत्रुओंपर चढाई करनेके लिए जाता है ॥ १ ॥

[१०७६] हे सोम ! (सुतं त्वा) रस निकालनेके बाद तेरी (अनु मदामसि हि) हम उत्तम प्रकारसे स्तुति करते हैं । हे (पवमान) पवित्र सोम ! (महे समर्य- राज्ये) महान् श्रेष्ठ राजाके संरक्षणके लिये (वाजान् अभि प्र गाहसे) अपने बलसे युक्त होकर शत्रुसेनापर तू हमला करनेके लिए जाता है ॥ २ ॥

[१०७७] हे (पवमान) सोम ! (पयः विधारे हि) जल धारण करनेवाले अन्तरिक्षमें (शक्मना सूर्यं अजीजनः) अपनी शक्तिसे तूने सूर्यको उत्पन्न किया । (गो- जीरया पुरंध्या) स्तुति करनेवालोंको गाय देनकी बुद्धिसे (रंहमाणः) तू प्रगतीवाला हुआ है ॥ ३ ॥

[१०७८] हे (अमृत) अमृतरूपी सोम ! तूने (ऋतस्य चारुणः अमृतस्य) सत्य और मंगलकारक पानीको धारण करनेवाले अन्तरिक्षमें (मर्त्येषु धर्मन् अजीजनः) सूर्यको मनुष्योंके लिए उत्पन्न किया (सनिष्यदत्) देवोंकी सेवा की । (वाजं अच्छ) तू युद्धके लिए सीधे ही (सदा असरः) हमेशा जाता है ॥ ४ ॥

[१०७९] हे सोम ! (श्रवसा) अन्नसे युक्त होकर (अभि-अभि ततर्दिथ) तू छलनीसे नीचे गिरता है, (न) जिस प्रकार (जनपान) मनुष्योंके पीनेके लिए (गभस्त्योः शर्याभिः) हाथोंकी अंगुलियोंसे (कं चित् अ- क्षितं उत्सं) किसी न चूनेवाले हौजको (भरमाणः) पानीसे भरते हैं, उसी प्रकार तू कलशमें भरता है ॥ ५ ॥

[१०८०] (आत्) बादमें (पश्यमानसः दिव्यः वसुरुचः) इसको देखनेवाले दिव्य वसुरुच, जबतक (दिवः सविता) द्युलोकसे सूर्य (वारं न व्यूर्णुते , सबको ढकनेवाले अन्धकारको दूर नहीं करता, तबतक (आप्यं ई अभ्यनूषत) भाईके समान इस सोमकी स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥

१०८१ त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः ।
स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय ॥ ७ ॥
१०८२ दिवः पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गाहाद्दिव आ निरधुक्षत ।
इन्द्रमभि जायमानं समस्वरन् ॥ ८ ॥
१०८३ अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि मज्मना ।
यूथे न निःष्ठा वृषभो वि तिष्ठसे ॥ ९ ॥
१०८४ सोमः पुनानो अव्यये वारे शिशुर्न क्रीळन् पवमानो अक्षाः ।
सहस्रधारः शतवाज इन्दुः ॥ १० ॥
१०८५ एष पुनानो मधुमाँ ऋतावे-न्द्रायेन्दुः पवते स्वादुरूर्मिः ।
वाजसनिर्वरिवोविद्वयोधाः ॥ ११ ॥
१०८६ स पवस्व सहमानः पृतन्यून् त्सेधन् रक्षांस्यप दुर्गहाणि ।
स्वायुधः सासह्वान् त्सोम शत्रून् ॥ १२ ॥

अर्थ—[१०८१] (सोम) हे सोम ! (प्रथमाः वृक्त- बर्हिषः) सबोंसे प्रथम आसन फैलानेवाले यजमान (महे वाजाय श्रवसे) विशेष बल और अन्नके लिए (त्व धियं दधुः) तेरे विषयमें उत्तम विचार रखते हैं। (सः त्वं) वह तू (वीर) हे वीर सोम ! (नः वीर्याय चोदय) हमें वीर होनेके लिए प्रेरित कर ॥ ७ ॥

[१०८२] (यत् दिवः) जो द्युलोकमें देवोंके पीने योग्य (पीयूषं उक्थ्यं) अमृत प्रशंसनीय है, वह (पूर्व्यं) पहलेसे मिलनेवाला अमृत (महः गाहात् दिवः) महान् और अगाध द्युलोकसे (आ निरधुक्षत) निकाला गया है। इसके बाद (इन्द्रं अभि) इन्द्रके आगे (जायमानं) उत्पन्न हुए हुए सोमको (समस्वरन्) यज्ञकर्ता स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥

[१०८३] हे (पवमान) सोम ! (अध) बादमें (यत् इमे रोदसी) जब इस द्यु और पृथिवी (इमा विश्वा भुवना च) और इन सभी प्राणियोंमें (मज्मना यूथे निःष्ठा वृषभः न) अपने बलसे गायोंके झुण्डके बीचमें रहनेवाले बैलके समान (वि तिष्ठसे) तू विराजमान होता है ॥ ९ ॥

[१०८४] (सोमः) यह सोम (सहस्रधारः) सहस्रों धाराओंसे युक्त (पुनानः) पवित्र-शुद्ध किया हुआ (शत-वाजः) असीम सामर्थ्यवाला (इन्दुः) वरणीय रूपवाला तेजस्वी और (अव्यये वारे पवमानः) क्षरणशील सोम मेषलोममय छननीसे (शिशुः न क्रीळन्) शिशुके समान क्रीडा करता हुआ (अक्षाः) कलसमें भरता है ॥ १० ॥

[१०८५] (एषः) यह (पुनानः) छननीसे शुद्ध किया हुआ (मधुमान्) मधुरतायुक्त (ऋतावा) यज्ञयुक्त, क्षरणशील (स्वादुः) सुखद (ऊर्मिः) रसधारा सङ्ग (वाजसनिः) अन्नदाता (वरिवः वित्) धन दाता और (वयः धाः) आयु- बल दाता (इन्दुः) तेजस्वी सोम (इन्द्राय पवते) इन्द्रके लिए बहता है ॥ ११ ॥

[१०८६] हे (सोम) सोम ! (सः) वह तू (पृतन्यून्) संग्रामेच्छु शत्रुओंको (सहमानः पवस्व) सबको पराजित करता हुआ (दुर्गहाणि रक्षांसि) दुर्दम्य राक्षसोंको नष्ट कर और तू (सु- आयुधः) उत्तम आयुधोंसे युक्त होकर (शत्रून् सासह्वान्) शत्रुओंका विनाश करते हुए बहो ॥ १२ ॥

[१११]

(ऋषिः- अनानतः पारुच्छेपिः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- अत्यष्टिः ।)

१०८७ अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति स्वयुग्वभिः सूरो न स्वयुग्वभिः ।
धारा सुतस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः ।
विश्वा यद्रूपा परियात्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥ १ ॥

१०८८ त्वं त्यत् पणीनां विदो वसु सं मातृभिर्मर्जयसि स्व आ दम ऋतस्य धीतिभिर्दमे ।
परावतो न साम तद् यत्रा रणन्ति धीतयः ।
त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे ॥ २ ॥

१०८९ पूर्वामनु प्रदिशं याति चेकितत् सं रश्मिभिर्यतते दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो रथः ।
अग्मन्नुक्थानि पौंस्ये न्द्रं जैत्राय हर्षयन् ।
वज्रश्च यद्भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ॥ ३ ॥

[११२]

(ऋषिः- शिशुराङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- पङ्क्तिः ।)

१०९० नानानं वा उ नो धियो वि व्रतानि जनानाम् ।
तक्षा रिष्टं रुतं भिषग् ब्रह्मा सुन्वन्तमिच्छती न्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ १ ॥

---

[१११]

अर्थ— [१०८७] (पुनानः) छाननीसे छाना जानेवाला सोमरस (हरिण्या अया रुचा) हरे रंगके अपने इस तेजसे (विश्वा द्वेषांसि तरति) सब शत्रुओंको दूर करता हैं, (सूरः स्वयुग्वभिः न) सूर्य अपनी किरणोंसे जैसे अन्धकारको नष्ट करता है, उसी प्रकार (सुतस्य धारा रोचते) उत्तम दीखनेवाले इस सोमरसकी धार चमकती है, (पुनानः हरिः अरुषः) छाना जानेवाला हरे रंगका यह सोमरस चमकता है, (यत्) जो (सप्तास्येभिः ऋक्वभिः) तेजके सात मुखों तथा स्तोत्रोंसे और (ऋक्वभिः) तेजोंसे (विश्वा रूपाणि परियासि) अनेक रूप धारण करता है ॥ १॥

[१०८८] हे सोम ! (त्वं ह) तूने (पणीनां त्यत् वसु) पणियोंसे उस धनको (विदः) प्राप्त किया। (ऋतस्य धीतिभिः मातृभिः) यज्ञके आधार भूत जलोंसे (स्वे दमे सं मर्जयसि) अपने यज्ञके स्थानमें उत्तम प्रकारसे तू शुद्ध होता है। (परावतः न साम तत्) दूरसे वह सामगान सुननेमें आता है (यत्र धीतयः रणन्ति) जहां यज्ञ करनेवाले यजमान आनन्दित हुए हुए दीखते हैं, (त्रिधातुभिः अरुषीभिः) तीन स्थानपर प्रकाशनेवाले तेजोंसे (रोचमानः) चमकनेवाला सोम (वयः दधे वयः दधे) अन्न देना है, निश्चयसे अन्न देता है ॥ २ ॥

[१०८९] (चेकितत् पूर्वां प्रदिशं अनु याति) सर्व ज्ञानी सोम पूर्व दिशाको जाता है, तब (दैव्यः दर्शतः रथः रश्मिभिः सं यतते) दिव्य और सुन्दर ऐसा तेरा रथ किरणोंके कारण तेजस्वी दीखता है। (पौंस्या उक्थानि अग्मन्) पौरुषका वर्णन करनेवाले सोम इन्द्रको प्राप्त होते हैं। स्तोतो उनसे (जैत्राय इन्द्रं हर्षयन्) विजयके लिए इन्द्रको प्रसन्न करते हैं (वज्रः च) वज्र भी इन्द्रको प्राप्त होता है, हे सोम और इन्द्र ! (यत् समत्सु अनपच्युता भवथः) तब तुम दोनों युद्धमें नहीं हारते ॥ ३ ॥

[११२]

[१०९०] (नः धियः नानानं) हमारी बुद्धियां अनेक प्रकारकी हैं। (जनानाम् व्रतानि वि) दूसरे मनुष्योंके कर्म भी अनेक प्रकारके हैं। (तक्षा) बढई- शिल्पी (रिष्टं इच्छति) लकडीका काम चाहता है, (भिषक् रुतं इच्छति) वैद्य रोगीको चाहता है, और (ब्रह्मा) वेदका विद्वान् ब्राह्मण (सुन्वन्तं इच्छति) यज्ञ करनेवाले यजमानको चाहता है। उसी प्रकार हे (इन्दो) तेजस्वी सोम ! (इन्द्राय परिस्रव) तू इन्द्रके लिये स्रवित होओ ॥१॥

१०९१ जरतीभिरोषधीभिः पर्णेभिः शकुनानाम् ।
कार्मारो अश्मभिर्द्युभि र्हिरण्यवन्तमिच्छती न्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ २ ॥
१०९२ कारुरहं ततो भिष ग्युपलप्रक्षिणी नना ।
नानाधियो वसूयवो ऽनु गा इव तस्थिमे न्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ३ ॥
१०९३ अश्वो वोळ्हा सुखं रथं हसनामुपमन्त्रिणः ।
शेपो रोमण्वन्तौ भेदौ वारिन्मण्डूक इच्छती न्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ४ ॥

[११३]

(ऋषिः- कश्यपो मारीचः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- पङ्क्तिः ।)

१०९४ शर्यणावति सोम मिन्द्रः पिबतु वृत्रहा ।
बलं दधान आत्मनि करिष्यन् वीर्यं मह दिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ १ ॥
१०९५ आ पवस्व दिशां पत आर्जीकात् सोम मीढ्वः ।
ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ २ ॥

अर्थ— [१०९१] (जरतीभिः ओषधीभिः) पुराने परिपक्व काठ – ओषधियां (शकुनानाम् पर्णेभिः) पक्षियोंके पंख और (द्युभिः अश्मभिः) तीक्ष्ण शिलाओंसे बाण बनाये जाते हैं । (कार्मारः) कुशल शिल्पी बाण बेचनेके लिये (हिरण्यवन्तं इच्छति) धनवान् पुरुषकी इच्छा करता है; वैसे ही मैं सोमके प्रवाहकी इच्छा करता हूं । हे (इन्दो) सोम (इन्द्राय परिस्रव) तू इन्द्रके लिये प्रवाहित होओ ॥ २ ॥

[१०९२] (अहं कारुः) मैं शिल्पी– स्तोता हूं, (ततः भिषक्) मेरा पुत्र वा पिता भिषक् है और (नना) माता वा कन्या (उपलप्रक्षिणी) यव– भर्जनकारिणी है । हम सब (नाना धियः) अनेक भिन्न कर्म करनेवाले हैं । जैसे (गाः इव) गोपालक गौओंके पीछे रहते हैं, उसी प्रकार हम भी (वसुयवः) धनकी इच्छा करते हुए, तुम्हारी (अनुतस्थिम) सेवा करते हैं । हे (इन्दो) सोम ! (इन्द्राय परिस्रव) इन्द्रके लिये प्रवाहित होओ ॥ ३ ॥

[१०९३] (वोळ्हा अश्वः) भार वहन करनेवाला घोडा (सुखं) सुखसे चलने योग्य (रथम्) कल्याण कर रथको (इच्छति) इच्छा करता है । (उपमन्त्रिणः हसनाम्) मित्र–सुहृद परस्पर हास– परिहासकी इच्छा करता है और (शेपः रोमण्वन्तौ भेदौ) पुरुषका जननेंद्रिय रोमोंवाला भेद (द्विधाभित्) स्त्रीके अंगकी कामना करता है । (मण्डूक वारिन् इच्छति) मेढक जलमय तालाबकी इच्छा करता है; मैं सोमका स्रवण चाहता हूं । हे (इन्दो) सोम ! तुम (इन्द्राय परिस्रव) इन्द्रके लिये स्रवित होओ ॥ ४ ॥

[११३]

[१०९४] (आत्मनि) अपनेमें (बलं दधानः) महान् बल धारण करता हुआ और (महत् वीर्यं करिष्यन्) महान् पराक्रम करनेवाला (वृत्रहा) वृत्रहन्ता (इन्द्रः) इन्द्र (शर्यणावति सोमं पिबतु) कुरुक्षेत्रके पासवाले शर्यणावत् सरोवरमें स्थित सोमको पिये । हे (इन्दो) सोम ! तू (इन्द्राय परिस्रव) इन्द्रके लिये धाराओंसे बहता रहो ॥ १ ॥

[१०९५] हे (दिशां पते) दिशाओंके स्वामी और (मीढ्वः) कामनाओंकी वर्षा करनेवाले (सोम) सोम ! (ऋतवाकेन) पवित्र वेद मंत्रोंसे और (सत्येन) सत्य नियमोंका पालन करनेवाले ऋत्विजोंने (श्रद्धया) श्रद्धा और (तपसा) तपसे युक्त होकर तुझे (सुत) स्तविक किया है; इससे तू (आर्जीकात् आ पवस्व) आर्जीक देश– (व्यास नदीके पासका प्रदेश) से आकर क्षरित होओ । हे (इन्दो) तेजस्वी सोम ! (इन्द्राय परिस्रव) इन्द्रके लिये प्रवाहित होओ ॥ २ ॥

×

१०९६ पर्जन्यवृद्धं महिषं तं सूर्यस्य दुहिताभरत् ।
तं गन्धर्वाः प्रत्यगृभ्णन् तं सोमे रसमादधु—रिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ३ ॥

१०९७ ऋतं वदन्नृतद्युम्न सत्यं वदन् त्सत्यकर्मन् ।
श्रद्धां वदन् त्सोम राजन् धात्रा सोम परिष्कृत इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ४ ॥

१०९८ सत्यमुग्रस्य बृहतः सं स्रवन्ति संस्रवाः ।
सं यन्ति रसिनो रसाः पुनानो ब्रह्मणा हर इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ५ ॥

१०९९ यत्र ब्रह्मा पवमान छन्दस्यां वाचं वदन् ।
ग्राव्णा सोमे महीयते सोमेनानन्दं जनय—न्निन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ६ ॥

११०० यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिन् लोके स्वर्हितम् ।
तस्मिन् मां धेहि पवमाना—ऽमृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ७ ॥

अर्थ— [१०९६] (सूर्यस्य दुहिता) सूर्यकी पुत्री श्रद्धा (पर्जन्यवृद्धम्) वर्षाके जलसे वर्धित और (तं महिषं) उस महान् सोमको (आभरत्) स्वर्गसे ले आयी। (गन्धर्वाः तं प्रत्यगृभ्णन्) गन्धर्वों (वसु आदि) ने उसे ग्रहण किया और उन्होंने (सोमे रसं आदधुः) सोममें रस रख दिया। हे (इन्दो) तेजस्वी सोम ! तू (इन्द्राय परि स्रव) इन्द्रके लिये प्रवाहित होओ ॥ ३ ॥

[१०९७] हे (ऋतद्युम्न) सत्य कान्ति युक्त, (सत्यकर्मन्) सत्यकर्मा, (सोम) सोम तू (ऋतं वदन्) यथावत् वचन कहता हुआ (सत्यं वदन्) सत्य बोलता हुआ, (श्रद्धां वदन्) श्रद्धापूर्वक बोलता हुआ, हे (इन्दो) तेजस्वी सोम ! (धात्रा परिष्कृतः) यजमानसे और अलंकृत शुद्ध होकर, हे (राजन्) सोम राजन् ! तू (इन्द्राय परि स्रव) इन्द्रके लिये स्रवित होओ ॥ ४ ॥

[१०९८] (सत्यं उग्रस्य) सत्य- यथार्थ बलवान् और (बृहतः) महान् (संस्रवाः संस्रवन्ति) अच्छी प्रकार एक साथ बहनेवाली धाराएं बह रही हैं। (रसिनः) रसवान् सोमके (रसाः) रस (सं यन्ति) एक साथ बह रहे हैं। हे (हरे) हरितवर्ण सोम ! (ब्रह्मणा पुनानः) ब्राह्मणके द्वारा मंत्रोंसे शुद्ध किया गया तू (इन्द्राय परि स्रव) इंद्रके लिये क्षरित होओ ॥ ५ ॥

[१०९९] हे (पवमान) पवित्र सोम ! (छन्दस्यां वाचं वदत्) छन्दोंमें बनायी स्तुतिका उच्चारण करनेवाला, (ग्राव्णा) पत्थरोंसे कूटकर शुद्ध किये हुए (सोमेन आनन्दं जनयन्) सोमसे देवोंका आनन्द उत्पन्न करनेवाला (ब्रह्मा) ब्राह्मण (यत्र) जहां (सोमे महीयते) सोमकी पूजा करता है, वहां हे (इन्दो) सोम ! तू (इन्द्राय परि स्रव) इन्द्रके लिये बहता रहो ॥ ६ ॥

[११००] हे (पवमान) पवित्र सोम ! (यत्र अजस्रं ज्योतिः) जहां अखण्ड तेज है और (यस्मिन् लोके स्वः हितम) जिस लोकमें सूर्य- स्वर्ग— सुख स्थित है, (तास्मिन्) उस (अमृते आक्षिते लोके) अमर और अक्षीण लोकमें (मां धेहि) मुझे रख। हे (इन्दो इद्राय परि स्रव) सोम ! तू इन्द्रके लिये बहो ॥ ७ ॥

११०१ यत्र राजा वैवस्वतो यत्रावरोधनं दिवः ।
यत्रामूर्यह्वतीराप स्तत्र माममृतं कृधी न्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ८ ॥

११०२ यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः ।
लोका यत्र ज्योतिष्मन्त स्तत्र माममृतं कृधी न्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ९ ॥

११०३ यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम् ।
स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र माममृतं कृधी न्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ १० ॥

११०४ यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते ।
कामस्य यत्राप्ताः कामा स्तत्र माममृतं कृधी न्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ११ ॥

[११४]

(ऋषिः- कश्यपो मारीचः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- पङ्क्तिः ।)

११०५ य इन्दोः पवमानस्या ऽनु धामान्यक्रमीत् ।
तमाहुः सुप्रजा इति यस्ते सोमाविधन्मन इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ १ ॥

अर्थ— [११०१] (यत्र वैवस्वतः राजा) जहां विवस्वान्‌का पुत्र राजा राजा है, (यत्र दिवः अवरोधनं) जहां स्वर्गका द्वार है, सूर्यको अवरोध करनेवाली रात है, (यत्र अमूः यह्वतीः आपः) जहां वे बडी बडी नदियां बहती हैं, (तत्र मां अमृतं कृधि) वहां मुझे अमर करो। हे (इन्दो) सोम ! तू (इन्द्राय परि स्रव) इन्द्रके लिये बहो ॥ ८ ॥

[११०२] (यत्र त्रिनाके त्रिदिवे) जिस उत्तम स्वर्ग लोकमें— तीसरे लोकमें (दिवः अनुकामं चरणं) सूर्य अपनी इच्छाके अनुसार घूमता है, और (यत्र लोकाः ज्योतिष्मन्तः) जहां लोक-जन तेजोमय हैं, (तत्र मां अमृतं कृधि) वहां मुझे अमर करो। हे (इन्दो) सोम ! (इन्द्राय परि स्रव) इन्द्रके लिये बहो ॥ ९ ॥

[११०३] (यत्र कामाः निकामाः च) जिस लोकमें श्रेष्ठ काम्यमान और प्रार्थनीय देवताएं रहते हैं (यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम्) जहां प्रतापी सूर्यका स्थान है, और (यत्र स्वधा च तृप्तिः च) जहां स्वधा के साथ दिया गया अन्न और तृप्ति है, (तत्र मां अमृतं कृधि) वहां तू मुझे अमर कर। हे (इन्दो) सोम! (इन्द्राय परि स्रव) इन्द्रके लिये प्रवाहित होओ ॥ १० ॥

[११०४] (यत्र आनन्दाः च मोदाः च) जहां आनन्द और हर्ष, (मुदः प्रमुदः आसते) आल्हाद और प्रमोद- ये चार प्रकारके आनन्द हैं; (यत्र कामस्य कामाः आप्ताः) जहां अभिलाषीकी सारी कामनाएं पूर्ण होती हैं, (तत्र मां अमृतं कृधि) वहां मुझे अमर करो। हे (इन्दो) सोम ! तू (इन्द्राय परि स्रव) इन्द्रके लिये बहो ॥११॥

[११४]

[११०५] (यः) जो (इन्दोः पवमानस्य) तेजस्वी पवित्र सोमके (धामानि अनु अक्रमीत्) स्थानोंको- तेजको प्राप्त करता है, और हे (सोम) सोम ! (यः ते मनः अविधत्) जो तेरे चित्तके अनुकूल रहकर, आचरण करता है, (तं सुप्रजा इति आहुः) उसको उत्तम संततिसे युक्त गृहपति कहते हैं। हे (इन्दो) सोम ! तू (इन्द्राय परि स्रव) इन्द्रके लिये बहता रहो ॥ १ ॥

११०६ ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन् गिरः ।
सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञे वीरुधां पति-रिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ २ ॥

११०७ सप्त दिशो नानासूर्याः सप्त होतार ऋत्विजः ।
देवा आदित्या ये सप्त तेभिः सोमाभि रक्ष न इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ३ ॥

११०८ यत् ते राजञ्छृतं हवि-स्तेन सोमाभि रक्ष नः ।
अरातीवा मा नस्तारी-न्मो च नः किं चनाममद्-दिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ४ ॥

॥ इति नवमं मण्डलं समाप्तम् ॥

अर्थ— [११०६] हे (कश्यप ऋषे) कश्यप ऋषि ! (मन्त्रकृतां) मन्त्रोंके रचयिताओंके जिन (स्तोमैः) स्तुति युक्त (गिरः उत्-वर्धयन्) वचनोंसे सोम रूपवित होता है, उस सोमकी पूजा कर; (यः वीरुधां पतिः) जो वनस्पति— ओषधियोंका पालक है, उस (राजानं सोमं) राजा सोमको (नमस्य) सत्कार पूर्वक प्रणाम कर। हे (इन्दो) सोम ! तू (इन्द्राय परि स्रव) इन्द्रके लियें प्रवाहित होओ ॥ २ ॥

[११०७] (सप्त दिशः नानासूर्याः) सात दिशाएं, ऋतु (सप्त होतारः ऋत्विजः) यज्ञ कर्ता सात ऋत्विज और (ये सप्त आदित्या देवाः) जो सात सूर्य हैं, हे (सोम) सोम ! (सप्त तेभिः नः अभि रक्ष) उनके साथ हमारी रक्षा कर। हे (इन्दो) सोम ! (इन्द्राय परि स्रव) इन्द्रके लिये तू बहता रह ॥ ३ ॥

[११०८] हे (राजान् सोम) राजा सोम ! (यत् ते शृतं हविः) जो तेरे लिये हवनीय अन्नका पाक किया हुआ है, (तेन नः अभि रक्ष) उससे हमारी रक्षा कर। (अरातीवा नः मा तारीत्) शत्रु हमें न मारे और (नः किंचन मो आममत्) शत्रु हमारे किसीभी पदार्थका अपहरण न करे। हे (इन्दो) सोम ! (इन्द्राय परि स्रव) इन्द्रके लिये बह ॥ ४ ॥

॥ नववां मण्डल समाप्त ॥

ऋग्वेदका सुबोध – भाष्य

नवम मण्डल

मन्त्रवर्णानुक्रमसूची

अंशुं दुहन्ति स्तनयन्तं	६५५
अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे	९०७
अग्न आयूंषि पवसे	५६७
अग्निर्ऋषिः पवमानः	५६८
अग्निर्न यो वन आ	८००
अग्ने पवस्व स्वपाः	५६९
अग्रगो राजाप्यस्तविष्यते	७८३
अग्ने सिन्धूनां पवमानो	७५०
अचिक्रदद्वृषा हरिः	१६
अचोदसो नो धन्वन्तु	६९७
अच्छा कोशं मधुश्च्युतं	५५९
अच्छा नृचक्षा असरत्	८२४
अच्छा समुद्रमिन्दवो	५६०
अच्छा हि सोमः कलशान्	७०८
अजीजनो अमृतं	१०७८
अजीजनो हि पवमान	१०७७
अजीतयेऽहतये पवस्व	८४७
अञ्जते व्यञ्जते	७८१
अञ्जन्त्येनं मध्वो	१०७२
अतस्त्वा रयिमभि	३४४
अति श्री सोम रोचना	१५२
अति वारान् पवमानो	३९७
अति श्रिती तिरश्चता	१२९
अत्यं मृजन्ति कलशे	७३३
अत्या हियाना न हेतृभिः	१२०
अत्यू पवित्रमक्रमीद्	३२८
अत्यूर्मिर्मत्सरो मदः	१५०
अत्यो न हियानो	७४१
अदब्ध इन्दो पवसे	७२९
अद्भिः सोम पपृचानस्य	६७६
अद्रिभिः सुतः पवते गभस्त्योः	६४३
अद्रिभिः सुतः पवसे पवित्र	७६१
अद्रिभिः सुतो मतिभिः	६८०
अध क्षपा परिष्कृतो	९३९
अध धारया मध्वा	८७८
अध यदिमे पवमान	१०८३
अध श्वेतं कलशं	६७५
अधा हिन्वान इन्द्रियं	३४६
अधि द्यामस्थाद्वृषभो	७३५
अधि यदस्मिन् वाजिनीव	८३४
अधुक्षत प्रियं मधु	१३
अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं	३५७
अनप्तमप्सु दुष्टरं	१४२
अनु द्रप्सास इन्दवः	५५
अनु प्रत्नास आयवः	१९२
अनु हि त्वां सुतं सोम	१०७६
अनूपे गोमान् गोभिरक्षाः	१०१९
अपघ्नन्तो अराव्णः	१२३
अपघ्नन्नेषि पवमान	८६६
अपघ्नन् पवते मृधो	४२३
अपघ्नन् पवसे मृधः	४८२
अपघ्नन् त्सोम रक्षसो	४८७
अप द्वारा मतीनां	९३
अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणाः	८४१
अपो वसानः परि	१०३६
अप्सा इन्द्राय वायवे	५३८
अप्सु त्वा मधुमत्तमं	२३९
अभिक्रन्दन् कलशं	७४९
अभि क्षिपः समग्मत	१३०
अभि गव्यानि वीतये	४५१
अभि गावो अधन्विषुः	१९९
अभि गावो अनूषत	२५१
अभि ते मधुना पयो	९८
अभि त्यं गावः पयसा	७२६
अभि त्यं पूर्व्यं मदं	५४
अभि त्यं मद्यं मदं	५३
अभि त्रिपृष्ठं वृषणं	८१२
अभि त्वा योषणो दश	३८१
अभि द्युम्नं बृहद्यशः	१०४५
अभि द्रोणानि बभ्रवः	२५४
अभि नो वाजसातमं	९२६
अभि प्रियाणि काव्या	३८४

अभि प्रियाणि पवते	६७७
अभि प्रियाणि पवते पुनानः	८७९
अभि प्रिया दिवस्पदं	९६
अभि प्रिया दिवस्पदा	११३
अभि ब्रह्मीरनूषत	२५७
अभि वस्त्रा सुवसनानि	९१७
अभि वह्निरमर्त्यः	८४
अभि वायुं वीत्यर्षा	९१६
अभि विप्रा अनूषत गावः	१०७
अभि विप्रा अनूषत मूर्धन्	१५३
अभि विश्वानि वार्या	३११
अभि वेना अनूषत	५०९
अभि सुवानास इन्दवो	१४९
अभि सोमास आयवः	१९४
अभि सोमास आयवः	१०२४
अभी नवन्ते अद्रुहः	९४६
अभी नो अर्षा दिव्या	९१८
अभी उ ममध्न्या उत	९
अभीमृतस्य विष्टपं	२६३
अभ्यभि हि श्रवसा	१०७९
अभ्यर्ष बृहद्यशो	१७३
अभ्यर्ष महानां	४
अभ्यर्ष विचक्षण	३६१
अभ्यर्ष सहस्त्रिणं	४७०
अभ्यर्ष स्वायुध	३७
अभ्यर्षानपच्युतो	३८
अमित्रहा विचर्षणिः	१०३
अमृक्तेन रुशता वससा	६२५
अयं विचर्षणिर्हितः	४३८
अयं विश्वानि तिष्ठति	३७३
अयं स यो दिवस्परि	२९२
अयं सूर्य इवोपदृक्	३७२
अयं सोम इन्द्र तुभ्यं	७९६
अयं सोमः कपर्दिने	५८९
अयं त आघृणे सुतो	५९०
अयं दक्षाय साधनो	९९३
अयं दिव इयर्ति विश्वं	६१९
अयं देवेषु जागृविः	३२१
अयं नो विद्वान्	६९०
अयं पुनान उषसो	७५९
अयं पूषा रयिर्भगः	९६१
अयं भराय सानसि	९९८
अयं मतवाञ्छकुनो	७५१
अया चित्तो विपानया	५३०
अया निजघ्निरोजसा	३६८
अया पवस्व देवयुः	१०१०
अया पवस्व धारया	४६५
अया पवा पवस्वैना	९१९
अया रुचा हरिण्या	१०८७
अया वीती परि स्रव	३९९
अया सोमः सुकृत्यया	३३७
अयुक्त सूर एतशं	४६६
अरममाणो अत्येति	६५२
अरश्मानो येऽरथा	८८७
अरावीदंशुः सचमानः	६७२
अरुषो जनयन् गिरः	२०९
अरुरुचदुषसः पृश्निरग्रिय	७१९
अर्वाँ इव श्रवसे सातिमच्छे	८९२
अर्षा णः सोम शं गवे	४१३
अर्षा सोम द्युमत्तमो	५३७
अलाय्यस्य परशुर्ननाश	६०८
अव द्युतानः कलशाँ	६७९
अवा कल्पेषु नः पुम	८५
अवावशन्त धीतयो	१६६
अविता नो अजाश्वः	५८८
अव्ये पुनानं परि वार	७६३
अव्ये वधूयुः पवते	६२३
अव्यो वारे परि प्रियं	३५४
अव्यो वारे परि प्रियो	६६
अव्यो वारेभिः पवते	९७०
अश्वो न क्रदो वृषभिः	८९५
अश्वो न चक्रदो वृषा	४९१
अश्वो वोळ्हा सुखं	१०९३
असर्जि कलशाँ अभि	१००८
असर्जि रथ्यो यथा	२७१
असर्जि वक्वा रथ्ये	८१७
असर्जि वाजी तिरः पवित्रं	१०७१
असर्जि स्कम्भो दिव	७८४
असश्चतः शतधारा	७६५
असावि सोमो अरुषो	७१२
असाव्यंशुर्मदायाप्सु	४३२
असृक्षत प्र वाजिनो	४९२
असृग्रन् देववीतये	३३१
असृग्रन् देववीतये वाजयन्तो	५९५
असृग्रमिन्दवः पथा	६१
अस्मभ्यं रोदसी रयिं	६९
अस्मभ्यं गातुवित्तमो	१००२
अस्मभ्यं त्वा वसुविदं	९८८
अस्मभ्यमिन्दविन्द्रयुः	१९
अस्मान् त्समर्ये पवमान	७२८
अस्मे धेहि द्युमद्यशो	२५२
अस्मे वसूनि धारय	४८८
अस्य ते सख्ये वयं	४२७
अस्य ते सख्ये वयमियक्षंतः	५६२
अस्य पीत्वा मदानां	१९७
अस्य प्रत्नामनु द्युतं	३७१
अस्य प्रेषा हेमना	८६८
अस्य वो ह्यवसा	९३३
अस्य व्रतानि नाधृषे	३६९
अस्य व्रते सजोषसो	९७५
अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्रभं	९९९
अस्येदिन्द्रो मदेष्वा	१०
आ कलशा अनूषते	५३२
आ कलशेषु धावति श्येन	५९२
आ कलशेषु धावति पवित्रे	१५१
आ जागृविर्विप्र ऋता	९०४
आ जामिरत्के अव्यत	९६८
आ त इन्दो मदाय कं	४४८
आ तू न इन्दो शतदातु	६५८
आ ते दक्षं मयोभुवं	५४६
आ ते रुचः पवमानस्य	८६७
आत्मन्वन्नभो दुह्यते	६७१
आत्मा यज्ञस्य रंह्या	५९
आत् सोम इन्द्रियो रसो	३३९
आ दक्षिणा सृज्यते	६४१
आदस्य शुष्मिणो रसे	१२६
आ दिवस्पृष्ठमश्वयुः	२७६
आदीं हंसो यथा गणं	२४९
आदीं के चित्	१०८०
आदीं त्रितस्य योषणो	२४८
आदीमश्वं न हेतारो	४३४
आ धावता सुहस्त्यः	३३४

आ न इन्दो महीमिषं ५३१
आ न इन्दो शतग्विनं ५८४
आ न इन्दो शतग्विनं गवां ५३५
आ नः पवस्व धारया २६५
आ नः पवस्व वसुमद् ६२८
आ नः पूषा पवमानः ७१०
आ नः शुष्मं नृषाह्यं २३७
आ नः सुतास इन्दवः १००५
आ नः सोम पवमानः ७०९
आ नः सोम पवित्र आ ४४९
आ नः सोम संयन्तं ७५६
आ नः सोम सहो जुवो ५३६
आ पवमान धारय ११४
आ पवमान नो भरायो १९३
आ पवमान सुष्टुतिं ५२१
आ पवस्व गविष्टये ५६३
आ पवस्व दिशां पत १०९५
आ पवस्व मदिन्तम २१० ३५५
आ पवस्व महीमिषं ३०४
आ पवस्व सहस्रिणं रयिं सोम ४५९
आ पवस्व सहस्रिणं रयिं गोमन्तं ४४०
आ पवस्व सुवीर्यं ५२३
आ पवस्व हिरण्यवत् ४७६
आपानासो विवस्वतो ९२
आ प्यायस्व समेतु ते २४४
आ मन्द्रमा वरेण्यं ५४७
आ मित्रावरुणा भगं ६८
आ यद्योनिं हिरण्ययं ५०८
आ ययो त्रिंशतं तना ३९०
आ यस्तस्थौ भुवनानि ७२३
आ यो गोभिः सृज्यत ७२४
आ योनिमरुणो रुहत् २९६
आ यो विश्वानि वार्या १५९
आ रयिमा सुचेतुनं ५४८
आ वच्यस्व महि प्सरो १२
आ वच्यस्व सुदक्ष १०४६
आविवासन् परावतो २९३
आविशन् कलशं सुतो ४४७
आशुरर्ष बृहन्मते २८९
आ सोता परि षिंचता १०४३
आ सोम सुवानो अद्रिभिः १०२०
आस्मिन्पिशङ्गमिन्दवो १८१
आ हर्यताय धृष्णवे ९३८
आ हर्यतो अर्जुने १०२३
इन्दविन्द्राय बृहते ६३०
इन्दुं रिहन्ति महिषा ९२४
इन्दुः पविष्ट चारुर्मदाय १०६५
इन्दुः पविष्ट चेतनः ४९८
इन्दुः पुनानः प्रजां १०६१
इन्दुः पुनानो अति गाहते ७६४
इन्दुरत्यो न वाजसृत् ३१७
इन्दुरिन्द्राय तोशते १०७४
इन्दुरिन्द्राय पवत ९५९
इन्दुर्देवानामुप सख्यं ८७२
इन्दुर्वाजी पवते ८७७
इन्दुर्हिन्वानो अर्षति ५८२
इन्दुर्हियानः सोतृभिः २३६
इन्दो यथा तव स्तवो ३७६
इन्दो यदद्रिभिः सुतः २०२
इन्दो व्यव्यमर्षसि ५८३
इन्दो समुद्रमीङ्खय २६६
इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः ४६३
इन्द्रमच्छ सुता इमे ९९७
इन्द्रस्ते सोम सुतस्य १०५४
इन्द्रस्य सोम पवमानं ६८४
इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो ७२
इन्द्रस्य सोम राधसे ३९८
इन्द्रस्य हार्दि सोमधानं १०५२
इन्द्राय पवते मदः १०२७
इन्द्राय वृषणं मदं १००१
इन्द्राय सोम परि षिच्यसे ६९३
इन्द्राय सोम पवसे १९६
इन्द्राय सोम पातवे नृभिः १०५१
इन्द्राय सोम पातवे मदाय १०४
इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने ९३५
इन्द्राय सोम सुषुतः ७२७
इन्द्रायेंदु पुनीतनो ४५७
इन्द्रायेन्दो मरुत्वते ५१०
इन्द्रो न यो महा कर्माणि ७९९
इषं तोकाय नो दधत् ५३९
इषमूर्जं च पिन्वस ४६०
इषमूर्जमभ्यर्षाश्वं गा ८३८
इषमूर्जं पवमानाभ्यर्षासि ७७३
इषनं धन्वन् प्रति ६२१
इषे पवस्व धारया ५०१
इष्यन् वाचमुप वक्तेव ८४३
ईळेन्यः पवमानो ४३
ईशान इमा भुवनानि ७७५
उक्षा मिमाति प्रति ६२४
उक्षेव यूथा परियन्नरावी ६४९
उच्चा ते जातमन्धसो ४०८
उत त्या हरितो दश ४६७
उत त्वामरुणं वयं ३२७
उत न एना पवया ९२०
उत नो गोमतीरिषो ४५२
उत नो गोविदश्ववित् ३७७
उत नो वाजसातये ११८
उत प्र पिप्य ऊधर ८३१
उत स्म राशिं परि ७९५
उत स्वस्य अरात्यः ६९९
उताहं नक्तमुत सोम १०३०
उतो सहस्रभर्णसं ५१४
उत्ते शुष्मास ईरते ३५२
उत्ते शुष्मासो अस्थुः ३६७
उदातैर्जिहते बृहद् ४५
उन्मध्व ऊर्मिर्वननो ७७८
उप त्रितस्य पाष्योः ९७२
उप प्रियं पनिप्नतं ६०७
उप शिक्षाप तस्थुषो १६८
उपास्मै गायता नरः ९७
उपो मतिः पृच्यते ६२२
उपो षु जातमप्तुरं ४११
उभयतः पवमानस्य ७४४
उभा देवा नृचक्षसा ४७
उभाभ्यां देव सवितः ६०३
उभे द्यावापृथिवी विश्वमिन्वे ७११
उभे सोमावचाकसन् २५०

उरु गव्यूतिर भयानि कृण्वन्	८१४
उस्रा वेद वसूनां	३८८
ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि	७३८
ऊर्मियंस्ते पवित्र आ	४९९
ऋजु: पवस्व वृजिनस्य	९१०
ऋतं वदन्नृतद्युम्न	१०९७
ऋतस्य गोपा न दभाय	६६६
ऋतस्य जिह्वा पवते मधु	६७८
ऋतस्य तन्तुर्विततः	६६७
ऋधक् सोम स्वस्तये	५१८
ऋभुनं रथ्यं नवं	१८२
ऋषिमना य ऋषिकृत्	८६१
ऋषिर्विप्रः पुरएता	७८९
ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः	११०६
एत उ त्ये अवीवशन्	१८३
एतं त्यं हरितो दश	२८५
एतं त्रितस्य योषणो	२८४
एतमु त्यं दश क्षिपो	१३९
एतम त्यं दश क्षिपः	४०५
एतमु त्यं मदच्युतं	१०४७
एतं मृजन्ति मर्ज्यं पवमानं	३३६
एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणे	१३८
एतानि सोम पवमानो	६९६
एते असृग्रमाशवो	४६२
एते असृग्रमिन्दवः	४२९
एते धामान्यार्या	४७२
एते धावन्तीन्दवः	१७७
एते पूता विपश्चितः (विपा)	१८६
एते पूता विपश्चितः (सूर्यासो)	९६६
एते पृष्ठानि रोदसोः	१८८
एते मृष्टा अमर्त्याः	१८७
एते वाता इवोरवः	१८५
एते विश्वानि वार्या	१८०
एते सोमा अति वाराण्यव्या	८०१
एते सोमा अभि गव्या	७९१
एते सोमा अभि प्रियं	७०
एते सोमा असृक्षत	४५०
एते सोमः पवमानास	६२९
एते सोमास आशवो	१८४
एते सोमास इन्दवः	३३३
एना विश्वान्यर्यं आ	४०९
एन्दो पार्थिवं रयिं	२३४
एन्द्रस्य कुक्षा पवते	७०४
एवा त इन्दो सुभ्वम्	७०१
एवा देव देवताते	८९४
एवा न इन्दो अभि	८८८
एवा नः सोम परिषिच्यमान आ	९०३
एवा नःसोम परिषिच्यमानो वयो	६२०
एवा पवस्व मदिरो	८८२
एवा पुनान इन्द्रयुः	६०
एवा पुनानो अपः स्वः	८२२
एवामृताय महे क्षयाय	१०५५
एवा राजेव क्रतुमां	८१६
एष इन्द्राय वायवे	२१८
एष उ स्य पुरुव्रतो	३०
एष उ स्य वृषा रथो	२८३
एष कविरभिष्टुतः	२१७
एष गव्युरचक्रदत्	२२०
एष तुन्नो अभिष्टुतः	५९८
एष दिवं वि धावति	२७
एष दिवं व्यासरत्	२८
एष देवः शुभायते	२२५
एष देवो अमर्त्यः	२१
एषा देवो रथर्यति	२५
एषा देवो विपन्युभिः	२३
एषा देवो विपा कृतो	२२
एवा धिया यात्यण्व्या	१३२
एष नृभिर्वि नीयते	२१९
एष पवित्रे अक्षरत्	२२४
एष पुनानो मधुमां	१०८५
एष पुरु धियायते	१३३
एष प्र कोशे मधुमां	६८७
एष प्रत्नेन जन्मना	२९
एष प्रत्नेन मन्मना	३०८
एष प्रत्नेन वयसा	९१४
एष रुक्मिभिरीयते	१३६
एष वसूनि पिब्दना	१३७
एष वाजी हितो नृभिः	२२३
एष विप्रैरभिष्टुतो	२६
एष विश्ववित् पवते	९२३
एषा विश्वानि वार्या	२४
एष वृषा कनिक्रदत्	२२६
एष वृषा वृषव्रतः	४३९
एष शुष्म्यदाभ्यः	२२८
एष शुष्म्यसिष्यदत्	२२२
एष शृङ्गाणि दोधुवत्	१३५
एष सुवानः परि सोमः	७९३
एष सूर्यमरोचयत्	२२७
एष सूर्येण हासते	२२१
एष सोमो अधि त्वचि	५७७
एष स्य ते पवत	९१३
एष स्य ते मधुमां	७९०
एष स्य धारया	१०४१
एष स्य परि षिच्यते	४४१
एष स्य पीतये सुतो	२८८
एष स्य मद्यो रसो	२८७
एष स्य मानुषीष्वा	२८६
एष स्य सोमः पवते	७२५
एष स्य सोमो मतिभिः	८५८
एष हितो वि नीयते	१३४
एषा ययौ परमादन्तः	७९४
ककुहः सोम्यो रस	५८६
कनिक्रदत् कलशे गोभिरज्य	७३१
कनिक्रददनु पन्थामृतस्य	८९९
कनिक्रन्ति हरिरा	८३९
कविं मृजन्ति मर्ज्यं	४७८
कविर्वेधस्या पर्येषि	७१३
कारुरहं ततोऽभिषक्	१०९२
कुविद्वृषण्यन्तीभ्यः	१६७
कृण्वन्तो वरिवो गवे	४३१
कृतानीदस्य कर्त्वा	३३८
केतुं कृण्वन् दिवस्परि	४९६
क्रत्वा दक्षस्य रथ्यं	१४१
क्रत्वा शुक्रेभिरक्षभिः	९७८
क्रत्वे दक्षाय नः कवे	९५०
क्राणा शिशुर्महीनां	९७१
क्रळुमंखो न मंहयुः	१७६

गन्धर्वं इत्था पदमस्य ७२०
गिरस्त इदं ओजसा १७
गिरा जात इह स्तुत ४४३
गिरा यदी सबन्धवः १२५
गोजिन्नः सोमो रथजिद् ६९५
गोमन्न इन्दो अश्ववत् ९९४
गोमन्नः सोम वीरवद् ३१२
गोवित् पवस्व वसुविद् ७७७
गोषा इन्दो नृषा अस्य २०
ग्रन्थिं न वि ष्य ग्रथितं ८८५
ग्राव्णा तुन्नो अभि ष्टुतः ५९७
घृतं पवस्व धारया ३४९
चक्रिर्दिवः पवते कृत्व्यो ६९१
चतस्र ईं घृतदुहः ८०८
चमूषच्छ्येनः शकुनो ८६२
चरुर्नं यस्तमीङ्खयते ३६४
जघ्निर्वृममित्रियं ४१८
जज्ञानं सप्तमातरो ९७४
जनयन् रोचना दिवो ३०७
जरतीभिरोषधीभिः पर्णेभिः १०९१
जायेव पत्यावधि शेव ७१५
जुष्ट इन्द्राय मत्सरः १२२
जुष्टो मदाय देवतात ८८६
जुष्ट्वी न इन्दो सुपथा ८८३
ज्योतिर्यज्ञस्य पवते ७४८
तं वः सखायो मदाय ९९१
तं वेधां मेधयाह्यन् २१३
तं सखायः पुरोरुचम् ९३७
तं सानावधि जामयो २१५
तं सोतारो धनस्पृतं ४४६
तं हिन्वन्ति मदच्युतं ३७०
तक्षद्यदी मनसो ८८९
तं मायया पुराध्या ९४१
तं गावो अभ्यनूषत २१२
तं गीर्भिर्वाचमीङ्खयं २६९
तं गोभिर्वृषणं रसं ५७
तनूनपात्पवमानः ४२
तन्तुं तन्वानमुत्तमं १८९
तं ते सोतारो रसं १०६३
तं त्रिपृष्ठे त्रिवन्धुरे ४४५
तं त्वा देवेभ्यो मधुमत्तमं ७०५
तं त्वा धर्तारमोण्योः ५२९
तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतं ३४२
तं त्वा मदाय घृष्वय १८
तं त्वा विप्रा वचोविदः ५११
तं त्वा सहस्रचक्षसं ३९६
तं त्वा सुतेष्वाभुवो ५४५
तं त्वा हस्तिनो मधुमन्तं ७०६
तं त्वा हिन्वन्ति वेधसः २१६
तं दुरोषमभी नरः ९५७
तन्नु सत्यं पवमानस्यास्तु ८२७
तं नो विश्वा अवस्युवो ३१४
तपोष्पवित्रं विततं ७१८
तममृक्षन्त वाजिनं २११
तमस्य मर्जयामसि ९४०
तमह्यन् भुरिजोर्धिया २१४
तमिद्वर्धन्तु नो गिरो ४१२
तमीं हिन्वन्त्यग्रुवो ८
तमीमण्वीः समर्य आ ७
तमी मृजन्त्यायवो ४७५
तमुक्षमाणमव्यये ९४२
तमु त्वा वाजिनं नरो १५४
तं मर्मृजानं महिषं ८४२
तया पवस्व धारया यया गाव ३४८
तया पवस्व धारया यया पितो ३३०
तरत् स मन्दी धावति ३८७
तरत् समुद्रं पवमान १०२५
तव क्रत्वा तवोतिभिः ३६
तव त्य इन्दो अन्धसो ३५९
तव त्ये सोम पवमान ८२६
तव द्रप्सा उदप्रुत १००४
तव प्रत्नेभिरध्वभिः ३६३
तव विश्वे सजोषसो १५८
तव शुक्रासो अर्चयो ५५३
तवाहं सोम रारण १०२९
तवेमाः प्रजा दिव्यस्य ७६६
तवेमे सप्त सिन्धवः ५५४
तस्य ते वाजिनो वयं ५२७
ता अभि सन्तमस्तृतं ८३
ताभ्यां विश्वस्य राजसि ५५०
तिस्रो वाच ईरयति ९०१
तिस्रो वाच उदीरते २५६
तुभ्यं वाता अभिप्रियः २४३
तुभ्यं गावो घृतं पयो २४५
तुभ्येमा भुवना कवे ४५५
ते अस्य सन्तु केतवो ६३३
ते नः पूर्वास उपरास ६८९
ते नः सहस्रिणं रयिं ११९
ते नो वृष्टिं दिवस्परि ५४२
ते प्रत्नासो व्युष्टिषु ९३६
ते विश्वा दाशुषे वसु ४९४
ते सुतासो मदिन्तमाः ५९६
त्रिभिष्ट्वं देव सवितः ६०४
त्रिरस्मै सप्त धेनवो ६३१
त्रीणि त्रितस्य धारया ९७३
त्वं राजेव सुव्रतो १७४
त्वं विप्रस्त्वं कविः १५७
त्वं समुद्रिया अपो ४५४
त्वं समुद्रो असि विश्ववित् ७६७
त्वं सुतो नृमादनो ५८०
त्वं सुष्वाणो अद्रिभिः ५८१
त्वं सूर्ये न आ भज ३५
त्वं सोम नृमादनः २०१
त्वं सोम पणिभ्य आ १९०
त्वं सोम पवमानो ३९३
त्वं सोम विपश्चितं तना १४७
त्वं सोम विपश्चितं पुनानो ५१३
त्वं सोम सूर एष स्तोकस्य ५६६
त्वं सोमासि धारयुः ५७९
त्वं हि सोम वर्धयन् ३६०
त्वं ह्यङ्ग दैव्या १०३९
त्वं त्यत् पणीनां १०८८
त्वं द्यां च महिव्रत ९५४
त्वं धियं मनोयुजं ९४८
त्वं नृचक्षा असि सोम ७७६
त्वमिन्दो परि स्रव ४३७
त्वमिन्द्राय विष्णवे ३८२

त्वं पवित्रे रजसो ७६८
त्वया वयं पवमानेन ९२५
त्वया वीरेण वीरवो ३६७
त्वया हि नः पितरः ८५४
त्वष्टारमग्रजां गोपां ४९
त्वां यज्ञैरवीवृधन् ३९
त्वां रिहन्ति मातरो ९५२
त्वां सोम पवमानं स्वाध्यः ७६२
त्वामच्छा चरामसि ५
त्वां मृजन्ति दश ६१७
त्वेषं रूपं कृणुते ६४८
त्वे सोम प्रथमा १०८१
त्वोतासस्तवावसा ४२२
दविद्युतत्या रुचा ५१६
दिवः पीयूषमुत्तमं ३५८
दिवः पीयूषं पूर्व्यं १०८२
दिवस्पृथिव्या अधि २४२
दिवि ते नाभा परमो ७००
दिवो धर्तासि शुक्रः १०५८
दिवो न सर्गा असमृग्र ८९७
दिवो न सानुं पिप्युषी १४६
दिवो न सानु स्तनयन् ७४७
दिवो नाके मधुजिह्वा ७३६
दिवो नाभा विचक्षणो १०९
दिवो यः स्कम्भो धरुणः ६६९
दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षि ९००
दुहान ऊधर्दिव्यं मधु १०१५
दुहानः प्रत्नमित् पयः ३१०
देवाव्यो नः परिषिच्यमानाः ८९३
देवेभ्यस्त्वा मदाय कं ७४
देवेभ्यस्त्वा वृथा पाजसे १०७३
देवो देवाय धारये ५८
द्रापिं वसानो यजतो ७५२
द्विता व्यूर्ण्वन्नमृतस्य ८३५
द्वियँ पञ्च स्वयशसं ९३१
धर्ता दिवः पवते ६८२
धीभिर्हिन्वन्ति वाजिनं १००७
ध्वस्रयोः पुरुषन्त्यो ३८९
न त्वा शतं चन ह्रुतो ४२५
नप्तीभिर्यो विवस्वतः १२८
नमसेदुप सीदत १०२
नाके सुपर्णमुपपप्तिवांसं ७३७
नानानं वा उ नो १०९०
नाभा नाभिं न आ ददे ९५
नाभा पृथिव्या धरुणो ६५६
नित्यस्तोत्रो वनस्पतिः ११२
निरिणानो वि धावति १२७
नि शत्रोः सोम वृष्ण्यं १६९
नि शुष्ममिन्दवेषां ३६५
नूनं पुनानोऽविभिः १०१२
नू नव्यसे नवीयसे ८६
नू नस्त्वं रथिरो ९१५
नू नो रयिमुप मास्व ८३३
नू नो रयिं महामिन्दो २९७
नृचक्षसं त्वा वयं ७८
नृधूतो अद्रिषुतो ६५३
नृबाहुभ्यां चोदितो ६५४
नृभिर्येमानो जज्ञान १०६०
नृभिर्येमानो हर्यतो १०२६
परा व्यक्तो अरुषो ६४७
परि कोशं मधुश्चुतं ९८१
परि णः शर्मयन्त्या ३०६
परि णेता मतीनां ९८२
परि णो अश्वमश्ववित् ४०१
परि णो देववीतये ३७४
परि णो याह्यस्मयुः ५०६
परि ते जिग्युषो यथा ९४९
परि त्यं हर्यतं हरिं ९३२
परि दिव्यानि मर्मृशद् १३१
परि दैवीरनु स्वधा ९८३
परि द्युक्षं सहसः ६४४
परि द्युक्षः सनद्रयिः ३६२
परि धामनि यानि ते ५५१
परि प्र धन्वेन्द्राय सोम १०५३
परिप्रयन्तं वय्यं सुषंसदं ६१८
परि प्र सोम ते रसो ५९३
परि प्रासिष्यदत् कविः १२४
परि प्रियः कलशे ५५२
परि प्रिया दिवः कविः ७९
परि यत् कविः काव्या ८३६
परि यत् काव्या कविः ६४
परि यो रोदसी उभे १६१
परि वाजे न वाजयुं ४७७
परि वारण्यव्यया ९८०
परि विश्वानि चेतसा १७२
परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं २९०
परिष्कृतास इन्दवो ३३२
परि ष्य सुवानो अक्ष इन्दुः ९२८
परि ष्य सुवानो अव्ययं ९२७
परि सद्मेव पशुमान्ति ८२८
परि सप्तिर्न वाजयुः ९८४
परि सुवानश्चक्षसे १०१३
परि सुवानास इन्दवो ९१
परि सुवानो गिरिष्ठाः १५१
परि सुवानो हरिरंशुः ८२३
परि सोम ऋतं बृहत् ३७९
परि सोम प्र धन्वा ६८१
परि हि ष्मा पुरुहूतो ७९२
परीतो वायवे सुतं ४६८
परीतो षिञ्चता सुतं सोम १०११
पर्जन्यः पिता महिषस्य ७१४
पर्जन्यवृद्धं महिषं १०९३
पर्यू षु प्र धन्व १०७५
पवते हर्यतो हरिः १००९
पवते हर्यतो हरिर्गृणानो ५४३
पवन्ते वाजसातये ११७
पवमान ऋतः कविः ४५८
पवमान ऋतं बृहत् ५७३
पवमान सुतो नृभिः ४४४
पवमान सो अद्य नः ६००
पवमान धिया हितो २०६
पवमान नि तोशसे ४८१
पवमानमवस्यवो ११६
पवमान महि श्रव ९५३
पवमान महि श्रवो गाम् ८७
पवमान मह्यर्णो ७७२
पवमान रसस्तव ४१६
पवमान रुचा रुचा ५२०
पवमान विदा रयिमस्मभ्यं सोम दुष्टरम् ४६९

पवमान विदा रयिमस्मभ्यं सोम सुश्रियम् ३१६
पवमान सुवीर्यं १०५
पवमानस्य जङ्घ्नतो ५७३
पवमानस्य ते कवे ५५८
पवमानस्य ते रसो ४१५
पवमानस्य ते वयं ४०२
पवमानस्य विश्ववित् ४९५
पवमान स्वर्विदो ३९४
पवमाना असृक्षत पवित्रमति १०३५
पवमाना असृक्षत सोमाः ४८३
पवमाना दिवस्परि ४८५
पवमानास आशवः ४८४
पवमानास इन्दवः ५८५
पवमानो अजीजनद् ४१४
पवमानो अति स्रिधो ५७०
पवमानो अभि स्पृधो ६५
पवमानो अभ्यर्षा सुवीर्यम् ७३४
पवमानो असिष्यद् रक्षांसि ३५१
पवमानो रथीतमः ५७४
पवमानो व्यश्नवत् ५७५
पवस्व गोजिदश्वजित् ३९१
पवस्व जनयन्निषो ५५२
पवस्व दक्षसाधनो २०५
पवस्व देवमादनो ७२२
पवस्व देववीतय इन्दो १००३
पवस्व देववीरति ११
पवस्व देवायुषग् ४८०
पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय १०३७
पवस्व वाचो अग्रियः ४५३
पवस्व वाजसातमः ९५१
पवस्व वाजसातयेऽभिविश्वानि १०३३
पवस्व वाजसातये विप्रस्य ३१८
पवस्व विश्वचर्षणे ५४९
पवस्व वृत्रहन्तमोक्थेभिः २०३
पवस्व वृष्टिमा सु नो ३४७
पवस्व सोम क्रतुविन् ७८६
पवस्व सोम क्रत्वे दक्षाय १०६२
पवस्व सोम दिव्येषु ७६०
पवस्व सोम देववीतये ६३९
पवस्व सोम द्युम्नी १०५९
पवस्व सोम मधुमां ८५६
पवस्व सोम मन्दयन् ५९४
पवस्व सोम महान् १०५६
पवस्वाद्भ्यो अदाभ्यः ३९२
पवस्वेन्दो पवमानो ८६४
पवस्वेन्दो वृषा सुतः ४२६
पवित्रं ते विततं ७१७
पवित्रवन्तः परि वाचं ६६१
पवित्रेभिः पवमानो ८९१
पवीतारः पुनीतन ३४
पावमानीर्यो अध्येति ५१०
पितुर्मातुरध्या ये ६६३
पिबन्त्यस्य विश्वे १०६७
पुनन्तु मां देवजनाः ६०५
पुनाता दक्षसाधनं ९८७
पुनाति ते परिस्रुतं ६
पुनान इन्दवा भर (त्वं वसूनि) ९४७
पुनान इन्दवा भर (वृषन्) ३००
पुनान इन्दवेषां पुरुहूत ५१५
पुनानः कलशेष्वा ७५
पुनानः सोम जागृविः १०१६
पुनानः सोम धारयापो १०१४
पुनानः सोम धारयेन्दो ४८६
पुनानश्चमू जनयन् १०२८
पुनानासश्चमूषदो ७१
पुनानो अक्रमीदभि २९५
पुनानो देववीतय ५०३
पुनानो याति हर्यतः ३१५
पुनानो रूपे अव्यये १४५
पुनानो वरिवस्कृधि ५०२
पुरः सद्य इत्थाधिये ४००
पुरोजिती वो अन्धसः ९५५
पूर्वामनु प्रदिशं याति १०८९
प्र कविर्देववीतये १७०
प्र काव्यमुशनेव ८७४
प्र कृष्टिहेव शूष एति ६४२
प्र गायताभ्यर्चाम ८७१
प्र गायत्रेण गायत ३९५
प्र ण इन्दो महे तन ३१९
प्र ण इन्दो महे रण ५६१
प्र णो धन्वत्विन्दवो ६९८
प्र त आशवः पवमान ७३९
प्र त आश्विनीः पवमान ७४२
प्र तु द्रव परि कोशं ७८७
प्र ते दिवो न वृष्टयो ४५६
प्र ते धारा अत्यण्वानि ७८५
प्र ते धारा असश्चतो ३८३
प्र ते धारा मधुमतीः ८९८
प्र ते मदासो मदिरास ७४०
प्र ते सोतार ओण्योः १४०
प्रत्नान्मानादध्या ये ६६४
प्र त्वा नमोभिरिन्दव १४४
प्र दानुदो दिव्यो दानु ८९०
प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्दवो ६११
प्र धन्वा सोम जागृविः १०००
प्र धारा अस्य शुष्मिणो २३५
प्र धारा मध्वो अग्रियो ६२
प्र निम्नेनेव सिन्धवो १४८
प्र पवमान धन्वसि २००
प्र पुनानस्य चेतसा १४३
प्र पुनानाय वेधसे ९७९
प्र प्यायस्व प्र स्यन्दस्व ६०६
प्रप्र क्षयाय पन्यसे ८०
प्र युजो वाचो अग्रियो ६३
प्र ये गावो न भूर्णयः ३०१
प्र राजा वाचं जनयन् ६९२
प्र रेभ एत्यति वारं ७६९
प्र वाचमिन्दुरिष्यति १११
प्र वाजमिन्दुरिष्यति २६८
प्रवृण्वन्तो अभियुजः १७८
प्र वो धियो मन्द्रयुवो ७५५
प्र शुक्रासो वयोजुवो ५४४
प्र सुन्वा नस्यान्धसो ९६७
प्रसवे त उदीरते ३५३
प्र सुमेधा गातुवित् ८२५

प्र सुवान इन्दुरक्षाः	५७६
प्र सुवानो अक्षाः सहस्र	१०६८
प्र सुवानो धारया तने	२५९
प्र सेनानीः शूरो	८४४
प्र सोम देववीतये	१०२२
प्र सोम मधुमत्तमो	४७४
प्र सोम याहि धारया	५५५
प्र सोम याहीन्द्रस्य	१०७०
प्र सोमस्य पवमानयोर्मँया	७०७
प्र सोमाय व्यश्ववत्	५२५
प्र सोमासः स्वाध्यः	२४१
प्र सोमासो अधन्विषुः	१९८
प्र सोमासो मदच्युतः	२४७
प्र सोमासो विपश्चितो	२५३
प्र सोमा अति धारया	२३८
प्र स्वानासो रथा इवा	८८
प्र हंसासस्तृपलं मन्युं	८७५
प्र हिन्वानास इन्दवो	५०४
प्र हिन्वानो जनिता	८११
प्राव्रीविपद्वाच ऊर्मि	८५०
प्रास्य धारा अक्षरन्	२२९
प्रास्य धारा बृहतीः	८६५
प्रो अयासीदिन्युरिन्द्रस्य	७५४
प्रो स्य वह्निः पथ्याभिः	८०४
बभ्रवे नु स्वतवसे	१००
बर्हिः प्राचीनमोजसा	४४
बिभर्ति चार्विन्द्रस्य	१०६६
ब्रह्मा देवानां पदवीः	८४९
भद्रा वस्त्रा समन्या	८६९
भारती पवमानस्य	४८
भुवत् त्रितस्य मर्ज्यो	२६२
मघोन आ पवस्व नो	७६
मती जुष्टो धिया हितः	३२०
मत्सि वायुमिष्टये	९०९
मत्सि सोम वरुणं	८१५
मदच्युत्क्षेति सादने	१०८
मधुपृष्ठं घोरमयासमश्वं	८०७
मधोर्धारामनु क्षर	१५५
मध्वः सूदं पवस्व	९११
मनीषिभिः पवते	७५८
मन्द्रया सोमा धारया	५२
मन्द्रस्य रूपं विविदुर्मनीषिणः	६१६
मर्मृजानास आयवो	५०५
मर्यो न शुभ्रस्तन्वं	८६३
महत्तत्सोमो महिषः	९०८
महाँ असि सोम ज्येष्ठ	५६४
महान्तं त्वा महीरनु	१४
महि प्सरः सुकृतं	६७०
महीमे अस्य वृषनाम	९२१
महो नो राय आ भर	४२४
मिमाति वह्निरेतशः	५०७
मृजन्ति त्वा दश क्षिपो	७३
मृजन्ति त्वा समग्रुवो	५५७
मृजानो वारे पवमानो	१०३२
मृज्यमानः सुहस्त्य	१०३१
य आर्जीकेषु कृत्वसु	५४१
य इन्दोः पवमानस्य	११०५
य इमे रोदसी मही	१६०
य उग्रेभ्यश्चिदोजियान्	५६५
य उस्रिया अप्या अन्तः	१०४२
य ओजिष्ठस्तमा भर	९६३
यः पावमानीरध्येति	६०९
यः सोमः कलशेष्वाँ	११०
यज्ञस्य केतुः पवते	७४५
यत्ते पवित्रमर्चिवत्	६०२
यत्ते पवित्रमर्चिषि	६०१
यत्ते राजञ्छृतं हविः	११०८
यत्र कामा निकामाश्च	११०३
यत्र ज्योतिरजस्रं	११००
यत्र ब्रह्मा पवमान	१०९९
यत्र राजा वैवस्वतो	११०१
यत्र नन्द्राश्च मोदाश्च	११०४
यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके	१००२
यत सोम चित्रमुक्थ्यं	१६३
यत् सोमो वाजमर्षति	३८०
यथापवथा मनवे	८५५
यथा पूर्वेभ्यः शतसा	७१६
यदद्भिः परिषिच्यसे	५२४
यदन्ति यच्चं दूरके	५९९
यं त्वा वाजिन्नघ्न्या	७०३
यमत्यमिव वाजिनं	५६
यमी गर्भमृतावृधो	९७६
यवंयवं नो अन्धसा	३७५
यस्ते मदो वरेण्यस्तेना	४१७
यस्य ते द्युम्नवत् पयः	५७८
यस्य ते पीत्वा	१०३८
यस्य ते मद्यं रसं	५३३
यस्य न इन्द्रः पिबाद्यस्य	१०५०
यस्य वर्णं मधुश्चुतं	५२६
या ते भीमान्यायुधा	४२८
यास्ते धारा मधुश्चुतो	४३५
युवं हि स्थः स्वर्पती	१६४
ये ते पवित्रमूर्मयो	४०३
येना नवग्वो दध्यङ्	१०४०
ये सोमासः परावति	५४०
यो अत्य इव मृज्यते	३१३
यो जिनाति न जीयते	३७८
यो धारया पावकया	९५६
रक्षा सु नो अररुषः	२३३
रक्षोहा विश्वचर्षणिः	२
रयिं नश्चित्रमश्विनं	४०
रसं ते मित्रो अर्यमा	५१२
रसाय्यः पयसा पिन्वमान	८८१
राजानो न प्रशस्तिभिः	९०
राजा मेधाभिरीयते	५३४
राजा समुद्रं नद्यो	७४६
राजा सिन्धूनामवसिष्ट	८०५
राजा सिन्धूनां पवते	७७१
राज्ञो नु ते वरुणस्य	८०३
रायः समुद्रांश्चतुरो	२५८
रुजा दृळ्हा चिद्रक्षसः	८२०
रुवति भीमो वृषभः	६३७
वनस्पतिं पवमान	५०
वन्वन्नवातो अभि	८१०
वयं ते अस्य वृत्रहन्	९३०
वरिवो धातमो भव	३
वाचो जन्तुः कवीनां	५९१

वायुर्न यो नियुत्वाँ ७९८
वावृधानाय तूर्वये ३०९
वाश्रा अर्षन्तीन्दवो १२१
विघ्नन्तो दुरिता पुरु ४३०
विपश्चिते पवमानाय ७८२
वि यो ममे यम्या ६१३
विश्वस्मा इत् स्वर्दृशे ३४५
विश्वस्य राजा पवते ६८५
विश्वा धामानि विश्वचक्ष ७४३
विश्वा रुपाण्याविशन् २०८
विश्वा वसूनि संजयन् २३२
विश्वा सोम पवमान २९८
विश्वे देवाः स्वाहाकृति ५१
विश्वो यस्य व्रते जनो २७०
विष्टम्भो दिवो धरुणः ८०९
वीती जनस्य दिव्यस्य ८१८
वृथा क्रीळन्त इन्दवः १७९
वृषणं धीभिरप्तुरं ४७९
वृषाणं वृषभिर्यतं २६१
वृषा पवस्य धारया ५२८
वृषा पुनान आयुषु १६५
वृषा मतीनां पवते ७५७
वृषा वि जज्ञे जनयन् १०४८
वृषा वृष्णे रोरुवद् ८१९
वृषा शोणो अभिकनिक्रदद् ८८०
वृषा सोम द्युमाँ असि ४८९
वृषा ह्यसि भानुना ५२२
वृषेव यूथा परि कोशं ६८६
वृष्टिं दिवः परि स्रव ७७
वृष्टिं दिवः शतधारः ८५७
वृष्टिं नो अर्ष दिव्यां ८८४
वृष्णस्ते वृष्ण्यंशवो ४९०
शतं धारा देवजाताः ८९६
शतं न इन्द ऊतिभिः ३६६
शर्यणावति सोमं १०९४
शिशुं जज्ञानं हरिं १०६४
शिशुं जज्ञानं हर्यतं ८६०
शिशुर्न जातोऽव ६६८
शुक्रः पवस्व देवेभ्यः १०५७
×

शुचिः पावक उच्यते २०४
शुचिः पुनानस्तन्वमरेपस ६३८
शुभ्रमन्धो देववातं ४३३
शुम्भमान ऋतायुभिः २७४
शुम्भमाना ऋतायुभिः ४९३
शुष्मी शर्धो न मारुतं ८०२
शूरग्रामः सर्ववीरः ८१३
शूरो न धत्त आयुधा ६८३
शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः ३०३
श्येनो न योनिं सदनं ६४६
श्रिये जातः श्रिय ८३७
श्वेतं रुपं कृणुते ६७४
स ईं रथो न भुरिषाळ् ७९७
सं वत्स इव मातृभिः ९९२
संवृक्तधृष्णुमुक्थ्यं ३४३
सखाय आ नि षीदत ९८५
स तू पवस्व परि पार्थिवं राजा स्तोत्रे ६५७
स तू पवस्व परि पार्थिवं राजो दिव्या च १०३४
सत्यमुग्रस्य बृहतः १०९८
स त्रितस्याधि सानवि २८०
स देवः कविनेषितो २८२
स न इन्द्राय यज्यवे ४१०
स न ऊर्जे व्यव्ययं ३५०
स नः पवस्व वाजयुः ३२२
स नः पवस्व शं गवे ९९
स नः पुनान आ भर रयिं वीरमतीम् ४०४
स नः पुनान आ भर रयिं स्तोत्रे २९९
सना च सोम जेषि च ३१
सना ज्योतिः सना स्वः ३२
सना दक्षमुत क्रतुं ३३
सनेमि कृध्यास्मदा ९९०
सनेमि त्वमस्मदाँ अदेवं ९९६
स नो अद्य वसुत्तये ३२४
स नो अर्ष पवित्र आ ५००
स नो अर्षाभि दूत्यं ३२६
स नो ज्योतींषि पूर्व्य २७३

स नो देव देवताते ८४६
स नो देवेभिः पवमान ८३२
स नो भगाय वायवे पूष्णे ४०७
स नो भगाय वायवे विप्रवीरः ३२३
स नो मदानां पत ९८९
स नो विश्वा दिवो वसूतो ३८६
स नो हरीणां पत ९९५
सं त्री पवित्रो विततानि ९२२
सं दक्षेण मनसा जायते ६१५
सं देवैः शोभते वृषा २०७
स पवस्व धनंजय ३३५
स पवस्व मदाय कं ३२५
स पवस्व मदिन्तम ३५६
स पवस्व य अविथेन्द्रं ४२०
स पवस्व विचर्षण ३०५
स पवस्व सहमानः १०८६
स पवित्रे विचक्षणो २७८
स पुनान उप सूरे न ९०५
स पुनानो मदिन्तमः ९४३
स पूर्व्यः पवते ६८८
स पूर्व्यो वसुविज्जायमानो ८५३
सप्त दिशो नानासूर्याः ११०७
सप्त स्वसारो अभि मातरः ७७४
सप्तिं मृजन्ति वेधसो २३०
स प्रत्नवन्नव्यसे ८२१
स भन्दना उदियर्ति ७७९
सं भिक्षमाणो अमृतस्य ६३२
स मत्सरः पृत्सु वन्वन् ८५१
स मर्मृजान आयुभिः प्रयस्वान् ५७१
स मर्मृजान आयुभिरिभो ३८५
स मर्मृजान इन्द्रियाय ६३५
समस्य हरिं हरयो ८४५
स मातरा न ददृशान ६३६
स मातरा विचरन् वाजयान् ६१४
स मामृजे तिरो अण्वानि १०२१
समिद्धो विश्वतस्पतिः ४१
समिन्द्रेणोत वायुना ४०६
समीचीना अनूषत २९४
समीचीनास आसते ९४

समीचीने अभि त्मना ९७७
समी रथं न भुरिजोरहेषत ६४५
समी वत्सं न मातृभिः ९८६
समी सखायो अस्वरन् ३२९
समु त्वा धीभिरस्वरन् ५५६
समुद्रिया अप्सरसो ६९४
समुद्रो अप्सु मामृजे १५
समु प्रिया अनूषत ९६२
समु प्रियो मृज्यते ८७७
स मृज्यते सुकर्मभिः ९४४
स मृज्यमानो दशभिः ६३४
समेनमन्हुता इमा २६४
सं मातृभिर्न शिशुः ८३०
संमिश्लो अरुषो भव ४१९
सम्यक् सम्यञ्चो महिषा ६६०
स रंहत उरुगायस्य ८७६
स रोरुवदभिपूर्वा ६१२
स वर्धिता वर्धनः ९०६
स वह्निः सोम जागृविः २७९
स वह्निरप्सु दुष्टरो १७५
स वां यज्ञेषु मानवी ९३४
स वाजी रोचना दिवः २७९
स वाज्यक्षाः सहस्ररेताः १०६९
स विश्वा दाशुषे वसु २७५
स वीरो दक्षसाधनो ९६९
स वृत्रहा वृषा सुतो २८१
स वायुमिन्द्रमश्विना ६७
स शुष्मी कलशेष्वा १६२
स सप्त धीतिभिर्हितो ८२
स सुतः पीतये वृषा २७७
स सुन्वे यो वसूनां १०४९
स सूनुर्मातरा शुचिः ८१
स सूर्यस्य रश्मिभिः परि ७७७
सहस्रणीयः शतधारो ७३०
सहस्रधारं वृषभं १०४४
सहस्रधारः पवते समुद्रो ९६०
सहस्रधारेऽव ता असश्चतः ६७३
सहस्रधारेऽव ते समस्वरन् ६६२
सहस्रधारे वितते पवित्र ६६५
सहस्रोतिः शतामघो ४४२
स हि त्वं देव शश्वते ९२९
स हि ष्मा जरितृभ्य आ १७१
साकं वदन्ति बहवो ६५१
साकमुक्षो मर्जयन्त ८२९
सिंहं नसन्त मध्वो ८०६
सिन्धोरिव प्रवणे ६२७
सिषासतू रयीणां ३४१
सुत इन्दो पवित्र आ ९४५
सुत इन्द्राय वायवे २६०
सुत इन्द्राय विष्णवे ४६१
सुत एति पवित्र आ २९१
सुता अनु स्वमारजो ४६४
सुता इन्द्राय वज्रिणे ४७३
सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय २५५
सुतासो मधुमत्तमाः ९५८
सुनोता मधुमत्तमं सोमं २४०
सुवितस्य मनामहेऽति ३०२
सुवीरासो वयं धना ४२१
सुशिल्पे बृहती मही ४६
सुषहा सोम तानि ते २३१
सुष्वाणासो व्यद्रिभि ९६५
सूर्यस्येव रश्मयो ६२६
सो अग्ने अह्ना हरिः ७८०
सो अर्षेन्द्राय पीतये ४३६
सो अस्य विशे महि ७५३
सोम उ षुवाणः सोतृभिः १०१८
सोमः पवते जनिता ८४८
सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यो १००६
सोमः पुनानो अर्षति ११५
सोमः पुनानो अव्ययं १०८४
सोमः सुतो धारयात्यो ९१२
सोमं गावो धेनवो ९०२
सोमस्य धारा पवते ७०२
सोमा असृग्रमाशवो १९१
सोमा असृग्रमिन्दवः १०६
सोमाः पवन्त इन्दवो ९६४
सोमो अर्षति धर्णसिः १९५
सोमो देवो न सूर्यो ४७१
सोमो मीढ्वान् पवते १०१७
स्तोत्रे राये हरिरर्षा ८७३
स्रक्वे द्रप्सस्य धमतः ६५९
स्वयं कविर्विधर्तरि ३४०
स्वादिष्ठया मदिष्ठया १
स्वादुः पवस्व दिव्याय ७३२
स्वायुधः पवते देव इन्दुः ७८८
स्वायुधः सोतृभिः पूयमानो ८५९
स्वायुधस्य ते सतो २४६
हरिः सृजनः पथ्याम् ८४०
हरिं मृजन्त्यरुषो ६५०
हविर्हविष्मो महि सद्म ७२१
हस्तच्युतेभिरद्रिभिः १०१
हितो न सप्तिरभि ६४०
हिन्वन्ति सूरमुस्रयः पवमानं ५८७
हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वरासो ५१९
हिन्वानासो रथा इव ८९
हिन्वानो वाचमिष्यसि ४९७
हिन्वानो हेतृभिर्यतं ५१७

ऋग्वेद का सुबोध भाष्य

दशम मण्डल

(१) [प्रथमोऽनुवाकः ॥१॥ सू० १-१६]

७ त्रित आप्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

अग्रे बृहन्नुषसामूर्ध्वो अस्थान्निर्जगन्वान् तमसो ज्योतिषागात् ।
अग्निर्भानुना रुशता स्वङ्ग आ जातो विश्वा सद्मान्यप्राः १

स जातो गर्भो असि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृत ओषधीषु ।
चित्रः शिशुः परि तमांस्यक्तून् प्र मातृभ्यो अधि कनिक्रदद्गाः २

[१]

[१] (बृहत्) महान् यह अग्नि (उषसां अग्रे) उषाओंके आगे – उषःकालमें (ऊर्ध्वः) प्रज्वलित होकर (अस्थात्) रहता है । (तमसः) रात्रीके अंधकारसे (निर्जगन्वान्) निकलकर (ज्योतिषा) अपने तेजसे (आगात्) प्रकाशित होकर रहता है। (स्वङ्गः जातः अग्निः) अपने उत्तम तेजसे प्रकाशित होकर यह अग्नि (भानुना) अपने तेजसे (विश्वा सद्मानि) सब स्थान (आ अप्राः) भर देता है ॥ १ ॥

१ उषसां अग्रे बृहत् ऊर्ध्वः अस्थात् — उषःकालमें प्रथम यह अग्नि प्रज्वलित होकर रहता है । उषःकालमें यज्ञकर्ता अग्नि प्रदीप्त करते हैं ।

२ तमसः निर्जगन्वान् ज्योतिषा आगात् — अन्धकारको दूर करता है और अपने तेजसे युक्त होकर आगे आता है ।

३ स्वङ्गः जातः अग्निः— अपने उत्तम तेजसे यह अग्नि प्रकाशता है ।

४ भानुना विश्वा सद्मानि आ अप्राः — अग्नि अपने तेजसे सब स्थानोंको भर देता है ।

[२] हे (अग्ने) अग्ने ! (जातः) उत्पन्न हुआ (ओषधीषु) औषधियोंसे बने अरणियोंमें रहनेवाला (सः) वह तू (रोदस्योः) द्यावा पृथिवीके (गर्भः असि) गर्भरूप हो । (चारुः विभृतः) उत्तम यज्ञस्थानमें धारण किया हुआ हो । और (चित्रः शिशुः) उत्तम पुत्र जैसा (तमांसि अक्तून्) रात्रीके समान शत्रुओंको (परि) पराभूत करता है । वह तू (मातृभ्यः) माताओंके समान (कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ (अधि) उनके समीप (गाः) जाता है ॥ २ ॥

१ ओषधीषु जातः सः रोदस्योः गर्भः असि — औषधियोंमें उत्पन्न हुआ वह तू द्यावापृथिवीमें गर्भके समान हो । द्युलोक पृथिवी लोकमें तू अग्नि ही तेजस्वी दीखनेवाला देव है ।

२ चारुः विभृतः शिशुः चित्रः तमांसि अक्तून् परि — उत्तम रीतिसे पालन किया पुत्र जैसा तेजस्वी होकर, रात्रीके अन्धकार आदि शत्रुओंको दूर करता है । वैसा तरुण शक्तिमान् होकर शत्रुओंको दूर करे।

३ कनिक्रदत् मातृभ्यः अधि गाः — शब्द करता हुआ माताओंके पास जैसा पुत्र जाता है वैसा अग्निके समीप याजक जावे और यज्ञ करे ।

विष्णुरित्था परममस्य विद्वा-ञ्जातो बृहन्नभि पाति तृतीयम् ।
आसा यदस्य पयो अक्रत स्वं सचेतसो अभ्यर्चन्त्यत्र ३
अत उ त्वा पितुभृतो जनित्री-रन्नावृधं प्रति चरन्त्यन्नैः ।
ता ईं प्रत्येषि पुनरन्यरूपा असि त्वं विक्षु मानुषीषु होता ४
होतारं चित्ररथमध्वरस्य यज्ञस्ययज्ञस्य केतुं रुशन्तम् ।
प्रत्यर्धिं देवस्यदेवस्य मह्ना श्रिया त्वग्निमतिथिं जनानाम् ५

---

[३] (विद्वान् जातः) ज्ञानी होकर यह (बृहत् विष्णुः) बडा व्यापक देव (इत्था) इस प्रकार (अस्य परं तृतीयं) इसके श्रेष्ठ तीसरे स्थानको (अभि पाति) सुरक्षित रखता है । (अस्य) इसके (स्वं पयः) अपने जलको (आसा) मुखसे (यत्) जब (अक्रत) यजमान उसकी प्रार्थना करते हैं तब (अत्र) यहां रहे स्तोतागण (सचेतसः) मनःपूर्वक (अभि अर्चन्ति) इसकी अर्चना करते हैं ॥ ३ ॥

१ विद्वान् जातः बृहत् विष्णुः इत्था अस्य परं तृतीयं अभि पाति— विद्वान् होकर प्रसिद्ध हुआ यह बडा व्यापक देव इस प्रकार इसके श्रेष्ठ तीसरे स्थानको सुरक्षित रखता है ।

२ अस्य स्वं पयः आसा यत् अक्रत— इसके अपने जलको अपने मुखसे उत्पन्न करता है, तब वह जीवन-रूप जल नवजीवन देता है ।

३ अत्र सचेतसः अभि अर्चन्ति— यहां यज्ञस्थानमें ज्ञानी अन्तःकरणपूर्वक स्तोत्रोंसे इसका सत्कार करते हैं । यज्ञके स्थानपर यह सत्कार करनेका कार्य याजक करते हैं ।

[४] हे अग्ने ! (अतः उ) इसी कारणसे (पितृभृतः) पिताके समान (जनित्रीः) उत्पन्न करनेवाली औषधियां (अन्नावृधं त्वा) अन्नको बढानेवाले तेरी (अन्नैः प्रति चरन्ति) अन्नोंसे सेवा करते हैं, अन्न अर्पण करके तेरी परिचर्या करते हैं । इसलिये (ईं ताः)इन औषधियोंके पास (प्रति एषि) तू जाता है । (अन्यरूपाः पुनः) जीर्ण हुए औषधियोंके पास भी तू जाता है । (त्वं) तू (मानुषीषु विक्षु) मानवी प्रजाओंमें (होता असि) हवन करने-वाला हो ॥ ४ ॥

१ अतः उ पितृभृतः जनित्रीः अन्नावृधं त्वा अन्नैः प्रति चरन्ति — इसी कारणसे पिताके समान अग्निको उत्पन्न करनेवाली औषधियां अन्नको बढानेवाले तेरी अन्नका हवन करके सेवा करती हैं । अग्निमें औषधि-योंका हवन होनेसे अन्नका अधिक उत्पादन होता है । हवामें गये अणु अन्नका अधिक उत्पादन करनेमें सहायक होते हैं ।

२ ईं ताः प्रति एषि— इन औषधियोंके पास तू जाता है । औषधियोंके हवन करनेसे अग्नि बढता है और औषधियोंके सूक्ष्म अंश फैलनेमें सहाय्य होता है ।

३ अन्यरूपाः पुनः प्रति एषि— जीर्ण हुई औषधियां इस अग्निको बारंवार प्रदीप्त करती हैं । शुष्क औषधियोंके हवनसे अग्नि बढता है ।

४ मानुषीषु विक्षु होता असि— मानवी प्रजामें होता अर्थात् यज्ञ करनेवाला यही कार्य करता है ।

[५] (अध्वरस्य यज्ञस्य) अहिंसामय यज्ञमें (होतारं) हवन करनेवाले (चित्ररथं) नाना प्रकारके रूपके रथके समान स्थानमें रहनेवाले (यज्ञस्य यज्ञस्य केतुं) यज्ञ स्वरूप कर्मके प्राज्ञापक (रुशन्तं) श्वेतवर्णवाले (देवस्य देवस्य) सब देवोंके (अर्धिं) मुख्य इन्द्रके (प्रति) पास (जनानां अतिथिं) मनुष्योंको अतिथिके समान पूज्य (अग्निं) अग्निका (तु श्रिया) तत्काल हम स्तवन करते हैं ॥ ५ ॥

स तु वस्त्राण्यध पेशनानि वसानो अग्निर्नाभा पृथिव्याः ।
अरुषो जातः पद इळायाः पुरोहितो राजन् यक्षीह देवान् ६
आ हि द्यावापृथिवी अग्न उभे सदा पुत्रो न मातरा ततन्थ ।
प्र याह्यच्छोशतो यविष्ठाऽथा वह सहस्येह देवान् ७ [२९] (७)

१ अ-ध्वर— (ध्वरा) हिंसासे जो रहित होता है व 'अ-ध्वर' कहलाता है । हिंसा रहित यज्ञ अध्वर कहलाता है ।

२ अ-ध्वरः यज्ञः— जिसमें हिंसा नहीं होती ऐसा यज्ञ ।

३ अध्वरस्य होतारं अग्नि— हिंसारहित हवन जिसमें होता है ऐसा यह यज्ञका अग्नि है ।

४ जनानां अतिथिं अग्निं धिया— मनुष्योंके लिये अतिथिके समान पूज्य अग्नि है, इसकी स्तुति की जाती है ।

५ अध्वरस्य यज्ञस्य होतारं— हिंसारहित यज्ञका हवन करनेवाला यह अग्नि है ।

[६] हे (राजन्) तेजस्वी अग्ने ! (अध) और (पेशनानि वस्त्राणि वसानः) तेजस्वी प्रकाशरूपी वस्त्र धारण करनेवाला (पृथिव्याः नाभा) पृथिवीके यज्ञरूप नाभिस्थानमें (इळायाः पदे) अर्थात् उत्तरवेदीमें (जातः अरुषः अग्निः) प्रकट हुआ तेजस्वी अग्नि (पुरोहितः) सामने रखा (इह देवान् यक्षि) यहां इस यज्ञमें देवोंका यजन करे ॥ ६ ॥

१ राजन्— तेजस्वी, प्रकाशयुक्त अग्नि ।

२ पेशनानि वस्त्राणि वसानः— तेजोरूप वस्त्र धारण करनेवाला अग्नि है । अग्निके वस्त्र प्रकाशके किरण हैं ।

३ पृथिव्याः नाभा— पृथिवीकी नाभि यज्ञस्थान है ।

४ इळायाः पदे जातः अरुषः अग्निः— उत्तरवेदीके स्थानमें प्रदीप्त हुआ अग्नि तेजस्वी होता है ।

५ पुरोहितः इह देवान् यक्षि— सामने रखा अग्नि इस यज्ञस्थानमें देवोंको हविष्यान्न अर्पण करे ।

[७] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (उभे द्यावापृथिवी) दोनों द्युलोक और पृथिवीलोकको (आ ततन्थ) विस्तृत करता है । (न) जैसा (पुत्रः) पुत्र (मातरा) मातापिताको धनादिसे (सदा) सदा मदत करता है । हे (यविष्ठ) तरुणपुत्र (उशतः अच्छ) इच्छा करनेवालोंके उद्देश्यसे अर्थात् अपने मातापिताके उद्देश्यसे (प्र-याहि) जाता है (अथ) और हे (सहस्य) बलवान् अग्ने ! (इह) इस हमारे यज्ञमें (देवान् आ वह) देवोंको ले आओ ॥ ७ ॥

१ हे अग्ने ! उभे द्यावापृथिवी आततन्थ— हे अग्ने ! तू द्युलोक और पृथिवीको विस्तृत करता है ।

२ पुत्रः मातरा सदा— पुत्र जैसा अपने मातापिताकी सहायता करता है वैसा अग्नि सहायता हरप्रकारकी करता है । इससे मनुष्य सुखी होते हैं ।

३ हे यविष्ठ ! उशतः अच्छ प्र याहि— हे तरुण पुत्र ! तू सहायताकी इच्छा करनेवाले मातापिताके पास जा और उनकी सहायता कर ।

४ अथ सहस्य ! देवान् आ वह— और बलवान् तरुण ! देवोंको यहां ला । देवोंकी सहायता मिले ऐसा उत्तम आचरण कर ।

(२)

७ त्रित आप्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

पिप्रीहि देवाँ उशतो यविष्ठ विद्वाँ ऋतूँर्ऋतुपते यजेह । १
ये दैव्या ऋत्विजस्तेभिरग्ने त्वं होतॄणामस्यायजिष्ठः
वेषि होत्रमुत पोत्रं जनानां मन्धातासि द्रविणोदा ऋतावा । २
स्वाहा वयं कृणवामा हवींषि देवो देवान् यजत्वग्निरर्हन्
आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनु प्रवोळ्हुम् ।
अग्निर्विद्वान् त्स यजात् सेदु होता सो अध्वरान् त्स ऋतून् कल्पयाति ३ (१०)

---

[२]

[८] हे (यविष्ठ) अति तरुण अग्ने ! (उशतः देवान्) सहाय्य करनेकी इच्छा करनेवाले देवोंको (पिप्रीहि) प्रसन्न कर । हे (ऋतुपते) ऋतुओंके स्वामिन ! (ऋतून् विद्वान्) ऋतुओंका विचार करके (इह यज) यहां यज्ञ कर । हे (अग्ने) अग्ने ! (ये दैव्याः ऋत्विजाः) जो दिव्य ज्ञानवान् ऋत्विज हैं, (तेभिः) उनके साथ यज्ञ कर । क्योंकि (त्वं) तू (होतॄणां) होताओंके मध्यमें (आ यजिष्ठः असि) मुख्य यज्ञ करनेवाला हो ॥ १ ॥

१ हे यविष्ठ! उशतः देवान् पिप्रीहि— हे तरुण अग्ने ! सबका कल्याण करनेकी इच्छा करनेवाले देवोंको संतुष्ट कर । इससे वे देव सबका कल्याण कर सकनेमें समर्थ होंगे ।

२ हे ऋतुपते ! ऋतून् विद्वान् इह यज — ऋतुओंको जाननेवाले देव ! ऋतुओंको जानकर यहां यज्ञ कर । किस ऋतुमें क्या होता है यह जानकर उसके अनुसार यज्ञ करना चाहिये ।

३ ये दैव्याः ऋत्विजाः तेभिः इह यज — जो दिव्य ज्ञानवाले याजक हैं उनके साथ तू यज्ञ कर । इससे सबका कल्याण होगा ।

४ त्वं होतॄणां आ यजिष्ठः असि — तू हवन करनेवालोंमें मुख्य हवन करनेवाला है । किस ऋतुमें क्या हवन करना चाहिये इसका ज्ञान करनेवालोंको होना आवश्यक है ।

[९] हे अग्ने ! (जनानां होत्रं) यजमानोंका हवनरूप कर्म हो ऐसा (वेषि) तू चाहता है । और (उत पोत्रं) और स्तुति भी तू चाहता है । तू (मन्धाता) बुद्धिमान् (द्रविणोदा) धनका देनेवाला और (ऋतावा) सत्य मार्गका रक्षक हो । (वयं) हम सब यजमान (हवींषि स्वाहा कृणवाम) हविर्द्रव्योंका स्वाहाकार करते हैं (अर्हन् देवः अग्निः) योग्य अग्निदेव (देवान् यजतु) देवोंके लिये यज्ञ करे ॥ २ ॥

१ जनानां होत्रं वेषि— लोकोंका यज्ञकर्म होता रहे ऐसा अग्नि चाहता है ।

२ मन्धाता द्रविणोदा ऋतावा— तू बुद्धिमान्, धन देनेवाला तथा सत्य यज्ञमार्गका संरक्षक है । मनुष्य बुद्धिमान् हो, धनका दान करे और सत्य धर्मका संरक्षण करे । मनुष्य ये तीन कार्य अवश्य करे ।

३ वयं हवींषि स्वाहा कृणवाम— हम हवन द्रव्योंका उत्तम रीतिसे स्वाहाकार करके यज्ञ करे ।

४ अग्निः देवः देवान् यजतु— अग्निदेव अन्य देवोंके लिये हवन कराके और उन देवोंके पास उनके लिये दिये हवनको पहुंचावे ।

[१०] (देवानां पन्थां अपि आगन्म) देवोंके मार्गसे ही हम जायेंगें । (यत् शक्नवाम) यदि शक्य हुआ तो अवश्य देवोंके मार्गसे जायेंगें। (तत् अनु प्रवोळ्हुम्) वह अनुकूलतासे हो जाय । (सः विद्वान् अग्निः) वह अग्नि ज्ञानी है (सः अग्निः देवान् यजात्) वह अग्नि देवोंका यज्ञ करे । (स इत् उ) वही (होता) हवनकर्ता है (सः अध्वरान्) वह अहिंसायुक्त यज्ञोंको तथा (ऋतून्) ऋतुओंको (कल्पयाति) करता है ॥ ३ ॥

यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।
अग्निष्टद्विश्वमा पृणाति विद्वान् येभिर्देवाँ ऋतुभिः कल्पयाति ४
यत् पाकत्रा मनसा दीनदक्षा न यज्ञस्य मन्वते मर्त्यासः ।
अग्निष्टद्धोता क्रतुविद्विजानन् यजिष्ठो देवाँ ऋतुशो यजाति ५
विश्वेषां ह्यध्वराणामनीकं चित्रं केतुं जनिता त्वा जजान ।
स आ यजस्व नृवतीरनु क्षाः स्पार्हा इषः क्षुमतीर्विश्वजन्याः ६

---

१ देवानां पन्थां अपि आगन्म— देवोंके मार्गसे हम जायेंगे । देवोंने जैसा किया वैसा कार्य हम करेंगे ।

२ यत् शक्नवाम – जहां तक हमारी शक्तिसे हो सकता है वहां तक हम देवोंके मार्गसे ही जायेंगे ।

३ तत् अनु प्रवोळ्हुं – वह देवोंके मार्गसे जानेका कार्य अनुकूलतासे हो जाय । उसमें विरोध खडा न हो ।

४ स विद्वान अग्निः देवान् यजात्— वह ज्ञानी अग्नि देवोंके लिये यज्ञ करे ।

५ स इत् होता अध्वरान् ऋतून् कल्पयाति -- वह अग्नि हवन करता है, हिंसारहित यज्ञ और ऋतुओंको करता है ।

[११] हे (देवाः) देवो ! (अविदुष्टरासः) अज्ञानी (वयं) हम सब (वः) आपके (यत् व्रतानि) जो व्रत हैं (विदुषां) उनको जानकर (प्रमिनाम) विनष्ट कर रहे हैं । (विद्वान् अग्निः) यह सब जाननेवाला अग्नि (तत् विश्वं आ पृणाति) उस सब कर्मको पूर्ण करे । (येभिः ऋतुभिः) जिन ऋतुओंसे (देवान् कल्पयाति) देवोंको पूर्ण करता है ॥ ४ ॥

१ हे देवाः ! अविदुष्टरासः वयं वः व्रतानि विदुषां प्रमिनाम — हे देवो ! अज्ञानी हम आपके उत्तम कार्योंको विनष्ट करते हैं ।

२ विद्वान् अग्निः तत् विश्वं आ पृणाति— विद्वान् अग्नि वह सब पूर्ण करता है । उत्तमरीतिसे परिपूर्ण करता है ।

३ येभिः ऋतुभिः देवान् कल्पयाति— जिन ऋतुओंसे अग्नि देवोंको पूर्ण कर देता है, उनका विचार करके मनुष्योंको भी वैसे कार्य करने चाहिये । ये मनुष्योंके कार्य ऋतुओंके अनुकूल हों । बालपन, तारुण्य वार्धक्य ये मानव जीवनमें ऋतु हैं । इनमें जैसे कार्य करने चाहिये ऐसा शास्त्रमें कहा है, वैसेही कार्य मनुष्य करे और अपने जीवनका सार्थक करे ।

[१२] (दीनदक्षाः) निर्बल (मर्त्यासः) ऋत्विज तथा यज्ञकर्ता लोग (पाकत्रा) परिपक्व होनेवाले (मनसा) मनोबलसे युक्त (यत्) जो (यज्ञस्य न मन्वते) यज्ञकर्म करनेकी विधि नहीं जानते (तत् विजानन् होता) उस विधिको जाननेवाला होता (यजिष्ठः) यज्ञ करनेवाला (अग्निः) अग्नि (ऋतुवित्) यज्ञविधि जानता है और (तत्) उस यज्ञविधिको जानकर (देवान्) देवोंके लिये (ऋतुशः यजाति) ऋतुके अनुकूल यज्ञ करता है ।५॥

१ दीनदक्षाः मर्त्यासः पाकत्रा मनसा यत् यज्ञस्य न मन्वते— निर्बल याजक मानव परिपक्व मनसे जो यज्ञकी विधि है उसको नहीं जानते । जो अज्ञानी लोग हैं वे यज्ञविधिको नहीं जानते हैं ।

२ तत् विजानन् होता यजिष्ठः ऋतुवित् अग्निः देवान् ऋतुशः यजाति— उस यज्ञविधिको जाननेवाला होता यज्ञविधि जाननेके कारण ऋतुके अनुसार यज्ञ करके देवोंको प्रसन्न करता है । यज्ञकी विधि उत्तम रीतिसे जाननी चाहिये और ऋतुओंके अनुसार यज्ञकर्म करने चाहिये । ऐसे विधिके अनुसार हुए यज्ञ ही मनुष्योंका सुख, आरोग्य आदि बढा सकते हैं ।

[१३] हे अग्ने ! (विश्वेषां अध्वराणां अनीकं) सब अहिंसायुक्त यज्ञोंका मुख्य और (चित्रं केतुं) इच्छा करने योग्य विशेष ज्ञान देनेवालेको (जनिता) उत्पन्न करनेवाला यजमान (त्वा जजान) तुझे उत्पन्न करता है । (सः) वह तू (नृवतीः क्षाः) मानवोंसे युक्त भूमीपर (स्पार्हाः) स्पृहणाय (क्षुमतीः) स्तुतियुक्त (विश्वजन्याः) सब मानवोंका हित करनेवाले (इषः) अन्नोंका (यजस्व) यज्ञ कर ॥ ६ ॥

यं त्वा द्यावापृथिवी यं त्वापस्त्वष्टा यं त्वा सुजनिमा जजान ।
पन्थामनु प्रविद्वान् पितृयाणं द्युमदग्ने समिधानो वि भाहि ७ [२०] (१४)

(३)

७ त्रित आप्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि ।
चिकिद्वि भाति भासा बृहता ऽसिक्नीमेति रुशतीमपाजन् १

१ विश्वेषां अध्वराणां अनीकं चित्रं केतुं जनिता त्वा जजान— सब अहिंसामय कर्मोंका मुख्य और इच्छा करनेयोग्य ज्ञानका प्रचार करनेवाला यजमान तुझे उत्पन्न करता है। ऐसा यजमान अग्निको उत्पन्न करके उसमें यजन द्रव्योंकी आहुति देता है।

२ सः नृवतोः क्षाः स्पार्हा क्षुमतीः विश्वजन्या इषः यजस्व— वहां मानवोंसे युक्त भूमीपर स्पृहणीय स्तुति करने योग्य सब मानवोंका हित करनेवाले उत्तम अन्नका हवन किया जाता है।

सबका हित करनेवाले उत्तम अन्नके पदार्थोंका हवन करना चाहिये। हवनीय पदार्थ ऐसे हों कि जो मानवोंके उत्तम अन्नरूप हो सकते हैं।

[१४] (यं त्वा) जिस तुझको (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवीने (जजान) उत्पन्न किया, (यं त्वा आपः) जिस तुझे जलने उत्पन्न किया, (यं त्वा) जिस तुझे (सुजनिमा त्वष्टा जजान) उत्तम जन्मवाले त्वष्टाने उत्पन्न किया ऐसा तू (पितृयाणं) पितरोंके जानेके मार्गको (अनु प्र विद्वान्) जाननेवाला तू, हे (अग्ने) अग्ने! (द्युमत्) तेजस्वी होकर (समिधानः) प्रदीप्त होकर (वि भाहि) विशेष तेजस्वी होकर रहो ॥ ७ ॥

१ यं त्वा द्यावापृथिवी जजान— जिस तुझ अग्निको द्युलोक और पृथिवी इन दोनों लोगोंने उत्पन्न किया है। द्यु और पृथिवीमें अग्नि उत्पन्न हुआ।

२ यं त्वा आपः जजान— मेघोंमें रहे जल विद्युत्रूपी अग्निको उत्पन्न करते हैं।

३ यं त्वा सुजनिमा त्वष्टा जजान— जिस अग्निको उत्तम कारीगर बनाता है। कारीगर घर्षणसे अग्नि उत्पन्न करता है।

४ पितृयाणं अनु प्र विद्वान्— पितरोंके मार्गको यह जानता है।

५ समिधानः द्युमत् विभाहि— समिधाओंसे प्रज्वलित होकर, हे अग्ने! तू प्रकाशित हो जाओ।

[३]

[१५] हे (राजन्) प्रकाशित होनेवाले अग्ने! तू (इनः) स्वामी है। (अरतिः) हवि लेकर देवोंके पास जानेवाला (समिद्धः रौद्रः) समिधाओंसे प्रदीप्त होकर भयंकर दीखनेवाला (सुषुमान्) उत्तम प्रदीप्त दीखनेवाला (दक्षाय अदर्शि) बल बढाता हुआ दीखता है। (चिकित्) ज्ञानवान् होकर (वि भाति) विशेषरीतिसे प्रकाशता है। (बृहता-भासा) बडे तेजसे (असिक्नीं एति) रात्रीमें प्रकट होता है। (रुशतीं अपाजन् एति) तेजस्वी प्रकाश प्रकट करके आगे जाता है ॥ १ ॥

१ हे राजन्! इनः— हे तेजस्वी अग्ने! तू स्वामी हो।

२ अरतिः— हवि लेकर देवोंके पास जाकर उनको हवि देता है।

३ समिद्धः रौद्रः सुषुमान् दक्षाय अदर्शि— समिधाओंसे प्रदीप्त होकर भयंकर दीखता है और बल बढाता है ऐसा दीखता है।

४ चिकित् विभाति— ज्ञान बढाता है और प्रकाशता है।

५ बृहता भासा असिक्नीं एति— बडे तेजसे रात्रीमें आता है।

६ रुशतीं अपाजन् एति— प्रकाश देता हुआ आगे बढता है।

कृष्णां यदेनीमभि वर्पसा भूज्जनयन् योषां बृहतः पितुर्जाम् ।
ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन् दिवो वसुभिररतिर्वि भाति २
भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात् ।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन् रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात् ३
अस्य यामासो बृहतो न वग्नू निन्धाना अग्नेः सख्युः शिवस्य ।
ईड्यस्य वृष्णो बृहतः स्वासो भामासो यामन्नक्तवश्चिकित्रे ४

[१६] वह अग्नि (यत्) जब (कृष्णां एनीं) कृष्णवर्णकी रात्रीको (वर्पसा) अपनी ज्वालासे (अभि भूत्) पराभूत करता है । (बृहतः पितुः) बडे जगत्के पालन करनेवाले सूर्यसे (जां) उत्पन्न हुई (योषां) उषाको (जनयन्) उत्पन्न करता है । तब (अरतिः) गमनशील अग्नि (दिवः वसुभिः) द्युलोकके अन्दर रहनेवाले तेजोंसे (सूर्यस्य भानुं) सूर्यके प्रकाशको (ऊर्ध्वं) ऊपर (स्तभायन्) स्थिर करनेके लिये (विभाति) विशेषरीतिसे प्रकाशता है ॥ २ ॥

१ यत् कृष्णां एनीं वर्पसा अभि भूत्— जब काले रंगकी रात्रीको अपनी ज्वालाओंसे पराभूत करता है अर्थात् रात्रीके अन्धकारमें अग्नि प्रज्वलित होकर प्रकाशित होता है ।

२ बृहतः पितुः जां योषां जनयन्— बडे पिता सूर्यसे उत्पन्न हुई उषाको उत्पन्न करता है । सूर्यसे उषा उत्पन्न होती है और प्रकाशने लगती है ।

३ अरतिः दिवः वसुभिः सूर्यस्य भानुं ऊर्ध्वं विभाति— प्रगतिशील अग्नि द्युलोकमें रहनेवाले तेजोंसे सूर्यके प्रकाशको ऊपरके स्थानमें प्रकाशित करता है ।

[१७] (भद्रः) कल्याण करनेवाला अग्नि (भद्रया) कल्याण करनेवाली उषाके साथ (सचमानः) रहनेवाला (आगात्) आया है । पश्चात् (जारः) शत्रुओंका नाश करनेवाला (अग्निः) अग्नि (स्वसारं) बहिन उषाके (पश्चात् अभ्येति) पीछेसे आता है । (सुप्रकेतैः द्युभिः) उत्तम प्रकाशित हुए तेजोंके साथ (वितिष्ठन्) रहता हुआ वह (अग्निः) अग्नि (रुशद्भिः वर्णैः) तेजस्वी किरणोंसे (रामं) काले अन्धकारको (अभि अस्थात्) दूर करके रहता है ॥ ३ ॥

१ भद्रः भद्रया सचमानः आगात्— कल्याण करनेवाला अग्नि कल्याण करनेवाली उषाके साथ यज्ञस्थानमें आया है ।

२ जारः अग्निः स्वसारं पश्चात् अभ्येति— शत्रुओंका नाश करनेवाला अग्नि अपनी बहिन उषाके पीछेसे आता है । उषःकालके पश्चात् यज्ञस्थानमें अग्नि प्रदीप्त किया जाता है ।

३ सुप्रकेतैः द्युभिः वितिष्ठन् अग्निः रुशद्भिः वर्णैः रामं अभि अस्थात् – तेजस्वी किरणोंसे युक्त अग्नि अपने प्रकाशके किरणोंसे रात्रीके अन्धकारको दूर करता है । रात्रीके समय अग्नि प्रकाशित होकर रात्रीके अन्धकारको दूर करता है । इस प्रकार मनुष्य अपने ज्ञानसे अज्ञानरूपी अन्धकारको दूर करे ।

[१८] (बृहतः अस्य अग्नेः) इस बडे अग्निके (इन्धानाः यामासः) प्रदीप्त किरण (वग्नून न) स्तुति करनेवालेको कष्ट नहीं देते हैं । (सख्युः शिवस्य अग्नेः) कल्याण करनेवाले मित्ररूप अग्निके (ईड्यस्य वृष्णोः बृहतः) स्तुतिके योग्य बलवर्धक बडे (स्व असः) अपने मुखके (अक्तवः) अन्धकारको दूर करनेवाले (भामासः) किरण (यामन्) यज्ञमें (चिकित्रे) फैल रहे हैं ॥ ४ ॥

१ बृहतः अस्य अग्नेः इन्धानाः यामासः वग्नून् न— इस बडे अग्निके प्रदीप्त किरण स्तुति करनेवाले ऋत्विजोंको कष्ट नहीं देते ।

२ सख्युः शिवस्य ईड्यस्य बृहतः वृष्णोः स्व आसः अक्तवः अभासः— मित्र तथा कल्याण करनेवाले स्तुतिके योग्य बडे बलवान् अग्निके मुखसे अन्धकारको दूर करनेवाले किरण बाहर आते हैं ।

३ यामन् चिकित्रे— यज्ञस्थानमें अग्निके प्रकाश किरण फैल रहे हैं ।

स्वना न यस्य भामासः पवन्ते रोचमानस्य बृहतः सुदिवः ।
ज्येष्ठेभिर्यस्तेजिष्ठैः क्रीळुमद्भिर्वर्षिष्ठेभिर्भानुभिर्नक्षति द्याम् ५
अस्य शुष्मासो ददृशानपवेर्जेहमानस्य स्वनयन् नियुद्भिः ।
प्रत्नेभिर्यो रुशद्भिर्देवतमो वि रेभद्भिररतिर्भाति विभ्वा ६
स आ वक्षि महि न आ च सत्सि दिवस्पृथिव्योररतिर्युवत्योः ।
अग्निः सुतुकः सुतुकेभिरश्वै रभस्वद्भी रभस्वाँ एह गम्याः ७ [२१] (२१)

[१९ | (रोचमानस्य) प्रदीप्त हुए (बृहतः सुदिवः) बडे तेजस्वी (यस्य भामासः) जिस अग्निके किरण (स्वनाः न) शब्दोंके समान (पवन्ते) सर्वत्र चल रहे हैं। (यः) जो अग्नि (ज्येष्ठेभिः तेजिष्ठैः क्रीळुमद्भिः) अपने श्रेष्ठ तेजस्वी क्रीडा करनेवाले किरणोंसे (वर्षिष्ठेभिः भानुमद्भिः) श्रेष्ठ तेजस्वी प्रकाशसे (द्यां नक्षति) द्युलोकको व्यापता है ॥ ५ ॥

१ रोचमानस्य बृहतः सुदिवः यस्य भामासः स्वनाः न पवन्ते - तेजस्वी बडे प्रदीप्त ऐसे जिसके किरण शब्दोंके समान चारों ओर फैल रहे हैं।

२ ज्येष्ठेभिः तेजिष्ठैः क्रीळुमद्भिः वर्षिष्ठेभिः भानुभिः द्यां नक्षति— अपने तेजस्वी श्रेष्ठ क्रीडा करनेवाले प्रचंड तेजस्वी किरणोंसे जो द्युलोकमें प्रकाश पहुंचाता है।

[२०] (ददृशानपवेः) दर्शनीय तेजसे युक्त (जेहमानस्य) देवोंके पास हवि लेकर जानेवाले (अस्य शुष्मासः) इसके बलवान् (नियुद्भिः) वायुके घोडोंसे (स्वनयन्) शब्द करते हुए (देवतमः) देवोंके श्रेष्ठ (अरति) प्रगमनशील (विभ्वः) वैभवसे युक्त महान् (यः) जो अग्नि (प्रत्नेभिः) प्राचीनकालसे (रुशद्भिः रेभद्भिः) तेजस्वी होकर शब्द करनेवाले प्रकाशसे (विभाति) प्रकाशता है ॥ ६ ॥

१ ददृशानपवेः जेहमानस्य— उत्तम तेजस्वी हविको देवोंके पास यह अग्नि पहुंचाता है। अग्निमें हवन किये हविर्द्रव्य जिन देवोंके नामसे अर्पण किये जाते हैं उन देवोंके पास वे पहुंचाये जाते हैं। अग्नि यह पहुंचानेका कार्य करता है।

२ अस्य शुष्मासः— इसके बलवान् घोडे होते हैं।

३ यः प्रत्नेभिः रुशद्भिः रेभद्भिः विभाति— यह अग्नि तेजस्वी प्रकाशके किरणोंसे प्रकाशता है। इससे तेजस्वी प्रकाश चारों ओर फैलता है।

[२१] हे अग्ने ! (सः) वह तू (नः) हमारे यज्ञमें (महि) बडे देवोंको (आ वक्षि) ले आओ। तथा (युवत्योः) द्युलोक और पृथिवीके मध्यमें (अरतिः) जानेवाला तू अग्नि (आ सत्सि) हमारे यज्ञमें आओ। (सुतुकः) उत्तमरीतिसे याजकोंको प्राप्त होनेवाला (रभस्वान् अग्निः) वेगवान् अग्नि तू (सुकेतुभिः) सहज प्राप्त होनेवाले (रभस्वद्भिः) वेगवान् (अश्वैः) घोडोंसे (इह) इस हमारे यज्ञमें (आ गम्याः) आओ ॥ ७ ॥

१ सः नः महि आ वक्षि — हे अग्ने ! वह तू हमारे इस यज्ञमें सब बडे देवोंको ले आओ।

२ युवत्योः अरतिः आ सत्सि— द्यावापृथिवीमें जानेवाला तू यहां हमारे यज्ञमें आओ और बैठ जाओ।

३ सुतुकः रभस्वान् अग्निः सुतुकेभिः रभस्वद्भिः अश्वैः इह आगम्याः— याजकोंको प्राप्त होनेवाला अग्नि वेगवान् अग्नि वेगवान् शब्द करनेवाले घोडोंसे यहां हमारे यज्ञमें आ जावे।

(४)

७ त्रित आप्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

प्र तें यक्षि प्र तं इयर्मि मन्म भुवो यथा वन्द्यो नो हवेषु ।
धन्वन्निव प्रपा असि त्वमग्न इयक्षवे पूरवे प्रत्न राजन् १ (२२

यं त्वा जनासो अभि संचरन्ति गाव उष्णमिव व्रजं यविष्ठ ।
दूतो देवानामसि मर्त्यानामन्तर्महाँश्चरसि रोचनेन २
शिशुं न त्वा जेन्यं वर्धयन्ती माता बिभर्ति सचनस्यमाना ।
धनोरधि प्रवता यासि हर्यञ्जिगीषसे पशुरिवावसृष्टः ३
मूरा अमूर न वयं चिकित्वो महित्वमग्ने त्वमङ्ग वित्से ।
शये वव्रिश्चरति जिह्वयादन् रेरिह्यते युवतिं विश्पतिः सन् ४

[४]

[२२] हे अग्ने ! (ते प्र यक्षि) तेरे लिये हवि में अर्पण करता हूं । तथा (मन्म) मननीय स्तुति (ते प्र इयर्मि) तेरे लिये बोलता हूं । (वन्द्यः) वन्दनीय तू (नः हवेषु) हमारे यज्ञोंमें (यथा) जैसा (भुवः असि) बैठनेवाला होता है वैसे तुझे मैं हवि अर्पण करता हूं । (प्रत्न राजन्) हे पुराणे तेजस्वी (अग्ने) अग्ने ! (त्वं) तू (इयक्षवे पूरवे) यज्ञ करनेकी इच्छा करनेवाले मनुष्यके लिये (धन्वन् इव) मरुदेशमें (प्रपा असि) जलस्थानके समान तू है ॥ १ ॥

१ ते प्र यक्षि— हे अग्ने ! तेरे लिये में हवि अर्पण करता हूं ।

२ ते मन्म प्र इयर्मि— तेरी स्तुति में करता हूं ।

३ नः हवेषु वन्द्यः यथा भुवः असि— हमारे यज्ञोंमें जैसा जैसा कोई वंदनीय आकर बैठता है वैसा तू बैठा है ।

४ हे प्रत्न राजन् अग्ने — हे पुराणे तेजस्वी अग्ने !

५ त्वं इयक्षवे पूरवे धन्वन् इव प्रपा असि— तू यज्ञ करनेवाले मनुष्यके लिये मरुदेशमें जलस्थानके समान शान्ति देनेवाला है ।

[२३] हे (यविष्ठ) तरुण बलवान् अग्नि ! (गावः उष्णम् इव व्रजम्) जैसे गायें शीतसे पीडित होकर उष्ण गोशालाकी ओर जाती हैं, वैसेही (यं त्वा) जिस तुझको (जनासः) मनुष्य फल प्राप्तिके लिये (अभि सञ्चरन्ति) शरण आते हैं । तू (देवानाम् मर्त्यानाम् दूतो असि) देवों और मानवोंके दूत हो । (महान्) महान् तुम (अन्तः) द्यावापृथिवीके बीचमें- अन्तरिक्षमें (रोचनेन चरसि) प्रकाशित होकर विचरता है ॥ २ ॥

[२४] हे अग्नि ! (शिशुं न माता) जैसे माता पुत्रको (वर्धयन्ती सचनस्यमाना बिभर्ति) पोषण करके और अपने संपर्कमें रखना चाहती है, वैसेही पृथिवी माता (त्वा जेन्यं) तुझ जयशीलको बढाती हुई तथा संपर्ककी इच्छा करके धारण करती है । तू (हर्यन्) अभिलाषी होकर (धनोः अधि) अन्तरिक्षके प्रशस्त मार्गसे (प्रवता यासि) नीचेके स्थानोंको जाता है, (अवसृष्टः पशुः इव) जैसे बंधनसे छुटे हुए पशु गोष्ठमें जानेकी इच्छा करता है तथा (जिगीषसे) उसको प्राप्त करता है ॥ ३ ॥

[२५] हे (अग्ने) अग्नि ! हे (अमूर) मोहरहित ! हे (चिकित्वः) ज्ञानमय ! (वयं मूराः) हम मूढ मनुष्य (महित्वं न) तेरी महिमाको नहीं जानते । हे (अंग) तेजस्वी अग्नि ! (त्वं वित्से) अपनी महिमाको तूही जानता है । तू (वव्रिः) मूर्तिमान् होकर (शये) सुखसे सोता है और (जिह्वया) जिह्वाके द्वारा (अदन् चरति) हविका भक्षण करता हुआ विचरता है । तू (विश्पतिः सन्) प्रजाओंका अधिपति होकर (युवतिं रेरिह्यते) कोई भूपतिके समान अपनी प्रिय पत्नीका उपभोग करता है ॥ ४ ॥

कूचिज्जायते सनयासु नव्यो वने तस्थौ पलितो धूमकेतुः ।
अस्नातापो वृषभो न प्र वेति सचेतसो यं प्रणयन्त मर्ताः ५
तनूत्यजेव तस्करा वनर्गू रशनाभिर्दशभिरभ्यधीताम् ।
इयं ते अग्ने नव्यसी मनीषा युक्ष्वा रथं न शुचयद्भिरङ्गैः ६
ब्रह्म च ते जातवेदो नमश्चे—यं च गीः सदमिद्वर्धनी भूत् ।
रक्षा णो अग्ने तनयानि तोका रक्षोत नस्तन्वो३ अप्रयुच्छन् ७ [३२] (२८)

(५)

७ त्रित आप्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

एकः समुद्रो धरुणो रयीणा—मस्मद्धृदो भूरिजन्मा वि चष्टे ।
सिषक्त्यूधर्निण्योरुपस्थ उत्सस्य मध्ये निहितं पदं वेः १
समानं नीळं वृषणो वसानाः सं जग्मिरे महिषा अर्वतीभिः ।
ऋतस्य पदं कवयो नि पान्ति गुहा नामानि दधिरे पराणि २

---

[२६] (नव्यः सनयासु कूचित् जायते) सूखी लकडियोंमें नित्य नया अग्नि कहीं भी उत्पन्न हो जाता है; और (धूमकेतुः) धूमकी ध्वजासे युक्त (पलितः वने तस्थौ) पिंगलवर्ण तेजसे वनमें वास करता है। (अस्नाता) स्नानके विनाही (वृषभः आपः न) प्यासे वृषभके समान (प्रवेति) जलोंके पास जाता है; परंतु (यं मर्त्ताः सचेतसः प्रणयन्त) ऐसे अग्निकोही स्थिर चित्त मनुष्य वेदीपर रखते हैं ॥ ५ ॥

[२७] जैसे (तनूत्यजा इव वनर्गू तस्करा) देहको सहजहीसे त्यागनेवाले और वनमें विचरनेवाले पापी दो चोर (दशभिः रशनाभिः अभ्यधीताम्) दसों रस्सियोंसे पथिकको बांध डालते हैं, वैसेही हमारे दोनों हाथ दसों अंगुलियोंसे (मन और अहंकार इन) दोनों चोरोंको अच्छी प्रकार पकडती हैं। हे (अग्ने) अग्नि ! (इयं ते) यह तेरी (नव्यसी मनीषा) नयी अपूर्व और मननीय स्तुति मैं करता हूं; इससे (शुचयद्भिः) सबका प्रकाश करनेवाले अपने (अंगैः) तेजसे (रथं न) अश्वोंसे रथके समान यज्ञमें संयोजित कर ॥ ६ ॥

[२८] हे (जातवेदः) ज्ञानी अग्नि ! (ब्रह्म च इयं च गीः) हमने गाया हुआ यह स्तुति-प्रार्थना सूक्त तुझे अर्पण किया और (नमः च) नमस्कार भी किया। यह स्तुति (ते सदम् इत्) तेरा महात्म्य सदा ही (वर्धनी भूत्) बढानेवाली हो। हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (नः तनयानि तोका) हमारे पुत्र-पौत्रोंकी (रक्ष आ) रक्षा कर; (उत नः तन्वः) और हमारे शरीरोंकी (अप्रयुच्छन् रक्ष) सावधान होकर रक्षा कर ॥ ७ ॥

[५]

[२९] (एकः) अद्वितीय, (समुद्रः) समुद्रवत् आधारभूत, (रयीणां धरुणः) सब धनोंके धारक और (भूरिजन्मा) अनेक प्रकारके जन्मवाले अग्नि (अस्मत् हृदः) हमारे अभिलषित हृदयोंको (विचष्टे) जानता है। वह (निण्योः उपस्थे) आकाश और पृथिवीके बीच (ऊधः) अन्तरिक्षमें (सिषक्ति) वर्तमान होता है, और (उत्सस्य मध्ये निहितं पदं वेः) विद्युत् रूपमें मेघका सेवन करता है ॥ १ ॥

[३०] (वृषणः महिषाः) आहुतियोंके देनेवाले बडे यजमान (समानं नीळं वसानाः) समानरूपसे नील अग्निको मन्त्रसे आच्छादित करते हुए (अर्वतीभिः सञ्जग्मिरे) घोडेवाले हुए। (कवयः) मेधावी लोग (ऋतस्य पदं नि पान्ति) सद्धर्मके स्थानको सुरक्षित रखते हैं, स्तुति करते हैं। (गुहा) वे गूढ हृदयमें (पराणि नामानि) रहस्यमय प्रधान नामोंको (दधिरे) धारण करते हैं ॥ २ ॥

ऋतायिनी मायिनी सं दधाते मित्वा शिशुं जज्ञतुर्वर्धयन्ती ।
विश्वस्य नाभिं चरतो ध्रुवस्य कवेश्चित् तन्तुं मनसा वियन्तः ३
ऋतस्य हि वर्तनयः सुजात-मिषो वाजाय प्रदिवः सचन्ते ।
अधीवासं रोदसी वावसाने घृतैरन्नैर्वावृधाते मधूनाम् ४
सप्त स्वसृररुषीर्वावशानो विद्वान् मध्व उज्जभारा दृशे कम् ।
अन्तर्येमे अन्तरिक्षे पुराजा इच्छन् वव्रिमविदत् पूषणस्य ५
सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षु-स्तासामेकामिदभ्यंहुरो गात् ।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीळे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ६
असच्च सच्च परमे व्योमन् दक्षस्य जन्मन्नदितेरुपस्थे ।
अग्निर्ह नः प्रथमजा ऋतस्य पूर्व आयुनि वृषभश्च धेनुः ७ [३३] (३५)

---

[३१] (ऋतायिनी मायिनी) अन्न, तेज, सत्य और धन-कर्मसे युक्त द्यावापृथिवी (शिशुं सं दधाते) अग्निको धारण-पोषण करते हुए (वर्धयन्ती मित्वा जज्ञतुः) काल-परिमाण करके उत्तम अग्निको प्रकट करते हैं, जैसे बुद्धिमान् माता-पिता बालकका पोषण करके उसको बडा करते हैं। तथा (चरतः ध्रुवस्य विश्वस्य नाभिं तन्तुं कवेः) सब जङ्गम और स्थावर जगत्के नाभिरूप मेधावी विस्तारक अग्निको (मनसा) मनसे (वियन्तः) जानकर उपासना करते हुए (चित्) प्राप्त कर लेते हैं ॥ ३ ॥

[३२] (ऋतस्य हि वर्तनयः) यज्ञके प्रवर्तक, (वाजाय इषः) ऐश्वर्यकी कामना करनेवाले, (प्रदिवः) प्राचीन लोग (सुजातम्) अच्छी तरह प्रज्वलित अग्निकी (सचन्ते) बलके लिये उपासना करते हैं। (रोदसी) द्यावा-पृथिवीने (अधीवासं वावसाने) त्रैलोक्य निवासी सूर्यरूप अग्निको (मधूनाम् घृतैः अन्नैः) मधु, घी-जल और अन्नोंसे (वावृधाते) वर्धित किया ॥ ४ ॥

[३३] (विद्वान्) स्तोताओंके द्वारा स्तवित और सर्वज्ञ अग्निने (सप्त स्वसः अरुषीः) कान्तियुक्त-रमणीय सात भगिनीरूप ज्वालाओंको (वावशानः) वश करता हुआ (मध्वः कम् दृशे) सरलतासे-सुखदायक सारे पदार्थोंको देखनेके लिए (उत् जभार) उनको उपर उठाया। (पुराजाः अन्तरिक्षे अन्तः येमे) प्राचीन कालमें उत्पन्न अग्निने द्यावापृथिवीके बीचमें उनको बद्ध किया और (वव्रिम् इच्छन्) तेजस्वी यजमानोंकी इच्छा करनेवाले अग्निने (पूषणस्य अविदत्) पोषक वर्गको प्राप्त किया ॥ ५ ॥

[३४] (कवयः सप्त मर्यादाः ततक्षुः) बुद्धिमान् लोगोंने सात मर्यादाओंको निर्माण किया। (तासाम् एकाम् इत्) उनमेंसे एकको भी जो (अभि गात्) प्राप्त होता है वह (अंहुरः) पापी है। (आयोः) पापसे मनुष्यको (स्कम्भः) रोकनेवाला अग्नि है। अग्नि (उपमस्य पथां विसर्गे) समीपवर्ती मनुष्यके विविध मार्गोंके स्थानमें, (नीळे) आदित्य-किरणोंके विचरण मार्गमें और (धरुणेषु) जलके बीचमें-त्रैलोक्यमें (तस्थौ) स्थिर होकर विराजता है ॥ ६ ॥

[३५] (परमे व्योमन्) सर्वश्रेष्ठ, सब तरहसे रक्षा करनेवाले, परमधाम अग्नि (असत् च सत् च) सृष्टिके पहले असत् और सत्- सूक्ष्म और सूक्ष्म जगत्में है। (दक्षस्य जन्मन् अदितेः उपस्थे) वह अन्तरिक्षमें सूर्यरूपसे उत्पन्न हुआ है। (नः) वह हमसे पहले तथा (ऋतस्य प्रथमजाः ह) यज्ञके पहके निश्चयसे उत्पन्न हुआ है, (पूर्वे आयुनि) पहले सृष्टिके आरंभमें (वृषभः च धेनुः) अग्निही बैल और गायके रूपमें उत्पन्न हुआ ॥ ७ ॥

+

[षष्ठोऽध्यायः ॥६॥ व० १-२८] (६)

७ त्रित आप्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

अयं स यस्य शर्मन्नवोभि रग्नेरेधते जरिताभिष्टौ ।
ज्येष्ठेभिर्यो भानुभिर्ऋषूणां पर्येति परिवीतो विभावा १

यो भानुभिर्विभावा विभा त्यग्निर्देवेभिर्ऋतावाजस्रः ।
आ यो विवाय सख्या सखिभ्यो ऽपरिह्वृतो अत्यो न सप्तिः २

ईशे यो विश्वस्या देववीते रीशे विश्वायुरुषसो व्युष्टौ ।
आ यस्मिन् मना हवींष्यग्ना वरिष्टरथः स्कभ्नाति शूषैः ३

शूषेभिर्वृधो जुषाणो अर्कै र्देवाँ अच्छा रघुपत्वा जिगाति ।
मन्द्रो होता स जुह्वा यजिष्ठः संमिश्लो अग्निरा जिघर्ति देवान् ४

तमुस्रामिन्द्रं न रेजमान मग्निं गीर्भिर्नमोभिरा कृणुध्वम् ।
आ यं विप्रासो मतिभिर्गृणन्ति जातवेदसं जुह्वं सहानाम् ५

---

[६]

[३६] (अयं स) यह वह अग्नि है, (यस्य अग्नेः) जिस अग्निके (अवोभिः) रक्षणोंसे (अभिष्टौ) अभीष्ट फलप्राप्तिके लिये (जरिता) स्तुति करनेवाला (शर्मन् एधते) अपने घरमें सुखसे बढता है; (यः) जो (दीप्तिमान् अग्निः ज्येष्ठेभिः भानुभिः ऋषूणां) उत्तम सूर्य किरणोंके प्रशस्त तेजसे (परिवीतः पर्येति) युक्त होकर सर्वत्र जाता है ॥ १ ॥

[३७] (यो अग्निः देवेभिः विभावा भानुभिः विभाति) जो प्रदीप्त अग्नि देवोंके उत्तम तेजसे चमकता है, प्रकाशता है, वह (ऋतावा अजस्रः) सत्य और नित्य है; (यः) जो (सखिभ्यः सख्या आ विवाय) मित्रों-भक्तोंके कल्याणमय कार्य करनेके लिये वह (सप्तिः न अत्यः) वेगवान् अश्वके समान (अपरिह्वृतः) अथक उनके पास जाता है ॥ २ ॥

[३८] (यो विश्वस्याः देववीतेः ईशे) जो अग्नि सब विश्वका-यज्ञोंका प्रभु है, वह सर्वगामी है। (विश्वायुः उषसः व्युष्टौ ईशे) जो सबका जीवनदाता होकर, उषःकालमें होम करनेवाले यजमानोंके प्रभु है। (यस्मिन् अग्नौ) जिस अग्निमें (मना हवींषि) भक्त मनके अनुकूल हविर्द्रव्य समर्पण करते हैं, वह (अरिष्टरथः) मंगलकारक रथ (शूषैः स्कभ्नाति) शत्रुबलसे अबध्य होकर जगत्को गिरनेसे रोकता है ॥ ३ ॥

[३९] (शूषेभिः वृधः) अनेक प्रकारके सामर्थ्योंसे वर्द्धित, (अर्कैः जुषाणः) स्तोत्रोंसे स्तवित (रघुपत्वा) शीघ्रगामी रथोंसे जानेवाला (देवान् अच्छ आ जिगाति) देवोंके पास वेगसे जाता है। (स अग्निः) वह अग्नि (मन्द्रः) प्रशंसनीय, (होता) देवोंका दूत, (जुह्वा यजिष्ठः) वाणीसे यज्ञ योग्य, (संमिश्लः) सबका साथी देव-युक्त (देवान् आ जिघर्ति) देवोंको हवि देता है ॥ ४ ॥

[४०] हे ऋत्विजो ! तुम (उस्राम्) भोग ऐश्वर्य देनेवाले, (रेजमानं अग्निं) तेजस्वी अग्निको (इन्द्रं न गीर्भिः नमोभिः) इन्द्रके समान स्तुति-स्तोत्रों और हवियोंसे (आ कृणुध्वम्) हमारे सम्मुख करो; (यं) जिसका (विप्रासः) बडे बडे विद्वान् (मतिभिः आ गृणन्ति) आदरयुक्त स्तुतियोंसे गुणगान करते हैं; कारण वह (जात-वेदसं) ज्ञानी और (सहानां जुह्वं) देवोंके बुलानेवाला-बलोंके प्रमुख दाता है ॥ ५ ॥

सं यस्मिन् विश्वा वसूनि जग्मु-र्वाजे नाश्वाः सप्तीवन्त एवैः ।
अस्मे ऊतीरिन्द्रवाततमा अर्वाचीना अग्न आ कृणुष्व ६

अधा ह्यग्ने मह्ना निषद्या सद्यो जज्ञानो हव्यो बभूथ ।
तं ते देवासो अनु केतमाय-न्नधावर्धन्त प्रथमास ऊमाः ७ [१] (४१)

(७)

७ त्रित आप्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

स्वस्ति नो दिवो अग्ने पृथिव्या विश्वायुर्धेहि यजथाय देव ।
सचेमहि तव दस्म प्रकेतै-रुरुष्या ण उरुभिर्देव शंसैः १

इमा अग्ने मतयस्तुभ्यं जाता गोभिरश्वैरभि गृणन्ति राधः ।
यदा ते मर्तो अनु भोगमान-ड्वसो दधानो मतिभिः सुजात २

अग्निं मन्ये पितरमग्निमापि-मग्निं भ्रातरं सदमित् सखायम् ।
अग्नेरनीकं बृहतः सपर्यं दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य ३

---

[४१] (वाजे सप्तीवन्तः अश्वाः न एवैः) युद्धमें जैसे शीघ्रगामी घोडे एकत्र होते हैं, उन्हींके समान (यस्मिन् विश्वा वसूनि सं जग्मुः) तुममें--तुम्हारे अधीन संसारके सारे धन-ऐश्वर्य एकत्र रहे हैं; हे (अग्ने) अग्निदेव ! तू (अस्मे) हमारे लिए (इन्द्रवाततमाः) तेजस्वी इन्द्रसे प्राप्त (अर्वाचीनाः ऊतीः) नवीन नवीन रक्षाएं (आ कृणुष्व) प्राप्त करा ॥ ६ ॥

[४२] (अधा हि) और, हे (अग्ने) अग्नि ! तू (मह्ना निषद्या) जन्मके साथ ही महत्त्व लाभ करके (सद्यो जज्ञानः) शीघ्र प्रकट होकर स्थान ग्रहण करके (हव्यः बभूथ) हवनीय होता है । इसलिये (ते देवासः) वे देवतालोग तुम्हें देखते ही (तं केतं अनु आयन्) तेरा अनुसरण करते हैं; (अध) और (प्रथमासः ऊमाः) वे उत्तम लोग तुमसे रक्षित होकर (अवर्धन्त) उत्कर्षित होने लगे ॥ ७ ॥

[७]

[४३] हे (देव अग्ने) दिव्य अग्नि ! तू (दिवः पृथिव्या) द्यावापृथिवीसे (नः) हमारे लिये (विश्वायुः स्वस्ति) सब तरहका अन्न और कल्याण (यजथाय धेहि) यज्ञके लिये प्रदान कर; इससे हम (सचेमहि) हम तेरी सेवा-यज्ञ करेंगे । हे (दस्म देव) अतुलनीय तेजस्वी अग्ने ! तू (नः) हमारी (तव प्रकेतैः) तेरे विपुल ज्ञानोंसे युक्त (उरुभिः शंसैः) उत्तम रक्षणोंसे (आ उरुष्य) रक्षा कर ॥ १ ॥

[४४] हे (अग्ने) तेजस्वी देव ! (इमाः मतयः) ये स्तुतियां (तुभ्यं जाताः) तेरे लिये कही गयी हैं । (गोभिः अश्वैः राधः अभि गृणन्ति) गौओं और अश्वोंके सहित तुमने हमारे लिये जो धन दिया है, इसलिये तेरी ही प्रशंसा की जाती है । (यदा) जब (मर्तः) मनुष्य (ते भोगं अनु आनट्) तेरा दिया भोग्य धन प्राप्त करता है, हे (सुजात वसो) उत्तम गुणोंवाले धनदाता ! तब (मतिभिः दधानः) हम तुम्हारी स्तुतियां करते हैं ॥ २ ॥

[४५] मैं (अग्निं) अग्निको ही (पितरं मन्ये) पिता मानता हूं, (अग्निं आपिम्) अग्निको ही बन्धु, (अग्निं भ्रातरं) अग्निको ही भ्राता और (सदम् इत्) सदैव ही (सखायम्) मित्र मानता हूं । मैं (बृहतः अग्नेः) उस महान् अग्निके (अनीकं सपर्यम्) स्थानकी उपासना करता हूं, (दिवि) जैसे द्युलोकस्थित (सूर्यस्य यजतं शुक्रं) पूजनीय और प्रदीप्त सूर्यमण्डलकी कोई उपासना करता है ॥ ३ ॥

सिध्रा अग्ने धियो अस्मे सनुत्री— यं त्रायसे दम आ नित्यहोता ।
ऋतावा स रोहिदश्वः पुरुक्षु— र्द्युभिरस्मा अहभिर्वाममस्तु ४ (४६)

द्युभिर्हितं मित्रमिव प्रयोगं प्रत्नमृत्विजमध्वरस्य जारम् ।
बाहुभ्यामग्निमायवोऽजनन्त विक्षु होतारं न्यसादयन्त ५

स्वयं यजस्व दिवि देव देवान् किं ते पाकः कृणवदप्रचेताः ।
यथायज ऋतुभिर्देव देवा— नेवा यजस्व तन्वं सुजात ६

भवा नो अग्नेऽवितोत गोपा भवा वयस्कृदुत नो वयोधाः ।
रास्वा च नः सुमहो हव्यदातिं त्रास्वोत नस्तन्वो३ अप्रयुच्छन् ७ [२] (४९)

(८)

९ त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः । अग्निः, ७-९ इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

प्र केतुना बृहता यात्यग्नि— रा रोदसी वृषभो रोरवीति ।
दिवश्चिदन्ताँ उपमाँ उदान—ळपामुपस्थे महिषो ववर्ध १

---

[४६] हे (अग्ने) अग्निदेव ! (अस्मे धियः) हमारी स्तुतियां और बुद्धियां (सिध्राः) उपासनारूप सिद्ध हुई हैं; वे (अस्मे सनुत्रीः) हमें फलदायक हो। तू (नित्य होता) गृहमें नित्य आहुत तू (यं दमे त्रायसे) जिसकी संयमित रखकर रक्षा करता है (सः ऋतावा) वह मैं सत्यनिष्ठ धनपति बनकर (रोहित् अश्वः) लाल अश्वोंवाला और (पुरुक्षुः) बहुत अन्नोंका स्वामी हो जाऊं; तब (द्युभिः अहभिः) सम्पन्न दिनोंमें (अस्मा वामम् अस्तु) हमें तुझे उत्तम हवनीय द्रव्य समर्पण करनेका लाभ हो सके ॥ ४ ॥

[४७] (द्युभिः हितं) तेजसे युक्त, (मित्रं इव प्रयोगं) मित्रके समान सत्कर्ता, (प्रत्नम्) प्राचीन, (ऋत्विजं) ऋत्विक्, (अध्वरस्य जारं) यज्ञके समापक (अग्निं बाहुभ्यां आयवः अजनन्त) अग्निकोय जमानोंने अपने हाथोंसे प्रकट किया, (होतारं विक्षु न्यसादयन्त) और मनुष्योंने देवोंके आह्वान और यज्ञके लिये प्रजाओंमें उसकी स्थापना की ॥ ५ ॥

[४८] हे (देव) तेजस्वी अग्नि ! तू (दिवि स्वयं देवान् यजस्व) द्युलोकमें स्थित देवोंका स्वयं यजन कर। (अप्रचेताः) अल्पज्ञ और (पाकः) निर्बोध मनुष्य (ते किं कृणवन्) तुम्हारे बिना क्या कर सकता है ? हे (देव) देव ! तू (ऋतुभिः यथा देवान् अयजः) समय-समयपर जैसे देवोंका यजन करता है, (एक) वैसे ही हे (सुजाता) सुजन्मा ! (तन्वं यजस्य) तू अपना भी कर ॥ ६ ॥

[४९] हे (अग्ने) ज्ञानी देव ! तू (नः अविता उत गोपा आ भव) दृष्ट-अदृष्ट संकटोंसे हमारा रक्षणकर्ता हो। तू (नः वयस्कृत् उत वयोधाः भव) तू हमारे लिये अन्नके कर्ता और दाता भी बनो। हे (सुमहो) पूज्य अग्ने ! (नः हव्यदातिं आ रास्व) हमें हवन करनेकी सामग्रीका दान कर ! (उत नः तन्वः) हमारे शरीरकी (अप्रयुच्छन् त्रास्व) विना प्रमाद किये रक्षा कर ॥ ७ ॥

[८]

[५०] वह (अग्निः) अग्नि (बृहता केतुना) बडे भारी ज्ञानसे युक्त होकर (रोदसी प्र याति) द्यावा-पृथिवीमें जाता है; (वृषभः रोरवीति) और देवोंको बुलानेके समय वृषभके समान शब्द करता है। अग्नि (दिवः चित् अन्तान् उपमां) द्युलोकके सीमान्त वा समीपके प्रदेशमें रहकर (उद् आनट्) व्याप्त करता है और वह (महिषः अपाम् उपस्थे) महान् जलभण्डार-अन्तरिक्षमें विद्युत्रूपसे (ववर्ध) अत्यंत बढता है ॥ १ ॥

मुमोदु गर्भो वृषुभः कुकुद्मा- नस्रेमा वत्सः शिमीवाँ अरावीत् ।
स देवतात्युद्यतानि कृण्वन् त्स्वेषु क्षयेषु प्रथमो जिगाति २
आ यो मूर्धानं पित्रोररब्ध न्यध्वरे दधिरे सूरो अर्णः ।
अस्य पत्मन्नरुषीरश्वबुध्ना ऋतस्य योनौ तन्वो जुषन्त ३
उषउषो हि वसो अग्रमेषि त्वं यमयोरभवो विभावा ।
ऋताय सप्त दधिषे पदानि जनयन् मित्रं तन्वे३ स्वायै ४
भुवश्चक्षुर्मह ऋतस्य गोपा भुवो वरुणो यदृताय वेषि ।
भुवो अपां नपाज्जातवेदो भुवो दूतो यस्य हव्यं जुजोषः ५ [३]

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः ।
दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ६

---

[५१] वह (गर्भः) सर्वग्राही, (वृषभः) सुख-कामोंका वर्षक, (ककुद्मान्) तेजस्वी अग्नि प्रसन्न होता है; (अस्रेमा वत्सः) परिपूर्ण ,स्तुत्य (शिमीवान् अरावीत) कर्मकुशल अग्नि शब्द करता है; (सः) वह (देवताति उद्यतानि कृण्वन्) यज्ञमें उत्साहपूर्ण कर्म करनेवाला अग्नि (स्वेषु क्षयेषु) अपने आहवनीय स्थानोंमें (प्रथमः जिगाति) सबसे मुख्य होकर विराजता है ॥ २ ॥

[५२] (यः) जो (पित्रोः मूर्धानं अरब्धनि) मातृ-पितृरूप द्यावापृथिवीके मस्तकपर अपना तेज विस्तृत करता है, उस (सूरः अर्णः) सुवीर्यवाले तेजस्वी अग्निके तेजको (अध्वरे दधिरे) याज्ञिक यज्ञमें स्थापन-धारण करते हैं। (अस्य पत्मन् ऋतस्य योनौ) इस अग्निके यज्ञस्थानमें व्याप्त (अरुषीः अश्वबुध्नाः) तेजस्वी और हवि आदिसे युक्त (तन्वः जुषन्त) शरीरकी सेवा विद्वान् लोग करते हैं ॥ ३ ॥

[५३] हे (वसो) स्तुत्य अग्नि ! तू (उषः उषः हि अग्रम् एषि) सब उषाओंके पहले ही आ जाता है; (त्वं यमयोः विभावा अभवः) तू दिन-रात्रिके जोडोंमें दीप्तिकर्ता हो । तू (स्वायै तन्वे जनयन्) अपने शरीरसे सूर्यको उत्पन्न करके (ऋताय सप्त पदानि दधिषे) यज्ञके लिये सात स्थानोंको धारण करता है ॥ ४ ॥

[५४] हे अग्नि ! (महः ऋतस्य चक्षुः भुवः) तुम महान् यज्ञके- सृष्टि नियमोंके- चक्षुके समान प्रकाशक हो; (गोपाः) तुम यज्ञके रक्षक हो । (यत् ऋताय वेषि वरुणः भुवः) जब तुम यज्ञके लिये वरुण होकर जाते हो, उस समय तुम ही रक्षक होते हो । हे (जातवेदः) ज्ञानी अग्नि ! तू ही (अपां नपात्) जलका पौत्र है, (कारण जलसे मेघ और मेघसे विद्युत्-अग्नि उत्पन्न होती है) (यस्य हव्यं जुजोषः) तू जिस यजमानकी हवि ग्रहण करता है, (दूतः भुवः) उसका दूत होता है ॥ ५ ॥

[५५] हे (अग्ने) अग्निदेव ! (यत्र शिवाभिः नियुद्भिः सचसे) तुम जिस अन्तरिक्षमें कल्याणप्रद सुंदर अश्वोंवाले घोडोंसे युक्त वायुके साथ मिलते हो, (यज्ञस्य रजसः च नेता भुवः) उसमें तुम यज्ञ और जलके नेता होते हो । तू ही (दिवि) द्युलोकमें (मूर्धानं स्वर्षाम् दधिषे) श्रेष्ठ और सर्वपोषक सूर्यको धारण करता है; तू (जिह्वाम् हव्यवाहम् चकृषे) अपनी जिह्वाको हव्यवाहिका बनाता है ॥ ६ ॥

अस्य त्रितः क्रतुना वव्रे अन्त रिच्छन् धीतिं पितुरेवैः परस्य ।
सचस्यमानः पित्रोरुपस्थे जामि ब्रुवाण आयुधानि वेति ७

स पित्र्याण्यायुधानि विद्वा निन्द्रेषित आप्त्यो अभ्ययुध्यत् ।
त्रिशीर्षाणं सप्तरश्मिं जघन्वान् त्वाष्ट्रस्य चिन्निः ससृजे त्रितो गाः ८

भूरीदिन्द्र उदिनक्षन्तमोजो ऽवाभिनत् सत्पतिर्मन्यमानम् ।
त्वाष्ट्रस्य चिद्विश्वरूपस्य गोना माचक्राणस्त्रीणि शीर्षा परा वर्क् ९ [४] (५८)

(९)

९ त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः, सिन्धुद्वीप आम्बरीषो वा । आपः । गायत्री, ५ वर्धमाना गायत्री, ७ प्रतिष्ठा गायत्री, ८-९ अनुष्टुप् ।

आपो हि ष्ठा मयोभुव स्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे १

यो वः शिवतमो रस स्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः २

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ३

---

[५६] (त्रितः क्रतुना) त्रित ऋषिने यज्ञ करके प्रार्थना की कि (परस्य पितुः एवैः धीतिम् इच्छन्) यज्ञमें परम पिताका इन कर्मोंसे ध्यान-उपासना करके कामना करता हुआ (अस्य अन्तः वव्रे) इसको अपने भीतर वरण करे। (पित्रोः उपस्थे) द्यावापृथिवी-रूप माता-पिताके पास (सचस्यमानः जामि ब्रुवाणः) प्राप्त होकर स्तुति करता हुआ (आयुधानि वेति) त्रितने विपत्तियोंसे रक्षण करनेके लिये युद्धके साधनोंको प्राप्त किया ॥ ७ ॥

[५७] (स आप्त्यः इन्द्रेषितः) उस आप्त्यके पुत्र त्रितने इन्द्रसे प्रेरित होकर और (पित्र्याणि आयुधानि विद्वान्) अपने पिताके युद्धास्त्रोंका ज्ञानी होनेसे (अभ्ययुध्यत्) बहुत युद्ध किया। (सप्तरश्मिं त्रिशीर्षाणं जघन्वान्) सात रश्मियोंवाले त्रिशिराका उसने वध किया; (त्रितः त्वाष्ट्रस्य चित् गाः निः ससृजे) त्रितने त्वष्टाके पुत्रकी गायोंका भी हरण कर लिया ॥ ८ ॥

[५८] (सत्पतिः इन्द्रः) सज्जनोंका रक्षण कर्ता स्वामी इन्द्रने (भूरि ओजः उदिनक्षन्तं मन्यमानम्) अत्यंत बल प्राप्त करनेवाले और अभिमानी त्वष्टाके पुत्रको (अवाभिनत्) विदीर्ण किया। उन्होंने (गोनाम् आचक्रणः) गायोंको बुलाते हुए (त्वाष्ट्रस्य विश्वरूपस्य) त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपके (त्रीणि शीर्षाणि) तीन सिरोंको (परा वर्क) काट डाला ॥ ९ ॥

[९]

[५९] हे (आपः) जल ! (मयः भुवः हि आस्थ) तुम सुखको उत्पन्न करनेवाले आधार हो। (ताः नः ऊर्जे दधातन) वे हमें उत्तम बल देनेके लिये अन्न-संचय करें; (महे रणाय चक्षसे) पवित्र और रमणीय आत्म-ज्ञानके लिये हमें सुरक्षित रखें ॥ १ ॥

[६०] हे जल ! (उशतीः इव मातरः) जैसे माताएं बच्चोंको दूध देती हैं, वैसे ही (वः यः शिवतमः रसः) आपका जो कल्याणकारी रस- ज्ञान और बल- है (तस्य इह नः भाजयते) इसका हमें यहां सेवन कराइये ॥ २ ॥

[६१] हे (आपः) शान्तिप्रद जल ! (वः यस्य क्षयाय जिन्वथ) आप जिस रोगोंके विनाशके लिये हमें प्रसन्न करते हो, (तस्मै अरं गमाम) उनके विनाशकी इच्छासे हम तुम्हारा स्वीकार करते हैं; (नः च आ जनयथ) हमारी वंशवृद्धि करो ॥ ३ ॥

शं नो॑ दे॒वीर॒भिष्ट॑य॒ आपो॑ भवन्तु पी॒तये॑ । शं योर॒भि स्र॑वन्तु नः ४
ईशा॑ना॒ वार्या॑णां॒ क्षय॑न्तीश्चर्षणी॒नाम् । अ॒पो या॑चामि भेष॒जम् ५
अ॒प्सु मे॒ सोमो॑ अब्रवीद॒न्तर्विश्वा॑नि भेष॒जा । अ॒ग्निं च॑ वि॒श्वशं॑भुवम् ६
आपः॑ पृणी॒त भे॑ष॒जं वरू॑थं त॒न्वे॒३॒॑ मम॑ । ज्योक् च॒ सूर्यं॑ दृ॒शे ७
इ॒दमा॑पः॒ प्र व॑हत॒ यत् किं च॑ दुरि॒तं मयि॑ ।
यद्वा॒हम॑भिदु॒द्रोह॒ यद्वा॑ शे॒प उ॒तानृ॑तम् ८
आपो॑ अ॒द्यान्व॑चारिषं॒ रसे॑न॒ सम॑गस्महि ।
पय॑स्वानग्न॒ आ ग॑हि॒ तं मा॒ सं सृ॑ज॒ वर्च॑सा ९ [५] (६७)

(१०)

९४ नवमीवर्ज्यानामयुजां षष्ठ्याश्च वैवस्वती यमी ऋषिका । यमः । षष्ठीवर्ज्यानां युजां नवम्याश्च वैवस्वतो यमः ऋषिः । यमी । त्रिष्टुप्, १३ विराट्स्थाना ।

ओ चि॒त् सखा॑यं स॒ख्या व॑वृत्यां ति॒रः पु॒रू चि॑दर्ण॒वं ज॑ग॒न्वान् ।
पि॒तुर्नपा॑त॒मा द॑धीत वे॒धा अधि॒ क्षमि॑ प्रत॒रं दीध्या॑नः १

[६२] (देवीः आपः) दिव्य ज्ञानप्रकाशमय जल (नः शं भवतु) हमें शान्ति–सुखदायक हों, वे (अभीष्टये) अभीष्ट प्राप्तिके लिये हों । (पीतये भवन्तु) हमें आरोग्यदायक उदक पीनेके लिये मिले । वे (नः शं योः) हमें रोग और अवर्षण दूर करनेके लिये (अभि स्रवन्तु) हमारे ऊपर क्षरित हों ॥ ४ ॥

[६३] (अपः वार्याणां ईशाना) जल अभिलषित वस्तुओंके स्वामी हैं; वेही रोग निवारण, आरोग्य करनेमें समर्थ हैं, वेही (चर्षणीनां क्षयन्ती) प्राणीमात्रको बसानेवाले हैं । (भेषजम् याचामि) मैं उनसे औषधिकी प्रार्थना करता हूं ॥ ५ ॥

[६४] (अप्सु अन्तर्विश्वानि भेषजा) जलमें सब औषधियां और (विश्वशंभुवं अग्निं च) सब जगत्को सुख देनेवाला अग्नि भी है– यह (सोमः मे अब्रवीत्) सोमने मुझसे कहा ॥ ६ ॥

[६५] हे (आपः) जलो ! (मम तन्वे) मेरे शरीरके लिये (वरूथं भेषजं पृणीत) संरक्षक औषधि देओ, (ज्योक् च सूर्यं दृशे) जिससे निरोग होकर मैं बहुत कालतक सूर्यको देखता रहूं ॥ ७ ॥

[६६] (मयि यत् किं च दुरितं) मुझमें जो दोष हो (यत् वा अहं अभिदुद्रोह) अथवा जो मैंने द्रोह किया हो, (यत् वा शेपे) जो मैंने शाप दिया हो (उत अनृतं) जो असत्य भाषण किया हो (इदं आपः प्रवहत) यह सब दोष ये जल मेरे शरीरसे बाहर कर ले आवें और मैं शुद्ध बन जाऊं ॥ ८ ॥

[६७] (अद्य आपः अनु अचारिषं) आज जलमें मैं प्रविष्ट हुआ हूं (रसेन सं अगस्महि) मैं इस जलके रसके साथ संमिलित हुआ हूं; हे (अग्ने) अग्नि ! (पयस्वान् आगहि) तू जलमें स्थित है, मेरे पास आ (तं मा वर्चसा संसृज) और उस मुझे तेजसे युक्त कर ॥ ९ ॥

[१०]

[६८] [यमी यमसे कहती है—] (तिरः पुरू चित् अर्णवं जगन्वान्) गुप्त–निर्जन और प्रशस्त समुद्रके प्रदेशमें आकर मैं (सखी आ सख्या सखायं) मित्र होकर या सख्य भावके लिये मित्र रूपमें तुझको (ओ ववृत्यां

न ते सखा सख्यं वष्टयेतत् सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति ।
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन् २
उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित् त्यजसं मर्त्यस्य ।
नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्व१मा विविश्याः ३
न यत् पुरा चकृमा कद्ध नूनमृता वदन्तो अनृतं रपेम ।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नो नाभिः परमं जामि तन्नौ ४
गर्भे नु नौ जनिता दंपती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः ।
नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः ५ [६] (७२)
को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्र वोचत् ।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन् ६

चित्) सादर अभिमुख करना चाहती हूं। (वेधाः) प्रजापति- विधाताने समझा कि (पितुः नपातम्) पिताके नातीको (प्रतरं दीध्यानः) नौकासमान गुणवान् श्रेष्ठ पुत्रके निर्माणके लिये (क्षमि) पुत्रोत्पादन समर्थ मुझमें (अधि आ दधीत) तेरा गर्भ स्थापित होवे ॥ १ ॥

[६७] [यम कहता है—] (ते सखा ते एतत् सख्यं) तुम्हारा मित्र-साथी यम (ते एतत् सख्यं) तुम्हारे साथ इस प्रकारके सम्पर्ककी (न वष्टि) इच्छा नहीं करता; (यत्) क्यों कि (सलक्ष्मा) तुम सहोदरा भगिनी हो, (विषुरूपा भवाति) विषम लक्षणवाली अगन्तव्या हो। यह निर्जन प्रदेश नहीं है; (उर्विया) इस भूमिमें (असुरस्य महः वीराः पुत्रासः) असुरोंके महान् बलवान् और वीर पुत्र हैं, जो (दिवः धर्तारः) द्यावादि लोकोंको धारण करनेवाले हैं, वे (परि ख्यन्) सर्वत्र देखते हैं ॥ २ ॥

[७०] [यमी कहती है—] (एकस्य मर्तस्य चित् त्यजसं) यद्यपि कोई मनुष्यके लिये ऐसा सम्बन्ध त्याज्य है, (ते अमृतासः) तो भी अमर देवता लोग (एतत् आ उशन्ति घ) इच्छापूर्वक ऐसा संसर्ग अवश्य चाहते हैं। (ते मनः अस्मे निधायि) मेरी जैसी इच्छा होती है, वैसीही तुम भी करो; तूही (जन्युः पतिः तन्वम् आ विविश्याः) पुत्र जन्म दाता पतिरूपमें मेरे देहमें गर्भ रूपसे प्रविष्ट हो ॥ ३ ॥

[७१] [यम कहता है—] (यत् कत् ह पुरा न चकृम) पहले हमने ऐसा कर्म नहीं किया। (ऋता वदन्तः नूनम् अनृतं रपेम) हम सत्यवादी हैं, अवश्यही हमने कभी असत्य वचन नहीं किया है। (गन्धर्वः अप्सु) अन्तरिक्षमें स्थित गन्धर्व या जलके धारक आदित्य और (अप्या च योषा) हमारा पोषण करनेवाली योषा (सूर्यकी स्त्री सरण्यू) (नः सा नाभिः) हमारे माता-पिता हैं; (नौ तत् परमं जामि) वही हमारा श्रेष्ठ बन्धुभाव है; इसलिये ऐसा सम्बन्ध उचित नहीं ॥ ४ ॥

[७२] [यमी कहती है —] (सविता विश्वरूपः) सर्व प्रेरक और सर्व व्यापक (जनिता त्वष्टा देवः) उत्पन्नकर्ता त्वष्टा देवने (गर्भे नु नौ दम्पती कः) हमें गर्भावस्थामेंही पति-पत्नी बना दिया है। (अस्य व्रतानि नकिः प्र मिनन्ति) उस प्रजापतिकी इच्छाको कोई नाश नहीं कर सकता; (नौ अस्य) हमारे इस सम्बन्धको (पृथिवी उत द्यौः वेद) पृथिवी और द्युलोक भी जानते हैं ॥ ५ ॥

[७३] (अस्य प्रथमस्य अह्नः कः वेद) इस प्रथम दिनकी (सम्बन्ध की) बात कौन जानता है ? (ईं कः ददर्श) इस गर्भ धारणको कौन देखता है ? (इह कः प्रवोचत्) इस सम्बन्धको कौन बतला सकता है ? (मित्रस्य वरुणस्य बृहत् धाम) मित्र और वरुणके इस विस्तृत जगत्में (आहनः नॄन् वीच्य) अधःपातकी कल्पनासे भरा हुआ तू (कत् उ ब्रवः) यह क्या कहता है ? ॥ ६ ॥

यमस्य मा यम्यं काम आगन्त्समाने योनौ सहशेय्याय ।
जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद्वृहेव रथ्येव चक्रा ७

न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति ।
अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथ्येव चक्रा ८

रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत् सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात् ।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य बिभृयादजामि ९

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि ।
उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् १० [७]

किं भ्रातासद्यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात् ।
काममूता बह्वेतद्रपामि तन्वा मे तन्वं सं पिपृग्धि ११

---

[७४] (समाने योनौ सहशेय्याय) एकही स्थानमें सहशयन करनेके लिये (यमस्य कामः) यम विषयक काम--अभिलाषा (मा यम्यं आ अगन्) मुझ यमीको प्राप्त हुआ है। (पत्ये जाया इव) पतिके पास पत्नी जैसे अपनी देहका प्रकाशन करती है, वैसेही तुम्हारे पास (तन्वं रिरिच्यां) अपने शरीरको प्रदान कर देती हूं। हम (रथ्या इव चक्रा) रथके दोनों चक्रोंके समान (वि वृहेव चित्) एक कार्यमें प्रवृत्त हों ॥ ७ ॥

[७५] [यम कहता है—] (इह ये देवानां स्पशः चरन्ति) इस लोकमें जो देवोंके गुप्तचर हैं, वे दिनरात संचार करते हैं; (एते न तिष्ठन्ति न निमिषन्ति) वे कहीं भी खडे नहीं रहते, उनकी आंखें कभी बन्द नहीं होती। हे (आहनः ; आक्षेपकारिणि– दुःखदायिनी ! तुम (मत् अन्येन तूयं याहि) मेरे सिवाय अन्य पुरुषके साथ शीघ्र जा और (रथ्या इव चक्रा वि वृह) रथके चक्रोंके समान उसके साथ सम्बन्ध करो ॥ ८ ॥

[७६] [यमी कहती है —] (रात्रीभिः अहभिः अस्म आ दशस्येत्) रात्री और दिन हमारा इच्छित हमको देवे; (सूर्यस्य चक्षुः) सूर्यका तेज (मुहुः उन्मिमीयात्) फिर यमके लिये उदित हो। (दिवा पृथिव्याः मिथुना) द्यावा–पृथिवीके समान हमारा जोडा (सबन्धू) बांधवभूत है, इसलिये (यमस्य यमीः) यमकी यमी (बिभृयात्) पत्नी होवे; (अजामि) यही निर्दोष है ॥ ९ ॥

[७७] [यम कहता है–] (ता उत्तरा युगानि घा आगच्छान्) वे श्रेष्ठ युग पर्व भविष्यमें आ जायेंगे (यत्र) जिसमें (जामयः) भगिनियां (अजामि कृणवन्) बन्धुत्वके विहीन भ्राताको पति बनावेगी। इसलिये हे (सुभगे) सुन्दरी ! (मत् अन्यं पतिं इच्छस्व) मुझसे दूसरेको पति बनानेकी इच्छा कर; तू (वृषभाय बाहुं उप बर्बृहि) वीर्य सेवन करनेमें समर्थके बाहुका आश्रय ले ॥ १० ॥

[७८] [यमी कहती है–] (किं भ्राता असत्) वह कैसा भ्राता है, (यत् अनाथं भवाति) जिसके रहते भगिनी अनाथा हो जाय ? (किं उ स्वसा) वह भगिनी ही क्या है, (यत् निर्ऋतिः निगच्छात्) जिसके रहते भ्राताका दुःख दूर न करते चली जाऊं ? (काममूता) मैं कामसे पीडित होकर (एतत् बहु रपामि) इस प्रकार बहुत कुछ बोल रही हूं; (मे तन्वा) मेरे देहसे (तन्वं सं पिपृग्धि) अपने देहको संलग्न कर ॥ ११ ॥

न वा उ॑ ते त॒न्वा॑ त॒न्वं१॒॑ सं प॑पृच्यां पा॒पमा॑हु॒र्यः स्वसा॑रं नि॒गच्छा॑त् ।
अ॒न्येन॒ मत् प्र॒मुदः॑ कल्पयस्व॒ न ते॒ भ्राता॑ सुभगे वष्ट्ये॒तत् १२

ब॒तो ब॑तासि यम॒ नैव ते॒ मनो॒ हृद॑यं चाविदाम ।
अ॒न्या किल॒ त्वां क॒क्ष्ये॑व यु॒क्तं परि॑ ष्वजाते॒ लिबु॑जेव वृ॒क्षम् १३

अ॒न्यमू॒ षु त्वं य॑म्य॒न्य उ॒ त्वां परि॑ ष्वजाते॒ लिबु॑जेव वृ॒क्षम् ।
तस्य॑ वा॒ त्वं मन॑ इ॒च्छा स वा॒ तवाऽधा॑ कृणुष्व सं॒विदं॒ सुभ॑द्राम् १४ [८] (८१)

(११)

९ आङ्गिर्हविर्धानः । अग्निः । जगती, ७-९ त्रिष्टुप् ।

वृषा॒ वृष्णे॑ दुदुहे॒ दोह॑सा दि॒वः पयां॑सि य॒ह्वो अदि॑ते॒रदा॑भ्यः ।
विश्वं॒ स वे॑द॒ वरु॑णो॒ यथा॑ धि॒या स य॒ज्ञियो॑ यजतु य॒ज्ञियाँ॑ ऋ॒तून् १

रप॑द्गन्ध॒र्वीरप्या॑ च॒ योष॑णा न॒दस्य॑ ना॒दे परि॑ पातु मे॒ मनः॑ ।
इ॒ष्टस्य॒ मध्ये॒ अदि॑ति॒र्नि धा॑तु नो॒ भ्राता॑ नो ज्ये॒ष्ठः प्र॑थ॒मो वि वो॑चति २

[७९] [यम कहता है—] (वा उ ते तन्वा तन्वं न सं पपृच्यां) जब यह सत्य है, तो तेरी देहसे में अपने देहको मिलानेकी इच्छा नहीं करता हूं; क्योंकि (यः स्वसारं निगच्छात्) जो भ्राता भगिनीका संभोग करता है, उसे (पापं आहुः) लोग पापी कहते हैं; (अन्येन मत् प्रमुदः कल्पयस्य) तू मुझे छोडकर अन्य पुरुषके साथ आमोद-प्रमोद कर; हे (सुभगे) सुंदरी ! (ते भ्राता एतत् न वष्टि) तुम्हारा भाई तुम्हारे साथ इस सम्बन्धकी इच्छा नहीं करता ॥ १२ ॥

[८०] [यमी कहती है—] हे (यम) यम ! (बत बतः असि) अरे, तू बडा दुर्बल है; (ते मनः हृदयं च नैव आविदाम) तेरे मन और हृदयको में नहीं जान सकी । (किल युक्तं त्वा अन्या कक्षा इव) क्या सुयोग्य तुझको कोई अन्य स्त्री, जैसे रस्सी घोडेको बांधती है, और (वृक्षम् लिबुजा इव) वृक्षको लता परिवेष्टित करती है; (परि ष्वजाते) आलिंगित करती है ? ॥ १३ ॥

[८१] [यम कहता है-] हे (यमि) यमी ! (त्वं अन्यं ऊ षु वृक्षम् लिबुजा इव) तुम भी अन्य पुरुषको वृक्षकी लताके समान आलिंगन करो; और (अन्यः उ त्वां परि ष्वजाते) अन्य पुरुष तुम्हें आलिंगित करे । (तस्य वा त्वं मनः इच्छ) उसीका मन तुम हरण करो, (स वा तव) वह भी तुम्हारे मनका हरण करे; (अध सुभद्रां संविदं आ कृणुष्व) और तुम उसीके साथ अपने कल्याणप्रद सहवासका सुख भोगो ॥ १४ ॥

[११]

[८२] (वृषा यह्वः अदाभ्यः) वर्षा करनेवाला, महान् और अदम्य अग्निने (दिवः वृष्णे दोहसा) आकाशसे वर्षणशील मेघके दोहनसे (पयांसि दुदुहे) यज्ञ करनेवाले यजमानके लिये जलोंकी वर्षा की; (स वरुणः धिया यथा विश्वं वेद) जैसे वह वरुण बुद्धिसे सब जगत्को जानता है, वैसेही (स यज्ञियः) वह अग्नि भी जानता है; (यज्ञियां ऋतून् यजतु) यज्ञीय अग्नि यज्ञ योग्य ऋतुओंका पूजन करे ॥ १ ॥

[८३] (अप्या गन्धर्वीः योषणा रपत्) अग्निके गुणोंको कहनेवाली जलसे प्राप्य-संस्कृत-गन्धर्वकी स्त्रीने स्तुति की; (नदस्य नादे मे मनः परि पातु) ध्यानावस्थित स्थितिमें स्तुति करनेवाला मेरा मन मेरी रक्षा करे ! (अदितिः नः इष्टस्य मध्ये नि धातु) अखण्डनीय अग्नि हमें यज्ञ-यागके बीच स्थापित करे; और (नः ज्येष्ठः प्रथमः भ्राता वि वोचति) हमारे कुलके मुख्य सबसे बडे भ्राता यह स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

सो चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्व॒त्युषा उवास मनवे स्वर्वती ।
यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतु॒मग्निं होतारं विदथाय जीजनन् ३ (८४)
अध त्यं द्रप्सं विभ्वं विचक्षणं विराभरदिषितः श्येनो अध्वरे ।
यदी विशो वृणते दस्ममार्या अग्निं होतारमध धीरजायत ४
सदासि रण्वो यवसेव पुष्यते होत्राभिरग्ने मनुषः स्वध्वरः ।
विप्रस्य वा यच्छशमान उक्थ्यं वाजं ससवाँ उपयासि भूरिभिः ५ [९]
उदीरय पितरा जार आ भग॒मियक्षति हर्यतो हृत्त इष्यति ।
विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मख॒स्तविष्यते असुरो वेपते मती ६
यस्ते अग्ने सुमतिं मर्तो अक्षत् सहसः सूनो अति स प्र शृण्वे ।
इषं दधानो वहमानो अश्वै॒रा स द्युमाँ अमवान् भूषति द्यून् ७

---

[८४] (यद् उशतां उशन्तं क्रतुं अग्निं) जब यज्ञ-होम करनेकी इच्छा वाले और यज्ञ कार्य पूर्ण करने वाले अग्निको (विथदाय होतारं जीजनन्) स्तुति करके यज्ञके लिये उत्पन्न किया गया, उस समय (सो चित् नु क्षुमती यशस्वती स्वर्वती भद्रा उषा) वह कामनावती, उत्तम शब्दवाली, कीर्तिवाली, प्रख्यात-प्रसिद्ध उषा (मनवे उवास) मनुष्यके लिये आदित्यको लेकर उदित हो गई ॥ ३ ॥

[८५] (अध अध्वरे इषितः श्येनः) अनन्तर अग्निसे प्रेरित होकर यज्ञमें भेजा हुआ श्येनपक्षी (विभ्वं विचक्षणं त्यं द्रप्सं विराभरत्) महान्, आकर्षक और परिपूर्ण सोमको ले आया; (यदि आर्याः विशः दस्मं होतारं अग्निं वृणते) जिस समय श्रेष्ठ लोग सामने जाने योग्य, आकर्षक और देवोंको बुलानेवाले अग्निकी प्रार्थना करते हैं, (अध धीः अजायत) उस समय यज्ञकर्म उत्पन्न होता है ॥ ४ ॥

[८६] हे (अग्ने) अग्निदेव ! (पुष्यते यवसा इव) पशुओंके लिये जैसे घास उत्तम रुचिकर होते हैं, वैसेही तुम (सदा रण्वः असि) सदा रमणीय हो; तुम (स्वध्वरः मनुषः होत्राभिः) मनुष्योंको उत्तम हवन-यज्ञसे लाभदायक होवो। (शशमानः विप्रस्य उक्थं वाजं ससवान्) स्तोताका स्तोत्र सुनकर और हविर्द्रव्य ग्रहण करता हुआ तू (भूरिभिः उपयासि) अनेक देवोंके साथ जाते हो ॥ ५ ॥

[८७] हे अग्नि देव ! (जारः आ भगम्) जैसे रात्रिको जीर्ण करनेवाला सूर्य अपना तेज सब ओर फैलाता है, वैसे तू भी (पितरा उद् ईरय) अपना तेज मातृ-पितृरूप पृथिवीमें प्रसृत कर; (हर्यतः इयक्षति) यज्ञाभिलाषी यजमान यज्ञ करनेकी इच्छा करता है; (हृत्ता इष्यति) वह हृदयसे उनको चाहता है। (अग्निः विवक्ति) अग्नि स्तुतिको वर्धित करता है। (मखः स्वपस्यते तविष्यते) ब्रह्मा यज्ञकर्म उत्तम रीतिसे सम्पन्न करनेके लिये उत्सुक हैं; वह स्तोत्रको बढाते हैं; और (असुरः मती वेपते) वह मन ही मन कर्ममें कुछ न्यूनता तो निर्माण नहीं होगी, इस आशंकासे डरते हैं ॥ ६ ॥

[८८] हे (अग्ने) बलवान् अग्नि ! (यः मर्तः ते सुमतिं अक्षत्) जो मनुष्य तेरी कृपाको प्राप्त कर लेता है, हे (सहसः सूनो) तेजके प्रेरक ! (सः अति प्रशृण्वे) वह अत्यंत प्रसिद्ध हो जाता है। (इषं दधानः) अन्नकी समृद्धिसे सम्पन्न, (अश्वैः वहमानः) अश्वोंसे युक्त, (द्युमान् अमवान्) तेजस्वी और बलवान् (स द्यून् भूषति) वह मनुष्य अनेक दिनोंतक सुखी रहता है ॥ ७ ॥

यदग्न एषा समितिर्भवाति देवी देवेषु यजता यजत्र ।
रत्ना च यद्विभजासि स्वधावो भागं नो अत्र वसुमन्तं वीतात् ८

श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम् ।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः ९ [१०] (९०)

(११)

९ आङ्गिर्हविर्धानः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

द्यावा ह क्षामा प्रथमे ऋतेना ऽभिश्रावे भवतः सत्यवाचा ।
देवो यन्मर्तान् यजथाय कृण्वन् त्सीदद्धोता प्रत्यङ् स्वमसुं यन् १

देवो देवान् परिभूर्ऋतेन वहा नो हव्यं प्रथमश्चिकित्वान् ।
धूमकेतुः समिधा भाऋजीको मन्द्रो होता नित्यो वाचा यजीयान् २

स्वावृग्देवस्यामृतं यदी गो रतो जातासो धारयन्त उर्वी ।
विश्वे देवा अनु तत् ते यजुर्गु र्दुहे यदेनी दिव्यं घृतं वाः ३

---

[८९] हे (यजत्र अग्ने) पूज्य यजनीय अग्नि ! (यत्) जिस समय हम (यजता देवेषु) यजनीय देवोंके लिये (एषा देवी समितिः भवाति) की हुई स्तुतियां उनको प्रिय होगी और (यत्) जब हे (स्वधावः) स्वधा-युक्त अग्नि ! तू (रत्ना विभजासि) नानाप्रकारके रत्न यज्ञकर्ताओंको विभक्त करके देगा, तब (अत्र) इस समय (नः वसुमन्तं भागं वीतात्) हमारा धनका भाग हमें प्राप्त हो ॥ ८ ॥

[९०] हे (अग्ने) अग्नि ! (सधस्थे सदने नः श्रुधी) सब देवताओंसे युक्त गृहोंमें रहकर तू हमारे स्तोत्रोंका श्रवण कर; (अमृतस्य द्रवित्नुं रथं आ युक्ष्व) तू अमृत बरसानेवाले रथको योजित कर । (देवपुत्रे रोदसी नः आ वह) देवोंके माता-पिता द्यावापृथिवीको हमारे पास ले आवो; (देवानाम् माकिः अप भूः) देवोंमेंसे कोई हमारे यज्ञमेंसे चले नहीं जावे इसलिये (इह स्याः) तू यहीं रह; देवोंके पाससे नहीं जाना ॥ ९ ॥

[११]

[९१] (प्रथमे सत्यवाचा द्यावा क्षामा) यज्ञके समय मुख्य और सत्यवादी द्यावा पृथिवी (ऋतेन अभिश्रावे भवतः) नियम बद्ध होकर पहले अग्निका आह्वान करें । (देवः होता) तेजस्वी अग्नि यज्ञके लिये (मर्तान् यजथाय कृण्वन्) मनुष्योंको प्रेरित करके और (स्वं असुं यन्) अपने तेजको धारण करके (प्रत्यङ् सीदत्) देवोंको बुलानेके लिये बैठे ॥ १ ॥

[९२] (देवः देवान् परिभूः ऋतेन चिकित्वान् प्रथमः नः हव्यं आ वह) दिव्य, देवोंमें सत्यसे मुख्य, ज्ञाता, सर्वश्रेष्ठ अग्नि हमें देवोंके पास जाते हुए उत्तम हविको ले आवे । अग्नि (धूमकेतुः समिधाः भाऋजीकः मन्द्रः होता नित्यः वाचा यजीयान्) धूम्रध्वज, समिधाके द्वारा उर्ध्व ज्वलन, अपनी कांतिसे उज्ज्वल, स्तुत्य, देवोंको बुलानेवाला नित्य और मुखसे हवन किया जाता है ॥ २ ॥

[९३] (यदि देवस्य गोः) जब अग्निदेवसे (स्वावृक् अमृतं) सुखद जल उत्पन्न होते हैं, (अतः उर्वीः जातासः धारयन्त) तब इससे उत्पन्न हुई ओषधियां द्यावापृथिवी धारण करते हैं; (तत् ते यजुः विश्वे देवाः अनु गुः) उस तुम्हारे जलदानकी सारे देवता-स्तोते स्तुति-प्रशंसा करते हैं; (यद् पत्नी दिव्यं घृतं वाः दुहे) तुम्हारी प्रभा स्वर्गीय घृत-जल उत्पन्न करती है ॥ ३ ॥

अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नू द्यावाभूमी शृणुतं रोदसी मे ।
अहा यद् द्यावोऽसुनीतिमयन् मध्वा नो अत्र पितरा शिशीताम् ४

किं स्विन्नो राजा जगृहे कदस्या — ऽति व्रतं चकृमा को वि वेद ।
मित्रश्चिद्धि ष्मा जुहुराणो देवा — ञ्छ्लोको न यातामपि वाजो अस्ति ५ [११]

दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति ।
यमस्य यो मनवते सुम — न्त्वग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन् ६ (९६)

यस्मिन् देवा विदथे मादयन्ते विवस्वतः सदने धारयन्ते ।
सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्य१क्तून् परि द्योतनिं चरतो अजस्रा ७

यस्मिन् देवा मन्मनि संचर — न्त्यपीच्ये३ न वयमस्य विद्म ।
मित्रो नो अत्रादितिरनागान् त्सविता देवो वरुणाय वोचत् ८

---

[९४] हे अग्नि ! (वां अपः वर्धाय) हमारे यज्ञरूप कर्मको वृद्धिगत करो; (घृतस्नू द्यावाभूमी) जलके वर्षानेवाले द्यावा-पृथिवी ! (अर्चामि) मैं तुम्हारी पूजा और स्तुति करता हूं; हे (रोदसी) द्यावापृथिवी ! (मे शृणुत) मेरा स्तोत्र श्रवण करो । (यत् द्यावः अहा असुनीतिं अयन्) जिस समय स्तोता लोग सब काल-यज्ञके समय-स्तुति करते हैं, तब (अत्र पितरा मध्वा नः शिशीताम्) यहां माता-पितारूप द्यावापृथिवी वृष्टिजलका वर्षण करके हमें बहुत मददरूप होवे ॥ ४ ॥

[९५] (राजा नः किं स्वित् जगृहे) प्रदीप्त अग्नि राजा क्या हमारी स्तुति और हविका स्वीकार करे ? (अस्य व्रतं कत् अति चकृम) क्या इस अग्निके व्रतोंका उपयुक्त पालन हमने किया है ? (कः विवेद) यह कौन जानता है ? (मित्रः चित् जुहुराणः हि नः श्लोकः देवान् याताम्) सुहृद मित्रके बुलानेपर जैसे वह आता है, वैसे अग्नि भी आ सकता है; हमारी यह स्तुति देवोंके पास जाय; (वाजः अपि अस्ति) और हमने समर्पण किये हुए हवि भी देवताओंके पास जाय ॥ ५ ॥

[९६] (यत् अत्र अमृतस्य नाम सलक्ष्मा विषुरूपा दुर्मन्तु भवाति) जो जल यहां पृथिवीपर अमृत स्वरूप समान लक्षणोंसे युक्त और नाना रूपका गहन होता है । (यः यमस्य सुमन्तु मनवते) जो यमके अपराधको क्षमा करता है, हे (ऋष्व अग्ने) महान्. तेजस्वी अग्नि ! तू (अ प्रयुच्छन् तं पाहि) क्षमाशील होकर उसकी रक्षा कर ॥ ६ ॥

[९७] (यस्मिन् विदथे देवाः मादयन्ते) अग्निके यज्ञमें उपस्थित रहनेपर देवता लोग प्रसन्न होते हैं, और (विवस्वन्तः सदने) यजमानके तेजस्वी वेदीरूप स्थानमें (धारयन्ते) उसे स्थापित करते हैं। उन्होंने (सूर्ये ज्योतिः अदधुः) सूर्यमें तेजको (दिनोंको) स्थापित किया; और (मासि अक्तून्) चन्द्रमामें रात्रिको स्थापित किया; इसलिये (अजस्रा द्योतनिं परि चरतः) निरन्तर चन्द्र सूर्य तेजस्वी होते हैं ॥ ७ ॥

[९८] (यस्मिन् मन्मनि देवाः संचरन्ति) जिस ज्ञानमय अग्निके उपस्थित रहनेपर देवताएं अपना कार्य सम्पन्न करते हैं; (वयं अस्य अपीच्ये न विद्म) हम इसके अप्रकट-गुप्त रूपको नहीं समझते हैं; (अत्र मित्रः अदितिः सविता देवः वरुणाय नः अनागान् वोचत्) इस यज्ञमें मित्र, अदिति, सूर्य पापनाशक अग्निके पास हमें निष्पाप कहें ॥ ८ ॥

श्रुधी नो॑ अग्ने॒ सद॑ने स॒धस्थे॑ यु॒क्ष्वा रथ॑म॒मृत॑स्य द्रवि॒त्नुम् ।
आ नो॑ वह॒ रोद॑सी दे॒वपु॑त्रे॒ माकि॑र्दे॒वाना॒मप॑ भूरि॒ह स्याः ९ [१२] (९९

(१३)

५ आङ्गिर्हविर्धानः, विवस्वानादित्यो वा । हविर्धाने । त्रिष्टुप्, ५ जगती ।

यु॒जे वां॒ ब्रह्म॑ पू॒र्व्यं नमो॑भि॒र्वि श्लोक॑ एतु प॒थ्ये॑व सू॒रेः ।
शृ॒ण्वन्तु॒ विश्वे॑ अ॒मृत॑स्य पु॒त्रा आ ये धामा॑नि दि॒व्यानि॑ त॒स्थुः १

य॒मे इ॑व॒ यत॑माने॒ यदै॒तं प्र वां॑ भरन् मानु॑षा देव॒यन्तः॑ ।
आ सी॑दतं॒ स्वमु॑ लो॒कं विदा॑ने स्वास॒स्थे भ॑वत॒मिन्द॑वे नः २

पञ्च॑ प॒दानि॑ रु॒पो अन्व॑रोहं॒ चतु॑ष्पदी॒मन्वे॑मि व्र॒तेन॑ ।
अ॒क्षरे॑ण॒ प्रति॑ मिम ए॒ताम् ऋ॒तस्य॒ नाभा॒वधि॒ सं पु॑नामि ३

दे॒वेभ्यः॒ कम॑वृणीत मृ॒त्युं प्र॒जायै॒ कम॒मृतं॒ नावृ॑णीत ।
बृह॒स्पतिं॑ य॒ज्ञम॑कृण्वत॒ ऋषिं॑ प्रि॒यां य॒मस्त॒न्वं१ प्रारि॑रेचीत् ४

---

[९९] हे (अग्ने) अग्नि ! (सधस्थे सदने नः श्रुधी) सब देवताओंसे युक्त गृहोंमें रहकर तू हमारे स्तोत्रोंका श्रवण कर; (अमृतस्य द्रवितुं रथं आ युक्ष्व) तू अमृत बरसानेवाले रथको योजित कर। (देवपुत्रे रोदसी नः आ वह) देवोंके माता-पिता द्यावा पृथिवीको हमारे पास ले आवो; (देवानाम् माकिः अप भूः) देवोंमेंसे कोई हमारे यज्ञमेंसे चले नहीं जावे इसलिये (इहः स्याः) तू यहीं रह; देवोंके पाससे नहीं जाना ॥ ९ ॥

[१३]

[१००] हे शकट ! (वां पूर्व्यं नमोभिः ब्रह्म युजे) प्राचीन कालमें उत्पन्न मन्त्रका उच्चारण करके अन्नयुक्त तुम्हें मैं ले जाता हूं; (सूरेः श्लोकः पथ्या इव वि एतु) स्तोताकी आहुतिके समान यह मेरा स्तोत्र देवोंके पास पहुंचे। (विश्वे अमृतस्य पुत्राः) अमर प्रजापतिके सब पुत्र (ये दिव्यानि धामानि आ तस्थुः) जो देव दिव्य धाममें रहते हैं, हमारी (शृण्वन्तु) स्तुतियां सुनें ॥ १ ॥

[१०१] (यद् यमे इव) जब तुम जुडवेंके समान (यतमाने एतं) जोरसे यज्ञगृहमें जाते हैं, तब (वां देवयन्तः मनुषाः प्र भरन्) देव भक्त मनुष्य तुम्हारे ऊपर होम द्रव्य लादते हैं; (स्वं उ लोकं विदाने) तुम अपना स्थान जानकर (आ सीदतम्) जब खडा रहते हो (नः इन्दवे स्वासस्थे भवतम्) उस समय तुम सोमका सुन्दर स्थान बनते हो ॥ २ ॥

[१०२] (रूपः पञ्च पदानि अन्वरोहं) यज्ञके जो पांच (धाता, सोम, पशु, पुरोडाश और घृत) उपकरण-स्थान हैं, उनको मैं यथाक्रम चढूं; (व्रतेन चतुष्पदीम् अन्वेमि) यथा नियम चार त्रिष्टुबादि छन्दोंका प्रयोग करता हूं। (एतां अक्षरेण प्रति मिमे) ओंकारका उच्चारण करके कार्यको सम्पन्न करता हूं; (ऋतस्य नाभौ अधि सं पुनामि) यज्ञकी नाभिरूप वेदीपर मैं सोमको पवित्र करता हूं ॥ ३ ॥

[१०३] (देवेभ्यः मृत्युं अवृणीत कम्) देवोंके लिये मृत्युको दूर हटावो, (प्रजायै अमृतं न अवृणीत कम्) प्रजाके लिये अमर जीवनको नष्ट न होने दो। (बृहस्पतिं यज्ञं ऋषिं अकृण्वत) यज्ञकर्ता लोग मन्त्रोंसे पवित्र यज्ञका अनुष्ठान करते हैं; (यमः प्रियां तन्वं प्रारिरेचीत्) जिससे यम हमारे शरीरको मृत्युके पास नहीं भेजता है ॥ ४ ॥

सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते पित्रे पुत्रासो अप्यवीवतन्नृतम् ।
उभे इदस्योभयस्य राजत उभे यतेते उभयस्य पुष्यतः ५ [१३] (१०४)

(१४)

१६ वैवस्वतो यमः । यमः, ६ अङ्गिरःपित्रथर्वभृगुसोमाः, ७-९ लिङ्गोक्तदेवताः, पितरो वा,
१०-१२ श्वानौ । त्रिष्टुप्, १३, १४, १६, अनुष्टुप्, १५ बृहती ।

परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य १

यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयु—रेना जज्ञानाः पथ्या३ अनु स्वाः २

मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभि—र्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः ।
याँश्च देवा वावृधुर्ये च देवान् त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति ३ (१०७)

इमं यम प्रस्तरमा हि सीदा—ऽङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः ।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वह—न्त्वेना राजन् हविषा मादयस्व ४

---

[१०४] (पित्रे पुत्रासः मरुत्वते शिशवे सप्त क्षरन्ति) स्तुत्य, पितृस्वरूप और प्रशंसनीय सुंदर सोमसे सात छंद (स्तुति रूप) निकलते हैं; (उतं ऋतं अपि अवीवृतन्) उस समय स्तोता लोग स्तुतियोंका गान करते हैं; (अस्य उभयस्य उभे इत् राजते) ये दोनों शकट दोनों लोकोंमें प्रकाशित होते हैं; (उभे यतेते) दोनों प्रयत्न करते हैं; (उभयस्य पुष्यतः) और देवों तथा मनुष्योंका पोषण करते हैं ॥ ५ ॥

[१४]

[१०५] (यमं राजानं हविषा दुवस्य) हे यजमान, तुम पितरोंके राजा यमकी हवि आदिके द्वारा उपासना कर । (प्रवतः महीः परेयिवांसं) यम उत्तम पुण्यमय कर्म करनेवालोंको सुखद स्थानमें ले जानेवाला, और (अनु बहुभ्यः पन्थां अनुपस्पशानम्) बहुतोंके हितार्थ योग्य मार्गके दृष्टा है, (वैवस्वतं जनानां सगमनम्) विवस्वानके पुत्र यमके पासही मनुष्योंको जाना पडता है ॥ १ ॥

[१०६] (प्रथमः यमः नः गातुं विवेद) सबमें मुख्य यम पापपुण्यको जानता है; (एषा गव्यूतिः अपभर्तवा न उ) उसका वह मार्ग- नियम कोई बदल नहीं सकता- मार्गका विनाश नहीं कर सकता; (पूर्वे यत्र नः पितरः परेयुः) पहले जिस मार्गसे हमारे पूर्वज गये हैं, (एना स्वाः पथ्याः जज्ञानाः अनु आ) उसी मार्गसे अपने-अपने कर्मानुसार हम सब जायेंगे ॥ २ ॥

[१०७] (मातली कव्यैः) इन्द्र कव्यभुग् पितरोंकी सहायतासे (यमः अङ्गिरोभिः) यम अंगिरसादि पितरोंकी सहायतासे और (बृहस्पतिः ऋक्वभिः) बृहस्पति ऋक्ववादि पितरोंकी सहायतासे (वावृधानः) उत्कर्ष पाते हैं। (देवाः यान् च वावृधुः) देव जिनको उन्नत करते हैं और (ये देवान्) जो देवोंको बढाते हैं, उनमेंसे (अन्ये) कोई (स्वाहा) स्वाहाके द्वारा और (अन्ये स्वधया) कोई स्वधासे (मदन्ति) प्रसन्न होते हैं ॥ ३ ॥

[१०८] हे (यम) यम ! (अङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः इमं प्रस्तरं आ सीद) अंगिरादि पितरोंके साथ तू इस श्रेष्ठ यज्ञमें आकर बैठो । (कविशस्ताः मन्त्राः त्वा आ वहन्तु) विद्वान् लोगोंके मन्त्र तुझे बुलावे; हे (राजन्) राजा यम ! (एना हविषा मादयस्व) इन हविसे संतुष्ट होकर तू हमें प्रसन्न कर ॥ ४ ॥

अङ्गिरोभिरा गहि यज्ञियेभि-र्यम वैरूपैरिह मादयस्व ।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता ते ऽस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्य ५ [१४]

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियाना-मपि भद्रे सौमनसे स्याम ६

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभि-र्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः ।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ७

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेने-ष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।
हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः ८

अपेत वीत वि च सर्पतातो ऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन् ।
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै ९

अति द्रव सारमेयौ श्वानौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा ।
अथा पितॄन् त्सुविदत्राँ उपेहि यमेन ये सधमादं मदन्ति १० [१५]

---

[१०९] हे (यम) यम ! (वैरूपैः यज्ञियेभिः अङ्गिरोभिः आ गहि) विविध रूप धारण करनेवाले पूजाके योग्य अंगिरोंके साथ तू आ और (इह मादयस्व) इस यज्ञमें सन्मान करनेवाले यजमानको संतुष्ट कर। (यः ते पिता विवस्वन्तं हुवे) जो तुम्हारे पिता विवस्वान् हैं उनको मैं यज्ञमें बुलाता हूं; (अस्मिन् यज्ञे बर्हिषि निषद्य आ) इस यज्ञमें वह कुशासनपर बैठकर हमें संतुष्ट करें ॥ ५ ॥

[११०] (अङ्गिरसः अथर्वाणः भृगवः नः पितरः नवग्वाः) अङ्गिरा, अथर्वा और भृग्वादि हमारे पितर अभी ही आये हैं, और (सोम्यासः) वे सोमके अधिकारी हैं। (तेषां यज्ञियानां सुमतौ वयं) उन यज्ञार्ह पितरोंका अनुग्रह हमें प्राप्त होवे; और (अपि भद्रे सौमनसे स्याम) हम उनकी प्रसन्नता प्राप्त कर कल्याणमार्गी बनें ॥ ६ ॥

[१११] हे पिता ! (यत्र नः पूर्वे पितरः परेयुः) जहां हमारे पूर्व पितर जीवन पार कर गये हैं, (पूर्वेभिः पथिभिः प्रेहि प्रेहि) उन प्राचीन मार्गोंसे तुम भी जाओ। (स्वधया मदन्ता) स्वधाकार-अमृतान्नसे प्रसन्न-तृप्त हुए (राजाना यमं वरुणं च देवं) राजा यम और वरुण देव (उभा पृश्यासि) इन दोनोंको देख ॥ ७ ॥

[११२] हे पिता ! (परमे व्योमन् पितृभिः सं गच्छस्व) श्रेष्ठ स्वर्गमें अपने पितरोंके साथ मिलो; (यमेन इष्टापूर्तेन सं) वैसेही अपने यज्ञ, दान आदि पुण्य कर्मके फलसे भी मिलो; (अवद्यं हित्वाय पुनः अस्तम् एहि) पापाचरणको छोडकर फिर गृहमें प्रवेश करो; (सुवर्चाः तन्वा सं गच्छस्व) और तेजस्वी शरीरको प्राप्त कर ॥ ८ ॥

[११३] हे दुष्ट पिशाचों ! (अतः अप इत) यहांसे चले जाओ; (वि इत) हट जाओ; (वि सर्पत च) दूर चले जाओ; (पितरः अस्मै एवं लोकं आ अक्रन्) पितरोंने इस मृत मनुष्यके लिये यह स्थान (वहन स्थान) आक्रमित किया है; (अहोभिः अक्तुभिः अद्भिः व्यक्तं) यह स्थान दिन-रात और जलसे युक्त है; (यमः अस्मै अवसानं ददाति) यमने इस स्थानको मृत मनुष्यके लिये दिया है ॥ ९ ॥

[११४] हे मनुष्य ! (चतुरक्षौ शबलौ सारमेयौ श्वानौ) चार आखोंवाले और विचित्र वर्णवाले ये जो दो कुत्ते हैं, (साधुना पथा अति द्रव) इनके पाससे उत्तम मार्गसे तुम शीघ्र चले जाओ। (अथ ये) अनन्तर जो पितर (यमेन सधमादं मदन्ति) यमके साथ सदा आनन्दका अनुभव करते हैं; उन (सुविदत्रान् पितॄन् उपेही) ज्ञानवान् पितरोंको प्राप्त कर ॥ १० ॥

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ ।
ताभ्यामेनं परि देहि राजन् त्स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि ११
उरूणसावसुतृपा उदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु ।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् १२
यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः ।
यमं ह यज्ञो गच्छ- त्यग्निदूतो अरंकृतः १३
यमाय घृतवद्धवि- र्जुहोत प्र च तिष्ठत ।
स नो देवेष्वा यमद् दीर्घमायुः प्र जीवसे १४
यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन ।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः १५
त्रिकद्रुकेभिः पतति षळुर्वीरेकमिद्बृहत् ।
त्रिष्टुब्गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आहिता १६ [१६] (१२०)

---

[११५] हे (यम) यम ! (ते रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ) तुम्हारे गृहके रक्षक, चार आखोंवाले, मार्गके रक्षक और लोगोंके द्वारा प्रसिद्ध (यौ श्वानौ) जो वो श्वान हैं, (ताभ्यां एनं परि देहि) उनसे इस मृत व्यक्तिकी रक्षा करो। हे (राजन्) राजा ! (अस्मै स्वस्ति च अनमीवं च धेहि) इसे कल्याणभागी और नीरोगी करो ॥ ११ ॥

[११६] (यमस्य दूतौ) यमके दूत, (अरूणसौ) लम्बी नाकोंवाले, (असुतृपा) प्राणिजीवी और (उदुम्बलौ) अत्यंत बलशाली (जनान् अनुचरतः) ऐसे दो श्वान मनुष्योंको लक्ष्य करके विचरण करते हैं; (तौ अस्मभ्यं) वे हमें (सूर्याय दृशये) सूर्यके दर्शनके लिये (इह अद्य) यहां आज (भद्रं असुं पुनः दाताम्) कल्याणकारक उचित प्राण दें ॥ १२ ॥

[११७] हे ऋत्विको ! (यमाय सोमं सुनुत) यमके लिये सोमको निचोडो, और (यमाय हविः जुहुत) यमके लिये हविका हवन करो। (अग्निदूतः अरंकृतः यज्ञः) जिसके अग्नि दूत है और जिसे अनेक द्रव्योंसे सुशोभित किया है, वह यज्ञ (यमं ह गच्छति) यमकी ओर जाता है ॥ १३ ॥

[११८] हे ऋत्विको ! (यमाय घृतवत् हविः जुहोत) यमके लिये घृतयुक्त हविका हवन करो और (प्रतिष्ठत च) यमकी स्तुति-उपासना करो। (देवेषु सः) देवोंके बीच यम (नः जीवसे दीर्घायुः प्र आ यमद्) हमारे दीर्घ जीवनके लिये दीर्घायुष्य प्रदान करे ॥ १४ ॥

[११९] हे ऋत्विजो ! (राज्ञे यमाय मधुमत्तमं हव्यं जुहोतन) राजा यमके लिये अत्यंत मधुर हवि अर्पण करो। (पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ऋषिभ्यः इदं नमः) पूर्वज और पूर्व मार्गदर्शक ऋषियोंके लिये यह नमस्कार है ॥ १५ ॥

[१२०] (त्रिकद्रुकेभिः षट् उर्वीः एकं इत् बृहत् पतति) यमराज त्रिकद्रुक नामक यज्ञमें (ज्योति, गौ और आयु) संरक्षणके लिये प्राप्त होवे; यम छः स्थानोंमें (द्युलोक, भूलोक, जल, औषधियां, ऋक् और सूनृत) रहता है; यह एक ही के संरक्षणके लिये प्राप्त होवे। (त्रिष्टुप्, गायत्री, छन्दांसि ता सर्वा यमे आहिता) त्रिष्टुप्, गायत्री और अन्य सब छंद- वे सब यममें स्थापित हैं ॥ १६ ॥

+

(१५)

१४ शङ्खो यामायनः । पितरः । त्रिष्टुप्, ११ जगती ।

उदीरतामवर उत् परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ईयुरवृकाः ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु १
इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु २
आहं पितॄन् त्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ३
बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आ गतावसा शंतमेनाऽथा नः शं योररपो दधात ४
उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ५ [१७]

[१५]

[१२१] (अवरे उत् उदीरताम्) जो पितर पृथिवीपर हैं वे उन्नत स्थानको प्राप्त करें; (परासः पितरः उत्) जो पितर स्वर्गमें- उच्च स्थानपर हैं, वे वहीं रहें; (मध्यमाः सोम्यासः) जो मध्यम स्थानका आश्रय करके रहे हैं, वे उच्च स्थानको-पदको प्राप्त करें । (ये ऋतज्ञा असुम् इयुः अवृका) जो सोमरस पिते हैं, और सत्य स्वरूप, केवल प्राणरूप और शत्रुरहित पितर हैं, (ते पितरः हवेषु नः अवन्तु) वे पितर यज्ञकालमें हमारी रक्षा करें ॥ १ ॥

[१२२] (ये पूर्वासः) जो पहले उत्पन्न होकर मृत हुए, और (ये उपरासः इयुः) जो अनन्तर पीछे उत्पन्न होकर मरे, (ये पार्थिवे रजस्य आ निषत्ता) जो पृथिवीपर राजस कार्य करके उत्तम पदोंपर विराजमान हैं और (ये वा नूनं सुवृजानासु विक्षु) जो निश्चयसे समृद्ध-भाग्यवान् बांधवोंमें हैं, (पितृभ्यः अद्य इदं नमः अस्तु) उन सब पितरोंको आज यह नमस्कार है ॥ २ ॥

[१२३] (अहं सुविदत्रान् पितॄन् अवित्सि) मैंने ज्ञानवान् पितरोंको पाया है, (विष्णोः नपातं च विक्रमणं च) मैंने यज्ञका फल और प्रवृत्ति भी पाया है । (ये बर्हिषदः सुतस्य पित्वः स्वधया भजन्त) जो पितर कुशासन-पर बैठकर उत्तम सोमरस हव्यके साथ ग्रहण करते हैं, ((ते इह आगमिष्ठाः) वे सब यहां आये हैं ॥ ३ ॥

[१२४] हे (बर्हिषदः पितरः) कुशासनपर बैठनेवाले पितरों ! आप (ऊती अर्वाक्) हमें संरक्षण दो। (इमा हव्या वः चकृम जुषध्वम्) तुम्हारे लिये इन हविर्द्रव्योंको अर्पण करते हैं, इनका आस्वाद लोजिए। (ते आगत) वे आप आइए। (अथ शन्तमेन अवसा) और मंगलप्रद, कल्याणमय प्रीतिसे (नः शंयोः दधात) हमें सुखकी प्राप्ति कराइये । (अरपः) अनन्तर दुःखरहित करो और पापसे दूर करो ॥ ४ ॥

[१२५] (बर्हिष्येषु प्रियेषु निधिषु सोम्यासः पितरः उपहूताः) कुशोंके उपर सब मनोहर, प्रिय, विपुल हविर्द्रव्य रखकर, इनका और सोमरसका उपभोग करनेके लिये पितरोंको सन्मानपूर्वक बुलाये हैं । (ते इह आगमन्तु) वे यहां आवे; (ते अधि श्रवन्तु ब्रुवन्तु) वे हमारी स्तुति प्रसन्न मनसे श्रवण करें; (ते अस्मान् अवन्तु) और वे हमारी रक्षा करें ॥ ५ ॥

आच्या जानुं दक्षिणतो निषद्ये॒मं यज्ञमभि गृणीत विश्वे ।
मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ६
आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त इहोर्जं दधात ७
ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासो ऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः ।
तेभिर्यमः संरराणो हवींष्यु॒शन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ८
ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः ।
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् सत्यैः कव्यैः पितृभिर्घर्मसद्भिः ९
ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं दधानाः ।
आग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः परैः पूर्वैः पितृभिर्घर्मसद्भिः १० [१८]

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिष्य॒था रयिं सर्ववीरं दधातन ११

---

[१२६] हे (पितरः) पितरों ! (विश्वे दक्षिणतः जानु आच्य) आप सब लोग दक्षिणकी ओर घुटने टेककर (निषद्य) बैठकर (इमं यज्ञं अभिगृणीत) हमारे इस यज्ञकी प्रशंसा करो। (यद् वः पुरुषता आगः कराम) वैसेही तुम्हारे प्रति हमसे मनुष्य होनेके कारण अपराध होना सम्भव है, (केन चित् नः मा हिंसिष्ट) किसी भी कारणसे तुम हमारे उपर क्रोध नहीं करना ॥ ६ ॥

[१२७] हे (पितरः) पितरों ! (अरुणीनां उपस्थे आसीनासः) श्रेष्ठ देवोंके पास बैठे हुए तुम लोग (दाशुषे मर्त्याय रयिं धत्त) हवि-दान देनेवाले मनुष्यके लिये धन दो। (तस्य पुत्रेभ्यः वस्वः प्रयच्छत) तुम उस यजमानके पुत्रको धन दो; (ते इह ऊर्जं दधात) वे तुम इस यज्ञमें बहुत धन प्रदान करो ॥ ७ ॥

[१२८] (ये नः सोम्यासः पूर्वे पितरः) जो हमारे सोम पीनेवाले प्राचीन पितर (वसिष्ठाः सोमपीथं अनु ऊहिरे) धनवान् थे, उन्होंने सोमपान यथानियम किया था; (तेभिः उशद्भिः संरराणः यमः) उन हमारे हविकी अभिलाषा करनेवाले पितरोंके साथ सुखपूर्वक रहता हुआ यम (प्रतिकामं उशन् हवींषु अत्तु) इन हविर्द्रव्योंका आनंदसे यथेच्छ भोजन करे ॥ ८ ॥

[१२९] हे (अग्ने) अग्निदेव ! (ये होत्राविदः स्तोमतष्टासः) जो पितर अग्निहोत्रको जाननेवाले, ऋचाओंसे — स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं और (देवत्रा जेहमानाः तातृषुः) देवत्वकी प्राप्ति कर चुके हैं, उनको प्राप्त होकर, यदि वे धनादिकी इच्छा करते हैं, उन (अर्कैः सुविदत्रेभिः सत्यैः कव्यैः घर्मसद्भिः पितृभिः) अर्चनीय, ज्ञानी, सत्यवादी, बुद्धिमान् तेजस्वी यज्ञस्थ पितरोंके साथ (अर्वाङ् आ याहि) तू हमारे पास आ ॥ ९ ॥

[१३०] (ये सत्यासः हविरदः हविष्पा) जो सत्याचरणशील, हविका भक्षण करनेवाले और रसपान करनेवाले पितर हैं (इन्द्रेण देवैः सरथं दधानाः) वे इन्द्र और देवोंके साथ एक रथमेंही बैठे हैं। हे (अग्ने) अग्निदेव ! (देववन्दैः पूर्वैः परैः घर्मसद्भिः पितृभिः) उन सब देवोंकी उपासना करनेवाले, प्राचीन श्रेष्ठ यज्ञके अनुष्ठाता पितरोंके साथ (सहस्रं आ याहि) त्वरित होकर आ ॥ १० ॥

[१३१] हे (अग्निष्वात्ताः पितरः) अग्निदग्ध पितरो ! (इह आगच्छत) तुम यहां आओ और (सदः सदः सदत) सब अपने अपने आसनपर बैठो। हे (सुप्रणीतयः) पूज्य ! (प्रयतानि हवींषि आ अत्त) पात्रोंमें परसे हुए हविर्द्रव्योंका भक्षण करो; (अथ बर्हिषी सर्ववीरं रयिं दधातन) और पुत्र-पौत्र आदिसे युक्त धन हमें दो ॥ ११ ॥

त्वमग्न ईळितो जातवेदो ऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि १२
ये चेह पितरो ये च नेह याँश्च विद्म याँ उ च न प्रविद्म ।
त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं जुषस्व १३ (१३३)
ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
तेभिः स्वराळसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयस्व १४ [१९] (१३४)

(१६)

१४ दमनो यामायनः । अग्निः । त्रिष्टुप्, ११–१४ अनुष्टुप् ।

मैनमग्ने वि दहो माभि शोचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम् ।
यदा शृतं कृणवो जातवेदो ऽथेमेनं प्र हिणुतात् पितृभ्यः १
शृतं यदा करसि जातवेदो ऽथेमेनं परि दत्तात् पितृभ्यः ।
यदा गच्छात्यसुनीतिमेतामथा देवानां वशनीर्भवाति २

---

[१३२] हे (जातवेदः अग्ने) सर्वज्ञ अग्निदेव ! (त्वं ईळितः हव्यानि सुरभीणि कृत्वी अवाट्) हमने तुम्हारी स्तुति की है; तुमने हमारी हविको मान्य करके, उत्तम गन्धयुक्त करके पितरोंको दिया है । (पितृभ्यः प्रादाः ते स्वधया अक्षन्) वे पितर स्वधाके साथ दिये गये हविका भक्षण करें; (त्वं देव) तू भी हे देव ! (प्रयता हवींषि अद्धि) प्रयत्नसे अर्पण किये हविका भक्षण कर ॥ १२ ॥

[१३३] हे (जातवेदः) सर्वज्ञ अग्नि ! (ये च इह पितरः यान् च विद्म) यहां जो पितर आये हैं, जिनको हम जानते हैं; (ये च न इह यान् उ च न प्रविद्म) और जो यहां नहीं आये हैं, जिन्हें हम नहीं जानते हैं; (यति ते त्वं वेत्थ) उन सबको तुम जानते हो; तो (स्वधाभिः सुकृतं यज्ञं जुषस्व) स्वधायुक्त इस सुप्रतिष्ठित यज्ञका स्वीकार कर ॥ १३ ॥

[१३४] हे अग्ने ! (ये अग्निदग्धाः ये अनग्निदग्धाः) जो पितर अग्निसे जलाये गये हैं, और जो नहीं जलाये गये हैं, और (मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते) जो सब स्वर्गमें स्वधारूप अन्नसे तृप्त होकर आनन्दित रहते हैं; (तेभिः स्वराट् एताम् असुनीतिं तन्वं) उनके साथ तू मिलकर हमारे पितरोंके इस प्राणधार शरीरको (यथावशं कल्पयस्व) यथाशक्ति समर्थ बना ॥ १४ ॥

[१६]

[१३५] हे (अग्ने) अग्निदेव ! (एनं मा वि दहः) इसको भस्म नहीं करना; (मा अभि शोचः) इसे क्लेश नहीं देना; (अस्य त्वचं मा चिक्षिपः मा शरीरं) इसके चर्म वा शरीरको छिन्न भिन्न नहीं करना; हे (जातवेदः) ज्ञानी अग्नि ! (यदा शृतं कृणवः) जिस समय तू इसे पूर्णतया जलाता है, (अथ एनं पितृभ्यः प्र हिणुतात्) उसी समय इसे पितरोंके पास भेज देना ॥ १ ॥

[१३६] हे (जातवेदः) सर्वज्ञ अग्नि ! (यदा एनं शृतं ईं करसि) जब तू इसको पूर्णतया जलाएगा (अथ एनं पितृभ्यः परि दत्तात्) तब इसको पितरोंको प्रदान कर । (यदा एतां असुनीतिं गच्छाति) जब यह शरीर मृत होता है, (अथ देवानां वशनीः भवाति) तब वह देवोंके वशमें रहता है ॥ २ ॥

सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा ।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हित-मोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ३
अजो भागस्तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः ।
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेद-स्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम् ४
अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधाभिः ।
आयुर्वसान उप वेतु शेषः सं गच्छतां तन्वा जातवेदः ५ [२०]

यत् ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः ।
अग्निष्टद्विश्वादगदं कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणाँ आविवेश ६
अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोर्णुष्व पीवसा मेदसा च ।
नेत् त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग्विधक्ष्यन् पर्यङ्खयाति ७
इममग्ने चमसं मा वि जिह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्यानाम् ।
एष यश्चमसो देवपान-स्तस्मिन् देवा अमृता मादयन्ते ८

---

[१३७] हे मृत मनुष्य ! (सूर्यं चक्षुः गच्छतु आत्मा वातम्) तेरा नेत्र सूर्यके पास जाय और प्राण वायुमें; (धर्मणा द्यां च गच्छ पृथिवीं च) और तू अपने पुण्य फलसे स्वर्ग वा पृथिवीपर जा; (वा अपः गच्छ) अथवा जलमें जा; (यदि तत्र ते हितं शरीरैः ओषधीषु प्रति तिष्ठ) यदि उनमें तेरा हित है तो तू सूक्ष्म शरीरोंसे ओषधियोंमें रह ॥ ३ ॥

[१३८] (अजः भागः तं तपसा तपस्व) जन्मरहित जो अंश है, उसे तू अपने तेजसे तप्त कर; (ते शोचिः तं तपतु) तुम्हारा तेज उसे तप्त करे; (ते अर्चिः तं) तुम्हारी ज्वाला उसे तप्त करे; हे (जातवेदः) सर्वज्ञ अग्नि ! (याः ते शिवाः तन्वः) जो तुम्हारी मंगलप्रदायी मूर्तियां हैं, (ताभिः एनं सुकृतां लोकं वह) उनसे इसको पुण्यवान् लोगोंके लोकमें ले जाओ ॥ ४ ॥

[१३९] हे (अग्ने) अग्नि ! (यः ते आहुतः स्वधाभिः चरति) जो तेरा आहुतिस्वरूप होकर स्वधासे युक्त हविका भोजन करता है, उसे तू (पुनः पितृभ्यः अव सृज) फिर पितरोंके लिये उत्पन्न कर। हे (जातवेदः) सर्वज्ञ अग्नि ! (शेषः वसानः आयुः उपवेतु) इसका जो भाग अवशिष्ट है वह प्राण धारण करके उठ जाय; वह (तन्वा सं गच्छताम्) सदा दृढ शरीर प्राप्त करे ॥ ५ ॥

[१४०] हे मृत मनुष्य ! (यत् ते कृष्णः शकुनः आतुतोदः) तुम्हारे शरीरके अंशको काकने बहुत पीडा पहुंचायी होगी, (पिपीलः सर्पः उत वा श्वापदः) अथवा कीडा, मकोडा, सांप, वा हिंस्र पशुने उसको व्यथित किया होगा, तो (तत् अग्निः विश्वात् अगदं कृणोतु) उसको सर्व भक्षक अग्नि नीरोगी-पीडा रहित करे (यः सोमः च ब्राह्मणान् आविवेश) जो औषधिविज्ञ सोम ब्राह्मणोंमें रहता है, वह भी उसे नीरोग करे ॥ ६ ॥

[१४१] हे मृत ! (अग्नेः वर्म गोभिः परि व्ययस्व) तुम अग्निका कवच जो वेदी है उसे गोचर्मसे आच्छादित करो; (पीवसा मेदसा च सं प्र ऊर्णुष्व) तुम अपने मेद और मांससे आच्छादित होओ। जिससे (धृष्णुः जर्हृषाणः दधृक् हरसा विधक्ष्यन्) अपने तेजसे धृष्टहृष्ट अग्नि, बलपूर्वक सबको जलानेवाला (त्वा नेत् पर्यङ्खयति) तुझे घेर न ले ॥ ७ ॥

[१४२] हे (अग्ने) अग्निदेव ! (इमं चमसं मा विजिह्वरः) इस चमसपात्रको तू विचलित न कर; (उत देवानां सोम्यानां प्रियः) यह देव और पितरोंको प्रिय है। (यः चमसः एषः देवपानः) यह जो चमस है वह देवोंके पान करनेके लियेही है; (तस्मिन् देवाः अमृताः मादयन्ते) उससे समस्त अमर देव और पितर आनन्दित होते हैं ॥ ८ ॥

क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः ।
इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ९
यो अग्निः क्रव्यात् प्रविवेश वो गृह मिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम् ।
तं हरामि पितृयज्ञाय देवं स घर्ममिन्वात् परमे सधस्थे १० [२१]

यो अग्निः क्रव्यवाहनः पितॄन् यक्षदृतावृधः ।
प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ ११
उशन्तस्त्वा नि धीम ह्युशन्तः समिधीमहि ।
उशन्नुशत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे १२ (१४६)

यं त्वमग्ने समदह स्तमु निर्वापया पुनः ।
कियाम्ब्वत्र रोहतु पाकदूर्वा व्यल्कशा १३
शीतिके शीतिकावति ह्लादिके ह्लादिकावति ।
मण्डूक्या३ सु सं गम इमं स्व१ग्निं हर्षय १४ [२२] (१४८)

---

[१४३] मैं (क्रव्यादं अग्निं दूरं प्र हिणोमि) माँस खानेवाले अग्निको दूर हटाता हूं; (रिप्रवाहः यमराज्ञः गच्छतु) पापवाहक अग्नि यमराजाके पास जांय । (इह एव अयं इतरः प्रजानन् जातवेदः) यहीं यह एक दूसरा सर्वप्रसिद्ध सर्वज्ञ अग्नि है, वह (देवेभ्यः हव्यं वहतु) देवोंके पास हवि ले जाय ॥ ९ ॥

[१४४] (यः क्रव्यात् अग्निः इमं वः गृहं प्रविवेश) जो मांसभक्षक अग्नि इस तुम्हारे घरमें घुसा है, उसे (पितृयज्ञाय इतरं जातवेदसं पश्यन्) पितृ यज्ञके लिये यह दूसरा अग्नि है, इसलिये (तं हरामि) मैं उसको दूर करता हूं । (सः परमे सधस्थे देवं घर्मं इन्वात्) वह परम श्रेष्ठ स्थानमें स्थित अग्नि तेजस्वी यज्ञको प्राप्त करे ॥ १० ॥

[१४५] (यः क्रव्यवाहनः ऋतावृधः अग्निः पितॄन् यक्षत्) जो क्रव्यवाहक और यज्ञकी उन्नति करनेवाला अग्नि पितरोंका आदर करता है, वह (देवेभ्यः च पितृभ्यः हव्यानि प्र आ वोचति) देवों और पितरोंके लिये हविर्द्रव्योंको ले जाता है ॥ ११ ॥

[१४६] हे अग्नि ! (उशन्तः त्वा निधीमहि) फलोंकी इच्छावाले हम तुझे यत्नपूर्वक स्थापित करते हैं और (उशन्तः समिधीमहि) तुझे प्रदीप्त करते हैं । (उशन् उशतः पितॄन्) यज्ञाभिलाषी स्वेच्छासे आनेवाले देवों और पितरोंके पास (हविषे अत्तवे आ वह) भक्षणके लिये हविर्द्रव्य ले आ ॥ १२ ॥

[१४७] हे (अग्नि) अग्नि देव ! (त्वं यं सं अदहः) तुमने जिस भूभागको जलाया है, (तं उ पुनः निर्वापय) उसकोही फिर शान्त कर । (अत्र कियाम्बु पाकदूर्वा व्यल्कशा रोहतु) यहां जलसे परिपूर्ण पुष्करिणी और विविध शाखाओंवाली दूब उत्पन्न होवो ॥ १३ ॥

[१४८] हे (शीतिके) शान्त स्वभाववाली ! हे (शीतिकावति) शीतवत् शान्तिदायक ओषधियोंसे युक्त ! हे (ह्लादिके ह्लादिकावति) आह्लादक पृथिवी ! तुम आह्लाद देनेवाली हो । तू (मण्डूक्या आ सु सं गमः) बहुत मण्डूकिओंसे युक्त हो– और (इमं अग्निं सु हर्षय) इस अग्निको अत्यंत संतुष्ट कर ॥ १४ ॥

(१७) [द्वितीयोऽनुवाकः ॥२॥ सू० १७-२९]

१४ देवश्रवा यामायनः । १-२ सरण्यूः,३-६ पूषा, ७-९ सरस्वती, १०-१४ आपः,
११-१३ सोमो वा । त्रिष्टुप्, १३-१४ अनुष्टुप्, १३ पुरस्ताद्बृहती वा ।

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोती-तीदं विश्वं भुवनं समेति ।
यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश १
अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वी सवर्णामददुर्विवस्वते ।
उताश्विनावभरद्यत् तदासी-दजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः २
पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वा-ननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः ।
स त्वैतेभ्यः परि ददत् पितृभ्यो ऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः ३
आयुर्विश्वायुः परि पासति त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ।
यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययु-स्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ४
पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्माँ अभयतमेन नेषत् ।
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरो ऽप्रयुच्छन् पुर एतु प्रजानन् ५ [२३]

---

[१७]

[१४९] (त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति) त्वष्टा देव अपनी कन्याका विवाह करनेवाला है, इसलिये (इदं विश्वं भुवनं समेति) यह सारा जगत् आ गया है । जिस समय (यमस्य माता पर्युह्यमाना) विवस्वान्‌के साथ यमकी माताका विवाह हुआ, उस समय (विवस्वतः महः जाया ननाश) विवस्वान्‌की महान् पत्नी अदृष्ट हुई ॥ १ ॥

[१५०] (अमृतां मर्त्येभ्यः अपागूहन्) अमर सरण्यूको मनुष्योंके लिये देवोंने छिपाकर रखा; (विवस्वते सवर्णां कृत्वा अददुः) सरण्यूके सदृश दूसरी स्त्रीका निर्माण करके देवोंने उसे विवस्वान्‌को दिया । उस समय (सरण्यूः उत तत् आसीत् अश्विनौ अभरत्) सरण्यूने जो वहां थी उससे अश्विनौको गर्भमें धारण किया और (द्वा मिथुना अजहात्) दो जोडोंको (यम यमी) उत्पन्न किया ॥ २ ॥

[१५१] (विद्वान् भुवनस्य गोपाः अनष्टपशुः पूषा) ज्ञानी, सब जगत्‌का रक्षक और पशुयुक्त पूषादेव (त्वा इतः प्र च्यावयतु) तुझे यहांसे उत्तम लोकमें ले जाय । (सः अग्निः) वह अग्नि (त्वा एतेभ्यः पितृभ्यः सुविदत्रियेभ्यः देवेभ्यः परि ददत्) तुझे धन-सुख आदिके दाता देवों और इन पितरोंके पास ले जायं ॥ ३ ॥

[१५२] (विश्वायुः वायुः त्वा परि पासति) सर्वगामी वायु तेरी सर्वत्र रक्षा करे; (त्वा पूषा प्रपथे पुरस्तात् पातु) उत्तममार्गमें सबके अग्रभागमें रहनेवाले पूषा तेरी रक्षा करे । (यत्र सुकृतः आसते) जहां पुण्यात्मा विराजते हैं और (यत्र ते ययुः) जिस उत्तम लोकमें वे जाते हैं; (तत्र त्वा सविता देवः दधातु) वहां सविता-सूर्यदेव तुझे स्थापित करे ॥ ४ ॥

[१५३] (पूषा इमाः सर्वाः आशाः अनु वेद) पूषा इन सब दिशाओं को जानता है; (सः अस्मान् अभयतमेन नेषत्) वह हमें निर्भय मार्गसे ले जायं । (स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरः प्रजानन् अप्रयुच्छन् पुरः एतु) कल्याणप्रद, तेजस्वी, सर्वश्रेष्ठ, ज्ञानी पूषा सदा हमारे आगे रहे ॥ ५ ॥

प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।
उभे अभि प्रियतमे सधस्थे आ च परा च चरति प्रजानन् ६
सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ७
सरस्वति या सरथं ययाथ स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयस्वा ऽनमीवा इष आ धेह्यस्मे ८
सरस्वतीं यां पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
सहस्रार्घमिळो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानेषु धेहि ९
आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवी रुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि १० [२४] (१५८)
द्रप्सश्चस्कन्द प्रथमाँ अनु द्यू निमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ११

---

[१५४] (पथाम् प्रपथे पूषा अजनिष्ट) सब मार्गोंमें श्रेष्ठ मार्गमें पूषा उत्पन्न हुआ; (दिवः प्रपथे पृथिव्याः प्रपथे) और वह स्वर्ग तथा पृथिवीके उत्तम मार्गमें उत्पन्न हुआ। (उभे प्रियतमे सधस्थे) अत्यंत प्रिय और श्रेष्ठ स्थान जो द्यावापृथिवी हैं उनमें (प्रजानन् आ च परा च अभि चरति) वह ज्ञानी पूषा अनुकूल और प्रतिकूल होकर विद्यमान रहता है ॥ ६ ॥

[१५५] (देवयन्तः सरस्वतीं हवन्ते) देवेच्छु लोग सरस्वतीका आवाहन करते हैं; (तायमाने अध्वरे सरस्वतीं) यज्ञके विस्तृत होनेपर सरस्वतीका स्मरण करते हैं। (सुकृतः सरस्वतीं अह्वयन्त) पुण्यात्मा लोग सरस्वतीको बुलाते हैं, इसलिये (सरस्वती दाशुषे वार्यं दात्) सरस्वती दाताकी अभिलाषा पूरी करती है ॥ ७ ॥

[१५६] हे (सरस्वति देवि) सरस्वती देवि ! (या स्वधाभिः पितृभिः मदन्ती) तू पितरोंके साथ उत्तम अन्नसे तृप्त होकर प्रसन्न चित्तसे (सरथं ययाथ) एक रथ पर जाओ। (अस्मिन् आसद्य बर्हिषि मादयस्व) इस यज्ञमें उत्तम आसनपर बैठकर आनन्द कर; (अस्मे अनमीवाः इषः आ धेहि) हमें नीरोग और अन्नदान कर। ८ ॥

[१५७] (पितरः दक्षिणा यज्ञं अभिनक्षमाणाः यां सरस्वतीं हवन्ते) पितर लोग दक्षिण भागमें यज्ञको प्राप्त होते हुए, जिस सरस्वतीको बुलाते हैं; (अत्र सहस्रार्घं इडः भागं रायः पोषं यजमानेषु धेहि) वह तू यहां सहस्रों प्रकारसे उपयोगी अन्न भाग और प्रचुर धन हमें दे ॥ ९ ॥

[१५८] (अस्मान् आपः मातरः शुन्धयन्तु) हमें मातृस्वरूप जल पवित्र करें; (घृतप्वः नः घृतेन पुनन्तु) घृतरूप जल हमें घृत-जलसे पवित्र करे। (देवीः विश्वं हि रिप्रं प्रवहति) जलदेवी सारे पापोंको अपने स्रोतमें बहा ले जायं; (आभ्यः इत् शुचिः उत् एमि) जलमेंसे स्वच्छ और पवित्र होकर मैं ऊपर आता हूं ॥ १० ॥

[१५९] (द्रप्सः प्रथमान् द्यून् अनु) सोमरस प्राचीन लोगों और स्वर्गीय लोगोंके उद्देश्यसे (चस्कन्द) क्षरित हुआ- और (यः च पूर्वः इमं च योनिं च अनु) जो हमारा तेजरूप पूर्वज था, उसके पास भी वह गया। (सप्त होत्राः समानं योनिं अनु संचरन्तं द्रप्सं अनु जुहोमि) हम सात हवनकर्ता समान लोकोंमें विचरनेवाले उस सोमरसका हवन करते हैं ॥ ११ ॥

यस्ते॑ द्र॒प्सः स्कन्द॑ति॒ यस्ते॑ अं॒शु॒र्बा॒हुच्यु॑तो धि॒षणा॑या उ॒पस्था॑त् ।
अ॒ध्व॒र्योर्वा॒ परि॑ वा॒ यः प॒वित्रा॒त् तं ते॑ जुहोमि॒ मन॑सा॒ वष॑ट्कृतम् ॥ १२

यस्ते॑ द्र॒प्सः स्क॒न्नो यस्ते॑ अं॒शु॒रव॑श्च॒ यः प॒रः स्रु॒चा ।
अ॒यं दे॒वो बृह॒स्पति॒: सं तं सि॑ञ्चतु॒ राध॑से ॥ १३

पय॑स्वती॒रोष॑धय॒: पय॑स्वन्मामकं॒ वच॑: ।
अ॒पां पय॑स्व॒दित् पय॒स्तेन॑ मा स॒ह शु॑न्धत ॥ १४ [२५] (१६२)

(१८)

१४ संकुसुको यामायनः । १-४ मृत्युः, ५ धाता, ६ त्वष्टा, ७-१४ पितृमेधः, १४ प्रजापतिर्वा । त्रिष्टुप्, ११ प्रस्तारपङ्क्तिः, १३ जगती, १४ अनुष्टुप् ।

परं॑ मृत्यो॒ अनु॒ परे॑हि॒ पन्थां॒ यस्ते॒ स्व इत॑रो दे॒वयाना॑त् ।
चक्षु॑ष्मते शृण्व॒ते ते॑ ब्रवीमि॒ मा न॑: प्र॒जां री॑रिषो॒ मोत वी॒रान् ॥ १

मृ॒त्योः प॒दं यो॒पय॑न्तो॒ यदै॑त॒ द्राघी॑य॒ आयु॑: प्रत॒रं दधा॑नाः ।
आ॒प्याय॑मानाः प्र॒जया॒ धने॑न शु॒द्धाः पू॒ता भ॑वत यज्ञियासः ॥ २

---

[१६०] हे सोम ! (यः ते द्रप्सः स्कन्दति) जो तेरा तेजस्वी रस प्रवाहित होता है, (वा यः ते अंशुः अध्वर्योः बाहुच्युतः धिषणायाः उपस्थात्) अथवा जो तेरा अंश–रस अध्वर्युके हाथसे प्रस्तर फलकके पास गिरता है, (वा यः पवित्रात् परि) अथवा जो पवित्रसे क्षरित होता है, (तं ते मनसा वषट् कृतं जुहोमि) उस रसको मनः-पूर्वक वषट्कार रूपमें तुझे अर्पण करता हूं ॥ १२ ॥

[१६१] हे सोम ! (यः ते द्रप्सः स्कन्नः) जो तेरा रस क्षरित हुआ है और (यः ते अंशुः स्रुचा अवः च यः परः) जो तेरा भाग है, जो स्रुचासे यहां तथा प्रवाहित हुआ है, (तं अयं देवः बृहस्पतिः) उस सब सोमका यह बृहस्पति देव (राधसे सं सिञ्चतु) ऐश्वर्य वृद्धिके लिये सेवन करे ॥ १३ ॥

[१६२] हे जल ! (ओषधयः पयस्वतीः) ओषधियां पुष्टियुक्त रससे परिपूर्ण हैं । (मामकं वचः पयस्वन्) मेरा वचन सारयुक्त है । (अपां पयः पयस्वत्) जलोंका सारभूत अंश भी सारयुक्त है, (तेन सह मा शुन्धत) उससे आप साथही मुझे शुद्ध करो ॥ १४ ॥

[१८]

[१६३] हे (मृत्यो) मृत्यु ! (परं पन्थां अनु इहि) तू सबसे भिन्न मार्गसे जा। (परा इहि) दूसरे मार्गका अनुसरण कर। (देवयानात् इतरः यः ते स्वः) जो मार्ग देवयानसे अलग है उस मार्गसेही तू जा; हे (चक्षुष्मते) आंखवाले और (शृण्वते) सब कुछ सुननेवाले ! (ते ब्रवीमि) तुझे नम्रतापूर्वक कहता हूं; (नः प्रजां मा रीरिषः उत वीरान् मा) हमारे पुत्र-पौत्र आदिको तथा वीरोंको भी नहीं मारना ॥ १ ॥

[१६४] जो लोग (मृत्योः पदं योपयन्तः यत् ऐत) मृत्युके कारण–मार्गको छोडकर जाते हैं, वे (द्राघीयः प्रतरं आयुः दधानाः) दीर्घ और उत्तम आयुष्य धारण करनेवाले होते हैं। हे (यज्ञियासः) यज्ञशील यजमानों ! तुम (प्रजया धनेन आप्यायमानाः) प्रजा तथा धनसे युक्त होकर (शुद्धाः पूताः भवत) शुद्ध और पवित्र बनकर रहो ॥ २ ॥

+

इमे जीवा वि मृतैराववृत्र- न्नभूद्भद्रा देवहूतिर्नो अद्य ।
प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ३

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूची- रन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ४

यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथ ऋतव ऋतुभिर्यन्ति साधु ।
यथा न पूर्वमपरो जहात्ये- वा धातरायूंषि कल्पयैषाम् ५ [२६]

आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यति ष्ठ ।
इह त्वष्टा सुजनिमा सजोषा दीर्घमायुः करति जीवसे वः ६

इमा नारीरविधवाः सुपत्नी- राञ्जनेन सर्पिषा सं विशन्तु ।
अनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ७

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि ।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ८ (१७०)

---

[१६५] (इमे जीवाः) ये जीवित मनुष्य (मृतैः वि आववृत्रन्) मृत बन्धुजनोंसे घिरकर न रहें; (अद्य नः देवहुतिः भद्रा अभूत्) आज हमारा पितृ मेध यज्ञ कल्याणकर हो । अनन्तर हम (प्रतरं द्राघीयः आयुः दधानाः) उत्तम दीर्घायुष्य धारण करनेवाले होकर (नृतये हसाय प्राञ्चः अगाम) नृत्य और हास्य-आनन्दके लिये पूर्व दिशाकी ओर मुख करके आगेके मार्गपर बढें ॥ ३ ॥

[१६६] मैं (जीवेभ्यः इमं परिधिं दधामि) जीवनधारी मनुष्योंकी रक्षाके लिये, इस पाषाणकी स्थापना करता हूं; (एषां अपरः एतम् अर्थं मा गात् नु) इनमेंसे कोईभी उस मृत्युके मार्गसे न जावे । ये लोग (शतं शरदः पुरूचीः जीवन्तु) सैकडों वर्ष जीवित रहें और इसलिये (पर्वतेन मृत्युः अन्तः दधताम्) पाषाणसे मृत्युको मैं दूर करता हूं ॥ ४ ॥

[१६७] (यथा अहानि अनुपूर्वं भवन्ति) जैसे दिन एक दूसरेके बाद क्रमसे होते हैं, (यथा ऋतवः ऋतुभिः साधु यन्ति) जैसे ऋतुएं ऋतुओंके पश्चात् बीतती हैं, (यथा पूर्वम् अपरः न जहाति) जैसे पूर्व विद्यमान पितरों आदिको आधुनिक पुत्र आदि त्यागते नहीं [अर्थात् पहलेही मरते नहीं] (एव) ऐसेही हे (धातः) धारण कर्ता प्रभो ! (एषां आयूंषि कल्पय) इनका दीर्घ आयुष्य कर ॥ ५ ॥

[१६८] हे पुत्रादिको ! तुम (जरसं वृणानाः आयुः आ रोहत) वृद्ध होते हुए आयुमें अधिष्ठित रहो; (अनुपूर्वं यतमानाः यति ष्ठ) क्रमसे तुम प्रयत्नशील रहो। (इह सुजनिमा सजोषा त्वष्टा वः जीवसे दीर्घं आयुः करति) इस लोकमें कुलीन त्वष्टा तुम्हें तुम लोगोंके साथ जीनेके लिये दीर्घ आयु करे ॥ ६ ॥

[१६९] (इमाः अविधवाः सुपत्नीः नारीः आंजनेन सर्पिषाः सं विशन्तु) ये सधवा और श्रेष्ठ स्त्रियां घृताञ्जनसे सुशोभित होकर अपने गृहमें प्रवेश करें; वे (अनश्रवः अनमीवाः सुरत्नाः जनयः अग्रे योनिं आ रोहन्तु) अश्रुरहित, नीरोग और आभूषणोंसे युक्त होकर आदरपूर्वक पहले गृहमें आवें ॥ ७ ॥

[१७०] हे (नारि) स्त्रि ! तू (जीवलोकं अभि उत् ईर्ष्व) जीवित लोगोंका विचार करके यहांसे उठो; (एतं गतासुं उप शेषे) तेरा पति मरा हुआ है, इसके पास तुम व्यर्थ सोयी हुई हो; (एहि) इधर आवो । (हस्तग्राभस्य दिधिषोः तव पत्युः) पाणिग्रहण करनेवाले और पोषण करनेवाले तेरे पालक पतिके (इदं जनित्वं अभि सं बभूथ) इस सन्तानको लक्ष्य करके तू उससे मिलकर रह ॥ ८ ॥

धनुर्हस्तादाददानो मृतस्या–ऽस्मे क्षत्राय वर्चसे बलाय ।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वाः स्पृधो अभिमातीर्जयेम ९

उप सर्प मातरं भूमिमेता–मुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम् ।
ऊर्णम्रदा युवतिर्दक्षिणावत एषा त्वा पातु निर्ऋतेरुपस्थात् १० [२७]

उच्छ्वञ्चस्व पृथिवि मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूपवञ्चना ।
माता पुत्रं यथा सिचा ऽभ्येनं भूम ऊर्णुहि ११

उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम् ।
ते गृहासो घृतश्चुतो भवन्तु विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र १२

उत् ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत् परी–मं लोगं निदधन्मो अहं रिषम् ।
एतां स्थूणां पितरो धारयन्तु तेऽत्रा यमः सादना ते मिनोतु १३

प्रतीचीने मामहनी–ष्वाः पर्णमिवा दधुः ।
प्रतीचीं जग्रभा वाच–मश्वं रशनया यथा १४ [२८] (१७६)

---

[१७१] (अस्मे क्षत्राय वर्चसे बलाय) अपनी प्रजाके रक्षणके लिये उपयुक्त तेज और बल हमें प्राप्त होवे इसलिये मैं (मृतस्य हस्तात् धनुः आददानः) मृत व्यक्तिके हाथसे धनु लेकर बोलता हूं (त्वं अत्र एव तुम यहीं रहो। (इह वयं सुवीराः) इस राष्ट्रमें हम उत्तम वीर पुत्रवाले होकर (विश्वाः अभिमातीः स्पृधः जयेम) सब अभिमानी शत्रुओंको जीतें ॥ ९ ॥

[१७२] (एतां मातरं उरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवां भूमिं उप सर्प) इस मातृस्वरूपिणी, बिस्तीर्ण, सर्वव्यापिनी तथा सुखदात्री भूमाताके पास जाओ । (एषा ऊर्णम्रदाः दक्षिणावतः युवतिः) यह ऊनके समान मृदु तथा दान देनेवाले पुरुषकी युवती स्त्री जैसी सर्व स्वामिनी है; वह (त्वा निर्ऋतेः उपस्थात् पातु) तुझे पापाचरणसे बचावे ॥ १० ॥

[१७३] (पृथिवि) पृथिवी ! (उत् श्वञ्चस्व मा नि बाधथाः) इस उच्च स्थानपर ले जा; इसे पीडा नहीं देना । (अस्मै सूपायना सूपवञ्चना भव) इसका अच्छी रीतिसे स्वागत करनेवाली और सुखसे समीप रहनेवाली होओ । हे (भूमे) भूमि ! (यथा माता पुत्रं सिचा) जैसे माता पुत्रको अञ्चलसे ढकती है, वैसे ही (एनं अभि ऊर्णुहि) इसे सब ओरसे आच्छादित कर ॥ ११ ॥

[१७४] (उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु) इसे आच्छादित करनेवाली पृथिवी भली भांति अवस्थित हो; और (सहस्रं मितः उप श्रयन्ताम् हि) सहस्रों धूलियां इसके ऊपर आश्रय लें। (ते घृतश्चुतः गृहासः भवन्तु) वे घृतपूर्ण गृहके समान हों; तथा (अस्मै) इसके लिये (अत्र शरणाः सन्तु) यहां वे सुखदायक आश्रय हों ॥ १२ ॥

[१७५] (ते पृथिवीं उत् स्तभ्नामि) तेरे ऊपर भूमिको उत्तम रीतिसे योजित करता हूं; (इमं लोगं त्वत् परि निदधत् अहं मो रिषम्) तुम्हारी ऊपर मैं यह लोढा रखता हूं; मैं तुझे कष्ट नहीं देता हूं; (ते एतां स्थूणां पितरः धारयन्तु) तेरे इस टेकको पितर लोग धारण करें; (अत्र यमः ते सादना मिनोतु) यहां यम तेरे लिये निवासस्थान कर दे ॥ १४ ॥

[सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ व० १-३०] (१९)

८ मथितो यामायनः, भृगुर्वारुणिर्वा, भार्गवश्च्यवनो वा । आपः, गावो वा,
१ उत्तरार्धर्चस्य अग्नीषोमौ। अनुष्टुप्, ६ गायत्री ।

नि वर्तध्वं मानु गाता॒ऽस्मान् त्सिषक्त रेवतीः ।
अग्नीषोमा पुनर्वसू अस्मे धारयतं रयिम् १
पुनरेना नि वर्तय पुनरेना न्या कुरु ।
इन्द्र एणा नि यच्छ॒त्वग्निरेना उपाजतु २
पुनरेता नि वर्तन्ता॒मस्मिन् पुष्यन्तु गोपतौ ।
इहैवाग्ने नि धारये॒ह तिष्ठतु या रयिः ३
यन्नियानं न्ययनं संज्ञानं यत् परायणम् ।
आवर्तनं निवर्तनं यो गोपा अपि तं हुवे ४
य उदानड् व्ययनं य उदानट् परायणम् ।
आवर्तनं निवर्तन॒मपि गोपा नि वर्तताम् ५

---

[१७६] (इष्वाः पर्ण इव) जैसे बाजके मूलमें 'पर्ण'– पांख लगाते हैं, (प्रतीचीने अहनि मां आ दधुः) वैसे ही सर्व पूज्य दिनमें देवोंने मुझे रखा है; (यथा रशनया अश्वं) जैसे शीघ्रगामी अश्वको रस्सीसें रोका जाता है, वैसेही (प्रतीचीं वाचं आ जग्रभ) मेरी पूज्य स्तुतिको रखो ॥ १४ ॥

[१९]

[१७७] हे गौओ ! (नि वर्तध्वं) तुम हमारे पास लौट आओ; (मा अनु गात) हमारे सिवा दूसरेके पास मत जाओ; (रेवतीः अस्मान् सिषक्त) हे धनवती गायो ! हमें दुग्ध दान करके सेवित करो; (पुनर्वसू अग्नि-सोमा) बार बार धन देनेवाले अग्नि और सोम ! तुम (अस्मे रयिं धारयतम्) हमें धन दो ॥ १ ॥

[१७८] (एना पुनः निवर्तय) तू इन गायोंको फिर लौटा; (एना पुनः नि आ कुरु) इन्हें बार बार हमारे वशमें कर ! (इन्द्रः एना नि यच्छतु) इन्द्रभी इन्हें तुम्हें सहाय्यभूत होकर तुम्हारे वशमें करें; (अग्निः एना उपाजतु) अग्नि इन्हें उपयोगिनी करें ॥ २ ॥

[१७९] (एताः पुनः निवर्तन्ताम्) ये गायें बार बार लौटकर मेरे पास आवे; (अस्मिन् गोपतौ पुष्यन्तु) गौओंके पालक मेरे अधीन होकर पुष्ट होवें । हे (अग्ने) अग्नि देव ! (इह एव नि धारय) इस स्थानमें ही इनको मेरे पास तू रख; (या रयिः इह तिष्ठतु) और जो धन है वह यहां स्थिर रूपसे रहे ॥ ३ ॥

[१८०] (यत् नियानं न्ययनं संज्ञानं) मैं जो गोष्ठ–गोशाला, गौओंके गृह आनेकी, गौओंके नियमसे लौट आना, (यत् परायणं आवर्तनं निवर्तनं) जो पहचानना, रहना, चरनेके लिये जाना, फिर लौटकर आना, और (यः गोपाः तं अपि हुवे) गो रक्षक गोपालकी भी इच्छा करता हूं ॥ ४ ॥

[१८१] (यः गोपाः व्ययनं उदानट्) जो गोपाल चारों ओर गायोंको खोज करता है, (यः परायणं उदानट्) जो उनके साथ जानेका अनुभव करता है, (आवर्तनं निवर्तनं अपि नि वर्तताम्) जो गायोंको घरपर ले आता है और जो गायें चराता है, वह कुशलपूर्वक घरपर लौट आवे ॥ ५ ॥

आ निवर्त नि वर्तय पुनर्न इन्द्र गा देहि । जीवाभिर्भुनजामहै ६ (१८२)
परि वो विश्वतो दध ऊर्जा घृतेन पयसा ।
ये देवाः के च यज्ञिया स्ते रय्या सं सृजन्तु नः ७
आ निवर्तन वर्तय नि निवर्तन वर्तय ।
भूम्याश्चतस्रः प्रदिश स्ताभ्य एना नि वर्तय ८ [१] (१८४)

(२०)

१० ऐन्द्रो विमदः, प्राजापत्यो वा, वासुक्रो वसुकृद्वा । अग्निः । गायत्री, १ एकपदा विराट् (एष मन्त्रः शान्त्यर्थः), २ अनुष्टुप्, ९ विराट् १० त्रिष्टुप् ।

भद्रं नो अपि वातय मनः १
अग्निमीळे भुजां यविष्ठं शासा मित्रं दुर्धरीतुम् ।
यस्य धर्मन् त्स्व१रेनीः सपर्यन्ति मातुरूधः २
यमासा कृपनीळं भासाकेतुं वर्धयन्ति । भ्राजते श्रेणिदन् ३
अर्यो विशां गातुरेति प्र यदानड् दिवो अन्तान् । कविरभ्रं दीद्यानः ४
जुषद्धव्या मानुषस्यो र्ध्वस्तस्थावृभ्वा यज्ञे । मिन्वन् त्सद्म पुर एति ५

---

[१८२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (आ निवर्त निवर्तय) तू हमारी ओर होओ; गायोंको हमारी ओर करो; (नः पुनः गाः देहि) हमें बार बार गायें दो ! (जीवाभिः भुनजामहै) उनके कारण हम उपभोग कर सकें ॥ ६ ॥

[१८३] हे (देवाः) देवो ! (वः ऊर्जा घृतेन पयसा विश्वतः परि दधे) मैं तुम लोगोंको विपुल अन्न, घृत और दुग्ध आदि पदार्थ सब प्रकारसे समर्पण करता हूं; (ये के च यज्ञियाः देवाः) जो कोई भी यज्ञाई देवता हैं, (ते नः रय्या सं सृजन्तु) वे हमें धनसे सम्पन्न करें ॥ ७ ॥

[१८४] हे (निवर्तन) चरवाहा ! आ वर्तय निवर्तन निवर्तन नि वर्तय) गायोंको मेरे पास ले आओ; हे गायों, तुम भी आओ । हे चरवाहा, गायोंको लौटाओ । (भूम्याः चतस्रः प्रदिशः ताभ्यः एनाः निवर्तय) भूमिकी चार दिशाएं हैं, उन सबसे उनको रोककर उनको फिर लौटाओ ॥ ८ ॥

[२०]

[१८५] हे अग्नि देव ! (नः मनः भद्रं अपि वातय) तू हमारे मनको शुभ संकल्पसे युक्त कर ॥ १ ॥

[१८६] (भुजां अग्निं यविष्ठं शासा मित्रं दुर्धरीतुं ईळे) हविका भोग करनेवाले देवोंमें अतीव युवक, शासक, सबके मित्र और अपराजित अग्निको मैं स्तुति करता हूं; (यस्य धर्मन् एनीः मातुः ऊधः यस्य स्वः सपर्यन्ति) जिसके यज्ञमें उसे प्राप्त करके सब देवता माताके स्तनके समान अपनी आहुतियोंका सेवन करते हैं ॥ २ ॥

[१८७] (यम् कृपनीडं भासाकेतुं आसा वर्धयन्ति) जिस कर्माधार और तेजस्वी अग्निको स्तोता लोग उपासना-स्तोत्रोंसे वर्द्धित करते हैं, (श्रेणिदन् भ्राजते) वह कल्याण करनेवाला अग्नि अत्यंत शोभित होता है ॥ ३ ॥

[१८८] (विशां अर्यः गातुः) अग्नि यजमानोंके लिये आश्रणीय है; (यत् दिवः अन्तान् प्र आनट्) जब प्रदीप्त होकर ऊपर उठता है, तब वह द्युलोक तक व्याप्त कर लेता है; (अभ्रं दीद्यानः कविः प्र एति) मेघोंको भी प्रकाशित करके विद्वान् अग्नि उत्तम पद पर स्थित है ॥ ४ ॥

[१८९] (मानुषस्य यज्ञे हव्या जुषत् ऊर्ध्वः तस्थौ) मनुष्यके यज्ञमें हविका सेवन करनेवाला अग्नि ज्वालायुक्त होकर ऊपर उठता है, तब वह (सद्म मिन्वन् पुरः एति) वेदीको मापता हुआ सामने आता है ॥ ५ ॥

स हि क्षेमो हविर्यज्ञः श्रुष्टीदस्य गातुरेति । अग्निं देवा वाशीमन्तम् ६ [२]

यज्ञासाहं दुव इषे ऽग्निं पूर्वस्य शेवस्य । अद्रेः सूनुमायुमाहुः ७

नरो ये के चास्मदा विश्वेत् ते वाम आ स्युः । अग्निं हविषा वर्धन्तः ८

कृष्णः श्वेतोऽरुषो यामो अस्य ब्रध्न ऋज्र उत शोणो यशस्वान् ।

हिरण्यरूपं जनिता जजान ९

एवा ते अग्ने विमदो मनीषामूर्जो नपादमृतेभिः सजोषाः ।

गिर आ वक्षत् सुमतीरियान इषमूर्जं सुक्षितिं विश्वमाभाः १० [३] (१९४)

(२१)

८ ऐन्द्रो विमदः, प्राजापत्यो वा, वासुक्रो वसुकृद्वा । अग्निः । आस्तारपङ्क्तिः ।

आग्निं न स्ववृक्तिभि र्होतारं त्वा वृणीमहे ।

यज्ञाय स्तीर्णबर्हिषे वि वो मदे शीरं पावकशोचिषं विवक्षसे १

---

[१९०] (सः हविः यज्ञः क्षेमः हि) वह अग्नि ही हवि, यज्ञ और कल्याण करनेवाला है; (अस्य गातुः श्रुष्टी इत्) यही देवोंके पास बुलानेके लिये जाता है, (देवाः वाशीमन्तम् अग्निं) देवता भी उस स्तुत्य अग्निके साथ आते हैं ॥ ६ ॥

[१९१] देवोंको बुलानेवाले (आयुम् आहुः) सबका जीवन ऐसे (अग्निं) अग्निको (अद्रेः सूनुम्) लोग पत्थरका पुत्र कहते हैं, और जो (यज्ञासाहं) यज्ञके धारक है, उस अग्निकी (पूर्वस्य शेवस्य) उत्कृष्ट सुखकी प्राप्तिके लिये (दुव इषे) सेवा करनेकी मैं अभिलाषा करता हूं ॥ ७ ॥

[१९२] (अस्मत् ये के च नरः) हमारे जो भी पुत्र, पौत्रादि उत्तम पुरुष हैं, (ते) वे सब (अग्निं हविषा वर्धन्तः) अग्निका हवि द्वारा संवर्धन करते हुए (विश्वा इत् वामे आ स्युः) समस्त प्रकारसे श्रेष्ठतम संपत्तिमें रहें, ऐसी हम आशा करते हैं ॥ ८ ॥

[१९३] (अस्य) अग्निका (यामः) रथ (कृष्णः श्वेतः अरुषः बध्नः ऋजः) कृष्ण वर्ण, शुभ्रवर्ण, तेजस्वी, लाल, सरल-गन्ता (उत्) और (शोणः यशस्वान्) वेगवान् एवं यशस्वी, संपन्न है; इसको (जनिता हिरण्यरूपं जजान) प्रजापतिने सुवर्ण सदृश उज्ज्वल बनाया है ॥ ९ ॥

[१९४] (एव) इस प्रकार हे (अग्ने) तेजस्वी बलपुत्र अग्नि ! (अमृतेभिः सजोषाः) तुम अमर धनसे युक्त हो । (सुमतीः इयानः विमदः) अपनी उत्तम बुद्धिकी इच्छा करनेवाले विमद ऋषिने (ते मनीषां गिरः आ वक्षत्) तेरे लिये अपनी मनकी उत्तम भावना युक्त स्तुति- स्तोत्रोंको कहा है । हे (ऊर्जः नपात्) बलके देनेवाले ! तू (इषं ऊर्जं सुक्षितिं विश्वं) अन्न, बल और योग्य निवास तथा जो सब कुछ देने योग्य है, वह सब प्रदान कर ॥ १० ॥

[२१]

[१९५] (स्तीर्णबर्हिषे यज्ञाय) बिछे विस्तृत कुशवाले आसनोंसे युक्त यज्ञके लिये, (स्ववृक्तिभिः होतारं) अपनी बनायी स्तुतियोंसे देवोंको बुलानेवाले और (पावकशोचिषं शीरं) पवित्र प्रकाशमय तथा सर्वव्यापक (अग्निं न त्वा आ वृणीमहे) अग्नि, तुझको हम वरण करते हैं; (वः मदे वि) और हम आनन्दके लिये अपनाते हैं । तू (विवक्षसे) उसको धारण कर ॥ १ ॥

त्वामु ते स्वाभुवः शुम्भन्त्यश्वराधसः ।
वेति त्वामुपसेचनी वि वो मद ऋजीतिरग्न आहुतिर्विवक्षसे २
त्वे धर्माण आसते जुहूभिः सिञ्चतीरिव ।
कृष्णा रूपाण्यर्जुना वि वो मदे विश्वा अधि श्रियो धिषे विवक्षसे ३ (१९७)
यमग्ने मन्यसे रयिं सहसावन्नमर्त्य ।
तमा नो वाजसातये वि वो मदे यज्ञेषु चित्रमा भरा विवक्षसे ४
अग्निर्जातो अथर्वणा विदद्विश्वानि काव्या ।
भुवद्दूतो विवस्वतो वि वो मदे प्रियो यमस्य काम्यो विवक्षसे ५ [४]

त्वां यज्ञेष्वीळतेऽग्ने प्रयत्यध्वरे ।
त्वं वसूनि काम्या वि वो मदे विश्वा दधासि दाशुषे विवक्षसे ६
त्वां यज्ञेष्वृत्विजं चारुमग्ने नि षेदिरे ।
घृतप्रतीकं मनुषो वि वो मदे शुक्रं चेतिष्ठमक्षभिर्विवक्षसे ७

---

[१९६] (अश्वराधसः स्वाभुवः ते त्वा शुम्भन्ति) तेजस्वी और धनसम्पन्न वे यजमान तुझे सुशोभित करते हैं। हे (अग्ने) तेजस्वी अग्नि! (उपसेचनी ऋजीतिः आहुतिः वि मदे त्वां वेति) क्षरणशील और सरल जानेवाली आहुति तृप्तीके लिये तुम्हारे पास जाती है; तू (विवक्षसे) उसे धारण करता है और बढता है ॥ २ ॥

[१९७] जैसे (सिञ्चतीः इव) जल सींचन करके पृथिवीकी सेवा करता है, वैसेही (धर्माणः जुहूभिः त्वे आसते) यज्ञके धारक ऋत्विक् होमपात्रोंसे तुम्हारी सेवा करते हैं; (मदे) सब देवोंके आनन्दके लिये तू (कृष्णा अर्जुना रूपाणि) कृष्ण, सफेद ज्वालारूप (विश्वाः श्रियः) सब प्रकारकी शोभाको (धिषे) धारण करता है; और हे (अग्नि) अग्नि देव! (विवक्षसे) तू महान् है ॥ ३ ॥

[१९८] हे (अग्ने) तेजस्वी अग्नि ! हे (सहसावन् अमर्त्य) बलशाली तथा अमर ! तू (यं रयिं चित्रं मन्यसे) जिस धनको श्रेष्ठ, आश्चर्यकारक मानता है, तू (तम्) उसको (नः वाजसातये) हमारे बल और अन्नवृद्धिके लिये और (वि मदे) देवोंकी तृप्तिके लिये (यज्ञेषु आ भर) यज्ञोंमें हमारे निमित्त ले आओ ! तू (विवक्षसे) महान् शक्तिशाली है ॥ ४ ॥

[१९९] (अथर्वणा अग्निः जातः) अथर्वा ऋषिने अग्निको उत्पन्न किया था; (विश्वानि काव्या विदद्) वह सब प्रकारके स्तुति-स्तोत्रोंको जानता है। वह (काम्यः विवस्वतः यमस्य दूतः भुवत्) सबके इच्छनीय होकर देवोंको बुलानेके लिये यजमानका दूत भी हो। वह (वः वि मदे) तुम्हारे आनन्द और सुखोंके लिये हो। वह (विवक्षसे) सत्यही गुणवान्, महान् और समर्थ है ॥ ५ ॥

[२००] हे (अग्ने) अग्नि देव ! (यज्ञेषु अध्वरे प्रयति त्वाम् ईळते) ऋत्विक् और यजमान यज्ञ कार्योंके आरम्भ होनेपर तुम्हारी स्तुति करते हैं; और (त्वं) तू (विश्वा काम्या वसूनि वि दधासि) सब प्रकारके अभिलषित धनोंको विशेष करके धारण करता है; (वः मदे दाशुषे) तू लोगोंके आनन्द और कल्याणके लिये दानशील हो, इस लिये (विवक्षसे) तुम महान् पूज्य हो ॥ ६ ॥

[२०१] हे (अग्ने) अग्नि देव ! (यज्ञेषु घृतप्रतीकं ऋत्विजं) यज्ञोंमें घृतसे प्रदीप्त, तेजस्वी तथा ऋत्विजोंके साथ होते हुए, (चारुं शुक्रं चेतिष्ठम्) सुन्दर, समर्थ और अत्यंत ज्ञानी (त्वां मनुषः वः मदे नि षेदिरे) तुझको यजमान लोग तृप्तीके लिये स्थापित करते हैं; (विवक्षसे) तुम महान् हो ॥ ७ ॥

अग्ने शुक्रेण शोचिषो॒रु प्रथयसे बृहत् ।
अभिक्रन्दन् वृषायसे वि वो मदे गर्भं दधासि जामिषु विवक्षसे ८ [५] (२०२)

(२२)

१५ ऐन्द्रो विमदः प्राजापत्यो वा, वासुक्रो वसुकृद्वा । इन्द्रः । पुरस्ताद्बृहती; ५,७,९ अनुष्टुप्; १५ त्रिष्टुप् ।

कुह श्रुत इन्द्रः कस्मिन्नद्य जने मित्रो न श्रूयते ।
ऋषीणां वा यः क्षये गुहा वा चर्कृषे गिरा १

इह श्रुत इन्द्रो अस्मे अद्य स्तवे वज्र्यृचीषमः ।
मित्रो न यो जनेष्वा यशश्चक्रे असाम्या २

महो यस्पतिः शवसो असाम्या महो नृम्णस्य तूतुजिः ।
भर्ता वज्रस्य धृष्णोः पिता पुत्रमिव प्रियम् ३

युजानो अश्वा वातस्य धुनी देवो देवस्य वज्रिवः ।
स्यन्ता पथा विरुक्मता सृजानः स्तोष्यध्वनः ४

---

[२०२] हे (अग्ने) तेजस्वी अग्निदेव ! तू (बृहत्) महान् है; तू (शुक्रेण शोचिषा उरु प्रथयसे) प्रदीप्त तेजसे अत्यंत प्रसिद्ध होते हो । (अभिक्रन्दन् वृषायते) समरके समय दर्पित वृषके समान शब्द करते हुए अत्यंत बलवान् होते हो; तू (जामिषु गर्भं दधासि) ओषधियोंमें बीज धारण करते हो; (वः वि मदे विवक्षसे) मद उत्पन्न होनेपर तुम महान् होते हो ॥ ८ ॥

[२२]

[२०३] (इन्द्रः कुह श्रुतः) इन्द्र आज कहां प्रख्यात है ? (अद्य मित्रः न कस्मिन् जने श्रूयते) आज मित्रके समान वह इन्द्र किस जनसमूहमें विख्यात होता होगा ? (यः ऋषीणां क्षये वा गुहा वा गिरा चर्कृषे) जो ऋषियोंके आश्रममें या गुहामें स्तुतियोंसे उपासित होता है वह इन्द्र आज कहां होगा ? ॥ १ ॥

[२०४] (अद्य इह इन्द्रः श्रुतः) आज इस यज्ञमें इन्द्र प्रमुख है; (वज्री ऋचीषमः अस्मे स्तवे) आज हम वज्रधर और स्तुत्य इन्द्रकी स्तुति करते हैं । (यः जनेषु मित्रः न असामि यशः आ चक्रे) जो इन्द्र लोगोंमें मित्रके समान है तथा पूर्ण रूपसे यश, कीर्ती उत्पन्न करता है ॥ २ ॥

[२०५] (यः महः शवसः पतिः) जो इन्द्र महान् बलका अधिपति, (असामि महः नृम्णस्य तूतुजिः) और अमर्याद महान् धनोंका दाता है; (धृष्णोः वज्रस्य भर्ता) वह शत्रुओंके नाशक वज्रका धारक है; वह (प्रियं पुत्रं इव पिता) पिता जैसे प्रिय पुत्रकी रक्षा करता है, वैसेही हमारी रक्षा करे ॥ ३ ॥

[२०६] हे (वज्रिवः) वज्रधर इन्द्र ! (देवः) तुम द्युतिमान् हो; (देवस्य वातस्य धुनी विरुक्मता पथा स्यन्ता अश्वा युजानः) तुम वायु देवसे भी वेगवान् प्रेरक उचित मार्गसे जानेवाले दोनों अश्वोंको रथमें जोतकर, और (अध्वनः सृजानः स्तोषि) मार्गको उत्पन्न करता हुआ सदा स्तुत्य होते हो ॥ ४ ॥

त्वं त्या चिद्वातस्याश्वागा ऋज्रा त्मना वहध्यै ।
यर्योर्देवो न मर्त्यो यन्ता नकिर्विदाय्यः ५ [६]

अध ग्मन्तोशना पृच्छते वां कदर्था न आ गृहम् ।
आ जग्मथुः पराकाद् दिवश्च ग्मश्च मर्त्यम् ६

आ न इन्द्र पृक्षसे ऽस्माकं ब्रह्मोद्यतम् ।
तत् त्वा याचामहेऽवः शुष्णं यद्धन्नमानुषम् ७ (२०९)

अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तु-रन्यव्रतो अमानुषः ।
त्वं तस्यामित्रहन् वधर्दासस्य दम्भय ८

त्वं न इन्द्र शूर शूरै-रुत त्वोतासो बर्हणा ।
पुरुत्रा ते वि पूर्तयो नवन्त क्षोणयो यथा ९

त्वं तान् वृत्रहत्ये चोदयो नॄन् कार्पाणे शूर वज्रिवः ।
गुहा यदी कवीनां विशां नक्षत्रशवसाम् १० [७]

---

[२०७] हे इन्द्र ! (त्वं त्या चित् वातस्य ऋज्रा अश्वा) तू उन दोनों वायुके समान वेगवाले और सरल गामी अश्वोंको (त्मना वहध्यै आ अगाः) अपने सामर्थ्यसे चलाकर हमारे समक्ष जाते हो; (ययोः न देवः न मर्त्यः यन्ता) जिन दोनों अश्वोंको सञ्चालन कर सके ऐसा कोई भी देवोंमें और मनुष्योंमें नहीं है; और (न किः विदाय्यः) न कोई इनके बलको जान सके ॥ ५ ॥

[२०८] यज्ञ समाप्तिके बाद (उशनाः अध ग्मन्ता वां पृच्छते) जिस समय-इन्द्र और अग्नि अपने स्थानों को जाने लगे, उस समय भार्गव उशनाने तुमसे पूछा कि- (कदर्थाः पराकाद् दिवः ग्मः च) किस प्रयोजनसे तुम लोग इतनी दूरसे- द्युलोक और भूलोकसे- (नः मर्त्यं गृहं आ जग्मतुः) हम मनुष्योंके गृहपर आये हो ? ॥ ६ ॥

[२०९] हे (इन्द्र) इन्द्र देव ! तू (नः आ पृक्षसे) हमें सब प्रकारसे संरक्षण दो । (अस्माकं ब्रह्म उद्यतम्) हमने इस यज्ञकी सामग्री, हमारा महान् स्तवन तेरे लिये समर्पित की है । (त्वा तत् अमानुषम् अवः याचामहे) हम तुझसे उसी अमानुष -उत्तम बलकी- रक्षणकी याचना करते हैं, (यत् शुष्णं हन्) जिससे तुमने शुष्ण-राक्षसका नाश किया ॥ ७ ॥

[२१०] हे (अमित्रहन्) शत्रुनाशक इन्द्र ! जो (अकर्मा अमन्तुः अन्यव्रतः अमानुषः दस्युः नः अभि) कर्महीन, सबका अपमान करनेवाला, यज्ञादि कर्मोंसे शून्य, आसुरी वृत्तिसे परिपूर्ण दस्यु हमारी चारों ओर घेरे पडा है, (त्वं तस्य दासस्य वधः दम्भय) तू उस दस्यु जातिको दण्ड देकर विनष्ट कर ॥ ८ ॥

[२११] हे (शूर इन्द्र) पराक्रमी इन्द्र ! (त्वं नः शूरैः उत) तू हमारी रक्षा शूर मरुतोंके साथ कर; (बर्हणा त्वा ऊतासः) तुझसे रक्षित होकर हम संग्राममें तेरे बलसे शत्रु विनाशमें समर्थ होंगे । (ते पूर्तयः पुरुत्रा) तेरे इच्छा पूर्ण करनेके साधन बहुत हैं । (यथा क्षोणयः विनवन्त) तेरे भक्त स्वामीके समान तेरी अनंत विविध स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं ॥ ९ ॥

[२१२] हे (शूर वज्रिवः) शूर वज्रधर इन्द्र ! (त्वं वृत्रहत्ये कार्पाणे तान् नॄन् चोदयः) तू वृत्र-वध-शत्रुओंका नाश-के लिये संग्राममें योद्धाओंको प्रेरित करते हो; (यदि कवीनां नक्षत्रशवसाम् विशां गुहा) जिस समय तुम विद्वान् स्तोताओंका नक्षत्रवासी देवोंके प्रति उत्तम स्तोत्र सुनते हो ॥ १० ॥

+

मक्षू ता तं इन्द्र दानाप्नस आक्षाणे शूर वज्रिवः ।
यद्ध शुष्णस्य दम्भयो जातं विश्वं सयावभिः ११
माकुध्र्यगिन्द्र शूर वस्वी रस्मे भूवन्नभिष्टयः ।
वयंवयं त आसां सुम्ने स्याम वज्रिवः १२
अस्मे ता तं इन्द्र सन्तु सत्या ऽहिंसन्तीरुपस्पृशः ।
विद्याम यासां भुजो धेनूनां न वज्रिवः १३
अहस्ता यदपदी वर्धत क्षाः शचीभिर्वेद्यानाम् ।
शुष्णं परि प्रदक्षिणिद् विश्वायवे नि शिश्नथः १४
पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मा रिषण्यो वसवान वसुः सन् ।
उत त्रायस्व गृणतो मघोनो महश्च रायो रेवतस्कृधी नः १५ [८] (२१७)

(२३)

७ ऐन्द्रो विमदः प्राजापत्यो वा, वासुक्रो वसुकृद्वा । इन्द्रः । जगती, १, ७ त्रिष्टुप्, ५ अभिसारिणी ।

यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणं हरीणां रथ्यं विव्रतानाम् ।
प्र श्मश्रु दोधुवदूर्ध्वथा भूद् वि सेनाभिर्दयमानो वि राधसा १

---

[२१३] हे (शूर वज्रिवः इंद्र) शूर वज्रधर इंद्र ! (यत् ह सयावभिः शुष्णस्य विश्वं जातं दम्भयः) जिस निश्चयसे तुमने मरुतोंके साथ शुष्णके सारे वंशका विनाश किया है; (आक्षाणे दानाप्नसः ते ता मक्षू) युद्ध क्षेत्रमें कृपापूर्ण दानरूप कर्म करनेवाले तेरे वे कर्म अत्यंत शीघ्र ही हुए हैं ॥ ११ ॥

[२१४] हे (शूर इन्द्र) शूरवीर इन्द्र ! (अस्मे अभिष्टयः वस्वीः अकुध्र्यग् मा भूवन्) हमारी इच्छाएं और धन सम्पदाएं कभी निष्फल न हों; हे (वज्रिवः) वज्रधर ! (वयं वयं ते सुम्ने आसां स्याम) हम सब सदा तेरी रक्षामें फलद्रुप होकर सदा सुखमें रहें ॥ १२ ॥

[२१५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अस्मे ता ते उपस्पृशः सत्या अहिंसन्तीः सन्तु) हमारी वे अभिलाषा और स्तुतियां तेरे पास पहुंचकर सत्य और तुम्हें प्रसन्न करनेवाली होकर अहिंसक हों । हे (वज्रिवः) वज्रधर ! (यासां धेनूनां न भुजः विद्याम) जिनके फलस्वरूप गौओंके दूधके समान हम तुम्हारे प्रसादका फल भोगें ॥ १३ ॥

[२१६] (यद्) जैसे (वेद्यानां शचीभिः) विद्वान् लोगों और तेरे सम्बन्धी यज्ञ क्रियाओं द्वारा (अहस्ता अपदी क्षाः वर्धत) यह पृथिवी हस्त-पाद-शून्या होकर भी बढती है, तब (विश्वायवे परि प्रदक्षिणित्) समस्त लोगोंके कल्याणके लिये पृथिवीकी चारों ओरसे प्रदक्षिणा करके (शुष्णं नि शिश्नथः) दुष्ट शुष्ण असुरको मार दिया ॥ १४ ॥

[२१७] हे (शूर इन्द्र) पराक्रमी इन्द्र ! तू (सोमं पिब पिब) सोमका शीघ्र पान करो; हे (वसवान) धनवान् इन्द्र ! तू (वसुः सन् मा रिषण्यः) स्वयं धनी हो, इस लिये रक्षक होकर हमारी हिंसा मत कर । (उत गृणतः मघोनः त्रायस्व) परंतु स्तोता यजमानकी रक्षा कर; (नः महः रायः) हमारे विपुल धन हों और (रेवतः कृधी) तू हमे धनवान बना ॥ १५ ॥

[२३]

[२१८] (वज्रदक्षिणं विव्रतानाम् हरीणां रथ्यं इन्द्रं यजामहे) दायें हाथमें वज्र धारण करनेवाले, विविध कर्म कुशल हरितवर्ण अश्वोंको रथमें जोतनेवाले इन्द्रकी हम उपासना करते हैं । सोमपानके अनन्तर वह (श्मश्रु प्र दोधुवत्) अपने केशोंको बार बार हिलाकर (सेनाभिः राधसा वि दयमानः) विस्तृत सेनासहित और विपुल धनों-अन्न आदिको लेकर शत्रुओंका नाश करके (वि ऊर्ध्वथा भूत्) विविध प्रकारसे सर्वोपरि हुआ ॥ १ ॥

हरी न्व॑स्य या वने॑ वि॒दे वस्वि॒न्द्रो॑ म॒घैर्म॒घवा॑ वृत्र॒हा भु॑वत् ।
ऋ॒भुर्वाज॑ ऋभु॒क्षाः प॑त्यते॒ शवो ऽव॑ क्ष्णौमि॒ दास॑स्य॒ नाम॑ चित् २
य॒दा वज्रं॒ हिर॑ण्य॒मिद॒था रथं॒ हरी॒ यम॑स्य॒ वह॑तो॒ वि सू॒रिभिः॑ ।
आ तिष्ठति म॒घवा॒ सन॑श्रुत॒ इन्द्रो॒ वाज॑स्य दी॒र्घश्र॑वस॒स्पतिः॑ ३
सो चि॒न्नु वृ॒ष्टिर्यू॒थ्या३॒ स्वा सचाँ॒ इन्द्रः॒ श्मश्रू॑णि॒ हरि॑ता॒भि प्रु॑ष्णुते ।
अव॑ वेति सु॒क्षयं॑ सु॒ते मधू॒दिद्धू॑नोति॒ वातो॒ यथा॒ वन॑म् ४
यो वा॒चा विवा॑चो मृ॒ध्रवा॑चः पु॒रू स॒हस्राशि॑वा ज॒घान॑ ।
तत्त॒दिद॑स्य॒ पौंस्यं॑ गृणीमसि पि॒तेव॒ यस्तवि॑षीं वावृ॒धे शवः॑ ५ (२२२)

स्तोमं॑ त इन्द्र विम॒दा अ॑जीजन॒न्नपू॑र्व्यं पुरु॒तमं॑ सु॒दान॑वे ।
वि॒द्मा ह्य॑स्य॒ भोज॑नमि॒नस्य॒ यदा प॒शुं न गो॒पाः क॑रामहे ६
माकि॑र्न ए॒ना स॒ख्या वि यौ॑षु॒स्तव॑ चेन्द्र विम॒दस्य॑ च॒ ऋषेः॑ ।
वि॒द्मा हि ते॒ प्रम॑तिं देव जामि॒वद॒स्मे ते॑ सन्तु स॒ख्या शि॒वानि॑ ७ [९] (२२४)

---

[२१९] (या हरी नु अस्य वने वसु विदे) इन्द्रके इन दो अश्वोंने यज्ञमें (आहुतियोंके रूपमें) धन प्राप्त किया है; (मघैः मघवा इन्द्रः वृत्रहा भुवत्) उन्हींसे प्राप्त विपुल धनोंका स्वामी होकर इन्द्रने वृत्रको नष्ट किया। वह (ऋभुः वाजः ऋभुक्षाः शवः पत्यते) तेजस्वी, बलवान् और आश्रयदाता इन्द्र बल और धनका अधिपति है। मैं (दासस्य नाम चित् अव क्ष्णौमि) दस्यु जातिका-शत्रुओंका नाम तक को नष्ट कर देना चाहता हूं ॥ २ ॥

[२२०] (यदा इन्द्रः हिरण्यं वज्रं) जब इन्द्र सुवर्णमय-तेजस्वी वज्रको धारण करता है, (अस्य यं रथं हरी वहतः) इसका जो रथ हरितवर्णवाले दो अश्वोंके साथ जाता है, तब (सूरिभिः वि आ तिष्ठति) वह उसीपर विद्वानोंके साथ विविध प्रकारसे बैठता है। (मघवा सनश्रुतः वाजस्य दीर्घश्रवसः पतिः) इन्द्र दानादिसे विख्यात, बहुश्रुत और अन्न-धनादि ऐश्वर्यका अधिपति है ॥ ३ ॥

[२२१] जैसे (सो चित् नु वृष्टिः) वही उत्तम वर्षा है जो (स्वासचाँ यूथ्या) अपने पशु-समूहको सिंचती है; वैसेही (इन्द्रः हरिता श्मश्रूणि अभि प्रुष्णुते) इन्द्र हरितवर्ण सोमरसके द्वारा अपनी मूंछ भिगोता है। फिर वह (सुते सुक्षयं अव वेति) सुंदर यज्ञ गृहमें जाता है और (मधु वेति) वहां जो मधुर सोमरस रहता है, उसे पीकर (यथा वातः वनं उद् धुनोति) जैसे वायु वनको कंपाती है, वैसेही शत्रुओंको त्रस्त करता है ॥ ४ ॥

[२२२] (विवाचः मृध्रवाचः) विपरीत नाना प्रकारके वचन बोलनेवाले शत्रु लोगोंको (यः वाचा) जो इन्द्र अपने वचनसे चुप करके, (पुरु सहस्रा अशिवा जघान) अनेक सहस्र शत्रुओंका संहार करता है; और (यः पिता इव तविषीं शवः वावृधे) जो पिताके समान मनुष्योंका बल बढाता और अन्नसे वृद्धि करता है, हम (अस्य तत् तत् इत् पौंस्यं गृणीमसि) इसके ही उस उस सामर्थ्यका वर्णन करते हैं ॥ ५ ॥

[२२३] हे (इन्द्र) इन्द्र! (ते सुदानवे) तुझे उत्तम दाता जानकर (अपूर्व्यं पुरुतमं स्तोमं) अत्यंत अनुपम, सबसे श्रेष्ठ स्तोत्र हम (विमदाः अजीजनन्) विमद वंशीय विद्वानोंने धन प्राप्तिके लिये बनाया है। (अस्य इनस्य भोजनं आ विद्म हि) उस तुझ स्वामीके ऐश्वर्यको हम जानते हैं और (पशुं न गोपाः) जैसे गोपालक पशुको अपने पास बुलाता है, वैसही हम (आ करामहे) धनप्राप्तिके लिये तुझे बुलाते हैं ॥ ६ ॥

[२२४] हे (इन्द्र) इन्द्र! (तव च विमदस्य ऋषेः च) तेरे और विमद ऋषिके (एना सख्या न माकिः वि यौषुः) साथ जो मैत्रीभाव है, वह कोई न तोडे और ये कभी नष्ट न होवें। हे (देव) देव! (जामिवत् सख्या प्रमतिं विद्म हि) हम तेरे भाईके प्रति भगिनीके समान जो मित्रताके भाव हैं, उस तेरी बुद्धिको जानते हैं; (ते अस्मे शिवानि सन्तु) वे तेरे मित्र-प्रेमभाव हमारे लिये कल्याणकारी हों ॥ ७ ॥

(२४)

६ ऐन्द्रो विमदः, प्राजापत्यो वा, वासुक्रो वसुकृद्वा । इन्द्रः, ४-६ अश्विनौ ।
आस्तारपङ्क्तिः, ४-६ अनुष्टुप् ।

इन्द्र सोमम्मिमं पिब मधुमन्तं चमू सुतम् ।
अस्मे र॒यिं नि धा॑रय॒ वि वो॒ मदे॑ सहस्रिणं पुरूवसो विवक्षसे १
त्वां यज्ञेभिरुक्थै॒रुप॑ ह॒व्येभिरीमहे ।
शचीपते शचीनां वि वो॒ मदे॒ श्रेष्ठं नो धेहि वार्यं॒ विवक्षसे २
यस्पतिर्वार्याणा॒मसि॑ र॒ध्रस्य॑ चोदि॒ता ।
इन्द्र॑ स्तोतॄणाम॑वि॒ता वि वो॒ मदे॑ द्वि॒षो नः॑ पा॒ह्यंह॑सो विवक्षसे ३
युवं श॑क्रा माया॒विना॑ स॒मीची निर॑मन्थतम् ।
वि॒मदे॑न॒ यदी॑ळि॒ता नास॑त्या नि॒रम॑न्थतम् ४
विश्वे॑ दे॒वा अ॑कृपन्त स॒मीच्यो॒र्निष्पत॑न्त्योः ।
नास॑त्यावब्रुवन् दे॒वाः पुन॒रा व॑हता॒दिति॑ ५
मधु॑मन्मे प॒राय॑णं मधु॑म॒त् पुन॒राय॑नम् ।
ता नो॑ दे॒वा दे॒वत॑या यु॒वं मधु॑मतस्कृतम् ६ [१०] (२३०)

[२४]

[२२५] हे (इन्द्र) इन्द्र! (चमू सुतं इमं मधुमन्तं सोमं पिब) प्रसर फलकोंके ऊपर रगडा जाकर तुम्हारे लिये तैयार किया हुआ इस मधुर सोमरसका पान करो । हे (पुरूवसो) विपुल धनवाले इन्द्र ! तू (अस्मे सहस्रिणं रयिं नि धारय) हमें सहस्रोंसे प्रचुर धन दो; (वः विमदे विवक्षसे) तू सबके लिये सत्यही महान् हो ॥ १ ॥

[२२६] हे (शचीपते) शचीपति इन्द्र ! हम (यज्ञेभिः उक्थैः हव्येभिः उप) यज्ञों, मन्त्रों और होमीय वस्तुओं द्वारा (ईमहे) तुम्हारी आराधना करते हैं। तू (शचीनां श्रेष्ठं वार्यं नः धेहि) सब कर्मोंका सर्वोत्तम अभिलषित फल हमें दे; (वः वि मदे विवक्षसे) वह सचमुच महान् है ॥ २ ॥

[२२७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यः वार्याणां पतिः असि) जो तू अभिलषित धनोंका स्वामी है; (रध्रस्य चोदिता) आराधकको साधना कार्यमें प्रोत्साहित करनेवाला और (स्तोतॄणां अविता) स्तोताओंका संरक्षक है; वह तू (नः द्विषः अंहसः पाहि) हमें शत्रुओंसे और पापसे बचाओ। (वि वः मदे विवक्षसे) तू सत्यही अत्यंत महान् हो ॥ ३ ॥

[२२८] हे (मायाविना शक्रा) समर्थ कर्मनिष्ठ अश्विद्वय ! (युवं समीची निरमन्थतम्) बुद्धिमान तुम दोनोंने परस्पर मिलकर अग्निका मंथन किया । (नासत्या यद् विमदेन ईळिता निरमन्थतम्) सत्यरूप तुमने, जब विमदने तुम्हारी स्तुति की, तब अग्निको उत्पन्न किया ॥ ४ ॥

[२२९] हे (विश्वेः देवाः) अश्वि देव ! (समीच्योः निष्पतन्त्योः अकृपन्त) जब दोनों अरणियां परस्पर घर्षित होकर अग्नि स्फुलिंग बाहर होने लगे, तब सब देवता तुम्हारी स्तुति करने लगे । (देवाः नासत्यौ अब्रुवन्) देवता अश्विद्वयको बोलने लगे (पुनः आ वहतात् इति) फिर ऐसा करो ॥ ५ ॥

[२३०] हे अश्वि देव ! (मे परायणं मधुमत्) मेरा बाहर जाना स्नेहयुक्त हो और (पुनरायनं मधुमत्) पुनः लौट आना भी वैसा ही मधुर प्रीतियुक्त हो। हे (देवाः) देव! इसी प्रकार (युवं देवतया नः मधुमतः कृतम्) तुम दोनों अपनी दिव्य शक्तिसे हमें मधुर प्रीतिसे युक्त बनाओ ॥ ६ ॥

(२५)

११ ऐन्द्रो विमदः, प्राजापत्यो वा, वासुक्रो वसुकृद्वा । सोमः । आस्तारपङ्क्तिः ।

भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ।
अधा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणन् गावो न यवसे विवक्षसे १
हृदिस्पृशस्त आसते विश्वेषु सोम धामसु ।
अधा कामा इमे मम वि वो मदे वि तिष्ठन्ते वसूयवो विवक्षसे २
उत व्रतानि सोम ते प्राहं मिनामि पाक्या ।
अधा पितेव सूनवे वि वो मदे मृळा नो अभि चिद्वधाद्विवक्षसे ३ (२३३)
समु प्र यन्ति धीतयः सर्गासोऽवताँ इव ।
क्रतुं नः सोम जीवसे वि वो मदे धारया चमसाँ इव विवक्षसे ४
तव त्ये सोम शक्तिभिर्निकामासो व्यृण्विरे ।
गृत्सस्य धीरास्तवसो वि वो मदे व्रजं गोमन्तमश्विनं विवक्षसे ५ [११]

---

[२५]

[२३१] हे सोम ! (नः भद्रं मनः अपि वातय) हमें कल्याणकारी विचारोंसे युक्त मन प्राप्त करा; (दक्षं उत क्रतुम्) वह निपुण और कर्मनिष्ठ कर । (यवसे न गावः) जैसे चारेके इच्छुक गायें, उसे प्राप्त कर प्रसन्न होती हैं, वैसेही (ते सख्ये अन्धसः रणन्) हम तेरे प्रीतियुक्त होकर अन्न आदि प्राप्त कर आनन्दमय होते हैं । (वि वः मदे विवक्षसे) कारण तू महान् है ॥ १ ॥

[२३२] हे (सोम) सोम ! (हृदि स्पृशः विश्वेषु धामसु ते आसते) तुम्हारे मनको प्रसन्न करनेवाली तेरी स्तुति करके पुरोहित लोग चारों ओर बैठते हैं । (अध इमे वसूयवः मम कामाः वि तिष्ठन्ते) और ये सब धन प्राप्तिके लिये मेरे मनमें अनेक कामनाएं उत्पन्न होती हैं । (वः वि मदे विवक्षसे) सत्यही तुम अत्यंत महान् हो ॥ २ ॥

[२३३] (उत) और हे (सोम) सोम ! (अहं पाक्या ते व्रतानि प्र मिनामि) में अपनी परिणत बुद्धिसे तेरे कर्मोंको प्राप्त करता हूं । तू प्रसन्न होकर (वधात् अभि चित्) हमें शत्रु-संहार करके विनाशसे बचाकर, (सुनवे पिता इव नः मृड) जैसे पिता पुत्रका संरक्षण करता है, वैसेही हमारा पालन करके सुखी कर । (वः वि मदे विवक्षसे) कारण तू महान् है ॥ ३ ॥

[२३४] हे (सोम) सोम ! (सर्गासः अवतान् इव) जैसे कलश जल निकालनेके लिए कुएमें जाता है, वैसे ही (नः धीतयः) हमारी सब स्तुतियां (सं उ प्र यन्ति) तुमतक पहुंचती हैं । (क्रतुं नः जीवसे) हमारी प्राणरक्षाके लिये- दीर्घायुष्यत्वके लिये इस यज्ञको सफल कर । ((चसमान् इव धारय) तेरी प्रसन्नताके लिये इन पान पात्रोंको धारण कर । (वः विमदे विवक्षसे) सत्य ही तू महान् है ॥ ४ ॥

[२३५] हे (सोम) सोम ! (त्ये निकामासः धीराः) वे विविध फलाभिलाषी निग्रही बुद्धिमान् ऋत्विज् (शक्तिभिः तवसः गृत्सस्य तव वि ऋण्विरे) अनेक प्रकारके कर्मोंको करनेवाले बलशाली तेरी स्तुति करते हैं । तू प्रसन्न होकर (गोमन्तं अश्विनं व्रजं) गौ और अश्वसे युक्त गोशाला हमें दे । (वः वि मदे विवक्षसे) कारण तू महान् और मेधावी है ॥ ५ ॥

पशुं नः सोम रक्षसि पुरुत्रा विष्ठितं जगत् ।
समाकृणोषि जीवसे वि वो मदे विश्वा संपश्यन् भुवना विवक्षसे ६
त्वं नः सोम विश्वतो गोपा अदाभ्यो भव ।
सेध राजन्नप स्रिधो वि वो मदे मा नो दुःशंस ईशता विवक्षसे ७
त्वं नः सोम सुक्रतुर्वयोधेयाय जागृहि ।
क्षेत्रवित्तरो मनुषो वि वो मदे द्रुहो नः पाह्यंहसो विवक्षसे ८
त्वं नो वृत्रहन्तमेन्द्रस्येन्दो शिवः सखा ।
यत् सीं हवन्ते समिथे वि वो मदे युध्यमानास्तोकसातौ विवक्षसे ९
अयं घ स तुरो मद इन्द्रस्य वर्धत प्रियः ।
अयं कक्षीवतो महो वि वो मदे मतिं विप्रस्य वर्धयद्विवक्षसे १०
अयं विप्राय दाशुषे वाजाँ इयर्ति गोमतः ।
अयं सप्तभ्य आ वरं वि वो मदे प्रान्धं श्रोणं च तारिषद्विवक्षसे ११ [१२] (२४१)

---

[२३६] हे (सोम) सोम ! (नः पशुं रक्षसि) तू हमारे पशुओंकी रक्षा करता है; और (पुरुत्रा विष्ठितं जगत्) तू नाना प्रकारसे फैले हुए- स्थित जगत्की भी रक्षा करता है। तू (विश्वा भुवना संपश्यन् जीवसे समाकृणोषि) सारे भुवनोंका अन्वेषण करके हमारे प्राण धारणके लिये जीवनोपयोगी सब पदार्थोंकी व्यवस्था करता है। (वः वि मदे विवक्षसे) सबके सुखके लिये तू महान् है ॥ ६ ॥

[२३७] हे (सोम) सोम ! (त्वं अदाभ्यः) तू अविनाशी अमर है; (नः विश्वतः गोपाः भव) तू हमारा सब प्रकारसे रक्षक होओ। हे (राजन्) राजन् ! (स्रिधः अप सेध) हमारे शत्रुओंको दूर कर; (दुःशंसः नः मा ईशात) हमारा निन्दक हमारा कुछ न करने पावे; (वः वि मदे विवक्षसे) कारण तू महान् है ॥ ७ ॥

[२३८] हे (सोम) सोम ! (त्वं सुक्रतुः वयः धेयाय जागृहि) तू उत्तम कर्म करनेवाला है; तू हमें अन्न देनेके लिये सदा जागृत रह। (क्षेत्रवित्तरः) हमें निवासस्थान देनेके लिये तू अद्वितीय है; (नः द्रुहः अंहसः मनुषः पाहि) तू हमारी द्रोही मनुष्यसे और पापसे रक्षा कर। (वः वि मदे विचक्षसे) तू महान् है ॥ ८ ॥

[२३९] हे (वृत्रहन्तम इन्दो) वृत्रके नाश करनेवाले सोम ! (यत् तोकसातौ समिथे सीं हवन्ते) जिस समय अपनी सन्तानोंके संहारक संग्राममें योद्धा शत्रु चारों ओरसे युद्धके लिये हमें बुलाते हैं, (इन्द्रस्य शिवः सखा) उस समय इन्द्रके कल्याणकारी सहायक तुम हमारा भी सखा होते हो; (वः विमदे विवक्षसे) कारण तुम महान् हो ॥ ९ ॥

[२४०] (स अयं घ तुरः मदः इद्रस्य प्रियः) वह यह निश्चयसेही शीघ्र कार्य करनेवाला, उत्साहवर्धक, मदकर और इन्द्रके प्रिय होकर (वर्धत) वृद्धिको प्राप्त होता है। (अयं महः कक्षीवतः विप्रस्य मतिं वर्धयत्) और इसने महा बुद्धिवान् कक्षीवान् ऋषिकी बुद्धिको बढाया था; (वः वि मदे विवक्षसे) तुम महान् हो ॥ १० ॥

[२४१] (अयं दाशुषे विप्राय गोमतः वाजान् इयर्ति) यह सोम दानशील मेधावी यजमानको पशुयुक्त अन्न और भोग्य पदार्थोंको देता है; (अयं सप्तभ्यः वरं आ) यही सातो होताओंको श्रेष्ठ धन देता है; (अन्धं श्रोणं च प्रतारिषत्) और अंधे दीर्घतमा ऋषिको नेत्र और लंगडे परावृज ऋषिको पैर दिये थे; (वः वि मदे विवक्षसे) सत्यही तू महान् है ॥ ११ ॥

(२६)

९ ऐन्द्रो विमदः, प्राजापत्यो वा, वासुक्रो वसुकृद्वा । पूषा । अनुष्टुप्; १, ४ उष्णिक् ।

प्र ह्यच्छा मनीषाः स्पार्हा यन्ति नियुतः ।
प्र दस्रा नियुद्रथः पूषा अविष्टु माहिनः १
यस्य त्यन्महित्वं वाताप्यमयं जनः ।
विप्र आ वंसद्धीतिभिश्चिकेत सुष्टुतीनाम् २
स वेद सुष्टुतीनामिन्दुर्न पूषा वृषा ।
अभि प्सुरः प्रुषायति व्रजं न आ प्रुषायति ३
मंसीमहि त्वा वयमस्माकं देव पूषन् ।
मतीनां च साधनं विप्राणां चाधवम् ४
प्रत्यर्धिर्यज्ञानामश्वहयो रथानाम् ।
ऋषिः स यो मनुर्हितो विप्रस्य यावयत्सखः ५ [१३] (२४६)
आधीषमाणायाः पतिः शुचायाश्च शुचस्य च ।
वासोवायोऽवीनामा वासांसि मर्मृजत् ६

---

[२६]

[२४२] (नियुतः स्पार्हाः मनीषाः हि अच्छ प्रयन्ति) अतीव स्पृहणीय प्रेमयुक्त उच्चारित स्तोत्र तुम्हें प्राप्त होवें; (नियुद् रथः माहिनः पूषा दस्रा प्र अविष्टु) सदा रथको जोतनेवाले महान् पूषादेव हमारी रक्षा करे ॥ १ ॥

[२४३] (अयं विप्रः जनः यस्य वाताप्यं त्यत् महित्वं) यह मेधावी मनुष्य जिस पूषा देवताके जीवनप्रद जलके भाण्डारके महान् सामर्थ्यको (धीतिभिः आ वंसत्) अपनी स्तुतियों द्वारा उपभोग करता है, वह ही पूषा देव (सु-स्तुतीनां चिकेत) उत्तम स्तुति-स्तोत्रोंको जानता-सुनता है ॥ २ ॥

[२४४] (इन्दुः न सः पूषा वृषा सुस्तुतीनां वेद) सोमके समान यह पूषा देव भी इच्छाओंको परिपूर्ण करनेवाला है और वह उत्तम स्तोत्रोंको जानता- सुनता है; (प्सुरः अभि प्रुषायति) वह रूपवान् पूषा कृपाजल वृष्टि करता है और वह (व्रजं नः आ प्रुषायति) हमारे गोष्ठमें भी जलका सिंचन करता है ॥ ३ ॥

[२४५] हे (पूषन् देव) पूषा देव ! (वयं अस्माकं मतीनां साधनं) हम अपनी बुद्धियोंको प्रेरित करनेवाला और (विप्राणां च आधवं च त्वा) बुद्धिमानोंका आधार तुझे (मंसीमहि) जानकर स्तवित करते हैं ॥ ४ ॥

[२४६] (यः यज्ञानां प्रत्यर्धिः रथानां अश्वहयः) जो पूषा यज्ञके अर्धांशका भागी और रथोंमें घोडे जोतकर जाता है, (सः ऋषिः मनुः हितः विप्रस्य सखः यवयत्) वह सर्वदर्शक, मनुष्योंका हितकर्ता, बुद्धिमानोंका मित्र है और वह उनके शत्रुओंको दूर कर देता है ॥ ५ ॥

[२४७] (आधीषमाणायाः शुचायाः चः शुचस्य पतिः) सब प्रकारसे धारण करनेमें समर्थ तेजस्वी स्त्री-पुरुषात्मक पशुओंके स्वामी पूषा है; (वासः वायः अवीनां वासांसि मर्मृजत्) वही भेडकी ऊनके वस्त्र बनाता है और धोकर स्वच्छ करता है ॥ ६ ॥

इनो वाजानां पति-रिनः पुष्टीनां सखा ।
प्र श्मश्रु हर्यतो दूधोद् वि वृथा यो अदाभ्यः ७
आ ते रथस्य पूष-न्नजा धुरं ववृत्युः ।
विश्वस्यार्थिनः सखा सनोजा अनपच्युतः ८
अस्माकमूर्जा रथं पूषा अविष्टु माहिनः ।
भुवद्वाजानां वृध इमं नः शृणवद्धवम् ९ [१४] (२५०)

(२७)

२४ ऐन्द्रो वसुक्रः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

असत् सु मे जरितः साभिवेगो यत् सुन्वते यजमानाय शिक्षम् ।
अनाशीर्दामहमस्मि प्रहन्ता सत्यध्वृतं वृजिनायन्तमाभुम् १
यदीदहं युधये संनया-न्यदेवयून् तन्वा३ शूशुजानान् ।
अमा ते तुम्रं वृषभं पचानि तीव्रं सुतं पञ्चदशं नि षिञ्चम् २

---

[२४८] वह प्रभु पूषा (वाजानां इनः पतिः) सब हविद्रव्योंका, अन्नके स्वामी, (पुष्टीनां इनः सखा और सबके लिये पुष्टिकर तथा मित्र है; (यः हर्यतः अदाभ्यः श्मश्रु वृथा प्र दूधोद्) वही तेजस्वी और दुर्धर्ष पूषा क्रीडास्थानमें अपने बालोंको हिलाता है ॥ ७ ॥

[२४९] हे (पूषन्) पूषा देव ! तू (विश्वस्य अर्थिनः सखा) समस्त याचकोंकी मनःकामना पूर्ण करनेवाला मित्र है, तू (सनोजाः अनपच्युतः) अजन्मा और अपने अधिकारसे न हुआ अविनाशी है। (ते रथस्य धुरं अजाः ववृत्युः) तेरे रथकी धुराका वहन छाग करते हैं ॥ ८ ॥

[२५०] (माहिनः पूषा अस्माकं रथं ऊर्जा अविष्टु) महान् पूषा देव अपने बलसे हमारे रथकी रक्षा करे; वह (वाजानां वृधे भुवत्) अन्नकी वृद्धि करे; और (न इमं हवं शृणवत्) हमारी इस प्रार्थनाको सुने ॥ ९ ॥

[२७]

[२५१] हे (जरितः) स्तोता ! (मे सः अभिवेगः सु असत्) मेरा वह स्वभाव-वेग सदा रहता है (यत्) कि मैं (सुन्वते यजमानाय शिक्षम्) सोम-यज्ञके अनुष्ठाता यजमानको अभिलषित फल देता हूं । (अहं) मैं (अनाशीः दां सत्यध्वृतं वृजिनायन्तं आभुं प्रहन्ता अस्मि) जो मुझे होमीय द्रव्य नहीं देता, सत्यको नष्ट करता है और जो चारों ओर पापाचरण करता फिरता है, उसका सर्वनाश करता हूं ॥ १ ॥

[२५२] (यदि इत् अहं) जब भी मैं (अदेवयून् तन्वा शुशूजानान्) ईश्वरकी पूजा-आराधना न करने वाले और शरीर बलके कारण अविनीत लोगोंके साथ (युद्धये संनयानि) युद्ध करनेके लिये जाता हूं तब मैं, हे इन्द्र ! (ते अमी तुम्रं वृषभं पचानि) तेरे लिये पुष्ट वृषभका पाक करता हूं; (तीव्रं सुतं पञ्चदशं निषिञ्चम्) मैं पन्द्रह तिथियोंमेंसे प्रत्येक तिथिको सोमरस प्रस्तुत करता हूं ॥ २ ॥

नाहं तं वे॑द॒ य इति॒ ब्रवी॒त्यदे॑वयून् त्स॒मर॑णे जघ॒न्वान् ।
य॒दावाख्य॑त् स॒मर॑ण॒मृघा॑व॒दादिद्ध॑ मे वृ॒षभा प्र ब्रु॑वन्ति ३

यदज्ञा॑तेषु वृ॒जने॒ष्वासं॒ विश्वे॑ स॒तो म॒घवा॑नो म आसन् ।
जिना॒मि वेत् क्षेम॒ आ सन्त॑मा॒भुं प्र तं क्षि॒णां पर्व॑ते पाद॒गृह्य॑ ४

न वा उ॒ मां वृ॒जने॑ वारयन्ते॒ न पर्व॑तासो॒ यद॒हं म॑न॒स्ये ।
मम॑ स्व॒नात् कृ॑धुक॒र्णो॑ भयात ए॒वेद॑नु द्यून् कि॒रणः॒ समे॑जात् ५ [१५]

दर्श॒न्न्वत्र॑ शृत॒पाँ अ॑नि॒न्द्रान् बा॑हु॒क्षद॒ः शर॑वे॒ पत्य॑मानान् ।
घृषुं॑ वा॒ ये नि॑नि॒दुः सखा॑य॒मध्यू॒ न्वे॑षु प॒वयो॑ ववृत्युः ६

अभू॒र्वौक्षी॒र्व्यु॑ आयु॑रान॒ड् दर्ष॑न्नु॒ पूर्वो॒ अप॑रो॒ नु दर्ष॑त् ।
द्वे प॒वस्ते॒ परि॒ तं न भूतो॒ यो अ॒स्य पा॒रे रज॑सो वि॒वेष॑ ७

गावो॒ यवं॒ प्रयु॑ता अ॒र्यो अ॑क्षन् ता अ॑पश्यं स॒हगो॑पा॒श्चर॑न्तीः ।
हवा॒ इद॒र्यो अ॒भितः॒ समा॑य॒न् किय॑दासु॒ स्वप॑तिश्छन्दयाते ८ (२५८)

---

[२५३] (अदेवयून् समरणे जघन्वान्) देवद्वेष्टाओंको संग्राममें मारा है, (यः इति ब्रवीति) जो ऐसा कहता है, (तं अहं न वेद) उसको मैं नहीं जानता; (यद् ऋघावत् समरणं अवाख्यत्) जब हिंसायुक्त संग्राममें जाकर मैं उनका संहार करता हूं, सब (आत इत् मे वृषभा प्रब्रुवन्ति) सब उस मेरे वीरतायुक्त कर्मोंका वर्णन करते हैं ॥३॥

[२५४] (यत् अज्ञातेषु वृजनेषु आसन्) जब मैं अनजानते सहसा युद्धमें प्रवृत्त होता हूं, तब (विश्वे मघवानः सतः मे आसन्) सब महान् सज्जन ऋषि मुझे घेर लेते हैं, (क्षेमे आ सन्तं आभुं जिनामि वा इत्) सब जगतके कल्याण तथा रक्षणके लिये सर्वत्र फैले शत्रुका भी नाश करता हूं; (तं पादगृह्य पर्वते प्र क्षिणाम्) उसके पैर पकडकर उसे पर्वतपर फेंक देता हूं ॥ ४ ॥

[२५५] (मां वृजने न वा उ वारयन्ते) मुझे युद्धमें निवारण करनेवाला कोई भी नहीं है; (यद् अहं मनस्ये न पर्वतासः) यदि मैं चाहूं तो पर्वत भी मेरा निरोध नहीं कर सकते। (मम स्वनात् कृधुकर्णः भयाते) मेरे शब्दसे बधिर व्यक्ति भी भयभीत होता है; (एव इत् अनुद्यून् किरणः समेजात्) ऐसेही प्र तदिन सूर्य भी कांपता है ॥५॥

[२५६] मैं (अत्र अनिन्द्रान् शृतपान् बाहुक्षदः शरवे पत्यमानान् दर्शन्) इस जगतमें मुझ इन्द्रको न माननेवाले, देवोंके लिये प्रस्तुत सोमरस बल पूर्वक पीनेवाले-हविद्रव्यका उपभोग करनेवाले, बाहें भांजते हुए हिंसा करनेके लिये दौडनेवाले लोगोंको देखता हूं । (ना ये घृषुं सखायं) और उनको भी देखता हूं जो अपने सहायक मित्रकी (निनिदुः) निन्दा करते हैं, (एषु उनु पवयः अधि ववृत्युः) उन पर निश्चयसे मेरे वज्रका प्रहार होता है ॥ ६ ॥

[२५७] हे इन्द्र ! (अभूः उ) तुमने प्रकट होकर दर्शन दिया, (औक्षीः) और वृष्टि भी बरसायी; तू (आयुः आनद्) दीर्घजीवी है। (पूर्वः नु दर्षत् अपरः नु दर्षत्) तू पहले शत्रुका विदारण किया था और पश्चात् भी किया था; (यः अस्य रजसः पारे विवेष) जो इस लोकके पार भी व्याप रहा है, (द्वे पवस्ते तं न परि भूतः) ये सर्वव्यापक द्यावा-पृथिवी उसको नहीं माप सकते ॥ ७ ॥

[२५८] (प्रयुताः गावः चरन्तीः यवम्) अनेक गायें एकत्र होकर यव आदिको खा रही हैं; (अर्यः ताः सहगोपाः चरन्तीः अपश्यम्) स्वामीके समान मैं गायोंकी देखभाल करता हूं और मैं देखता हूं कि वह चरवाहोंके साथ चर रही हैं। (हवाः इत् अर्यः अभितः समायन्) बुलानेपरही वह गायें अपने स्वामीके चारों ओर एकत्र हो जाती हैं; (आसु स्वपतिः कियत् छन्दयाते) उनसे स्वामीने प्रचुर दूधका दोहन कर लिया है ॥ ८ ॥

+

सं यद्वयं यवसादो जनाना—महं यवाद उर्वज्रे अन्तः ।
अत्रा युक्तोऽवसातारमिच्छा—दथो अयुक्तं युनजद्ववन्वान् ९
अत्रेदु मे मंससे सत्यमुक्तं द्विपाच्च यच्चतुष्पात् संसृजानि ।
स्त्रीभिर्यो अत्र वृषणं पृतन्या—दयुद्धो अस्य वि भजानि वेदः १० [१६]

यस्यानक्षा दुहिता जात्वास कस्तां विद्वाँ अभि मन्याते अन्धाम् ।
कतरो मेनिं प्रति तं मुचाते य ईं वहाते य ईं वा वरेयात् ११
कियती योषा मर्यतो वधूयोः परिप्रीता पन्यसा वार्येण ।
भद्रा वधूर्भवति यत् सुपेशाः स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित् १२
पत्तो जगार प्रत्यञ्चमत्ति शीर्ष्णा शिरः प्रति दधौ वरूथम् ।
आसीन ऊर्ध्वामुपसि क्षिणाति न्यङ्ङुत्तानामन्वेति भूमिम् १३
बृहन्नच्छायो अपलाशो अर्वा तस्थौ माता विषितो अत्ति गर्भः ।
अन्यस्या वत्सं रिहती मिमाय कया भुवा नि दधे धेनुरूधः १४

[२५९] (यत् उर्वज्रे अन्तः वयं जनानां यवसादः) इस महान् जगतमें तृण खानेवाले हम ही हैं, (अहं यवादः सं) हम ही अन्न–यव खानेवाले हैं, सब एकत्रही हैं; (अत्र युक्तः अवसातारं इच्छात्) इस लोकमें समाहित चित्त होकर मनुष्य ईश्वरकी इच्छा करे, उसकी उपासना करे; (अथ ववन्वान् अयुक्तं युनजत्) और वह प्रभु असंयमी योगशून्य मनुष्यको सन्मार्गमें लगाता है ॥ ९ ॥

[२६०] (अत्र इत् उ मे उक्तं सत्यं मंससे) यहां ही मं जो मेरे विषयमें कहता हूं, वह सत्य है, यह तू निश्चयसे जान; (यत् द्विपात् च चतुष्पात् च संसृजानि) जो भी द्विपाद मनुष्य–पक्षी और चतुष्पाद पशु हैं, उनको मैं उत्पन्न करता हूं। (अत्र यः स्त्रीभिः वृषणं पृतन्यात्) इस जगतमें जो स्त्रियोंके समान पराधीन पुरुषोंसे युक्त होकर वीर्यवान् मुझसे युद्ध करता है, (अयुद्धः अस्य वेदः वि भजानि) युद्धके विनाही उसका धन हरकर मैं दूसरोंको दे देता हूं ॥ १० ॥

[२६१] (यस्य अनक्षा दुहिता जातु आस) जिसकी नेत्रसे रहित कन्या है, (कः विद्वान् तां अन्धां अभि मन्याते) कौन विद्वान् उस अन्धी कन्याको अपना आश्रय देगा ? (यः ईं वहाते यः ईं वरेयात्) जो इसको धारण करता है, जो इसको रोकता है, (तं मेनिं कतरः प्रति मुचाते) उस वज्रको कौन धारण करता है ?

[२६२] (कियती योषा वधूयोः मर्यतः पन्यसा वार्येण परिप्रीता) कितनी स्त्रियां ऐसी हैं जो स्त्रीकी इच्छा करनेवाले मनुष्यके स्तुतियुक्त वचन और धनसे उसपर आसक्त हो जाती हैं; (यत् भद्रा सुपेशाः वधूः भवति । परंतु जो कल्याणप्रद और सुरूप स्त्री है, (सा जने चित् मित्रं स्वयं वनुते) वह मनुष्योंके बीच अपने मनके अनुकूल मित्र पुरुषको पतिरूपसे स्वीकार करती है ॥ १२ ॥

[२६३] आदित्य देव (पत्तः जगार) अपनी किरणोंसे प्रकाशको व्यक्त करता है; और (प्रत्यञ्चं अत्ति) और अपनेमें स्थित प्रकाशका गृहण करके, (शिरः वरूथं शीर्ष्णा प्रति दधौ) अपने मस्तकको ढकनेवाली किरणोंको इस जगतके ऊपर वर्षता है। वह (ऊर्ध्वां उपसि आसीनः क्षिणाति) ऊपर विद्यमान तेजस्वी दीप्तिके समीप स्थित होकर उसे क्षीण करके, (उत्तानां भूमिं न्यङ् अनु एति) नीचे विस्तृत पृथ्वीपर अपनी किरणोंसे प्राप्त होता है ॥ १३॥

[२६४] (बृहन्, अच्छायः अपलाशः अर्वा तस्थौ) वह आदित्य महान्, तम–अन्धकार रहित, नित्य और सतत गमन करनेवाला है; (माता विषितः गर्भः अत्ति) इसी प्रकार यह सर्वोत्पादक, व्यापक और जगत्को धारण

सप्त वीरासो अधरादुदाय न्नष्टोत्तरात्तात् समजग्मिरन्ते ।
नव पश्चातात् स्थिविमन्त आयन् दश प्राक् सानु वि तिरन्त्यश्नः १५ [१७]

दृशानामेकं कपिलं समानं तं हिन्वन्ति क्रतवे पार्याय ।
गर्भं माता सुधितं वक्षणा स्ववेनन्तं तुषयन्ती बिभर्ति १६

पीवानं मेषमपचन्त वीरा न्युप्ता अक्षा अनु दीव आसन् ।
द्वा धनुं बृहतीमप्स्व१न्तः पवित्रवन्ता चरतः पुनन्ता १७

वि क्रोशनासो विष्वञ्च आयन् पचाति नेमो नहि पक्षदर्धः ।
अयं मे देवः सविता तदाह द्र्वन्न इद्वनवत् सर्पिरन्नः १८

अपश्यं ग्रामं वहमानमारा दचक्रया स्वधया वर्तमानम् ।
सिषक्त्यर्यः प्र युगा जनानां सद्यः शिश्ना प्रमिनानो नवीयान् १९

करनेवाला आदित्य हवि खाता है। (धेनुः अनस्याः वत्सं रिहती) यह द्युलोक रूपिणी गौ दूसरी गौ- अदिति- के बच्चेको प्रेमसे स्थापित करती है; वह (कया भुवा ऊधः नि दधे) किस भावसे गौ के स्तन समान अन्तरिक्षमें धारण करती है ॥ १४ ॥

[२६५] (अश्नः अधरात् सप्त वीरासः उत् आयन्) प्रजाप्रतिके नाभि-शरीरसे विश्वामित्र आदि सात ऋषि उत्पन्न हुए; और (अष्ट उत्तरात् तात् सं अजग्मिरन्) उसके उत्तरी शरीरसे बालखिल्य आदि आठ उत्पन्न हुए। (पश्चातात् स्थिविमन्तः नव आयन्) पीछेसे भृगु आदि नौ उत्पन्न हुए; (प्राक् दश) अङ्गिरा आदि दस आगेसे उत्पन्न हुए; (अश्नः सानु वि तिरन्ति) ये यज्ञांशका भक्षण करनेवाले द्युलोकके उन्नत प्रदेशकी अभिवृद्धि करते हैं ॥ १५ ॥

[२६६] (दशानां एकं समानं कपिलं) दस अंगिरसोंमें एक सबके प्रति समान भाव रखनेवाला कपिल है; (तं पार्याय क्रतवे हिन्वन्ति) उसको श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करानेवाले आवश्यक यज्ञादि कर्म साधनाके लिये प्रेरित करते हैं। (माता अवेनन्तं वक्षणासु सुधितं गर्भं तुषयन्ती बिभर्ति) जगत् निर्मात्री प्रकृतिमाताने कामना न करनेवाले उस गर्भको संतुष्ट होकर जलमें धारण किया ॥ १६ ॥

[२६७] (पीराः पीवानं मेषं अपचन्त) प्रजापतिके वीर पुत्रोंने बलवान् मेषको पाया; (नि-उप्ताः अक्षाः अनु दीवे आसन्) क्रीडास्थानमें पाश इच्छानुसार सुखके लिये फेंके गये। (अप्सु अन्नः द्वा पविवन्ता पुनन्ता अन्तः चरन्ति) इनमेंसे दो प्रचण्ड धनु लेकर मन्त्रोच्चारणके द्वारा, अपने शरीरको शुद्ध करते करते जलमें विचरण करते हैं ॥ १७ ॥

[२६८] (क्रोशनासः) विविध रीतिसे आवाहन करनेवाले (विष्वञ्चः) अनेक प्रकारके आङ्गिरस (वि आयन्) यहां आये हैं। (नेमः पचाति) उनमें आधे लोग हविका पाक करते हैं और (अर्धः नहि पक्षत्) आधे पकाते नहीं। (अयं देवः सविता) इन बातोंको सविता देवने (मे तत् आह) मुझसे कहा है। वास्तविक (द्रुवन्नः इत) काष्ठको अन्नवत् खानेवाला और (सर्पिः अन्नः) घृतको भक्षण करनेवाला अग्नि भी प्रजापतिकी उपासना करता है ॥ १८ ॥

[२६९] (अचक्रया स्वधया) चक्रहीन सेनाके साथ रहनेवाले और (आरात्) दूरसे (ग्रामं वहमानः) भूत संघको धारण करने वाले प्रजापतिको (अदर्शयम्) मैं देख रहा हूं। वह (सद्यः नवीयान् अर्यः) सदा ताजा- उत्साही रहनेवाला स्वामी (शिश्ना प्रमिनानः) तुरंत शत्रुओंका संहार करनेवाला है; (जनानां युगा प्र सिषक्ति) वह लोगोंके जोडोंको मिलाता है ॥ १२ ॥

एतौ मे गावौ प्रमरस्य युक्तौ मो षु प्र सेधीर्मुहुरिन्ममन्धि ।
आपश्चिदस्य वि नशन्त्यर्थं सूरश्च मर्क उपरो बभूवान् २० [१८]

अयं यो वज्रः पुरुधा विवृत्तो ऽवः सूर्यस्य बृहतः पुरीषात् ।
श्रव इदेना परो अन्यदस्ति तदव्यथी जरिमाणस्तरन्ति २१
वृक्षेवृक्षे नियता मीमयद्गौ स्ततो वयः प्र पतान् पूरुषादः ।
अथेदं विश्वं भुवनं भयात इन्द्राय सुन्वदृषये च शिक्षत् २२ (२७२)

देवानां माने प्रथमा अतिष्ठन् कृन्तत्रादेषामुपरा उदायन् ।
त्रयस्तपन्ति पृथिवीमनूपा द्वा बृबूकं वहतः पुरीषम् २३
सा ते जीवातुरुत तस्य विद्धि मा स्मैतादृगप गूहः समर्ये ।
आविः स्वः कृणुते गूहते बुसं स पादुरस्य निर्णिजो न मुच्यते २४ [१९] (२७४)

---

[२७०] (मे प्रमरस्य) शत्रुमारक मेरे (एतौ गावौ युक्तौ) ये दो योजित हुए गमनशील वृषभ समान घोडे (मो सु प्रसेधीः) तू यहांसे कभी दूर न कर। परन्तु (मुहुः इत् ममन्धि) तू इन्हें बार-बार सान्त्वना दे। (अस्य अर्थं आपः चित् विनशन्ति) इनके गतिको पानीही रोकता है, नष्ट करता है; (सूरः च मर्कः) वह सूर्यके समान और जगत्का शोधक (उपरः बभूवान्) मेघके समान पदार्थोंका दाता है ॥ २० ॥

[२७१] (अयं यः वज्रः) यह जो वज्र दुःखोंको निवारण करनेवाला (पुरुधा विवृत्तः) धारण करनेमें समर्थ, विविध प्रकारसे रह रहा है, वह (सूर्यस्य बृहतः पुरीषात् अवः) सूर्यके समान सर्वसंचालक महान् स्वामीके वैभवसे हमें प्राप्त होता है। (एना परः अन्यत् श्रवः इत् अस्ति) इसके अनन्तर और भी स्थान है; (तत् अव्यथी जरिमाणः तरन्ति) वह अनायास उस स्थानका पार पा जाते हैं ॥ २१ ॥

[२७२] (वृक्षे वृक्षे नियता गौः मीमयत्) प्रत्येक धनुषमें बंधी प्रत्यञ्चा शब्द करती है; (तत् पुरुषादः वयः प्रपतान्) उससे शत्रुओंको भक्षण करनेवाले बाण निकलते हैं। (अथ इदं विश्वं भुवनं भयात) इससे यह सारा संसार डरता है; और (इन्द्राय सुन्वत्) सब लोग इन्द्रकी पूजा करते हैं और (ऋषये च शिक्षत्) सर्वद्रष्टा ऋषि उसकी शिक्षा प्राप्त करते हैं ॥ २२ ॥

[२७३] (देवानां माने प्रथमाः अतिष्ठन्) देवोंके निर्माण कालमें प्रथम मेघ उत्पन्न हुए; (एषां कृन्तत्रात् उपराः उदायन्) मेघके छेदन-भेदन होनेसे जलकी उत्पत्ति हुई। (त्रयः अनूपाः पृथिवीं तपन्ति) तीन गुणोंको उत्पन्न करनेवाले- पर्जन्य, वायु और सूर्य- ये तीन अनुकूल होकर भूमिको तप्त करते हैं; और (द्वा बृबूकं पुरीषं वहतः) इनमेंसे दो- वायु और सूर्य- प्रीतिकर जलका वहन करते हैं ॥ २३ ॥

[२७४] (ते सा जीवातुः) सूर्य ही तुम्हारा जीवनाधार है; (उत तस्य विद्धि) और तूही इस स्वरूपको जानता है; (समर्ये एतादृग् मा अपगूहः स्म) यज्ञके समय ऐसे प्राणदायक स्वरूपको मत छिपा- उस प्रभावका वर्णन-स्तवन कर। (स्वः आविः कृणुते) वह सूर्य त्रिलोकको प्रकाशित करता है; (बुसं गूहते) वह सूर्य जलको बाष्परूपसे शोषण करता है; (अस्य निर्णिजः सः पादुः न मुच्यते) इस गमन तत्त्वका वह चेतनामय स्वरूप सूर्य कभी त्याग नहीं करता ॥ २४ ॥

(२८)

(१२) १ इन्द्रस्नुषा वसुक्रपत्नी ऋषिका; २,६,८,१०,१२ इन्द्र ऋषिः; ३,४,५,७,९,११ ऐन्द्रो वसुक्र ऋषिः। २,६,८,१०,१२ ऐन्द्रो वसुक्रो देवता; १,३,४,५,७,९,११ इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप्।

विश्वो ह्य१न्यो अरिराजगाम ममेदह श्वशुरो ना जगाम ।
जक्षीयाद्धाना उत सोमं पपीयात् स्वाशितः पुनरस्तं जगायात् १
स रोरुवद्वृषभस्तिग्मशृङ्गो वर्ष्मन् तस्थौ वरिमन्ना पृथिव्याः ।
विश्वेष्वेनं वृजनेषु पामि यो मे कुक्षी सुतसोमः पृणाति २
अद्रिणा ते मन्दिन इन्द्र तूयान् त्सुन्वन्ति सोमान् पिबसि त्वमेषाम् ।
पचन्ति ते वृषभाँ अत्सि तेषां पृक्षेण यन्मघवन् हूयमानः ३
इदं सु मे जरितरा चिकिद्धि प्रतीपं शापं नद्यो वहन्ति ।
लोपाशः सिंहं प्रत्यञ्चमत्साः क्रोष्टा वराहं निरतक्त कक्षात् ४
कथा त एतदहमा चिकेतं गृत्सस्य पाकस्तवसो मनीषाम् ।
त्वं नो विद्वाँ ऋतुथा वि वोचो यमर्धं ते मघवन् क्षेम्या धूः ५

---

[२८]

[२७५] [इन्द्रके पुत्र वसुक्रकी पत्नी कहती है—] (अन्यः हि विश्वः अरिः आजगाम) इन्द्रके अतिरिक्त समस्त देवता यहां आये हैं, (अह मम इत् श्वसुरः न आजगाम) और केवल मेरे श्वसुर इन्द्र नहीं आये। यदि वह आते तो (धानाः जक्षीयात्) भुना हुआ जौ खाते, (उत सोमं पपीयात्) और सोम पीते; (स्वाशितः पुनः अस्तं जगायात्) आहारादिसे तृप्त होकर पुनः अपने घर लौट जाते ॥ १ ॥

[२७६] [इन्द्र कहता है-] (सः वृषभः तिग्मशृङ्गः) वह कामनाओंको पूर्ण करनेवाला तेजस्वी मैं (पृथिव्याः वरिमन् वर्ष्मन् आ तस्थौ) पृथिवीके विस्तीर्ण और उन्नत प्रदेशमें रहता हूं। (सुतसोमः यः मे कुक्षी पृणाति) सोम निचोडनेवाला जो मुझे भरपेट सोम पीनेको देता है, मैं (एनं विश्वेषु वृजनेषु पामि) उसकी समस्त संग्रामोंमें रक्षा करता हूं ॥ २ ॥

[२७७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते मन्दिनः अद्रिणा तूयान् सोमान् सुन्वन्ति) तेरे लिये मदयुक्त, प्रस्तर फलकोंपर शीघ्रतासे निचोडा सोम जब लोग तैयार करते हैं, तब (त्वं एषां पिबसि) तू उनके सोमका पान करता है। हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (हूयमानः) जिस समय आदरपूर्वक हविर्द्रव्योंसे हवन किया जाता है, उस समय (ते वृषभाँ पचन्ति तेषां पृक्षेण अत्सि) तेरे लिये वे पशु पकाते हैं, और तू उनका स्नेहसे भक्षण करता है ॥ ३ ॥

[२७८] हे (जरितः) शत्रुओंके नाशक इन्द्र ! (इदं मे सु आ चिकित् हि) तेरी कृपासे यह मुझमें जो सामर्थ्य है, उसे जान कि (नद्यः प्रतीपं शापं वहन्ति) नदियां विपरीत दिशाको जल बहाने लगती हैं, (लोपाशः प्रत्यञ्चं सिंहं अत्साः) तृण खानेवाला हरिण आगे आते सिंहको पराङ्मुख करके उसके पीछे दौडता है, और (क्रोष्टा वराहं कक्षात् निरतक्त) शृगाल वराहको गहन अरण्यसे भगा देता है ॥ ४ ॥

[२७९] हे इन्द्र ! (पाकः अहं) मैं यज्ञ हूं, (गृत्सस्य तवसः ते मनीषां एतत्) बुद्धिमान्- सत्य और सर्व शक्तिमान् प्राचीन हो; तेरी इच्छा-सामर्थ्य और इस सबको (कथा आ चिकेतम्) मैं कैसे तुम्हें जानकर स्तवन कर सकता हूं ? (त्वं विद्वान् नः ऋतुथा विवोचः) तू ही सर्वज्ञ हो, इसलिये हमें समय-समयपर विशेष रूपसे उपदेश करता है; हे (मघवन्) इन्द्र ! (यं अर्धं ते क्षेम्या धूः) जिस अंशका हम स्तोत्र कर सकते हैं, वह तुझे मान्य हो॥५॥

एवा हि मां तवसं वर्धयन्ति दिवश्चिन्मे बृहत उत्तरा धूः ।
पुरू सहस्रा नि शिशामि साकमशत्रुं हि मा जनिता जजान ६ [२०]

एवा हि मां तवसं जज्ञुरुग्रं कर्मन्कर्मन् वृषणमिन्द्र देवाः ।
वधीं वृत्रं वज्रेण मन्दसानोऽप व्रजं महिना दाशुषे वम् ७
देवास आयन् परशूँरबिभ्रन् वना वृश्चन्तो अभि विड्भिरायन् ।
नि सुद्र्वं दधतो वक्षणासु यत्रा कृपीटमनु तद्दहन्ति ८
शशः क्षुरं प्रत्यञ्चं जगाराऽद्रिं लोगेन व्यभेदमारात् ।
बृहन्तं चिदृहते रन्धयानि वयद्वत्सो वृषभं शूशुवानः ९
सुपर्ण इत्था नखमा सिषायाऽवरुद्धः परिपदं न सिंहः ।
निरुद्धश्चिन्महिषस्तर्ष्यावान् गोधा तस्मा अयथं कर्षदेतत् १० (२८४)
तेभ्यो गोधा अयथं कर्षदेतद्ये ब्रह्मणः प्रतिपीयन्त्यन्नैः ।
सिम उक्ष्णोऽवसृष्टाँ अदन्ति स्वयं बलानि तन्वः शृणानाः ११

---

[२८०] [इन्द्र कहता है–] (तवसं मां एव हि वर्धयन्ति) प्राचीन महान् मेरी इस प्रकार ही स्तोता लोग स्तुति करते हैं; (बृहतः मे दिवः चित् उत्तरा धूः) महान् मेरी स्वर्गसे भी अधिक उत्कृष्ट कार्यभारकी धारण शक्ति है; मैं (पुरू सहस्रा साकं नि शिशामि) सहस्रों शत्रुओंको एक साथही नष्ट कर सकता हूं; (मा जनिता हि अशत्रुं जजान) मेरे जन्मदाता प्रजापतिने मुझे शत्रुरहितही निर्माण किया है– मेरा शत्रु कोई नहीं टिक सकता ॥ ६ ॥

[२८१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (देवाः मां एव तवसं कर्मन्-कर्मन् उग्रं वृषणं आजज्ञुः) देवता लोग मुझे तेरे समान ही प्राचीन–महान्, प्रत्येक कर्ममें शूर, बलवान् और अभीष्ट फलके दाता समझते हैं, (मन्दसानः वज्रेण वृत्रं वधीम्) आनंदित होकर मैंने वज्रसे वृत्रअसुरका वध किया है; (महिना दाशुषे व्रजं अप वम्) मैंने अपनी सामर्थ्यसे दानशीलको धन दिया है ॥ ७ ॥

[२८२] (परशून अबिभ्रन् देवासः आयन्) हाथोंमें परशु धारण करनेवाले विजयकी इच्छा करके देव आते हैं; और वे (विड्भिः वना वृश्चन्तः अभिः आयन्) लोगोंके साथ मेघोंको काटते हुए मुकाबला करके जल बरसाते हैं; (वक्षणासु सुद्रवं नि दधतः) नदियोंमें उस उत्तम जलको रखते हैं; (यत्र कृपीटं अनु तत् दहन्ति) वे जहां मेघमें जल देखते हैं, उसे शुष्क करके जल निकाल देते हैं ॥ ८ ॥

[२८३] (शशः प्रत्यञ्चं क्षुरं जगार) मृग भी सामनेसे आते हुए सिंहका सामना करता है; और मैं (लोगेन अद्रिं आरात् वि अभेदम्) ढेला फेंककर पर्वतको भी दूरसे तोड सकता हूं; (ऋहते बृहन्तं रन्धयानि) क्षुद्रके वशमें महान्को भी लाता हूं; (वत्सः शूशुवानः वृषभं वयत्) और बछडा भी बढकर सांडसे टक्कर लेता है ॥ ९ ॥

[२८४] (अवरुद्धः सिंहः परिपदं न) पिंजडेमें बंधा सिंह जैसे अपना स्थान न छोडते हुए आक्रमणके लिये सदा अपना पंजा तैयार रखता है, उसी प्रकार (सुपर्णः इत्था नखं आ सिषाय) बाज पक्षी इस प्रकार अपना नख रगडता है । (निरुद्धः महिषः चित् तर्ष्यावान्) जैसे बंधा हुआ भैंसा तृषातुर होता है, वैसे ही (तस्मै गोधाः अयथं एतत् कर्षत्) तृषार्त इंद्रके लिये गायत्री सोम लाकर देती है ॥ १० ॥

[२८५] (ये ब्रह्मणः अन्नैः प्रतिपीयन्ति) जो ब्राह्मण अन्नके द्वारा तृप्त होकर शत्रुओंका नाश करते हैं, (एतत् तेभ्यः गोधाः अयथं कर्षत्) उनके लिये गायत्री अनायास सोम ला देती है; और वे (अष सृष्टान् सिमः उष्णः अदन्ति) सब प्रकारके रससे युक्त सोमको पीते हैं और (स्वयं बलानि तन्वः शृणानाः) स्वयं शत्रुओंकी देह तथा बलका विध्वंस करते हैं ॥ ११ ॥

एते शमीभिः सुशमी अभूवन् ये हिन्विरे तन्वः सोम उक्थैः ।
नृवद्वदन्नुप नो माहि वाजान् दिवि श्रवो दधिषे नाम वीरः ॥ १२ [२१] (२८६)

(२९)

८ ऐन्द्रो वसुक्रः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

वने न वा यो न्यधायि चाकञ्छुचिर्वां स्तोमो भुरणावजीगः ।
यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होता नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान् ॥ १
प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम् ।
अनु त्रिशोकः शतमावहन्नॄन् कुत्सेन रथो यो असत् ससवान् ॥ २
कस्ते मद इन्द्र रन्त्यो भूद्दुरो गिरो अभ्युग्रो वि धाव ।
कद्वाहो अर्वागुप मा मनीषा आ त्वा शक्यामुपमं राधो अन्नैः ॥ ३

[२८६] (ये तन्वः उक्थैः सोमे हिन्विरे) जो अपनी देहको सोमरसका यज्ञ करके स्तोत्रोंसे परिपुष्ट करते हैं, (एते शमीभिः सुशमी अभूवन्) वे उत्तम कर्मके कर्ता कहे जाकर सुकर्मसे कृतकृत्य होते हैं, (नृवत् उपवदन्) मनुष्योंके समान स्पष्ट बोलनेवाला तू (नः वाजान् उप माहि) हमारे लिये अन्न ले आते हो; (दिवि श्रवः वीरः नाम दधिषे) दिव्य लोकमें दानशूर तू दानपति नाम धारण करता है ॥ १२ ॥

[२९]

[२८७] हे (भुरण्यौ) शीघ्रगामी अश्विद्वय ! (वने वायः न चाकन् नि अधायि) जैसे पक्षी फल-आहार चाहता हुआ अपने बच्चेको वृक्षपर सावधानतासे घोसलेमें रखता है, वैसेही (शुचिः स्तोमः वां अजीगः) यह अतिशय निर्मल स्तोत्र तुम्हारे लिये ही है; मैंने यत्नपूर्वक प्रस्तुत किया है; (पुरु-दिनेषु यस्य इत् इन्द्रः होता) बहुत दिनों-तक में इन्द्रको इसी स्तोत्रसे बुलाता हूं और वह (नृणां नर्यः) नेताओंका नेता, (नृतमः क्षपावान्) पराक्रमी नायक और रात्रिमें सोमका पान करता है ॥ १ ॥

[२८८] (अस्याः उषसः) आज प्रातःकाल और (अपरस्याः) अन्य प्रातःकालोंमें (नृणां नृतमस्य) मनुष्योंमें श्रेष्ठतम नेता- (ते नृतौ प्र प्र स्याम) तेरी स्तुति करके हम उत्तम बने । हे इन्द्र ! (त्रिशोकः अनु शतं नॄन् अवहन्) त्रिशोक ऋषिने तुम्हारी स्तुति करके तुझसे सौ मनुष्योंकी सहायता प्राप्त की थी; (कुत्सेन यः रथः ससवान्) और कुत्स नामक ऋषिने जिस रथको पाया था, वह भी तेरी कृपासे ही ॥ २ ॥

[२८९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते कः मदः रन्त्यः भूत) तुझे किस प्रकारका मद मत्त सोम अत्यंत प्रसन्नताकर तथा रुचिकर है ? (गिरः विदुरः उग्रः अभि धाव) तेजस्वी तू हमारी उत्तम स्तुतियोंको सुनकर यज्ञ-गृहके द्वारकी ओर वेगसे आओ । (कत् वाहः अर्वाक्) मैं कब उत्तम वाहन पाऊंगा ? (मा मनीषा उप) मेरी मनोकामना कब पूर्ण होगी ? और (उपमं त्वा अन्नैः राधः आ शक्याम्) कब मैं तुझे अन्नोंसे युक्त धन लेकर अपनी स्तुतिओंसे-आराधनासे प्रसन्न कर सकूंगा ? ॥ ३ ॥

कदु द्युम्नमिन्द्र त्वावतो नॄन् कया धिया करसे कन्न आगन् ।
मित्रो न सत्य उरुगाय भृत्या अन्ने समस्य यदसन् मनीषाः ४
प्रेरय सूरो अर्थं न पारं ये अस्य कामं जनिधा इव ग्मन् ।
गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीर्नर इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ५ [२२]

मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी द्यौर्मज्मना पृथिवी काव्येन ।
वराय ते घृतवन्तः सुतासः स्वाद्मन् भवन्तु पीतये मधूनि ६
आ मध्वो अस्मा असिचन्नमत्र मिन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः ।
स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या अभि क्रत्वा नर्यः पौंस्यैश्च ७
व्यानळिन्द्रः पृतनाः स्वोजा आस्मै यतन्ते सख्याय पूर्वीः ।
आ स्मा रथं न पृतनासु तिष्ठ यं भद्रया सुमत्या चोदयासे ८ [२३] (२९४)

---

[२९०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (कत् उ द्युम्नम्) कब वह उत्तम धन होगा ? (कया धिया नॄन् त्वावतः करसे) किस प्रकारके स्तोत्रका पाठ करनेसे और कर्मसे तू मनुष्योंको अपने समान पराक्रमी करोगे ? (नः कत् आगन्) तू हमारे पास कब आयेगा ? हे (उरुगाय) कीर्तिशाली इन्द्र ! (सत्यः मित्रः न) तू सबका सच्चा मित्रके समान है; (यत् समस्य भृत्यै अन्ने मनीषाः असन्) जो तू सबका अन्नसे भरण-पोषण करनेकी इच्छा करता है, उससे यह सत्य है ॥ ४ ॥

[२९१] हे (तुविजात इन्द्र) सर्वसाक्षी तेजस्वी इन्द्र ! (य जनिधाः इव) जैसे पति अपनी पत्नीकी अभिलाषा पूर्ण करता है, वैसेही जो (अस्य कामं ग्मन्) तेरी कामना- यज्ञ-पूर्ण करता है, उन्हें (अर्थं पारं प्रेरय) यथेष्ट धन दे- प्राप्तव्य इष्ट स्थलको प्राप्त करा; क्योंकि तू (सूरः न) सूर्यके समान दाता है। (ये नरः ते पूर्वीः गिरः अन्नैः प्रतिशिक्षन्ति) और जो मनुष्य प्रसिद्ध ज्ञानपूर्ण स्तोत्रोंका अन्नोंसहित तेरे लिये पाठ करते हैं, उन्हें भी धन दे ॥ ५ ॥

[२९२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (पूर्वी ते काव्येन मज्मना सुमिते मात्रे नु) प्राचीन समयमें तेरी अत्यंत कृपासे और सुन्दर सृष्टि-प्रक्रियासे निर्मित यह जो द्यावा-पृथिवी हैं, वह विविध लोकोंको बनानेवाली हैं; (घृतवन्तः सुतासः ते वराय स्वाद्मन् मधूनि पीतये भवन्तु) यह जो घी से युक्त सोमरस तुझ श्रेष्ठके लिये प्रस्तुत किया गया है, वह पीकर प्रसन्न हो और मधुर रसयुक्त अन्न तेरे लिये रुचिकर हो ॥ ६ ॥

[२९३] (सः हि सत्यराधाः) वह इन्द्र निश्चितरूपसे धनका दाता है; (अस्मै इन्द्राय मध्वः पूर्णं अमत्रं आ असिचन्) इसलिये इस इन्द्रके लिये मधुपर्कसे युक्त भरे सोमरस पात्रको आदरसे दें। (सः नर्यः) वह मनुष्योंके हितैषी है और (पृथिव्याः वरिमन्) पृथिवीके बडे भारी देशमें (क्रत्वा पौंस्यैः च अभि आ वावृधे) अपने पराक्रमोंसे सब ओर उत्कर्षित होवे ॥ ७ ॥

[२९४] (स्वोजाः इन्द्रः पृतनाः वि-आनट्) अत्यंत बलशाली इन्द्रने शत्रु-सेनाको घेर डाला; (पूर्वीः अस्मै सख्याय आ यतन्ते) उत्कृष्ट शत्रुसेना इन्द्रसे मैत्री करनेका सब प्रकारसे यत्न करती है। हे इन्द्र ! जैसे (भद्रया सुमत्या यं रथं चोदयासे) जगत्के कल्याणके लिये शुभ बुद्धिसे तू युद्धके लिये रथपर आरोहण करता है, वैसेही (पृतनासु आ तिष्ठ) इस समय रथपर आरूढ होकर आओ ॥ ८ ॥

(३०) [तृतीयोऽनुवाकः ॥३॥ सू० ३०-४२]

१५ कवष ऐलूषः । आपः, अपां न पात् वा । त्रिष्टुप् ।

प्र देवत्रा ब्रह्मणे गातुरे—त्वपो अच्छा मनसो न प्रयुक्ति ।
महीं मित्रस्य वरुणस्य धासिं पृथुज्रयसे रीरधा सुवृक्तिम् १ (२९५)

अध्वर्यवो हविष्मन्तो हि भूता—ऽच्छाप इतोशतीरुशन्तः ।
अव याश्चष्टे अरुणः सुपर्ण—स्तमास्यध्वमूर्मिमद्या सुहस्ताः २

अध्वर्यवोऽप इता समुद्र—मपां नपातं हविषा यजध्वम् ।
स वो ददूर्मिमद्या सुपूतं तस्मै सोमं मधुमन्तं सुनोत ३

यो अनिध्मो दीदयदप्स्व१न्त—र्यं विप्रास ईळते अध्वरेषु ।
अपां नपान्मधुमतीरपो दा याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्याय ४

याभिः सोमो मोदते हर्षते च कल्याणीभिर्युवतिभिर्न मर्यः ।
ता अध्वर्यो अपो अच्छा परेहि यदासिञ्चा ओषधीभिः पुनीतात् ५ [२४]

[३०]

[२९५] (ब्रह्मणे गातुः मनसः प्रयुक्ति न अपः) स्तोत्रोंसे स्तवित, मनके समान शीघ्र गतिसे तेजस्वी उदक (देवत्रा अच्छ प्र एतु) देवोंके लिये अच्छी प्रकार प्रवाहित होवे (सुवृक्तिं महीं धासिं मित्रस्य वरुणस्य पृथुज्रयसे रीरधः) उत्कृष्ट अन्नका–सोमरूप–पाक मित्र, वरुण और महावेगशाली इन्द्रके लिये करो और उत्तम प्रकारसे स्तुति करो ॥ १ ॥

[२९६] हे (अध्वर्यवः) पुरोहितो ! (हविष्मन्तः हि भूत) तुम हविर्द्रव्यसे युक्त होवो; (उशन्तः उशतीः अपः अच्छ इत) स्वयं स्नेह-सुखकी इच्छा करते हुए सोमेच्छुक जलकी ओर तत्परताके साथ जाओ । (अरुणः सुपर्णः याः अवचष्टे) लोहितवर्ण उत्तम यह जो सोम नीचे गिरता है, हे (सुहस्ताः) सुन्दर हाथोंवालो ! (अद्य तं उर्मिं आ अस्यध्वम्) आज उसे तरङ्गके रूपमें यज्ञमें प्रक्षेप करो ॥ २ ॥

[२९७] हे (अध्वर्यवः) ऋत्विजो ! (अपः समुद्रं इत) तुम विपुल जलके समुद्रको प्राप्त करो; (अपां नपातं हविषा यजध्वम्) उस अपांनपात् देवताको हविर्द्रव्यसे पूजित करो । (सः अद्य वः सुपूतं उर्मिं ददत्) वह आज तुम्हें अत्यंत पवित्र, शुद्ध जल प्रदान करे; (तस्मै मधुमन्तं सोमं सुनोत) उसके लिये मधुर सोम समर्पण करो ॥ ३ ॥

[२९८] (यः अनिध्मः अप्सु अन्तः दीदयत्) जो बिना काठके अन्तरिक्षमें प्रज्वलित होता है, और (यं विप्रासः अध्वरेषु ईळते) जिसकी विद्वान् ब्राह्मण यज्ञमें स्तुति करते हैं; (अपां नपात् मधुमतीः अपः दा) वह तू हमें मधुर जल दे, (याभिः इन्द्रः वीर्याय वावृधे) कि जिससे इन्द्र तेजस्वी होकर अपना पराक्रम प्रकट करे ॥ ४ ॥

[२९९] (कल्याणीभिः युवतिभिः मर्यः न मोदते हर्षते च) सुंदरी युवतियोंके साथ जैसे युवा पुरुष आनन्दित और प्रसन्न होता है, (याभिः सोमः) वैसेही जिन जलोंमें मिलकर सोम हर्षित होता है; हे (अध्वर्यो) ऋत्विक् ! (ताः अपः अच्छ परा आ इहि) तू ऐसेही जलको दूरसे प्राप्त कर; (यत् आसिञ्चा ओषधीभिः पुनीतात्) जलसे सोमका सेवन करनेपर सोम शुद्ध एवं पवित्र होता है ॥ ५ ॥

एवेद्यूने युवतयो नमन्त यदीमुशन्नुशतीरेत्यच्छ ।
सं जानते मनसा सं चिकित्रे ऽध्वर्यवो धिषणापश्च देवीः ६
यो वो वृताभ्यो अकृणोदु लोकं यो वो मह्या अभिशस्तेरमुञ्चत ।
तस्मा इन्द्राय मधुमन्तमूर्मिं देवमादनं प्र हिणोतनापः ७
प्रास्मै हिनोत मधुमन्तमूर्मिं गर्भो यो वः सिन्धवो मध्व उत्सः ।
घृतपृष्ठमीड्यमध्वरेष्वा ऽऽपो रेवतीः शृणुता हवं मे ८
तं सिन्धवो मत्सरमिन्द्रपान मूर्मिं प्र हेत य उभे इयर्ति ।
मदच्युतमौशानं नभोजां परि त्रितन्तुं विचरन्तमुत्सम् ९
आवर्वृततीरध नु द्विधारा गोषुयुधो न नियवं चरन्तीः ।
ऋषे जनित्रीर्भुवनस्य पत्नी रपो वन्दस्व सवृधः सयोनीः १० [२५]

हिनोता नो अध्वरं देवयज्या हिनोत ब्रह्म सनये धनानाम् ।
ऋतस्य योगे वि ष्यध्वमूधः श्रुष्टीवरीर्भूतनास्मभ्यमापः ११

---

[३००] (युवतयः यूने नमन्त) युवतियां जैसे युवा पुरुषकी प्राप्तिके लिये झुकती हैं, (यत् उशन् उशतीः इम् अच्छ एति) और जैसे प्रेमके साथ युवा पुरुष प्रेमसे पूर्ण युवतियोंको प्राप्त करता है; वैसेही सोममें जल एकरूप हो जाता है। (अध्वर्यवः मनसा अपः देवीः च सं जानते धिषणां संचिकित्रे) अध्वर्यु और उनकी स्तुतियां जलस्वरूप देवताको मनसे उत्तम प्रकार जानती हैं और दोनों बुद्धिपूर्वक अपने कार्य करते हैं ॥ ६ ॥

[३०१] हे (आपः) जल ! (यः वृताभ्यः वः लोकं अकृणोत्) जो अवरोधित मार्गवाले तुम्हें निकलनेके लिये मार्ग देता है, (यः वः मह्याः अभिशस्तेः अमुञ्चत्) और जो तुम्हें दुष्कर विनाशसे मुक्त करता है, (तस्मै इन्द्राय देवमादनं मधुमन्तं उर्मिं प्र हिणोतन) उस इन्द्रके लिये देवोंके लिये मादक और मधुर सोमरस प्रदान करो ॥ ७ ॥

[३०२] हे (सिन्धवः) प्रवाहशील जल ! (वः यः मध्वः गर्भः उत्सः) तुम्हारा जो गर्भ स्वरूप मधुर रसयुक्त प्रवाह है (उत मधुमन्तं ऊर्मिं अस्मै प्र हिनोत) उस मधुर गुण युक्त उत्तम तरङ्गको इन्द्रके पास प्रेरित करो। हे (रेवतीः आपः) अनेक औषधीरूप धनशाली जल ! (अध्वरेषु घृतपृष्ठम् ईडयम्) यज्ञके लिये घृतदान और स्तोत्र पाठ किया जाता है; (मे हवं शृणुत) तुम मेरा यह वचन सुनो ॥ ८ ॥

[३०३] हे (सिन्धवः) प्रवाहशील जल ! (यः उभे इयर्ति तं मत्सरं इन्द्रपानं ऊर्मिं प्र हेत) जो दोनों लोकोंके लिये हितकर होता है, उस मादक और इन्द्रके पानके लिये योग्य प्रवाहको खूब बढाकर हमें दो। (मदच्युतं औशानं नभोजां त्रितन्तुं उत्सं परि विचन्तम्) वह मदकर, समृद्धिकी इच्छा करानेवाला, आकाशमें उत्पन्न, तीनों लोकोंके प्रेरक, सीधे मार्गपर चलनेवाला और सतत प्रवाहित होता है ॥ ९ ॥

[३०४] (आवर्वृततीः अध नु द्विधाराः गोषुयुधः न नियवं चरन्तीः) जैसे इन्द्र मेघोंमेंसे नाना धाराओंसे जल निर्माण करता है, वैसेही अनेक धाराओंसे वह सोमके साथ मिलता है; (भुवनस्य जनित्रीः पत्नीः) जल संसारकी माताके सदृश और रक्षिकाके समान है; (सवृधः सयोनीः) वह सोमके साथ समानरूप होता है, वह स्वकीय है; हे (ऋषे) ऋषि ! (अपः वन्दस्व) ऐसे जलकी स्तुति कर ॥ १० ॥

[३०५] हे (आपः) जल ! (देवयज्या नः अध्वरं आ हिनोत) देवोंका यजन-पूजन करनेके लिये हमारे यज्ञकार्यमें सहायता करो; (धनानां सनये ब्रह्म हिनोत) और धनप्राप्तिके लिये स्तोत्रोंका पाठ करो। (ऋतस्य योगे ऊधः वि स्यध्वम्) सृष्टि नियमके अनुसार जलयुक्त मेघोंके प्रतिबन्ध दूर करके पानी बरसाओ; (अस्मभ्यं श्रुष्टीवरीः भूतन) और हमारे लिये सुखदायक होओ ॥ ११ ॥

आपो॑ रेवतीः क्षय॑था हि वस्वः॒ क्रतुं॑ च भ॒द्रं बि॑भृ॒थामृतं॑ च ।
रा॒यश्च॒ स्थ स्व॑प॒त्यस्य॒ पत्नीः॒ सर॑स्वती तद्गृ॑ण॒ते वयो॑ धात ॥ १२
प्रति॒ यदापो॒ अदृ॑श्रमाय॒ती र्घृ॒तं पयां॑सि॒ बिभ्र॑तीर्मधू॑नि ।
अ॒ध्व॒र्युभि॒र्मन॑सा संविदा॒ना इन्द्रा॑य॒ सोमं॑ सुषु॒तं भर॑न्तीः ॥ १३
एमा अ॑ग्मन् रे॒वती॑र्जी॒वध॑न्या॒ अध्व॑र्यवः सा॒दय॑ता सखायः ।
नि ब॒र्हिषि॑ धत्तन सोम्यासो॒ ऽपां नप्त्रा॑ संविदा॒नास॑ एनाः ॥ १४
आग्म॒न्नाप॑ उश॒तीर्ब॒र्हिरेदं॒ न्य॑ध्व॒रे अ॑सदन् दे॒वय॑न्तीः ।
अध्व॑र्यवः सुनु॒तेन्द्रा॑य॒ सोम॒ मभू॑दु वः सु॒शका॑ देवय॒ज्या ॥ १५ [२६] (३०९)

(३१)

११ कवष ऐलूषः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ।

आ नो॑ दे॒वाना॒मुप॑ वेतु॒ शंसो॒ विश्वे॑भिस्तु॒रैरव॑से॒ यज॑त्रः ।
तेभि॑र्व॒यं सु॑ष॒खायो॑ भवेम॒ तर॑न्तो॒ विश्वा॑ दु॒रिता स्या॑म ॥ १

---

[३०६] हे (रेवतीः आपः) अनेक उत्कृष्ट समृद्धिकारक पदार्थोंसे युक्त जल ! (वस्वः हि क्षयथः) तुम धनोंके स्वामी हो; (भद्रं क्रतुं अमृतं च बिभृथ) तुम कल्याणप्रद कर्म और अन्नादिको धारण करो; तुम (स्वपत्यस्य रायः पत्नीः च स्थ) उत्तम सन्तान और धनके संरक्षक होओ। (सरस्वती गृणते तत् वयः धात्) सरस्वती देवी मुझ स्तोताको उत्तम धन दे ॥ १२ ॥

[३०७] हे (आपः) जल ! (यद् आयतीः घृतं पयांसि मधूनि बिभ्रतीः) जिस समय तुम घृत, दुग्ध और मधु अन्नोंको धारण करते हुए आते, (अध्वर्युभिः मनसा संविदाना) यज्ञके ऋत्विकोंके साथ अंतःकरणपूर्वक संभाषण करते, (इन्द्राय सुषुतं सोमं भरन्तीः) इन्द्रको उत्तम रीतिसे छाना हुआ सोम रस देते, तब मैं (प्रति अदृश्रम्) तुम्हें अच्छी प्रकार देखता हूं और तुम्हारी स्तुति करता हूं ॥ १३ ॥

[३०८] (इमाः रेवतीः जीवधन्याः आ अग्मन्) यह उत्तम धनोंसे समृद्ध और जीवोंके लिये हितप्रद जल आ गया है; हे (अध्वर्यवः सखायः) यज्ञकर्ता पुरोहित बन्धुओ ! (सादयता) जलकी स्थापना करो। (अपां नप्त्रा संविदानासः) जल वृष्टिके अधिष्ठाता देवताके उत्तम रीतिसे परिचित है; (सोम्यासः एनाः बर्हिषि नि धत्तन) इस सोमरसके योग्य जलको उत्तम कुशके आसनपर स्थापित करो ॥ १४ ॥

[३०९] (उशतीः आपः आ अग्मन्) यज्ञकी इच्छा करते हुए जल तत्परतासे आता है; (देवयन्तीः अध्वरे इदं बर्हिः नि असदन्) यह जल हमारे यज्ञमें देवोंके पास बैठता है। हे (अध्वर्यवः) अध्वर्यु गण हो ! (सोमं इन्द्राय सुनुत) इन्द्रके लिये सोम प्रस्तुत करो; (वः देवज्या सुशका अभूत उ) अब तुम्हारी देवोंकी पूजा-आराधना सहजहीसे सुसाध्य हुई है ॥ १५ ॥

[३१]

[३१०] (शंसः यजत्रः विश्वेभिः तुरैः देवानां नः अवसे उप आवेतु) हमारे लिये स्तुत्य, यज्ञार्ह इन्द्र सत्वर आनेवाले देवोंके साथ हमारी रक्षाके लिये आवे। (तेभिः वयं सु-सखायः भवेम) उनसेही हम प्रेमपूर्ण मित्रत्व करके रहेंगे और (विश्वा दुरिता तरन्तः स्याम) सब संकटोंके पार हो जायेंगे ॥ १ ॥

परिं चिन्मर्तो द्रविणं ममन्यादृतस्यं पथा नमसा विवासेत ।
उत स्वेन क्रतुना सं वदेत श्रेयांसं दक्षं मनसा जगृभ्यात २
अधायि धीतिरसंसृग्रमंशास्तीर्थे न दस्ममुप यन्त्यूमाः ।
अभ्यानश्म सुवितस्य शूषं नवेदसो अमृतानामभूम ३
नित्यश्चाकन्यात् स्वपतिर्दमूना यस्मा उ देवः सविता जजान ।
भगो वा गोभिरर्यमेमनज्यात् सो अस्मै चारुश्छदयदुत स्यात् ४
इयं सा भूया उषसामिव क्षा यद्ध क्षुमन्तः शवसा समायन् ।
अस्य स्तुतिं जरितुर्भिक्षमाणा आ नः शग्मास उप यन्तु वाजाः ५ [२७]

अस्येदेषा सुमतिः पप्रथाना ऽभवत् पूर्व्या भूमना गौः ।
अस्य सनीळा असुरस्य योनौ समान आ भरणे बिभ्रमाणाः ६
किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
संतस्थाने अजरे इतऊती अहानि पूर्वीरुषसो जरन्त ७

---

[३११] (मर्तः परि चित् द्रविणं ममन्यात्) मनुष्य चारों ओरसे सब प्रकारके धनकी इच्छा करे, (ऋतस्य पथा नमसा विवासेत्) सत्यके मार्गसे अंतःकरणपूर्वक पुण्य कार्यमें प्रवृत्त हो, (उत स्वेन क्रतुना संवदेत) और उत्तम ज्ञान युक्त बुद्धिसे देवोंकी उपासना करे और (श्रेयांसं दक्षं मनसा जगृभ्यात्) उनके कल्याण कारक व्यापक स्वरूपको मनसे प्राप्त करे ॥ २ ॥

[३१२] (धीतिः अधायि) हमने देवोंकी पूजा–आराधना–यज्ञकार्य–किया है; (तीर्थे न अंशाः असस्रग्रम्) सारे यज्ञीय द्रव्य देवोंके पास जलोंके समान जाते हैं; (ऊमाः दस्मं उप यन्ति) वे संरक्षक और शत्रु-नाशक हैं। (सुवितस्य शूषं अभि आनश्म) हम सहजही प्राप्त होने योग्य सुखको सब ओरसे प्राप्त करें और (अमृतानां नवेदसः अभूम) हम देवोंके स्वरूपको जाननेवाले ज्ञाता हों ॥ ३ ॥

[३१३] (देवः सविता यस्मै आ जजान) जगत्के निर्माता सविता देवने जिसे उत्पन्न किया, (स्वपतिः दमूनाः नित्यः चाकन्यात्) धनोंका स्वामी और दानशील प्रजापति उसे शुभ फल दे। (भगः वा अर्यमा ईम् गोभिः अनज्यात्) भग और अर्यमा इसके प्रति स्तुतियोंसे प्रसन्न होकर स्नेहयुक्त हों; (उत अस्मै चारुः छदयत् स्यात्) और हमारे लिये अच्छी प्रकार सब अनुकूल करें ॥ ४ ॥

[३१४] (यत् ह शवसा क्षुमन्तः समायन्) जब स्तुति–स्तोत्र पानेवाले देवता लोग बल युक्त होकर प्राप्त हों, तब (उषसां क्षाः इव इयं सा भूयाः) प्रातःकालके समान यह पृथिवी हमारे लिये प्रकाशित हुई ! (अस्य जरितुः स्तुतिं भिक्षमणाः शग्मासः वाजाः नः आ उप यन्तु) इस हमारी स्तुतिकी इच्छा करनेवाले हमें चाहते रहें, और सुख प्रद अन्नादि पदार्थ हमें प्राप्त हो ॥ ५ ॥

[३१५] (अस्य इत् एषा गौः सुमतिः भूमना पूर्व्या पप्रथाना अभवत्) इस समय हमारी अत्यंत प्राचीन, व्यापक और देवोंके पास जानेवाली उत्कृष्ट स्तुति स्फूर्तियुक्त होकर बढती है; (अस्य असुरस्य सनीडाः समाने भरणे योनौ बिभ्रमाणाः आ) इसलिये इस पोषक यज्ञमें समस्त देवता समान स्थानमें विद्यमान रहकर शुभ फल देनेके लिये आवें ॥ ६ ॥

[३१६] (किं स्विद् वनं) वह कौनसा वन और (कः उ सः वृक्षः आस) वह कौनसा वृक्ष है, (यतः द्यावापृथिवी निः ततक्षुः) जिस उपादान कारणसे द्युलोक और भूलोकका निर्माण किया गया है ? ये (संतस्थाने अजरे इतः ऊती) एक भावमें स्थित और नाश न होनेवाली तथा देवोंसे संरक्षित हैं; (अहानि पूर्वीः उषसः जरन्त) दिन और रात्रि उनको जानती हैं ॥ ७ ॥

नैतावदेना परो अन्यदस्त्युक्षा स द्यावापृथिवी बिभर्ति ।
त्वचं पवित्रं कृणुत स्वधावान् यदीं सूर्यं न हरितो वहन्ति ८
स्तेगो न क्षामत्येति पृथ्वीं मिहं न वातो वि ह वाति भूम ।
मित्रो यत्र वरुणो अज्यमानो ऽग्निर्वने न व्यसृष्ट शोकम् ९
स्तरीर्यत् सूत सद्यो अज्यमाना व्यथिरव्यथीः कृणुत स्वगोपा ।
पुत्रो यत् पूर्वः पित्रोर्जनिष्ट शम्यां गौर्जगार यद्ध पृच्छान् १०
उत कण्वं नृषदः पुत्रमाहु रुत श्यावो धनमादत्त वाजी ।
प्र कृष्णाय रुशदपिन्वतोध ऋतमत्र नकिरस्मा अपीपेत् ११ [२८] (३२०)

(३२)

१ कवष ऐलूषः । इन्द्रः । जगती, ६-९ त्रिष्टुप् ।

प्र सु ग्मन्ता धियसानस्य सक्षणि वरेभिर्वराँ अभि षु प्रसीदतः ।
अस्माकमिन्द्र उभयं जुजोषति यत् सोम्यस्यान्धसो बुबोधति १ (३२१)

---

[३१७] (एना परः एतावत् अन्यत् न अस्ति) द्यावा पृथिवीको देवोंने निर्माण किया, इतनाही उनका सामर्थ्य नहीं है; इससे भी अधिक है। (उक्षा सः द्यावापृथिवी बिभर्ति) वह जगत्को निर्माण करनेवाला और द्यावा-पृथिवीको धारण करनेवाला है । वही (स्वधावान्) अन्नादि पोषक पदार्थोंका स्वामी है; (यद् हरितः सूर्यं ईं न वहन्ति) जिस समय सूर्यके घोडे वहन नहीं करते थे, (पवित्रं त्वचं कृणुत) उसी समय बलवान् हिरण्यगर्भने तेजस्वी शरीर ग्रहण किया ॥ ८ ॥

[३१८] (स्तेगः पृथ्वीं क्षां न अत्येति) किरणधारी सूर्य पृथिवीका अतिक्रमण नहीं करता; (वातः भूम मिहं न विवाति ह) वायु भी पृथिवीको अति वृष्टिसे नहीं बहाती है । (मित्रः वरुणः यत्र वने अज्यमानः अग्निः वने शोकं व्यसृष्ट न) मित्र और वरुण, वनके बीच उत्पन्न अग्निके समान, प्रकट होकर, चारों ओर प्रकाशको प्रकट करते हैं ॥ ९ ॥

[३१९] (यत् अज्यमाना स्तरीः सद्यः सूत) जैसे वृषभ द्वारा निषिक्त हुई गाय बछडा उत्पन्न करती है, उस समय वह स्वयं (व्यथिः स्वगोपा अव्यथीः कृणुत) क्लेश अनुभव करती हुई अपनी प्रजाको सुखी करती है; (पूर्वः पुत्रः यत् पित्रोः जनिष्ट) प्राचीन समयमें दोनों अरणियोंसे अग्निने जन्म-ग्रहण किया था, (यत् ह पृच्छान्) और जिस समय ऋत्विज उसकी खोज करते हैं, तब (गौः शम्यां जगार) पृथिवी शमी वृक्षसे उसे बाहर करती है । [अरणियोंके पुत्र अग्नि है, अरणि स्वरूप माता-पितासे उसने जन्म लिया था; और अरणि स्वरूप गाय शमी वृक्षपर जन्म ग्रहण करती है] ॥ १० ॥

[३२०] (उत कण्वं नृषदः पुत्रं आहुः) और कण्व ऋषिको नृषदका पुत्र कहा गया है; (उत श्यावः वाजी धनं आदत्त) और श्यामवर्ण हवि अर्पण करनेवाले कण्वने अग्निसे धन ग्रहण किया था । (कृष्णाय रुशत् उधः ऋतं अपिन्वत) श्यामवर्ण कण्वके लिये तेजस्वी अग्निने अपने उज्ज्वल रूपको प्रकट किया था; (अत्र अस्मै नकिः अपीपेत्) इस लोकमें अग्निके व्यतिरिक्त किसी भी देवने कण्वको यज्ञका फल नहीं दिया था ॥ ११ ॥

[३२]

[३२१] (धियसानस्य सक्षणि ग्मन्ता प्र सु) इन्द्र भक्तकी सेवा ग्रहण करनेके लिये यज्ञकी ओर अपने अश्वोंको प्रेरित करता है; (प्रसीदतः वरेभिः वरान् अभि सु) श्रेष्ठ कर्मोंसे प्रसन्न हुए यजमानकी उत्कृष्ट हवि और स्तुति स्वीकारनेके लिये वह आवे । और (इन्द्रः अस्माकं उभयं जुजोषति) आकर वह हमारी स्तुति और हवि दोनों-का स्वीकार करे; (सोमस्य अन्धसः बुबोधति) वह सोमरूपी अन्नका आस्वादन करे ॥ १ ॥

वीन्द्र यासि दिव्यानि रोचना वि पार्थिवानि रजसा पुरुष्टुत ।
ये त्वा वहन्ति मुहुरध्वराँ उप ते सु वन्वन्तु वग्वनाँ अराधसः २
तदिन्मे छन्त्सद्वपुषो वपुष्टरं पुत्रो यज्जानं पित्रोरधीयति ।
जाया पतिं वहति वग्नुना सुमत् पुंस इद्भद्रो वहतुः परिष्कृतः ३
तदित् सधस्थमभि चारु दीधय गावो यच्छासन् वहतुं न धेनवः ।
माता यन्मन्तुर्यूथस्य पूर्व्या ऽभि वाणस्य सप्तधातुरिज्जनः ४
प्र वोऽच्छा रिरिचे देवयुष्पद―मेको रुद्रेभिर्याति तुर्वणिः ।
जरा वा येष्वमृतेषु दावने परि व ऊमेभ्यः सिञ्चता मधु ५ [२९]

निधीयमानमपगूळ्हमप्सु प्र मे देवानां व्रतपा उवाच ।
इन्द्रो विद्वाँ अनु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम् ६

---

[३२२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (दिव्यानि रोचना वि यासि) स्वर्गीय और देदीप्यमान स्थानोंमें विचरण करता है; हे (पुरुष्टुत) बहुतोंके द्वारा स्तुत इन्द्र ! (पार्थिवानि रजसा वि) तू पृथिवीपरके उत्कृष्ट स्थानोंमें रहता है ! (ये मुहुः अध्वरान् त्वा उप वहन्ति) जो तेरे घोडे बार बार हमारे यज्ञमें तुझे वहन कर ले आते हैं, (ते अराधसः वग्वनान् सु वन्वन्तु) वे घोडे स्तुति करनेवाले परंतु धनरहित हमें अच्छी प्रकारसे धनसम्पन्न करें ॥ २ ॥

[३२३] (वपुषः वपुष्टरं मे तत् छन्त्सत्) इन्द्र अत्यंत उत्कृष्ट यज्ञकर्मकी मुझसे इच्छा करे । (यत् पुत्रः पित्रोः जानं अधीयति) जैसे पुत्र मातापितासे जन्म ग्रहण करके उनसे धन प्राप्त करता है; (जाया पतिं सुमत् वग्नुना वहति) स्त्री पतिको कल्याणकारी मीठे–उत्तम वचनोंसे अपना ही बनाती है; (भद्रः परिष्कृतः पुंसः इत् वहतु) उत्तम सुसंस्कृत पुरुष स्त्रीको पत्नी बनाकर उसके पास जाता है, वैसे ही वह इन्द्र शुद्ध किया हुआ सोमरस पाकर हमारा ही होवे ॥ ३ ॥

[३२४ (यत् धेनवः वहतुं न) जैसे गौएं गोशालाकी इच्छा करती हैं, और जहां (गावः शासन्) स्तुति–स्तोत्रोंका पाठ हमारे यज्ञमें इन्द्रके आगमनकी इच्छा करके हो रहा है, (तत् इत् चारु सधस्थम् अभि दीधय) वैसे ही यज्ञ स्थानको हे इन्द्र ! अपनी उज्ज्वल कान्तिसे प्रकाशित कर ! (यत् पूर्व्या मन्तुः माता यूथस्य जनः इत् सप्तधातुः वाणस्य अभि) स्तोत्रोंकी प्राचीन और पूजनीय माता गायत्री है, और यह मनुष्य तेरी स्तुति सात छंदोंमें करता है ॥ ४ ॥

[३२५] हे यजमानों ! (देवयुः वः अच्छ पदं प्ररिरिचे) देवोंकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाला स्तोता तुम्हें प्राप्त होकर श्रेष्ठ पदको प्राप्त करता है; (एकः तुर्वणिः रुद्रेभिः याति) वह इन्द्र अकेलेही रुद्रोंके साथ शीघ्रही यज्ञमें जाता है । (वा येषु अमृतेषु जरा दावने) और स्तुति ही अमर देवोंसे धन प्रदान कार्यके लिये समर्थ है; (वः ऊमेभ्यः मधु परि आ सिञ्चत) तुम रक्षणकर्ता देवोंके लिये मधुर सोम पानीमें मिलाकर प्रदान करो ॥ ५ ॥

[३२६] (अप्सु अपगूळ्हं निधीयमानं देवानां व्रतपाः मे प्र उवाच) जलोंमें अग्नि गूढ रूपसे स्थापित है, यह देवोंके पुण्यकर्मोंके रक्षण कर्ता इन्द्रने मुझे कहा; हे (अग्ने) अग्ने ! (विद्वान् इन्द्रः हि त्वा अनुचचक्ष) ज्ञानी इन्द्रही तेरा साक्षात् अनुभव करता है; (तेन अनुशिष्टः अहं आगाम) उससे मार्गदर्शन पाकर मैं तेरे पास आया हूं ॥ ६ ॥

अक्षेत्रवित् क्षेत्रविदं ह्यप्राट् स प्रैति क्षेत्रविदानुशिष्टः ।
एतद्वै भद्रमनुशासनस्योत स्रुतिं विन्दत्यञ्जसीनाम् ७
अद्येदु प्राणीदममन्निमाहा ऽपीवृतो अधयन्मातुरूधः ।
एमेनमाप जरिमा युवानमहेळन् वसुः सुमना बभूव ८
एतानि भद्रा कलश क्रियाम कुरुश्रवण ददतो मघानि ।
दान इद्वो मघवानः सो अस्त्वयं च सोमो हृदि यं बिभर्मि ९ [३०] (३३०)

— ❧ —

[अष्टमोऽध्यायः ॥८॥ व० १-२९] (३३)

९ कवष ऐलूषः । १ विश्वे देवाः, २-३ इन्द्रः, ४-५ कुरुश्रवणस्त्रासदस्यवः, ६-९ उपमश्रवा मैत्रातिथिः।
१ त्रिष्टुप्; प्रगाथः= (२ बृहती; ३ सतोबृहती), ४-९ गायत्री।

प्र मा युयुज्रे प्रयुजो जनानां वहामि स्म पूषणमन्तरेण ।
विश्वे देवासो अध मामरक्षन् दुःशासुरागादिति घोष आसीत् १

---

[३२७] (अक्षेत्रवित् हि क्षेत्रविदं अप्राट्) जो किसी मार्गको नहीं जानता, अवश्य वह मार्गको जाननेवाले व्यक्तिसे पूछता है; (सः क्षेत्रविदा अनुशिष्टः प्र एति) वह ज्ञाता व्यक्तिसे मार्ग जानकर अभीष्ट मार्गको प्राप्त करता है; (अनुशासनस्य एतत् वै भद्रम्) ज्ञानीके उपदेशका यही कल्याणप्रद फल है कि (अञ्जसीनां स्रुतिं विन्दति) अज्ञभी ज्ञानयुक्त मार्गको प्राप्त करता है ॥ ७ ॥

[३२८] (अद्य इत् उ प्राणीत्) आजही यह अग्नि उत्पन्न हुआ है; (इमा अहा अममन्) तबसे इसने यज्ञके दिनोंको मान्यता दी है; (अपीवृतः मातुः ऊधः अधयन्) और तेजस्वी होकर उसने माताका स्तन्य पान भी किया है; (ईम् एनं युवानं जरिमा आप) अनन्तर इस युवा तथा देवोंको हवि पहुंचानेवाले अग्निको स्तुति प्राप्त हुई; (अहेळन् वसुः सुमनाः बभूव) अनावृत होकर सबको धनोंके दान करनेवाला यह अग्नि शोभन मनसे सम्पन्न हुआ है ॥ ८ ॥

[३२९] हे (कलश) सर्व कला-ज्ञान सम्पन्न (कुरुश्रवण) स्तुतियोंके श्रोता इन्द्र ! (मघानि ददतः) उत्तम धनोंको देनेवाले तेरी (एतानि भद्रा क्रियाम) हम ये स्तुतियां करते हैं; हे (मघवानः) स्तोतृरूप धनवानो, (सः वः दानः इत् अस्तु) वह तुम्हारे लिये दाता हो और (अयं च सोमः यं हृदि बिभर्मि) जिसको मैं अपने चित्तमें धारण करता हूं, वह सोम भी ॥ ९ ॥

[३३]

[३३०] (जनानां प्रयुजः मा प्र युयुज्रे) सब लोगोंको सन्मार्गमें योजित करनेवाले देवोंने मुझे कुरुश्रवणके पास की; (अन्तरेण पूषणं वहामि स्म) मार्गमें मैंने पूषणका वहन किया। (अध विश्वे देवासः मां अरक्षन्) अनन्तर विश्वेदेवोंने मुझ कवषकी रक्षा की; (दुःशासुः आगात् इति घोषः आसीत्) किसीसे भी दुर्धर्ष ऋषि आ रहे हैं, ऐसी आवाज मार्गमें सुनाई दी ॥ १ ॥

सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः ।
नि बाधते अमतिर्नग्नता जसु — र्वेर्न वेवीयते मतिः २
मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो ।
सकृत् सु नो मघवन्निन्द्र मृळया — ऽधा पितेव नो भव ३
कुरुश्रवणमावृणि राजानं त्रासदस्यवम् । मंहिष्ठं वाघतामृषिः ४
यस्य मा हरितो रथे तिस्रो वहन्ति साधुया । स्तवै सहस्रदक्षिणे ५ [१] (३३४)

यस्य प्रस्वादसो गिर उपमश्रवसः पितुः । क्षेत्रं न रण्वमूचुषे ६
अधि पुत्रोपमश्रवो नपान्मित्रातिथेरिहि । पितुष्टे अस्मि वन्दिता ७
यदीशीयामृताना — मुत वा मर्त्यानाम् । जीवेदिन्मघवा मम ८
न देवानामति व्रतं शतात्मा चन जीवति । तथा युजा वि वावृते ९ [२] (३३८)

---

[३३१] (मा पर्शवः सपत्नीः इव अभितः सं तपन्ति) मुझे सपत्नियोंके समान मेरी पंजरियां [पार्श्वास्थियां] दुःख देती हैं; (अमतिः नग्नता जसुः नि बाधते) मुझे दारिद्र्यके कारण दुर्मति, वस्त्रोंके अभावसे नग्नता और भूखके कारण उत्पन्न भय मुझे दुःख देते हैं; (वेः न मतिः वेवीयते) जैसे व्याधके भयसे पक्षी कंपित होते हैं, वैसे ही मेरी बुद्धि चञ्चल हो रही है ॥ २ ॥

[३३२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (मूषः शिश्ना न) जैसे चूहा रससे भीगे सूतोंको खा जाता है, वैसेही हे (शतक्रतो) अनन्त कर्मकर्ता ! (ते स्तोतारं आध्यः मा व्यदन्ति) तेरा भक्त होनेपरभी मेरी मानसिक चिन्ताएं मुझे खा रही है । हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (नः सुकृत् सु मृळय) हमें एक बार अभीष्ट प्रदान करके अत्यंत सुखी कर; (अध पिता इव नः भव) और तू हमारे पिताके समान हमारा रक्षण कर्ता बन ॥ ३ ॥

[३३३] (ऋषिः त्रासदस्यवं मंहिष्ठं राजानं कुरुश्रवणं वाघतां आवृणि) मैं कवष ऋषि, त्रसदस्यु पुत्र, श्रेष्ठ दाता राजा कुरुश्रवणके पास ऋत्विजोंको देनेके लिये द्रव्यकी याचना करने गया था ॥ ४ ॥

[३३४] (यस्य रथे तिस्रः हरितः साधुया मा वहन्ति) जिसके रथपर मेरे चढनेपर तीन घोडे मुझे उत्तम रीतिसे वहन करते थे; उस (सहस्र दक्षिणे स्तवै) कुरुश्रवण राजाकी सहस्र संख्यामें दक्षिणा प्रदान करनेवाले इस यज्ञमें स्तुति करता हूं ॥ ५ ॥

[३३५] हे राजन् ! (यस्य पितुः उपमश्रवसः गिरः प्रस्वादसः) तुम्हारे पिता उपमश्रवसके वचन अत्यंत मधुर और प्रसन्नता कारक होते थे; (रण्वं क्षेत्रं न ऊचुषे) दानके लिये नियुक्त रमणीय खेतोंके समान थे ॥ ६ ॥

[३३६] हे (मित्रातिथेः नपात् पुत्रः उपमश्रवः) मित्रातिथिके पुत्र, पुत्र उपमश्रव ! (अधि इहि) मेरे पास आवो; (ते पितुः वन्दिता अस्मि) तेरे पिताका मैं स्तोता हूं (यह जानकर शोक मत कर) ॥ ७ ॥

[३३७] (यद् अमृतानां उत वा मर्त्यानां ईशीय) यदि मैं अमर देवों और मरणधर्मा मनुष्योंका स्वामी होता, तो (मम मघवा जीवेत् इत्) धनवान् मित्रातिथि अवश्य जीवित रहते ॥ ८ ॥

[३३८] (देवानां व्रतं अति) देवोंके किये व्रत-नियमोंका उल्लंघन करके कोई (शतात्मा चन न जीवति) सौ बरसतक भी नहीं जीवित रह सकता; (तथा युजा विवावृते) उसी प्रकार हमारे मित्रोंका भी वियोग हो जाता है ॥ ९ ॥

(३४)

१४ कवष ऐलूषः अक्षो मौजवान् वा । १, ७, ९, १२ अक्षाः, १३ कृषिः; २-६, ८, १०, ११, १४ अक्ष-कितव-निन्दा । त्रिष्टुप्, ७ जगती ।

प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति प्रवातेजा इरिणे वर्वृतानाः ।
सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो विभीदको जागृविर्मह्यमच्छान् १

न मा मिमेथ न जिहीळ एषा शिवा सखिभ्य उत मह्यमासीत् ।
अक्षस्याहमेकपरस्य हेतो रनुव्रतामप जायामरोधम् २

द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि न नाथितो विन्दते मर्डितारम् ।
अश्वस्येव जरतो वस्न्यस्य नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम् ३

अन्ये जायां परि मृशन्त्यस्य यस्यागृधद्वेदने वाज्य१क्षः ।
पिता माता भ्रातर एनमाहु र्न जानीमो नयता बद्धमेतम् ४

यदादीध्ये न दविषाण्येभिः परायद्भ्योऽव हीये सखिभ्यः ।
न्युप्ताश्च बभ्रवो वाचमक्रतँ एमीदेषां निष्कृतं जारिणीव ५ [३]

---

[३४]

[३३९] (बृहतः प्रवातेजाः इरिणे वर्वृतानाः प्रावेपाः मा मादयन्ति) बडे बडे, नीचेके भूमिमें पैदा हुए इधर-उधर चलनेवाले और कम्पनशील अक्ष- पासे मुझे आनन्दित करते हैं; (मौजवतस्य सोमस्य इव भक्षः) मूजवान् पर्वतपर उत्पन्न सोम लताके मधुर रसपानसे जैसे प्रसन्नता होती है, वैसेही (विभीदकः जागृविः मह्यं अच्छान्) बहेडेके वृक्षके काठसे बना जीता जागता अक्ष मुझे बहकाता है ॥ १ ॥

[३४०] (एषा मा न मिमेथ) यह मेरी पत्नी कभी मेरा अनादर नहीं करती, (न जिहीळे) न कभी मुझसे लज्जित होती; (सखिभ्यः उत मह्यं शिवा आसीत्) मेरे मित्रों और मेरे लिये कल्याणकारिणी है; तो भी (एकपरस्य अक्षस्य हेतोः अहं अनुव्रतां जायां अप अरोधम्) केवल पासे- अक्षके कारण मैंने अनुरागिणी पत्नीको छोड दिया ॥ २ ॥

[३४१] (श्वश्रूः द्वेष्टि) जो जुआरी जुआ खेलता है, उसकी सास भी द्वेष करती है; (जाया अप रुणद्धि) और उसकी स्त्री भी उसे छोड देती है; (नाथितः मर्डितारं न विन्दते) और वह याचित होकर किसीसे कुछ मांगता है, तो उसे कोई धन नहीं देता । इसी प्रकार (जरतः अश्वस्य वस्नस्य इव) बूढे घोडेके समान अमूल्य होकर (अहं कितवस्य भोगं न विन्दामि) मैं भी जुआरीके समान सुख और आदर नहीं पाता हूं ॥ ३ ॥

[३४२] (यस्य वेदने वाजी अक्षः अगृधत्) जिस जुआरीके धनपर बलवान् जुएकी लोभदृष्टि हो जाय, तो (अस्य जायां अन्ये परि मृशन्ति) उसके स्त्रीको भी दूसरे लोग हाथसे पकडते हैं। (पिता माता भ्रातरः एनं आहुः) उसके पिता, माता और भाई भी कहते हैं कि (न जानीमः) हम इसे नहीं जानते; (एतं बद्धं नयत) इसे बांधकर ले जाओ ॥ ४ ॥

[३४३] (यद् आदीध्ये एभिः न दविषाणि) जब मैं मनसे निश्चय करता हूं कि अब इन पासों से नहीं खेलूंगा, (परायद्भ्यः सखिभ्यः अव हीये) क्योंकि मेरे जुआरी मित्र भी मेरा धिःक्कार करते हैं; (बभ्रवः न्युप्ताः च वाचं अक्रतम्) परंतु वे लाल-पीले रंगके पासे फेंके जाकर मानो मुझे बुलाते हैं, और मुझसे नहीं ठहरा जाता; (एषां निष्कृतं जारिणी इव एमि इत्) मैं भी इनके स्थान पर व्यभिचारिणी स्त्रीके समान चला जाता हूं ॥ ५ ॥

+

सभामेति कितवः पृच्छमानो जेष्यामीति तन्वा३ शूशुजानः ।
अक्षासो अस्य वि तिरन्ति कामं प्रतिदीव्ने दधत आ कृतानि ६

अक्षास इदङ्कुशिनो नितोदिनो निकृत्वानस्तपनास्तापयिष्णवः ।
कुमारदेष्णा जयतः पुनर्हणो मध्वा संपृक्ताः कितवस्य बर्हणा ७

त्रिपञ्चाशः क्रीळति व्रात एषां देव इव सविता सत्यधर्मा ।
उग्रस्य चिन्मन्यवे ना नमन्ते राजा चिदेभ्यो नम इत् कृणोति ८

नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरन्त्यहस्तासो हस्तवन्तं सहन्ते ।
दिव्या अङ्गारा इरिणे न्युप्ताः शीताः सन्तो हृदयं निर्दहन्ति ९

जाया तप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य चरतः क्व स्वित् ।
ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानो ऽन्येषामस्तमुप नक्तमेति १० [४] (३४८)

---

[३४४] (तन्वा शूशुजानः कितवः जेष्यामि इति पृच्छमानः सभां एति) शरीरसे दीप्यमान जुआरी किस धनिक व्यक्ति पर में विजय प्राप्त करूं ऐसे मनसे पूछता हुआ द्यूतसभामें आता है; वहां (प्रातिदीव्ने कृतानि आ दधतः अस्य अक्षासः कामं वि तिरन्ति) विपक्षी जुआरीको पराजित करनेके लिये अक्षोंको विजयके लिये रखे हुए जुआरीके वे पासे धन-कामनाको बढाते हैं ॥ ६ ॥

[३४५] (अक्षासः इत् अंकुशिनः नितोदिनः निकृत्वानः तपनाः तापयिष्णवः) ये पासेही अंकुशके समान चुभते हैं, बाणके सदृश छेदते हैं, छुरेके समान काटते हैं, पराजित होनेपर संतप्त करते हैं, सर्वस्व हरण होनेपर कुटुंबीजनोंको दुःख देनेवाले हैं। (जयतः कितवस्य कुमारदेष्णाः) विजयी जुआरीके लिये पासे पुत्रजन्मके समान आनन्ददायक होते हैं; और (मध्वा संपृक्ताः बर्हणा पुनर्हणः) मधुतासे युक्त और मीठे वचनोंसे बात करनेवाले होते हैं; परंतु हारे हुए जुआरीको तो नाशही करता है ॥ ७ ॥

[३४६] (एषां त्रिपञ्चाशः व्रातः) इन अक्षोंका तिरेपनका संघ (सत्यधर्मा सविता देवः इव) सत्य धर्मका स्वरूप सूर्यदेवके समान (क्रीळन्ति) विहार करता है; (उग्रस्य चित् मन्यवे) अत्यंत उग्र मनुष्यके क्रोधके आगे (न नमन्ते) नहीं झुकते, उसके वशमें नहीं आते; (राजा चित् एभ्यः नमः इत् कृणोति) राजा भी पासोंको खेलते समय नमस्कारही करता है ॥ ८ ॥

[३४७] (नीचाः वर्तन्ते उपरि स्फुरन्ति) ये अक्ष-पासे कभी नीचे उतरते हैं और कभी ऊपर उठते हैं। (अहस्तासः हस्तवन्तं सहन्ते) ये पासे यदि हाथोंसे रहित हैं, तोभी हाथोंवाले जुआरीओंको पराजित करते हैं; (दिव्याः इरिणे अङ्गाराः न्युप्ताः) ये पासे दिव्य है; तो भी प्रज्वलित अंगारोंके समान सन्तापदायक बनते हैं; (शीताः सन्तः हृदयं निर्दहन्ति) वे छूनेमें ठंडे होनेपर भी जुआरीओंके अंतःकरणको पराजित होनेके भयके कारण जलाते हैं ॥ ९ ॥

[३४८] (कितवस्य हीना जाया तप्यते) जुआरीकी त्यागी हुई पत्नी दुःखित होती है; (क्व स्वित् चरतः पुत्रस्य माता) और कहीं कहीं विचरते पुत्रकी माता भी व्याकुलतामें दुःखी रहती है; (ऋणावा धनं इच्छमानः) ऋणग्रस्त जुआरी धनकी इच्छा करता हुआ, (बिभ्यद् नक्तम् अन्येषां अस्तं उप एति) भयभीत होकर रात्रिके समय दूसरोंके घर चोरी करनेके लिये जाता है ॥ १० ॥

स्त्रियं दृष्ट्वाय कितवं तताप॒ऽन्येषां जा॒यां सुकृतं च॒ योनिम्
पूर्वा॒ह्णे अश्वान् युयुजे हि ब॒भ्रून् त्सो अ॒ग्नेरन्ते॑ वृष॒लः प॑पाद ११
यो वः सेना॒नीर्म॑ह॒तो ग॒णस्य॒ रा॒जा व्रात॑स्य प्र॒थ॒मो ब॒भूव॑ ।
तस्मैं कृणोमि॒ न धना॑ रुणध्मि॒ द॒शाहं प्राची॒स्तदृ॒तं व॑दामि १२
अ॒क्षैर्मा दी॑व्यः कृषिमित् कृ॑षस्व वि॒त्ते र॑मस्व ब॒हु मन्य॑मानः ।
तत्र॒ गाव॑ः कितव॒ तत्र॑ जा॒या तन्मे॒ वि च॑ष्टे सवि॒तायम॒र्यः १३
मित्रं॑ कृणु॒ध्वं॒ खलु॑ मृ॒ळता॑ नो॒ मा नो॑ घो॒रेण॑ चरता॒भि धृ॒ष्णु ।
नि वो॒ नु मन्यु॒र्वि॑शता॒मरा॑ति॒रन्यो ब॑भ्रूणां प्रसि॑तौ॒ न्व॑स्तु १४ [५] (३५२)

(३५)

१४ लुशो धानाकः । विश्वे देवाः । जगती. १३-१४ त्रिष्टुप् ।

अबु॑ध्रमु त्य इन्द्र॑वन्तो अ॒ग्नयो॒ ज्योति॒र्भर॑न्त उ॒षसो॒ व्यु॑ष्टिषु ।
म॒ही द्यावा॑पृथि॒वी चे॑तता॒मपो॒ऽद्या दे॒वाना॒मव॒ आ वृ॑णीमहे १

---

[३४९] (कितवं अन्येषां जायां स्त्रियं सुकृतं योनिं च दृष्ट्वाय तताप) जुआरी, दूसरोंकी स्त्रियोंका सुख और अपने अपने सुंदर घरमें सुस्थित देखकर, अपनी स्त्रीकी दशा देखकर दुःखित होता है। (पूर्वाह्णे बभ्रून् अश्वान् युयुजे) फिर प्रातःकाल होतेही गेरू वर्णके पासोंसे यह खेलना शुरू करता है; (सो वृषलः अग्नेः अन्ते पपाद) वह मूढ मनुष्य रातमें आगके समीप पहुंचता है ॥ ११ ॥

[३५०] हे अक्षो ! (वः महतः गणस्य यः सेनानीः) तुम्हारे बडे संघका जो प्रमुख नायक है और (व्रातस्य प्रथमः राजा बभूव) जो सर्वश्रेष्ठ राजा है, (तस्मै अहं दश प्राचीः कृणोमि) मैं उसको अपनी दसों अंगुलियां जोडकर नमस्कार करता हूं; (न धना रुणध्मि) उसके लिये मैं धन भी नहीं चाहता हूं, (तत् ऋतं वदामि) मैं सच्ची बात कहता हूं ॥ १२ ॥

[३५१] हे (कितव) जुआरी ! (अक्षैः मा दीव्यः) कभी भी जुआ नहीं खेलना; (कृषिं इत् कृषस्व) तू परिश्रमसे खेती कर; (बहु मन्यमानः वित्ते रमस्व) और इसीको बहुत मानता हुआ प्राप्त धनमें आनन्दित रह; (तत्र गावः तत्र जाया) इसीसे गौएं और स्त्री प्राप्त करोगे; (अयं अर्यः सविता मे तत् विचष्टे) साक्षात् सूर्य देवने मुझसे ऐसा कहा है ॥ १३ ॥

[३५२] हे अक्षो ! (मित्रं कृणुध्वम्) हमें अपना मित्र बताओ; (नः मृळत खलु) हमारा कल्याण करो; (नः धृष्णु घोरेण मा अभिचरत) हमे दुःखद दुर्धर्ष क्रोधसे आक्रमण मत करो; (वः मन्युः अरातिः नि विशताम्) तुम्हारे क्रोधमें हमारा शत्रु ही गिरे; (अन्यः बभ्रूणां प्रसितौ नु अस्तु) दूसरे हमारे शत्रु बभ्रूवर्णके पासोंके बन्धनमें फंसे रहें ॥ १४ ॥

[३५]

[३५३] (त्ये इन्द्रवन्तः अग्नयः उषसः व्युष्टिषु) वे इन्द्र सम्बन्धी आहवनीय अग्नि प्रभातके समय अन्धकार को विनष्ट करते हैं, (ज्योतिः भरन्तः अबुध्रं उ) और तेजस्वी होकर प्रज्वलित होते हैं- जाग जाते हैं; (मही द्यावापृथिवी अपः चेतताम्) महान् द्युलोक और भूलोक अपने कार्यमें रत हों; (अद्य देवानां अवः आ वृणीमहे) आज हमें इन्द्रादि देवोंकी रक्षा प्राप्त होवे ॥ १ ॥

दिवस्पृथिव्योरव आ वृणीमहे मातॄन् त्सिन्धून् पर्वताञ्छर्यणावतः ।
अनागास्त्वं सूर्यमुषासमीमहे भद्रं सोमः सुवानो अद्या कृणोतु नः २
द्यावा नो अद्य पृथिवी अनागसो मही त्रायेतां सुविताय मातरा ।
उषा उच्छन्त्यप बाधतामघं स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ३
इयं न उस्रा प्रथमा सुदेव्यं रेवत् सनिभ्यो रेवती व्युच्छतु ।
आरे मन्युं दुर्विदत्रस्य धीमहि स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ४
प्र याः सिस्रते सूर्यस्य रश्मिभि- र्ज्योतिर्भरन्तीरुषसो व्युष्टिषु ।
भद्रा नो अद्य श्रवसे व्युच्छत स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ५ [६]

अनमीवा उषस आ चरन्तु न उदग्नयो जिहतां ज्योतिषा बृहत् ।
आयुक्षातामश्विना तूतुजिं रथं स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ६
श्रेष्ठं नो अद्य सवितर्वरेण्यं भागमा सुव स हि रत्नधा असि ।
रायो जनित्रीं धिषणामुप ब्रुवे स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ७

---

[३५४] (दिवः पृथिव्योः अवः आ वृणीमहे) हम द्यावा-पृथिवी हमारी रक्षा करें, ऐसी प्रार्थना करते हैं; (मातॄन् सिन्धून् शर्यणावतः पर्वतान्) उसी तरह लोकोंके निर्माते समुद्र, शर्यणावत् सरोवर, पर्वत, (सूर्यं उषासं अनागस्त्वं ईमहे) सूर्य और उषासे हमारी विनम्र प्रार्थना है कि ये सब हमें पापरहित करें; (अद्य सुवानः सोमः नः भद्रं कृणोतु) आज यह सोम जो हमने छानकर उत्तम रीतिसे बनाया है, वह भी हमारा कल्याण करे ॥ २ ॥

[३५५] (मही मातरा द्यावा पृथिवी अद्य अनागस नः सुविताय त्रायेताम्) अत्यंत पूज्य माता-पिताके समान द्यावा-पृथिवी पापरहित हमें आज उत्तम सुख प्राप्तिके लिये हमारी रक्षा करें; (उच्छन्ती उषाः अघं अप बाधताम्) अंधःकारका विनाश करनेवाली उषा हमारे पाप नष्ट करे; (समिधानं अग्निं स्वस्ति ईमहे) प्रज्वलित अग्निके पास हम कल्याणकी याचना करते हैं ॥ ३ ॥

[३५६] (रेवती प्रथमा इयं उस्रा सुदेव्यं रेवत् सनिभ्यः नः व्युच्छतु) धनवती, मुख्या और पापोंको दूर हटानेवाली यह उषा, सौभाग्य युक्त धन हम भजनशील लोगोंको देवे- इष्ट फल देनेवाली होवे; (दुर्विदत्रस्य मन्युं आरे धीमहि) दुःखी दुर्धन लोगोंके क्रोधसे हमें दूर रखे; (समिधानं अग्निं स्वस्ति ईमहे) प्रज्वलित अग्निसे हम कल्याणकी याचना करते हैं ॥ ४ ॥

[३५७] (याः उषसः सूर्यस्य रश्मिभिः प्र सिस्रते) जो उषाएं सूर्य-किरणोंके साथ मिलकर जाती हैं, (व्युष्टिषु ज्योतिः भरन्तीः) और विशेष रूपसे प्रकाशको धारण करके अन्धकारका नाश करती हैं, वे (अद्य नः श्रवसे भद्राः व्युच्छत) आज हमें अन्न देकर, कल्याण करनेवाली होकर अंधःकार नष्ट करें; (समिधानं अग्निं स्वस्ति ईमहे) प्रज्वलित अग्निसे हम कल्याणकी याचना करते हैं ॥ ५ ॥

[३५८] (अनमीवाः उषसः नः आचरन्तु) हमें आरोग्यप्रद उषःकाल प्राप्त होवें; बृहत् ज्योतिषा अग्नयः उत् जिहताम्) महान् प्रकाशसे युक्त अग्नि भी प्रकट होवें; (अश्विना तूतुजिं रथं आयुक्षाताम्) अश्विनी भी हमारे पास आनेके लिये शीघ्र गतिसे जानेमें समर्थ रथमें अपने घोडोंको जोतें; (समिधानं अग्निं स्वस्ति ईमहे) तेजस्वी अग्निसे हम सुखकी प्रार्थना करते हैं ॥ ६ ॥

[३५९] हे (सवितः) सवितृ देव ! (अद्य नः वरेण्यं श्रेष्ठं भागं आ सुव) तू आज हमें वरणीय श्रेष्ठ तरहका धनादि वितरित कर; (हि सः रत्नधाः असि) कारण कि तू उत्तम धनादिकोंका दाता है; (रायः जनित्रीं धिषणां उप ब्रुवे) में धनके पैदा करनेवाली स्तुतियोंका पठन करता हूं; (समिधानं अग्निं स्वस्ति ईमहे) तेजस्वी अग्निसे हम सुखकी याचना करते हैं ॥ ७ ॥

पिपर्तु मा तदृतस्य प्रवाचनं देवानां यन्मनुष्या३ अमन्महि ।
विश्वा इदुस्राः स्पळुदेति सूर्यः स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ८ (३६०)

अद्वेषो अद्य बर्हिषः स्तरीमणि ग्राव्णां योगे मन्मनः साध ईमहे ।
आदित्यानां शर्मणि स्था भुरण्यसि स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ९

आ नो बर्हिः सधमादे बृहद्दिवि देवाँ ईळे सादया सप्त होतॄन् ।
इन्द्रं मित्रं वरुणं सातये भगं स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे १० [७]

त आदित्या आ गता सर्वतातये वृधे नो यज्ञमवता सजोषसः ।
बृहस्पतिं पूषणमश्विना भगं स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ११

तन्नो देवा यच्छत सुप्रवाचनं छर्दिरादित्याः सुभरं नृपाय्यम् ।
पश्वे तोकाय तनयाय जीवसे स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे १२

---

[३६०] (यत् ऋतस्य देवानां तत् प्रवाचनं मनुष्याः अमन्महि मा पिपर्तु) जब कि यज्ञादिमें देवोंके लिये की जानेवाली स्तुतियां हम जानते हैं, तो वही मेरी रक्षा करें; (सूर्यः विश्वाः उस्राः स्पट् उत् एति) सूर्य सब उषाओंको प्रकाशित करता हुआ उगता है; (समिधानं अग्निं स्वस्ति ईमहे) प्रज्वलित अग्निसे हम सुखकी प्रार्थना करते हैं ॥ ८ ॥

[३६१] (अद्य बर्हिषः स्तरीमणि मन्मनः साधे ग्राव्णां योगे अद्वेषः ईमहे) आज यज्ञके लिये कुश बिछाया है; अभिष्ट फल प्राप्तिके लिये सोम निचोडनेके लिये दो पत्थर संयोजित किये गये हैं; तब द्वेषरहित प्रेममूर्ति आदित्योंसे हम अभीष्ट की याचना करते हैं; हे यजमान ! तू (भुरण्यसि आदित्यानां शर्मणि स्थाः) कर्तव्य कर्म-अनुष्ठान करता है, इसलिये आदित्य तुम्हें सुखी करें; (समिधानं अग्निं स्वस्ति ईमहे) तेजस्वी अग्निसे हम अपने कल्याणकी प्रार्थना करते हैं ॥ ९ ॥

[३६२] (नः बृहत् दिवि सधमादे) हे अग्नि ! हमारे अत्यंत महान् दिव्य यज्ञानुष्ठानमें देवताएं एक साथ आमोद करते हैं; (बर्हिः सप्त होतॄन् इन्द्रं मित्रं वरुणं भगं देवान् आ सादय) इस वृद्धिकारक यज्ञमें सात होताओं, इन्द्र, मित्र, वरुण, भग और दूसरे देवोंको भी लाकर स्थापित कर; (सातये ईळे) यज्ञमें स्थापित सब देवताओंकी मैं धनादिके लिये स्तुति करता हूं; (समिधानं अग्निं स्वस्ति ईमहे) तेजस्वी अग्निसे मैं कल्याणकी प्रार्थना करता हूं ॥१०॥

[३६३] हे (आदित्याः) तेजस्वी आदित्यो ! (ते सर्वतातये आ गत) जिन्हें हमने आवाहित किया है वे आपलोग सबके कल्याणके लिये यज्ञमें आओ; (सजोषसः नः वृधे यज्ञं अवत) आप सब मिलकर हमारी श्रीवृद्धिके लिये हमारे यज्ञकी रक्षा करो; हविष्यान्नका प्रेम पूर्वक स्वीकार करो; (बृहस्पतिं पूषणं अश्विना भगं समिधानं अग्निं स्वस्ति ईमहे) बृहस्पति, पूषन्, अश्विद्वय, भग और प्रज्वलित अग्निसे हम कल्याणकी प्रार्थना करते हैं ॥ ११ ॥

[३६४] हे (आदित्याः देवाः) आदित्य देवो ! (सुप्रवाचनं सुभरं नृपाय्यं तत् छर्दिः नः यच्छत) तुम अत्यन्त प्रशस्त, समृद्ध, मनुष्योंके रक्षणमें समर्थ, जिसकी हम अभिलाषा करते हैं, वैसे गृह हमें दो । (पश्वे तोकाय तनयाय जीवसे स्वस्ति समिधानं अग्निं ईमहे) हम अपने पशु, पुत्र, पौत्र इनके जीवन और कल्याणके लिये प्रज्वलित अग्निसे याचना करते हैं ॥ १२ ॥

विश्वे अद्य मरुतो विश्व ऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः ।
विश्वे नो देवा अवसा गमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे १३
यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं त्रायध्वे यं पिपृथात्यंहः ।
यो वो गोपीथे न भयस्य वेद ते स्याम देववीतये तुरासः १४ [८] (३६६)

(३६)

१४ लुशो धानाकः । विश्वे देवाः । जगती, १३-१४ त्रिष्टुप् ।

उषासानक्ता बृहती सुपेशसा द्यावाक्षामा वरुणो मित्रो अर्यमा ।
इन्द्रं हुवे मरुतः पर्वताँ अप आदित्यान् द्यावापृथिवी अपः स्वः १
द्यौश्च नः पृथिवी च प्रचेतस ऋतावरी रक्षतामंहसो रिषः ।
मा दुर्विदत्रा निर्ऋतिर्न ईशत तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे २
विश्वस्मान्नो अदितिः पात्वंहसो माता मित्रस्य वरुणस्य रेवतः ।
स्वर्वज्ज्योतिरवृकं नशीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ३

---

[३६५] (अद्य विश्वे मरुतः विश्वे ऊती भवन्तु) आज सब मरुत् देवता और सब रुद्रादि देव हमारी रक्षा करें; (विश्वे अग्नयः समिद्धाः) समस्त अग्नि प्रज्वलित हों; (विश्वेदेवाः नः अवसा आ गमन्तु) सब इन्द्रादि देव हमारी रक्षाके लिये पधारें; (अस्मे विश्वं दक्षिणं वाजः अस्तु) हमें सब प्रकारका धन-ऐश्वर्य और अन्न मिले ॥१३॥

[३६६] हे (तुरासः देवासः) अभीष्ट देनेके लिये त्वरा करनेवाले देव ! (वाजसातौ यं अवथ) संग्राममें जिसकी रक्षा करते हो, (यं त्रायध्वे यं अंहः अति पिपृथ) जिसको शत्रुसे बचाते हो, और जिसको पाप मुक्त करके अभीष्ट संपन्न करते हो; (यः वः गोपीथे भयस्य न वेद) और जो आपकी रक्षामें भय नहीं जानता ऐसे (देववीतये स्याम) वे हम आपके लिये ही हैं ॥ १४ ॥

[३६]

[३६७] (बृहती सुपेशसा उषासानक्ता द्यावाक्षामा) महान् और सुरूपवान् प्रातःकाल, रात्रि, द्यावा-पृथिवी, (वरुणः मित्रः अर्यमा इन्द्रं मरुतः पर्वतान् अपः) वरुण, मित्र, अर्यमा, इन्द्र, मरुद्गण, पर्वत, उदक, (आदित्यान् द्यावापृथिवी अपः स्वः हुवे) आदित्य, द्यावापृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग-आदिको मैं आदरसे बुलाता हूं ॥ १ ॥

[३६८] (प्रचेतसा ऋतावरी द्यौः च पृथिवी च नः रिषः अंहसः रक्षताम्) बुद्धिमान्, सत्यके अधिष्ठाता द्यावा और पृथिवी हमारी हिंसक पापसे रक्षा करें । (दुर्विदत्रा निर्ऋतिः नः मा ईशत) दुष्ट बुद्धिवाली मृत्युदेवता हमारे ऊपर अधिकार न करे; (तत् अद्य देवानां अवः वृणीमहे) इसीलिये आज हम देवोंसे असाधारण रक्षाकी याचना करते हैं ॥ २ ॥

[३६९] (रेवतः मित्रस्य वरुणस्य माता अदितिः नः विश्वस्मात् अंहसः पातु) धनवान् सामर्थ्यवान् मित्र और वरुणकी माता अदिति देवी हमें समस्त प्रकारके पापोंसे बचावे; (अवृकं स्वर्वत् ज्योतिः नशीमहि) हम अविनाशी संरक्षक तेज प्राप्त करें; (तत् देवानां अवः अद्य वृणीमहे) इसीलिये हम देवोंसे असाधारण रक्षाकी प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥

ग्रावा वदन्नप रक्षांसि सेधतु दुष्ष्वप्न्यं निर्ऋतिं विश्वमत्रिणम् ।
आदित्यं शर्म मरुतामशीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ४

एन्द्रो बर्हिः सीदतु पिन्वतामिळा बृहस्पतिः सामभिर्ऋक्वो अर्चतु ।
सुप्रकेतं जीवसे मन्म धीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ५ [१]

दिविस्पृशं यज्ञमस्माकमश्विना जीराध्वरं कृणुतं सुम्नमिष्टये ।
प्राचीनरश्मिमाहुतं घृतेन तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ६ (३७२)

उप ह्वये सुहवं मारुतं गणं पावकमृष्वं सख्याय शंभुवम् ।
रायस्पोषं सौश्रवसाय धीमहि तद् देवानामवो अद्या वृणीमहे ७
अपां पेरुं जीवधन्यं भरामहे देवाव्यं सुहवमध्वरश्रियम् ।
सुरश्मिं सोममिन्द्रियं यमीमहि तद् देवानामवो अद्या वृणीमहे ८

---

[३७०] (ग्रावा वदन् रक्षांसि अप सेधतु) सोम निचोडनेके लिये उपयोगी पत्थर, निचोडनेके समय शब्द करते हुए यज्ञमें विघ्न करनेवाले राक्षसोंको दूर करे; (दुष्ष्वप्न्यं निर्ऋतिं विश्वं अत्रिणं अप सेधतु) दुःखदायक स्वप्न, मृत्युदेवी और सब पिशाचादि शत्रुओंको दूर करे; (आदित्यं मरुतां शर्म अशीमहि) इस प्रकार निर्विघ्न यज्ञमें हम आदित्य और मरुतोंसे सुख प्राप्त करें; (देवानां तत् अवः अद्य वृणीमहे) हम देवोंसे वह असाधारण रक्षाकी आज प्रार्थना करते हैं ॥ ४ ॥

[३७१] (इन्द्रः बर्हिः आ सीदतु) इन्द्र यज्ञमें आकर आसनपर बैठे; (इळा पिन्वताम्) वाणी और पृथिवी हमें उत्तम फल देनेवाली हो; (सामभिः ऋक्वः बृहस्पतिः अर्चतु) सामोंसे स्तुत्य बृहस्पति अर्चना करे; (जीवसे मन्म सुप्रकेतं धीमहि) हम जीवनके लिये उत्तम अभिलषणीय धनको प्राप्त करें; (देवानां तत् अवः वृणीमहे) हम देवोंसे उस रक्षाकी इच्छा करते हैं ॥ ५ ॥

[३७२] हे (अश्विना) अश्विनी देवो ! (अस्माकं यज्ञं दिविस्पृशं जीराध्वरं इष्टये सुम्नं कृणुतम्) हमारा यज्ञ अत्यंत प्रज्वलित अग्निसे सम्पन्न, अहिंसक तथा विघ्नरहित होकर हमारे इष्ट लाभ के लिये सुखप्रद होवे, ऐसे करो; (घृतेन आहुतं प्राचीनरश्मिं कृणुतम्) घृतसे आहुत अग्निको देवोंके प्रति प्रेरित करो; (तत् देवानां अवः अद्य वृणीमहे) आज हम देवोंसे रक्षाकी प्रार्थना करते हैं ॥ ६ ॥

[३७३] (सुहवं पावकं ऋष्वं शंभुवं मारुतं गणं उपह्वये) मैं यज्ञशील, पवित्र कारक, दर्शनीय और सुखके दाता मरुद् गणोंकी स्तुति करता हूं; (रायः पोषं सख्याय उपह्वये) धनोंके दाता उनको मित्रताके लिये बुलाता हूं; (सौश्रवसाय धीमहि) सुख देनेवाले, यशस्वी, अन्नके दाता उन्हें हम धारण करते हैं; (देवानां तद् अवः अद्य वृणीमहे) हम प्रज्वलित अग्निसे उस रक्षाकी याचना करते हैं ॥ ७ ॥

[३७४] (अपां पेरुं) जलोंके पालक (जीवधन्यं) प्राणियोंके आनन्द-सन्तोष दाता (देवाव्यं सुहवं) देवोंको तृप्त करनेवाले, स्तुत्य-सुनामवाले (अध्वरं श्रियं सुरश्मिं) यज्ञकी शोभा तथा उत्तम किरणोंसे युक्त (सोमं भरामहे) सोमको हम धारण करते हैं; (इन्द्रियं यमीमहि) उससे हम बलकी प्रार्थना करते हैं; और (देवानां तत् अवः अद्य वृणीमहे) आज हम देवोंसे सुरक्षाकी याचना करते हैं ॥ ८ ॥

सनेम तत् सुसनिता सनित्वभि- र्वयं जीवा जीवपुत्रा अनागसः
ब्रह्मद्विषो विष्वगेनो भरेरत तद् देवानामवो अद्या वृणीमहे ९
ये स्था मनोर्यज्ञियास्ते शृणोतन यद्वो देवा ईमहे तद्ददातन ।
जैत्रं क्रतुं रयिमद्वीरवद्यश- स्तद् देवानामवो अद्या वृणीमहे १० [१०]

महदद्य महतामा वृणीमहे ऽवो देवानां बृहतामनर्वणाम् ।
यथा वसु वीरजातं नशामहै तद् देवानामवो अद्या वृणीमहे ११
महो अग्नेः समिधानस्य शर्म- ण्यनागा मित्रे वरुणे स्वस्तये ।
श्रेष्ठे स्याम सवितुः सवीमनि तद् देवानामवो अद्या वृणीमहे १२
ये सवितुः सत्यसवस्य विश्वे मित्रस्य व्रते वरुणस्य देवाः ।
ते सौभगं वीरवद्गोमदप्नो दधातन द्रविणं चित्रमस्मे १३
सविता पश्चातात् सविता पुरस्तात् सवितोत्तरात्तात् सविताधरात्तात् ।
सविता नः सुवतु सर्वतातिं सविता नो रासतां दीर्घमायुः १४ [११] (३८०)

---

[३७५] (जीवपुत्राः अनागसः जीवाः वयं सनित्वभिः सुसनिता तत् सनेम) जीवित पुत्रोंसे युक्त, पापरहित, स्वयं जीवित रहते हुए हम उपभोग वस्तुओंसे और उत्कृष्ट उपासना द्वारा परमेश्वरकी सेवा आदि करें; (ब्रह्मद्विषः एनः विश्वक् भरेरत) और परमात्माके द्वेषी लोग सब प्रकारके पाप आदिको धारण करें; (देवानां तत् अवः अद्य वृणीमहे) हम देवोंसे आज उत्तम रक्षाकी प्रार्थना करते हैं ॥ ९ ॥

[३७६] हे (देवाः) देवो ! (ये मनोः यज्ञियाः स्थ) जो तुम मनुष्योंसे यज्ञ पानेके योग्य हो; (ते शृणोतन) वे तुम हमारी स्तुतिका श्रवण करो; (वः यत् ईमहे) हम तुमसे जिस अभीष्टकी याचना करते हैं, (तत् जैत्रं क्रतुं रयिमत् वीरवत् यशः ददातन) वह सब जयशील ज्ञान, बल और धनों और पुत्रोंसे युक्त यश प्रदान करो । (अद्य देवानां अवः वृणीमहे) इसलिये आज हम देवोंसे रक्षणकी याचना करते हैं ॥ १० ॥

[३७७] (अद्य महतां बृहतां अनर्वणां देवानां महत् अवः आ वृणीमहे) आज हम श्रेष्ठ, व्यापक और पराङ्मुख न होनेवाले इन्द्रादि देवोंसे महत्त्वपूर्ण रक्षाकी प्रार्थना करते हैं; (यथा वसु वीरजातं नशामहै) जिससे हम धन और वीर संततिको प्राप्त करें; (अद्य देवानां तत् अवः वृणीमहे) आज हम देवोंसे उस उत्तम रक्षाकी इच्छा करते हैं ॥ ११ ॥

[३७८] (समिधानस्य महः अग्नेः शर्मणि स्याम) दैदीप्यमान महान् अग्निके सुखमें हम रहें; (अनागाः मित्रे वरुणे स्वस्तये) हम अपराधरहित होकर रहें; और कल्याणकी प्राप्तिके लिये मित्र और वरुणके अधीन रहें; (सवितुः श्रेष्ठे सवीमनि स्याम) सवितृ देवके सर्वोत्कृष्ट शासनमें हम रहें । (अद्य देवानां तत् अवः वृणीमहे) इसलिये आज हम देवोंसे उत्तम रक्षाकी याचना करते हैं ॥ १२ ॥

[३७९] (ये विश्वे देवाः सत्यसवस्य सवितुः मित्रस्य वरुणस्य व्रते) जो देव सत्यके प्रभु सविता, मित्र और वरुणके व्रतके कर्मोंमें तत्पर हैं; (ते वीरवत् गोमत् सौभगं अप्नः चित्रं द्रविणं अस्मे दधातन) वे वीर पुत्रोंसे युक्त, पशुयुक्त ऐश्वर्य, ज्ञान, पूजनीय धन और कर्म हमें प्रदान करें ॥ १३ ॥

[३८०] (सविता पश्चातात् सविता पुरस्तात् सविता उत्तरात्तात् सविता अधरात्तात्) सविता देव जो पश्चिम, पूर्व, उत्तर और दक्षिणमें है, वह (सविता नः सर्वतातिं सुवतु) सविता देव हमें सब प्रकारका धन ऐश्वर्य प्रदान करे; (सविता नः दीर्घं आयुः रासताम्) वह सविता देव हमें दीर्घ आयु प्रदान करे ॥ १४ ॥

(३७)

१२ सौर्योऽभितपाः । सूर्यः । जगती, १० त्रिष्टुप् ।

नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृतं सपर्यत ।
दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत १
सा मा सत्योक्तिः परि पातु विश्वतो द्यावा च यत्र ततनन्नहानि च ।
विश्वमन्यन्नि विशते यदेजति विश्वाहापो विश्वाहोदेति सूर्यः २
न ते अदेवः प्रदिवो नि वासते यदेतशेभिः पतरै रथर्यसि ।
प्राचीनमन्यदनु वर्तते रज उदन्येन ज्योतिषा यासि सूर्य ३
येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमो जगच्च विश्वमुदियर्षि भानुना ।
तेनास्मद्विश्वामनिरामनाहुति मपामीवामप दुष्ष्वप्न्यं सुव ४
विश्वस्य हि प्रेषितो रक्षसि व्रत महेळयन्नुच्चरसि स्वधा अनु ।
यदद्य त्वा सूर्योपब्रवामहै तं नो देवा अनु मंसीरत क्रतुम् ५ (३८५)

---

[३७]

[३८१] हे पुरोहितो ! (मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे) तुम मित्र और वरुणको देखनेवाले, (महः देवाय) महान्, तेजस्वी, (दूरेदृशे देवजाताय केतवे) दूरसे भी सारी वस्तुओंको देखनेवाले, देवोंके वंशमें उत्पन्न, विश्वके प्रकाशक, (दिवः पुत्राय) और आकाशके पुत्र स्वरूप, (सूर्याय नमः) सूर्यको नमस्कार करो, (ऋतं सपर्यत) उसके सत्य कर्मज्ञानका आदर करो– उसकी पूजा करो और (शंसत) उसकी स्तुति भी करो ॥ १ ॥

[३८२] (यत्र द्यावा च अहानि च ततनन्) जिसका अवलम्बन करके जहां द्यावा–पृथिवी और दिन–रात उत्पन्न होते हैं, (तत्र विश्वं अन्यत् नि विशते) वहां सब जगत् और प्राणिवृन्द विश्राम लेते हैं– जिसके आश्रय रहते हैं; (यत् एजति) जो चल रहा है, (विश्वाहा आपः विश्वाहा सूर्यः उदेति) जिसके प्रभावसे सदैव जल प्रवाहित होता है और सूर्य उदित होता है; (सा सत्योक्तिः मा विश्वतः परि पातु) वह सत्य वचन मेरी सब प्रकारसे रक्षा करे ॥ २ ॥

[३८३] हे (सूर्य) सूर्य ! (यत् पतरैः एतशेभिः रथर्यसि) जिस समय तू वेगयुक्त घोडोंसे युक्त रथको जोतनेकी इच्छा करता है, (प्राचीनं रजः अनु वर्तते) उस समय वह तुम्हारा प्राचीन दूसरा तेज जो जलमें रहता है, वह प्रकट होता है और (अन्येन ज्योतिषा यासि) उस दूसरे तेजसे तू उगता है । (ते प्रदिवः अदेवः न निवासते) तब तेरे पास कोई भी पुरातन अंश– असुर वा राक्षस नहीं रहता है ॥ ३ ॥

[३८४] हे (सूर्य) सूर्य ! तू (येन ज्योतिषा तमः बाधसे) जिस तेजसे अन्धकारको दूर करता है, (येन भानुना विश्वं जगत् उदियर्षि) जिस तेजसे– प्रकाश किरणोंसे समस्त संसारको प्रकाशित करता है, (तेन अस्मत् विश्वाम्) उस तेजसे तू हमसे सारा (अनिराम् अनाहुतिम् अमीवाम्) अन्न जलके अभाव, अधार्मिकता और रोग व्याधि, (दुःस्वप्न्यं अप सुव) दुःस्वप्न आदिके दुःखोंको दूर कर ॥ ४ ॥

[३८५] हे सूर्य ! (प्रेषितः) तू प्रेरित होकर (अहेळयन् विश्वस्य हि व्रतं रक्षसि) शांत स्वभावसे युक्त रहकर सबके व्रत, कर्म तथा जगत्के नियमकी रक्षा करता है– यज्ञविध्वंसक राक्षसोंसे रक्षण करता है; (स्वधाः अनु उच्चरसि) और प्रातःकालके होमोंके हवियोंके पास जाता है । हे (सूर्य) सूर्य देव ! (अद्य यत् त्वा उपब्रवामहै) आज जिस पवित्र नामसे तुम्हारी उपासना–स्तुति करते हैं, तब (नः तं क्रतुम् देवाः अनु मंसीरत) हमारे उस यज्ञ कर्मको इन्द्रादि देव अनुमति देवें ॥ ५ ॥

तं नो द्यावापृथिवी तन्न आप इन्द्रः शृण्वन्तु मरुतो हवं वचः ।
मा शूने भूम सूर्यस्य संदृशि भद्रं जीवन्तो जरणामशीमहि ६ [१२]

विश्वाहा त्वा सुमनसः सुचक्षसः प्रजावन्तो अनमीवा अनागसः ।
उद्यन्तं त्वा मित्रमहो दिवेदिवे ज्योग्जीवाः प्रति पश्येम सूर्य ७
महि ज्योतिर्बिभ्रतं त्वा विचक्षण भास्वन्तं चक्षुषेचक्षुषे मयः ।
आरोहन्तं बृहतः पाजसस्परि वयं जीवाः प्रति पश्येम सूर्य ८
यस्य ते विश्वा भुवनानि केतुना प्र चेरते नि च विशन्ते अक्तुभिः ।
अनागास्त्वेन हरिकेश सूर्याऽह्नाह्ना नो वस्यसावस्यसोदिहि ९
शं नो भव चक्षसा शं नो अह्ना शं भानुना शं हिमा शं घृणेन ।
यथा शमध्वञ्छमसद् दुरोणे तत् सूर्य द्रविणं धेहि चित्रम् १०
अस्माकं देवा उभयाय जन्मने शर्म यच्छत द्विपदे चतुष्पदे ।
अदत् पिबदूर्जयमानमाशितं तदस्मे शं योररपो दधातन ११

---

[३८६] (द्यावापृथिवी आपः इन्द्रः मरुतः नः तं नः वचः शृण्वन्तु) द्यावापृथिवी, जल, इन्द्र और मरुत् हमारा वह आव्हान और वह स्तुतिरूप वचन सुनें । हम (सूर्यस्य संदृशि शूने मा भूम) सूर्यकी कृपा दृष्टि रहते, उसका दर्शन करते हुए शून्य, दुःखभागी न रहें; (जीवन्तः भद्रं जरणां अशीमहि) हम दीर्घजीवी होकर कल्याण मय सुखद जीवन प्राप्तकर वृद्धत्वको प्राप्त हों ॥ ६ ॥

[३८७] हे (सूर्य) सूर्य देव । हम (विश्वहा) सर्वदा (सुमनसः सुचक्षसः प्रजावन्तः अनमीवाः अनागसः) प्रीतियुक्त शुभ मनसम्पन्न, उत्तम दर्शनवाले, सुसन्तानोंसे युक्त, निरोग और निरपराध हों । हे (मित्रमहः) मित्रोंसे पूज्य ! (दिवे दिवे उद्यन्तं त्वा ज्योक् जीवाः प्रति पश्येम) दिन प्रतिदिन उगते हुए तेरा निरंतर हम जीवित रहते हुए दर्शन करें ॥ ७ ॥

[३८८] हे (विचक्षण सूर्य) सर्व दर्शक सूर्य ! (महि ज्योतिः बिभ्रतं) अत्यंत महान् तेज धारण करने वाले, (भास्वन्तं चक्षुषेचक्षुषे मयः) दीप्तिमान्, सबकी आंखोंको सुखकर, (बृहतः पाजसः परि) महान् बलवान् समुद्रके जलके ऊपर (आरोहन्तं त्वा जीवाः वयं प्रति पश्येम) चढे हुए तेरा हम सब प्रतिदिन दर्शन करें ॥ ८ ॥

[३८९] हे (हरिकेश) हरित-पिङ्गल वर्ण केशवाले सूर्य ! (यस्य ते केतुना विश्वा भुवनानि) जिस तेरे ज्ञान-प्रकाशसे सब जगत् (प्र ईरते च) जाग्रत होकर चलन करता है; और (अक्तुभिः नि विशन्ते च) प्रतिरात्र विश्राम लेता है, अच्छी तरह सोता है । वह तू (नः अनागास्त्वेन वस्यसा-वस्यसा) हमें पाप आदिसे रहित करके अत्यन्त श्रेयस्कर (अह्ना-अह्ना उत् इहि) वसुमत होकर प्रतिदिन उगता रह ॥ ९ ॥

[३९०] हे (सूर्य) सूर्य ! तू (चक्षसा नः शं भव) तेजसे हमें सुखकर हो; (अह्ना शं नः) तू दिनसे हमें शान्तिदायक हो; (भानुना शं हिमा शं घृणेन शं) तू किरणोंसे, शीतलतासे और उष्णतासे हमें सुखदायक हो ! (यथानः अध्वन् शं दुरोणे शं असत्) जिससे तू हमें जीवन मार्गमें और गृहमें भी शान्तिप्रद हो; (तत् चित्रं द्रविणं धेहि) हमें वह श्रेष्ठतम धन दो ॥ १० ॥

[३९१] हे (देवाः) देवो ! (अस्माकं द्विपदे चतुष्पदे उभयाय) तुम हमारे द्विपाद मनुष्यों और चतुष्पाद जानवरों-दोनोंको (जन्मने शर्म यच्छत) जन्मवालोंको सुख प्रदान करो । (अदत् पिबत् ऊर्जयमानम्) वैसेही खाया, पिया हुआ पदार्थ बलदायक हो; (आशितं अस्मै अरपः शं योः दधातन) यह हितकारक हो; हमें निष्पाप रोगनाशक वस्तु प्रदान करो ॥ ११ ॥

यद्वो देवाश्चकृम जिह्वया गुरु मनसो वा प्रयुती देवहेळनम् ।
अरावा यो नो अभि दुच्छुनायते तस्मिन् तदेनो वसवो नि धेतन १२ [१३] (३९२)

(३८)

१ मुष्कवानिन्द्रः । इन्द्रः । जगती ।

अस्मिन् न इन्द्र पृत्सुतौ यशस्वति शिमीवति क्रन्दसि प्राव सातये ।
यत्र गोषाता धृषितेषु खादिषु विष्वक् पतन्ति दिद्यवो नृषाह्ये १
स नः क्षुमन्तं सदने व्यूर्णुहि गोअर्णसं रयिमिन्द्र श्रवाय्यम् ।
स्याम ते जयतः शक्र मेदिनो यथा वयमुश्मसि तद्वसो कृधि २
यो नो दास आर्यो वा पुरुष्टुता ऽदेव इन्द्र युधये चिकेतति ।
अस्माभिष्टे सुषहाः सन्तु शत्रव स्त्वया वयं तान् वनुयाम संगमे ३
यो दभ्रेभिर्हव्यो यश्च भूरिभि र्यो अभीके वरिवोविन्नृषाह्ये ।
तं विखादे सस्निमद्य श्रुतं नर मर्वाञ्चमिन्द्रमवसे करामहे ४

---

[३९२] हे (वसवः देवाः) धनसम्पन्न देवो ! (वः यत् जिह्वया मनसः प्रयुती) तुम्हारे प्रति हम जो वाणी द्वारा, मनके प्रयोगसे अपराध करते हैं, (गुरु देवहळनं चकृम) महान् देवोंके क्रोधजनक कर्म करते हैं, (यः अरावा नः अभि दुच्छुनायते) जो दुष्ट शत्रु हम पर सब प्रकारसे कष्ट देना चाहता है, (तस्मिन् तत् एनः नि धेतन) उसके कारण उस पर वह पाप न्यस्त करो ॥ १२ ॥

[३८]

[३९३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (यशस्वति शिमीवति अस्मिन् पृत्सुतौ) कीर्तिमान् और प्रहार पर प्रहार चलनेवाले इस युद्धमें (क्रन्दसि सातये प्राव) उद्घोष करता है; तब तू धनादिके लिये हमारी रक्षा करता है; (यत्र गोषाता नृषाह्ये खादिषु) वैसेही जिस शत्रुओंसे जीती हुई गायोंको सुरक्षित करनेके निमित्त, वीर पुरुषोंके विजयी युद्धमें परस्पर खा जानेवाले योद्धाओंमें (धृषितेषु दिद्यवः विष्वक् पतन्ति) आघातक होकर तू आयुधोंसे सब ओरसे प्रहार करता है ॥ १ ॥

[३९४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सः नः सदने क्षुमन्तं गोअर्णसं) सर्वविख्यात तू हमारे घरमें अन्नयुक्त तथा वचन–उपदेशसे युक्त जलके समान प्रवृद्ध (श्रवाय्यं रयिं व्यूर्णुहि) श्रवणीय धन दे; हे (वसो शक्र) सबको बसानेवाले इन्द्र ! (जयतः ते मेदिनः स्याम) शत्रुपर विजय करनेवाले तेरे हम बलवान् योद्धा हों; (यथा वयं उष्मसि तत् कृधि) जिसकी हम अभिलाषा करें तू वह कर ॥ २ ॥

[३९५] हे (पुरुष्टुत इन्द्र) बहुतोंके द्वारा स्तुत इन्द्र ! (यः दासः आर्यः वा अदेवः) जो दास, आर्य वा देवोंके अतिरिक्त असुर (नः युधये चिकेतति) हमारे साथ युद्ध करनेकी इच्छा करता है, (ते शत्रवः अस्माभिः सुषहाः सन्तु) वे सब हमारे शत्रु तेरी कृपा–प्रसादसे हमसे पराजित हों; (वयं त्वया तान् संगमे वनुयाम) हम तेरी सहायतासे उन्हें युद्धमें विनष्ट करें ॥ ३ ॥

[३९६] (नृसह्ये विखादे अभीके) वीरोंसे विजय योग्य भयंकर और विविध प्रकारसे मनुष्योंका संहार करनेवाले युद्धमें (वरिवोवित् यः दभ्रेभिः यः च भूरिभिः हव्यः) जो उत्तम धन प्राप्त करानेवाला है, जो अल्प और

स्ववृजं हि त्वामहमिन्द्र शुश्रवा–नानुदं वृषभ रध्रचोदनम् ।
प्र मुञ्चस्व परि कुत्सादिहा गहि किमु त्वावान् मुष्कयोर्बद्ध आसते ५ [१४] (३९७)

(३९)

१४ काक्षीवती घोषा । अश्विनौ । जगती, १४ त्रिष्टुप् ।

यो वां परिज्मा सुवृदश्विना रथो दोषामुषासो हव्यो हविष्मता ।
शश्वत्तमासस्तमु वामिदं वयं पितुर्न नाम सुहवं हवामहे १
चोदयतं सूनृताः पिन्वतं धिय उत् पुरंधीरीरयतं तदुश्मसि ।
यशसं भागं कृणुतं नो अश्विना सोमं न चारुं मघवत्सु नस्कृतम् २
अमाजुरश्चिद्भवथो युवं भगो ऽनाशोश्चिदवितारापमस्य चित् ।
अन्धस्य चिन्नासत्या कृशस्य चि–द्युवामिदाहुर्भिषजा रुतस्य चित् ३

बहुत मनुष्योंसे स्तुत्य तथा हविके योग्य है, (तं सस्निं श्रुतं नरं इन्द्रम्) उस शुद्ध–निष्णात और प्रसिद्ध नेता इन्द्रको (अद्य अवसे अर्वाञ्चं करामहे) आज हमारी रक्षाके लिये समीप हम बुलाते हैं ॥ ४ ॥

[३७९] हे (वृषभ इन्द्र) अभिलषित फलोंको देनेवाले इन्द्र ! (स्ववृजं अनानुदं रध्रचोदनं त्वां अहं शुश्रव) स्वयंही सब बन्धनोंको छेदनेमें समर्थ, अनपेक्षित बल प्रदान करनेवाला और यशका दाता तुझे मैं सुनता हूं; (हि प्रमुञ्चस्व) इसलिये अपनेको अथवा दूसरोंको शीघ्र मुक्त कर; (परि कुत्सात् इह आ गहि) सब ओरसे परिवृत हुआ तू कुत्ससे मुक्त होकर इस यज्ञमें आ। (किमु त्वावान् मुष्कयोर्बद्धः आसते) तेरे जैसा व्यक्ति अण्डकोशोंमें बंधा रह सकता है क्या ? ॥ ५ ॥

[३९]

[३९८] हे (अश्विना) अश्विद्वय ! (वां परिज्मा सवृत् यः रथः) तुम्हारा सर्वत्र विहारी उत्तम सुखपूर्वक चलनेवाला जो रथ है, (दोषां उषासः हविष्मता हव्यः) उसे अहोरात्र यजमान–भक्त आदरसे बुलाते हैं; (वां सुहवं तमु शश्वत्तमासः वयं) उस सुंदर रथमें तुम बैठे हुए होते ही चिरंतन हम (पितुः नु नाम इदं हवामहे) पिताके नामके समान आनन्दसे तुम्हें बुलाते हैं ॥ १ ॥

[३९९] हे (अश्विना) अश्विद्वय ! (सूनृताः चोदयतम्) तुम हमें उत्तम मधुर वचन बोलनेमें प्रवृत्त करो; (धियः पिन्वतम्) हमारे उत्तम कर्म सम्पन्न करो। (पुरंधीः उत् ईरयतम्) विविध मति–बुद्धियोंका उदय करो; (तत् उश्मसि) हम यही कामना करते हैं। (नः यशसं भागं कृणुतं) वैसेही हमें यशस्वी और उपभोग्य धन प्रदान करो (चारुं सोमं न नः मघवत्सु कृतम्) जैसे पेयोंमें सोम कल्याण कारक होता है वैसेही हमें धनवानोंमें मुख्य करो ॥ २ ॥

[४००] हे (नासत्या) सत्यस्वरूप अश्वि हो ! (युवं अमाजुरः भगः भवथः) पितृगृहमें जरावस्थाको प्राप्त दुर्दैवी घोषाके सौभाग्य प्राप्तिके सहाय्यक तुम हुए; (अनाशोः चित् अवितारा भवथः) अनशन करनेवाले–भोजनादिसे रहित लोगोंके भी तुम रक्षक हो; (अपमस्य चित्) जाति या गुणोंमें निकृष्टोंके भी तुम रक्षक हो; (अन्धस्य चित् कृशस्य चित्) अन्ध और दुर्बलोंके भी तुम ही रक्षक हो; इतना ही नहीं (युवामित् रुतस्य चित् भिषजा आहुः) तुम ही रोग पीडितके रोगको दूर करनेवाले चिकित्सक वैद्य कहे जाते हैं ॥ ३ ॥

युवं च्यवानं सनयं यथा रथं पुनर्युवानं चरथाय तक्षथुः ।
निष्टौग्र्यमूहथुरद्भ्यस्परि विश्वेत् ता वां सवनेषु प्रवाच्या ४
पुराणा वां वीर्या३ प्र ब्रवा जने ऽथो हासथुर्भिषजा मयोभुवा ।
ता वां नु नव्याववसे करामहे ऽयं नासत्या श्रदरिर्यथा दधत् ५ [१५]

इयं वामह्वे शृणुतं मे अश्विना पुत्रायेव पितरा मह्यं शिक्षतम् ।
अनापिरज्ञा असजात्यामतिः पुरा तस्या अभिशस्तेरव स्पृतम् ६
युवं रथेन विमदाय शुन्ध्युवं न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषणाम् ।
युवं हवं वध्रिमत्या अगच्छतं युवं सुषुतिं चक्रथुः पुरंधये ७
युवं विप्रस्य जरणामुपेयुषः पुनः कलेरकृणुतं युवद्वयः ।
युवं वन्दनमृश्यदादुदूपथुर्युवं सद्यो विश्पलामेतवे कृथः ८

[४०१] हे अश्वि देवो ! (युवं सनयं च्यवानं यथा रथं पुनर्युवानं चरथाय तक्षथुः) तुमने जराजीर्ण च्यवन ऋषिको, जैसे पुराने रथको नये रूपसे बनाकर पुनः चलनेके लिये ठीक करते हैं, वैसेही फिर युवा बनाकर चलने फिरनेमें समर्थ बना दिया; फिर (तौग्र्यम् अद्भ्यः परि निः ऊहथुः) तुग्रपुत्र भुज्यूको तुमने जलके ऊपर वहन करके बाहर निकाला था; (वां ता विश्वा सवनेषु प्रवाच्या) तुम दोनोंके वे सब कार्य यज्ञ आदिमें वर्णन करने योग्य हैं ॥ ४ ॥

[४०२] हे अश्विदेवहो ! (वां पुराणा वीर्या जने प्र ब्रव) तुम्हारे पूर्वकालके वीरतापूर्वक किये पराक्रमके कार्योंका मैं लोगोंमें वर्णन करता हूं; हे (नासत्या) सत्यस्वरूप ! (अथो ह मयोभुवा भिषजा हासथुः) और तुम दोनों सुखदायक वैद्य- चिकित्सक हो । (ता अवसे नव्यौ नु करामहे) तुम दोनोंकी हमारी रक्षाके लिये ही स्तुति करते हैं । (यथा अयं अरिः श्रत् दधत्) जिस प्रकार यह यजमान श्रद्धा युक्त होवे, ऐसा करो ॥ ५ ॥

[४०३] हे (अश्विना) अश्विद्वय ! (वां इयं अह्वे) तुम दोनोंके यह घोषा आवाहन करती है; (शृणुतं) मेरी स्तुति सुनो और (मह्यं पुत्राय इव पितरा शिक्षतम्) मुझे, जैसे पुत्रको माता पिताके समान शिक्षा दो; मैं (अनापिः अज्ञाः असजात्य-अमतिः) बन्धुरहित, अज्ञानी, कुटुम्बहीन और अश्रद्ध मतिवाली हूं; (तस्याः अभिशस्तेः पुरा अव स्पृतम्) तुम उस दुर्गति आनेके पहलेही मेरा उद्धार करो ॥ ६ ॥

[४०४] हे अश्विद्वय ! (युवं पुरुमित्रस्य योषणां शुन्ध्युवं विमदाय रथेन न्यूहथुः) तुमने पुरुमित्र राजाकी शुन्ध्युव नामक कन्याको रथपर चढा ले जाकर उसके पति विमदको समर्पित की थी; और (युवं वध्रिमत्याः हवं अगच्छतम् तुम दोनों वध्रिमतिके युद्धमें प्रार्थना युक्त बुलानेपर आये थे; [और उसे सुवर्णमय हाथ दिया था]; (युवं पुरंधये सुषुतिं चक्रथुः) उसी प्रकार तुमने उसकी प्रसव-वेदनाको दूर करके उत्तम ऐश्वर्य दिया था ॥ ७ ॥

[४०५] हे अश्विदेव ! (युवं कलेः विप्रस्य जरणां उपेयुषः) तुम दोनोंने कलिनामक बुद्धिमान् ऋषिको जो अत्यन्त वृद्ध हुआ था, (वयः पुनः युवत् अकृणुतम्) उसके जीवनको फिर यौवनयुक्त समृद्ध किया था; और (युवं वन्दनं ऋश्यदात् उदूपथुः) तुमने पत्नीविरह दुःखसे पीडित वन्दन नामक ऋषिको कुएंमेंसे निकाला था; (युवं विश्पलाम् सद्यः पतवे कृथः) उसी प्रकार तुमने लंगडी विश्पलाको लोहेकी जङ्घा देकर उसे तुरंतही चलनेवाली बना दिया था ॥ ८ ॥

युवं ह रेभं वृषणा गुहा हितमुदैरयतं ममृवांसमश्विना ।
युवमृबीसमुत तप्तमत्रय ओमन्वन्तं चक्रथुः सप्तवध्रये ९
युवं श्वेतं पेदवेऽश्विनाश्वं नवभिर्वाजैर्नवती च वाजिनम् ।
चर्कृत्यं ददथुर्द्रावयत्सखं भगं न नृभ्यो हव्यं मयोभुवम् १० [१६]

न तं राजानावदिते कुतश्चन नांहो अश्नोति दुरितं नकिर्भयम् ।
यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी पुरोरथं कृणुथः पत्न्या सह ११
आ तेन यातं मनसो जवीयसा रथं यं वामृभवश्चक्रुरश्विना ।
यस्य योगे दुहिता जायते दिव उभे अहनी सुदिने विवस्वतः १२
ता वर्तिर्यातं जयुषा वि पर्वतमपिन्वतं शयवे धेनुमश्विना ।
वृकस्य चिद्वर्तिकामन्तरास्याद्युवं शचीभिर्ग्रसितामगुञ्चतम् १३ (४१०)

---

[४०६] हे (वृषणा अश्विना) अभीष्ट फलोंकी वर्षा करने वाले अश्विद्वय ! (युवं गुहा हितं ममृवांसं रेभं उदैरयतम्) तुमने जिस समय गुहाके बीच असुर शत्रुओंने मृत प्राय रेभ नामक ऋषिको रख दिया था, उस समय उसे संकटसे बचाया था; (उत युवं तप्तं ऋबीसं सप्तवध्रये अत्रय ओमन्वन्तं चक्रथुः) और तुमने ही सात बंधनोंमें बांधे हुए अत्रिऋषि जब जलते अग्निकुंडमें फेंके गये थे, तब तुम्हींनेही उस अग्निकुंडको बुझाया था ॥ ९ ॥

[४०७] हे (अश्विना) अश्विद्वय ! (युवं पेदवे श्वेतं वाजिनं नवभिः नवती वाजैः चर्कृत्यम्) तुम दोनोंने पेदु नामक राजाको एक श्वेतवर्ण घोडा और निन्यानबे घोडे दिये थे; ये सब युद्धमें शत्रुओंको जीतनेके लियेही किया था; (द्रावयत् सखं) वह शत्रुसेनाओंको भगानेवाला (हव्यं मयोभुवं अश्वं नृभ्यः भगं न ददथुः) बुलाने पर सत्वर आनेवाला, स्तुत्य सुखदायक अश्व जो मनुष्योंके लिये बहुमूल्य धन था, प्रदान किया था ॥ १० ॥

[४०८] हे (राजानौ अदिते) ईश्वरस्वरूप तेजस्वी ! (सुहवौ रुद्रवर्तनी) शुभ नामवाले, स्तुत्य मार्गोंसे चलनेवाले, हे (अश्विना) अश्विद्वय ! तुम (यं पुरोरथं पत्न्यासह कृणुथः) जिसको अपने रथके अगले भागमें पत्नीसह आश्रय देते हो, (तं कुतश्चन अंहः न अश्नोति) उन्हें कोई भी पाप व्याप्त नहीं करता; (दुरितं न नकिः भयम्) उसी तरह दुर्गति और संसारका भय नहीं प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

[४०९] हे (अश्विना) अश्विद्वय ! (वां यं रथं ऋभवः चक्रुः) तुम्हारे लिये जो रथ ऋभुओंने किया था, (यस्य योगे दिवः दुहिता जायते) जिसके उदित होदे पर तेजस्वो आकाशकी कन्या उषा प्रकट होती है; (विवस्वतः उभे अहनी सुदिने) और सूर्यसे अत्यंत सुंदर दिन तथा रात्रिजन्म लेती है; (विवस्वतः उभे अहनी सुदिने) और सूर्यसे अत्यंत सुंदर दिन तथा रात्रिजन्म लेती है; (तेन मनसः जवयिसा आ यातम्) उसही मनसेभी अधिक वेगवान् रथसे तुम आओ ॥ १२ ॥

[४१०] हे (अश्विना) अश्विद्वय ! (ता जयुषा पर्वतं वर्तिः वि यातम्) तुम दोनों उस जयशील रथसे पर्वतकी ओर जानेवाले उत्तम मार्गपर गमन करो; (शयवे धेनुं अपिन्वतम्) शत्रुकी बुढी शयुकी फिर दूधवाली बना दो । (युवं वृकस्य चित् अन्तः ग्रसितां वर्तिकां आस्यात् शचीभिः अमुञ्चतम्) तुमने भेडियेके मुखमें गिरी वर्तिका–चटकाको उसके मुंहसे निकालकर उसको छुडाया था ॥ १३ ॥

एतं वां स्तोममश्विनावकर्मा तक्षाम भृगवो न रथम् ।
न्यमृक्षाम योषणां न मर्ये नित्यं न सूनुं तनयं दधानाः १४ [१७] (४११)

(४०)

१४ काक्षीवती घोषा । अश्विनौ । जगती ।

रथं यान्तं कुह को ह वां नरा प्रति द्युमन्तं सुविताय भूषति ।
प्रातर्यावाणं विभ्वं विशेविशे वस्तोर्वस्तोर्वहमानं धिया शमि १
कुह स्विद् दोषा कुह वस्तोरश्विना कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः ।
को वां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ २
प्रातर्जरेथे जरणेव कापया वस्तोर्वस्तोर्यजता गच्छथो गृहम् ।
कस्य ध्वस्रा भवथः कस्य वा नरा राजपुत्रेव सवनाव गच्छथः ३
युवां मृगेव वारणा मृगण्यवो दोषा वस्तोर्हविषा नि ह्वयामहे ।
युवं होत्रामृतुथा जुह्वते नरेषं जनाय वहथः शुभस्पती ४

[४११] हे (अश्विना) अश्विद्वय ! (वां एतं स्तोमं अकर्म) तुम्हारे लिये हमने यह स्तोत्र किया है; (भृगवः न रथं अतक्षाम) जैसे भृगु पुत्र रथ बनाते हैं, वैसेही हमने यह रथ-स्तोत्र गुणवर्णनपर योग्य रीतिसे किया है; (नित्यं तनयं सूनुं न दधानाः मर्ये न्यमृक्षाम योषणां न) जैसे युवा पुरुषको प्रेमपूर्ण कन्याको अलङ्कृत करके देते हैं, वैसेही हम यह स्तुति अत्यंत निष्ठापूर्वक समर्पित करते हैं; हमारे पुत्र-पौत्र सदा प्रतिष्ठित रहें ॥ १४ ॥

[४०]

[४१२] हे (नरा) कर्मोंके द्रष्टा अश्वि ! (वां द्युमन्तं प्रातर्यावाणं विभ्वं विशे विशे वस्तोर्वस्तोः वहमानम्) तुम्हारा तेजस्वी, यज्ञमें प्रातः जानेवाला, बहुत बडा, दिन प्रतिदिन सब मनुष्योंके लिये सुख-भोग दायक धन वहन करके ले जाता है; (यान्तं रथं कुह को ह शमि धिया सुविताय प्रति भूषति) वहन करके जानेवाले उस तेजस्वी रथके समय अपने यज्ञकी सफलताके लिये कौन यजमान स्तोत्रसे उसे भूषित करता है ? (तुम्हारा वह रथ कहां है ? जिससे उसको आनेमें विलम्ब हो रहा है ?) ॥ १ ॥

[४१३] हे (अश्विना) अश्विद्वय ! (कुह स्वित् दोषा कुह वस्तोः) तुम दोनों रात्रिमें कहां और दिनके समय कहां जाते हो ? (कुह अभिपित्वं करतः) कहां समय बिताते हो ? (कुह उषथुः) कहां वास करते हो ? (शयुत्रा देवरं विधवा इव) जैसे विधवा स्त्री शयनस्थानमें द्वितीय वरको-देवरको बुलाती है (सधस्थे मर्यं योषा न) और कामिनी अपने पतिका समादर करती है, (वां कः आ कृणुते) वैसेही यज्ञमें आदरके साथ तुम्हें कौन बुलाता है ? ॥ २ ॥

[४१४] हे (नरा) नेता अश्वि ! (जरणा इव कापया प्रातः जरेथे) प्रातःकालमें चारण मधुर वचनोंसे ऐश्वर्य संपन्न राजाकी स्तुति करता है, उसी प्रकार सबेरे तुम दोनोंके लिये स्तोतालोग स्तोत्र पाठ करते हैं (वस्तोः वस्तोः यजता गृहं गच्छतः) प्रतिदिन यज्ञार्ह तुम यजमानके गृहको जाते हैं । (कस्य ध्वस्रा भवथः) तुम यजमानके किस किस दोषके नाशक होते हो ? और (कस्य सवना राजपुत्रा इव अव गच्छथः) किस यजमानके यज्ञमें राजपुत्रके समान तुम दोनों जाते हो ? ॥ ३ ॥

[४१५] हे अश्विदेव ! (मृगण्यवो वारणा मृगेव) जैसे व्याध हाथी और सिंह-शार्दूलकी इच्छा करते हैं, वैसेही हम (युवां दोषा वस्तोः हविषा निह्वयामहे) तुम्हें रात-दिन यज्ञीय द्रव्य लेकर बुलाते हैं; हे (नरा) श्रेष्ठ

युवां ह घोषा पर्यश्विना यती राज्ञ ऊचे दुहिता पृच्छे वां नरा ।
भूतं मे अह्न उत भूतमक्तवे ऽश्वावते रथिने शक्तमर्वते ५ [१८]

युवं कवी ष्ठः पर्यश्विना रथं विशो न कुत्सो जरितुर्नशायथः ।
युवोर्ह मक्षा पर्यश्विना मध्वा—सा भरत निष्कृतं न योषणा ६

युवं ह भुज्युं युवमश्विना वशं युवं शिञ्जारमुशनामुपारथुः ।
युवो ररावा परि सख्यमासते युवोरहमवसा सुम्नमा चके ७

युवं ह कृशं युवमश्विना शयुं युवं विधन्तं विधवामुरुष्यथः ।
युवं सनिभ्यः स्तनयन्तमश्विना ऽप व्रजमूर्णुथः सप्तास्यम् ८

जनिष्ट योषा पतयत् कनीनको वि चारुहन् वीरुधो दंसना अनु ।
आस्मै रीयन्ते निवनेव सिन्धवो ऽस्मा अह्ने भवति तत् पतित्वनम् ९

नायकों ! (युवं ऋतुथा होत्रां जुह्वते) तुम्हारे लिये यथा समय यजमान भक्त आहुतियां प्रदान करते हैं; (शुभस्पती जनाय इषं वहथः) तुम भी शुभ वृष्टिदायक जलोंके स्वामी हो इसलिये मनुष्योंके लाभके लिये अन्न ले आते हो । ४ ॥

[४१६] हे (नरा अश्विना) नेतागण ! अश्विदेव ! (परि यती राज्ञः दुहिता घोषा युवां ऊचे) चारों ओर घूमकर प्रयत्न करती हुई राजा कक्षीवान्‌की पुत्री घोषा में तुम्हें कहती हूं, (वां पृच्छे) और तुम दोनोंके विषयमेंही बूढोंसे पूछती हूं; (मे अह्नः उत अक्तवे भूतम्) दिन और रात तुम दोनों मेरे हितके लिये, मेरे नित्य कर्ममें सहाय्यक बनो; (अश्वावते रथिने अर्वते शक्तम्) और रथयुक्त अश्वयुक्त शत्रुके नाशके लिये मुझे समर्थ करो ॥ ५ ॥

[४१७] हे (कवी अश्विना) बुद्धिमान् अश्विदेव ! (युवं रथं परिष्ठः) तुम दोनों रथपर रहो; (जरितुः विशः नशायथः कुत्सः न) स्तोताके घरमें तुम कुत्सके समान रथपर जाते हो; हे (अश्विना) अश्विद्वय ! (युवोः मधु मक्षा आस्ना परि भरत) तुम्हारा मधु अधिक है, इसलिये मक्खियां उसे मुंहमें ग्रहण करती हैं, (निष्कृतं न योषणा) जैसे निष्कृत मधु नारियां एकत्र करती हैं ॥ ६ ॥

[४१८] हे (अश्विना) अश्विद्वय ! (युवं ह भुज्युं उपारथुः) तुमनेही समुद्रमें विपन्नावस्था प्राप्त भुज्यको बचाया था; (युवं वशं युवं शिञ्जारं उशनाम्) तुमने वश राजा और अत्रिका उत्तम स्तुति करनेके लिये उद्धार किया था; (युवोः सख्यं ररावा परि आसते) तुम्हारा मित्रत्व उत्तम दाताही प्राप्त करता है; (युवोः अवसा अहं सुम्नं आ चके) तुम्हारी रक्षासे मं घोषा सुखकी कामना करती हूं ॥ ७ ॥

[४१९] हे (अश्विना) अश्विदेव ! (युवं ह कृशं युवं शयुं युवं विधन्तं विधवां ऊरुष्यथः) निश्चयसे ही तुम दोनोंने कृश दुर्बल, शयु ऋषि परिचारक और विधवा स्त्रीकी रक्षा की थी; हे (अश्विना) अश्विद्वय ! (युवं स्तनयन्तं सप्तास्यं व्रजं सनिभ्यः अप ऊर्णुथुः) तुमने शब्द करनेवाले, अनेक गतिशील द्वारवाले मेघको यज्ञमें हविका दान करनेवाले यजमानके लिये बरसानेके निमित्त खुला किया ॥ ८ ॥

[४२०] हे अश्विद्वय ! तुम्हारी कृपासेही यह घोषा (योषाजनिष्ट) नारीलक्षण प्राप्त करके सौभाग्यवती हुई; (कनीनकः पतयत्) इसे कन्येच्छक पति प्राप्त होवे; (दंसनाः अनु वीरुधः वि अरुहन् च) इसलिये तुम्हारी कृपासे वृष्टि होनेके कारण उत्तम औषधियां–शस्य आदि उत्पन्न होवें; (अस्मै निवना इव सिन्धवः आ रीयन्ते) इस तेजस्वी पुरुषकी ओर निम्नाभिमुखी होकर नदियां भी बह रही हैं; वह रोगरहित हैं; (अह्ने अस्मै तत् पतित्वनं भवाति) शत्रुओंसे न मारे जानेवाले इसको तबही पतित्व प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

जीवं रुदन्ति वि मयन्ते अध्वरे दीर्घामनु प्रसितिं दीधियुर्नरः ।
वामं पितृभ्यो य इदं समेरिरे मयः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे १० [१९]

न तस्य विद्म तदु षु प्र वोचत युवा ह यद्युवत्याः क्षेति योनिषु ।
प्रियोस्त्रियस्य वृषभस्य रेतिनो गृहं गमेमाश्विना तदुश्मसि ११
आ वामगन् त्सुमतिर्वाजिनीवसू न्यश्विना हृत्सु कामा अयंसत ।
अभूतं गोपा मिथुना शुभस्पती प्रिया अर्यम्णो दुर्यां अशीमहि १२ (४२३)

ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ धत्तं रयिं सहवीरं वचस्यवे ।
कृतं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं पथेष्ठामप दुर्मतिं हतम् १३
क्व स्विदद्य कतमास्वश्विना विक्षु दस्रा मादयेते शुभस्पती ।
क ईं नि येमे कतमस्य जग्मतुर्विप्रस्य वा यजमानस्य वा गृहम् १४ [२०] (४२५)

---

[४२१] हे अश्विद्वय ! (ये नरः जीवं रुदन्ति) जो लोग अपनी स्त्रीकी प्राणरक्षाके लिये रोते हैं; (अध्वरे वि मयन्ते) और उन स्त्रियोंको यज्ञ-कार्यमें नियुक्त करते हैं; (दीर्घां प्रसितिं अनु दीधियुः) और उनका अपनी बांहोंसे प्रदीर्घ आलिङ्गन करते हैं; (इदं वामं पितृभ्यः समेरिरे) और वे अपने पतिके लिये उत्तम सन्तान उत्पन्न करती हैं; (जनयः पतिभ्यः परिष्वजे मयः) और स्त्रियां भी पतिको आलिङ्गन देकर उसका तथा स्वयंको सुख प्राप्त करती हैं ॥ १० ॥

[४२२] हे (अश्विना) अश्वि देव ! (तस्य तत् न विद्म) उनका वैसा सुख हम नहीं जानते हैं; (उ सु प्र वोचत) उस सुखका तुमही वर्णन करो ! (युवा ह युवत्याः योनिषु यत् क्षेति) युवा पुरुष -मेरा पति युवति स्त्रीके -मेरे साथ गृहमें जो निवास करता है; (प्रिय-उस्त्रियस्य वृषभस्य रेतिनः गृहं गमेम) युवति पत्नीपर प्रेम करनेवाले बलवान और वीर्यवान् पतिके गृहको में जाऊं; (तत् उश्मसि) हम सदा उस गृहकी कामना करती हैं ॥ ११ ॥

[४२३] हे (वाजिनीवसू) अन्न-धनके स्वामि और (शुभस्पती) जलोंके स्वामि (अश्विना) अश्विद्वय ! (मिथुना वां सुमतिः आ अगन्) तुम दोनोंको शुभ-कल्याणप्रद बुद्धि प्राप्त हो; (हृत्सु कामाः नि अयंसत) मेरे मनकी अभिलाषाएं नियमपूर्वक संयत करो; (गोपा अभूतम्) तुम मेरे रक्षक होओ; (प्रियाः अयम्णः दुर्यान् अशीमहि) हम अपने पतियोंकी प्रिय होकर स्वामीके गृहोंको प्राप्त हों ॥ १२ ॥

[४२४] हे अश्विद्वय ! (मन्दसाना ता मनुषः दुरोणे वचस्यवे) आनन्द प्रसन्न तुम्हारी मेरे पतिके घरमें मैं स्तुति करती हूं; इसलिये मुझे (सहवीरं रयिं आ धत्तम्) पुत्रादि सहित धन प्रदान करो; हे (शुभस्पती) जलके स्वामि ! तुम (तीर्थं सुप्रपाणं कृतम्) मुझे सुखसे पीनेके लिये योग्य जल दो; (पथेष्ठां स्थाणुं दुर्मतिं अप हतम्) मार्गमें स्थित वृक्ष आदि विघ्न नष्ट करो और विपरीत बुद्धिको दूर करो ॥ १३ ॥

[४२५] हे (अश्विना) अश्विदेव ! हे (दस्रा शुभस्पती) दर्शनीय जलोंके स्वामि ! (अद्य क स्वित्) तुम आज कहां हो ? (कतमासु विक्षु मादयेते) किन लोकोंमें तुम आमोद-प्रमोद करते हुए स्वयंको तृप्त करते हो ? (कः ईम् नि येमे) कौन यजमान तुम दोनोंको बांधकर रख सकता है ? (कतमस्य विप्रस्य यजमानस्य गृहं वा जग्मतुः) किस विद्वान् यजमान स्तोताके घरपर तुम गये हो ? ॥ १४ ॥

+

(४१)

३ सुहस्त्यो घौषेयः । अश्विनौ । जगती ।

समानमु त्यं पुरुहूतमुक्थ्यं१ रथं त्रिचक्रं सवना गनिग्मतम् ।
परिज्मानं विदथ्यं सुवृक्तिभि- र्वयं व्युष्टा उषसो हवामहे १
प्रातर्युजं नासत्याधि तिष्ठथः प्रातर्यावाणं मधुवाहनं रथम् ।
विशो येन गच्छथो यज्वरीर्नरा कीरेश्चिद्यज्ञं होतृमन्तमश्विना २
अध्वर्युं वा मधुपाणिं सुहस्त्य- मग्निधं वा धृतदक्षं दमूनसम् ।
विप्रस्य वा यत् सवनानि गच्छथो ऽत आ यातं मधुपेयमश्विना ३ [२१] (४२८)

(४२)

११ कृष्ण आङ्गिरसः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन् भूषन्निव प्र भरा स्तोममस्मै ।
वाचा विप्रास्तरत वाचमर्यो नि रामय जरितः सोम इन्द्रम् १

---

[४१]

[४२६] हे अश्विदेव ! (समानं रथं त्यं उ पुरुहूतं उक्थ्यं) तुम दोनोंके पास एकही रथ है, उस श्रेष्ठ रथको अनेक बुलाते है, अनेक स्तुति करते हैं; (त्रिचक्रं सवना गनिग्मतं परिज्मानं विदथ्यं) वह तीन चक्रवाला है, यज्ञोंमें जाता है, चारों ओर घूमकर यज्ञको सुसम्पन्न करता है, (उषसः व्युष्टौ सुवृक्तिभिः वयं हवामहे) प्रातःकाल होतेही उत्तम स्तुतियोंसे युक्त प्रार्थना करके हम उसे बुलाते हैं ॥ १ ॥

[४२७] हे (नासत्या नरा) सत्यके प्रणेता और नेता अश्विद्वय ! (प्रातः युजं प्रातर्यावाणं मधुवाहनं रथं अधि तिष्ठथः) तुम प्रातःकाल अश्वोंसे जोता हुआ, प्रातःकाल जानेवाला और मधु-अमृतवाहक रथपर आरूढ होवो; (येन यज्वरीः विशः गच्छथः) जिसके द्वारा यजनशील प्रजाओंको प्राप्त होवो; (कीरेः चित् होतमन्तं यज्ञं यज्ञम्) उत्तम स्तोत्र करनेवाले ऋषि-होतासे युक्त यज्ञमें भी जाओ ॥ २ ॥

[४२८] हे (अश्विना) अश्विद्वय ! तुम (मधुपाणिं अध्वर्युं वा सुहस्त्यं) सोमयुक्त अध्वर्यु- यज्ञ करानेमें श्रेष्ठ, सुहस्त्यके पास (धृतदक्षं दमूनसं अग्निधं) अथवा बलवान्, जितेन्द्रिय, दानशील, अग्निधके पास (आयातम्) आओ। (यत् विप्रस्य सवनानि गच्छथः) जो तुम दूसरे बुद्धिमान् पुरुषके यज्ञोंमें जाओगे तो भी (अतः मधुपेयम्) वहां तुम सोमरसका पान कर सकोगे ॥ ३ ॥

[४२]

[४२९] (अस्ता इव सु अस्यन् प्रतरं लायं) बाण फेंकनेवाला धनुर्धर जैसे उत्तम रीतिसे दूर स्थित लक्ष्यपर हृदयवेधक बाणका प्रहार करता है, और (भूषन् इव) पुरुष आभूषणोंको पहिन सजता है, वैसेही (स्तोमं अस्मै प्र आ भर) तू इन्द्रके लिये स्तुतियोंसे प्राप्त कर। हे (विप्राः) बुद्धिमान् पुरुषों ! तुम (वाचा अर्यः वाचं तरत) स्तुतियोंका प्रयोग करके अपने शत्रुका उत्तम वचनोंसे निराकरण करो; हे (जरितः) स्तोता ! (सोमे इन्द्रं नि रामय) तू सोमयागमें इन्द्रको नित्य अपने अनुकूल कर ॥ १ ॥

दोहे॑न॒ गामुप॑ शिक्षा॒ सखा॑यं॒ प्र बो॑धय जरितर्जा॒रमिन्द्र॑म् ।
कोशं॒ न पूर्णं वसु॑ना॒ न्यृ॑ष्ट॒मा च्या॑वय मघ॒देया॑य॒ शूर॑म् २
किम॒ङ्ग त्वा॑ मघवन् भो॒जमा॑हुः शिशी॒हि मा॑ शिश॒यं त्वा॑ शृणोमि ।
अप्न॑स्वती॒ मम॒ धीर॑स्तु शक्र वसु॒विदं॒ भग॑मि॒न्द्रा भ॑रा नः ३
त्वां जना॑ ममस॒त्येष्वि॑न्द्र संतस्था॒ना वि ह्व॑यन्ते स॒मीके॑ ।
अत्रा॒ युजं॑ कृणु॒ते यो ह॒विष्मा॒न् नासु॑न्वता स॒ख्यं व॑ष्टि॒ शूर॑: ४
धनं॒ न स्य॒न्द्रं ब॑हु॒लं यो अ॑स्मै ती॒व्रान् त्सोमाँ॑ आसु॒नोति॒ प्रय॑स्वान् ।
तस्मै॒ शत्रू॑न् त्सु॒तुका॑न् प्रा॒तरह्नो॒ नि स्वष्ट्रा॑न् यु॒वति॒ हन्ति॑ वृ॒त्रम् ५ [२२]

यस्मि॑न् व॒यं द॑धि॒मा शंस॒मिन्द्रे॒ यः शि॒श्राय॑ म॒घवा॒ काम॑म॒स्मे ।
आ॒राच्चि॒त् सन् भ॑यताम॒स्य॒ शत्रु॒र्न्य॑स्मै द्यु॒म्ना जन्या॑ नमन्ताम् ६ (४३४)

आ॒राच्छत्रु॒मप॑ बाधस्व दू॒रमु॒ग्रो यः शम्ब॑: पुरुहू॒त तेन॑ ।
अ॒स्मे धे॑हि॒ यव॑म॒द्गोम॑दिन्द्र कृ॒धी धियं॑ जरि॒त्रे वाज॑रत्नाम् ७

---

[४३०] हे (जरितः) स्तुतिकर्ता ! तू (दोहेन गां सखायं इन्द्रं उप शिक्ष) जैसे गायको दूहकर अपना प्रयोजन सिद्ध किया जाता है, मित्र स्वरूप इन्द्रको अपने अभीष्ट फलोंको प्राप्त करनेके लिये प्राप्त कर; (जारं प्र बोधय) उसी प्रकार स्तुत्य इन्द्रको स्तुतियोंसे जगा ! (पूर्णं कोशं न वसुना नि-ऋष्टं) धनादिसे पूर्ण कोशागारके समान ऐश्वर्यसे परिपूर्ण सम्पन्न, (शूरं मघदेयाय आ च्यावय) शूरवीर इन्द्रको धनदानके लिये प्रेरित कर, अनुकूल कर ॥२॥

[४३१] हे (अङ्ग मघवन् शक्र) ऐश्वर्यवन् इन्द्र ! (त्वा किं भोजं आहुः) तुझको विद्वान् लोग अभीष्ट दाता क्यों कहते हैं ? (मा शिशीहि) मुझे धन देकर समर्थ कर; (त्वा शिशयं शृणोमि) तुझे मैं उत्साहित-समर्थ करनेवाला सुनता हूं; (मम धीः अप्नवती अस्तु) मेरी बुद्धि कर्म करनेमें निपुण हो; हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नः वसुविदं भगं आ भर) हमें उत्तम धन प्राप्त करानेवाला भाग्य दे ॥ ३ ॥

[४३२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वां जनाः ममसत्येषु वि ह्वयन्ते) तुझको लोग युद्धमें सहायताके लिये आदरसे बुलाते हैं; (समीके संतस्थानाः) युद्धमें जाते हुए तुझे पुकारते हैं; (अत्र शूरः यः हविष्मान् युजं कृणुते) इस समयमें वीर इन्द्र जो मनुष्य हविर्द्रव्य युक्त है, उसके साथही मित्रता करता है; (असुन्वता सख्यं न वष्टि) सोम प्रस्तुत न करनेवालेके साथ इन्द्र सख्य करना नहीं चाहता ॥ ४ ॥

[४३३] (यः प्रयस्वान् स्यन्द्रं बहुलं धनं न) जो हविर्द्रव्ययुक्त यजमान बहुतसे गौ, अश्व आदि देनेवाले धनाढ्यके समान उदारतासे (अस्मै तीव्रान् सोमान् आसुनोति) इस इन्द्रको तीव्र सोमरस प्रस्तुत करता है, (तस्मै प्रातः अह्नः सुतुकान्) उस यजमानके दिनके पूर्वभागमें उत्तम पुत्र सहित प्रेरित, (स्वष्ट्रान् शत्रून् नि युवति) सुंदर आयुधोंसे युक्त शत्रुओंको दूर कर देता है; और (वृत्रं हन्ति) वृत्रादि विघ्नोंका नाश करता है ॥ ५ ॥

[४३४] (यस्मिन् इन्द्रे वयं दधिम) जिस इन्द्रकी हम स्तुति करते हैं; (यः मघवा अस्मे कामं शिश्राय) और जो धनवान् इन्द्र हमें अभीष्ट धन देता है, (अस्य शत्रुः आरात् सन् चित् भयताम्) उसका शत्रु दूरसेही भयभीत होता है; (अस्मै जन्या द्युम्ना नि नमन्ताम्) उस इन्द्रको शत्रु देशको सम्पत्ति भी प्राप्त हों ॥ ६ ॥

[४३५] हे (पुरुहूत इन्द्र) बहु स्तुत इन्द्र ! (यः उग्रः शम्बः) जो उग्र, बलशाली शत्रुओंको विनष्ट करनेवाला वज्र-शस्त्र है, (तेन शत्रुं आरात् दूरं अप बाधस्व) उस वज्रसे हमारे समीपके शत्रुको दूर कर; और (अस्मे यवमत् गोमत् धेहि) हमें अन्न-जौ तथा गायसे युक्त सम्पत्ति दो; (जरित्रे वाजरत्नां धियं कृधि) स्तुति करनेवाले मेरी बुद्धिको अन्न-रत्न वाली कर ॥ ७ ॥

प्र यमन्तर्वृ॑षसवासो अग्म॑न् तीव्राः सोमा॑ बहुलान्ता॑स इन्द्र॑म् ।
नाह॑ दामान॑ मघवा॑ नि यंस॒न्नि सुन्वते वहति भूरि॑ वामम् ८
उत प्रहाम॑तिदीव्या॑ जयाति कृतं यच्छ्वघ्नी वि॑चिनोति॑ काले ।
यो देवका॑मो न धना॑ रुणद्धि समित् तं राया सृजति स्वधावा॑न् ९
गोभि॑ष्टरेमाम॑तिं दुरेवां यवेन क्षुधं॑ पुरुहूत विश्वा॑म् ।
वयं राज॑भिः प्रथमा धना॒न्यस्माके॑न वृजने॑ना जयेम १०
बृहस्पति॑र्नः परि॑ पातु पश्चा॒दुतोत्त॑रस्मादध॑रादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखि॑भ्यो वरि॑वः कृणोतु ११ [२३] (४३९)

(४३) [चतुर्थोऽनुवाकः ॥४॥ सू० ४३-६०]

११ कृष्ण आङ्गिरसः । इन्द्रः । जगती, १०-११ त्रिष्टुप् ।

अच्छा॑ म इन्द्रं॑ मतयः॑ स्वर्विदः॑ सध्रीची॑र्विश्वा॑ उशतीर॑नूषत ।
परि॑ ष्वजन्ते जन॑यो यथा पति॑ मर्यं॑ न शुन्ध्युं मघवा॑नमूतये॑ १

[४३६] (यं इन्द्रं अन्तः वृषसवासः तीव्राः बहुलान्तासः सोमाः) जिस इन्द्रके पेटमें उसके लिये हवन किये हुए, तीव्र, क्षुधोत्पादक सोम (प्र अग्मन्) प्राप्त होते हैं, वह (मघवा दामानं अह न नि यंसत्) धनवान् इन्द्र दानशील यजमानको कभी विरोध नहीं करता; (सुन्वते भूरि वामं नि वहति) परंतु अधिक सोमरस देनेवाले यजमानको अधिक धन देता है ॥ ८ ॥

[४३७] (यत् श्वघ्नी कृतं विचिनोति) जैसे जुआरी जिससे हारा हुआ है, उसीको खोजकर हरा देता है, (उत प्रहां अतिदिव्य जयाति) उसी प्रकार इन्द्र भी अनिष्ट कर्ताको अतिक्रमण करके परास्त करता है; (यः देवकामः धना न रुणद्धि) जो देवोंकी स्तुति-उपासनामें धन व्यय करनेमें कृपणता नहीं करता, (स्वधावान् तं राया सं सृजाति) धनवान्-बलवान् इन्द्र उस देव-उपासकको धनैश्वर्यसे युक्त कर देता है ॥ ९ ॥

[४३८] हे (पुरुहूत) अनेकोंके द्वारा आहूत इन्द्र ! (दुरेवां अमतिं वयं गोभिः तरेम) तेरी कृपासे दारिद्र्यसे प्राप्त दुर्बुद्धिको हम गौ आदि पशुओंके द्वारा पार करें । और (यवेन विश्वां क्षुधं तरेम) यव आदि अन्नसे सब प्रकारकी क्षुधाकी निवृत्ति कर सकें । (राजभिः प्रथमाः धनानि) राजाओंसे हम उत्कृष्ट धन प्राप्त करें; और (अस्माकेन वृजनेन जयेम) अपने बलसे हम शत्रुओंको जीत सकें ॥ १० ॥

[४३९] (बृहस्पतिः नः पश्चात् उत उत्तरस्मात् अधरात्) बृहस्पति हमें पश्चिम-पीछेसे, उत्तर-ऊपरसे और दक्षिण-नीचेसे (अघायोः परिपातु) पापाचारी शत्रुओंसे बचावे । (उत इन्द्रः पुरस्तात् मध्यतः नः) और इन्द्र पूर्व दिशा और मध्य भागसे आनेवाले शत्रुओंसे हमारी रक्षा करे । (सखा सखिभ्यः वरिवः कृणोतु) सबका मित्र इन्द्र हम मित्रोंका प्रिय करनेके लिये हमें उत्तम धन प्रदान करे ॥ ११ ॥

[४३]

[४४०] (मे स्वः विदः सध्रीचीः विश्वाः उशतीः) मेरी सर्वप्रापक, परस्पर सुसम्बद्ध, सब प्रकारकी और इच्छा करनेवाली (मतयः इन्द्रं अच्छ अनूषत) बुद्धि इन्द्रकी स्तुति-गुणगान करती है; (जनयः यथा पतिं मर्यं न) जैसे स्त्रियां अपने स्वामी-पतियोंको सुख-समृद्धिके लिये (परिष्वजन्ते) आलिंगन करती हैं, वैसेही (शुन्ध्युं मघवानं ऊतये) शुद्ध-दोषरहित ऐश्वर्यवान् इन्द्रको आश्रय पानेके लिये ये स्तुतियां प्राप्त करती हैं ॥ १ ॥

न घा त्वद्रिगप वेति मे मन स्त्वे इत् काम पुरुहूत शिश्रय ।
राजेव दस्म नि षदोऽधि बर्हि ष्यस्मिन् त्सु सोमेऽवपानमस्तु ते २
विषूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः स इद्रायो मघवा वस्व ईशते ।
तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिन्धवो वयो वर्धन्ति वृषभस्य शुष्मिणः ३
वयो न वृक्षं सुपलाशमासदन् त्सोमास इन्द्रं मन्दिनश्चमूषदः ।
प्रैषामनीकं शवसा दविद्युत द्विदत् स्व१र्मनवे ज्योतिरार्यम् ४
कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत् ।
न तत् ते अन्यो अनु वीर्यं शक न्न पुराणो मघवन् नोत नूतनः ५ [२४]

विशंविशं मघवा पर्यशायत जनानां धेना अवचाकशद्वृषा ।
यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति स तीव्रैः सोमैः सहते पृतन्यतः ६
आपो न सिन्धुमभि यत् समक्षरन् त्सोमास इन्द्रं कुल्या इव ह्रदम् ।
वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ७ (४४६)

---

[४४१] हे (पुरुहूत) बहुस्तुत इन्द्र ! (त्वद्रिग् मे मनः न घ अप वेति) तुम्हें छोडकर मेरा मन अन्यत्र दूर नहीं जाता; (त्वे इत् कामं शिश्रय) तुझमें ही मैं अपनी अभिलाषा स्थापित करता हूं । (राजा इव बर्हिषि) जैसे राजा आसनपर विराजता है, वैसेही हे (दस्म) दर्शनीय इन्द्र ! (निषदः) इस यज्ञमें अधिष्ठित हो; (ते अस्मिन् सोमे सु अवपानं अस्तु) और इस उत्तम सोमसे सर्वश्रेष्ठवान कार्य सम्पन्न हो ॥ २ ॥

[४४२] (इन्द्रः अमतेः उत क्षुधः विषूवृत्) इन्द्र हमारी दुर्बुद्धि और क्षुधासे बचानेके लिये चारों ओर रहे; (सः इत् मघवा वस्वः रायः ईशते) और वही धनवान् इन्द्र सारी सम्पत्तियों और धनोंका स्वामी है; (तस्य इत् शुष्मिणः वृषभस्य इमे प्रवणे सप्त सिन्धवः वयः वर्धन्ति) उसही शोषक बलवान् और वष्टिकर्ता इन्द्रकी ये प्रसिद्ध सात गंगादि नदियां इस देशमें अन्नकी वृद्धि करती हैं ॥ ३ ॥

[४४३] (वयः सुपलाशं वृक्षं न) जैसे सुंदर पत्तोंसे हरे भरे वृक्षका आश्रय लेते हैं, वैसेही (मन्दिनः चमूषदः सोमासः) मदोत्पादक और पात्रस्थित सोम (इन्द्रं आ सदन्) इन्द्रको प्राप्त करते हैं; (एषां शवसा अनीकं प्र दविद्युतत्) सोमके सामर्थ्यसे युक्त इन्द्रका मुख उज्ज्वल हो गया; (स्वः आर्यं ज्योतिः मनवे विदत्) इन्द्र अपना सर्वश्रेष्ठ तेज मनुष्योंको दे ॥ ४ ॥

[४४४] (श्वघ्नी देवने कृतं न वि चिनोति) जुआडी जुएके अड्डेपर जैसे अपने विजेताको खोजकर परास्त करता है, वैसेही (यत् मघवा संवर्गं सूर्यं जयत्) धनवान् इन्द्र वृष्टि रोधक सूर्यको जीतता है; हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (तत् ते वीर्यं अन्यः अनु न शकत्) उस समय तेरेसे दूसरा कोईभी प्राचीन वा नवीन तेरे बल वीर्यके अनुसार कार्य नहीं कर सकता । ॥ ५ ॥

[४४५] (वृषा मघवा विशंविशं पर्यशायत) अभीष्टोंका दाता इन्द्र समस्त मनुष्योंमें रहता है; (जनानां धेनाः अवचाकशत्) और स्तोतृ जनोंकी प्रार्थनाओंको सुनता है, ध्यान देता है । (शक्रः यस्याह सवनेषु रण्यति) इन्द्र जिस यजमानके सोम-यज्ञमें आनन्द प्राप्त करता है, (सः तीव्रैः सोमैः पृतन्यतः सहते) वह यजमान प्रखर सोमरसके द्वारा युद्धेच्छु शत्रुओंको पराजित करता है ॥ ६ ॥

[४४६] (आपः सिन्धुं न) जैसे नदियां समुद्रकी ओर बहती हैं, और जैसे (कुल्याः इव ह्रदम्) छोटी छोटी नालियां तालाबकी ओर बहती हैं; वैसेही (यत् सोमासः इन्द्रं अभि समक्षरन्) सोमरस इन्द्रकी ओर भली प्रकार आता है । (अस्य महः सादने विप्राः वर्धन्ति) उस समय इन्द्रके महत्त्वको यज्ञ स्थलमें विद्वान् लोग बढाते हैं, (यवं न वृष्टिः दिव्येन दानुना) जैसे स्वर्गीय वृष्टि करनेवाला पर्जन्य जौकी खेतीको बढाता है ॥ ७ ॥

वृषा न क्रुद्धः पतयद्रजःस्वा यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा अपः ।
स सुन्वते मघवा जीरदानवे ऽविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते ८
उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत् ।
वि रोचतामरुषो भानुना शुचिः स्वर्ण शुक्रं शुशुचीत सत्पतिः ९
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम १०
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ११ [२५] (४५०)

(४४)

११ कृष्ण आङ्गिरसः । इन्द्रः । जगती; १-३, १०-११ त्रिष्टुप् ।

आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान् ।
प्रत्वक्षाणो अति विश्वा सहांस्य पारेण महता वृष्ण्येन १

---

[४४७] (रजःसु वृषा न क्रुद्धः पतयत् यः) जैसे जगत्में क्रुद्ध बैल दूसरेकी ओर दौडता है, वैसेही यह इन्द्र क्रुद्ध होकर मेघके प्रति धावित होता है; और (अर्यपत्नीः इमाः अपः आ अकृणोत्) मेघोंको तोडकर अपने आश्रित इन प्रसिद्ध वृष्टियुक्त जलोंको हमारे लिये मुक्त करता है; (सः मघवा सुन्वते जीरदानवे हविष्मते मनवे ज्योतिः अविन्दत्) वह धनवान् इन्द्र सोम निचोडनेवाले, दानशील और हविर्युक्त मनुष्यको–यजमानको तेज देता है ॥ ८ ॥

[४४८] (परशुः ज्योतिषासह उत् जायताम्) इन्द्रका वज्र तेजके साथ उदित हो; (ऋतस्य सुदुघा पुराणवत् भूयाः) सत्यकी उत्पादक वाणी पूर्व कालके समान प्रगट हो; (अरुषः भानुना शुचिः वि रोचताम्) स्वयं तेजस्वी इन्द्र दीप्तिसे शोभा–सम्पन्न और शुद्ध हो; (सत्पत्तिः स्वः न शुक्रं शुशुचीत) और साधुओंका पालक इन्द्र सूर्यके समान अत्यंत प्रकाशयुक्त हो ॥ ९ ॥

[४४९] हे (पुरुहूत) अनेकोंके द्वारा आहूत इन्द्र ! (दुरेवां अमतिं वयं गोभिः तरेम) तेरी कृपासे दारिद्रतासे प्राप्त दुर्बुद्धिको हम गौ आदि पशुओंके द्वारा पार करें । और (यवेन विश्वां क्षुधं तरेम) यव आदि अन्नसे सब प्रकारकी क्षुधाकी निवृत्ति कर सकें । (राजभिः प्रथमाः धनानि) राजाओंसे हम उत्कृष्ट धन प्राप्त करें; और (अस्माकेन वृजनेन जयेम) अपने बलसे हम शत्रुओंको जीत सकें ॥ १० ॥

[४५०] (बृहस्पतिः नः पश्चात् उत उत्तरस्मात् अधरात्) बृहस्पति हमें पश्चिम–पीछेसे, उत्तर–ऊपरसे और दक्षिण–नीचेसे (अघायोः परिपातु) पापाचारी शत्रुओंसे बचावे । (उत इन्द्रः पुरस्तात् मध्यतः नः) और इन्द्र पूर्व दिशा और मध्य भागसे आनेवाले शत्रुओंसे हमारी रक्षा करे । (सखा सखिभ्यः वरिवः कृणोतु) सबका मित्र इन्द्र हम मित्रोंका प्रिय करनेके लिये हमें उत्तम धन प्रदान करे ॥ ११ ॥

[४४]

[४५१] (तूतुजानः तुविष्मान् यः विश्वा सहांसि) त्वराशील और बलवान् जो सब शत्रुओंका (अपारेण महता वृष्ण्येन प्रत्वक्षाणः अति) अपने अपार तथा महान् बलसे बलहीन–नष्ट करता है; वह (स्वपतिः इन्द्रः मदाय धर्मणा आ यातु) धनपति इन्द्र हमें उत्साहित–आनन्दित करनेके लिये रथपर चढकर हमारे इस यज्ञमें आवे ॥ १ ॥

सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ ।
शीभं राजन् त्सुपथा याह्यर्वाङ् वर्धाम ते पपुषो वृष्ण्यानि २
एन्द्रवाहो नृपतिं वज्रबाहु-मुग्रमुग्रासस्तविषास एनम् ।
प्रत्वक्षसं वृषभं सत्यशुष्म-मेमस्मत्रा सधमादो वहन्तु ३
एवा पतिं द्रोणसाचं सचेतस-मूर्जः स्कम्भं धरुण आ वृषायसे ।
ओजः कृष्व सं गृभाय त्वे अप्य-सो यथा केनिपानामिनो वृधे ४
गमन्नस्मे वसून्या हि शंसिषं स्वाशिषं भरमा याहि सोमिनः ।
त्वमीशिषे सास्मिन्ना सत्सि बर्हिष्य-नाधृष्या तव पात्राणि धर्मणा ५ [२६]

पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहूतयो ऽकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा ।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुह-मीर्मैव ते न्यविशन्त केपयः- ६

---

[४५२] हे (नृपते) मनुष्य संरक्षक इन्द्र ! (ते रथः सुष्ठामा) तेरा रथ सुघटित है; (हरी सुयमा) तेरे रथके दोनों अश्व भी सुनियंत्रित हैं; और (गभस्तौ वज्रः मिम्यक्ष) तेरे हाथमें वज्र है; हे (राजन्) राजाधिराज इन्द्र ! (शीभं सुपथा अर्वाङ् आ याहि) इतना रहनेपर शीघ्रही उत्तम मार्गसे हमारे पास आ.। (पपुषः ते वृष्ण्यानि वर्धाम) और आनेपर तुझे सोमरस पिलाकर तेरा बल और भी हम बढा देंगे ॥ २ ॥

[४५३] (नृपतिं वज्रबाहुं उग्रं प्रत्वक्षसं) मनुष्योंके पालक, वज्रबाहु, भयप्रद, शत्रुसैन्यको दुर्बल करनेवाले (वृषभं सत्यशुष्मं एनम्) अभीष्टोंके दाता और सत्य पराक्रमी इन्द्रको (आ ईं उग्रासः तविषासः सधमादः इन्द्रवाहः अस्मत्रा आ वहन्तु) उग्र, बलवान् और मदमस्त इन्द्र वाहक अश्व हमारे पास ले आवें ॥ ३ ॥

[४५४] हे इन्द्र ! (एव पतिं द्रोणसाचं सचेतसं) इस प्रकार तू रक्षक, कलशमें पूर्ण भरा हुआ, ज्ञानी-उत्साहवर्धक, (ऊर्जः स्कम्भं धरुणे आ वृषायसे) और बल संचारित करनेवाला सोमरस अपने उदरमें सिञ्चित करता है- पीता है; मुझे (ओजः कृष्व) बलशील कर; (त्वे अपि सं गृभाय) तू अपनेमेंही हमें ग्रहण कर- हमें आत्मीय बना लो; (यथा केनिपानां इनः वृधे अपि अप्सः) कारण तू बुद्धिमानोंके सुख- श्री वृद्धि करनेवाला स्वामी है ॥४॥

[४५५] हे इन्द्र ! (वसूनि अस्मे आ गमन्) हमें सब प्रकारका धन प्राप्त हों; (हि शंसिषं) कारण हम तेरी स्तुतियां करते हैं; (सोमिनः सु-आशिषं भरं आ याहि) सोमयुक्त हमारे यज्ञमें उत्तम आशीर्वाद देते हुए आगमन कर; (त्वं ईशिषे) कारण तूही सबका समर्थ स्वामी है; (सः अस्मिन् बर्हिषि आ सत्सि) वह तू हमारे इस यज्ञमें आकर विराज; (तव पात्राणि धर्मणा अनाधृष्या) तेरे पानके लिये जो सोम पात्र सज्जित रखे हुए हैं, वे किसी भी कृत्यसे किसीसेभी आक्रमित नहीं हो सकते ॥ ५ ॥

[४५६] हे इन्द्र ! (प्रथमाः देवहूतयः पृथक् प्रायन्) तेरी कृपासे जो श्रेष्ठ लोग प्राचीन समयसेही देवोंकी स्तुति करके उन्हें यज्ञमें निमन्त्रण देते हैं, वे अलग अलग देवलोकोंको प्राप्त करते हैं; वे (दुष्टरा श्रवस्यानि अकृण्वत) दुस्तर तथा अत्यंत कीर्तिजनक कर्मका सम्पादन कर लेते हैं; और (ये यज्ञियां नावं आरुहं न शेकुः) जो यज्ञ-उपासनारूपी नौकापर आरूढ नहीं हो सकते, (ते केपयः ईर्मा इव नि अविशन्त) वे पापकर्मोंमें लिप्त रहकर ऋणग्रस्त होकर नीचे पडे रहते हैं ॥ ६ ॥

एवैवापागपरे सन्तु दूढ्यो ऽश्वा येषां दुर्युज आयुयुज्रे ।
इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावने पुरूणि यत्र वयुनानि भोजना ७
गिरीँरज्रान् रेजमानाँ अधारयद् द्यौः क्रन्ददन्तरिक्षाणि कोपयत ।
समीचीने धिषणे वि ष्कभायति वृष्णः पीत्वा मद उक्थानि शंसति ८ (४५८)
इमं बिभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येनारुजासि मघवञ्छफारुजः ।
अस्मिन् त्सु ते सवने अस्त्वोक्यं सुत इष्टौ मघवन् बोध्याभगः ९
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम १०
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ११ [२७] (४६१)

---

[४५७] (एव एव अपरे दूढयः) इसी प्रकार दूसरे जो दुष्ट बुद्धि, यजन कर्म न करनेवाले लोग हैं, (येषां दुर्युजाः अश्वाः आ युयुज्रे) जिनके रथको कुमार्गमें जानेवाले अश्व जोते जाते हैं; (अपाक् सन्तु) वे अधोगामी होते हैं; नरकमें जाते हैं। (ये उपरे प्राक् दावने इत्था सन्ति) जो यजन करनेवाले पहलेसेही देवोंके लिये हवियोंका दान करनेमें तत्पर हैं, वे सचमुच स्वर्गगामी होते हैं; (यत्र वयुनानि भोजना पुरूणि) जिसमें बहुतसे ज्ञान और भोग सामग्री प्रस्तुत होती है ॥ ७ ॥

[४५८] (अज्रान् गिरीन् रेजमानान् अधारयत्) वह सर्वत्र गमनशील और कांपते हुए मेघोंको सुस्थित करता है; (द्यौः क्रन्दत्) द्यु-आकाश गर्जना करता है, (अन्तरिक्षाणि कोपयत्) और क्षुभित हो रहा है; वह (समीचीने धिषणे वि ष्कभायति) परस्पर संयुक्त द्यावा-पृथिवीको थामता है; और (वृष्णः पीत्वा मदे उकथानि शंसति) सोमरसका पान कर आनन्दोत्साहित वह उत्तम वचन कहता है ॥ ८ ॥

[४५९] हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (ते सुकृतं इमं अङ्कुशं बिभर्ति) तेरे उत्तम संस्कृत इस अंकुशको में धारण करता हूं; में तेरे प्रेरक गुणोंका वर्णन करनेवाली स्तुतियां कहता हूं; (येन शफारुजः आ रुजासि) जिससे तू दुष्ट जनोंके बलको पीडित वा नष्ट करता है; (ते अस्मिन् सवने ओक्यं सु अस्तु) इस मेरे यज्ञमें तेरा निवास सुखपूर्वक हो। हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (आभगः सुते इष्टौ बोधि) स्तुत्य तू उत्तम रीतिसे सम्पादित सोमयज्ञमें हमारी स्तुतियोंको जान ॥ ९ ॥

[४६०] हे (पुरुहूत) अनेकोंके द्वारा आहूत इन्द्र ! (दुरेवां अमतिं वयं गोभिः तरेम) तेरी कृपासे, दारिद्र्यसे प्राप्त दुर्बुद्धिको हम गौ आदि पशुओंके द्वारा पार करें। और (यवेन विश्वां क्षुधं तरेम) यव आदि अन्नसे सब प्रकारकी क्षुधाकी निवृत्ति कर सकें। (राजभिः प्रथमाः धनानि) राजाओंसे हम उत्कृष्ट धन प्राप्त करें; और (अस्माकेन वृजनेन जयेम) अपने बलसे हम शत्रुओंको जीत सकें ॥ १० ॥

[४६१] (बृहस्पतिः नः पश्चात् उत उत्तरस्मात् अधरात्) बृहस्पति हमें पश्चिम-पीछेसे, उत्तर-ऊपरसे और दक्षिण-नीचेसे (अघायोः परिपातु) पापाचारी शत्रुओंसे बचावे। (उत इन्द्रः पुरस्तात् मध्यतः नः) और इन्द्र पूर्व दिशा और मध्य भागसे आनेवाले शत्रुओंसे हमारी रक्षा करे। (सखा सखिभ्यः वरिवः कृणोतु) सबका मित्र इन्द्र हम मित्रोंका प्रिय करनेके लिये हमें उत्तम धन प्रदान करे ॥ ११ ॥

(४५)

१२ वत्सप्रिर्भालन्दनः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्नि-रस्मद् द्वितीयं परि जातवेदाः।
तृतीयमप्सु नृमणा अजस्र-मिन्धान एनं जरते स्वाधीः १
विद्मा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम विभृता पुरुत्रा।
विद्मा ते नाम परमं गुहा य-द्विद्मा तमुत्सं यत आजगन्थ २
समुद्रे त्वा नृमणा अप्स्व१न्त-र्नृचक्षा ईधे दिवो अग्न ऊधन्।
तृतीये त्वा रजसि तस्थिवांस-मपामुपस्थे महिषा अवर्धन् ३
अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन्।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्य-दा रोदसी भानुना भात्यन्तः ४

(४५)

[४६२] (प्रथमं अग्निः दिवः परि जज्ञे) प्रथम अग्नि आकाशमें सूर्यरूपमें प्रकट हुआ; (द्वितीयं जातवेदाः अस्मत् परि) अनन्तर अग्नि दूसरा 'जातवेदा' –ज्ञानी नामसे हमारे बीच पार्थिव रूपमें प्रकट हुआ; (तृतीयं नृमणाः अप्सु) फिर लोकानुग्राहक अग्नि अन्तरिक्षमें– जलमें विद्युत् रूपसे प्रकट हुआ; इस प्रकार (एनं स्वाधीः अजस्रं इन्धानः जरते) मनुष्य हितैषी अग्निको कभी बुझाया न होने देते हुए, निरन्तर प्रज्वलित रखनेवाले स्तोते स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

[४६३] हे (अग्ने) अग्नि ! (ते त्रेधा त्रयाणि विद्म) हम तेरे तीन स्थानोंमें -पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक स्थित तीन रूपोंको –अग्नि वायु और आदित्य– जानते हैं; हे अग्नि ! (ते धाम विभृता पुरुत्रा विद्म) तेरे स्थानोंको जो गुप्त रूपसे अनेक हैं, वे भी हम जानते हैं; (ते गुहा परमं यत् नाम विद्म) तेरा निगूढ परम श्रेष्ठ जो नाम है, उसको भी हम जानते हैं; (यतः आजगन्थ तं उत्सं विद्म) तू जिस उत्पत्ति स्थानसे आता है, उस कारणरूप स्थानको भी हम जानते हैं ॥ २ ॥

[४६४] हे (अग्ने) अग्नि ! (समुद्रे अप्सु अन्तः त्वा नृमणाः ईधे) समुद्रमें जलके भीतर स्थित तुझे नर-हितैषी वरुणने प्रदीप्त किया है; (नृचक्षाः दिवः ऊधन्) मनुष्योंमें ज्ञानका द्रष्टा आदित्य तुझे आकाशके मेघसे प्राप्त कर यज्ञमें प्रदीप्त करता है; (तृतीये अपां उपस्थे रजसि तस्थिवांसं त्वा) और तीसरे वृष्टि उत्पादक जलोंके मध्य लोकमें –अन्तरिक्षमें विद्युत् स्वरूपसे स्थित तुझे (महिषाः अवर्धन्) महान् मरुत् आदि स्तोता स्तुतियोंसे अधिक तेजयुक्त करते हैं ॥ ३ ॥

[४६५] (अग्निः स्तनयन् इव द्यौः अक्रन्दत्) अग्नि जैसे विद्युत् रूप पर्जन्य महान् शब्द करता है, वैसेही घोरतर शब्द करता है; (क्षामा रेरिहत् वीरुधः समञ्जन्) पृथिवी तक पहुंचकर औषधि–वनस्पतियोंका आस्वाद उसे संतप्त करता है; (सद्यः जज्ञानः इद्धः ईम् वि अख्यत्) तत्काल उत्पन्न हुआ और प्रदीप्त अग्नि स्वयं दग्ध किये हुए वस्तुजातको देखता है; (हि रोदसी अन्तः भानुना भाति) और द्यावा–पृथिवीमें क्षितिजपर किरणोंसे–अपने तेजसे शोभित होता है ॥ ४ ॥

श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः ।
वसुः सूनुः सहसो अप्सु राजा वि भात्यग्र उषसामिधानः ५
विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ।
वीळुं चिदद्रिमभिनत् परायञ्जना यदग्निमयजन्त पञ्च ६ [२८]

उशिक् पावको अरतिः सुमेधा मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि ।
इयर्ति धूममरुषं भरिभ्रदुच्छुक्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन् ७
दृशानो रुक्म उर्विया व्यद्यौद् दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः ।
अग्निरमृतो अभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौर्जनयत् सुरेताः ८
यस्ते अद्य कृणवद्भद्रशोचे ऽपूपं देव घृतवन्तमग्ने ।
प्र तं नय प्रतरं वस्यो अच्छाऽभि सुम्नं देवभक्तं यविष्ठ ९ (४७०)

---

[४६६] (श्रीणां उदारः रयीणां धरुणः) एश्वर्योत्पादक–दाता, धनोंके धारक, (मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः) अभीष्टोंको देनेवाला, सोम–संरक्षक, (वसुः सहसः सूनुः अप्सु राजा) सबको बसानेवाला, बलका पुत्र, जलमें स्थित सर्व सत्ताधारक स्वामी (उषसां अग्रे इधानः वि भाति) प्रभात वेलाओंके अग्रभागमें अग्नि होत्रके लिये प्रदीप्त होकर शोभित होता है ॥ ५ ॥

[४६७] (विश्वस्य केतुः भुवनस्य गर्भः) समस्त जगत्का प्रकाशक, जलोंमें गर्भभूत, (जायमानः रोदसी आ अपृणात्) अग्नि प्रकट होते ही द्यावा–पृथिवीको परिपूर्ण करता है; (यत् पञ्चजनाः अग्निं अयजन्त) जिस समय पांच वर्णोंके मनुष्य–सब जातियोंके लोग अग्निकी यज्ञसे उपासना करते हैं, उस समय (परायन् वीळुं चित् अद्रिं अभिनत्) सुघटित दृढ पर्वतके समान मेघका भेद करता है ॥ ६ ॥

[४६८] (उशिक् पावकः अरतिः सुमेधाः) हविकी कामना करनेवाला, सर्वशोधक, चारों ओर जानेवाला, अत्यत बुद्धिमान् (अमृतः अग्निः मर्तेषु नि धायि) और अमर अग्नि मनुष्योंमें रहता है; (धूमं इयर्ति) वह धूम उत्पन्न करता है– अनेक विध रूपोंको धारण करता है; (अरुषं भरिभ्रत् शुक्रेण शोचिषा) तेजोमय रूपको धारण कर शुक्लवर्ण कान्तिसे (द्यां इनक्षन्) द्युलोकको व्यापता है ॥ ७ ॥

[४६९] (दृशानः रुक्मः उर्विया व्यद्यौत्) प्रत्यक्ष दृश्यमान्, अत्यंत तेजस्वी और महान् यह अग्नि प्रकाशित होता है; (आयुः दुर्मर्षं श्रिये रुचानः) सर्वव्यापक असह्य तेजसे अत्यंत शोभित होता है; (अग्निः वयोभिः अमृतः अभवत्) अग्नि अन्न और वनस्पति पाकर अमर होता है; (यत् एनं सुरेताः द्यौः जनयत्) कारण यह है कि इसे बलशाली द्युलोकने उत्पन्न किया है ॥ ८ ॥

[४७०] हे (भद्रशोचे) मङ्गलमयी ज्वालावाले ! हे (यविष्ठ देव) यौवन सम्पन्न अग्निदेव ! हे (अग्ने) अग्नि ! (ते यः अद्य घृतवन्तं अपूपं कृणवत्) तेरे लिये जो यजमान घृतसे युक्त पुरोडाश प्रस्तुत करता है, (प्रतरं वस्यः अच्छ प्र नय) उस उत्कृष्ट यजमानको उत्तम धन प्रदान कर; (देवभक्तं तं सुम्नं अभि नय) और देवोंको स्तुति तथा हवि अर्पण करनेवाले उस यजमानको सब प्रकारसे सुखकी ओर ले जा ॥ ९ ॥

आ तं भंज सौश्रवुसेष्वंग्न उुक्थउंक्थ आ भंज शस्यमाने ।
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भंवा त्युज्जातेनं भिनवुदुज्जनिंत्वैः १०
त्वामंग्ने यजमाना अनु द्यून् विश्वा वसुं दधिरे वार्याणि ।
त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजं गोमंन्तमुशिजो वि वंव्रुः ११
अस्ताव्यग्निर्नरां सुशेवो वैश्वानर ऋषिभिः सोमंगोपाः ।
अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धुत्त रयिमुस्मे सुवीरंम् १२ [२९] (४७३)

॥इति सप्तमोऽष्टकः ॥७॥

॥ अथाष्टमोऽष्टकः ॥८॥

[प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ व० १-३०] (४६)

१० वत्सप्रिर्भालन्दनः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

प्र होता जातो महान् नंभोवि न्नृषद्वा सीददुपामुपस्थें ।
दधिर्यो धायि स ते वयांसि यन्ता वसूनि विधते तनूपाः १
इमं विधन्तो अपां सधस्थें पशुं न नुष्टं पदैरनुं ग्मन् ।
गुहा चतंन्तमुशिजो नमोंभि रिच्छन्तो धीरा भृगवोऽविन्दन् २

---

[४७१] हे (अग्ने) अग्निदेव ! (सौश्रवसेषु तं आ भज) तू उत्तम अन्नके साथ जिस समय श्रेष्ठ शास्त्र-विहित संपूर्ण कर्म अनुष्ठित होता है, उसी समय उस यजमानको उत्तम अभीष्ट फल प्रदान कर; (शस्यमाने उक्थे उक्थे आ भज) और स्तूयमान प्रत्येक वेदमें तू उसे इष्ट फल दे (सूर्ये प्रियः अग्नौ प्रियः भवाति) यह यजमान स्तोता सूर्यको प्रिय हो, अग्निको भी प्रिय हो (जातेन उत् जनित्वैः भिनदत्) उसके जो पुत्र है वा जो होगा, उसके साथ वह शत्रु संहार करे ॥ १० ॥

[४७२] हे (अग्ने) अग्नि ! (अनु द्यून् त्वां यजमानाः विश्वा वार्याणि वसु दधिरे) प्रतिदिन तुझे तेरे भक्त सब प्रकारकी उत्तमोत्तम संपत्ति अर्पण करते हैं; (त्वया सह द्रविणं इच्छमानाः उशिजः गोमन्तं व्रजं वि वव्रुः) तेरे साथ एकत्र होकर गो रूप धनकी इच्छा करनेवाले विद्वान् देवोंने गायोंसे भरे गोष्ठोंका उद्घाटन किया था ॥११॥

[४७३] (नरां सुशेवः वैश्वानरः सोमगोपाः अग्निः ऋषिभिः अस्तावि) मनुष्योंमें सेवन योग्य नेता और सोम रक्षक बलवान् अग्निकी ऋषियोंसे स्तुति की जाती है; (अद्वेषे द्यावा पृथिवी हुवेम) द्वेषरहित द्यावा-पृथिवीकी हम प्रार्थना करते हैं, हम उन्हें बुलाते हैं; हे (देवाः) देवो ! (अस्मे सुवीरं रयिं धत्त) हमें उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त धन प्रदान करो ॥ १२ ॥

[४६]

[४७४] (यः नृषद्वा उपस्थे) जो अग्नि मनुष्यों वा विद्युत् रूपसे अन्तरिक्षमें रहता है, वह (महान् नभोवित् होता जातः) गुणोंसे पूजनीय, अन्तरिक्ष-आकाशके ज्ञानी-आकाशमें अग्निका जन्म हुआ है, इस कारण यजमानोंके होमका करानेवाला हुआ है; (अपां उपस्थे सीदत्) जलोंसे- समस्त लोकोंके ऊपर सर्वतारक होकर विराजता है; (यः दधिः धायि) यज्ञधारक अग्नि वेदोंपर रखा गया है- (सः विधते ते वयांसि वसूनि यन्ता) वह अग्नि कर्म करनेवाले तुझ भक्तको अन्न और सब प्रकारका धन देनेवाला हो; और (तनूपाः) वह तेरा देहरक्षक हो ॥ १ ॥

[४७५] (इमं अपां सधस्थे विधन्तः नष्टं पशुं न पदैः अनु ग्मन्) जलके बीच निगूढ इस अग्निको विशेष रूपसे सेवा-उपासना करनेवाले ऋषियोंने, चोरोंसे अपहृत पशुको जिस प्रकार उसके पदचिन्होंसे पता लगाते हैं उसी प्रकार, अपने स्तुतिवचनोंसे खोजा; (गुहा चतन्तं उशिजः नमोभिः इच्छन्तः) गुहामें एकान्त स्थानमें-गुप्तरूपसे

इमं त्रितो भूर्यविन्ददिच्छन् वैभूवसो मूर्धन्यघ्न्यायाः ।
स शेवृधो जात आ हर्म्येषु नाभिर्युवा भवति रोचनस्य ३

मन्द्रं होतारमुशिजो नमोभिः प्राञ्चं यज्ञं नेतारमध्वराणाम् ।
विशामकृण्वन्नरतिं पावकं हव्यवाहं दधतो मानुषेषु ४

प्र भूर्जयन्तं महां विपोधां मूरा अमूरं पुरां दर्माणम् ।
नयन्तो गर्भं वनां धियं धुर्हिरिश्मश्रुं नार्वाणं धनर्चम् ५ [१]

नि पस्त्यासु त्रितः स्तभूयन् परिवीतो योनौ सीददन्तः ।
अतः संगृभ्या विशां दमूना विधर्मणायन्त्रैरीयते नॄन् ६

अस्याजरासो दमामरित्रा अर्चद्धूमासो अग्नयः पावकाः ।
श्वितीचयः श्वात्रासो भुरण्यवो वनर्षदो वायवो न सोमाः ७

विद्यमान अग्निको उसके प्रेमी भक्त नमन, स्तुति वचनासे इच्छा करते हुए (धीराः भृगवः अविन्दन्) बुद्धिमान् तपस्वी भृगुवंशियोंने प्राप्त किया ॥ २ ॥

[४७६] (इदं भूरि वैभूवसः त्रितः इच्छन्) इस महान् अग्निको विभूवसके पुत्र त्रित ऋषिने पानेकी इच्छा करके (अघ्न्यायाः मूर्धनि अविन्दत्) भूमिपर पाया (सः शेवृधः हर्म्येषु आ जातः) वह अग्नि सुखका वर्धक और यजमानोंके गृहोंमें उत्पन्न हुआ; (युवा रोचनस्य नाभिः भवति) और बलवान् युवावत् होकर तेजसे यज्ञ-स्वर्ग --फलका सूर्यवत् केन्द्र होता है ॥ ३ ॥

[४७७] (मन्द्रं होतारं प्राञ्चं यज्ञं अध्वराणां नेतारम्) उत्साह-आनन्द वर्धक, सबके सुखदाता, अति पूज्य, यजनीय, यज्ञके प्रापक, (अरतिं पावकं हव्यवाहम्) सदा यज्ञमें उपस्थित, शोधक, हविको ले जानेवाले (मानुषेषु दधतः विशां) मनुष्योंमें श्रेष्ठ अधिपति-स्वामी अग्निको (उशिजः नमोभिः अकृण्वन्) चाहनेवाले-अभिलाषी ऋत्विजोंने स्तुतियोंसे-नमस्कारोंसे प्रसन्न किया ॥ ४ ॥

[४७८] हे स्तोता ! तू (जयन्तं महान् विपोधां प्र भूः) शत्रुओंको जीतनेवाले, महान्, बुद्धिमान्-विद्वान्-लोगोंके धारक अग्निकी स्तुति गान करनेके लिये समर्थ हो; (मूराः अमूरं पुरां दर्माणम्) और सब अज्ञ जन ज्ञानी, पुरियों-नगरोंके विध्वंसक (गर्भं वनाम् हिरिश्मश्रुं नार्वाणं न धनर्चम्) अरणिगर्भ- सर्वत्र अन्तर्भूत, स्तुत्य, सुंदर केशवाले तेजस्वी अश्वके समान शत्रुहिंसक पूजनीय (नयन्तः धियं धुः) और प्रीति स्तोत्र अग्निको हवि अर्पण करके अपने कर्म पा लेते हैं ॥ ५ ॥

[४७९] (त्रितः स्तभूयन् परिवीतः पस्त्यासु) गार्हपत्यादि त्रित अग्नि यजमान गृहोंको स्थिर करनेकी इच्छा करनेवाला, ज्वालाओंसे व्याप्त होकर, यज्ञ गृहमें (योनौ अन्तः निसीदत्) अपनी वेदीपर बैठता है; (अतः विशां संगृभ्य दमूनाः) यहां प्रजा द्वारा प्रदत्त हवि आदि लेकर देवोंके लिये दानेच्छुक होकर (विधर्मणा यन्त्रैः नॄन् ईयते) वह शत्रुओंका दमन करके देवोंके पास जाता है ॥ ६ ॥

[४८०] (अस्य अजरासः दमां अरित्राः अर्चद्-धूमासः) यजमान भक्तके अजर, शत्रुओंसे रक्षक, अर्चनीय, धूम-ज्वालाओंवाला, (पावकाः श्वितीचयः श्वात्रासः भुरण्यवः) शोधक, निर्मल, तत्काल सहाय्य करनेवाला, भरण-शील (वनः-सदः वायवः न सोमाः) वनमें रहनेवाला, वायु उत्साहवर्धक और सोमके समान फल देनेवाला है ॥ ७ ॥

प्र जिह्वया भरते वेपो अग्निः प्र वयुनानि चेतसा पृथिव्याः ।
तमायवः शुचयन्तं पावकं मन्द्रं होतारं दधिरे यजिष्ठम् ८
द्यावा यमग्निं पृथिवी जनिष्टा मापस्त्वष्टा भृगवो यं सहोभिः ।
ईळेन्यं प्रथमं मातरिश्वा देवास्ततक्षुर्मनवे यजत्रम् ९
यं त्वा देवा दधिरे हव्यवाहं पुरुस्पृहो मानुषासो यजत्रम् ।
स यामन्नग्ने स्तुवते वयो धाः प्र देवयन् यशसः सं हि पूर्वीः १० [२] (४८३

(४७)

८ सप्तगुराङ्गिरसः । वैकुण्ठ इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

जगृभ्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसुपते वसूनाम् ।
विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोना मस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः १
स्वायुधं स्ववसं सुनीथं चतुःसमुद्रं धरुणं रयीणाम् ।
चर्कृत्यं शंस्यं भूरिवार मस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः २

[४८१] जो (अग्निः जिह्वया वेपः प्र भरते) अग्नि ज्वालासे अपने कर्मको धारण करता है और जो(पृथिव्याः वयुनानि चेतसा प्र भरते) पृथिवीके रक्षणके लिये अनुग्रह पूर्वक स्तोत्रोंको धारण करता है, (तं आयवः शुचयन्तं पावकं मन्द्रं) उस गतिशील मनुष्य तेजस्वी, परम पवित्र-शोधक, स्तुत्य, (होतारं यजिष्ठं दधिरे) ऐश्वर्योंके दाता और अत्यंत पूजनीय अग्निको धारण करते हैं ॥ ८ ॥

[४८२] (यं अग्निं द्यावा पृथिवी जनिष्टाम्) जिस अग्निको द्यावा पृथिवीने उत्पन्न किया, (भृगवः यं सहोभिः आपः त्वष्टा) भृगुओंने जिसे स्तोत्रादि साधनोंसे प्राप्त किया था, और जल विद्युत्‌रूपसे जिसे पाते हैं, त्वष्टाने जिसे उत्पन्न किया था; (मातरिश्वा इळेन्यं प्रथमम्) वायुने स्तुत्य मुख्यको उत्पन्न किया था, (देवाः यजत्रं मनवे ततक्षुः) और अन्य समस्त देवोंने जिस यज्ञार्ह अग्निको मनुष्यके हितार्थ निर्माण किया है ॥ ९ ॥

[४८३] हे अग्निदेव ! (यं हव्यवाहं त्वा देवाः दधिरे) जिस हव्यवाह तुझको देवोंने धारण किया है, (मानुषासः पुरुस्पृहः यजत्रं) अनेक कामनाओंकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंने पूजार्ह तुझे स्वीकृत किया है; हे (अग्ने) अग्नि ! (सः यामन् स्तुवते वयः धाः) वह तू यज्ञमें स्तुति करनेवाले हमें अन्न दो; (देवयन् पूर्वीः यशसः सं) देवभक्त यजमान तेरी कृपासे बहुत यश-कीर्ति प्राप्त करता है ॥ १० ॥

[४७]

[४८४] हे (वसूनां वसुपते इन्द्र) धनोंके स्वामी इन्द्र ! (ते दक्षिणं हस्तं वसूयवः जगृभ्म) तेरे दाहिन हाथको धनकी इच्छा करनेवाले हम ग्रहण करते हैं; हे (शूर) शूर इन्द्र ! (त्वा गोनां गोपतिं विद्म) समस्त गौओंके स्वामी करके हम जानते हैं; (अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः) तू हमें आश्चर्यकारक और कामपूरक धन प्रदान कर ॥ १ ॥

[४८५] (स्वायुधं स्ववसं सुनीथं) शोभन वज्रादि आयुधोंसे सम्पन्न, उत्तम रक्षा करनेवाला, सुनयन, (चतुः समुद्रं धरुणं रयीणां चर्कृत्यं) चारों समुद्रोंको यशसे व्याप्त करनेवाला, धारक, बार बार धनोंका सम्पादक, (शंस्यं भूरिवारम्) स्तुत्य और दुःखोंका निवारक तुझे हम जानते हैं; (अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः) तू हमें सुखदायक और अद्‌भुत धन प्रदान कर ॥ २ ॥

सुब्रह्माणं देववन्तं बृहन्त मुरुं गभीरं पृथुबुध्नमिन्द्र ।
श्रुतऋषिमुग्रमभिमातिषाह मस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ३
सनद्वाजं विप्रवीरं तरुत्रं धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम् ।
दस्युहनं पूर्भिदमिन्द्र सत्य मस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ४
अश्वावन्तं रथिनं वीरवन्तं सहस्रिणं शतिनं वाजमिन्द्र ।
भद्रव्रातं विप्रवीरं स्वर्षा मस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ५ [३]

प्र सप्तगुमृतधीतिं सुमेधां बृहस्पतिं मतिरच्छा जिगाति ।
य आङ्गिरसो नमसोपसद्यो ऽस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ६
वनीवानो मम दूतास इन्द्रं स्तोमाश्चरन्ति सुमतीरियानाः ।
हृदिस्पृशो मनसा वच्यमाना अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ७
यत् त्वा यामि दद्धि तन्न इन्द्र बृहन्तं क्षयमसमं जनानाम् ।
अभि तद् द्यावापृथिवी गृणीता मस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ८ [४] (४९१)

[४८६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सुब्रह्माणं देववन्तं बृहन्तं उरुं) तुझे हम स्तुत्य, देवभक्त, महान्, व्यापक, (गभीरं पृथुबुध्नं श्रुतऋषिं) गंभीर, विस्तृत, प्रथितज्ञानी, (उग्रं अभिमातिषाहं) तेजस्वी और शत्रु-दमनकर्ता जानते हैं (अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः) तू हमें पूज्य और बलवान् पुत्ररूपी धन दे ॥ ३ ॥

[४८७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सनद्वाजं विप्रवीरं तरुत्रं) अन्नयुक्त, सर्वोत्कृष्ट मेधावी, तारक (धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम्) धनपूरक, वर्धमान-उत्कर्षशाली, उत्तम बलशाली, (दस्युहनं पूः भिदम् सत्यं विद्म) शत्रुहन्ता, शत्रुके नगरोंको उध्वस्त करनेवाला और सत्य कर्मोंको करनेवाला तुझे हम जानते हैं। (अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः) हमें बलवान्, कामपूरक पुत्ररूपी धन दे ॥ ४ ॥

[४८८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अश्वावन्तं रथिनं वीरवन्तं) अश्वों, रथ और वीर योद्धाओंसे सम्पन्न, (सहस्रिणं शतिनं वाजम्) सैकडों हजारों सेवकोंसे युक्त, बलवान्, (भद्रवातं विप्रवीरं स्वर्षां) कल्याणकारी जनोंसे युक्त, अत्यंत श्रेष्ठ वीर और सबको सुखदाता करके हम तुझे जानते हैं। (अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः) तू हमें अद्भुत और बलवान् पुत्ररूपी धन दे ॥ ५ ॥

[४८९] (ऋतधीतिं सुमेधां बृहस्पतिं) सत्यकर्मा, शोभन-प्रज्ञ, बृहत् मन्त्रके स्वामी (सप्तगुं मतिः अच्छा जिगाति) मुझ सप्तगुको उत्तम ज्ञानवती बुद्धि प्राप्त हो; (यः आङ्गिरसः नमसा उपसद्यः) जो आङ्गिरस कुलोत्पन्न में नमस्कार करके देवोंके पास अनुग्रहके लिये गया; (अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः) हमें आश्चर्यमय और बलवान् धन दे ॥ ६ ॥

[४९०] (वनीवानः मम दूतासः स्तोमाः) प्रेम युक्त प्रार्थनासे भरी मेरी दूतसदृश स्तुतियां (सुमतीः इयानाः इन्द्रं चरन्ति) सद्बुद्धिकी इच्छा करके इंद्रके पास पहुंचें; (हृदिस्पृशः मनसा वच्यमानाः) ये हृदय स्पर्शी और अंतःकरणपूर्वक तैयार की गई हैं; (अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः) हमें सुखकारी और अद्भुत ऐश्वर्य प्रदान कर ॥७॥

[४९१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वा यत् यामि) मैं तुझसे मांगता हूं, (नः तत् दद्धि) हमें वह प्रदान कर। (बृहन्तं क्षयं जनानां असमम्) विशाल-निवास-स्थान-गृह, जो समस्त लोगोंमें श्रेष्ठ हो, दे। (तत् द्यावापृथिवी अभि गृणीताम्) उसकी द्यावा-पृथिवी-प्रजा-सर्वत्र स्तुति करें; (अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः) हमें आश्चर्यमय सुखदायी और बलयुक्त धन दे ॥ ८ ॥

(४८)

११ वैकुण्ठ इन्द्रः । इन्द्रः । जगती; ७, १०-११ त्रिष्टुप्।

अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पति॒रहं धनानि सं जयामि शश्वतः ।
मां हवन्ते पितरं न जन्तवो ऽहं दाशुषे वि भजामि भोजनम् १
अहमिन्द्रो रोधो वक्षो अथर्वण॒स्त्रिताय गा अजनयमहेरधि ।
अहं दस्युभ्यः परि नृम्णमा ददे गोत्रा शिक्षन् दधीचे मातरिश्वने २
मह्यं त्वष्टा वज्रमतक्षदायसं मयि देवासोऽवृजन्नपि क्रतुम् ।
ममानीकं सूर्यस्येव दुष्टरं मामार्यन्ति कृतेन कर्त्वेन च ३ (४९४)
अहमेतं गव्ययमश्व्यं पशुं पुरीषिणं सायकेना हिरण्ययम् ।
पुरू सहस्रा नि शिशामि दाशुषे यन्मा सोमास उक्थिनो अमन्दिषुः ४
अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽव तस्थे कदा चन ।
सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन ५ [५]

---

[४८]

[४९२] (अहं वसुनः पूर्व्यः पतिः भुवम्) में धनका मुख्य स्वामी हूं; (अहं शश्वतः धनानि सं जयामि) में अनेक शत्रुओंके धनोंको एक साथ जीतता हूं । (मां जन्तवः पितरं न हवन्ते) मुझे सब प्राणिमात्र, जैसे पिताको पुत्र बुलाते हैं, वैसेही बुलाते हैं; (अहं दाशुषे भोजनं वि भजामि) में दानशील यजमानको अन्नादि ऐश्वर्य देता हूं ॥१॥

[४९३] (अहं इन्द्रः अथर्वणः वक्षः रोधः) में इन्द्रने अथर्वण पुत्र दधिचीका शिर काट डाला था; (त्रिताय अहेः अधि गाः अजनयन्) कुएंमें गिरे त्रितके उद्धारके लिये मैंने मेघसे जल उत्पन्न किया था; (अहं दस्युभ्यः नृम्णं आ ददे) मैंने शत्रुओंसे धन लिया था; (मातरिश्वने दधीचे गोत्रा शिक्षन्) मातरिश्वाके पुत्र दधीचिके लिये बरसनेकी इच्छासे जलरक्षक मेघोंको बरसाया था ॥ २ ॥

[४९४] (मह्यं त्वष्टा आयसं वज्रं अतक्षत्) मेरे लिये त्वष्टाने लोहेका वज्र बनाया था; (मयि देवासः क्रतुं अपि अवृजन्) मेरे लिये देवताएं यज्ञ-कर्म करते हैं; (मम अनीकं सूर्यस्य इव दुष्टरम्) मेरी सेना सूर्यके समान दुस्तर, दुर्गम्य है; (माम् कृतेन कर्त्वेन च आर्यन्ति) मुझे ही सब लोग किये सब कर्मसेही प्राप्त होते हैं ॥३॥

[४९५] (यत् मा सोमासः उक्थिनः अमन्दिषु) जब मुझको यजमान सोम और स्तोत्रोंसे तृप्त प्रसन्न करते हैं, तब मैं (पुरू सहस्रा दाशुषे नि शिशामि) अनेक सहस्रों शस्त्र- आयुधोंको, दानशील-हवि अर्पण करनेवाले यजमानके शत्रुओंके विनाशके लिये तेज करता हूं । (अहं एतं गव्ययं अश्व्यं हिरण्ययं पुरीषिणं पशुं सायकेन) और मैं शत्रुके इस गौ, अश्व, सुवर्ण और उदक-क्षीर आदिसे युक्त पशुओंको आयुधसे जीतता हूं ॥ ४ ॥

[४९६] (अहं इन्द्रः धनं न इत् परा जिग्ये) सब धनोंका स्वामी मैं इन्द्र अपने धनको कभी हार नहीं सकता; और (मृत्यवे कदा चन न अव तस्थे) मैं मृत्युके नीचे कभी भी अपनेको हारा हुआ नहीं पाता हूं; तथा मेरे भक्त कभी मृत्युपात्र नहीं होते । इसलिये (सोमं सुन्वन्तः वसु मा इत् याचत) सोम तैयार करनेवाले यजमानो, तुम्हें अपेक्षित धन मुझसेही मांगो; हे (पूरवः) मनुष्यो ! (मे सख्ये न रिषाथन) मेरी मैत्री कभी नष्ट नहीं करें ॥५॥

अहमेताञ्छाश्वसतो द्वाद्वे न्द्रं ये वज्रं युधयेऽकृण्वत ।
आह्वयमानाँ अव हन्मनाहनं दृळ्हा वदन्ननमस्युर्नमस्विनः ६

अभीदमेकमेको अस्मि निष्षाळभी द्वा किमु त्रयः करन्ति ।
खले न पर्षान् प्रति हन्मि भूरि किं मा निन्दन्ति शत्रवोऽनिन्द्राः ७

अहं गुङ्गुभ्यो अतिथिग्वमिष्करमिषं न वृत्रतुरं विक्षु धारयम् ।
यत् पर्णयघ्न उत वा करञ्जहे प्राहं महे वृत्रहत्ये अशुश्रवि ८

प्र मे नमी साप्य इषे भुजे भूद्गवामेषे सख्या कृणुत द्विता ।
दिद्युं यदस्य समिथेषु मंहयमादिदेनं शंस्यमुक्थ्यं करम् ९

प्र नेमस्मिन् ददृशे सोमो अन्तर्गोपा नेममाविरस्था कृणोति ।
स तिग्मशृङ्गं वृषभं युयुत्सन् द्रुहस्तस्थौ बहुले बद्धो अन्तः १०

---

[४९७] (ये युधये इन्द्रं वज्रं अकृण्वत) जो शत्रु युद्ध करनेके लिये शत्रुनाशक वज्रधारी इन्द्रको आवाहित करते हैं, (अहं एतान् शाश्वसतः द्वा द्वा अहनम्) मैं इन्द्र उन प्राणधारी प्रबल शत्रुओंके जोडोंको नष्ट करता हूं । (आह्वयमानान् नमस्विनः अनमस्युः दृळ्हा वदन् हन्मना अव अहनम्) उन आह्वान करनेवाले शत्रुओंका उन्हें बलसे नत करके, और स्वयं न झुक कर, भयंकर वल्गना करनेवाले उनको नष्ट करनेवाले उपायसे मार गिराता हूं ॥ ६ ॥

[४९८] (इदं एकः एकं अभि अस्मि) अभी मैं अकेला ही एक शत्रुको पराजित कर सकता हूं; (निष्षाद् द्वा अभि) शत्रुरहित मैं दो असह्य शत्रुको भी पराजित कर सकता हूं; (किमु त्रयः करन्ति) इतना ही नहीं तीन ही शत्रु आवें, तो भी मैं उनको भी पराजित कर सकता हूं; वे मेरा कुछ भी बिगाड नहीं सकते । (खले न पर्षान् भूरि प्रति हन्मि) जैसे किसान धान मलनेके समय सूखे गेहूंके पौधोंको मल डालता है, वैसेही निष्ठुर शत्रुओंको मैं मार डालता हूं; (अतिन्द्राः शत्रवः मा किं निन्दन्ति) इन्द्र विरोधी शत्रु मेरी क्या निन्दा करते हैं ? ॥ ७ ॥

[४९९] (अहं गुङ्गुभ्यः अतिथिग्वम् इष्करम् वृत्रतुरम्) मैंने गुंगुओंके देशके रक्षणके लिये अतिथिग्वके पुत्र दिवोदासको– जो अन्न उत्पादक और शत्रुसंहारक थे– (विक्षु इषं न धारयम्) प्रजाओंके बीच अन्नके समान रक्षाके लिये प्रतिष्ठित किया था; (यत् पर्णयघ्ने उत वा करञ्जहे) जिससे पर्णय और करञ्ज नामके शत्रुओंके वधसे (महे वृत्रहत्ये अशुश्रवि) मैं महान् संग्राममें प्रसिद्ध हुआ था ॥ ८ ॥

[५००] (मे नमी साप्यः इषे भुजे प्र भूत्) मेरा स्तोता सबके लिये आश्रयणीय, अन्नवान् और भोगवाला होता है; (गवां एषे सख्या द्विता कृणुत) उस मेरे स्तोता भक्तको लोग गौंओ प्राप्त करनेके लिये और मित्रताके लिये– दो प्रकारसे स्वीकार करते हैं; (यत् अस्य समिथेषु दिद्युं मंहयम्) जो मैं इसको संग्रामोंमें विजयके लिये शत्रुनाशक बल और आयुध प्रदान करता हूं; (आत् इत् एनं शंस्यं उक्थ्यं करम्) अनन्तर मैं इसको स्तुत्य और प्रसिद्ध करता हूं ॥ ९ ॥

[५०१] (नेमस्मिन् अन्तः सोमः प्र ददृशे) दोमेंसे एकके पास इन्द्रने सोमको देखा; (नेमं गोपाः अस्था आविः कृणोति) उसके लिये पालनकर्ता इन्द्र अपने क्षेपण–शस्त्रसे–वज्रसे अपनेको प्रकट करता है– शत्रुओंसे अपराजित करता है । (सः तीक्ष्णशृंगं वृषभं युयुत्सन् बहुले अन्तः बद्धः) जिसके पास सोम नहीं दीखता है वह तीखे सींगवाले बैलके समान युद्धेच्छ शत्रुके सामने बहुत गहरे अन्धकारमें बद्ध होकर (द्रुहः तस्थौ) खडा हो गया ॥ १० ॥

आदित्यानां वसूनां रुद्रियाणां देवो देवानां न मिनामि धाम ।
ते मा भद्राय शवसे ततक्षु रपराजितमस्तृतमषाळ्हम् ११ [६] (५०२)

(४९)

११ वैकुण्ठ इन्द्रः । इन्द्रः । जगती; २, ११ त्रिष्टुप् ।

अहं दां गृणते पूर्व्यं वस्व हं ब्रह्म कृणवं मह्यं वर्धनम् ।
अहं भुवं यजमानस्य चोदिता ऽयज्वनः साक्षि विश्वस्मिन् भरे १
मां धुरिन्द्रं नाम देवता दिवश्च ग्मश्चापां च जन्तवः ।
अहं हरी वृषणा विव्रता रघू अहं वज्रं शवसे धृष्ण्वा ददे २
अहमत्कं कवये शिश्नथं हथै रहं कुत्समावमाभिरूतिभिः ।
अहं शुष्णस्य श्नथिता वधर्यमं न यो रर आर्यं नाम दस्यवे ३
अहं पितेव वेतसूँरभिष्टये तुग्रं कुत्साय स्मदिभं च रन्धयम् ।
अहं भुवं यजमानस्य राजनि प्र यद्भरे तुजये न प्रियाधृषे ४ (५०६)

---

[५०२] (आदित्यानां वसूनां रुद्रियाणां देवानां) आदित्य, वसु, रुद्र, वा मरुत् और देवोंके (धाम देवः न मिनामि) स्थान देव इन्द्र नष्ट नहीं करता; (ते मा भद्राय शवसे ततक्षुः) वे देव मुझको कल्याण और बल प्रदान करनेका अनुग्रह करें; (अपराजितं अस्तृतं अषाळ्हम्) मैं अपराजित, उत्साहयुक्त और दृढ हूं ॥ ११ ॥

[४९]

[५०३] (अहं गृणते पूर्व्यं वसुं दाम्) मैं इन्द्र स्तुति करनेवालेको सनातन वैभव और निवास स्थान देता हूं; (अहं ब्रह्म मह्यं वर्धनं कृणवम्) मैंही स्तुतियुक्त कर्म मेरे उत्कर्षके लिये करता हूं– यज्ञानुष्ठान मेरे लिये वर्धक है; (अहं यजमानस्य चोदिता भुवम्) मैं, मेरे लिये हवन करनेवाले यजमानके धनका प्रेरक हूं; (अयज्वनः विश्वस्मिन् भरे साक्षि) मैं अयज्ञशीलको सारे संग्राममें पराजित करता हूं ॥ १ ॥

[५०४] (मां इन्द्रं दिवः ग्मः च अपां च) मुझ इन्द्रको ही द्युलोक, पृथिवी और अन्तरिक्ष इन तीनों लोकोंमें (जन्तवः देवता नाम धुः) उत्पन्न समस्त प्राणी देव–उपास्य रूपसे धारण करते हैं; (अहं हरी वृषणा विव्रता रघू) मैं यज्ञ वा संग्राममें जानेके लिये हरितवर्ण, बलवान्, विविधकर्मा और वेगवान् अश्वोंको रथमें जोतता हूं । (अहं धृष्णु वज्रं शवसे आ ददे) और मैं धर्षक– शत्रुओंको पराभूत करनेवाले वज्रको बलके लिये धारण करता हूं ॥ २ ॥

[५०५] (अहं कवये अत्कं हथैः शिश्नथम्) मैंने उशना ऋषिके कल्याणके लिये अत्क– आच्छादक शत्रुपुत्रको अनेक प्रकारके आयुधोंसे ताडित किया था; (अहं कुत्सं आभिः ऊतिभिः आवम्) मैंने कुत्स नामक ऋषिकी उसके स्तुतियुक्त मन्त्रोंके कारण नाना प्रकारके रक्षाकारिणी कार्योंसे रक्षा की थी; (अहं शुष्णस्य श्नथिता) मैंने शुष्ण नामक असुरको मारा था; (वधः यमम्) उसके वधके लिये मैंने वज्र धारण किया था; (यः दस्यवे आर्यं नाम न ररे) वह मैं जो दस्युओंको आर्य–श्रेष्ठ नाम प्रदान नहीं करता ॥ ३ ॥

[५०६] (अहं पितेव वेतसून् अभिष्टये कुत्साय) मैंने पिताके समान वेतसु नामका देश, उत्तम इच्छा करनेवाले कुत्स ऋषिके वशमें (तुग्रं स्मदिभं च रन्धयम्) तुग्र और स्मदिभके साथही कर दिया था; (अहं यजमानस्य राजनि भुवम्) मैं यजमान भक्तको श्री सम्पन्न करता हूं; (यत् तुजये न आधृषे प्रियाणि प्र भरे) जिस प्रकार पुत्रके लिये पिता इष्ट करता है, उसी प्रकार शत्रुओंको पराभूत करनेके लिये मैं तुम्हारा प्रिय करता हूं ॥ ४ ॥

+

अहं रन्धयं मृगयं श्रुतर्वणे यन्माजिहीत वयुना चनानुषक् ।
अहं वेशं नम्रमायवेऽकर—महं सव्याय पड्गृभिमरन्धयम् ५ [७]

अहं स यो नववास्त्वं बृहद्रथं सं वृत्रेव दासं वृत्रहारुजम् ।
यद्वर्धयन्तं प्रथयन्तमानुषग्—दूरे पारे रजसो रोचनाकरम् ६

अहं सूर्यस्य परि याम्याशुभिः प्रैतशेभिर्वहमान ओजसा ।
यन्मा सावो मनुष आह निर्णिज ऋधक् कृषे दासं कृत्व्यं हथैः ७

अहं सप्तहा नहुषो नहुष्टरः प्राश्रावयं शवसा तुर्वशं यदुम्
अहं न्य१न्यं सहसा सहस्करं नव व्राधतो नवतिं च वक्षयम् ८

अहं सप्त स्रवतो धारयं वृषा द्रवित्न्वः पृथिव्यां सीरा अधि ।
अहमर्णांसि वि तिरामि सुक्रतु—र्युधा विदं मनवे गातुमिष्टये ९

अहं तदासु धारयं यदासु न देवश्चन त्वष्टाधारयद्रुशत् ।
स्पार्हं गवामूधःसु वक्षणास्वा मधोर्मधु श्वात्र्यं सोममाशिरम् १०

[५०७] (अहं श्रुतर्वणे मृगयं रन्धयम्) मैंने श्रुतर्वण महर्षिके लिये मृगय असुरको वशमें कर दिया था; (यत् मा अजिहीत) जिससे श्रुतर्वा मेरी ओर आया था; (वयुना चन आनुषक्) और उसने मेरी स्तुति की थी ! (अहं आयवे वेशं नम्रं अकरम्) मैंने आयुके वशमें वेशको नम्र कर दिया था और (अहं सव्याय पड्गृभिं अरन्धयम्) मैंने सव्यके वशमें पड्गृभिको किया था ॥ ५ ॥

[५०८] (अहं सः वृत्रहा यः नववास्त्वं बृहद्रथं वृत्रेव दासं सं अरुजम्) मैं वह जो वृत्रका नाश करनेवाला हूं, जिसने नववास्त और बृहद्रथका जैसे वृत्रने दासोंको नष्ट किया था, वैसेही वध किया था; जिस समय (वर्धयन्तं प्रथयन्तं आनुषक् रोचना रजसः दूरे पारे अकरम्) उत्साही और प्रसिद्ध शत्रु मुझसे लडनेके लिये आते हैं, उस समय मैं उन्हें इस उज्ज्वल संसारसे बाहर निकाल देता हूं ॥ ६ ॥

[५०९] (अहं सूर्यस्य आशुभिः एतशेभिः) मैं सूर्य देवके शीघ्रगामी अश्वोंसे वहमानः ओजसा प्र परि यामि) ढोये जाकर अपने तेज—सामर्थ्यसे चारों ओर प्रदक्षिणा करता हूं; (यत् मा सावः मनुषः निर्णिजे आह) जब मुझे स्तुतिशील मनुष्य यज्ञ सिद्धि प्रीत्यर्थ सोम—सेचनके लिये बुलाते हैं, तब (कृत्व्यं दासं हथैः ऋधक् कृषे) मैं नाश करने योग्य शत्रुको हथियारोंसे दूर करता हूं ॥ ७ ॥

[५१०] (अहं सप्तहा) मैं सात शत्रुओंके नगरोंको उध्वस्त करनेवाला, (नहुषः नहुष्टरः) बलवानोंमें बलवान् मैंने (तुर्वशं यदुं शवसा प्राश्रावयम्) तुर्वश और यदुको बलसे कीर्तिमान् किया है; और (अहं अन्यं सहसा सहः करम्) मैंने अन्य स्तोताओंको बलसे बलवान किया है; (नव नवतिं च व्राधतः वक्षयम्) और निन्यानवे वर्धमान शत्रुओंको नष्ट किया है ॥ ८ ॥

[५११] (वृषा अहं सप्त स्रवतः धारयम्) जलवर्धक मैं बहनेवाली सात नदियोंको धारण करता हूं; (पृथिव्यां द्रवित्न्वः सीराः सुक्रतुः अहम्) पृथिवीपर बहती और गतिशील इन नदियोंको, शोभनकर्मा मैं (अर्णांसि वि तिरामि) जलवितरण करता हूं; (मनवे इष्टये गातुं युधा विदम्) मनुष्यको यज्ञ—इच्छानुसार फलप्राप्तीके लिये मैं युद्ध करके मार्ग प्रदान करता हूं ॥ ९ ॥

[५१२] (अहं आसु तत् धारयम्) मैं गायोंके स्तनोंमें वह प्रसिद्ध दुग्ध धारण करता हूं; (यत् आसु देवः चन त्वष्टा न अधारयत्) जिसको गौओंमें अन्य देव वा त्वष्टा धारण न कर सका; (गवां ऊधःसु रुशत स्पार्हं

एवा देवाँ इन्द्रो विव्ये नॄन् प्र च्यौत्नेन मघवा सत्यराधाः ।
विश्वेत् ता ते हरिवः शचीवो ऽभि तुरासः स्वयशो गृणन्ति ११ [८] (५१३)

(५०)

७ वैकुण्ठ इन्द्रः । इन्द्रः । जगती; ३, ४ अभिसारिणी, ५ त्रिष्टुप् ।

प्र वो महे मन्दमानायान्धसो ऽर्चा विश्वानराय विश्वाभुवे ।
इन्द्रस्य यस्य सुमखं सहो महि श्रवो नृम्णं च रोदसी सपर्यतः १

सो चिन्नु सख्या नर्य इनः स्तुत श्चर्कृत्य इन्द्रो मावते नरे ।
विश्वासु धूर्षु वाजकृत्येषु सत्पते वृत्रे वाप्स्व१भि शूर मन्दसे २

के ते नर इन्द्र ये त इषे ये ते सुम्नं सधन्य१मियक्षान् ।
के ते वाजायासुर्याय हिन्विरे के अप्सु स्वासूर्वरासु पौंस्ये ३

वक्षणासु मधु आ मधोः) गायोंके स्तनोंमें यह दुग्ध प्रदीप्त, स्पृहणीय और नदियोंमें मधुर तथा निर्बल जल रूप रहता है; (श्वात्र्यम् सोमं आशिरम्) यह गतिशील दुग्ध- उदक सोमके साथ मिलनेपर अत्यंत सुखकर होता है ॥ १० ॥

[५१३] (एव च्यौत्येन मघवा सत्यराधाः इन्द्रः देवान् नृन् प्र विव्ये) इस प्रकार अपने प्रभावसे धनवान् और सत्यधन इन्द्र देवों और मनुष्योंको सौभाग्य- ऐश्वर्य सम्पन्न करता है; हे (हरिवः शचीवः स्वयशः) अश्वोंके स्वामिन् ! कीर्ति और यश-कर्मके स्वामिन् ! (ता विश्वा ते इत् तुरासः अभि गृणन्ति) उन सारे तेरे नाना प्रकारके कर्मोंकी उत्साही ऋत्विक्-भक्त लोग प्रशंसा करते हैं ॥ ११ ॥

[५०]

[५१४] हे स्तोता ! (वः महे अन्धसः मन्दमानाय) तू महान्, सोमसे प्रसन्न, (विश्वानराय विश्वाभुवे प्र अर्च) सबके नेता और समस्त जगत्के कल्याण कर्ता इन्द्रकी स्तुति कर; (यस्य इन्द्रस्य सुमखं सहः महि) क्योंकि इन्द्रका उत्तम श्रेष्ठ बल, महान् (श्रवः नृम्णं च रोदसी सपर्यतः) अन्न और सुखकी द्युलोक और पृथिवी-सभी उपासन करते हैं ॥ १ ॥

[५१५] (सो चित् नु इन्द्रः) वहही सत्य इन्द्र (सख्या नर्यः इनः स्तुतः) सख्य-मित्र भावसे मनुष्योंका हितैषी, सबका स्वामी और स्तुत्य है; (मावते नरे चर्कृत्यः) मेरे सदृश मनुष्यको वही उपास्य है; हे (सत्पते) सज्जनोंकी रक्षा करनेवाले इन्द्र ! (विश्वासु धूर्षु वाजकृत्येषु) तू सब श्रेष्ठ कार्योंमें, पराक्रमोंमें, (वृत्रे अप्सु वा) वृत्र और मेघसे वृष्टि प्राप्तिके लिये, हे (शूर) शूरवीर ! (अभि मन्दसे) तूही स्तुति करने योग्य है ॥ २ ॥

[५१६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते के नरः ये ते इषे) वे कौन महान् लोग हैं, जो तुझसे अन्न, वृष्टि पानेके अधिकारी हैं ? (ये ते सधन्यं सुम्नं इयक्षान्) जो तुझसे धनयुक्त सुख, अन्न प्राप्त करते हैं ? (के ते असुर्याय वाजाय हिन्विरे) वे कौन हैं, जो असुरोंके नाशक तेरे बलके लाभके लिये सोमादि हविसे तुझे प्रेरित करते हैं ? (के अप्सु स्वासु उर्वरासु पौंस्ये) और वे कौन हैं, जो अपनी उर्वरा भूमिमें वृष्टिजल- उदक और पराक्रम करनेके लिये, तुझे आवाहित करते हैं ? ॥ ३ ॥

भुवस्त्वमिन्द्र ब्रह्मणा महान् भुवो विश्वेषु सवनेषु यज्ञियः ।
भुवो नॄँश्च्यौत्नो विश्वस्मिन् भरे ज्येष्ठश्च मन्त्रो विश्वचर्षणे । ४
अवा नु कं ज्यायान् यज्ञवनसो महीं त ओमात्रां कृष्टयो विदुः ।
असो न कमजरो वर्धाश्च विश्वेदेता सवना तूतुमा कृषे ५ (५१८)
एता विश्वा सवना तूतुमा कृषे स्वयं सूनो सहसो यानि दधिषे ।
वराय ते पात्रं धर्मणे तना यज्ञो मन्त्रो ब्रह्मोद्यतं वचः ६
ये ते विप्र ब्रह्मकृतः सुते सचा वसूनां च वसुनश्च दावने ।
प्र ते सुम्नस्य मनसा पथा भुवन् मदे सुतस्य सोम्यस्यान्धसः ७ [९] (५२०)

(५१)

(९) १, ३, ५, ७, ९ देवाः; २, ४, ६, ८ सौचीकोऽग्निः । २, ४, ६, ८ देवाः, १, ३, ५, ७, ९ अग्निः । त्रिष्टुप् ।

महत् तदुल्बं स्थविरं तदासीद्येनाविष्टितः प्रविवेशिथापः ।
विश्वा अपश्यद्बहुधा ते अग्ने जातवेदस्तन्वो देव एकः १

---

[५१७] हे (इन्द्र) इन्द्र देव ! (त्वं ब्रह्मणा महान् भुवः) तू हमारे यज्ञानुष्ठान– स्तोत्रोंसे महान् हुआ है; (विश्वेषु सवनेषु यज्ञियः भुवः) सारे यज्ञोंमें तू यजनीय हुआ है; (विश्वस्मिन् भरे नॄन् च्यौत्नः भुवः) तू समस्त युद्धोंमें मुख्य शत्रुओंके नाशक हुआ है; हे (विश्वचर्षणे) सर्व द्रष्टा इन्द्र ! (ज्येष्ठः मन्त्रः च) तू सबसे श्रेष्ठ है और सुयोग्य सलाह देनेवाला है ॥ ४ ॥

[५१८] हे इन्द्र ! (ज्यायान् यज्ञवनसः नु कं अव) सर्वश्रेष्ठ तू यज्ञ करनेवाले तथा भक्तिपूर्ण स्तवन करने वाले यजमानोंकी अवश्य त्वरित रक्षा कर; (कृष्टयः ते ओमात्रां महीं विदुः) समस्त मनुष्य ही तेरी भक्त रक्षणकी महान् शक्तिको जानते हैं; (अजरः असः) तू अजर हो; (नु कं वर्धाः च) तेरा उत्कर्ष होता रहे; (विश्वा इत् एता सवना तूतुमा कृषे) और तू ये सब यज्ञ शीघ्र सम्पन्न करता है ॥ ५ ॥

[५१९] (एता विश्वा सवना तूतुमा कृषे) इन सब यज्ञोंको तू शीघ्रही सम्पन्न करता है, हे (सहसः सूनो) बलवान् इन्द्र देव ! (स्वयं यानि दधिषे) स्वयं जिनको तू धारण करता है; (ते वराय पात्रं) तेरा शत्रु–नाशक आश्रय–बल हमारी रक्षा करें; (धर्मणे तना) हमारी धारणा करनेके लियेही तेरा धन हो; (यज्ञः मन्त्रः) यह यज्ञ और मन्त्र तेरे लियेही– जो तू हमारा उपास्य है, हैं; (ब्रह्म वचः उद्यतम्) महान् उत्तम यह पवित्र वचन तेरे लियेही उच्चारित हैं ॥ ६ ॥

[५२०] हे (विप्र) मेधावी इन्द्र ! (ये ब्रह्मकृतः ते सचा सुते) जो स्तोता –हविष्कर्ता लोग एकत्र आकर, संघ बनाकर सोमरस निचोडते हैं, (वसूनां च वसुनः च दावने) और जो अनेक प्रकारके धनलाभकी इच्छासे दान कर तेरी सेवा करते हैं, (ते सुम्नस्य मनसा पथा प्र भुवन्) वे सुखप्राप्तिके लिये अंतःकरणपूर्वक तेरे निर्दिष्ट मार्गसेही उत्तम पद प्राप्त करनेके अधिकारी हों; (सुतस्य सोमस्य अन्धसः मदे) जब वे निचोडे हुए सोमरसरूप अन्नके द्वारा तृप्ति–आनन्द प्राप्त कर लेते हैं ॥ ७ ॥

[५१]

[५२१] हे (अग्ने) अग्नि ! (तत् उल्बं महत् स्थविरं तत् आसीत् येन आविष्टतः) वह आवरण अत्यंतही बडा और स्थूल था, जिससे घिरकर तू (अपः प्रविवेशिथ) जलमें पैठा था; हे (जातवेदः) सर्वज्ञ अग्नि ! (ते विश्वाः तन्वः बहुधा एकः देवः अपश्यत्) तेरे सब शरीरके समस्त अङ्गोंको अनेक प्रकारसे एक देवने देखा ॥ १ ॥

को मा ददर्श कतमः स देवो यो मे तन्वो बहुधा पर्यपश्यत् ।
क्वाह मित्रावरुणा क्षियन्त्य-ग्नेर्विश्वाः समिधो देवयानीः २

ऐच्छाम त्वा बहुधा जातवेदः प्रविष्टमग्ने अप्स्वोषधीषु ।
तं त्वा यमो अचिकेच्चित्रभानो दशान्तरुष्यादतिरोचमानम् ३

होत्रादहं वरुण बिभ्यदायं नेदेव मा युनजन्नत्र देवाः ।
तस्य मे तन्वो बहुधा निविष्टा एतमर्थं न चिकेताहमग्निः ४

एहि मनुर्देवयुर्यज्ञकामो ऽरंकृत्या तमसि क्षेष्यग्ने ।
सुगान् पथः कृणुहि देवयानान् वह हव्यानि सुमनस्यमानः ५ [१०]

अग्नेः पूर्वे भ्रातरो अर्थमेतं रथीवाध्वानमन्वावरीवुः ।
तस्माद्भिया वरुण दूरमायं गौरो न क्षेप्नोरविजे ज्यायाः ६

कुर्मस्त आयुरजरं यदग्ने यथा युक्तो जातवेदो न रिष्याः ।
अथा वहासि सुमनस्यमानो भागं देवेभ्यो हविषः सुजात ७

---

[५२२] (कः मा ददर्श) किसने मुझे देखा था ? (स देवः कतमः) वह कौन देव है ? (यः मे तन्वः बहुधा परि अपश्यत्) जो मेरे देहों और सब अंगोंको बहुत प्रकारसे देखता है ? हे (मित्रावरुणा) मित्र-वरुण ! (अग्नेः विश्वाः संमिधः देवयानीः क्व क्षियन्ति अह) अग्निके समस्त प्रदी.. देवयान साधन मार्ग कहां विद्यमान हैं, कहो ॥ २ ॥

[५२३] हे (जातवेदः अग्ने) सर्वज्ञ अग्नि ! (अप्सु ओषधीषु बहुधा प्रविष्टं त्वा ऐच्छाम) जल और औषधियोंमें अनेक प्रकारसे अन्तर्भूत तुझे हम खोजते हैं; हे (चित्रभानो) विचित्र किरणोंसे कान्तियुक्त अग्नि ! (तं त्वा यमः अचिकेत्) उस प्रकार प्रविष्ट तुझे यमने पहचाना; (दश-अन्तः-उष्यात् अति-रोचमानम्) दस गुप्त निवास स्थानोंमें रहनेवाला और अत्यंत तेजस्वी तू है ॥ ३ ॥

[५२४] हे (वरुण) वरुण देव ! (अहं होत्रात् बिभ्यत् आयम्) मैं हविहवन कार्यसे भय करता हुआ, आगया हूं; (मा एव अत्र न इत् युनजं देवाः) मुझे इस प्रकार इस कार्यमें देवता लोग नियुक्त न करें, यह मैं चाहता हूं; (तस्य मे तन्वः बहुधा निविष्टाः) उस कारण मैंने मेरा शरीर अनेक प्रकारसे जलमें छुपाया है; (एतं अर्थं अग्निः अहं न चिकेत) इस हवि वहन कार्यको अग्नि मैं करना नहीं चाहता ॥ ४ ॥

[५२५] हे (अग्नि) अग्नि ! (एहि) आओ; (मनुः देवयुः यज्ञकामः) मननशील देवभक्त मनुष्य यज्ञ करनेकी इच्छा करता है; (अरंकृत्य तमसि क्षेसि) और तू स्वयं तेजस्वी होकर भी अंधकारमें निवास करता है; (देवयानान् पथः सुगान् कृणुहि) आकर देवोंके प्रति ले जानेवाले मार्ग हमारे लिये सुगम कर; (हव्यानि वह समनस्यमानः) और प्रसन्न होकर हमारे हव्यादिको धारण कर ॥ ५ ॥

[५२६] हे देवो ! (रथी इव अध्वानम्) रथी जैसे मार्गको स्वीकार कर जाता है, वैसेही (अग्नेः पूर्वे भ्रातरः एतं अर्थं अन्वावरीवुः) मेरे ज्येष्ठ तीन भ्राता-भूपति, भुवनपति और भूतपति- इस प्राप्तव्य कार्यको करते हुए नष्ट हो गये; हे (वरुण) वरुण ! (तस्मात् भिया दूरं आयम्) इसी डरसे मैं दूर चला आया हूं; (क्षेप्नोः ज्यायाः गौः न) धनुर्धारीकी डोरीसे जैसे श्वेत हरीण भयभीत होता है, वैसेही (अविजे) मैं बहुतही डरकर कांप रहा हूं ॥ ६ ॥

[५२७] हे (अग्ने) अग्नि ! (यत् अजरं आयुः ते कुर्मः) जो जरारहित आयु है वही हम तेरी करें; हे (जातवेदः) सर्वज्ञ अग्नि ! (यथा युक्तः न रिष्याः) जिससे युक्त होकर तू नहीं मरेगा, ऐसा हम करेंगे; हे

प्रयाजान् मे अनुयाजाँश्च केवला- नूर्जस्वन्तं हविषो दत्त भागम् ।
घृतं चापां पुरुषं चौषधीना- मग्नेश्च दीर्घमायुरस्तु देवाः ८
तव प्रयाजा अनुयाजाश्च केवल ऊर्जस्वन्तो हविषः सन्तु भागाः ।
तवाग्ने यज्ञो३ऽयमस्तु सर्व- स्तुभ्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रः ९ [११] (५२९)

(५२)

६ सौचीकोऽग्निः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ।

विश्वे देवाः शास्तन मा यथेह होता वृतो मनवै यन्निषद्य ।
प्र मे ब्रूत भागधेयं यथा वो येन पथा हव्यमा वो वहानि १
अहं होता न्यसीदं यजीयान् विश्वे देवा मरुतो मा जुनन्ति ।
अहरहरश्विनाध्वर्यवं वां ब्रह्मा समिद्भवति साहुतिर्वाम् २
अयं यो होता किरु स यमस्य कमप्यूहे यत् समञ्जन्ति देवाः ।
अहरहर्जायते मासिमास्य- था देवा दधिरे हव्यवाहम् ३

(सुजात) उत्तम जन्मवाले अग्नि ! (अथ सुमनस्यमानः देवेभ्यः हविषः भाग वहासि) अनन्तर तू सुप्रसन्न चित्त होकर देवोंके पास हवियोंका भाग ले आ ॥ ७ ॥

[५२८] हे (देवाः) देवो ! (मे प्रयाजान् अनुयाजान् केवलान् दत्त , मुझे प्रयाज (प्रथम हविर्भाग) और अनुयाज (शेष हविर्भाग) ये असाधारण भाग दो; और (हविषः ऊर्जस्वन्तं भागम्) हविमेंसे पुष्टियुक्त भाग भी मुझे दो । (अपां घृतं ओषधीनां पुरुषं च) जलका सारभाग घृत और ओषधिसे उत्पन्न प्रधान रूप भाग मझे दो; और (अग्नेः दीर्घं आयुः च अस्तु) मुझ अग्निकी दीर्घ आयु हो ॥ ८ ॥

[५२९] हे (अग्ने) अग्नि ! (तव प्रयाजाः अनुयाजाः केवले ऊर्जस्वनाः हविषः भागाः सन्तु) तेरे प्रयाज, अनुयाज और असाधारण बलशाली हविके भाग हों; (अयं सर्वः यज्ञः तव अस्तु) यह सब यज्ञ तेरा ही हो; (प्रदिशः चतस्रः तुभ्यं नमन्ताम्) चारों दिशाएं तेरे आगे अवनत हों; तेरा आदर करें ॥ ९ ॥

[५२]

[५३०] हे (विश्वे देवाः) विश्वे देवो ! (मा शास्तन) मुझे अनुज्ञा दो, (यथा इह होता वृतः मनवै) जिससे इस यज्ञमें होताके रूपमें वरण किया जाकर, मनुके लिये देवोंकी स्तुति कर सकूं; (यत् निषद्य) जो मैं समीप बैठकर स्तवन करता हूं; (यथा मे भागधेयं प्र ब्रूत वः) जिस प्रकार मेरा भाग कौन है और तुम्हारा भाग कौन है, यह मुझे कहो; (येन पथा वः हव्यं आ वहानि) जिस मार्गसे तुम्हारा हव्य मुझे लाना है वह भी कहो, तो मैं उसका अनुसरण करूंगा ॥ १ ॥

[५३१] (यजीयान् अहं होता न्यसीदम्) उत्कृष्ट यज्ञ करनेवाला मैं होता- स्तुति करता हुआ- यहां बैठा हूं; (विश्वे देवाः मरुतः मा जुनन्ति) सर्व देव- मरुत् भी- हवि वहन करनेके लिये प्रेरित करते हैं; हे (अश्विना) अश्वि द्वय ! (वां आध्वर्यं अहरहः भवति) तुम्हारा अध्वर्युका कार्य प्रतिदिन मुझे करना पडे; (ब्रह्मा सम् इत् भवति) और उज्जवल सोम स्तोतृ-रूप हो; (वाम् सा आहुतिः) और वही तुम्हारी आहुति हो ॥ २ ॥

[५३२] (अयं यः होता किः उ सः) यह जो होता है वह कौन है ? (यमस्य कं अपि ऊहे) वह यमका कुछ भाग वहन करता है, अथवा (यत् देवाः समञ्जन्ति) जो यजमानके द्रव्यका भाग देवोंको प्राप्त होता है; (अहः अहः मासि मासि जायते ; सूर्य रूपसे प्रतिदिन उज्ज्वलतासे और चन्द्रमा रूपसे प्रतिमास प्रकट होता है; (अथ देवाः हव्यवाहं दधिरे) उस अग्निको देवोंने हव्यवाहक रूपमें धारण किया है ॥ ३ ॥

मां देवा दधिरे हव्यवाह—मपम्लुक्तं बहु कृच्छ्रा चरन्तम् ।
अग्निर्विद्वान् यज्ञं नः कल्पयाति पञ्चयामं त्रिवृतं सप्ततन्तुम् ४
आ वो यक्ष्यमृतत्वं सुवीरं यथा वो देवा वरिवः कराणि ।
आ बाह्वोर्वज्रमिन्द्रस्य धेया—मथेमा विश्वाः पृतना जयाति ५
त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन् ।
औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ६ [१२] (५३५)

(५३)

११ देवाः, ४-५ सौचीकोऽग्निः । अग्निः, ४-५ देवाः । १-५, ८ त्रिष्टुप्; ६-७, ९-११ जगती ।

यमैच्छाम मनसा सोऽ॒यमागा—द्यज्ञस्य विद्वान् परुषश्चिकित्वान् ।
स नो यक्षद् देवताता यजीयान् नि हि षत्सदन्तरः पूर्वो अस्मत् १
अराधि होता निषदा यजीया—नभि प्रयांसि सुधितानि हि ख्यत ।
यजामहे यज्ञियान् हन्त देवाँ ईळामहा ईड्याँ आज्येन २

[५३३] (अपम्लुक्तं बहु कृच्छ्रा चरन्तम्) समस्त जगत्से छिपा हुआ, अनेक अत्यंत कठिन व्रतों-कष्टोंको करनेवाले (मां देवाः हव्यवाहं दधिरे) मुझको देवोंने हव्यवाहन नियुक्त किया; (विद्वान् अग्निः नः यज्ञं कल्पयाति) विद्वान् अग्नि हमारे यज्ञका आयोजन करता है; (पञ्चयामं त्रिवृतं सप्ततन्तुम्) और यह यज्ञ पांच मार्गोंसे गमन करने योग्य, तीन प्रकारसे सवन करने योग्य और सात छन्दोंमें गाया जाता है ॥ ४ ॥

[५३४] हे (देवाः) देवो ! (वः यथा वरिवः कराणि) मैं तुम्हारी जैसी हविरूप व धनसे सेवा-उपासना करता हूं, (वः अमृतत्वं सुवीरं आ यक्षि) इसलिये तुमसे अमरत्व और पराक्रमी पुत्रके लिये मैं प्रार्थना करता हूं; (इन्द्रस्य बाह्वोः वज्रं आ धेयाम्) मैं इन्द्रके बाहुओंमें वज्र धारण करवाता हूं; (अथ इमाः विश्वाः पृतनाः जयाति) और अनन्तर वह इन सारी शत्रु सेनाओंको जीतता है ॥ ५ ॥

[५३५] (त्रीणि शता त्री सहस्राणि त्रिंशत् नव च) तीन हजार तीन सौ उनतालीस (देवाः अग्निं असपर्यन्) देव मुझ अग्निकी सेवा करते हैं; (घृतैः औक्षन्) अग्निको घृतसे अभिषिक्त किया है- घृतकी आहुतियां दी हैं; (अस्मै बर्हिः अस्तृणन्) मेरे लिये कुशाओंका आसन बिछा दिया है; और (आत् इत् होतारं न्यसादयन्त) अनन्तर होताके रूपमें बिठाया है ॥ ६ ॥

[५३]

[५३६] (मनसा यं ऐच्छाम) मनसे हम जिस अग्निकी कामना करते हैं, (सः अयं यज्ञस्य परुषः चिकित्वान् विद्वान् आगात्) वह यह अग्नि यज्ञके अंगोंको जाननेवाला विद्वान् आया है; (सः यजीयान् देवताता नः यक्षत्) वह अत्यंत पूजनीय अग्नि देवोंके प्राप्त्यर्थ किये हमारे यज्ञका यजन करे; (अन्तरः पूर्वः हि अस्मत् निषत्सत्) वह ऋत्विग्-यजनीय देवोंके बीचमें हमारे पहलेही विराजमान हो ॥ १ ॥

[५३७] (होता यजीयान् निषदा अराधि) यह अग्नि हवनीय, यज्ञार्ह और वेदीपर बैठकर आहुतिके लिये योग्य है; (सुधितानि प्रयांसि अभि हि ख्यत्) और वह उत्तम रीतिसे रखे हुए चरु, पुरोडाश आदिको चारों ओरसे देखता है; (यज्ञियान् देवान् हन्त आज्येन यजामहै) यज्ञार्ह देवोंको शीघ्रही घृत प्रदान कर तृप्त कर सकें और (ईड्यान् ईळामहै) स्तुत्य देवोंका स्तोत्रोंसे स्तवन किया जाय, यह वह चाहता है ॥ २ ॥

साध्वीमकर्देववीतिं नो अद्य यज्ञस्य जिह्वामविदाम गुह्याम् ।
स आयुरागात् सुरभिर्वसानो भद्रामकर्देवहूतिं नो अद्य ३
तदद्य वाचः प्रथमं मसीय येनासुराँ अभि देवा असाम ।
ऊर्जाद उत यज्ञियासः पञ्च जना मम होत्रं जुषध्वम् ४
पञ्च जना मम होत्रं जुषन्तां गोजाता उत ये यज्ञियासः ।
पृथिवी नः पार्थिवात् पात्वंहसो ऽन्तरिक्षं दिव्यात् पात्वस्मान् ५ [१३] (५४०)
तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान् ।
अनुल्बणं वयत जोगुवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम् ६
अक्षानहो नह्यतनोत सोम्या इष्कृणुध्वं रशना ओत पिंशत ।
अष्टावन्धुरं वहताभितो रथं येन देवासो अनयन्नभि प्रियम् ७
अश्मन्वती रीयते सं रभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः ।
अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः शिवान् वयमुत्तरेमाभि वाजान् । ८

---

[५३८] (अद्य नः देववीतिं साध्वीं अकः) आज हमारा यज्ञ अग्निने सुसम्पन्न किया है; (यज्ञस्य गुह्यां जिह्वां अविदाम) यज्ञकी गूढ जिह्वा (अग्निकी ज्वाला) हमने पायी है; (सः सुरभिः आयुः वसानः आगात्) वह सुगन्धित होकर और उत्तम आयु धारण कर प्राप्त हुआ है; (अद्य नः देवहूतिं भद्रां अकः) और आज हमारा यह यज्ञ हमारे लिये कल्याणमय करता है ॥ ३ ॥

[५३९] (अद्य प्रथमं तत् वाचः मसीय) आज सर्वश्रेष्ठ– मुख्य उस वचनका मैं उच्चारण करता हूं, (येन देवाः असुरान् अभि अ[illegible]) जिससे हम देव लोग असुरोंका पराभव कर सकें; हे (ऊर्जादः उत यज्ञियासः) अन्न भक्षण करनेवाले और यज्ञार्ह (पञ्चजनाः) देव–मनुष्यादि पञ्चजनो ! तुम (मम होत्रं जुषध्वम्) मेरे हवनका सेवन करो ॥ ४ ॥

[५४०] (ये गोजाताः उत यज्ञियासः पञ्चजनाः मम होत्रं जुषन्ताम्) जो पृथिवीपर उत्पन्न वा हव्यके लिये उत्पन्न और यज्ञार्ह हैं, वे पांचों जन मेरे हवनका सेवन करें; (पृथिवी पार्थिवात्, नः अंहसः पातु) पृथिवी पृथिवीके सम्बन्धी हमारे पापोंसे बचावे, और (अन्तरिक्षं दिव्यात् अस्मान् पातु) अन्तरिक्ष देवता आकाशसे उत्पन्न पापोंसे हमें बचावे ॥ ५ ॥

[५४१] हे अग्नि ! (तन्तुं तन्वन् रजसः भानुं अनु–इहि) तू यज्ञ विस्तारके कारण और लोकके प्रकाशक सूर्यका अनुकरण कर –रश्मिद्वारा सूर्य मंडलमें प्रवेश कर; (धिया कृतान् ज्योतिष्मतः पथः रक्ष) सत्कर्मसे संपादित तेजस्वी स्वर्गीय मार्गोंकी रक्षा कर; (जोगुवां अपः अनुल्बणं वयत) स्तोताओंके कर्मको सुखदायी– निर्दोष कर; (मनुः भव) तू स्तुत्य बन और (जनं दैव्यं जनय) मनुष्यको देवोंका उपासक बना– यज्ञाभिगामी कर ॥ ६ ॥

[५४२] हे (सोम्याः) सोमार्ह देवो ! (अक्षानहः नह्यतन) तुम जोतने योग्य– अक्ष, धुरामें लगाने योग्य अश्वोंको रथमें जोतो; (उत रशनाः इष्कृणुध्वम्) और अश्वोंकी रासोंको ठीक रखो, (उत आ पिंशत) और अश्वोंको अलङ्कृत करो ! (अष्टावन्धुरं रथं अभितः वहत) आठ सारथियोंके बैठने योग्य सूर्यके रथको सर्वत्र ले जाओ; (येन देवासः प्रियं अनयन्) जिससे देव हमें ले जायंगे ॥ ७ ॥

[५४३] (अश्मन्वती रीयते) अश्मन्वती नामकी नदी बह रही है; (सं रभध्वम् उत्तिष्ठत प्र आ तरत) यज्ञके स्थानपर जानेके लिये एक साथ मिलकर उठो और इसे लांघ जाओ। हे (सखायः) मित्रो ! (ये अशेवाः असन् अत्र जहाम) जो हमें दुःख देनेवाले हैं, उन्हें हम यहां त्यागते हैं; (शिवान् वाजान् अभि वयं उत्तरेम) सुखदायी अन्न प्राप्त करनेके लिये हम नदी पार करेंगे ॥ ८ ॥

क उ नु तें महिमनः समस्या ऽस्मत् पूर्व ऋषयोऽन्तमापुः ।
यन्मातरं च पितरं च साक मर्जनयथास्तन्वः स्वायाः ३

चत्वारि ते असुर्याणि नामा ऽदाभ्यानि महिषस्य सन्ति ।
त्वमङ्ग तानि विश्वानि वित्से येभिः कर्माणि मघवञ्चकर्थ ४

त्वं विश्वा दधिषे केवलानि यान्याविर्या च गुहा वसूनि ।
काममिन्मे मघवन् मा वि तारी स्त्वमाज्ञाता त्वमिन्द्रासि दाता ५

यो अदधाज्ज्योतिषि ज्योतिरन्त र्यो असृजन्मधुना सं मधूनि ।
अध प्रियं शूषमिन्द्राय मन्म ब्रह्मकृतो बृहदुक्थादवाचि ६ [१५] (५५२)

(५५)

८ बृहदुक्थो वामदेव्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

दूरे तन्नाम गुह्यं पराचै र्यत् त्वा भीते अह्वयेतां वयोधै ।
उदस्तभ्नाः पृथिवीं द्यामभीके भ्रातुः पुत्रान् मघवन् तित्विषाणः १

कृति केवल माया ही है; – वह असत्य ही है । (यानि युद्धानि आहुः) प्राचीन ऋषि लोग तेरे शत्रु विदारक नाना युद्धोंका जो वर्णन करते हैं, वह भी माया ही है; (अद्य शत्रुं न विवित्से) क्योंकि अभी भी न तेरा कोई शत्रु है (ननु पुरा) न पहले तू किसीको अपना शत्रु प्राप्त कर सका ॥ २ ॥

[५४९] हे इन्द्र ! (ते समस्य महिमनः अन्तं अस्मत् पूर्वे के उ नु ऋषयः आपुः) तेरी सकल महिमाका अन्त हमसे पूर्व कौनसे ऋषियोंने प्राप्त किया था ? (यत् मातरं च पितरं च) क्योंकि तू माता–पिताको– द्यावा–पृथिवीको (साकं स्वायाः तन्वः अजनयथाः) एक साथ ही अपने शरीरसे उत्पन्न करता है ॥ ३ ॥

[५५०] हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (ते महिषस्य चत्वारि नाम) तुझ अत्यंत पूज्यके चार रूप–शरीर हैं, (असुर्याणि अदाभ्यानि सन्ति) जो असुरोंके विनाशक और अविनाशी हैं; हे (अङ्ग) मित्र इन्द्र ! (त्वं तानि विश्वानि वित्से) तू उन सबको जानता है; (येभिः कर्माणि चकर्थ) जिनसे तू सब महान् कार्योंको–पराक्रमोंको करता है ॥ ४

[५५१] हे (मघवन् इन्द्र) धनवान् इन्द्र ! (त्वं विश्वा केवलानि वसूनि यानि आविः या च गुहा दधिषे) तू समस्त असाधारण धनोंको, जो प्रकट है और गुप्त रूपमें भी है– धारण करता है; इसलिये (मे कामं इत् मा वि तारीः) मेरी इच्छाको कभी विनष्ट न करो; (त्वं आज्ञाता असि) तूं अभिलषित धन मुझे दे, कारण (त्वं दाता) तू स्वयं दाता हो ॥ ५ ॥

[५१२] (यः ज्योतिषि अन्तः ज्योतिः अदधात्) जो सूर्य आदि ज्योतिओंमें तेज धारण कराता है, (यः मधुना मधूनि सं असृजत्) जो मधुर रसयुक्त सोम आदिको निर्माण करता है, (अध इन्द्राय प्रियं शूषं मन्म ब्रह्मकृतः) इस समय उस इन्द्रके लिये अत्यंत प्रिय बलवर्धक मननीय स्तोत्र–पवित्र मन्त्रोंके कर्ता बृहदुक्थ ऋषिने कहा ॥६॥

(५५)

[५५३] (यत् त्वा रोदसी भीते वयोधै अह्वयेताम्) जिस समय तुझे भयभीत होकर द्यावा पृथिवी–समस्त जगत् अन्न देनेके लिये बुलाते हैं, उस समय (अभीके पृथिवीं द्यां उत् अस्तभ्नाः) तू समीपसे पृथिवी और आकाश दोनोंको ऊपर पकड रखता है; हे (मघवन्) धनपति इन्द्र ! (भ्रातुः पुत्रान् तित्विषाणः) और लोगोंका भरण–पोषण करनेवाले मेघके जलधाराओंको विद्युत्से प्रकाशित करता है; (तत् ते नाम पराचैः गुह्यं दूरे) वह तेरा स्वरूप–नाम, जो जगत्को थामता और पालन करता रहता है वह पराङ्मुख मनुष्योंसे छुपा और दूर रहता है– साधारण अज्ञजन उसको नहीं जान सकते ॥ १ ॥

महत् तन्नाम गुह्यं पुरुस्पृग् येन भूतं जनयो येन भव्यम् ।
प्रत्नं जातं ज्योतिर्यदस्य प्रियं प्रियाः समविशन्त पञ्च २

आ रोदसी अपृणादोत मध्यं पञ्च देवाँ ऋतुशः सप्तसप्त ।
चतुस्त्रिंशता पुरुधा वि चष्टे सरूपेण ज्योतिषा विव्रतेन ३

यदुष औच्छः प्रथमा विभानामजनयो येन पुष्टस्य पुष्टम् ।
यत् ते जामित्वमवरं परस्या महन्महत्या असुरत्वमेकम् ४

विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार ।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वा ऽद्या ममार स ह्यः समान ५ [१६]

शाक्मना शाको अरुणः सुपर्ण आ यो महः शूरः सनादनीळः ।
यच्चिकेत सत्यमित् तन्न मोघं वसु स्पार्हमुत जेतोत दाता ६

---

[५५४] (महत् ते गुह्यं पुरुस्पृक् नाम) तेरा वह महान्, अत्यंत गूढ -अन्योंसे अज्ञात, अनेकोंको स्पृहणीय आकाशात्मक शरीर है, (येन भूतं येन भव्यं जनयः) जिससे तूने भूत और भविष्यको निर्माण किया है। और (यत् प्रत्नं अस्य प्रियं ज्योतिः जातम्) जिससे अत्यंत प्राचीन आदित्यका उदकरूप और इन्द्रको बहुत प्रिय तत्त्व -तेज उत्पन्न हुआ; (प्रियाः पञ्च समविशन्त) जिस प्रिय ज्योतिको प्राप्तकर पञ्चजन आश्रयपूर्वक उसकी उपासना करते हैं ॥ २ ॥

[५५५] वह इन्द्र अपने शरीर वा तेजसे (रोदसी उत मध्यं आ अपृणात्) द्यावा-पृथिवी और अन्तरिक्षको पूर्ण करता है; (पञ्चदेवां सप्तसप्त ऋतुशः) उसी प्रकार पञ्चदेव- (देव, मनुष्य, पितर, असुर और राक्षस) और सात तत्त्वों- (सात मरुद्गण, सात सूर्य किरण, सात लोक आदि) को समय समयपर, प्रकाशित-पूर्ण करता है; वह (विव्रतेन चतुस्त्रिंशता सरूपेण ज्योतिषा) विविध कर्मकर्ता ३४ प्रकारके देवों- (आठ वसु, बारा आदित्य, ग्यारह रुद्र, प्रजापति, षट्कार और विराट्) से, एक समान तेजसे (पुरुधा वि चष्टे) अनेक प्रकारका दीखता है ॥ ३ ॥

[५५६] हे (उषः) उषा देवता ! (यत् विभानां प्रथमा औच्छः) जो तू प्रकाशमान ग्रहनक्षत्र आदिमें सर्वप्रथम उदित होती है, और (येन पुष्टस्य पुष्टं अजनयः) जिससे तेजस्वियोंमें अत्यंत दीप्तिमान् सूर्यको प्रकाशित करती है; (यत् ते परस्याः जामित्वं अवरम्) जो तुझ ऊपर रहनेवालीका निम्नस्थ मनुष्योंके साथ तेरा मातृतुल्य सम्बन्ध है, वह (महत्याः महत् एकं असुरत्वम्) तुझ महती देवताका महत्त्वपूर्ण अत्यंत तेजस्वी असाधारण ही प्रकृष्ट बल-तेज प्रकट हुआ है ॥ ४ ॥

[५५७] (विधुं समने बहूनां दद्राणं) विविध कार्योंको करनेवाले, संग्राममें अनेकोंको अपने सामर्थ्यसे भगानेवाले (युवानं सन्तं पलितः जगार) युवा पुरुषको भी वृद्धत्व ग्रास कर लेता है, जगाता है (देवस्य महित्वा काव्यं पश्य) उस कालात्मक इन्द्रका महत्त्वपूर्ण सामर्थ्ययुक्त यह काव्य देख; (अद्य ममार) जो आज मरता है, (सः ह्यः समान) वही कल फिर उत्पन्न होता है ॥ ५ ॥

[५५८] (शाक्मना शाकः) वह अपनी महती शक्तीसे सर्व समर्थ है; (अरुणः सुपर्णः आ) एक केसरिया रंगका सुन्दर पक्षी आ रहा है; (यः महः शूरः सनात् अनीळः) जो महान् पराक्रमी, प्राचीन और एकही निवास-रहित है; (यत् चिकेत सत्यं इत् तत्) वह जो कुछ जानता है, वह सब सत्यही है; (तत् मोघं न) वह कभी भी व्यर्थ नहीं होता; (स्पार्हं वसु उत जेता) वह शत्रुओंसे स्पृहणीय धनको जीतता है, और (उत दाता) उसे स्तोताओंको देता है ॥ ६ ॥

ऐभिर्ददे वृष्ण्या पौंस्यानि येभिरौक्षद्वृत्रहत्याय वज्री ।
ये कर्मणः क्रियमाणस्य मह्न ऋतेकर्ममुदजायन्त देवाः ७
युजा कर्माणि जनयन् विश्वौजा अशस्तिहा विश्वमनास्तुराषाट् ।
पीत्वी सोमस्य दिव आ वृधानः शूरो निर्युधाधमद्दस्यून् ८ [१७] (५६०)

(५६)

७ बृहदुक्थो वामदेव्यः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप्, ४-६ जगती ।

इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व ।
संवेशने तन्वश्चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे १
तनूष्टे वाजिन् तन्वं नयन्ती वाममस्मभ्यं धातु शर्म तुभ्यम् ।
अह्रुतो महो धरुणाय देवान् दिवीव ज्योतिः स्वमा मिमीयाः २
वाज्यसि वाजिनेना सुवेनीः सुवितः स्तोमं सुवितो दिवं गाः ।
सुवितो धर्म प्रथमानु सत्या सुवितो देवान् त्सुवितोऽनु पत्म ३

---

[५५९] (एभिः पौंस्यानि आ ददे) इन्द्रने मरुतोंकी सहायतासे वर्धक बलको प्राप्त किया; (येभिः वृत्र-हत्याय वज्री औक्षत्) इन मरुतोंकी सहायतासेही मनुष्योंके दुःखोंका निवारण करनेके लिये, मेघोंको छिन्न भिन्न करके वज्रधारक इन्द्रने वृष्टि बरसायी; (ये देवाः मह्ना क्रियमाणस्य कर्मणा) ये मरुत् देव, इन्द्रके महान् सामर्थ्यसे प्रेरित होकर (ऋतेकर्म) वृष्टि प्रदानकार्यमें सहाय्यभूत होकर (उत् अजायन्त) स्वयं इस कार्यमें लग जाते हैं ॥ ७ ॥

[५६०] (युजा कर्माणि जनयन्) मरुतोंकी सहायतासे प्रवर्षण आदि कार्य इन्द्र करता है; (विश्व-ओजाः अशस्तिहा विश्वमनाः तुराषाट्) सब प्रकारके पराक्रमोंको करनेवाला, राक्षसोंका नाशक, सर्वज्ञ, शत्रुपर शीघ्र विजय प्राप्त करनेवाला, (सोमस्य पीत्वी दिवः वृधानः) द्युलोकसे आकर सोम पीकर उत्साहित होकर (शूरः युधा दस्यून् निः अधमत्) शूरवीर इन्द्रने आयुधसे दस्युओंको मारा ॥ ८ ॥

[५६]

[५६१] [अपने मृतपुत्र वाजिसे बृहदुक्थ ऋषि कहते हैं—] (इदं ते एकं) यह तेरा एक अंश अग्नि है; (पर उ ते एकं) और तेरा दूसरा अंश यह वायु है; (तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व) तीसरा अंश ज्योतिर्मय आत्मा है; इन तीन अंशोंसे तू अग्नि, वायु और सूर्यमें मिल जा; (तन्वः संवेशने चारुः एधि) अपने शरीरके प्रवेशके समय तू कल्याणमय हो जा; (प्रियः देवानां परमे जनित्रे) देवोंके अत्यंत श्रेष्ठ उत्पत्ति स्थान सूर्यमें प्रिय होकर रह ॥ १ ॥

[५६२] हे (वाजिन्) वाजिन् ! (ते तन्वं नयन्ती तनूः) तेरे शरीरको पृथिवी अपनेमें ग्रहण करती है; वह (अस्मभ्यं यामं धातु) हमें उत्तम धन दे; (तुभ्यं शर्म) और तुझे सुख प्रदान करे । (अहुतः महः देवान् धरुणाय) तू सत्य आचरण करनेवाला होकर महान् देवोंको धारण करनेवाले परमेश्वरको प्राप्त करनेके लिये (दिवि इव ज्योतिः स्वं आ मिमीयाः) द्युलोकमें विराजमान् सूर्यमें अपनेको –अपनी आत्माको मिला दो ॥ २ ॥

[५६३] तू (वाजिनेन वाजि असि) बलसे बलशाली है; (सुवेनीः सुवितः स्तोमं अनुगाः) उत्तम कान्तिमान् तू, शोभन मार्गमें मगन करके उत्तम स्तोत्रोंका गान करके उत्तम पदको प्राप्त कर; (सुवितः दिवं) उत्तम सुखप्रद मार्गका अनुसरण करके स्वर्गमें जा; (सुवितः धर्म प्रथमा सत्या अनु) उत्तम आचरण करते हुए ही धर्मका अनुष्ठान कर और सर्वश्रेष्ठ सत्य फलोंको प्राप्त कर; (सुवितः देवान् सुवितः पत्म अनु) शुभ कर्ममें चलकर ही तू देवों–लोकोंको प्राप्त कर और श्रेष्ठ मार्गमें रहकर ही तू सूर्यके साथ मिल जा ॥ ३ ॥

महिम्न एषां पितरश्चनेशिरे देवा देवेष्वदधुरपि क्रतुम् ।
समविव्यचुरुत यान्यत्विषु रैषां तनूषु नि विविशुः पुनः ४ (५६४)

सहोभिर्विश्वं परि चक्रमू रजः पूर्वा धामान्यमिता मिमानाः ।
तनूषु विश्वा भुवना नि येमिरे प्रासारयन्त पुरुध प्रजा अनु ५

द्विधा सूनवोऽसुरं स्वर्विद मास्थापयन्त तृतीयेन कर्मणा ।
स्वां प्रजां पितरः पित्र्यं सह आवरेष्वदधुस्तन्तुमाततम् ६

नावा न क्षोदः प्रदिशः पृथिव्याः स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।
स्वां प्रजां बृहदुक्थो महित्वा ऽऽवरेष्वदधादा परेषु ७ [१८] (५६७)

(५७)

६ बन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः । विश्वे देवाः । गायत्री ।

मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः । मान्तः स्थुर्नो अरातयः १
यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः । तमाहुतं नशीमहि २

---

[५६४] (पितरः एषां महिम्नः ईशिरे) हमारे पितर भी देवोंके समान महिमाके अधिकारी हुए हैं; (देवाः अपि देवेषु क्रतुं अदधुः) उन्होंने देवत्व प्राप्त करके देवोंके साथ कर्म सामर्थ्यको धारण किया है; (उत यानि अत्विषुः समविव्यचुः) और जो ज्योतिर्मय लोग दीप्ति पाते हैं, वे उनके साथ मिल गये हैं; (एषां तनूषु पुनः नि विविशुः) उनमें वे शरीरोंमें पुनः प्रवेश करते हैं ॥ ४ ॥

[५६३] मेरे पितरोंने (सहोभिः विश्वं रजः) स्वसामर्थ्यसे सब लोकोंको (पूर्वा अमिता धामानि मिमानाः) प्राचीन अमर्याद अनेक लोकोंको– सब स्थानोंको प्राप्त करके (परि चक्रमुः) परिभ्रमण किया है; (तनूषु विश्वा भुवना नि येमिरे) और अपने शरीरोंमें रहकर ही सारे लोकोंका नियमन किया है; और (पुरुध प्रजाः अनु प्रसारयन्त) अनेक प्रकारसे लोकोंको प्रकाशित-प्रभावित किया है ॥ ५ ॥

[५६६] (सूनवः स्वः विदं असुरं तृतीयेन कर्मणा) सूर्यके पुत्र अङ्गिरसोंने सर्वज्ञ और बलवान् आदित्यको तृतीयकर्म– पुत्रोत्पत्तिके द्वारा (द्विधा आस्थापयन्त) दो प्रकारसे –उदय और अस्त –स्थापित किया है; (पितरः स्वां प्रजाम्) मेरे पितरोंने अपनी प्रजाको उत्पन्न किया; (पित्र्यं सह अवरेषु आ दधुः) पिताके बल उन्हें दिया और (आततं तन्तुम्) वे चिरस्थायी वंश रख गये ॥ ६ ॥

[५६७] (नावा क्षोदः न) जैसे नौकासे जलको तरा जाता है, और (स्वस्तिभिः पृथिव्याः प्रदिशः विश्वा दुर्गाणि) कल्याणप्रद उपायोंसे पृथिवीकी सर्व दिशाओंको तथा सब दुःखदायी विपत्तियोंसे उद्धार होता है, वैसे ही (बृहदुक्थः स्वां प्रजां महित्वा) बृहदुक्थ ऋषिने अपनी प्रजाको, अपने महान् सामर्थ्यसे (अवरेषु परेषु आ अदधात्) अग्नि और सूर्यके आधीन किया ॥ ७ ॥

[५७]

[५६८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वयं पथः मा प्र गाम) हम सन्मार्गसे कुपथमें न हों; (मा सोमिनः यज्ञात्) हम सोमयुक्त यज्ञकर्मसे दूर न हों; (अरातयः नः अन्तः मा स्थुः) हमारे मार्गमें शत्रु न रहें ॥ १ ॥

[५६९] (यः यज्ञस्य प्रसाधनः) जो अग्नि यज्ञकी सिद्धि करनेवाला है, (तन्तुः देवेषु आततः) और जो अच्छी तरहसे हवन करके तथा ऋत्विजोंके स्तोत्रोंसे प्रज्वलित हुआ है, (तं आहुतं नशीमहि) उस सब प्रकारसे सत्कार योग्य अग्निको हम प्राप्त करें ॥ २ ॥

मनो न्वा हुवामहे नाराशंसेन सोमेन । पितॄणां च मन्मभिः ३
आ त एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे । ज्योक् च सूर्यं दृशे ४
पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः । जीवं व्रातं सचेमहि ५
वयं सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः । प्रजावन्तः सचेमहि ६ [१९] (५७३)

(५८)

१२ बन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः । मन आवर्तनम् । अनुष्टुप् ।

यत् ते यमं वैवस्वतं मनो जगाम दूरकम् । तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे १
यत् ते दिवं यत् पृथिवीं मनो जगाम दूरकम् । तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे २
यत् ते भूमिं चतुर्भृष्टिं मनो जगाम दूरकम् । तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ३
यत् ते चतस्रः प्रदिशो मनो जगाम दूरकम् । तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ४

---

[५७०] (नाराशंसेन सोमेन) नाराशंस-पितरोंके लिये तैयार किये उत्तम सोमसे और (पितॄणां च मन्मभिः) पितरोंके मननीय स्तोत्रोंसे (मनः नु आ हुवामहे) हम अपने मनको शीघ्रही बुलाते हैं ॥ ३ ॥

[५७१] हे सुबन्धु ! (ते मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे) तेरा मन पुनः कर्म करने, बल प्राप्त करने, जीवनके लिये, (ज्योक् सूर्यं च दृशे) और चिरकालतक सूर्यके दर्शनके लिये (आ एतु) मेरे पास आवे ॥ ४ ॥

[५७२] (नः पितरः जनः दैव्यः) हमारे और देव भी (जीवं व्रातं पुनः ददातु) हमें फिर जीवन और प्राणादि इन्द्रिय प्रदान करें; (सचेमहि) हम उन दोनोंको प्राप्त करें ॥ ५ ॥

[५७३] हे (सोम) सोम देव ! (वयं तव व्रते तनूषु मनः बिभ्रतः) हम लोग तेरे कर्मके लिये अपने देहोंमें मनको धारण करते हैं; (प्रजावन्तः सचेमहि) उत्तम सन्ततियुक्त होकर तेरे कार्यमें मिलें -उत्तम जीवन प्राप्त करें ॥ ६ ॥

[५८]

[५७४] (यत् ते मनः) जो तुम्हारा मन (दूरकं) बहुत दूर (वैवस्वतं यमं) विवस्वान्के पुत्र यमके पास (जगाम) चला गया है। (ते तत्) तुम्हारे उस मनको (आवर्तयामसि) लौटा लाते हैं, क्योंकि तुम (इह क्षयाय जीवसे) इस संसारमें निवास करनेके लिए जीते हो॥ १ ॥

[५७५] (यत् ते मनः) जो तेरा मन (दूरकम्) बहुत दूर (दिवं यत् पृथिवीं जगाम) द्युलोक और पृथिवीलोकके पास चला गया (ते तत् आवर्तयामसि) तेरे उस मनको लौटा लाते हैं, क्योंकि तुम (इह क्षयाय जीवसे) यहां इस संसारमें निवासके लिए जीते हो ॥ २ ॥

[५७६] (यत् ते मनः) जो तेरा मन (चतुर्भृष्टिं भूमिं) चारों ओरसे तपनेवाली भूमिके पास (दूरकं) बहुत दूर (जगाम) चला गया है, (ते तत् आवर्तयामसि) तेरे उस मनको लौटा लाते हैं, क्योंकि तू (इह क्षयाय जीवसे) इस संसारमें निवास करनेके लिए जीवित हो।

भृष्टिः (भ्रस्ज-पाके) पका हुआ, तपा हुआ, मरुभूमि ! ॥ ३ ॥

[५७७] (यत् ते मनः) जो तुम्हारा मन (चतस्रः प्रदिशः दूरकं जगाम) चारों प्रदिशाओंमें बहुत दूर चला गया है। (ते तत् आवर्तयामसि) तुम्हारे उस मनको हम लौटा लाते हैं, क्योंकि तुम (इह क्षयाय जीवसे) यहां निवासके लिए जीवित हो ॥ ४ ॥

यत् ते समुद्रमर्णवं मनो जगाम दूरकम् । तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ५
यत् ते मरीचीः प्रवतो मनो जगाम दूरकम् । तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ६ [२०]
यत् ते अपो यदोषधीर्मनो जगाम दूरकम् । तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ७
यत् ते सूर्यं यदुषसं मनो जगाम दूरकम् । तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ८
यत् ते पर्वतान् बृहतो मनो जगाम दूरकम् । तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ९
यत् ते विश्वमिदं जगन्मनो जगाम दूरकम् । तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे १०
यत् ते पराः परावतो मनो जगाम दूरकम् । तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ११
यत् ते भूतं च भव्यं च मनो जगाम दूरकम् । तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे १२
[२१] (५८५)

---

[५७८] (यत् ते मनः) जो तुम्हारा मन (अर्णवं समुद्रं) जलसे भरे समुद्रके पास (दूरकं जगाम) बहुत दूरतक चला गया है, (ते तत् आवर्तयामसि) तुम्हारे उस मनको हम लौटा लाते हैं, क्योंकि तुम (इह क्षयाय जीवसे) यहां इस जगत्में निवासके लिए जीवित हो ॥ ५ ॥

[५७९] (यत् ते मनः) जो तेरा मन (प्रवतः मरीचीः) चारों ओर फैली हुई किरणोंके पास (दूरकं जगाम) बहुत दूर चला गया है (ते तत् आवर्तयामसि) तेरे उस मनको हम लौटा लाते हैं, क्योंकि तू (इह क्षयाय जीवसे) यहां निवासके लिए ही जीवित है ॥ ६ ॥

[५८०] (यत् ते मनः अपः) जो तेरा मन जलोंमें तथा (यत् ओषधीषु) जो औषधि वनस्पतियोंमें (दूरकं जगाम) बहुत दूर चला गया है। (ते तत् आवर्तयामसि) तेरे उस मनको हम लौटा लाते हैं, (इह क्षयाय जीवसे) क्योंकि तू यहां इस संसारमें रहनेके लिए जी रहा है ॥ ७ ॥

[५८१] (यत् ते मनः) जो तेरा मन (सूर्यं) सूर्यके पास तथा (यत् उषसं) जो उषाके पास (दूरकं जगाम) बहुत दूर चला गया है, (ते तत् आवर्तयामसि) तेरे उस मनको हम लौटा लाते हैं, क्योंकि तू (इह क्षयाय जीवसे) यहां इस जगत्में निवासके लिए जीवित है ॥ ८ ॥

[५८२] (यत् ते मनः) जो तेरा मन (बृहतः पर्वतान्) बडे बडे पर्वतोंके पास (दूरकं) अत्यन्त दूर चला गया है, (ते तत्) उस तेरे मनको हम (आवर्तयामसि) फिर दुबारा वापिस ले आते हैं, क्योंकि तू (इह क्षयाय जीवसे) यहां इस संसारमें जीवित है ॥ ९ ॥

[५८३] (यत् ते मनः) जो तेरा मन (इदं विश्वं जगत्) इस सारे संसारके पास (दूरकं) बहुत दूर (जगाम) चला गया है। (ते तत् आवर्तयामसि) तेरे उस मनको हम लौटा देते हैं, क्योंकि तू (इह क्षयाय जीवसे) यहां इस संसारमें रहनेके लिए जीवित है ॥ १० ॥

[५८४] (ते यत् मनः) तेरा जो मन (परावतः परः) दूरसे दूर और (दूरकं) उससे भी दूर (जगाम) चला गया है, (ते तत् आवर्तयामसि) तेरे उस मनको हम लौटा लाते है, क्योंकि तू (इह क्षयाय जीवसे) यहां इस संसारमें रहनेके लिए जीता है ॥ ११ ॥

[५८५] (यत् ते मनः) जो तेरा मन (भूतं च भव्यं च) भूतकालमें और भविष्यत् में (दूरकं) बहुत दूर (जगाम) चला गया है, (ते तत्) तेरे उस मनको (आवर्तयामसि) हम लौटा लाते हैं, क्योंकि तेरा (इह क्षयाय जीवसे) यहां इस संसारमें रहनेके लिए जीवन है ॥ १२ ॥

(५९)

१० बन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः । १-३ निर्ऋतिः, ४ निर्ऋतिः सोमश्च, ५-६ असुनीतिः, ७ पृथिवी-द्यन्तरिक्ष-सोम-पूष-पथ्या-स्वस्तयः, ८-१० द्यावापृथिवी, १० (पूर्वार्धस्य) इन्द्र-द्यावापृथिव्यः । त्रिष्टुप्, ८ पङ्क्तिः, ९ महापङ्क्तिः, १० पङ्क्त्युत्तरा ।

प्र तार्यायुः प्रतरं नवीयः स्थातारेव क्रतुमता रथस्य ।
अध च्यवान उत् तवीत्यर्थं परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् १
सामन् नु राये निधिमन्न्वन्नं करामहे सु पुरुध श्रवांसि ।
ता नो विश्वानि जरिता ममत्तु परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् २
अभी ष्वर्यः पौंस्यैर्भवेम द्यौर्न भूमिं गिरयो नाज्रान् ।
ता नो विश्वानि जरिता चिकेत परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ३
मो षु णः सोम मृत्यवे परा दाः पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम् ।
द्युभिर्हितो जरिमा सू नो अस्तु परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ४
असुनीते मनो अस्मासु धारय जीवातवे सु प्र तिरा न आयुः
रारन्धि नः सूर्यस्य संदृशि घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व ५ [२२]

---

[५९]

[५८६] (रथस्य क्रतुमता स्थातारा इव) जैसे रथका कर्मकुशल सारथि होनेपर रथपर चढा व्यक्ति सुखका अनुभव करता है, वैसे ही (आयुः नवीयः प्रतरं प्रतारि) सुबन्धुकी आयु तारुण्ययुक्त और दीर्घ होकर बढे; (अध च्यवानः अर्थं उत्तवीति) और गमन करनेवाला पुरुष स्वयंके उद्देश्यको उत्तम रीतिसे प्राप्त करे; (निर्ऋतिः परातरं जिहीताम्) पाप देवता–निर्ऋति बहुत दूर हो जाय ॥ १ ॥

[५८७] (सामन् नु राये) सामगान चालू रहते ही परमायुरूप सम्पत्ति प्राप्त करनेके लिये (निधिमत् अन्नं सु पुरुध श्रवांसि करामहे) उत्तम प्रकारका अन्न और अनेक प्रकारका उत्तमोत्तम हवि उत्पन्न करते हैं; – (निर्ऋतिके लिये स्तुति और हवि हम प्रदान करते है); (ता नः विश्वानि जरिता ममत्तु) उन हमारे समस्त अन्नोंका आस्वाद ले जीर्ण होकर हमें सुख दें; (निर्ऋतिः परातरं सु जिहीताम्) निर्ऋति–दुःख कष्ट आदि अच्छी प्रकार दूर हो ॥ २ ॥

[५८८] हम (अर्यः पौंस्यैः सु अभि भवेम) शत्रुओंको पौरुषयुक्त बल पराक्रमोंसे अच्छी प्रकार पराजित करें; (द्यौः न भूमिं गिरयः अज्रान्न) सूर्य जैसे पृथिवीको और वज्र जैसे मेघको प्राप्त करते हैं; (ता नः विश्वानि जरिता निर्ऋतिः चिकेत) उन हमारे समस्त बोले जानेवाले स्तोत्रोंको निर्ऋति सुने, जाने; इस प्रकार (परातरं सु जिहीताम्) निर्ऋति खूब दूर हो ॥ ३ ॥

[५८९] हे (सोम) सोम ! (नः मृत्यवे मा सु परा दाः) तू हमें मृत्युके हाथमें –अधीन– न कर; (सूर्यं उत् चरन्तं नु पश्येम) हम सूर्यको ऊपर आकाशमें जाते सदा देखें; –निरंतर हम जीवित रहें (द्युभिः हितः जरिमा नः सु अस्तु) दिनदिन हमारी वृद्धावस्था सुखदायक हितकारी हो; और (निर्ऋतिः परातरं सु जिहीताम्) निर्ऋति देवता दूर हो ॥ ४ ॥

[५९०] हे (असुनीते) प्राणविद्याको जाननेवाले ! (अस्मासु मनः धारय) हममें मनको धारण करो तथा (जीवातवे नः आयुः सु प्र तिर) दीर्घ जीवनके लिए हमारी आयुको अच्छी तरह बढाओ । (नः सूर्यस्य संदृशि रारंधि) हमें सूर्यके प्रकाशमें पूर्ण करो (त्वं घृतेन तन्वं वर्धयस्व) तुम घृतसे हमारा शरीर बढाओ, पुष्ट करो ॥ ५ ॥

रारन्धि (रध् रन्ध्) हानि पहुंचाना, चोट पहुंचाना, मारना, पूर्ण करना ॥ ५ ॥

असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम् ।
ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्त मनुमते मृळया नः स्वस्ति ६
पुनर्नो असुं पृथिवी ददातु पुनर्द्यौर्देवी पुनरन्तरिक्षम् ।
पुनर्नः सोमस्तन्वं ददातु पुनः पूषा पथ्यां या स्वस्तिः ७
शं रोदसी सुबन्धवे यह्वी ऋतस्य मातरा ।
भरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो मो षु ते किं चनाममत् ८
अव द्वके अव त्रिका दिवश्चरन्ति भेषजा ।
क्षमा चरिष्ण्वेककं भरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो मो षु ते किं चनाममत् ९
समिन्द्रेरय गामनड्वाहं य आवहदुशीनराण्या अनः ।
भरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो मो षु ते किं चनाममत् १० [२३] (५९५)

---

[५९१] हे (असुनीते) प्राण विद्याके ज्ञाता ! (अस्मासु पुनः चक्षुः पुनः प्राणं) हममें पुनः चक्षुशक्ति पुनः प्राणशक्ति तथा (इह नः भोगं धेहि) इस संसारमें हमें भोग दो । हम (ज्योक् उत्-चरन्तं सूर्यं पश्येम) दीर्घकालतक उदय होते हुए सूर्यको देखें । हे अनुमते ! (आ मृळय) हमें चारों औरसे सुखी करो, (नः स्वस्ति) हमारा कल्याण करो ॥ ६ ॥

[५९२] (पृथिवी नः पुनः असुं ददातु) पृथिवी देवी हमें पुनः जीवन-प्राणदान करे; (पुनः द्यौः पुनः अन्तरिक्षम्) पुनः द्युलोक और अन्तरिक्ष देवता हमें प्राण दें; (सोमः नः पुनः तन्वं ददातु) सोम हमें पुनः शरीर दे, और (पूषा पथ्यां पुनः) सर्व पोषक पूषा हमें हितकर वाणी प्रदान करे; (या स्वस्तिः) जो स्वस्ति वचन है वो भी हमें दे- जिससे हमारा कल्याण हो ॥ ७ ॥

[५९३] (यह्वी ऋतस्य मातरा रोदसी सुबन्धवे शं) महान् और यज्ञकी वा जलकी माता द्यावापृथिवी सुबन्धुका कल्याण करें; (यत् रपः अप भरताम्) जो भी हमारा पाप हों उनको दूर करें । हे (द्यौः पृथिवि) द्यावा-पृथिवि ! (क्षमा) आप दोनों क्षमाशील है, तो पाप कैसे रहेगा ? हे सुबन्धु ! (ते मो षु किंचन रपः आममत्) तेरा जो कुछ भी पाप हो, वह कष्ट न देते नष्ट हो ॥ ८ ॥

[५९४] (दिवः द्वके त्रिका भेषजा अवचरन्ति) द्युलोकसे पृथ्वीपर दो- (अश्विनी रूपमें) और तीन (इळा, सरस्वती, भारती) रोग दूर करनेवाली ओषधियां संचार करती हैं; और (क्षमा एककं चरिष्णु) पृथिवीमें उनमें एक विचरण करता है- वास्तवमें एक ही योग्य औषधि है । हे (द्यौः पृथिवि क्षमा) द्यावा पृथिवि ! (यत् रपः अप भरताम्) जो हमारा पाप- दुःख हो, उसे दूर करो; (ते किंचन रपः मो षु आममत्) हे सुबन्धु ! तेरा कुछ भी पाप हमें कष्ट न दे ॥ ९ ॥

[५९५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यः उशीनराण्याः अनः आवहत्) जो उशीनराणी नामक ओषधिका शकट ले गया था, (अनड्वाहं गां सं ईरय) ऐसे शकटवाही बैलोंको अच्छी प्रकार प्रेरित कर; हे (द्यौः पृथिवि क्षमा) द्यावा पृथिवि ! (यत् रपः अप भरताम्) जो हमारा पाप है, उसे दूर करो; (ते रपः किंचन मो सु आममत्) तेरा दोष हमें कुछ भी कष्ट न दे ॥ १० ॥

×

(६०)

११ बन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः, ६ अगस्त्यस्वसा एषां माता ऋषिका । १-४, ६ असमातिः, ५ इन्द्रः, ७-११ जीवः, १२ हस्तः । अनुष्टुप्, १-५ गायत्री, ८-९ पंक्तिः ।

आ जनं त्वेषसंदृशं माहीनानामुपस्तुतम् । अगन्म बिभ्रतो नमः १
असमातिं नितोशनं त्वेषं निययिनं रथम् । भजेरथस्य सत्पतिम् २ (५९७)
यो जनान् महिषाँ इवा-ऽतितस्थौ पवीरवान् । उतापवीरवान् युधा ३
यस्येक्ष्वाकुरुप व्रते रेवान् मराय्येधते । दिवीव पञ्च कृष्टयः ४
इन्द्र क्षत्रासमातिषु रथप्रोष्ठेषु धारय । दिवीव सूर्यं दृशे ५
अगस्त्यस्य नद्भ्यः सप्ती युनक्षि रोहिता ।
पणीन् न्यक्रमीरभि विश्वान् राजन्नराधसः ६ [२४]

अयं मातायं पिता ऽयं जीवातुरागमत् । इदं तव प्रसर्पणं सुबन्धवेहि निरिहि ७

[६०]

[५९६] (त्वेषसंदृशं माहीनानां उपस्तुतम् जनम्) तेजस्वी और महान् लोगोंसे प्रशंसित वशमें (नमः बिभ्रतः) नमस्कार करते हुए- विनम्र होकर (आ अगन्म) हम गये हैं ॥ १ ॥

[५९७] (नितोशनं त्वेषं निययिनं रथं) शत्रुओंका संहारकर्ता, तेजस्वी, रथके समान सर्वत्र गमन करनेवाले (भजेरथस्य सत्पतिम्) भजेरथ राजाके वंशमें उत्पन्न और सज्जनोंके रक्षक (असमातिं) असमाति राजाकी हम स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

[५९८] (यः महिषान् इव जनान् पवीरवान् अतितस्थौ) जो, जैसे सिंह बडे भैंसोंको मार गिराता है, वैसे ही अपने विरोधियोंको भी हाथमें खड्ग लेकर विजय करता है; (उत युधा अपवीरवान्) और युद्धमें हाथमें खड्ग न लेते हुए भी शत्रुओंको पराजित करता है ॥ ३ ॥

[५९९] (यस्य रेवान् मरायी इक्ष्वाकुः) जिस राष्ट्रके धनवान् शत्रुओंके संहारक इक्ष्वाकु राजा (व्रते उप एधते) शासनके कार्यमें वृद्धि प्राप्त करता है, उस राज्यमें (पञ्च दिवि इव कृष्टयः) पांचों वर्णोंके लोग स्वर्गके समान संकल्पसिद्ध होकर सुख प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥

[६००] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (रथप्रोष्ठेषु असमातिषु क्षत्रा धारय) रथपर आरूढ असमाति राजाके लिये अनेक प्रकारके बलोंको धारण कर; (दिवि इव सूर्यं दृशे) जैसे सूर्य आकाशमें विराजमान होकर दीखता है ॥ ५ ॥

[६०१] हे (राजन्) राजन् ! तू (अगस्त्यस्य नद्भ्यः सप्ती रोहिता युनक्षि) अगस्ति ऋषिको आनंदित करनेवाले उनके बन्धु-बांधवोंके लिये अपने वेगवान् दो लाल अश्वोंको रथमें जोतो; और (विश्वान् अराधसः पणीन् नि अक्रमीः) सब अदानी कृपण लोभी व्यापारियोंको हराओ ॥ ६ ॥

[६०२] (अयं माता) यह माता (अयं पिता) यह पिता और (अयं जीवातु आगमत्) यह प्राण दाता आ गया है (सुबन्धो ! इदं तव प्रसर्पणं) हे जीव । यह शरीर तुम्हारे समर्पणका स्थान है (एहि, निरिहि) यहां आ ॥ ७ ॥

सुबन्धो ! इदं तव प्रसर्पणम्- हे जीव ! यह शरीर तेरा आश्रय स्थान है ॥ ७ ॥

यथा युगं वरत्रया नह्यन्ति धरुणाय कम् ।
एवा दाधार ते मनो जीवातवे न मृत्यवे ऽथो अरिष्टतातये ८
यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान् वनस्पतीन् ।
एवा दाधार ते मनो जीवातवे न मृत्यवे ऽथो अरिष्टतातये ९
यमादहं वैवस्वतात् सुबन्धोर्मन आभरम् । जीवातवे न मृत्यवे ऽथो अरिष्टतातये १०
न्यग्वातोऽव वाति न्यक् तपति सूर्यः । नीचीनमघ्न्या दुहे न्यग्भवतु ते रपः ११
अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः । अयं मे विश्वभेषजो ऽयं शिवाभिमर्शनः १२
[२५] (६०७)

---

[६०३] (यथा धरुणाय) जैसे रथको धारण करनेके लिये उसके (युगं) दोनों जूओंको (वरत्रया नह्यन्ति) रस्सी या पाशसे बांधते हैं, (एवा) उसी प्रकार (ते मनः) तेरे मनको (जीवातवे अ-रिष्टतातये) जीवन तथा विनाशरहित होनेके लिए (दाधार) धारण करता हूं, (अथ न मृत्यवे) मृत्यु अर्थात् विनाशके लिए नहीं ॥ ८ ॥

ते मनः जीवातवे अ-रिष्टतातये दाधार न मृत्यवे— तेरे मनको मैं जीवन तथा नीरोगिताके लिए धारण करता हूं, मृत्यु अर्थात् विनाशके लिए नहीं ।

वरत्रा-त्रम्— चमडेकी रस्सी ॥ ८ ॥

[६०४] (यथा इयं मही पृथिवी) जैसे यह विशाल पृथ्वी (इमान् वनस्पतीन् दाधार) इन वनस्पतियोंको धारण करती है। (एवा) उसी प्रकार (ते मनः जीवातवे अरिष्टतातये दाधार) तेरा मन जीवन तथा विनाश-रहित होनेके लिए धारण करता हूं। (अथ न मृत्यवे) मृत्यु या विनाशके लिए नहीं ॥ ९ ॥

[६०५] (अहं सुबन्धोः मनः) मैंने सुबन्धुके मनको (वैवस्वतात् यमात्) विवस्वान्‌के पुत्र यमसे (जीवातवे अरिष्टतातये) जीवन तथा विनाशरहित होनेके लिये (आभरम्) छुडाया है (न मृत्यवे) मृत्यु या विनाशके लिए नहीं ॥ १० ॥

अहं सुबन्धोः मनः वैवस्वतात् यमात् आभरम्– मैंने सुबन्धुके मनको विवस्वान्‌के पुत्र यमसे छुडाया है ॥१०॥

[६०६] (वातः न्यक् अव वाति) वायु नीचेकी ओर बहता है (न्यक् सूर्यः तपति) सूर्य ऊपरसे नीचेकी ओर तपता है (अघ्न्या नीचीनं दुहे) न मारने योग्य गौ नीचेकी ओर दुही जाती है, उसी प्रकार (ते रपः) तेरा पाप या अकल्याण (न्यक् भवतु) नीचेकी ओर होवे ॥ ११ ॥

रपः– दोष, पाप, हानि, अकल्याण ।

ते रपः न्यक् भवतु– तेरा पाप या अकल्याण नीचेकी ओर होवे ॥ ११ ॥

[६०७] (अयं मे हस्तः भगवान्) यह मेरा हाथ भाग्यवान् है (अयं मे भगवत्तरः) यह मेरा हाथ अधिक भाग्यशाली है। (अयं मे विश्व भेषजः) यह मेरा हाथ रोगोंका निवारक है (अयं शिवअभिमर्शनः) यह मेरा हाथ शुभमंगल बढानेवाला है ॥ १२ ॥

यह मेरा हाथ सामर्थ्यशाली है, और मेरा दूसरा हाथ तो अधिक ही प्रभावशाली है। मेरे इस एक हाथमें सब रोग दूर करनेवाली शक्तियां हैं, और इस दूसरे हाथमें मंगल करनेका धर्म है ॥ १२ ॥

(६१) [पञ्चमोऽनुवाकः ॥५॥ सू० ६१-६८

१७ नाभानेदिष्ठो मानवः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ।

इदमित्था रौद्रं गूर्तवचा ब्रह्म क्रत्वा शच्यामन्तराजौ ।
क्राणा यदस्य पितरा मंहनेष्ठाः पर्षत् पक्थे अहन्ना सप्त होतॄन् १
स इद्दानाय दभ्याय वन्वञ्च्यवानः सूदैरमिमीत वेदिम् ।
तूर्वयाणो गूर्तवचस्तमः क्षोदो न रेत इतऊति सिञ्चत् २
मनो न येषु हवनेषु तिग्मं विपः शच्या वनुथो द्रवन्ता ।
आ यः शर्याभिस्तुविनृम्णो अस्याऽश्रीणीतादिशं गभस्तौ ३
कृष्णा यद्गोष्वरुणीषु सीदद् दिवो नपाताश्विना हुवे वाम् ।
वीतं मे यज्ञमा गतं मे अन्नं ववन्वांसा नेषमस्मृतध्रू ४
प्रथिष्ट यस्य वीरकर्ममिष्णदनुष्ठितं नु नर्यो अपौहत् ।
पुनस्तदा वृहति यत् कनाया दुहितुरा अनुभृतमनर्वा ५ [२६]

(६१)

[६०८] (गूर्तवचाः इदं इत्था रौद्रं ब्रह्म) स्तोत्र-स्तवन करनेके लिये उत्सुक नाभानेदिष्ट, यह सत्यस्वरूप रुद्र-देवताका सूक्त (क्रत्वा शच्यां आजौ अन्तः) बुद्धिपूर्वक किया हुआ, अङ्गिरसोंके संघके यज्ञकर्ममें बोलता है; (यत् अस्य पितरा क्राणा) इसके माता-पिता जिस स्तोत्रके विभाजनका कार्य कर रहे हैं, और (मंहनेष्ठाः) भाग लेनेवाले भ्राता आदि करते हैं, वह (पक्थे अहन् सप्त होतॄन् पर्षत्) यज्ञसत्रके योग्य छठे दिनमें सात होताओंसे कहकर पूर्ण कर दिया ॥ १ ॥

[६०९] (स इत् दानाय दभ्याय वन्वन्) वह रुद्र स्तोताओंको धनवान देनेके लिये और शत्रुओंको नष्ट करनेके लिये प्रेरित कर (सूदैः च्यवानः वेदिं अमिमीत) उन्हें शास्त्रादिका प्रदान करता हुआ वेदीपर बैठता है; (तूर्वयाणः गूर्तवचस्तमः क्षोदः न) शीघ्र गतिसे जानेवाला और जोरसे आवाज-गर्जना करनेवाला स्तुत्य रुद्र, मेघ जैसे जल बरसाता है वैसे ही (रेतः इतः ऊति सिञ्चत्) उपस्थित होकर अपने सामर्थ्यको प्रदान करता है ॥ २ ॥

[६१०] हे अश्विनीकुमार ! तुम (मनः न तिग्मं) मनके समान अत्यंत वेगसे (विपः येषु हवनेषु शच्या द्रवन्ता वनुथः) स्तोता अध्वर्युके जिस यज्ञमें बुद्धिपूर्वक दौडकर जाते हो, (यः आ तुविनृम्णः) जो अध्वर्यु विपुल हवनसामग्रीसे सम्पन्न होते हुए भी (गभस्तौ शर्याभिः अस्य आदिशं अश्रीणीत) अपने हाथमें मेरी अंगुलियां पकड कर तुम्हारा नाम लेकर, यज्ञ सम्पन्न करता है ॥ ३ ॥

[६११] हे (दिवः नपाता) द्युलोक पुत्र ! हे (अश्विना) अश्विकुमार ! (यत् अरुणीषु गोषु कृष्णा सीदत्) जब प्रातःकालकी अरुणवर्णकी सूर्य किरणोंमें रात्रिका अंधकार नष्ट होता है, तब (वां हुवे) तुम्हें मैं बुलाता हूं; तुम (मे यज्ञं वीतम् आगतम्) मेरे यज्ञकी मनसे इच्छा करते हुए आवो; (मे अन्नम्) मेरे अन्न-हविष्यान्नका सेवन करो; (इषं न ववन्वांसा) वो अश्वोंके समान निरंतर सेवन करते हुए (अस्मतध्रू) तुम द्वेषभावको भूल जाओ ॥ ४ ॥

[६१२] (यस्य इष्णत् वीरकर्म प्रथिष्ट अनुष्ठितम्) जिस प्रजापतिका इच्छाशक्तियुक्त वीर्य प्रसिद्ध है- (जिससे वीर ही उत्पन्न होते हैं । प्रजापतिने संतति निर्माणके लिये, उसका सक किया; (नर्यः अपौहत्) उसे मनुष्योंके हितके लिये ही त्यागा था; (पुनः आ वृहति) पुनः वह उसे धारण करता है; (यत् अनर्वा कनायाः दुहितुः अनुभृतं आः) जो सर्वश्रेष्ठ प्रजापति अपनी सुंदर कन्या उषाके गर्भमें रखता है ॥ ५ ॥

मध्या यत् कर्त्वमभवदभीके कामं कृण्वाने पितरि युवत्याम् ।
मनानग्रेतो जहतुर्वियन्ता सानौ निषिक्तं सुकृतस्य योनौ ६ (६१३)
पिता यत् स्वां दुहितरमधिष्कन् क्ष्मया रेतः संजग्मानो नि षिञ्चत् ।
स्वाध्योऽजनयन् ब्रह्म देवा वास्तोष्पतिं व्रतपां निरतक्षन् ७
स ईं वृषा न फेनमस्यदाजौ स्मदा परैदप दभ्रचेताः ।
सरत् पदा न दक्षिणा परावृङ् न ता नु मे पृशन्यो जगृभ्रे ८
मक्षू न वह्निः प्रजाया उपब्दि- रग्निं न नग्न उप सीददूधः ।
सनितेध्मं सनितोत वाजं स धर्ता जज्ञे सहसा यवीयुत् ९
मक्षू कनायाः सख्यं नवग्वा ऋतं वदन्त ऋतयुक्तिमग्मन् ।
द्विबर्हसो य उप गोपमागु- रदक्षिणासो अच्युता दुदुक्षन् १० [२७]

[६१३] (युवत्यां कामं कृण्वाने पितरि) जिस समय युवती कन्या उषामें अभिलाषा करते हुए, पिता- (मध्या अभीके यत् कर्त्वं अभवत्) उन दोनोंका आकाशमें समीप भी जो संगमन हुआ, उस समय (मनानक् रेतः जहतुः) अल्प वीर्यका सेक हुआ; (वियन्तौ सानौ सुकृतस्य योनौ निषिक्तम्) परस्पर संगमन करते हुए प्रजापतिने यज्ञके आधार स्वरूप एक उच्चतम स्थानमें उसका सिंचन किया– उससे रुद्र उत्पन्न हुआ ॥ ६ ॥

[६१४] (यत् पिता स्वां दुहितरं अधिष्कन्) जिस समय पिता–प्रजा–पति अपनी कन्या–उषाके साथ संगत हुआ, उस समय (क्ष्मया संजग्मानः रेतः नि षिञ्चत्) पृथिवीके साथ मिलकर उसने वीर्यका सिंचन किया; तभी (स्वाध्यः देवाः ब्रह्म अजनयन्) उत्तम कर्म करनेवाले देवोंने ब्रह्मको उत्पन्न किया; (व्रतपां वास्तोष्पतिं निरतक्षन्) सब कार्योंके रक्षक वास्तोष्पति–यज्ञके पालकका निर्माण किया ॥ ७ ॥

[६१५] (स ईं वृषा न आजौ फेनं अस्यत्) वह यह जैसे बलवान् इन्द्र नमुचिके वधके समय युद्धमें फेन फेंकते हुए आये थे, वैसे ही (स्मत् आ अप परा एत्) हमसे वह– वास्तोष्पति दूर ही रहे– प्रति गमन करे; (दभ्रचेताः दक्षिणा परावृक् पदा न सरत्) अल्पबुद्धि यह मुझसे दक्षिणा स्वरूपमें दी गई गायें ग्रहण करनेके लिये उन्हें दूरसे ही त्यागकर आगे पैर भी बढाता नहीं; (मे ताः पृशन्यः न जगृभ्रे) सत्य ही मेरी वे गायें मार्गदर्शक रुद्र ग्रहण न करे ॥८॥

[६१६] (प्रजायाः उपब्दिः वह्निः मक्षु न उप सीदत्) प्रजाके उत्पीडक और अग्निके समान दाहक राक्षस सहसा दिनमें यहां इसे यज्ञमें नहीं आ सकते; (ऊधः अग्निं नग्नः न) और रात्रिमें भी वस्त्रहीन दुष्ट अग्निके पास नहीं आ सकते; क्योंकि इस यज्ञकी रक्षा रुद्र करते हैं; जो अग्नि (इध्मं सनिता) समिधाओंको लेता हुआ (उत वाजं सनिता) और हविको अन्न, बलको–प्रदान करनेवाला, (स धर्ता सहसा यवीयुत् जज्ञे) वह यज्ञका धावक अग्नि उत्पन्न होकर राक्षसोंके साथ बलपूर्वक युद्धमें प्रवृत्त हुआ जाना जाता है ॥ ९ ॥

[६१७] (नवग्वाः ऋतं वदन्तः मक्षु कनायाः) नवग्व अङ्गिरसोंने यज्ञमें स्तोत्रोंको बोलते हुए शीघ्रही कमनीय– उत्तम स्तुतियोंको (ऋतयक्तिं सख्यं अग्मन्) कहते यज्ञकी परिसमाप्ति की; – सख्य प्राप्त किया; (द्विबर्हसः ये गोपं उप आगुः) दोनों द्यावा–पृथिवी–लोकोंमें इन अङ्गिरसोंने संरक्षक नामानेदिष्ट इन्द्रकी प्राप्ति की; वे (अदक्षिणासः अच्युता दुधुक्षन्) दक्षिणारहित और स्थिर हुए— उन्होंने अविनाशी फल प्राप्त किया ॥ १० ॥

मक्षू कनायाः सख्यं नवीयो राधो न रेत ऋतमित् तुरण्यन् ।
शुचि यत् ते रेक्ण आयजन्त सबर्दुघायाः पय उस्रियायाः ११
पश्वा यत् पश्चा वियुता बुधन्तेति ब्रवीति वक्तरी रराणः ।
वसोर्वसुत्वा कारवोऽनेहा विश्वं विवेष्टि द्रविणमुप क्षु १२
तदिन्न्वस्य परिषद्वानो अग्मन् पुरू सदन्तो नार्षदं बिभित्सन् ।
वि शुष्णस्य संग्रथितमनर्वा विदत् पुरुप्रजातस्य गुहा यत् १३
भर्गो ह नामोत यस्य देवाः स्व१र्ण ये त्रिषधस्थे निषेदुः ।
अग्निर्ह नामोत जातवेदाः श्रुधी नो होतर्ऋतस्य होताध्रुक् १४
उत त्या मे रौद्रावर्चिमन्ता नासत्याविन्द्र गूर्तये यजध्यै ।
मनुष्वद्वृक्तबर्हिषे रराणा मन्दू हितप्रयसा विक्षु यज्यू १५ [२८]
अयं स्तुतो राजा वन्दि वेधा अपश्च विप्रस्तरति स्वसेतुः ।
स कक्षीवन्तं रेजयत् सो अग्निं नेमिं न चक्रमर्वतो रघुद्रु १६

---

[६१८] (मक्षु कनायाः नवीयः सख्यम्) जिस समय शीघ्र ही अत्यंत सुंदर स्तोत्रोंके द्वारा नये ही मैत्री-भावको और (राधः रेतः न ऋतं इत् तुरण्यन्) नई संपत्तिके समान द्युलोकसे अभिषिक्त वृष्टिजलको प्राप्त किया; हे इन्द्र ! (ते यत् रेक्णः आ अयजन्त) उस समय वे तुझे जो शुद्ध पवित्र धन प्रदान करके तेरी पूजा करते हैं, वह (सबर्दुघायाः उस्रियायाः पयः) अमृतके समान दूध देनेवाली गायोंके उज्ज्वल पवित्र दूधके समान होता है ॥ ११ ॥

[६१९] (यत् पश्वा वियुता पश्चा बुधन्त) जिस समय स्तोता अपनी गोशालाको गौरहित है, यह जानता है, उस समय (कारवः इति ब्रवीति) स्तोता-भक्त इस प्रकार कहता है- (वक्तरि रराणः) स्तोत्रमें रममाण होनेवाला (वसोः वसुत्वा) और धनवानोंमें धनवान्, (अनेहा विश्वं द्रविणं क्षु उप विवेष्टि) निष्पाप इन्द्र सब गोरूप धन शीघ्रही-चोरोंसे प्राप्त करके भक्तको देनेके लिये धारण करता है ॥ १२ ॥

[६२०] (तत् इत् नु अस्य परिषद्वानः अग्मन्) वहीं शीघ्रही इन्द्रके अनुचर उसे घेरकर साथ जाते हैं; (पुरु सदन्तः नार्षदं बिभित्सन्) अनेक प्रकारके वे नृषदके पुत्रको मारते हैं; (अनर्वा यत् गुहा) स्थिर इन्द्र जैसे असुरोंके निगूढ दुर्ज्ञेय मर्मको जानता है, वैसे ही (पुरुप्रजातस्य शुष्णस्य संग्रथितं विदत्) बहुरूपोंका धारक शुष्ण-नामक असुरके मर्मको इंद्रने जान लिया ॥ १३ ॥

[६२१] (उत भर्गः ह नाम) वह भर्ग नामवाला तेज कल्याणकारक प्रसिद्ध है; (यस्य त्रिषधस्थे ये देवाः स्वर्ण निषेदुः) जिस अग्निके तीनों लोकोंमें विद्यमान तेजमें जो सब देव स्वर्गके समान रहते हैं; (उत अग्निः ह नाम) और वह तेज अग्नि ही स्वयं है; (जातवेदाः) उसका नाम जातवेदस् भी है; हे (होतः) होम निष्पादक अग्नि ! (ऋतस्य होता अध्रुक् नः श्रुधि) यज्ञके होता तू द्रोहबुद्धि न करके हमारे आह्वानको प्रेमसे सुन ! ॥ १४ ॥

[६२२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (उत त्या अर्चिमन्ता रौद्रौ नासत्यौ मे गूर्तये यजध्यै) और वे दोनों प्रसिद्ध तेजस्वी रुद्रपुत्र अश्विनीकुमार मेरी स्तुति सुने और यज्ञमें पधारे । और (मनुष्वत् वृक्तबर्हिषे रराणा) वे मेरे पिता मनुके यज्ञमें जैसे प्रसन्न होते हैं, वैसे ही मेरे यज्ञमें भी अत्यंत हर्षित हों; (मन्दू हितप्रयसा विक्षु यज्यू) वे मुझपर प्रसन्न होकर उत्तम धन, अन्न देनेवाले प्रजाओंके सुखके लिये यज्ञका ग्रहण करें ॥ १५ ॥

[६२३] (अयं वेधाः स्तुतः राजा वन्दि) इस सर्वप्रेरक और सर्वोसे प्रशंसित राजा सोमकी हम भी स्तुति करते हैं; (विप्रः स्वसेतुः अपः च तरति) शुद्ध और स्वयं सेतु वा बंधके समान अन्तरिक्षको हरदिन पार करता है-व्यापता है; (सः कक्षीवन्तं रेजयत् सः अग्निम्) वह कक्षीवान् और अग्निको भी कंपाता है, जैसे (नेमिं रघुद्रु चक्रं अर्वतः न) नमनशील अतिवेगसे चलनेवाले चक्रको अश्व गति देते हैं ॥ १६ ॥

स द्विबन्धुर्वैतरणो यष्टा सबर्धुं धेनुमस्वं दुहध्यै ।
सं यन्मित्रावरुणा वृञ्ज उक्थैर्ज्येष्ठेभिरर्यमणं वरूथैः १७
तद्बन्धुः सूरिर्दिवि ते धियंधा नाभानेदिष्ठो रपति प्र वेनन् ।
सा नो नाभिः परमास्य वा घाऽहं तत् पश्चा कतिथश्चिदास १८
इयं मे नाभिरिह मे सधस्थमिमे मे देवा अयमस्मि सर्वः ।
द्विजा अह प्रथमजा ऋतस्येदं धेनुरदुहज्जायमाना १९
अधासु मन्द्रो अरतिर्विभावाऽव स्यति द्विवर्तनिर्वनेषाट् ।
ऊर्ध्वा यच्छ्रेणिर्न शिशुर्दन् मक्षू स्थिरं शेवृधं सूत माता २० [२९] (६२७)
अधा गाव उपमातिं कनाया अनु श्वान्तस्य कस्य चित् परेयुः ।
श्रुधि त्वं सुद्रविणो नस्त्वं याळाश्वघ्नस्य वावृधे सूनृताभिः २१

---

[६२४] (यत् मित्रावरुणा अर्यमणं ज्येष्ठेभिः वरूथैः) जब मित्र, वरुण और अर्यमाको श्रेष्ठ-उत्तम स्तोत्रोंसे (सं वृञ्जे) अच्छी प्रकार स्तुति करके संतुष्ट किया जाता है; तब (सः द्विबन्धुः वैतरणः यष्टा) वह दोनों लोकोंका हितैषी, हविर्योग्यका इस लोकसे विशेष रूपसे तारनेवाला और यज्ञकर्ता अग्नि (सबर्धुं धेनुं अस्वं दुहध्यै) अमृतके समान दूध देनेवाली गाय दूध नहीं देती, तब उसे प्रसववती करके वह दूध देनेवाली बनाता है ॥ १७ ॥

[६२५] (ते तत् बन्धुः दिवि सूरिः) तेरा वह- मैं परम बन्धु- पृथिविपुत्र आकाशमें स्थित तेरी स्तुति करता हूं; वह मैं (धियंधाः नाभानेदिष्ठः वेनन् प्र रपति) कर्मकर्ता नाभानेदिष्ठ अङ्गिराने दी हुई एक सहस्र गायोंकी इच्छा करके तेरी स्तुति करता हूं; (वा सा नः अस्य परमा नाभिः घ) और द्युलोक हमारी और आदित्यकी भी श्रेष्ठ नाभि- प्रेममें बांधनेवाली माताके समान अधिष्ठात्री है, (अहं तत् पश्चा कतिथः चित् आस) मैं उस आदित्यके पश्चात् कितनोंमें एक हूं-मैं बहुत अनन्तरही उत्पन्न हुआ हूं ॥ १८ ॥

[६२६] (इयं मे नाभिः) यह वाणी (आदित्य) मेरा बंधक है; (इह मे सधस्थम्) इस मंडलमें मेरा रहनेका स्थान है; (इमे देवाः मे) ये सारे देव- प्रकाशमान् किरणें मेरे अपने हैं; (अयं सर्वः अस्मि) यह मैं ही सब हूं; (अह द्विजाः ऋतस्य प्रथमजाः) और ये ब्राह्मण सत्य स्वरूप ब्रह्माके पूर्व ही उत्पन्न हुए हैं; (धेनुः जायमाना इदं अदुहत्) पृथिवि देवता-माध्यमिका वाक्ने उत्पन्न होकर यह सब उत्पन्न किया ॥ १९ ॥

[६२७] (अध आसु मन्द्रः अरतिः विभावा) और चारों दिशाओंमें अत्यंत आनन्द करनेवाला, गमनशील, तेजस्वी, (द्विवर्तनिः वनेषाट् अव स्यति) दोनों लोकोंमें जानेवाला, काष्ठभक्षक अग्नियागके लिये आया है; (यत् ऊर्ध्वा श्रेणिः शिशुः मक्षु दन्) जो उपस्थित पंक्तिमें स्थित प्रशंसनीय सेनाके समान शीघ्र ही शत्रुओंका दमन करता है; उस (स्थिरं शेवृधं माता सूत) स्थिर सुखोंके वर्धक अग्निको अरणि यज्ञमें उत्पन्न करती है ॥ २० ॥

[६२८] (अध श्वान्तस्य कस्य चित् कनायाः गावः) अभी -श्रान्त किसी एककी- नाभानेदिष्टकी उत्तम श्रेष्ठ वाणियां- (उपमातिं अनु परा इयुः) सर्व स्तुतियोग्य इन्द्रके पास जाती हैं; हे (सुद्रविणः) धनवान् अग्नि ! (त्वं श्रुधि) तू हमारी प्रार्थना सुन; (नः याट्) तू हमारे इन्द्रका यज्ञ कर- (त्वं आश्वघ्नस्य सूनृताभिः ववृधे) तू अश्वमेध यज्ञ करनेवाले मनुके पुत्रकी स्तुतिसे वृद्धिगत होता है ॥ २१ ॥

अध त्वमिन्द्र विद्धय१स्मान् महो राये नृपते वज्रबाहुः ।
रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीननेहसस्ते हरिवो अभिष्टौ २२
अध यद्राजाना गविष्टौ सरत् सरण्युः कारवे जरण्युः ।
विप्रः प्रेष्ठः स ह्येषां बभूव परा च वक्षदुत पर्षदेनान् २३
अधा न्वस्य जेन्यस्य पुष्टौ वृथा रेभन्त ईमहे तदू नु ।
सरण्युरस्य सूनुरश्वो विप्रश्चासि श्रवसश्च सातौ २४
युवोर्यदि सख्यायास्मे शर्धाय स्तोमं जुजुषे नमस्वान् ।
विश्वत्र यस्मिन्ना गिरः समीचीः पूर्वीव गातुर्दाशत् सूनृतायै २५
स गृणानो अद्भिर्देववानिति सुबन्धुर्नमसा सूक्तैः ।
वर्धदुक्थैर्वचोभिरा हि नूनं व्यध्वैति पयस उस्रियायाः २६
त ऊ षु णो महो यजत्रा भूत देवास ऊतये सजोषाः ।
ये वाजाँ अनयता वियन्तो ये स्था निचेतारो अमूराः २७ [३०] (६३४)

---

[६२९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! हे (नृपते) नरेन्द्र ! (अध वज्रबाहुः अस्मान् महः राये विद्धि) और सब बल वज्र धारण करनेवाला तू हमें बहुत धन दे- हम प्रचुर धनकी कामना करते हैं; यह तू जान; (मघोनः सूरीन् नः रक्ष च) हवि अर्पण करनेवाले और स्तुति करनेवाले हमारी रक्षा कर; हे (हरिवः) अश्वयुक्त इन्द्र ! (ते अभिष्टौ अनेहसः) हम तेरी स्तुतिसे- कृपासे निष्पाप होवें ॥ २२ ॥

[६३०] हे (राजाना) तेजस्वी मित्र और वरुण ! (अध यत् गविष्टौ सरण्युः सरत्) अब जो गोधन प्राप्त करनेके लिये सरणशील यम अंगिरसोंके पास जाता है, वह (जरण्युः विप्रः कारवे प्रेष्ठः) स्तुतिशील विद्वान् नाभानेदिष्ट कर्मकर्ताको अत्यंत प्रिय होता है; (सः हि एषां बभूव) और वह ही इनका प्रिय हुआ; (परा च वक्षत्) दूर देशतक उनका कार्य उसने बढाया; (उत एनान् पर्षत्) और उनको अंगिरसोंको पार करता है ॥ २३ ॥

[६३१] (अध नु अस्य जेन्यस्य तत् पुष्टौ वृथा रेभन्तः नु ईमहे) और शीघ्रही उस जयशील, स्तुत्यकी, धनवृद्धिके लिये मनःपूर्वक स्तुति करनेवाले हम अभिलषितकी शीघ्र याचना करते हैं; (सरण्युः अश्वः अस्य सूनुः) शीघ्र गमनशील अश्व यह वरुणका पुत्र है; हे वरुण ! (विप्रः च श्रवसः च सातौ असि) तू शुद्ध है और हमें अन्न लाभ करनेके लिये प्रवृत्त होता है ॥ २४ ॥

[६३२] हे मित्र और वरुण ! (युवोः सख्याय अस्मे शर्धाय) तुम्हारे मित्रत्वको बढाने और हमारे बल वृद्धिके लिये (यदि नमस्वान् स्तोमं जुजुषे) जब अन्नयुक्त अध्वर्यु विनीत होकर स्तुति करता है, (यस्मिन् विश्वत्र गिरः समीचीः आ) तुम्हारा मित्रत्व पानेपर सर्वत्र जगत्में स्तोत्रोंका उच्चारण होगा; (पूर्वीः इव गातुः सूनृतायै दाशत्) जैसे चिरपरिचित मार्ग सुखकर होता है, वैसे ही उत्तम स्तुति करनेवालोंको वह सुखप्रद हो ॥ २५ ॥

[६३३] (अद्भिः देववान् सुबन्धुः सः वरुणः इति) देवताओंसे देवोंकी कृपा प्राप्त हुआ परम बन्धु वह वरुण (नमसा सूक्तैः गृणानः वर्धत्) नमस्कार और स्तोत्रोंसे स्तवित हुआ आनन्द प्रसन्न होकर प्रवृद्ध हो । (उक्थैः नूनं आ) स्तुति वचनोंसे वह तुरंत हमारे पास आवे; (हि उस्रियायाः पयसः अध्वा वि एति) उसके लिये गायके दूधकी धारा बहती है ॥ २६ ॥

[६३४] हे (यजत्राः देवासः) यज्ञीय देवो ! (ते उ महः नः ऊतये सजोषाः भूत) तुम हमारी उत्तम रक्षाके लिये सब एकत्र मिलो; (ये वाजान् अनयत वियन्तः) तुम हमें अन्न दो; तुम मोहरहित हो; (ये अमूराः निचेतारः स्थ) तुम ज्ञानी हो; और तुम गोधनका निर्णय करनेवाले होवो ॥ २७ ॥

[द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ व० १-२४] (६२)

११ नाभानेदिष्ठो मानवः । विश्वे देवाः, १-६ अङ्गिरसो वा, ८-११ सावर्णेर्दानम् । जगती; ५, ८, ९ अनुष्टुप्; प्रगाथः= (६ बृहती, ७ सतोबृहती); १० गायत्री, ११ त्रिष्टुप्

ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इन्द्रस्य सख्यममृतत्वमानश ।
तेभ्यो भद्रमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः १
य उदाजन् पितरो गोमयं वस्वृतेनाभिन्दन् परिवत्सरे वलम् ।
दीर्घायुत्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः २
य ऋतेन सूर्यमारोहयन् दिव्यप्रथयन् पृथिवीं मातरं वि ।
सुप्रजास्त्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ३
अयं नाभा वदति वल्गु वो गृहे देवपुत्रा ऋषयस्तच्छृणोतन ।
सुब्रह्मण्यमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ४
विरूपास इदृषयस्त इद्गम्भीरवेपसः । ते अङ्गिरसः सूनवस्ते अग्नेः परि जज्ञिरे ५ [१]

[६२]

[६३५] हे (सुमेधसः अङ्गिरसः) सुप्रज्ञ अङ्गिरसो ! (यज्ञेन दक्षिणया समक्ताः ये इन्द्रस्य सख्यं) यज्ञीय द्रव्य-हवि आदि और विपुल दक्षिणासे युक्त यज्ञकर्मसे तुमने इन्द्रका मित्रत्व (अमृतत्वं आनश) और अमरत्व प्राप्त किया है; (तेभ्यः वः भद्रं अस्तु) उनके लिये आप लोगोंका कल्याण हो; (मानवं प्रति गृभ्णीत) नाभानेदिष्ठ जो मैं मनुका पुत्र, उस मुझको तुम अपनेमें ग्रहण करो ॥ १ ॥

[६३६] हे (अङ्गिरसः) अङ्गिरस ऋषिओ ! (ये पितरः गोमयं वसु ऋतेन परिवत्सरे उत् आजन्) तुम हमारे पितर जो पाणियोंसे अपहृत पर्वतमें छिपाकर रखे हुए गोरूप धनको सत्यस्वरूप यज्ञकी समाप्ति होते ही ले आये थे; (वलं अभिन्दन्) और वल नामक गौओंके हरणकर्ता वल असुरको नष्ट किया था; (वः दीर्घायुत्वं अस्तु) तुम्हें दीर्घ आयु हो ! हे (सुमेधसः) बुद्धिमान् जनो ! (मानवं प्रति गृभ्णीत) मुझ मनुके पुत्रको तुम ग्रहण करो ॥२॥

[६३७] हे (अङ्गिरसः) अंगिरसो ! (ये ऋतेन दिवि सूर्यं आरोहयन्) तुमने सत्यरूप यज्ञके बलसे द्युलोकमें सर्वप्रेरक सूर्यको स्थापित किया है; (मातरं पृथिवीं वि अप्रथयन्) और सबकी निर्मात्री पृथिवीको यज्ञकर्मोंसे समृद्ध तथा प्रसिद्ध किया है; (वः सुप्रजास्त्वं अस्तु) तुम्हारी उत्तम सन्तति हो; हे (सुमेधसः) उत्तम बुद्धियुक्त ऋषिओ ! (मानवं प्रति गृभ्णीत) मुझ मानवको अपनी शरणमें लेओ ॥ ३ ॥

[६३८] हे (देवपुत्राः) देवपुत्रो ! हे (ऋषयः) द्रष्टा जनो ! हे (अङ्गिरसः) अंगिरसो ! (अयं नाभा वः गृहे वल्गु वदति) यह नाभानेदिष्ठ तुम्हारे यज्ञमंडपमें कल्याणकारक वचन कहता है; (तत् शृणोतन) वह तुम आदरपूर्वक सुनो ! (सुब्रह्मण्यं वः अस्तु) तुम्हें शोभन ब्रह्मतेज प्राप्त हो; (सुमेधसः) सुज्ञ अङ्गिरसो ! (मानवं प्रति गृभ्णीत) इस समय मुझ मानवको अपनेमें ग्रहण करो ॥ ४ ॥

[६३९] (ऋषयः विरूपासः इत्) कर्मोंके द्रष्टा ऋषि विविध रंग और रूपवाले होते हैं; (ते इत् गम्भीर-वेपसः) वे अंगिरस ऋषि विचारपूर्वक कर्म करनेवाले होते हैं; (ते अङ्गिरसः अग्नेः सूनवः) ये अङ्गिरस ऋषि अग्निके पुत्र हैं; (ते परि जज्ञिरे) ये चारों ओर प्रादुर्भूत हुए हैं ॥ ५ ॥

+

ये अग्नेः परि जज्ञिरे विरूपासो दिवस्परि ।
नवग्वो नु दशग्वो अङ्गिरस्तमः सचा देवेषु मंहते ६ (६४०)
इन्द्रेण युजा निः सृजन्त वाघतो व्रजं गोमन्तमश्विनम् ।
सहस्रं मे ददतो अष्टकर्ण्यः श्रवो देवेष्वक्रत ७
प्र नूनं जायतामयं मनुस्तोक्मेव रोहतु । यः सहस्रं शताश्वं सद्यो दानाय मंहते ८
न तमश्नोति कश्चन दिव इव सान्वारभम् ।
सावर्ण्यस्य दक्षिणा वि सिन्धुरिव पप्रथे ९
उत दासा परिविषे स्मद्दिष्टी गोपरीणसा । यदुस्तुर्वश्च मामहे १०
सहस्रदा ग्रामणीर्मा रिषन्मनुः सूर्येणास्य यतमानैतु दक्षिणा
सावर्णेर्देवाः प्र तिरन्त्वायुर्यस्मिन्नश्रान्ता असनाम वाजम् ११ [२] (६४५)

---

[६४०] (विरूपासः ये दिवः परि अग्नेः परि जज्ञिरे) विविध रूपवाले जो अंगिरस ऋषि द्युलोकमें अग्निसे चारों ओर प्रादुर्भूत हुए, (नवग्वः दशग्वः नु अङ्गिरस्तमः) उन अंगिरसोंमें श्रेष्ठ किसीने नौ मासतक और किसीने दस मासतक यज्ञकर्म पूरा किया और पश्चात् ऊठ गये; (देवेषु सचा मंहते) उनके सदृश तेजस्वी देवोंके साथ अवस्थित वह अग्नि मुझे धन देता है ॥ ६ ॥

[६४१] (वाघतः इन्द्रेण युजा) उत्तम रीतिसे यज्ञकर्म करनेवाले अंगिरस ऋषियोंने, इन्द्रकी सहाय्यतासे (गोमन्तं अश्विनं व्रजं निः सृजन्त) गौओं और अश्वोंसे युक्त पशुओंका समुदाय जो असुरोंने गुहामें छिपाया था, मुक्त किया; वे ऋषि (मे सहस्रं अष्टकर्ण्यः ददतः) मुझे यज्ञमें अवशिष्ट सहस्र धन और सर्वांग सुंदर गौएं देकर (देवेषु श्रवः अक्रत) इन्द्रादि देवोंमें अपना यश विस्तृत करें ॥ ७ ॥

[६४२] (यः शताश्वं सहस्रं सद्यः दानाय मंहते) जो सैकडों अश्व और हजारों गायें शीघ्रही ऋषियोंको दान देनेके लिये प्रेरित करता है, (अयं मनुः नूनं तोक्मं एव प्रजायताम् रोहतु) वह यह सावर्णि मनु शीघ्र जलसे सींचे हुए बीजके समान कर्मफल युक्त होकर पुत्र और धनके साथ बढें ॥ ८ ॥

[६४३] (दिवः इव सानु तं) आकाशमें ऊंचे स्थानपर तेजस्वी सूर्यके तुल्य स्थित उस सावर्णि मनुके समान (कश्चन आरभं न अश्नोति) कोई भी दान देनेमें समर्थ नहीं है; (सावर्ण्यस्य दक्षिणा सिन्धुः इव वि पप्रथे) सावर्णि मनुका दान जिस प्रकार नदी पृथिवीपर सर्वत्र प्रसृत होकर बहती है, उस प्रकार बहुत दक्षिणाके कारण प्रसिद्ध होता है ॥ ९ ॥

[६४४] (उत स्मद्-दिष्टी गोपरीणसा दासा) और उत्तम कल्याणकारक, आज्ञाधारक विपुल गौ-धनसे संपन्न और सेवकके समान स्थित (यदुः तुर्वः च परिविषे ममहे) यदु और तुर्व नामक राजर्षि मनुके भोजनके लिये पशु भेजते हैं ॥ १० ॥

[६४५] (सहस्रदाः ग्रामणीः मनुः मा रिषत्) हजारों गौओंके दाता और मनुष्योंके नेता मनुका कोई अनिष्ट न करे; (अस्य यतमाना दक्षिणा सूर्येण एतु) इस मनुकी दी गई दक्षिणा सूर्यके साथ तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हो; (सावर्णेः देवाः आयुः प्रतिरन्तु) सावर्णि मनुकी आयु इन्द्रादि देव बढावें; (यस्मिन् अश्रान्ताः वाजं असनाम) जिसमें कभी कर्ममें आलस्य न करनेवाले हम अन्न प्राप्त करें ॥ ११ ॥

(६३)

१७ गयः प्लातः । विश्वे देवाः; १५-१६ पथ्या स्वस्तिः । जगती, १५ त्रिष्टुब्वा; १६-१७ त्रिष्टुप् ।

परावतो ये दिधिषन्त आप्यं मनुप्रीतासो जनिमा विवस्वतः ।
ययातेर्ये नहुष्यस्य बर्हिषि देवा आसते ते अधि ब्रुवन्तु नः १
विश्वा हि वो नमस्यानि वन्द्या नामानि देवा उत यज्ञियानि वः ।
ये स्थ जाता अदितेरद्भ्यस्परि ये पृथिव्यास्ते म इह श्रुता हवम् २
येभ्यो माता मधुमत् पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः ।
उक्थशुष्मान् वृषभरान् त्स्वप्नस्स्तान् आदित्याँ अनु मदा स्वस्तये ३
नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः ।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ४
सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम् ।
ताँ आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्याँ अदितिं स्वस्तये ५ [३]

[६३]

[६४६] (ये परावतः आप्यं दिधिषन्ते) जो इन्द्रादि देव दूर देशसे आकर यज्ञ करनेवाले, हविओंका दान करनेवाले मनुष्योंके साथ मंत्री करते हैं, (मनुप्रीतासः विवस्वतः जनिमा) जो देव यज्ञोंसे संतुष्ट होकर विवस्वानके पुत्र मनुकी मनुष्यरूप सन्तानोंको धारण करते हैं, (ये देवाः नहुषस्य ययातेः बर्हिषि आसते) जो देव नहुषपुत्र ययाति राजाके यज्ञमें आसनोंपर विराजते हैं, (ते नः अधि ब्रुवन्तु) वे देव धनादि प्रदान करके हमें सम्मानयुक्त करें और हमारा उत्कर्ष करें ॥ १ ॥

[६४७] हे (देवाः) देवो ! (वः विश्वा हि नामानि नमस्यानि) तुम्हारे सब नाम आदर-नमस्कार करने और (वन्द्या) स्तुति करने योग्य हैं; (उत वः यज्ञियानि) और तुम्हारे शरीर भी यज्ञार्ह हैं; (ये अदितेः अद्भ्यः परि) जो तुम द्युलोक, जल-अन्तरिक्ष और (ये पृथिव्याः जाताः स्थ) जो पृथिवीसे उत्पन्न हुए हैं, (ते इह मे हवं श्रुतम्) वे तुम इस यज्ञमें आकर मेरे आह्वानको सुनो ॥ २ ॥

[६४८] (माता येभ्यः मधुमत् पयः पिन्वते) सब जगत्को उत्पन्न करनेवाली पृथिवी जिन देवोंके लिये मधुर दूध-जल देती है, (अदितिः अद्रिबर्हाः द्यौः पीयूषम्) और अविनाशी तथा मेघोंसे आच्छादित आकाश अमृत धारण करता है, (उक्थ शुष्मान् वृषभरान्) स्तुतियुक्त यज्ञकर्मसे अत्यंत बलशाली, वृष्टि करनेवाले, (स्वप्नसः तान् आदित्यान् स्वस्तये अनु मद) उत्तम कर्म करनेवाले, उन अदितिके पुत्र देवोंकी अपने कल्याणके लिये स्तुति-प्रार्थना करो ॥ ३ ॥

[६४९] (नृचक्षसः अनिमिषन्तः) स्वकर्म करनेवाले मनुष्योंको देखनेके लिये जो सदा सावध रहते हैं, (देवासः अर्हणा बृहत् अमृतत्वं आनशुः) वे ये तेजस्वी देव योग्य उपासना-स्तुतिसे ही सर्वत्र पूज्य होकर उस महान् अमृतमय पदको प्राप्त करते हैं; (ज्योतिः रथाः अहिमायाः अनागसः) तेजोमय रथसे युक्त होकर अजिक्य और निष्पाप-पुण्यवान् ये देव (दिवः वर्ष्माणं स्वस्तये वसते) द्युलोकमें उच्च स्थानपर लोगोंके कल्याणके लिये ही रहते हैं ॥ ४ ॥

[६५०] (सम्राजः सुवृधः ये यज्ञं आययुः) स्वतेजसे विराजमान् और अत्यंत उत्कर्षसे वर्धित ये सोमादि देव हवि भक्षणके लिये यज्ञमें आते हैं, (अपरिह्वृता दिवि क्षयं दधिरे) और किसीसे भी पराभूत न होकर द्युलोकमें रहते हैं; (महः आदित्यान् तान् अदितिं) महान् गुणोंसे संपन्न अदितिके पुत्र उन प्रसिद्ध देवों और उनकी माता अदितिको (स्वस्तये नमसा सुवृक्तिभिः आ विवास) कल्याणके लिये उत्तम हविरूप अन्न और नम्रतापूर्वक स्तुति द्वारा सेवा कर ॥ ५ ॥

को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यति ष्ठन ।
को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद् यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ६
येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः ।
त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ७
य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः ।
ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्य१द्या देवासः पिपृता स्वस्तये ८ (६५३)
भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहे ऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम् ।
अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ९
सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागस मस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये १० [४]
विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः ।
सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ११

[६५१] हे (विश्वे देवासः) इन्द्रादि समस्त देवो ! (वः कः स्तोमं राधति) मुझे छोडकर तुम्हारी स्तुति कौन कर सकता है ? (यं जुजोषथ) जिसकी तुम प्रेमसे सेवा करते हो। हे (मनुषः) मननशील देवो ! (यति स्थन) तुम जितने भी हो, हे (तुविजाताः) बहुत संख्यामें विद्यमान देवो ! तुम्हारे लिये (कः अध्वरं अरं करत्) मेरे सिवाय अन्य कौन यज्ञको स्तुति और हविओंसे अलंकृत करता है ? (यः नः स्वस्तये अंहः अति पर्षत्) जो यज्ञ हमारे परम सुख और कल्याणके लिये हमें पापसे पार कर दे ॥ ६ ॥

[६५२] (समिद्धाग्निः मनुः मनसा सप्त होतृभिः) वैवस्वत मनुने उत्तम हविर्द्रव्योंसे अग्नि प्रदीप्त करके श्रद्धायुक्त मनसे सात ऋत्विजोंके साथ (येभ्यः प्रथमां होत्राम् आयेजे) जिन तुम श्रेष्ठोंका स्तवन किया है; हे (आदित्याः) अदितिके पुत्र देवो ! (ते अभयं शर्म) वे तुम हमें अभय और सुख प्रदान करो; (नः स्वस्तये सुपथा सुगा कर्त) और हमारे कल्याणके लिये हमारे मार्गोंको सुगम करो ॥ ७ ॥

[६५३] (प्रचेतसः मन्तवः ये स्थातुः जगतः) उत्कृष्ट ज्ञानवान् और मननशील देव स्थावर और जंगम (विश्वस्य भुवनस्य ईशिरे) सब भुवनोंके स्वामी हैं; हे (देवासः) देवो ! (ते नः कृतात् अकृतात् एनसः) तुम हमें किये और न किये हुए मानसिक पापसे (अद्य स्वस्तये परि पिपृत) कल्याणमय सुखके लिये आज सब ओरसे बचाकर परिपालन करो ॥ ८ ॥

[६५४] (अंहः मुचं सुहवं इन्द्रं भरेषु हवामहे) पापोंसे मुक्त करनेवाले, स्तुत्य-सुखके दाता इन्द्रको हम संग्राममें शत्रुओंसे रक्षा करनेके लिये बुलाते हैं; (सुकृतं दैव्यं जनं - अग्निं मित्रं वरुणं भगं) उत्तम कार्य करनेवाले दैवी गुणोंसे सम्पन्न जनोंको- अग्नि, मित्र, वरुण और भगको भी हम सहाय्यके लिये बुलाते हैं; (द्यावापृथिवी मरुतः सातये स्वस्तये) द्यावा-पृथिवी और मरुतोंको अन्न और कल्याणके लिये बुलाते हैं ॥ ९ ॥

[६५५] (सुत्रामाणं पृथिवीं अनेहसं) सबोंकी रक्षा करनेवाली, अत्यंत विशाल, निष्पाप, (सुशर्माणं अदितिं सुप्रणीतिं) सुखयुक्त, ऐश्वर्यवती, उत्तम आचरणवाली, (दैवीं सु-अरित्रां अनागसं) दैवी-गुणसम्पन्न, सुंदर डांडेवाली, पापरहित (अस्रवन्तीं नावं द्यां स्वस्तये आ रुहेम) निश्छिद्र नौकाके समान स्थित द्यु-स्वर्ग लोकपर हमारे कल्याणके लिये हम आरोहण करें ॥ १० ॥

[६५६] हे (यजत्राः विश्वे) यजनीय देवो ! (ऊतये अधि वोचत) तुम रक्षाके लिये हमें वचन दो; (अभिह्रुताः दुरेवायाः नः त्रायध्वम्) चारों ओरसे नाश करनेवाली दुर्गतीसे हमें बचाओ। हे (देवाः) देवो ! (शृण्वतः वः सत्यया देवहूत्या) श्रवण करते हुए तुम्हें सत्यरूप आदरयुक्त स्तुतियोंसे (अवसे स्वस्तये हुवेम) हम हमारी रक्षाके और कल्याणके लिये बुलाते हैं ॥ ११ ॥

अपामीवामप विश्वामनाहुति—मपारातिं दुर्विदत्रामघायतः ।
आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनो—रु णः शर्म यच्छता स्वस्तये १२
अरिष्टः स मर्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि ।
यमादित्यासो नयथा सुनीतिभि—रति विश्वानि दुरिता स्वस्तये १३
यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने ।
प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसि—मरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये १४
स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति ।
स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन १५
स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति ।
सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपा १६

---

[६५७] हे (देवाः) देवो ! (अमीवां अप विश्वां अनाहुतिम्) हमसे रोग और रोगवत् बाधक शत्रुको दूर करो; सब प्रकारकी अदानशील बुद्धि और देवोंके महाशत्रुको दूर करो; (अरातिं अप) धनकी लोभबुद्धि और देवोंको हविर्दान न करनेवाले शत्रुको दूर करो; (अघायतः दुर्विदत्रां द्वेषः अस्मत् आरे युयोतन) शत्रुओंका हमारे सम्बन्धीका द्वेष दूर करो; और (नः उरु शर्म आ यच्छत) हमें कल्याणके लिये विपुल सुख प्रदान करो ॥ १२ ॥

[६५८] हे (आदित्यासः) आदित्य देवो ! (यं सुनीतिभिः विश्वानि दुरिता स्वस्तये अतिनयथ) तुम जिसे उत्तम मार्ग दिखाकर और सब पापोंसे– शत्रुओंसे– दुर्मार्गोंसे कल्याणके लिये पार ले जाते हो, (सः मर्तः विश्वः अरिष्टः एधते) वह मनुष्य सब प्रकारसे अहिंसित होकर उत्कर्षको प्राप्त होता है और (धर्मणः परि प्रजाभिः प्रजायते) सन्मार्गसे धर्माचरण करके संतति और पशु आदिसे युक्त श्रेष्ठ होता है ॥ १३ ॥

[६५९] हे (देवासः) देवो ! (वाजसातौ यं अवथ) अन्न प्राप्तिके लिये तुम जिस रथकी रक्षा करते हो; हे (मरुतः) मरुतो ! (शूरसाता यं हिते धने) वीरपुरुषोंके करने योग्य संग्राममें शत्रुओंके संचित धनको प्राप्त करनेके लिये, जिस रथकी तुम रक्षा करते हो, हे (इन्द्र) इन्द्र ! (प्रातर्यावाणं सानसिं अरिष्यन्तं) प्रातःकालमें ही युद्धके लिये जानेवाले, उत्तम रीतिसे सेवन करने योग्य, किसीकी हिंसा न करनेवाले उस (रथं स्वस्तये आ रुहेम) रथपर हमारे कल्याणके लिये हम आरोहण करें ॥ १४ ॥

[६६०] (नः पथ्यासु स्वस्ति) हमारे मार्गोंमें कल्याण हो, (धन्वसु) जलरहित मरुस्थल आदि प्रदेशोंमें कल्याण हो, (अप्सु स्वस्ति) जलोंमें कल्याण हो, (स्वर्वति वृजने) धनधान्यसे युक्त युद्धमें कल्याण हो, तथा (नः पुत्र कृथेषु योनिषु स्वस्ति) हमारे सन्तानोंको उत्पन्न करनेवाली स्त्रियोंमें, तथा घरोंमें कल्याण हो और (राये स्वस्ति दधातन) हमारे धनादि ऐश्वर्यके लिए कल्याणको धारण करो ॥ १५ ॥

धन्वन्— शुष्क भूमि, मरुस्थल, किनारा, आकाश, धनुष, ठोस भूमि ।
स्वः-वति— धनयुक्त ।
वृजन— मजबूत, गतिशील, नश्वर, केश, घुंघराले बाल, पाप, आपत्ति, शक्ति, युद्ध ॥ १५ ॥

[६६१] (या प्रपथे स्वस्तिः इत्) जो पृथ्वी उत्कृष्ट मार्गपर जानेवाले मनुष्यके लिये कल्याणकारिणी होती है, तथा जो (श्रेष्ठा रेक्णस्वती वामं अभि एति) श्रेष्ठ तथा ऐश्वर्यवाली होकर दूसरोंको सुखोंको चारों ओरसे प्राप्त कराती है, (सा नः अमा) वह पृथिवी हमारे घरोंकी रक्षा करे, (सा अरणे नि पातु) वही हमारी अरण्यादि प्रदेशोंमें रक्षा करे, हे (देवगोपा) देवोंकी रक्षा करनेवाली पृथिवी हमारा (आवेशा) घर (सु भवतु) उत्तम हो ॥ १६ ॥

एवा प्लतेः सूनुरवीवृधद्वो विश्व आदित्या अदिते मनीषी ।
ईशानासो नरो अमर्त्येना ऽस्तावि जनो दिव्यो गयेन १७ [५] (६६२)

(६४)

१७ गयः प्लातः । विश्वे देवाः । जगती; १२, १६, १७ त्रिष्टुप् ।

कथा देवानां कतमस्य यामनि सुमन्तु नाम शृण्वतां मनामहे ।
को मृळाति कतमो नो मयस्करत् कतम ऊती अभ्या ववर्तति १
क्रतूयन्ति क्रतवो हृत्सु धीतयो वेनन्ति वेनाः पतयन्त्या दिशः ।
न मर्डिता विद्यते अन्य एभ्यो देवेषु मे अधि कामा अयंसत २
नरा वा शंसं पूषणमगोह्य मग्निं देवेद्धमभ्यर्चसे गिरा ।
सूर्यामासा चन्द्रमसा यमं दिवि त्रितं वातमुषसमक्तुमश्विना ३ (६६५)
कथा कविस्तुवीरवान् कया गिरा बृहस्पतिर्वावृधते सुवृक्तिभिः ।
अज एकपात् सुहवेभिर्ऋक्वभि रहिः शृणोतु बुध्न्यो हवीमनि ४

रेक्ण— धन ।

अमा— घर 'अमा इति गृहनाम' ।

या प्रपथे स्वस्तिः-- यह पृथिवी उन्नतिके मार्गपर जानेवाले मनुष्यकी सहायक होती है ॥ १६ ॥

[६६२] हे (विश्वे आदित्याः) सर्व देवो ! हे (अदिते) माते अदिति ! (वः मनीषी प्लतेः सूनुः एव अवीवृधत्) तुम्हें बुद्धिमान् स्तोता प्लात ऋषिका पुत्र गयने इस प्रकार स्तुतिओंसे बढाया; (अमर्त्येन नरः ईशानासः) अमर देवोंकी कृपासे मनुष्य धनोंके स्वामी होते हैं; (दिव्यः जनः गयेन अस्तावि) तुम देवोंकी वही गय स्तुति करता है ॥ १७ ॥

[६४]

[६६३] (यामनि शृण्वतां देवानां कतमस्य) यज्ञमें हमारी स्तुति-प्रार्थना सुननेवालोंमेंसे किस देवका (सुमन्तु नाम कथा मनामहे) मननीय नाम-स्तोत्र किस प्रकार हम कहें ? (कः नः मृळाति) कौन हमारे ऊपर कृपा करेगा ? (कतमः मयः करत्) कौन हमें कल्याणमय सुख प्रदान करता है ? (कतमः ऊती अभि आवर्तति) कौन सर्वश्रेष्ठ देव हमारी रक्षाके लिये हमारे पास आयेगा ? ॥ १ ॥

[६६४] (हृत्सु धीतयः क्रतवः क्रतूयन्ति) हृदयोंमें निहित बुद्धि-प्रज्ञा अग्निहोत्र आदि कर्म करनेकी इच्छा करती हैं; (वेनाः वेनन्ति) तेजस्वी लोग देवोंकी इच्छा करते हैं; (दिशः आ पतयन्ति) हमारी अभिलाषाएं देवोंके पास आती हैं; (एभ्यः अन्यः मर्डिता न विद्यते) उन देवोंके सिवाय और दूसरा कोई सुखदाता नहीं है; (देवेषु अधि मे कामाः अयंसत) इन्द्रादि देवोंमें ही मेरी इच्छाएं नियत हो जाती हैं ॥ २ ॥

[६६५] (नराशंसं पूषणं अगोह्यं) नराशंस (मनुष्योंसे प्रशंसनीय), पूषा (स्तोताओंका धनदानसे पोषक) अगम्य, (देव-इद्धं अग्निं गिरा अभ्यर्चसे) और देवोंसे प्रदीप्त अग्निकी स्तुति-वचनोंसे उपासना कर; (सूर्यामासा चन्द्रमसा चन्द्रमसा दिवि यमं त्रितं वातम्) सूर्य, चन्द्र, द्युलोकमें स्थित यम और तीनों लोकोंमें व्याप्त वायु, (उषसं अक्तुं अश्विना) उषा, रात्रि और अश्विनी कुमारोंकी तू वाणीसे स्तुति कर ॥ ३ ॥

[६६६] (कविः कथा तुवीरवान्) ज्ञानी अग्नि किस प्रकार अनेक स्तोताओंसे युक्त होता है ? (कया गिरा) किस वाणीसे स्तुत्य होता है ? (बृहस्पतिः सुवृक्तिभिः वावृधते) उत्तम स्तुतिओंसे बृहस्पति प्रसन्न होकर बढता है; (एकपात् अजः सुहवेभिः ऋक्वभिः) अज एकपात् उत्तम मन्त्रयुक्त स्तोत्रोंसे हर्षित होकर बढता है; (अहिः बुध्न्यः हवीमनि शृणोतु) अहिर्बुध्न्य हमारे आह्वानप्रद वचनोंको सुने ॥ ४ ॥

दक्षस्य वादिते जन्मनि व्रते राजाना मित्रावरुणा विवाससि ।
अतूर्तपन्थाः पुरुरथो अर्यमा सप्तहोता विषुरूपेषु जन्मसु ५ [६]

ते नो अर्वन्तो हवनश्रुतो हवं विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः ।
सहस्रसा मेधसाताविव त्मना महो ये धनं समिथेषु जभ्रिरे ६
प्र वो वायुं रथयुजं पुरंधिं स्तोमैः कृणुध्वं सख्याय पूषणम् ।
ते हि देवस्य सवितुः सवीमनि क्रतुं सचन्ते सचितः सचेतसः ७
त्रिः सप्त सस्रा नद्यो महीरपो वनस्पतीन् पर्वताँ अग्निमूतये ।
कृशानुमस्तॄन् तिष्यँ सधस्थ आ रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियँ हवामहे ८
सरस्वती सरयुः सिन्धुरूर्मिभिर्महो महीरवसा यन्तु वक्षणीः ।
देवीरापो मातरः सूदयित्न्वो घृतवत् पयो मधुमन्नो अर्चत ९
उत माता बृहद्दिवा शृणोतु नस्त्वष्टा देवेभिर्जनिभिः पिता वचः ।
ऋभुक्षा वाजो रथस्पतिर्भगो रण्वः शंसः शशमानस्य पातु नः १० [७]

[६६७] हे (अदिते) पृथिवि ! (दक्षस्य जन्म नि व्रते राजाना मित्रावरुणा विवाससि) सूर्यके जन्मके समय यज्ञकर्ममें कान्तिमान् मित्र-वरुणकी तुम सेवा करती हो; (अर्यमा विषुरूपेषु जन्मसु) सूर्य नानाप्रकारके यज्ञोंमें (सप्त होता अतूर्तपन्थाः पुरुरथः) शान्त, सात किरणोंसे युक्त और अविच्छिन्न मार्गसे धीरे धीरे जाता हुआ, उत्कृष्ट रथसे सम्पन्न होता है ॥ ५ ॥

[६६८] (हवनश्रुतः वाजिनः मितद्रवः) आह्वानको सुननेवाले, बलवान्, द्रुतगतिसे मार्ग आक्रमण करनेवाले, (विश्वे ते अर्वन्तः नः हवं शृण्वन्तु) सर्वप्रसिद्ध वे इन्द्रादि देवोंके वाहनभूत अश्व हमारे आह्वानको सुनें । जो (त्मना) स्वसामर्थ्यसे (मेधसातौ इव सहस्रसाः) यज्ञमें सहस्रोंका दान करते हैं, और उसी प्रकार (ये समिथेषु महः धनं जभ्रिरे) जो संग्रामोंमें विपुल संपत्ति प्राप्त करते हैं ॥ ६ ॥

[६६९] हे स्तोताओ ! (वः वायुं रथयुजं) तुम वायु, रथ योजक (पुरंधिं पूषणं स्तोमैः) और बहुकर्म-कर्ता इन्द्र और पूषाकी उत्तम स्तुति करके (सख्याय प्र कृणुध्वं) अपनी मैत्रीके लिये बुलाओ -जिससे वे हमें धनादि दानसे मित्र होंगे । (हि सचितः ते सचेतसः सवितुः देवस्य) कारण कि ज्ञानयुक्त वे एकचित्त होकर सर्व प्रेरक सवितृ देवके (सवीमनि क्रतुं सचन्ते) यज्ञमें प्रातःकालमें उपस्थित होते हैं ॥ ७ ॥

[६७०] (त्रिः सप्त सस्राः नद्यः) सरस्वती, सरयु, सिन्धु आदि बहनेवाली नदियां (महीः अपः वनस्पतीन् पर्वतान्) महान् उदक, वनस्पतियों, पर्वतों (अग्निं कृशानुं अस्तॄन्) अग्नि, कृशानु नामक सोमपालक गन्धर्व, बाण-चालक अनुचर गंधर्वों, (तिष्यं रुद्रियं रुद्रं सधस्थे) पुष्य नक्षत्र, हविर्भाग योग्य रुद्र इन सबको यज्ञमें (रुद्रेषु हवामहे) उन रुद्रगणोंमें श्रेष्ठ रुद्रोंको स्तुति-वर्णन करनेके लिये हम बुलाते हैं ॥ ८ ॥

[६७१] (महः महीः ऊर्मिभिः सरस्वती सरयुः सिन्धुः वक्षणीः) महती, पूज्य और तरंगशालिनी सरस्वती, सरयु और सिन्धु आदि बहनेवाली इक्कीस नदियां (अवसा आ यन्तु) हमारी रक्षाके लिये आवे; (देवीः मातरः सूदयित्न्वः आपः) और मातृस्थानीय और जल प्रेरक सुंदर देवी (घृतवत् मधुमत् पयः नः अर्चत) घृतयुक्त पुष्टिदायक और मधुर उदक हमें प्रदान करें ॥ ९ ॥

[६७२] (उत बृहत्-दिवा माता नः शृणोतु) और तेजस्विनी देवमाता हमारी प्रार्थना सुने; (देवेभिः जनिभिः पिता त्वष्टा वचः) सब इन्द्रादि देवों और देवपत्नियोंके साथ सर्वपालक पिता हमारा वचन सुने; (ऋभुक्षाः वाजः रथस्पतिः भगः) इन्द्र, वाज, रथाधिपति भग, और (रण्वः शंसः शशमानस्य नः पातु) रमणीय और स्तुत्य मरुद्गण हम स्तुति करनेवाले भक्तोंकी रक्षा करें ॥ १० ॥

रण्वः संदृष्टौ पितुमाँ इव क्षयो भद्रा रुद्राणां मरुतामुपस्तुतिः ।
गोभिः ष्याम यशसो जनेष्वा सदा देवास इळया सचेमहि ११
यां मे धियं मरुत इन्द्र देवा अददात वरुण मित्र यूयम् ।
तां पीपयत पयसेव धेनुं कुविद्गिरो अधि रथे वहाथ १२
कुविदङ्ग प्रति यथा चिदस्य नः सजात्यस्य मरुतो बुबोधथ ।
नाभा यत्र प्रथमं संनसामहे तत्र जामित्वमदितिर्दधातु नः १३
ते हि द्यावापृथिवी मातरा मही देवी देवाञ्जन्मना यज्ञिये इतः ।
उभे बिभृत उभयं भरीमभिः पुरू रेतांसि पितृभिश्च सिञ्चतः १४
वि षा होत्रा विश्वमश्नोति वार्यं बृहस्पतिररमतिः पनीयसी ।
ग्रावा यत्र मधुषुदुच्यते बृहदवीवशन्त मतिभिर्मनीषिणः १५
एवा कविस्तुवीरवाँ ऋतज्ञा द्रविणस्युर्द्रविणसश्चकानः ।
उक्थेभिरत्र मतिभिश्च विप्रोऽपीपयद्गयो दिव्यानि जन्म १६

---

[६७३] (संदृष्टौ रण्वः पितुमान् इव क्षयः) देखनेमें रमणीय मरुत्गण अन्नादिसे भरे निवासगृहके समान होते हैं; (रुद्राणां मरुतां उपस्तुतिः भद्रा) रुद्रपुत्र मरुतोंकी कृपा बहुत ही कल्याणप्रद होती है; (जनेषु गोभिः यशसः स्याम) मनुष्योंमें हम पशुधनसे युक्त होकर यशस्वी होवें; हे (देवासः) देवो ! (आ सदा इळया सचेमहि) अनन्तर सदा हम अन्न आदिसे युक्त होवें ॥ ११ ॥

[६७४] हे (मरुतः, इन्द्र, देवाः, वरुण, मित्र) मरुत्गण, इन्द्र, देवो, वरुण और मित्र ! (यूयं यां धियं मे अददात) तुमने जो बुद्धि, कर्मको मुझे दिया है, (तां पयसा धेनुं इव पीपयत) उसको जैसे गाय दूधसे भरी रहती है, वैसेही नाना फलोंसे सम्पन्न करो; (गिरः अधि रथे कुवित् वहाथ) हमारी स्तुति सुनकर और अपने रथपर चढकर अनेक बार तुम यज्ञमें आये हो ॥ १२ ॥

[६७५] हे (अङ्ग मरुतः) विद्वान् मरुतो ! (यथा चित् कुवित् नः सजातस्य अस्य प्रति बुबोधथः) तुमने प्रथम अनेक बार हमारे समान जातिवर्गके बन्धुत्वकी जानकारी रक्खी है; (यत्र नाभा प्रथमं संनसामहे) हम जिस नाभि स्थानपर सर्वप्रथम तेरी सेवा करते हैं, (तत्र अदितिः नः जामित्वं दधातु) वहां देवमाता अदिति हमें मनुष्योंके साथ बन्धुत्व प्रदान करे ॥ १३ ॥

[६७६] (मातरा मही देवी यज्ञिये ते) सर्व जगत्‌के निर्माण करनेवाले, महान्, पूज्य और यज्ञार्ह वे (द्यावापृथिवी देवान् जन्मना इतः हि) द्यावापृथिवि जन्मके साथही इन्द्रादि देवोंको प्राप्त करते हैं; (उभे भरीमभिः उभयं बिभृतः) दोनों–द्यावापृथिवि, नानाविध भरण-पोषणकारी अन्न जलोंसे देवों और मनुष्योंको पोषण करते हैं; (पितृभिः पुरू रेतांसि सिञ्चतः) और पालक देवोंकी सहायतासे विपुल जलोंकी वर्षा करते हैं ॥ १४ ॥

[६७७] (होत्रा सा वार्यं विश्वं वि अश्नोति) जिससे सब पदार्थ बुलाये जाते हैं, वह वाणी सर्व वरण करने योग्य धनको व्याप रही हैं; (बृहस्पतिः अरमतिः पनीयसी) वह महानोंकी पालिका, विपुल स्तुतिवाली देवोंका स्तोत्र करनेवाली है, (यत्र मधुषत् बृहत् ग्रावा उच्यते) जिससे सोम निचोडनेवाली शिला भी महान् कहकर रुपवित होती है; (मनीषिणः मतिभिः अवीवशन्त) उस स्तुत्य यज्ञमें स्तोता लोग स्तुतियोंसे देवोंको यज्ञाभिलाषी बनाते हैं ॥ १५ ॥

[६७८] (एव कविः तुवीरवान् ऋतज्ञाः द्रविणस्युः) इस प्रकार ज्ञानी, बहुत स्तुति सम्पन्न, यज्ञवेत्ता, धनेच्छु (द्रविणसः चकानः विप्रः गयः) पशु आदि ऐश्वर्यकी कामना करनेवाला बुद्धिमान् गय ऋषिने (अत्र उक्थेभिः मतिभिः च दिव्यानि जन्म अपीपयत्) यहां उत्तम वचनों और स्तुतियोंसे दिव्य देवोंका स्तवन किया ॥ १६ ॥

एवा प्लतेः सूनुरवीवृधद्वो विश्वं आदित्या अदिते मनीषी ।
ईशानासो नरो अमर्त्येना ऽस्तावि जनो दिव्यो गयेन   १७ [८]   (६७९)

(६५)

१५ वसुकर्णो वासुक्रः । विश्वे देवाः । जगती, १५ त्रिष्टुप् ।

अग्निरिन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा वायुः पूषा सरस्वती सजोषसः ।
आदित्या विष्णुर्मरुतः स्वर्बृहत् सोमो रुद्रो अदितिर्ब्रह्मणस्पतिः   १
इन्द्राग्नी वृत्रहत्येषु सत्पती मिथो हिन्वाना तन्वा३ समोकसा ।
अन्तरिक्षं मह्या पप्रुरोजसा सोमो घृतश्रीर्महिमानमीरयन्   २
तेषां हि मह्ना महतामनर्वणां स्तोमाँ इयर्म्यृतज्ञा ऋतावृधाम् ।
ये अप्सवमर्णवं चित्रराधस स्ते नो रासन्तां महये सुमित्र्याः   ३
स्वर्णरमन्तरिक्षाणि रोचना द्यावाभूमी पृथिवीं स्कम्भुरोजसा ।
पृक्षा इव महयन्तः सुरातयो देवाः स्तवन्ते मनुषाय सूरयः   ४

---

[६७९] हे (विश्वे आदित्या) सर्व देवो ! हे (अदिते) माते अदिति ! (वः मनीषी प्लतेः सूनुः एव अवीवृधत्) तुम्हें बुद्धिमान् स्तोता प्लात ऋषिका पुत्र गयने इस प्रकार स्तुतिओंसे बढाया; (अमर्त्येन नरः ईशानासः) अमर देवोंकी कृपासे मनुष्य धनोंके स्वामी होते हैं; (दिव्यः जनः गयेन अस्तावि) तुम देवोंकी वही गय स्तुति करता है ॥ १७ ॥

[६५]

[६८०] (अग्निः इन्द्रः वरुणः मित्रः अर्यमा) अग्नि, इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा (वायुः पूषा सरस्वती आदित्याः) वायु, पूषा, सरस्वती, आदित्य, (विष्णुः मरुतः बृहत् स्वः सोमः) विष्णु, मरुत् महान् स्वर्ग, सोम, (रुद्रः अदितिः ब्रह्मणस्पतिः) रुद्र, अदिति और ब्रह्मणस्पति (सजोषसः) ये सब एकत्र मिलकर प्रीतियुक्त होकर अपनी महिमासे इस महान् अन्तरिक्षको पूरित करते हैं ॥ १ ॥

[६८१] (वृत्रहत्येषु मिथः तन्वा हिन्वाना) शत्रुओंका नाश करनेवाले युद्धमें शरीरसामर्थ्यसे परस्पर प्रेरणा देते हुए (सत्पती समोकसा इन्द्राग्नी) सज्जनोंके संरक्षक, एकही स्थानपर रहकर इन्द्र और अग्नि (घृतश्रीः महिमानं ईरयन् सोमः) उदक मिश्रित महान् सामर्थ्यसे युक्त सोम (महि अन्तरिक्षं ओजसा आ पप्रुः) - ये सब महान् आकाशको अपने बलसे व्याप्त करते हैं ॥ २ ॥

[६८२] (मह्ना महतां अनर्वणां ऋतावृधां तेषाम्) अपने महान् सामर्थ्यसे महान्, कभी पराभूत न होनेवाले और सत्यभूत यज्ञसे वर्धित उन देवोंके लिये (ऋतज्ञाः स्तोमान् इयर्मि) यज्ञका ज्ञाता मैं स्तुतिवचनोंको कहता हूं । (चित्रराधसः ये अप्सवम् अर्णवम्) बहुत आश्चर्यकारक धनोंके स्वामी जो देव जलोंके उत्पादक मेघको वर्षाते हैं; (सुमित्र्याः ते नः महये रासन्ताम्) उत्तम मित्र कर्तव्य करनेवाले वे देव हमें लोगोंमें हमारी महत्ता बढे इसलिये धन प्रदान करें ॥ ३ ॥

[६८३] (स्वर्णरं अन्तरिक्षाणि रोचना द्यावाभूमी) सबका तेजस्वी नायक, आकाशस्थ ग्रहों-नक्षत्रों, तेज, द्यावापृथिवि (पृथिवीं ओजसा स्कम्भुः) और विस्तीर्ण अंतरिक्षको उन्हीं देवोंने स्वसामर्थ्यसे यथास्थान धारण किया है; (पृक्षाः इव महयन्तः सुरातयः) धनदाताके समान, भक्तोंको उत्तम दान करके सन्मानित करनेवाले उदार ये देव (मनुषाय सूरयः) मनुष्यको धन देते हैं; (देवाः स्तवन्ते) इसलिये देवोंकी स्तुति की जाती है ॥ ४ ॥

+

मित्राय शिक्ष वरुणाय दाशुषे या सम्राजा मनसा न प्रयुच्छतः ।
ययोर्धाम धर्मणा रोचते बृहद् ययोरुभे रोदसी नाधसी वृतौ ५ [९]

या गौर्वर्तनिं पर्येति निष्कृतं पयो दुहाना व्रतनीरवारतः ।
सा प्रब्रुवाणा वरुणाय दाशुषे देवेभ्यो दाशद्धविषा विवस्वते ६
दिवक्षसो अग्निजिह्वा ऋतावृध ऋतस्य योनिं विमृशन्त आसते ।
द्यां स्कभित्व्यप आ चक्रुरोजसा यज्ञं जनित्वी तन्वी नि मामृजुः ७
परिक्षिता पितरा पूर्वजावरी ऋतस्य योना क्षयतः समोकसा ।
द्यावापृथिवी वरुणाय सव्रते घृतवत् पयो महिषाय पिन्वतः ८
पर्जन्यावाता वृषभा पुरीषिणेन्द्रवायू वरुणो मित्रो अर्यमा ।
देवाँ आदित्याँ अदितिं हवामहे ये पार्थिवासो दिव्यासो अप्सु ये ९
त्वष्टारं वायुमृभवो य ओहते दैव्या होतारा उषसं स्वस्तये ।
बृहस्पतिं वृत्रखादं सुमेधसमिन्द्रियं सोमं धनसा उ ईमहे १० [१०]

[६८४] (दाशुषे मित्राय वरुणाय शिक्ष) दान देनेवाले मित्र और वरुणको हवि आदि प्रदान कर । (या सम्राजा मनसा न प्रयुच्छतः) ये दोनों सम्राट् मित्रावरुण मनसे कभी भूल नहीं करते; (ययोः बृहत् धाम धर्मणा रोचते) इनके महान् शरीर लोककल्याणमय कर्मोंसे प्रकाशित हो रहे हैं; (उभे रोदसी नाधसी वृतौ) दोनों द्यावापृथिवी इनके पास याचकके समान अवस्थित हैं ॥ ५ ॥

[६८५] (या पयः दुहाना व्रतनीः गौः) जो यह मेरी दूध देनेवाली उत्तम कर्म करनेवाली गाय (निष्कृतं वर्तनिं अवारतः पर्येति) पवित्र-शुद्ध स्थान यज्ञमें स्वयंमेव आती है, (प्रब्रुवाणा सा दाशुषे) मुझसे स्तुति की जानेवाली वह गाय दाता-हवि प्रदान किये (वरुणाय देवेभ्यः हविषा विवस्वते दाशत्) वरुण और अन्य देवोंकी हविर्दानसा सेवा करनेवाले मेरी रक्षाके लिये दूध देवे ॥ ६ ॥

[६८६] (दिवक्षसः अग्निः जिह्वाः) अपने तेजसे आकाशको व्यापनेवाले, अग्निरूपी जिह्वावाले, (ऋतावृधः ऋतस्य योनिं विमृशन्तः आसते) यज्ञवर्धक और सत्यरूप देव यज्ञमें अपने स्थानपर बैठते हैं; वे (द्यां स्कभित्वी ओजसा अपः आ चक्रुः) द्युलोकको धारण करके अपने तेजबलसे जलको उदकको लाते हैं; (यज्ञं जनित्वी तन्वि नि मामृजुः) अनन्तर यजनीय हवि तयार करके अपने शरीरको अलंकृत करते हैं- हविका भक्षण करते हैं ॥ ७ ॥

[६८७] (परिक्षिता पितरा पूर्वजावरी) सर्वव्यापक, सबके मातापिता, सबसे पूर्व उत्पन्न (समोकसा ऋतस्य योना क्षयतः) एक ही स्थानमें रहनेवाले- द्यावापृथिवी यज्ञके स्थानमें रहते हैं; वे (सव्रते महिषाय वरुणाय) दोनों ही एक मना होकर ···ंत पूजनीय वरुणको प्रसन्न करनेके लिये (घतवत् पयः पिन्वतः) घृतयुक्त उदक-जल देते हैं ॥ ८ ॥

[६८८] (पर्जन्यावाता वृषभा पुरीषिणा) मेघ और वायु ये कामवर्षक और जलको धारण करनेवाले हैं; (इन्द्रवायू वरुणः मित्रः अर्यमा) इन्द्र, वायु, वरुण, मित्र, अर्यमा इनको और (आदित्यान् देवान् अदितिं हवामहे) आदित्य देवोंको तथा अदितिको हम बुलाते हैं; (ये पार्थिवासः दिव्यासः ये अप्सु) जो देवता पृथिवी, द्युलोक और अन्तरिक्षमें उत्पन्न हुए हैं, उनको भी हम बुलाते हैं ॥ ९ ॥

[६८९] हे (ऋभवः) सत्य और स्वतेजसे प्रकाशित विद्वान् जनों ! (यः स्वस्तये) जो सोम तुम्हारे कल्याणके लिये (त्वष्टारं वायुं दैव्या होतारा उषसं ओहते) त्वष्टा, वायु, देवोंको बुलानेवाले उषाके पास जाता है, (बृहस्पतिं सुमेधसं वृत्रखादं) और जो बृहस्पति, उत्तम बुद्धिमान् और वृत्रनाशक इन्द्रके पास जाता है, (इन्द्रियं सोमं धनसाः ईमहे) उस इन्द्रको प्रसन्न करनेवाले सोमसे हम अनेक धनकी याचना करते हैं ॥ १० ॥

ब्रह्म गामश्वं जनयन्त ओषधीर्वनस्पतीन् पृथिवीं पर्वताँ अपः ।
सूर्यं दिवि रोहयन्तः सुदानव आर्या व्रता विसृजन्तो अधि क्षमि ११
भुज्युमंहसः पिपृथो निरश्विना श्यावं पुत्रं वध्रिमत्या अजिन्वतम् ।
कमद्युवं विमदायोहथुर्युवं विष्णाप्वं विश्वकायाव सृजथः १२
पावीरवी तन्यतुरेकपादजो दिवो धर्ता सिन्धुरापः समुद्रियः ।
विश्वे देवासः शृणवन् वचांसि मे सरस्वती सह धीभिः पुरंध्या १३ (६९१)
विश्वे देवाः सह धीभिः पुरंध्या मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
रातिषाचो अभिषाचः स्वर्विदः स्वर्गिरो ब्रह्म सूक्तं जुषेरत १४
देवान् वसिष्ठो अमृतान् ववन्दे ये विश्वा भुवनाभि प्रतस्थुः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः १५ [११] (६९४)

[६९०] (ब्रह्म गां अश्वं ओषधीः वनस्पतीन् पृथिवीं पर्वतान् अपः) अन्न, गौ, अश्व, औषधि, वनस्पति, पृथिवी–विस्तीर्ण भूमि, पर्वत और उदकोंको (जनयन्तः) उत्पन्न करनेवाले, और (दिवि सूर्यं रोहयन्तः) आकाशमें सूर्यको स्थापित करनेवाले (सुदानवः) उत्तम दान करनेवाले ये देव (अधि क्षमि) पृथिवीपर सर्वत्र वास करते हैं; (आर्या व्रता विसृजन्तः) उन्होंने श्रेष्ठ कल्याणकारी यागादि कर्मोंका प्रचार कार्य किया है; उन्हें हम धनकी याचना करते हैं ॥ ११ ॥

[६९१] हे (अश्विना) अश्वि देवो ! (भुज्युं अंहसः निः पिपृथः) तुमने भुज्युको समुद्रकी विपत्तिसे बचाया है (वध्रिमत्याः श्यावं पुत्रं अजिन्वतम्) और वध्रिमतीको श्याव नामक पुत्र दिया था; (युवं विमदाय कमद्युवं ऊहथुः) तुमने विमद ऋषिको कमद्यु नामक सुन्दरी भार्या दी, और (विष्णाप्वं विश्वकाय अव सृजथः) विश्वक ऋषिको विष्णाप्व नामक पुत्र दिया था ॥ १२ ॥

[६९२] (पावीरवी तन्यतुः) आयुधवाली, मधुरा वाणी और (दिवः धर्ता अजः एकपात्) द्युलोक धारक अज एकपात् (सिन्धुः समुद्रियः आपः) सिन्धु, समुद्र–आकाशीय जल, (विश्वे देवासः धीभिः पुरंध्या सरस्वती) सर्व देव, कर्म और नाना प्रकारकी बुद्धिसे युक्त सरस्वती (मे वचांसि शृणवन्) मेरे वचनों–स्तुतियोंको सुनें ॥ १३ ॥

[६९३] (धीभिः पुरंध्या सह) कर्तृत्व और बुद्धि–ज्ञानोंसे युक्त (मनोः यजत्राः अमृताः ऋतज्ञाः) मनुष्यके यज्ञमें यज्ञार्ह, अमर, सत्यको जाननेवाले, (रातिषाचः अभिषाचः स्वर्विदः) हविर्दानको ग्रहण करनेवाले, यज्ञमें एक साथ रहनेवाले, और सब कुछ जाननेवाले (विश्वे देवाः स्वः गिरः ब्रह्म सूक्तं जुषेरत) इन्द्रादि सब देव हमारी स्तुतियों और मंत्रोच्चारण सहित समर्पित श्रेष्ठ अन्नको ग्रहण करें ॥ १४ ॥

[६९४] (वसिष्ठः अमृतान् देवान् ववन्दे) वसिष्ठ कुलोत्पन्न ऋषिने अमर देवोंकी स्तुति की । (ये विश्वा भुवना अभि प्रतस्थुः) जो देव सारे भुवनोंमें–लोकोंमें अपने तेजसे श्रेष्ठ हैं; (ते अद्य नः उरुगायं रासन्ताम्) वे आज हमें उत्तम यशस्वी अन्न दें; (यूयं स्वस्तिभिः नः सदा पात) हे देवो ! तुम हमारा कल्याण करके हमारी सदैव रक्षा करो ॥ १५ ॥

(६६)

१५ वसुकर्णो वासुक्रः । विश्वे देवाः । जगती, १५ त्रिष्टुप् ।

देवान् हुवे बृहच्छ्रवसः स्वस्तये ज्योतिष्कृतो अध्वरस्य प्रचेतसः ।
ये वावृधुः प्रतरं विश्ववेदस इन्द्रज्येष्ठासो अमृता ऋतावृधः १
इन्द्रप्रसूता वरुणप्रशिष्टा ये सूर्यस्य ज्योतिषो भागमानशुः ।
मरुद्गणे वृजने मन्म धीमहि माघोने यज्ञं जनयन्त सूरयः २
इन्द्रो वसुभिः परि पातु नो गय मादित्यैर्नो अदितिः शर्म यच्छतु ।
रुद्रो रुद्रेभिर्देवो मृळयाति न स्त्वष्टा नो ग्नाभिः सुविताय जिन्वतु ३
अदितिर्द्यावापृथिवी ऋतं मह दिन्द्राविष्णू मरुतः स्वर्बृहत् ।
देवाँ आदित्याँ अवसे हवामहे वसून् रुद्रान् त्सवितारं सुदंससम् ४
सरस्वान् धीभिर्वरुणो धृतव्रतः पूषा विष्णुर्महिमा वायुरश्विना ।
ब्रह्मकृतो अमृता विश्ववेदसः शर्म नो यंसन् त्रिवरूथमंहसः ५ [१२]

[६६]

[६९५] (बृहत्-श्रवसः ज्योतिष्कृतः प्रचेतसः) प्रचुर अन्नवाले, आदित्य तेजके कर्ता, उत्तम ज्ञानी, (देवान् अध्वरस्य स्वस्तये हुवे) देवोंको मैं इस यज्ञकी निर्विघ्न समाप्तिके लिये बुलाता हूं। (विश्ववेदसः इन्द्र-ज्येष्ठासः अमृताः ऋतावृधाः) सब प्रकारकी संपत्तिसे युक्त, इन्द्रको अपनेमें सर्वश्रेष्ठ-प्रमुख माननेवाले, अमर और यज्ञसे प्रवृद्ध (ये प्रतरं ववृधुः) जो देव अत्यन्त उत्कर्षशील हैं ॥ १ ॥

[६९६] (इन्द्रप्रसूताः वरुणप्रशिष्टाः ये ज्योतिषः सूर्यस्य भागं आनशुः) इन्द्रके द्वारा कार्योंमें प्रेरित और वरुणके द्वारा उत्तम रीतिसे अनुमोदित होकर जो देव तेजस्वी सूर्यके अंश-भागको प्राप्त होते हैं, (वृजने माघोने मरुद् गणे मन्म धीमहि) उन शत्रुनाशक इन्द्राधिष्ठित मरुत्गणोंके स्तोत्रको हम धारण करते हैं; (सूरयः यज्ञं जययन्त) विद्वान् यजमान इसलिये ही यज्ञका विधान करते हैं ॥ २ ॥

[६९७] (वसुभिः इन्द्रः नः गयं परि पातु) वसुओंके साथ इन्द्र हमारे गृहकी सब ओरसे रक्षा करे। (आदित्यैः अदितिः नः शर्म यच्छतु) आदित्योंके साथ अदिति देव माता हमें सुख दे। (रुद्रेभिः रुद्रः देवः नः मृळयाति) रुद्रपुत्र मरुतोंके साथ रुद्र देव हमें सुखी करे। (त्वष्टा ग्नाभिः सुविताय नः जिन्वतु) त्वष्टा देवपत्नियोंके साथ हमें प्रसन्न करे ॥ ३ ॥

[६९८] (अदितिः द्यावापृथिवी महत् ऋतं) अदिति, द्यावापृथिवी, महान् सत्यस्वरूप अग्नि, (इन्द्राविष्णू मरुतः बृहत् स्वः आदित्यान् देवान्) इन्द्र, विष्णु, मरुत्, आदित्य आदि सब देवों (वसून् रुद्रान्) और वसु, रुद्र (सुदंससम् सवितारम् अवसे हवामहे) और उत्तम कर्म करनेवाले सविताको हम हमारी रक्षाके लिये बुलाते हैं ॥ ४॥

[६९९] (धीभिः सरस्वान् धृतव्रतः वरुणः पूषा महिमा विष्णुः) प्रज्ञायुक्त सरस्वान्, कर्म और व्रतोंका पालक वरुण, पूषा, महिमा युक्त विष्णु, (वायुः अश्विना ब्रह्मकृतः विश्ववेदसः अंहसः) वायु, अश्विद्वय, स्तोताओंको अन्न प्रदान करनेवाले, ज्ञानी, पापी शत्रुओंके नाशक और (अमृताः नः त्रिवरूथं शर्म यंसन्) अमर देव हमें तीन मंजिलवाला गृह प्रदान करें ॥ ५ ॥

वृषा यज्ञो वृषणः सन्तु यज्ञिया वृषणो देवा वृषणो हविष्कृतः ।
वृषणा द्यावापृथिवी ऋतावरी वृषा पर्जन्यो वृषणो वृषस्तुभः ६
अग्नीषोमा वृषणा वाजसातये पुरुप्रशस्ता वृषणा उप ब्रुवे ।
यावीजिरे वृषणो देवयज्यया ता नः शर्म त्रिवरूथं वि यंसतः ७
धृतव्रताः क्षत्रिया यज्ञनिष्कृतो बृहद्दिवा अध्वराणामभिश्रियः ।
अग्निहोतार ऋतसापो अद्रुहोऽपो असृजन्ननु वृत्रतूर्ये ८
द्यावापृथिवी जनयन्नभि व्रताऽऽप ओषधीर्वनिनानि यज्ञिया ।
अन्तरिक्षं स्व१रा पप्रुरूतये वशं देवासस्तन्वी३ नि मामृजुः ९
धर्तारो दिव ऋभवः सुहस्ता वातापर्जन्या महिषस्य तन्यतोः ।
आप ओषधीः प्र तिरन्तु नो गिरो भगो रातिर्वाजिनो यन्तु मे हवम् १० [१३] (७०४)

---

[७००] (यज्ञः वृषा) यह हमारा यज्ञ हमारी सब इच्छाएं पूर्ण करे; और (यज्ञियाः देवाः वृषणः सन्तु) यज्ञार्ह देव सुखोंको देनेवाले हों। (देवाः वृषणः हविष्कृतः वृषणः) स्तुति स्तोत्र बोलनेवाले ऋत्विज और हवि समर्पण करनेवाले अध्वर्यु हमें धन देवें। (ऋतावरी द्यावापृथिवी वृषणा) यज्ञाधिष्ठात्री द्यावापृथिवी हमें हविरूप अन्न देकर हमारी कामना पूरी करें। और (पर्जन्यः वृषा वृषस्तुभः वृषणः) पर्जन्यका स्वामी हमें जल दे तथा सब ऋत्विज-स्तोता हमारी इच्छा पूर्ण करें ॥ ६ ॥

[७०१] (वृषणा पुरुप्रशस्ता अग्नीषोमा वाज सातये उप ब्रुवे) जलकी वर्षा करनेवाले, बहुतोंसे स्तुत्य अग्नि और सोमकी मैं अन्न प्राप्त करनेके लिये स्तुति करता हूं; (यौ वृषणः देवयज्यया ईजिरे) जो देव यज्ञमें ऋत्विजोंसे कामना पूर्ण करनेवाले कहकर पूजित होते हैं, (ता नः त्रिवरूथं शर्म वि यंसतः) वे देव हमें तीन मंझिलवाला घर दें ॥ ७ ॥

[७०२] (धृतव्रताः क्षत्रियाः यज्ञनिष्कृतः) कर्तव्य पालनमें सदा तत्पर, बलवान्, यज्ञको पूर्ण रूपसे अलङ्कृत करनेवाले, (बृहद्-दिवाः अध्वराणां अभिश्रियः) महान् तेजस्वी, यज्ञोंके सेवक, (अग्नि होतारः ऋतसापः अद्रुहः) अग्निको बुलानेवाले, सत्य प्रतिज्ञ, किसीसे द्रोहन रखनेवाले एवं गुण विशिष्ट देव (वृत्रतूर्ये अपः अनु असृजन्) वृत्र-युद्धके समयमें उदक उत्पन्न करते हैं ॥ ८ ॥

[७०३] (देवासः द्यावापृथिवी अभि व्रता आपः) देवोंने द्यावा-पृथिवीको लक्ष्य करके अपने उत्तम कर्मोंके द्वारा उदक, (ओषधीः यज्ञिया वनिनानि जनयन्) अनेक औषधी और यज्ञार्ह पलाशादि वृक्षोंसे भरे वनोंको उत्पन्न किया। वे (स्वः अन्तरिक्षं आ पप्रुः) सर्व अन्तरिक्षको अपने तेजसे व्याप्त करते हैं। (उतये वशं तन्वि नि मामृजुः) अपनी रक्षाके लिये कामना करनेवाले उस यज्ञको शरीरमें अलङ्कृत किया; हविको ग्रहण किया ॥ ९ ॥

[७०४] (दिवः धर्तारः ऋभवः सुहस्ताः) द्युलोकके धारणकर्ता, सत्य और तेजसे प्रसिद्ध तथा सुंदर आयुधोंसे सम्पन्न ऋभु, (महिषस्य तन्यतोः वातापर्जन्या) बडे शब्द करनेवाले वायु और पर्जन्य, (आपः ओषधीः नः गिरः प्र तिरन्तु) अप् देवता और औषधी- वनस्पति हमारी स्तुतियोंको वृद्धिगत करें। (रातिः भगः वाजिनः मे हवं यन्तु) धनदाता भग और अग्नि-वायु-सूर्य मेरे आह्वानको सुनकर यज्ञमें पधारें ॥ १० ॥

समुद्रः सिन्धू रजो अन्तरिक्ष॒मज एकपात् तनयित्नुरर्णवः ।
अहिर्बुध्न्यः शृणवद्वचांसि मे विश्वे देवास उत सूरयो मम ११
स्याम वो मनवो देववीतये प्राञ्चं नो यज्ञं प्र णयत साधुया ।
आदित्या रुद्रा वसवः सुदानव इमा ब्रह्म शस्यमानानि जिन्वत १२
दैव्या होतारा प्रथमा पुरोहित ऋतस्य पन्थामन्वेमि साधुया ।
क्षेत्रस्य पतिं प्रतिवेशमीमहे विश्वान् देवाँ अमृताँ अप्रयुच्छतः १३
वसिष्ठासः पितृवद्वाचमक्रत देवाँ ईळाना ऋषिवत् स्वस्तये ।
प्रीता इव ज्ञातयः काममेत्या॒ऽस्मे देवासोऽव धूनुता वसु १४
देवान् वसिष्ठो अमृतान् ववन्दे ये विश्वा भुवनाभि प्रतस्थुः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः १५[१४](७०९)

---

[७०५] (समुद्रः सिन्धुः अन्तरिक्षं रजः अज एकपात्) उदकोंसे परिपूर्ण समुद्र, महानद, अन्तरिक्ष, मध्यम लोक, अज-एकपात्, (अर्णवः तनयित्नुः बुध्न्यः अहिः मे वचांसि शृणवन्) सागर, गर्जनशील मेघ-विद्युत्, अन्तरिक्ष स्थित देव, मेरे स्तोत्र सुनें। (उत् सूरयः विश्वे देवासः मम) और प्राज्ञ सब देव मेरी स्तुतिको सुनें ॥ ११ ॥

[७०६] हे देवो ! (मनवः वः देववीतये स्याम) मनुके वंशज हम तुम्हारे लिये यज्ञोंको- रक्षाके लिये- समर्पण करें; (नः यज्ञं साधुया प्राञ्चं प्रणयत) हमारे यज्ञ जो कल्याणप्रद और प्राचीन कालसे प्रचलित हैं, उन्हें तुम अच्छी प्रकार सम्पन्न करो। हे (आदित्याः रुद्राः सुदानवः वसवः) आदित्यो, रुद्रपुत्र मरुतो उत्तम दान करनेवाले वसुओ ! (इमा शस्यमानानि ब्रह्म जिन्वत) इन उच्चारित स्तोत्रोंसे तुम प्रसन्न चित्त हों ॥ १२ ॥

[७०७] (प्रथमा पुरोहिता दैव्या होतारा अन्वेमि) प्रमुख, अग्र भागमें स्थापित, जो देवोंको बुलानेवाले हैं, उन अग्नि और आदित्यकी मैं हविसे सेवा करता हूं । (ऋतस्य साधुया पन्थां) यज्ञके उत्तम कल्याणप्रद मार्गका मैं अनुगमन करता हूं। (प्रतिवेशं क्षेत्रस्य पतिं अमृतान् अप्रयुच्छतः विश्वान् देवान् ईमहे) अनन्तर हमारे पास रहनेवाले क्षेत्रपति और अमर, अप्रमादी सर्व देवोंसे धनकी याचना करते हैं ॥ १३ ॥

[७०८] (ऋषिवत् देवान् ईळानाः वसिष्ठासः) पूर्व ऋषियोंके समान ही देवोंकी स्तुति वसिष्ठ वंशजोंने (पितृवत् स्वस्तये वाचं अक्रत) पिताके समान ही सुख-कल्याणके लिये स्तुति-पूजा की। हे (देवासः) देवो ! तुम (प्रीताः इव ज्ञातयः कामं एत्य अस्मे वसु अव धूनुत) अपने प्रिय मित्र-बन्धुओंके समान आकर संतुष्ट होकर, हमारा अभिलषित जानकर हमें गौ आदि धन प्रदान करो ॥ १४ ॥

[७०९] (वसिष्ठः अमृतान् देवान् ववन्दे) वसिष्ठ कुलोत्पन्न ऋषिने अमर देवोंकी स्तुति की। (ये विश्वा भुवना अभि प्रतस्थुः) जो देव सारे भुवनोंमें-लोकोंमें अपने तेजसे श्रेष्ठ हैं; (ते अद्य नः उरु गायं रासन्ताम्) वे आज हमें उत्तम यशस्वी अन्न दे; (यूयं स्वस्तिभिः नः सदा पात) हे देवो ! तुम हमारा कल्याण करेके हमारी सदैव रक्षा करो ॥ १५ ॥

(६७)

१२ अयास्य आङ्गिरसः । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् ।

इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत् ।
तुरीयं स्विज्जनयद्विश्वजन्यो ऽयास्यं उक्थमिन्द्राय शंसन् १
ऋतं शंसन्त ऋजु दीध्याना दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
विप्रं पदमङ्गिरसो दधाना यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त २
हंसैरिव सखिभिर्वावदद्भि रश्मन्मयानि नहना व्यस्यन् ।
बृहस्पतिरभिकनिक्रदद्गा उत प्रास्तौदुच्च विद्वाँ अगायत् ३
अवो द्वाभ्यां पर एकया गा गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य सेतौ ।
बृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छ न्नुदुस्रा आकर्वि हि तिस्र आवः ४
विभिद्या पुरं शयथेमपाचीं निस्त्रीणि साकमुदधेरकृन्तत् ।
बृहस्पतिरुषसं सूर्यं गा मर्कं विवेद स्तनयन्निव द्यौः ५

---

[६७]

[७१०] (धियं सप्तशीर्ष्णीं ऋतप्रजातां बृहतीं इमां) कर्मके धारण कर्ता, सात प्रमुख देवोंसे–सात छन्दोंसे युक्त, सत्य–यज्ञके लिये उत्पन्न महान् यह मेरा शरीर (नः पिता अविन्दत्) हमारे पिता (बृहस्पति) अंगिरा ऋषिको प्राप्त हुआ। (तुरीयं स्वित् जनयत्) तुरीय परमपदको भी उत्पन्न किया —पौत्रकी प्राप्ति हुई। (विश्वजन्यः इन्द्राय अयास्यः उक्थं शंसन्) सब जगत्के हितकारी परमेश्वर–बृहस्पतिको अयास्य नामक उनके पौत्रने स्तोत्रसे स्तवित किया ॥ १ ॥

[७११] (ऋतं शंसन्तः ऋजु दीध्यानाः) परम सत्ययुक्त स्तोत्रोंका गान करनेवाले, सरलभावसे ध्यान करनेवाले (दिवः असुरस्य पुत्रासः वीराः) तेजस्वी बलवान् अग्निके पुत्रोंके समान रक्षक, वीर (अङ्गिरसः विप्रं यज्ञस्य धाम पदं दधानाः प्रथमं मनन्त) अंगिरस ज्ञानी, यज्ञके धारण कर्ता प्रजापतिके सर्वश्रेष्ठ, तेजस्वी पदको–रूपको ग्रहण करके पहिलेसे ही देवोंके स्तोत्रोंका मनन – चिन्तन करते हैं ॥ २ ॥

[७१२] (हंसैः इव सखिभिः वावदद्भिः) हंसोंके समान मधुर वचन कहनेवाले मित्र और अत्यंत कोलाहल करनेवाले देवोंके साथ (अश्मन्मयानि नहना व्यस्यन् अभिकनिक्रदत्) पत्थरोंसे बने बंधनोंको तोडता हुआ और जोरसे चिल्लाता हुआ (गाः बृहस्पतिः) बृहस्पति गायोंको हरण करता है। (उत विद्वान् प्रास्तौत् उत अगायत् च) और वह विद्वान् देवोंकी उत्तम स्तुति और उच्च स्वरसे गान करने लगा ॥ ३ ॥

[७१३] (अवः अनृतस्य सेतौ गुहा तिष्ठन्तीः गाः द्वाभ्याम्) नीचे अन्धकारयुक्त स्थान–गुहामें रखी गयी गायें दो द्वारोंके द्वारा बाहर निकाली गईं। और (परः एकया) ऊपर रखी गायें एक द्वारसे बाहर निकाली गईं। (बृहस्पतिः तमसि ज्योतिः इच्छन् उस्राः इत् आकः) बृहस्पतिने उस अंधकारमें प्रकाश लानेकी इच्छा करके वहां रखी गायोंको बाहर निकाला। (तिस्रः वि आवः) इस प्रकार उसने तीसरा द्वार भी खोल दिया ॥ ४ ॥

[७१४] (बृहस्पतिः शयथा अपाचीं ईम् पुरं विभिद्य) बृहस्पतिने गुप्तरूपसे रहकर नीचे मुखकर लटकनेवाली इस बलकी असुर पुरीको तोडकर, (उदधेः साकं त्रीणि उषसं सूर्यं गां निः अकृन्तत्) बलरूप मेघसे एकसाथ ही तीनोंको– उषा, सूर्य और गौको मुक्त किया। वह (स्तनयन् द्यौः इव) गर्जते प्रदीप्त विद्युत्के समान स्थित होकर (अर्कं विवेद) उषा, अर्चनीय सूर्य तथा गौको प्राप्त करता है– जानता है ॥ ५ ॥

इन्द्रो वलं रक्षितारं दुघानां करेणेव वि चकर्ता रवेण ।
स्वेदाञ्जिभिराशिरमिच्छमानो ऽरोदयत् पणिमा गा अमुष्णात् ६[१५]

स ईं सत्येभिः सखिभिः शुचद्भि- र्गोधायसं वि धनसैरदर्दः ।
ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहै- र्घर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानट् ७
ते सत्येन मनसा गोपतिं गा इयानास इषणयन्त धीभिः ।
बृहस्पतिर्मिथोअवद्यपेभि- रुदुस्रिया असृजत स्वयुग्भिः ८ (७१७)
तं वर्धयन्तो मतिभिः शिवाभिः सिंहमिव नानदतं सधस्थे ।
बृहस्पतिं वृषणं शूरसातौ भरेभरे अनु मदेम जिष्णुम् ९
यदा वाजमसनद्विश्वरूप- मा द्यामरुक्षदुत्तराणि सद्म ।
बृहस्पतिं वृषणं वर्धयन्तो नाना सन्तो बिभ्रतो ज्योतिरासा १०
सत्यामाशिषं कृणुता वयोधै कीरिं चिद्ध्यवथ स्वेभिरेवैः ।
पश्चा मृधो अप भवन्तु विश्वा- स्तद्रोदसी शृणुतं विश्वमिन्वे ११

---

[७१५] (इन्द्रः दुघानां रक्षितारं वलम् करेण इव रवेण वि चकर्त) इन्द्र-बृहस्पतिने गायोंकी रक्षा करनेवाले बलको हिंसाकी साधनके समान तीव्र शब्दसे छिन्न-भिन्न कर डाला । (स्वेदाञ्जिभिः आशिरम् इच्छमानः पणिं अरोदयत्) मरुतोंके आश्रयकी इच्छा करनेवाले उसने पणिको-वलके अनुचरको, रुलाया-नष्ट किया और (गाः अमुष्णात्) उस असुरने हरणकी गायोंको ग्रहण किया ॥ ६ ॥

[७१६] (सः सत्येभिः सखिभिः शुचद्भिः धनसैः) बृहस्पतिने सत्यनिष्ठ, मित्र, तेजस्वी और धनसंपन्न मरुतोंकी सहाय्यतासे (गोधायसं ईम् वि अदर्दः) गायोंको रोकनेवाले इस वलको विदीर्ण किया । (ब्रह्मणः पतिः वृषभिः वराहैः) और ऋग्-यजु-साम स्तोत्रोंके अधिपतिने जलवर्षा करनेवाले मेघोंसे (घर्मस्वेदेभिः द्रविणं व्यानट्) प्रदीप्त गमनशील मरुतोंके साथ गोधनको प्राप्त किया ॥ ७ ॥

[७१७] (गाः इयानासः सत्येन मनसा ते) गायोंको प्राप्त करके सत्ययुक्त मनसे वे मरुत् (धीभिः गोपतिं इषणयन्त) अपने सत्कर्मोंसे बृहस्पतिको गोपति बनानेकी इच्छा करने लगे । (बृहस्पतिः मिथः अवद्यपेभिः स्वयुग्भिः) बृहस्पतिने दुष्टोंसे गायोंकी रक्षा करनेके लिये एकत्र हुए स्वयं अपने आप युक्त मरुतोंकी सहाय्यतासे (उस्रियाः उत् असृजत) गायोंको मुक्त किया ॥ ८ ॥

[७१८] (सधस्थे सिंहम् इव नानदतं वृषणं) अन्तरिक्षमें सिंहके समान बार बार गर्जना करनेवाले, कामोंके वर्षक, (जिष्णुं त्वं बृहस्पतिं वर्धयन्तः) और जयशील उस बृहस्पतिको उत्साहित करनेवाले हम मरुत् (शूरसातौ भरेभरे शिवाभिः अनु मदेम) शूरवीरोंके द्वारा करने योग्य संग्राममें कल्याणमयी स्तुतियोंसे उसकी स्तुति करते हैं ॥९॥

[७१९] (यदा विश्वरूपं वाजं असनत्) जिस समय वह बृहस्पति नाना प्रकारके गोरूप अन्न ग्रहण करता है, (द्यां आ अरुक्षत् उत्तराणि सद्म) तथा आकाशमें ऊपर चढता है, वा उत्तम लोकोंमें विराजता है; (वृषणं बृहस्पतिं आसा वर्धयन्तः) सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाले बृहस्पतिको देव मुखसे उत्साहित करते है; उसकी महिमाका गान करते है; (नाना सन्तः ज्योतिः बिभ्रतः) और अनेक दिशाओंमें रहकर तेजस्वितासे उसको उत्कर्ष करते हैं ॥ १० ॥

[७२०] हे बृहस्पति प्रभृति देवो ! (वयोधै आशिषं सत्यां कृणुत) अन्नप्राप्तिके लिये की हुई हमारी प्रार्थना-स्तुतिको सफल करो । और तुम (स्वेभिः एवैः कीरिं चित् अवथ) अपने आगन्तसे मुझ भक्तकी रक्षा करो । (पश्चा विश्वाः मृधः अप भवन्तु) अनन्तर हमारी सब आपत्तियां नष्ट होवें; हे (विश्वमिन्वे) सब जगत्को प्रसन्न करनेवाले ! हे (रोदसी) द्यावापृथिवी ! (तत् शृणुतम्) हमारी यह प्रार्थना तुम सुनो ॥ ११ ॥

इन्द्रो मह्ना महतो अर्णवस्य वि मूर्धानमभिनदर्बुदस्य ।
अहन्नहिमरिणात् सप्त सिन्धून् देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः १२ [१६] (७२१)

(६८)

११ अयास्य आङ्गिरसः । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् ।

उदप्रुतो न वयो रक्षमाणा वावदतो अभ्रियस्येव घोषाः ।
गिरिभ्रजो नोर्मयो मदन्तो बृहस्पतिमभ्यर्का अनावन् । १
सं गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो भग इवेदर्यमणं निनाय ।
जने मित्रो न दंपती अनक्ति बृहस्पते वाजयाशूँरिवाजौ २
साध्वर्या अतिथिनीरिषिराः स्पार्हाः सुवर्णा अनवद्यरूपाः ।
बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्यः ३
आप्रुषायन् मधुन ऋतस्य योनिमवक्षिपन्नर्क उल्कामिव द्योः ।
बृहस्पतिरुद्धरन्नश्मनो गा भूम्या उद्नेव वि त्वचं बिभेद ४

---

[७२१] (मह्ना इन्द्रः महतः अर्णवस्य अर्बुदस्य मूर्धानं वि अभिनत्) समर्थ बृहस्पतिने महान् जलसे भरे मेघके शिरको विशेष रूपसे काट दिया । (अहिम् अहन्) जलको रोकनेवाले शत्रुको मार डाला । (सप्त सिन्धून् अरिणात्) गंगा आदि सात नदियोंको समुद्रमें मिला दिया । हे (द्यावापृथिवी) द्यावापृथिवी ! (देवैः नः प्रावतम्) तुम देवोंके साथ आकर हमारी रक्षा करो ॥ १२ ॥

[६८]

[७२२] (उदप्रुतः वयः रक्षमाणाः न) जलसेचक वा धान्यक्षत्रस पक्षियोंसे रक्षण करनेवाले कृषक जैसे शब्द करते हैं, (वावदतः अभ्रियस्य इव घोषाः) जैसे मेघोंका गर्जन बारबार होता है, (गिरिभ्रजः ऊर्मयः मदन्तः न) अथवा जैसे पर्वतसे झरनेवाले झरने वा मेघसे गिरनेवाली जलधाराएं शब्द करती हैं; उसी प्रकार (अर्काः बृहस्पतिं अभि अनावन्) स्तोता लोग बृहस्पतिकी सतत स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

[७२३] (आङ्गिरसः नक्षमाणः भग इव इत् अर्यमणं) अंगिराके पुत्र बृहस्पतीने स्व तेजसे व्याप्त करके भग देवके समान स्तोताको (गोभिः सं निनाय) गायोंको प्रदान किया । (मित्रः न जने दंपती अनक्ति) जैसे मित्र जगत्में स्त्री–पुरुषका मिलन करा देता है, हे (बृहस्पते) बृहस्पति ! (आशून् इव आजौ, वाजय) जैसे युद्धमें वेगवान् अश्वोंको वेगसे चलाता है, उसी प्रकार तेरी कृपाके किरण प्रदान कर ॥ २ ॥

[७२४] (साधु-अर्याः अतिथिनीः इषिराः) कल्याणमय दूध देनेवाली, सतत गमनशील, इच्छनीय, (स्पार्हाः सुवर्णाः अनवद्यरूपाः गाः) स्पृहणीय, उत्तम वर्णवाली अनिन्दनीय रूपवाली गायोंको (पर्वतेभ्यः वितूर्य निः ऊपे) बलव्याप्त पर्वतसे शीघ्र बाहर निकाली; जैसे (स्थिविभ्यः यवं इव) कृषक संचित धान्यसे जौ बाहर निकालकर बोता है, उसी प्रकार देवोंके पास पहुंचाई ॥ ३ ॥

[७२५] (मधुना आप्रुषायन् ऋतस्य योनिं अवक्षिपन्) जलकी वर्षा करनेवाला, उदकसे भरे मेघको चारों ओर फैलनेवाला (अर्कः बृहस्पतिः द्यौः उल्कां इव) पूजनीय बृहस्पतिने, जैसे आकाशसे उल्काएं नीचे गिरती हैं, उसी प्रकार (अश्मनः गाः उद्धरन्) विशाल पर्वतसे गायोंका उद्धार किया; (भूम्याः त्वचं उन्द्रा इव वि बिभेद) और भूमिकी ऊपरके आवरण पृष्ठको जैसे मेघ वृष्टिके समय भूमिको विदीर्ण करते हैं वैसे ही उनकी खुरोंसे विदीर्ण किया ॥ ४ ॥

×

अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षा—दुद्नः शीपालमिव वात आजत् ।
बृहस्पतिरनुमृश्या वलस्या—ऽभ्रमिव वात आ चक्र आ गाः ५
यदा वलस्य पीयतो जसुं भेद् बृहस्पतिरग्नितपोभिरर्कैः ।
दद्भिर्न जिह्वा परिविष्टमाद—दाविर्निधीरकृणोदुस्रियाणाम् ६ [१७]
बृहस्पतिरमत हि त्यदासां नाम स्वरीणां सदने गुहा यत् ।
आण्डेव भित्त्वा शकुनस्य गर्भ—मुदुस्रियाः पर्वतस्य त्मनाजत् ७
अश्नापिनद्धं मधु पर्यपश्य—न्मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम् ।
निष्टज्जभार चमसं न वृक्षाद् बृहस्पतिर्विरवेणा विकृत्य ८ (७२९)
सोषामविन्दत् स स्वः सो अग्निं सो अर्केण वि बबाधे तमांसि ।
बृहस्पतिर्गोवपुषो वलस्य निर्मज्जानं न पर्वणो जभार ९
हिमेव पर्णा मुषिता वनानि बृहस्पतिनाकृपयद्वलो गाः ।
अनानुकृत्यमपुनश्चकार यात् सूर्यामासा मिथ उच्चरातः १०

[७२६] (अन्तरिक्षात् ज्योतिषा तमः अप आजत्) जैसे सूर्य अन्तरिक्षसे प्रकाशसे अन्धकारको दूर करता है और (वातः उदनः शीपालं इव अभ्रम् इव) जैसे वायु जलके पृष्ठ परसे सेवारको दूर करता है, और जैसे वायु मेघको दूर करता है, (बृहस्पतिः अनुमृश्य वलस्य गाः आ चक्रे) बृहस्पतिने वैसेही विचार करके वलके आवरणसे गायोंको बाहर निकाला ॥ ५ ॥

[७२७] (पीयतः वलस्य जसुम् यदा भेत्) जब हिंसक वलका आयुध– अस्त्र बृहस्पतिने तोड दिया, (अग्नितपोभिः अर्कैः दद्भिः परिविष्ट जिह्वा आदत्) अग्निके समान तप्त किरणोंसे वह वलका अस्त्र तोड दिया और जिस प्रकार दांतोंसे पिसे अन्नको जीभ खा लेती है, उसी प्रकार (उस्रियाणां निधीन् आविः अकृणोत्) पर्वतमें गायें चुरानेवाले पणियोंसे वेष्टित वलके मारनेपर, गायोंके खजानोंको प्राप्त किया ॥ ६ ॥

[७२८] (बृहस्पतिः गुहा सदने स्वरीणां आसां) बृहस्पतिने गुप्त स्थानमें छुपाकर रखीं और शब्द करनेवाली गायोंके (त्यत् नाम यदा अमत हि) उस प्रसिद्ध स्थानको जब जान लिया, तब (पर्वतस्य उस्रियाः त्मना भित्त्वा उत् आजत्) पर्वतमें स्थित गायें स्वयं अपने सामर्थ्यसे पर्वतसे बाहर आयीं, (आण्डा इव शकुनस्य) जैसे पक्षीके अण्डोंको फोडकर गर्भरूप बच्चे प्रकट होते हैं ॥ ७ ॥

[७२९] (बृहस्पतिः अश्ना अपिनद्धम् मधु पर्यपश्यत्) सुंदर बृहस्पतिने पर्वतकी गुहामें बंधी हुई सुंदर गायोंको देखा, जैसे (दीने उदनि मत्स्यं न दिक्षन्तम्) अल्पजलमें रहते हुए मत्स्यके समान व्याकुल होकर रहते हैं। (वृक्षात् च मसं न तत् विवरेण विकृत्य निः जभार) और जैसे वृक्षसे सोमपात्र निर्माण किया जाता है, उसी प्रकार उसने विविध शब्दोंके नाद सामर्थ्यसे वलके बंधनको तोडकर उनको पर्वतसे बाहर निकाला ॥ ८ ॥

[७३०] (सः बृहस्पतिः उषां अविन्दत्) बृहस्पतिने पर्वतकी गुहामें गायोंको देखनेके लिये उषाको प्राप्त किया। (सः स्वः सः अग्निं अकण तमांसि वि बबाधे) उसने सूर्य और अग्निको पाकर उत्तम तेजसे अंधकारको नष्ट किया। (मज्जानं न पर्वणः) जैसे अस्थिसे मज्जा बाहर की जाती है, उसी प्रकार (गोवपुषः वलस्य पर्वणः निः जभार) गायोंसे घिरे हुए वलके पर्वतसे उसने गायोंको बाहर निकाला ॥ ९ ॥

[७३१] (हिमा इव पर्णा मुषिता वनानि) हिम जिस प्रकार पत्रपत्तोंका हरण करता है, उसी प्रकार गायें चुराई गयीं थीं; इसलिये (बृहस्पतिना वलः गाः अकृपयत्) गायोंके खोजके लिये बृहस्पतिके आनेपर वलने उन गायोंको त्याग दिया। (अननुकृत्यम् अपुनः चकार) ऐसा कर्म दूसरेके लिये अननुकरणीय और अकर्तव्य है; (सूर्यामासाः मिथः उच्चरातः यात्) सूर्य और चन्द्र अहोरात्र परस्पर इस कर्मका वर्णन करते हैं ॥ १० ॥

अभि श्यावं न कृशनेभिरश्वं नक्षत्रेभिः पितरो द्यामपिंशन् ।
रात्र्यां तमो अदधुर्ज्योतिरहन् बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद्गाः ११
इदमकर्म नमो अभ्रियाय यः पूर्वीरन्वानोनवीति ।
बृहस्पतिः स हि गोभिः सो अश्वैः स वीरेभिः स नृभिर्नो वयो धात् १२ [१८] (७३३

(६९) [षष्ठोऽनुवाकः ॥६॥ सू० ६९-८४]

११ सुमित्रो वाध्र्यश्वः । अग्निः । त्रिष्टुप्, १-२ जगती ।

भद्रा अग्नेर्वध्र्यश्वस्य संदृशो वामी प्रणीतिः सुरणा उपेतयः ।
यदीं सुमित्रा विशो अग्र इन्धते घृतेनाहुतो जरते दविद्युतत् १
घृतमग्नेर्वध्र्यश्वस्य वर्धनं घृतमन्नं घृतम्वस्य मेदनम् ।
घृतेनाहुत उर्विया वि पप्रथे सूर्य इव रोचते सर्पिरासुतिः २
यत् ते मनुर्यदनीकं सुमित्रः समीधे अग्ने तदिदं नवीयः ।
स रेवच्छोच स गिरो जुषस्व स वाजं दर्षि स इह श्रवो धाः ३

[७३२] (श्यावं अश्वं न कृशनेभिः) जैसे श्यामवर्ण घोडेको सुवर्णा भूषणोंसे विभूषित किया जाता है, वैसे ही (पितरः द्यां नक्षत्रेभिः अभि अपिंशन्) देवोंने द्युलोकको नक्षत्रोंसे सुशोभित करते हैं । (रात्र्याम् तमः अहन् ज्योतिः अदधुः) और रात्रिकालमें अंधकारको तथा दिनके समयमें प्रकाशको उन्होंने रखा है; जब (बृहस्पतिः अद्रिं भिनत् गाः विदत्) बृहस्पतिने बलाधिष्ठित पर्वतको फोडा, तब उसको गायें प्राप्त हुईं ॥ ११ ॥

[७३३] (अभ्रियाय इदं नमः अकर्म) आकाशमें उत्पन्न बृहस्पतिके लिये यह स्तोत्र किया है; हम आदरपूर्वक नमस्कार करते हैं । (यः पूर्वीः अनु आनोनवीति) जिसने अनेक प्राचीन ऋचाओंको बार बार कहा है, (सः बृहस्पतिः नः गोभिः अश्वैः वीरेभिः नृभिः वयः धात्) वही बृहस्पति हमें गायें, घोडे, सन्तान, भृत्यादि सहित अन्न दे ॥ १२ ॥

[६९]

[७३४] (अग्नेः संदृशः वध्र्यश्वस्य भद्राः) प्रशंसनीय गुणोंसे युक्त अग्निका दर्शन वध्र्यश्वको कल्याणकारी हो. (प्रणीतिः वामी उपेतयः सुरणाः) उसका प्रणयन कल्याणप्रद हो; उसका यज्ञागमन सुखप्रद हो । (यत् सुमित्राः विशः ईम् अग्ने इन्धते) जिस समय सुमित्र लोग इस अग्निको प्रथम हवियोंसे प्रदीप्त करते हैं, तब (घृतेन आहुतः दविद्युतत् जरते) घृताहुति पाकर अग्नि प्रज्वलित होता है और हम उसकी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

[७३५] (वध्र्यश्वस्य अग्नेः घृतं वर्धनम्) वध्र्यश्वके अग्नि घृतके हविसे ही वृद्धिगत होता है; (घृतं अन्नम्) अग्निका अन्न-आहार घी ही है; (अस्य घृतं उ मेदनम्) अग्निका घृत ही पोषणकारक है; (घृतेन आहुतः उर्विया वि पप्रथे) घृतकी आहुति पाकर अग्नि तेजसे अत्यंत प्रज्वलित होता है, और (सर्पिः आसुतिः सूर्य इव रोचते) घृतकी आहुति पाकर अग्नि सूर्यके समान प्रकाशमान् होता है ॥ २ ॥

[७३६] हे (अग्ने) अग्नि ! (ते यत् अनीकं मनुः) जिस प्रकार तेरी ज्वालाओंको- किरणोंको मनु प्रज्वलित करता है, (सुमित्रः समीधे) उसी प्रकार मैं सुमित्र तुझे हविसे प्रदीप्त करता हूं । (तत् इदं नवीयः) तेरा वह तेज अत्यंत नया है (सः रेवत् शोच) वह तू धनवान् होकर-सामर्थ्यवान् होकर बहुत प्रकाशमान् होकर शोभित होवे; (सः गिरः जुषस्व) वह तू हमारी स्तुतियोंको प्रेमसे स्वीकार कर; (सः वाजं दर्षि) वह तू शत्रुकी सेनाको विदीर्ण कर; और (सः इह श्रवः धाः) वह तू यहां मुझे अन्न और यश दे ॥ ३ ॥

यं त्वा पूर्वमीळितो वध्र्यश्वः समीधे अग्ने स इदं जुषस्व ।
स नः स्तिपा उत भवा तनूपा दात्रं रक्षस्व यदिदं ते अस्मे ४
भवा द्युम्नी वाध्र्यश्वोत गोपा मा त्वा तारीदभिमातिर्जनानाम् ।
शूर इव धृष्णुश्च्यवनः सुमित्रः प्र नु वोचं वाध्र्यश्वस्य नाम ५
समज्र्या पर्वत्या३ वसूनि दासा वृत्राण्यार्या जिगेथ ।
शूर इव धृष्णुश्च्यवनो जनानां त्वमग्ने पृतनायूँरभि ष्याः ६ [१९]

दीर्घतन्तुर्बृहदुक्षायमग्निः सहस्रस्तरीः शतनीथ ऋभ्वा ।
द्युमान् द्युमत्सु नृभिर्मृज्यमानः सुमित्रेषु दीदयो देवयत्सु ७
त्वे धेनुः सुदुघा जातवेदो ऽसश्चतेव समना सबर्धुक् ।
त्वं नृभिर्दक्षिणावद्भिरग्ने सुमित्रेभिरिध्यसे देवयद्भिः ८

---

[७३७] हे (अग्ने) अग्नि ! (ईळितः वध्र्यश्वः पूर्वं यं त्वा समीधे) स्तोता वध्र्यश्वने पहले जिस तुझको हविसे प्रज्वलित किया था, (सः इदं जुषस्व) वह तू मेरे इस स्तोत्रका स्वीकार कर। (उत सः नः स्तिपाः भव) और वह तू हमारे घरों देहोंका पालक हो; (उत तनूपाः) और हमारे सन्तानोंकी भी रक्षा कर; (दात्रं रक्षस्व यत् इदं ते अस्मे) तुमने यह जो कुछ उदारतासे हमें दिया है, उसकी रक्षा कर ॥ ४ ॥

[७३८] हे (वाध्र्यश्व) वध्र्यश्व कुलोत्पन्न अग्नि ! (द्युम्नी भव) तू महान् कीर्तिमान् होओ, (उत गोपाः) और हमारा संरक्षक बन। (त्वा मा तारीत्) लोगोंकी हिंसा करनेवाला कोई भी तुझे पराजित न करे; (जनानां अभिमातिः) तू शत्रुओंको पराभूत करनेवाला है, और (शूरः इव धृष्णुः च्यवनः) शूरवीरके समान धैर्यवान्, बलवान् शत्रुका पराभव करनेवाला और शत्रुनाशक है; (वाध्र्यश्वस्य नाम नु सुमित्रः प्र वोचम्) वाध्र्यश्वके अग्निके नामोंको शीघ्र ही मैं सुमित्र कहता हूं ॥ ५ ॥

[७३९] हे (अग्ने) अग्नि ! (अज्र्या पर्वत्या वसूनि सं जिगेथ) तू जनताके कल्याणकारक पर्वतपर उत्पन्न गौ आदि धनको प्राप्त करता है। (आर्या दासा वृत्राणि) उसी प्रकार बलवान् स्वामी और दासअसुरोंके उपद्रवोंको नष्ट करता है। (शूरः इव धृष्णुः जनानां च्यवनः त्वं पृतनायून् अभिष्याः) तू शूरवीरके समान धैर्यशाली और शत्रुओंको पराजित करनेवाला है; तू युद्धेच्छु लोगोंको पराभूत कर ॥ ६ ॥

[७४०] (दीर्घतन्तुः बृहत्-उक्षा, सहस्रस्तरीः) अत्यंत स्तुतिमान्, प्रज्वलित अनेक प्रकारके हवनोंसे उपासित (शतनीथः ऋभ्वा द्युमत्सु द्युमान्) अनेक रीतियोंसे स्थापित, महान्, तेजस्वियोंमें तेजस्वी, (अयं अग्निः नृभिः मृज्यमानः) यह अग्नि ऋत्विगोंसे अलङ्कृत होता है; (देवयत्सु सुमित्रेषु दीदयः) वह तू देवभक्त सुमित्रोंके घरोंमें प्रदीप्त होओ ॥ ७ ॥

[७४१] हे (जातवेदः अग्ने) ज्ञानी अग्नि ! (त्वे सुदुघा असश्चता इव समना सबर्धुक् धेनुः) तेरे पास उत्तम और बहुत सरलतासे दूध देनेवाली, उसके दोहनेमें कोई बाधा नहीं है; वह आदित्यकी सहायतासे अमृतरूप दूध देनेवाली गाय है। (त्वं नृभिः दक्षिणावद्भिः देवयद्भिः सुमित्रेभिः इध्यसे) वह तू ऋत्विज्, दक्षिणा और भक्तियुक्त सुमित्रोंसे प्रज्वलित किया जाता है ॥ ८ ॥

वृधाश्चित् ते अमृता जातवेदो महिमानं वाध्र्यश्व प्र वोचन् ।
यत् संपृच्छं मानुषीर्विश आयन् त्वं नृभिरजयस्त्वावृधेभिः ९ (७४२)
पितेव पुत्रमबिभरुपस्थे त्वामग्ने वध्र्यश्वः सपर्यन् ।
जुषाणो अस्य समिधं यविष्ठो त पूर्वौ अवनोर्व्राधतश्चित् १०
शश्वदग्निर्वध्र्यश्वस्य शत्रून् नृभिर्जिगाय सुतसोमवद्भिः ।
समनं चिददहश्चित्रभानो ऽव व्राधन्तमभिनद्वृधश्चित् ११
अयमग्निर्वध्र्यश्वस्य वृत्रहा सनकात् प्रेद्धो नमसोपवाक्यः ।
स नो अजामीँरुत वा विजामी नभि तिष्ठ शर्धतो वाध्र्यश्व १२ [२०] (७४५)

(७०)

११ सुमित्रो वाध्र्यश्वः । आप्रीसूक्तं= (१ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ नराशंसः, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीर्द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः) । त्रिष्टुप् ।

इमां मे अग्ने समिधं जुषस्वे ळस्पदे प्रति हर्या घृताचीम् ।
वर्ष्मन् पृथिव्याः सुदिनत्वे अह्ना मूर्ध्वो भव सुक्रतो देवयज्या १

---

[७४२] हे (जातवेदः वाध्र्यश्व) सर्वज्ञ वाध्र्यश्व अग्नि ! (ते महिमानं अमृताः देवाः चित् प्र वोचन्) तेरी महिमाका, सामर्थ्यका अमर देव भी वर्णन करते हैं । (यत् मानुषीः विशः सम्पृच्छम् आयन्) जिस समय मननशील प्रजाओंने देवोंके साथ रहकर असुरोंका नाश करनेवाला कौन है, ऐसे तुझको प्राप्त होकर पूछा, तब (त्वं नृभिः त्वा वृधेभिः अजयः) तुमने सबके नेता और तुझसे बढनेवाले देवोंके साथ कर्म विघ्नकारकोंको जीत डाला ॥ ९ ॥

[७४३] हे (अग्ने) अग्नि ! (पिता इव पुत्रं वध्र्यश्वः अबिभः त्वां उपस्थे सपर्यन्) पिता पुत्रका जिस प्रकार भरण पोषण करता है, उसी प्रकार मेरे पिता वध्र्यश्वने तुझे सदा अपने समीप वेदोंमें रखकर हवि समर्पण करके तेरी पूजा-सेवा की है । हे (यविष्ठ) युवा अग्नि ! (उत अस्य समिधं जुषाणः) तू इस मेरे पिता वध्र्यश्वसे समिधा स्वीकार करता हुआ, (पूर्वान् व्राधतः चित् अवनोः) पहलेके बाधक शत्रुओंको भी विनष्ट कर ॥ १० ॥

[७४४] (अग्निः सुतसोमवद्भिः नृभिः शश्वत् वध्र्यश्वस्य शत्रून् जिगाय) अग्नि सोम निचोडनेवाले लोगोंकी-ऋत्विजोंकी सहाय्यतासे वध्र्यश्वके शत्रुओंको सदासे जीतता है । हे (चित्रभानो) आश्चर्यकारक तेजवाले अग्नि ! (समनं चित् अदहः) तू सावधान होकर हिंसकको जलाता है, नष्ट करता है; (वृधः चित् व्राधन्तं अव अभिनत्) तू स्वयं वृद्धिगत होकर, अधिक पीडादायकको भी मार डालता है ॥ ११ ॥

[७४५] (वध्र्यश्व अयं अग्निः वृत्रहा सनकात् प्रेद्धः) वध्र्यश्वका यह अग्नि शत्रुहन्ता और चिरकालसे बहुत तेजस्वी और प्रज्वलित है । (नमसा उपवाक्यः) वह नमस्कारयुक्त वचनोंसे स्तुत्य होता है; हे (वाध्र्यश्व) वध्र्यश्व कुलोत्पन्न अग्नि ! (सः नः अजामीन् उत वा) वह तू हमारे विजातीय शत्रुओंको नष्ट कर और (शर्धतः विजामीन् अभितिष्ठ) विजातीय हिंसकोंको पराभूत कर ॥ १२ ॥

[७०]

[७४६] हे (अग्ने) अग्नि ! (इळस्पदे इमां मे समिधं जुषस्व) उत्तरवेदीपर दी गई इस मेरी समिधाको स्वीकार कर; और (घृताचीम् प्रति हर्य) घृतयुक्त स्रुचाकी अभिलाषा कर । हे (सुक्रतो) सुप्रज्ञ ! (पृथिव्याः वर्ष्मन् अह्नाम सुदिनत्वे) पृथिवीके उन्नत प्रदेशपर हमारे दिनोंको उत्तम सुखकारी एवं कल्याणप्रद दिन बनानेके लिये (देवयज्या ऊर्ध्वः भव) देव यज्ञसे ज्वालाओंके साथ ऊपर उठ ॥ १ ॥

आ देवानामग्रयावेह यातु नराशंसो विश्वरूपेभिरश्वैः ।
ऋतस्य पथा नमसा मियेधो देवेभ्यो देवतमः सुषूदत् २
शश्वत्तममीळते दूत्याय हविष्मन्तो मनुष्यासो अग्निम् ।
वहिष्ठैरश्वैः सुवृता रथेना ऽऽ देवान् वक्षि नि षदेह होता ३
वि प्रथतां देवजुष्टं तिरश्चा दीर्घं द्राघ्मा सुरभि भूत्वस्मे ।
अहेळता मनसा देव बर्हि रिन्द्रज्येष्ठाँ उशतो यक्षि देवान् ४
दिवो वा सानु स्पृशता वरीयः पृथिव्या वा मात्रया वि श्रयध्वम् ।
उशतीर्द्वारो महिना महद्भि र्देवं रथं रथयुर्धारयध्वम् ५ [२१]

देवी दिवो दुहितरा सुशिल्पे उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
आ वां देवास उशती उशन्त उरौ सीदन्तु सुभगे उपस्थे ६
ऊर्ध्वो ग्रावा बृहदग्निः समिद्धः प्रिया धामान्यदितेरुपस्थे ।
पुरोहितावृत्विजा यज्ञे अस्मिन् विदुष्टरा द्रविणमा यजेथाम् ७

---

[७४७] (देवानां अग्रयावा नराशंसः) देवोंके अग्रगामी नराशंस नामका– मनुष्योंके द्वारा प्रशंसनीय अग्नि (विश्वरूपेभिः अश्वैः इह आ यातु) अनेक वर्णोंवाले घोडोंके साथ इस यज्ञमें आवे। (मियेधः देवतमः ऋतस्य पथा नमसा देवेभ्यः सुषूदत्) अत्यंत पुजनीय और देवोंमें मुख्य अग्नि यज्ञके मार्गसे और आदरपूर्वक सत्कृत होकर स्तोत्रोंकी सहायतासे देवोंको हवि प्राप्त करे ॥ २ ॥

[७४८] (शश्वत्तमं हविष्मनः मनुष्यासः) नित्य हवि–अन्नसे युक्त यजमान लोक (दूत्याय अग्निं ईळते) दूतकर्म–हविर्वहनादि कर्मके लिये अग्निको स्तुति करते हैं। (वहिष्ठैः अश्वैः सुवृता रथेन) वह स्तवित तू उत्कृष्ट वाहक अश्वोंसे ओर उत्तम रथसे (देवान् आ वक्षि) इन्द्रादि देवोंको ले आ। अनन्तर तू (होता इह नि षद) होता बन और इस यज्ञमें विराज ॥ ३ ॥

[७४९] हे (बर्हिः) बर्हि नामक अग्नि ! (दिवजुष्टं तिरश्चा बर्हिः वि प्रथताम्) देवोंके द्वारा सेवित और आकर्षक यह यज्ञ वर्धित होवे। और (दीर्घं द्राघ्मा) इसकी कालमर्यादा बढे तथा (अस्मे सुरभिः भूतु) हमारे लिये उत्तम सुगंधयुक्त वृढ हो। हे (देव) तेजस्वी देव ! (अहेळता मनसा उशतः) तू क्रोधरहित होकर प्रसन्न मनसे हविकी इच्छावाले (इन्द्रज्येष्ठान् देवान् यक्षि) इन्द्रादि देवोंकी पूजा कर ॥ ४ ॥

[७५०] हे (द्वारः) द्वार देवियो ! (दिवः वा सानु वरीयः स्पृशत) तुम द्युलोकके उच्च स्थानको स्पर्श करो, उन्नत होओ ! (पृथिव्याः वा मात्रया वि श्रयध्वम्) पृथिवीके समान उत्पादक शक्तिसे युक्त होकर विस्तृत होओ। (उशतीः रथयुः) देवाभिलाषी और रथकामी तुम (महिमा महद्भिः देवं रथं धारयध्वम्) अपनी महिमासे देवोंसे अधिष्ठित तेजस्वी विहार साधन रथको धारण करो ॥ ५ ॥

[७५१] (दिवः देवी सुशिल्पे दुहितरौ) द्युलोककी तेजस्वी और सुंदर पुत्री, (उषासानक्ता योनौ नि सदताम्) उषा और रात्री यज्ञस्थानमें विराजें। हे (उशती सुभगे) अभिलाषिणी और उत्तम ऐश्वर्यसे सम्पन्न देवियो ! (वां उरौ उपस्थे उशन्तः देवासः आ सीदन्तु) तुम्हारे विस्तृत समीपस्थ स्थानमें हविकी इच्छावाले देव बैठें ॥ ६ ॥

[७५२] (ग्रावा ऊर्ध्वः बृहत् अग्निः समिद्धः) जिस समय सोमाभिषवके लिये पत्थर ऊपर उठाया जाता है और जिस समय महान् अग्नि बहुत प्रदीप्त होता है, तथा (प्रिया धामानि अदितेः उपस्थे) देवोंके प्रिय हविर्धारक यज्ञपात्र यज्ञस्थानमें लाये जाते हैं; हे (ऋत्विजौ पुरोहितौ विदुष्टरा) ऋत्विक्, पुरोहित और विद्वान् दो पुरुषो ! (अस्मिन् यज्ञे द्रविणं आ यजेथाम्) इस यज्ञमें तुम हमें धन दो ॥ ७ ॥

तिस्रो देवीर्बर्हिरिदं वरीय आ सीदत चकृमा वः स्योनम् ।
मनुष्वद्यज्ञं सुधिता हवींषी-ळा देवी घृतपदी जुषन्त ८
देव त्वष्टर्यद्ध चारुत्वमान-ड्यदङ्गिरसामभवः सचाभूः ।
स देवानां पाथ उप प्र विद्वा-नुशन् यक्षि द्रविणोदः सुरत्नः ९ (७५४)
वनस्पते रशनया नियूया देवानां पाथ उप वक्षि विद्वान् ।
स्वदाति देवः कृणवद्धवीं-ष्यवतां द्यावापृथिवी हवं मे १०
अग्ने वह वरुणमिष्टये न इन्द्रं दिवो मरुतो अन्तरिक्षात् ।
सीदन्तु बर्हिर्विश्व आ यजत्राः स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ११[२२] (७५६)

---

[७५३] हे (तिस्रः देवीः) इळादि तीन-इळा, सरस्वती, भारती-देवियो ! (इदं वरीयः बर्हिः आ सीदत) इस उत्तम आसनपर बैठो ! (वः स्योनं चकृम) तुम्हारे लिये हमने यह सुखकारी आसन किया है ! (इळा देवी घृतपदी) इळा, तेजस्विनी सरस्वती और दीप्तिमती भारतीने (मनुष्वत् यज्ञं सुधिता हवींषि जुषन्त) जैसे मनुके यज्ञमें हविका सेवन किया था, वैसेही हमारे इस यज्ञमें उत्कृष्ट रीतिसे आदर पूर्वक रक्खे हवियोंको सेवन करें ॥ ८ ॥

[७५४] हे (त्वष्टः देवः) त्वष्टा देव ! (यत् चारुत्वं आनट्) जो तू उत्कृष्ट रूप प्राप्त कर चुका है; (यत् अङ्गिरसाम् सचाभूः अभवः) जो तू हम अङ्गिरसोंका मित्र है; हे (द्रविणोदः) धनके दाता ! (सः सुरत्न उशन्) वह तू उत्तम धनोंका स्वामी है; हविकी इच्छा करके (विद्वान् देवानां पाथः उप यक्षि) और जानकर देवोंका भाग - अन्न उन्हें दे ॥ ९ ॥

[७५५] हे (वनस्पते) वनस्पतिरूप यूप ! तू (विद्वान्) ज्ञानी है; (रशनया नियूय देवानाम् पाथः उप वक्षि) तू रज्जुसे बांधकर देवोंके पास अन्न पहुंचाओ । (देवः स्वदाति हवींषि कृणवत्) देव वनस्पतियोंके रसका स्वाद लें और हमारे दिये हुए हविको देवोंको दे । (मे हवं द्यावापृथिवी अवताम्) मेरे आह्वानकी-यज्ञकी रक्षा द्यावापृथिवी करें ॥ १० ॥

[७५६] हे (अग्ने) अग्निदेव ! (नः इष्टये दिवः अन्तरिक्षात् इन्द्रं वरुणं मरुतः आ वह) तू हमारे यज्ञके लिये द्युलोक और अन्तरिक्षसे इन्द्र, वरुण और मरुतोंको ले आओ । (यजत्राः विश्वे देवाः बर्हिः आ सीदन्तु) आनेपर वे यज्ञार्ह सब देव आसन पर बैठें । (अमृताः स्वाहा मादयन्ताम्) वे अमर देव स्वाहाकारसे उत्तम अन्नाहुतिसे तृप्त हों ॥ ११ ॥

(७१)

११ बृहस्पतिराङ्गिरसः । ज्ञानम् । त्रिष्टुप्, ९ जगती ।

बृह॑स्पते प्रथ॒मं वा॒चो अग्रं॒ यत् प्रैर॑त नाम॒धेयं॑ दधा॑नाः ।
यदे॑षां॒ श्रेष्ठं॒ यद॑रि॒प्रमासी॑त् प्रे॒णा तदे॑षां॒ निहि॑तं॒ गुहा॒विः १
सक्तु॑मिव॒ तित॑उना पु॒नन्तो॒ यत्र॒ धीरा॒ मन॑सा॒ वाच॒मक्र॑त ।
अत्रा॒ सखा॑यः स॒ख्यानि॑ जानते भ॒द्रैषां॑ ल॒क्ष्मीर्निहि॒ताधि॑ वा॒चि २
य॒ज्ञेन॑ वा॒चः प॑द॒वीय॑माय॒न् तामन्व॑विन्द॒न्नृषि॑षु॒ प्रवि॑ष्टाम् ।
ताम॒ाभृत्या॒ व्य॑दधुः पुरु॒त्रा तां स॒प्त रे॒भा अ॒भि सं न॑वन्ते ३
उ॒त त्वः॒ पश्य॒न् न द॑दर्श॒ वाच॑मु॒त त्वः॑ शृ॒ण्वन् न शृ॑णोत्येनाम् ।
उ॒तो त्व॑स्मै त॒न्वं१ वि स॑स्रे जा॒येव॒ पत्य॑ उश॒ती सु॒वासाः॑ ४

---

[७१]

[७५७] हे (बृहस्पते) बृहस्पति ! (प्रथमं नामधेयं दधानाः यत् प्र ऐरत्) प्रथमही आरंभमें बालक पदार्थोंका नाम रखकर जो कुछ बोलते हैं, वह (वाचः अग्रम्) उनकी वाणीका सबसे पूर्व स्वरूप है । (एषां यत् श्रेष्ठं यत् अरिप्रं आसीत्) इनका जो श्रेष्ठ-शुद्ध और जो निष्पाप ज्ञान है, (एषां तत् गुहा निहितं प्रेणा आविः) उनका वह गुप्त है, और वह प्रेमके कारण प्रकट होता है ॥ १ ॥

[७५८] (तितउना सक्तुं इव पुनन्तः) जैसे सूपसे सत्तूको स्वच्छ कर लेते हैं, वैसेही (धीराः यत्र मनसा वाचम् अक्रत) बुद्धिमान श्रेष्ठ पुरुष जिस समय बुद्धि बलसे वाणीको प्रस्तुत करते हैं; (अत्र सखायः सख्यानि जानते) उस समय वे प्रेम भावसे युक्त ज्ञानी लोग मित्रताके भावोंको जानते हैं; (एषां अधि वाचि भद्रा लक्ष्मीः निहिता) उनकी वाणीमें कल्याणकारक मंगलमयी लक्ष्मी निवास करती है ॥ २ ॥

[७५९] वे बुद्धिमान् लोग ! (वाचः पदवीयं यज्ञेन आयन्) उत्कृष्ट वाणीसे प्राप्त करनेयोग्य अभिप्रायको यज्ञके द्वाराही प्राप्त करते हैं । (ऋषिषु प्रविष्टां तां अविन्दन्) उन्होंने तत्त्वदर्शी ऋषियोंमें प्रविष्ट हुई उस वाणीको प्राप्त किया अनन्तर (तां आभृत्य पुरुत्रा व्यदधुः) उस वाणीको प्राप्त करके उन्होंने बहुत देशोंमें उसका ज्ञानके लिये प्रसार किया; (तां सप्त रेभाः अभि सं नवन्ते) इस प्रकारकी उस वाणीको उन्होंने गायत्र्यादि छन्दोंमें स्तुतिरूप किया ॥ ३ ॥

[७६०] (उत त्वः वाचं पश्यन् न ददर्श) एक तो वाणीको मनसे देखता हुआ भी नही अज्ञानताके कारण देख सकता; और (उत त्वः एनां शृण्वन् न शृणोति) दूसरा इस वाणीको सुनकर भी (अर्थ न समझनेके कारण) नहीं सुन सकता । (उतो त्वस्मै तन्वं वि सस्रे) वह वाणी किसीके पास अपने ज्ञानरूपको स्वयं विशेष प्रकारसे इस प्रकार प्रकट करती है, जैसे (पत्ये सुवासाः उशती जाया इव) पतिके सुखके लिये सुंदर वस्त्र परिधान कर पत्नी अपना रमणीय मोहमय शरीर पतिके पास प्रकट करती है ॥ ४ ॥

उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु ।
अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम् ५-[२३]

यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति ।
यदीं शृणोत्यलकं शृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ६

अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः ।
आदघ्नास उपकक्षास उ त्वे ह्रदा इव स्नात्वा उ त्वे ददृश्रे ७

हृदा तष्टेषु मनसो जवेषु यद्ब्राह्मणाः संयजन्ते सखायः ।
अत्राह त्वं वि जहुर्वेद्याभिरोहब्रह्माणो वि चरन्त्यु त्वे ८

इमे ये नार्वाङ्न परश्चरन्ति न ब्राह्मणासो न सुतेकरासः ।
त एते वाचमभिपद्य पापया सिरीस्तन्त्रं तन्वते अप्रजज्ञयः ९

---

[७६१] (उत त्वं सख्ये स्थिरपीतं आहुः) और किसी एक विद्वान्को श्रेष्ठ पुरुषोंके बीच स्थिर बुद्धिवाला धीमान् कहते हैं; (वाजिनेषु अपि एनं न हिन्वन्ति) वाणीका सामर्थ्य प्रकट करनेमें कोई भी इसके तुल्य नहीं हो सकता; वही सर्व श्रेष्ठत्व प्राप्त करता है । और जो (वाचं अफलां अपुष्पां शुश्रुवान्) वाणीको फल-अर्थ और फूल-तात्पर्यके बिना केवल अध्ययन करता है, (एषः अधेन्वा मायया चरति) वह बन्ध्या गौके समान छलपूर्वक वाणीके सहित विचरता है ॥ ५ ॥

[७६२] (यः सचिविदं सखायं ति त्याज) जो विद्वान्, उपकारी, वेदोंके अधिष्ठाता, वेत्ता परममित्रको त्यागता है, (तस्य वाचि अपि भागः न अस्ति) उसकी वाणीमें भी कोई फल नहीं है । (ईम् यत् शृणोति अलकं शृणोति) वह जो कुछ सुनता है, व्यर्थ ही सुनता है; (हि सुकृतस्य पन्थां न प्रवेद) और वह सत्कर्मका-कल्याणका मार्ग नहीं जान सकता ॥ ६ ॥

[७६३] (अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायः) आंखोंवाले, कानवाले, समान ज्ञान ग्रहण करनेवाले मित्र भी (मनोजवेषु असमाः बभूवुः) मनसे जानने योग्य ज्ञानमें एक समान नहीं होते । जैसे (ह्रदाः आदघ्नासः) भूमिपर कोई जलाशय मुखतक गहराईके जलवाले और (त्वे उ उपकक्षासः इव) कोई कटितक जलवाले तडागके समान होते हैं; (स्नात्वाः उ त्वे) और कोई स्नान करनेके योग्य भी होते हैं । इसी प्रकार मनुष्योंमें भी ज्ञानकी दृष्टिसे असमानता रहती है ॥ ७ ॥

[७६४] (सखायः ब्राह्मणाः हृदा तष्टेषु) समान योग्यतावाले ज्ञानी ब्राह्मण हृदयसे अच्छी प्रकार (मनसः जवेषु यत् संयजन्ते) मनःपूर्वक वेदार्थके गुण दोषके निरूपण-परीक्षणके लिये जब एकत्र होते हैं; (अत्र त्वं वेद्याभिः वि जहुः) तब किसी व्यक्तिको वेदविद्यासे अज्ञ जानकर छोड देते हैं । (अह ओहब्रह्माणः उ त्वे विचरन्ति) और कुछ स्तोत्रज्ञ विद्वान् ब्राह्मण वेदार्थज्ञाता होकर विचरण करते हैं ॥ ८ ॥

[७६५] (इमे ये न अर्वाक् न परः न चरन्ति) ये जो-वेदार्थ न जाननेवाले अविद्वान्-इस लोकमें ब्राह्मणोंके और परलोकमें देवोंके साथ यज्ञादि कर्म नहीं करते, और जो (न ब्राह्मणासः न सुतेकरासः) न ब्रह्म वेद जाननेवाले हैं और न सोमयज्ञ कर्ता हैं; वे (अप्रजयज्ञः) ज्ञानी नहीं होते ! (ते एते पापया वाचं अभिपद्य) वे ये पापकारिणी लौकिक वाणीको प्राप्त कर (सिरीः तन्त्रं तन्वते) मूर्ख व्यक्तिके समान हल आदि साधन लेकर अपना भरणपोषण कृषि आदि व्यवहारसे करते हैं ॥ ९ ॥

सर्वे॑ नन्दन्ति य॒शसाग॑तेन सभासा॒हेन॒ सख्या॒ सखा॑यः ।
कि॒ल्बि॒ष॒स्पृत् पि॑तु॒षणि॒र्ह्ये॑षा॒मरं॑ हि॒तो भव॑ति वा॒जिना॑य १०
ऋ॒चां त्वः॒ पोष॑मास्ते पुपु॒ष्वान् गा॑य॒त्रं त्वो॑ गायति॒ शक्व॑रीषु ।
ब्र॒ह्मा त्वो॒ वद॑ति जातवि॒द्यां य॒ज्ञस्य॒ मात्रां॒ वि मि॑मीत उ त्वः ११ [२४] (७६७)

[तृतीयोऽध्यायः ॥३॥ व० १-२८] (७२)

१ लौक्यो बृहस्पतिः, बृहस्पतिराङ्गिरसो वा, दाक्षायणी अदितिर्वा । देवाः । अनुष्टुप् ।

दे॒वानां॒ नु व॒यं जाना॒ प्र वो॑चाम विप॒न्यया॑ ।
उ॒क्थेषु॑ श॒स्यमा॑नेषु॒ यः पश्या॒दुत्त॑रे यु॒गे १
ब्रह्म॑ण॒स्पति॑रे॒ता सं क॒र्मार॑ इवाधमत् ।
दे॒वानां॑ पू॒र्व्ये यु॒गेऽस॑तः॒ सद॑जायत २
दे॒वानां॑ यु॒गे प्र॑थ॒मेऽस॑तः॒ सद॑जायत ।
तदाशा॒ अन्व॑जायन्त॒ तदु॑त्ता॒नप॑द॒स्परि॑ ३

[७६६] (सर्वे सखायः सभासाहेन सख्या आगतेन यशसा नन्दन्ति) सब समान ज्ञान–योग्यतावाले मित्र, सभामें प्राधान्य प्रदान करनेवाले यशस्वी सोम–मित्र–ज्ञानी पुरुषसे आनंदित होते हैं । (एषां पितुषणिः किल्बिषस्पृत्) वह इनके बीचमें अन्नदाता और पापनाशक सोम (वाजिनाय हितः अरं भवति) इन्हें बल–वीर्य प्रदान करनेके लिये समर्थ है ॥ १० ॥

[७६७] (त्वः ऋचां पोषं पुपुष्वान् आस्ते) एक स्तोता–विद्वान् वेदमंत्रोंका यज्ञानुष्ठानमें विधिवत् प्रयोग करके अधिष्ठित होता है । (त्वः शक्वरीषु गायत्रं गायति) और दूसरा शक्वरी ऋचाओंमें गायत्री छंदमें सामका गान करता है । (त्वः ब्रह्मा जातविद्यां वदति) कोई एक वेदवित् विद्वान् प्रत्येक इष्ट कार्यमें प्रायश्चित् आदि विद्याका उपदेश करता है; (उ त्वः यज्ञस्य मात्रां वि मिमीते) कोई पुरोहित यज्ञकर्मके विभिन्न कार्योंका विशेष प्रकारसे अनुष्ठान करता है ॥ ११ ॥

[७२]

[७६८] (वयं देवानां जाना विपन्यया प्र वोचाम) हम देवों, आदित्योंके जन्मोंका स्पष्टरूपसे उत्तम रीतिसे वर्णन करते हैं । (यः उक्थेषु शस्यमानेषु उत्तरे युगे पश्यात्) जो देवोंका संघ पहलेसे वेदमंत्रोंके स्तोत्रोंसे यज्ञानुष्ठानमें स्तपित होता है, वह आनेवाले कालमें स्तोताका साक्षात् दर्शन करेगा ॥ १ ॥

[७६९] (ब्रह्मणः पतिः एता कर्मारः इव सं अधमत्) बृहस्पति या अदितिने लुहारके समान इन देवोंको उत्पन्न किया । (देवानां पूर्व्ये युगे असतः सत् अजायत) देवोंके पूर्व युगमें– आदि सृष्टिमें असत्से सत् उत्पन्न हुआ (अव्यक्त ब्रह्मसे व्यक्त देवादि उत्पन्न हुए) ॥ २ ॥

[७७०] (देवानां प्रथमे युगे असतः सत् अजायत) देवोंके पूर्व युगमें असत्से सत् उत्पन्न हुआ । (तत् अनु आशाः अजायन्त) इसके अनन्तर दिशाएं उत्पन्न हुई और (तत् परि उत्तानपदः) उसके पश्चात् वृक्ष उत्पन्न हुए ॥ ३ ॥

भूर्जज्ञ उत्तानपदो भुव आशा अजायन्त ।
अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्वदितिः परि ४
अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव ।
तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः ५ [१]

यद्देवा अदः सलिले सुसंरब्धा अतिष्ठत ।
अत्रा वो नृत्यतामिव तीव्रो रेणुरपायत ६
यद्देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत ।
अत्रा समुद्र आ गूळ्हमा सूर्यमजभर्तन ७
अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्वस्परि ।
देवाँ उप प्रैत् सप्तभिः परा मार्ताण्डमास्यत् ८
सप्तभिः पुत्रैरदितिरुप प्रैत् पूर्व्यं युगम् ।
प्रजायै मृत्यवे त्वत् पुनर्मार्ताण्डमाभरत् ९ [२] (७७६)

---

[७७१] (भूः उत्तानपदः जज्ञे) वृक्षोंसे पृथिवी उत्पन्न हुई और (भुवः आशाः अजायन्त) पृथिवीसे दिशाएं उत्पन्न हुईं ! (अदितेः दक्षः अजायत) अदितिसे दक्ष उत्पन्न हुआ और (दक्षात् परि अदितिः) दक्षसे अदिति उत्पन्न हुई ॥ ४ ॥

[७७२] हे (दक्ष) दक्ष ! (तव या दुहिता अदितिः अजनिष्ट हि) तेरी जो पुत्री थी वही अदिति थी और उसने देवोंको जन्म दिया । (तां भद्राः अमृतबन्धवः देवाः अन्वजायन्त) उससे पूजनीय और अमर देव उत्पन्न हुए ॥ ५ ॥

[७७३] (यदा देवाः अदः सलिले सुसंरब्धाः अतिष्ठत) जिस समय, हे देवो, तुम इस जलमें उत्तमरीतिसे स्थित हुए, (अत्र नृत्यतां इव वः) तब नाचते हुए, मोद करते हुए तुम्हारा (तीव्रः रेणुः अपायत) दुःसह अंशभूत एक- आदित्य ऊपर आया ॥ ६ ॥

[७७४] (यत् देवाः यतयः यथा भुवनानि अपिन्वत) जिस समय, हे देवो, जैसे मेघ वृष्टिसे भूमिको पूरित करते हैं, उसीप्रकार तुमने अपने तेजोंसे सारे जगत्को व्याप्त किया ! (अत्र समुद्रे आ गूळ्हं सूर्यं आ अजभर्तन) उस समय जलमें आकाशमें सुप्त सूर्यको प्रातःकालमें उदित होनेके लिये तुमने आवाहित किया ॥ ७ ॥

[७७५] (ये अदितेः तन्वः परि अष्टौ पुत्रासः जाताः) जो अदितिके शरीरसे आठ पुत्र- मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, अंश, भग, विवस्वान् और आदित्य- उत्पन्न हुए; (सप्तभिः देवान् उप प्रैत्) सात पुत्रोंके साथ वह देवोंके पास गई और (मार्ताण्डं परा आस्यत्) आठवा पुत्र सूर्यको आकाशमें छोड दिया ॥ ८ ॥

[७७६] (सप्तभिः पुत्रैः अदितिः पूर्व्यं युगं उप प्रैत्) सातों पुत्रोंके साथ अदिति पूर्वकालमें चली गई; और (प्रजायै मृत्यवे त्वत् मार्ताण्डं पुनः आभरत्) प्राणियोंके जन्म-मरणके लिये ही फिर सूर्यको आकाशमें धारण करती है ॥ ९ ॥

(७३)

११ गौरिवीतिः शाक्त्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय मन्द्र ओजिष्ठो बहुलाभिमानः ।
अवर्धन्निन्द्रं मरुतश्चिदत्र माता यद्वीरं दधनद्धनिष्ठा १
द्रुहो निषत्ता पृशनी चिदेवैः पुरू शंसेन वावृधुष्ट इन्द्रम् ।
अभीवृतेव ता महापदेन ध्वान्तात् प्रपित्वादुदरन्त गर्भाः २
ऋष्वा ते पादा प्र यज्जिगास्यवर्धन् वाजा उत ये चिदत्र ।
त्वमिन्द्र सालावृकान् त्सहस्रमासन् दधिषे अश्विना ववृत्याः ३ (७७९)
समना तूर्णिरुप यासि यज्ञमा नासत्या सख्याय वक्षि ।
वसाव्यामिन्द्र धारयः सहस्राऽश्विना शूर ददतुर्मघानि ४
मन्दमान ऋतादधि प्रजायै सखिभिरिन्द्र इषिरेभिरर्थम् ।
आभिर्हि माया उप दस्युमागान्मिहः प्र तम्रा अवपत् तमांसि ५ [२]

---

[७३]

[७७७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सहसे तुराय उग्रः जनिष्ठाः) तू बल पराक्रमके लिये और शत्रुओंका नाश करनेके लिये प्रचंड शक्तिशाली होकर उत्पन्न हुआ है; तू (मन्द्रः ओजिष्ठः बहुलाभिमानः) स्तुत्य, तेजस्वी और अत्यंत अभिमानी है; इसप्रकार (अत्र इन्द्रं मरुतः चित् अवर्धन्) वृत्रवधके समय मरुतोंने भी इन्द्रकी स्तुतियुक्त प्रशंसा की; (यत् धनिष्ठा वीरं दधनत्) जिस समय गर्भधारयित्री इन्द्रमाताने इन्द्रको जन्म दिया, तब देव उत्साहित हुए ॥ १ ॥

[७७८] (द्रुहः पृशनी चित् निषत्ता) शत्रुओंके द्रोही इन्द्रके पास नियमबद्ध सेना भी बैठी हुई है, (एवैः इन्द्रं ते पुरू शंसेन ववृधुः) गमन शील मरुतोंके साथ रहे हुए इन्द्रको मरुतोंने अनेक स्तुतियुक्त वचनोंसे अत्यंत उत्साहित किया ! (महापदेन अभीवृताः इव) जैसे विशाल गोष्ठके बीच आच्छादित गायें रहती हैं और आच्छादन निकलते ही बाहर निकलती हैं, वैसे ही (ता ध्वान्तात् प्रपित्वात् गर्भाः उदरन्त) गर्भ या वृष्टिजल व्यापक अन्धकार दूर होते ही स्वयं बाहर आ गये ॥ २ ॥

[७७९] हे इन्द्र ! (ते पादा ऋष्वा) तेरे दोनों चरण महान् हैं, तू (यत् जिगासि वाजाः अवर्धन्) जब आगे चलने लगता है, तब ऋभु अत्यंत उत्साहित होते हैं; (उत ये चित्) और जो भी दूसरे देव साथमें हैं वे भी उत्साहपूर्ण होते हैं। हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं सहस्रं सालावृकान् आसन् दधिषे) तू सहस्रों वृकोंको मुखमें धारण करता है; (अश्विना आ ववृत्याः) और अश्विद्वयोंको भी स्फूर्तियुक्त करता है ॥ ३ ॥

[७८०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (समना तूर्णिः यज्ञं उप यासि) संग्राम कालमें शीघ्रता होनेपरभी तू यज्ञमें जाता है; (नासत्या सख्याय आ वक्षि) उस समय तू अश्विद्वयके साथ मित्रता रखता है ! (वसाव्यां सहस्रां धारयः) हमारे लिये तू सहस्रों धनोंको धारण करता है; हे (शूर) शूर ! (अश्विना मघानि ददतुः) तेरे अनुचर अश्विद्वय भी हमें धन प्राप्त करें ॥ ४ ॥

[७८१] (इन्द्रः ऋतात् अधि इषिरेभिः सखिभिः) इन्द्र यज्ञमें गमनशील मित्र मरुतोंके साथ (मन्दमानः प्रजायै अर्थं) प्रसन्न होकर यजमानको धन देता है। वह (आभिः मायाः दस्युं उप आगात्) यजमानके लिये दस्युकी मायाको विनष्ट करता है; (तम्राः मिहः तमांसि प्र अवपत्) उसने दस्युने निर्माण किया अवर्षण और अन्धकारको नष्ट कर, वृष्टि बरसायी ॥ ५ ॥

सनामाना चिद्ध्वसयो न्यस्मा अवाहन्निन्द्र उषसो यथानः ।
ऋष्वैरगच्छः सखिभिर्निकामैः साकं प्रतिष्ठा हृद्या जघन्थ ६
त्वं जघन्थ नमुचिं मखस्युं दासं कृण्वान ऋषये विमायम् ।
त्वं चकर्थ मनवे स्योनान् पथो देवत्राञ्जसेव यानान् ७
त्वमेतानि पप्रिषे वि नामे-शान इन्द्र दधिषे गभस्तौ ।
अनु त्वा देवाः शवसा मद-न्त्युपरिबुध्नान् वनिनश्चकर्थ ८
चक्रं यदस्याप्स्वा निषत्त-मुतो तदस्मै मध्विच्चच्छद्यात् ।
पृथिव्यामतिषितं यदूधः पयो गोष्वदधा ओषधीषु ९
अश्वादियायेति यद्वद-न्त्योजसो जातमुत मन्य एनम् ।
मन्योरियाय हर्म्येषु तस्थौ यतः प्रजज्ञ इन्द्रो अस्य वेद १०

---

[७८२] (इन्द्रः चित् सनामाना नि ध्वसयः) इन्द्र सब शत्रुओंको समानरूपसे नष्ट करता है; (यथा उपसः अनः अवाहन्) जिस प्रकार इन्द्रने उषाके शकटको नष्ट किया, उसी प्रकार उसने वृत्रको मारा। (ऋष्वैः निकामैः सखिभिः साकं अगच्छः) हे इन्द्र ! तू अपने तेजस्वी और पराक्रमयुक्त मित्रोंके मरुतोंके साथ वृत्रका वध करनेके लिए गया (प्रतिष्ठा हृद्या जघन्थ) आकर तुमने शत्रुओंके बलवान् और सुन्दर शरीरोंको विध्वस्त किया ॥ ६ ॥

[७८३] हे इन्द्र ! (त्वं मखस्युं नमुचिं जघन्थ) तुमने ऋषियोंके यज्ञमें विघ्न निर्माण करनेवाले वा तुम्हारा धन चाहनेवाले नमुचिको मार दिया। (दासं ऋषये विमायं कृण्वानः) विघातक नमुचि असुरको ऋषियोंके हितके लिये छल कपटसे रहित किया। (त्वं देवत्रा मनवे अञ्जसा इव यानान् पथः स्योनान् चकर्थ) उसी प्रकार तुमने देवोंके बीच सामान्य मनुष्यके लिये सुखदायक और सरल मार्गोंको प्रस्तुत कर दिया ॥ ७ ॥

[७८४] हे इन्द्र ! (त्वं एतानि नाम वि प्रप्रिषे) तू इस जगत्को अनेक जलोंसे परिपूर्ण करता है। हे (इन्द्र) सामर्थ्यवान् इन्द्र ! तू (ईशानः गभस्तौ दधिषे) सबका स्वामी है; तू हाथमें वज्र और धारण करता है। (देवाः त्वा शवसा अनु मदन्ति) सब देव बलवान् तेरी स्तुति करते हैं; (वनिनः उपरिबुध्नान् चकर्थ) वह तू उदकपूर्ण मेघोंको अधोमुख करता है ॥ ८ ॥

[७८५] (यत् अस्य चक्रं अप्सु आ निषत्तम्) जो इसका चक्र जलोंमें स्थापित है, (उतो तत् मधु इत् अस्मै चच्छद्यात्) और वही जल ही इसको आच्छादित करता है। (यत् पृथिव्यां ऊधः अतिषितम्) जो तेरा पृथ्वीपर जल वा दूध रखा हुआ है, वह तू (गोषु ओषधीषु पयः अदधाः) गायोंमें और ओषधियोंमें सुरक्षित रख ॥९॥

[७८६] (यत् वदन्ति अश्वात् इयाय इति) जो कुछ विद्वान् लोग कहते हैं कि इन्द्रकी उत्पत्ति आदित्यसेही हुई है, (उत एनं ओजसः जातं मन्ये) तथापि मैं तो इसको बलसेही उत्पन्न हुआ मानता हूं। (मन्योः इयाय) अथवा यह क्रोधसे उत्पन्न हुआ ऐसे मानते हैं; (हर्म्येषु तस्थौ) इसलिये ही वह शत्रुओंसे युद्ध करनेके लिये सदैव स्थित होता है; (यतः प्रजज्ञे इन्द्रः अस्य वेद) वह इन्द्र कहांसे उत्पन्न हुआ है, यह वही जानता है, दूसरा कोई भी नहीं जान सकता ॥ १० ॥

वयः सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः ।
अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्य१स्मान् निधयेव बद्धान् ११ [४] (७८७)

(७४)

६ गौरिवीतिः शाक्त्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

वसूनां वा चर्कृष इयक्षन् धिया वा यज्ञैर्वा रोदस्योः ।
अर्वन्तो वा ये रयिमन्तः सातौ वनुं वा ये सुश्रुणं सुश्रुतो धुः १
हव एषामसुरो नक्षत द्यां श्रवस्यता मनसा निंसत क्षाम् ।
चक्षाणा यत्र सुविताय देवा द्यौर्न वारेभिः कृणवन्त स्वैः २
इयमेषाममृतानां गीः सर्वताता ये कृपणन्त रत्नम् ।
धियं च यज्ञं च साधन्तस्ते नो धान्तु वसव्य१मसामि ३

---

[७८७] (वयः सुपर्णाः इन्द्रं उप सेदुः) गमनशील और सुखदायक सूर्यके किरण इन्द्रके पास प्राप्त होते हैं; (प्रियमेधाः ऋषयः नाधमानाः) वे यज्ञप्रिय और द्रष्टा ऋषियोंके समान याचना-प्रार्थना करनेवाली थी । (ध्वान्तम् अप ऊर्णुहि) हे इन्द्र प्रभो । तू हमारे अन्धकारको दूर कर; (चक्षुः पूर्धि) नेत्रको प्रकाशसे भर दे; (निधया इव बद्धान् अस्मान् मुमुग्धि) पाशमें बद्ध जैसे हमको बन्धनसे मुक्त कर ॥ ११ ॥

[७४]

[७८८] (इक्षयन् वसूनां वा धिया वा) धनोंका दान करनेकी इच्छावाले इन्द्र, द्रव्यप्राप्तिके लिये कर्मद्वारा वा (यज्ञैः वा रोदस्योः चर्कृषे) यज्ञोंसे द्यावापृथिवीपर निवास करनेवाले देवो और मनुष्योंके द्वारा बुलाया जाता है । (सातौ ये अर्वन्तः वा रयिमन्तः) युद्धमें जीतनेके लिये जो वेगवान् और धनयुक्त होते हैं, उन्हींसे भी बुलाया जाता है; (ये वनु धुः वा सुश्रुणं सुश्रुतः) और शत्रुओंकी हिंसा करनेवाले जो सुप्रसिद्ध होते हैं, उनसे भी इन्द्रको बुलाया जाता है ॥ १ ॥

[७८९] (एषां हवः असुरः द्यां नक्षत) इन अङ्गिरा लोगोंके इन्द्र प्रेरक आव्हानने आकाशको पूर्ण कर दिया । (श्रवस्यता मनसा क्षां निंसत) इन्द्रको और अन्नकी इच्छा करनेवाले देवोंने मनसे पृथिवीको प्राप्त किया । (यत्र चक्षाणाः देवाः सुविताय) पृथिवीपर पणियोंद्वारा अपहृत गायोंको देखते हुए देवोंने, अपने हितके लिये (द्यौः न वारेभिः स्वैः कृणवन्त) आकाशमें आदित्यके समान अपने श्रेष्ठ तेजसे प्रकाश किया ॥ २ ॥

[७९०] (इयं एषां अमृतानां गीः) यह इन अमर देवोंकी स्तुति की जाती है । (ये सर्वताता रत्नं कृपणन्त) जो देव सबका कल्याण करनेवाले यज्ञमें उत्तम धन देते हैं । (धियं च यज्ञं च साधन्तः) और वे हमारी स्तुति और यज्ञकी सिद्धि करते हुए, (ते नः वसव्यं असामि धान्तु) हमें विपुल और असाधारण धन दें ॥ ३ ॥

आ तत् त इन्द्रायवः पनन्ता ऽभि य ऊर्वं गोमन्तं तितृत्सान् ।
सकृत्स्वं१ ये पुरुपुत्रां महीं सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन् ४ (७९१)
शचीव इन्द्रमवसे कृणुध्व मनानतं दमयन्तं पृतन्यून् ।
ऋभुक्षणं मघवानं सुवृक्तिं भर्ता यो वज्रं नर्यं पुरुक्षुः ५
यद्वावान पुरुतमं पुराषा ळा वृत्रहेन्द्रो नामान्यप्राः ।
अचेति प्रासहस्पतिस्तुविष्मान् यदीमुश्मसि कर्तवे करत् तत् ६ [५] (७९३)

(७५)

१ सिन्धुक्षित् प्रैयमेधः । नद्यः । जगती ।

प्र सु व आपो महिमानमुत्तमं कारुर्वोचाति सदने विवस्वतः ।
प्र सप्तसप्त त्रेधा हि चक्रमुः प्र सृत्वरीणामति सिन्धुरोजसा १

[७९१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते आयवः तत् पनन्त आ) वे मनुष्य अङ्गिरस तेरी स्तुति करते हैं । (ये गोमन्तं ऊर्वं तितृत्सान्) जो शत्रुओंसे अपहृत गोधनको प्राप्त करते हैं, वे उनसे समृद्ध अपनी खेतीकी फसलको काट लेना चाहते हैं, (ये सकृत्-स्वं पुरुपुत्रां) जो एक ही बार अनेक प्रकारके धान्योंको, अनेक ओषधि वनस्पतिरूप पुत्रोंको, (सहस्रधारां बृहतीं महीं दुदुक्षन्) हजारों रीतिसे उत्पादक विस्तृत भूमिको दोहना चाहते हैं ॥ ४ ॥

[७९२] हे (शचीवः) कर्मनिष्ठ यजमानो ! (अनानतं पृतन्यून् दमयन्तं) किसीके आगे न झुकनेवाले, युद्ध करनेकी इच्छा करनेवाले शत्रुका दमन करनेवाले (ऋभुक्षणं मघवानं सुवृक्तिं) महान् धनवान् सुंदर स्तुतिवाले और (यः पुरुक्षुः नर्यं वज्रं भर्ता) जो अनेक विद्याओंका ज्ञाता है, तथा जिसने मनुष्योंके हितके लिये वज्र धारण किया है, उस (इन्द्रं अवसे कृणुध्वम्) इन्द्र देवको स्वसंरक्षणके लिये बुलाओ ॥ ५ ॥

[७९३] (यत् इन्द्रः पुरुतमं ववान) जिस समय इन्द्रने अत्यंत प्रवृद्ध वृत्रका वध किया, उस समय (पुराषाट् वृत्रहा नामानि अप्राः) शत्रु-पुरियोंके ध्वंसक, वृत्रहन्ता इन्द्रने जलोंसे पृथिवीको पूर्ण किया । वह (प्रासहः पतिः तुविष्मान् अचेति) शत्रुओंको पराजित करनेवाला विजेता, सबका स्वामी और अत्यंत बलशाली करके सब लोगोंसे समझा गया; वह (यदीं उश्मसि तत् करत्) जो कुछ हम चाहते हैं, वह सब पूर्ण करता है ॥ ६ ॥

[७५]

[७९४] हे (आपः) जल ! (वः उत्तमं महिमानं कारुः) तुम्हारे उत्कृष्टतम महत्त्वपूर्ण स्तोत्र स्तुतिकर्ता मैं (विवस्वतः सदने सु प्र वोचाति) सेवक यजमानके गृहमें उत्तम रीतिसे कहा करता हूं । नदियां (सप्तसप्त त्रेधा हि प्र चक्रमुः) सात सात करके तीन प्रकार- (पृथिवी, आकाश और द्युलोक) से बहती हैं। (सृत्वरीणां सिन्धुः ओजसा अति प्र) इन बहनेवाली नदियोंमें सिन्धु नामकी नदी स्वबलसे सबोंमें श्रेष्ठ है ॥ १ ॥

प्र तेऽरदद्वरुणो यातवे पथः सिन्धो यद्वाजाँ अभ्यद्रवस्त्वम् ।
भूम्या अधि प्रवता यासि सानुना यदेषामग्रं जगतामिरज्यसि २
दिवि स्वनो यतते भूम्योपर्यनन्तं शुष्ममुदियर्ति भानुना ।
अभ्रादिव प्र स्तनयन्ति वृष्टयः सिन्धुर्यदेति वृषभो न रोरुवत् ३
अभि त्वा सिन्धो शिशुमिन्न मातरो वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः ।
राजेव युध्वा नयसि त्वमित् सिचौ यदासामग्रं प्रवतामिनक्षसि ४
इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या ।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ५ [६]

---

[७९५] हे (सिन्धो) सिन्धु ! (यत् वाजान् त्वं अभ्यद्रवः) जिस समय तू शस्यशाली प्रदेशकी ओर चली, (ते यातवे वरुणः पथः प्र अरदत्) उस समय वरुणने तेरे गमनके लिये विस्तृत मार्ग खोदकर बना दिये। (भूम्याः अधि सानुना प्रवता यासि) तू भूमिके ऊपर उत्तम मार्गसे जाती है; (यत् एषां जगतां अग्रं इरज्यसि) जिस कारण तू इन जंगम प्राणियोंके मुख्य जीवनका आधार होती है ॥ २ ॥

[७९६] (भूम्या उपरि स्वनः दिवि यतते) भूमि ऊपर गर्जन करनेवाला तेरा शब्द आकाशको व्यापता है; (अनन्तं शुष्मं भानुना उदयर्ति) यह अत्यंत वेगसे और दीप्त लहरीके साथ जाती है। (अभ्रात् इव वृष्टयः प्र स्तनयन्ति) अनन्तर जैसे मेघसे वृष्टियां खूब गर्जनके साथ बरसती हैं और (यत् सिन्धुः वृषभः न रोरुवत् एति) जब सिन्धुनदी वेगसे वृषभके समान प्रचंड शब्द करती हुई आती है, तब वह आकाशसे गर्जती हुई नीचे आती है, ऐसेही विदित होता है ॥ ३ ॥

[७९७] हे (सिन्धो) सिन्धो ! (मातरः शिशुं इत् न) जैसे माताएं अपने पुत्रके पास प्रेमसे जाती हैं; और (पयसा इव धेनवः) नवप्रसूत दुग्धवती गायें अपने बछडेके पास जाती हैं; (वाश्राः अभि अर्षन्ति) वैसे ही शब्द करती हुई अन्य नदियां तेरी ओर ही आती हैं। (युध्वा राजा इव त्वं इत् सिचौ नयसि) युद्धशील राजाके समान तू ही सेचन करनेवाली नदियोंको लेकर जाती है; (यत् आसां प्रवताम् अग्रे इनक्षसि) जब इन आगे बढनेवालीके आगे तुम जाती हो ॥ ४ ॥

[७९८] हे (गंगे) गंगे ! हे (यमुने) यमुने ! हे (सरस्वति) सरस्वति ! हे (शुतुद्रि) शुतुद्रि ! हे (परुष्णि) परुष्णि ! हे (असिक्न्या मरुद्वृधे)! असिक्निके साथ मरुद्वृधे ! हे (वितस्तया सुषोमया आर्जीकीये) वितस्ता, सुषोमा इनके साथ आर्जीकीया ! तू (मे इमं स्तोमं आ सचत शृणुहि) और ये सात नदियां हमारे इस स्तोत्रका स्वीकार कर सुनो ॥ ५ ॥

तृष्टामया प्रथमं यातवे सजूः सुसर्त्वा रसया श्वेत्या त्या ।
त्वं सिन्धो कुभया गोमतीं क्रुमुं मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे ६
ऋजीत्येनी रुशती महित्वा परि ज्रयांसि भरते रजांसि ।
अदब्धा सिन्धुरपसामपस्तमा ऽश्वा न चित्रा वपुषीव दर्शता ७
स्वश्वा सिन्धुः सुरथा सुवासा हिरण्ययी सुकृता वाजिनीवती ।
ऊर्णावती युवतिः सीलमाव त्युताधि वस्ते सुभगा मधुवृधम् ८
सुखं रथं युयुजे सिन्धुरश्विनं तेन वाजं सनिषदस्मिन्नाजौ ।
महान् ह्यस्य महिमा पनस्यते ऽदब्धस्य स्वयशसो विरप्शिनः ९ [७] (८०२)

---

[७९९] हे (सिन्धो) सिन्धु ! (त्वं क्रुमुं गोमतीं यातवे प्रथमं तुष्टामया सजूः) तू गमनशीला गोमती नदीको मिलनेके लिये पहले तुष्टामा नदीके साथ चली। अनन्तर (सुसर्त्वा रसया श्वेतात्या कुभया मेहत्न्वा) तू सुसर्तू, रसा, उस श्वेती, कुभा और मेहत्नु नदियोंके साथ मिलाती हो। (याभिः सरथं ईयसे) फिर तू इनके साथ एकही रथपर आरूढ होकर चलती हो– अर्थात् इनके साथ मिलकर बहती हो ॥ ६ ॥

[८००] (ऋजीती एनी रुशती ज्रयांसि रजांसि परि भरते) सरलगामिनी, श्वेतवर्णा और प्रदीप्ता सिन्धु नदी अत्यंत वेगवान् जलोंसे बहती है। (अदब्धा सिन्धुः अपसां अपस्तमा) अदम्य सिन्धु नदियोंमें सबसे वेगवती है। (अश्वा न चित्रा वपुषी इव दर्शता) यह आश्चर्यकारक वेगशाली घोडोके समान है और रूपवती स्त्रीके समान देखनेमें अत्यंत सुंदर है ॥ ७ ॥

[८०१] वह (सिन्धुः सु-अश्वा, सुरथा, सुवासाः, हिरण्ययी) सिन्धु उत्तम अश्वो, सुंदर रथ, शोभन वस्त्र, सुवर्णमय अलंकार, (सुकृता, वाजिनीवती, ऊर्णावती युवतिः) पुण्यशीला, अन्न और पशुलोमवाली सुंदर नित्य तरुणी और (सीलमावती) नाना तिनकों वाली है। (उत सुभगा मधुवृधं अधि वस्ते) और वह उत्तम ऐश्वर्यवती सिन्धु मधुवर्धक पुष्प-वृक्षोंसे आच्छादित है ॥ ८ ॥

[८०२] (सिन्धुः सुखं अश्विनं रथं युयुजे) सिन्धु सुखकर और अश्ववाले रथको जोतती है। (तेन वाजं सनिषद्) उस रथसे वह अन्नादि दे ! (अस्मिन् आजौ अस्य महान् महिमा हि पनस्यते) इस संग्राममें–यज्ञमें सिन्धुके रथकी बडी भारी महिमा गायी जाती है। (अदब्धस्य स्वयशसः विरप्शिनः) सिन्धुका रथ अहिंसित, कीर्तिमान् और महान् है ॥ ९ ॥

×

(७६)

८ सर्प ऐरावतो जरत्कर्णः। ग्रावाणः । जगती।

आ व ऋञ्जस ऊर्जां व्युष्टिष्विन्द्रं मरुतो रोदसी अनक्तन ।
उभे यथा नो अहनी सचाभुवा सदःसदो वरिवस्यात उद्भिदा १
तदु श्रेष्ठं सवनं सुनोतनाऽत्यो न हस्तयतो अद्रिः सोतरि ।
विदद्ध्यर्यो अभिभूति पौंस्यं महो राये चित् तरुते यदर्वतः २
तदिद्ध्यस्य सवनं विवेरपो यथा पुरा मनवे गातुमश्रेत् ।
गोअर्णसि त्वाष्ट्रे अश्वनिर्णिजि प्रेमध्वरेष्वध्वराँ अशिश्रयुः ३
अप हत रक्षसो भङ्गुरावतः स्कभायत निर्ऋतिं सेधतामतिम् ।
आ नो रयिं सर्ववीरं सुनोतन देवाव्यं भरत श्लोकमद्रयः ४
दिवश्चिदा वोऽमवत्तरेभ्यो विभ्वना चिदाश्वपस्तरेभ्यः ।
वायोश्चिदा सोमरभस्तरेभ्यो ऽग्नेश्चिदर्च पितुकृत्तरेभ्यः ५ [८]

---

[७६]

[८०३] हे सोम पीसनेवाले पत्थरो ! (वः ऊर्जां व्युष्टिषु आ ऋञ्जसे) तुम्हें अन्नवाली उषाके आते ही– उषः-कालके समयमें मैं भूषित करता हूं । तुम सोम देकर (इन्द्रं मरुतः रोदसी अनक्तन) इन्द्र, मरुत् और द्यावापृथिवीको व्यक्त करते हैं । (नः उभे सचाभुवा अहनी सदः सदः वरिवस्यातः उद्भिदा) हमें रात–दिन दोनों कालोंमें एक साथ रहनेवाले द्यावापृथिवी प्रत्येकके घरमें सेवा ग्रहण कर उत्तम अन्न आदि धनोंसे पूर्ण करें ॥ १ ॥

[८०४] हे पत्थरो ! तुम (तत् उ श्रेष्ठं सवनं सुनोतन) उसी श्रेष्ठ सोमको मथकर प्रस्तुत करो; (अद्रिः हस्तयतः अत्यः न सोतरि) अभिषव पत्थर हाथोंसे पकडे जानेपर घोडेके समान अधीन हो जाता है । (अर्यः अभिभूति पौंस्यं विदत् हि) प्रस्तरसे सोमको निचोडनेवाला यजमान शत्रुओंको हरानेवाला बल प्राप्त करता है । (महः राये चित् यत् अर्वतः तरुते) और बहुत धन प्राप्त करानेवाले घोडे भी यह सोम देता है ॥ २ ॥

[८०५] (यथा पुरा मनवे गातुं अश्रेत्) जिस प्रकार प्राचीन समयमें उस सोमने मनूको उत्कर्षप्रत पहुंचाया था, (इत् अस्य तत् सवनं अपः विवेः) उसी प्रकार इस प्रस्तरका वह सोमका निचोडना हमारे सोमयागका कर्म व्याप ले । (गो अर्णसि अश्वनिर्णिजि त्वाष्ट्रे) गोरूपमें और अश्वरूपमें स्थित त्वष्ट् पुत्रोंके युद्धमें (ईम् अध्वरान् अध्वरेषु अशिश्रयुः) इन अहिंसक प्रस्तरोंकाही आश्रय लिया जाता है, अर्थात् यज्ञमें सोमरसका उपयोग किया जाता है ॥ ३ ॥

[८०६] हे (अद्रयः) पत्थरो ! तुम (भङ्गुरावतः रक्षसः अप हत) विध्वंसक राक्षसोंको विनिष्ट करो । (निर्ऋतिं स्कभायत) पाप देवता निर्ऋति को दूर करो । (अमतिं सेधत) दुर्बुद्धिको हटाओ । (नः सर्व-वीरं रयिं आ सुनोतन) हमें सब प्रकारके पुत्रों और वीरोंसे युक्त धन दो । और (देवाव्यं श्लोकं भरत) देवोंको प्रसन्न करनेवाली कीर्ति–यशको प्राप्त करो ॥ ४ ॥

[८०७] (दिवः चित् अमवत्तरेभ्यः विभ्वना चित् आश्वपस्तरेभ्यः) जो सूर्यसे भी अधिक बलवान्–तेजस्वी, सुधन्वाके पुत्र विभुसे भी अधिक शीघ्र–कर्मा, (वायोः चित् सोमरभस्तरेभ्यः) वायुसे भी अधिक सोमरस निचोडनेमें अधिक वेगशाली और (अग्निः चित् पितुकृत्तरेभ्यः) अग्निसे भी अधिक अन्नदाता हैं, इस तरहके पत्थरोंकी (वः आ अर्च) देवोंकी प्रसन्नताके लिये पूजा करो ॥ ५ ॥

भुरन्तु नो यशसः सोत्वन्धसो ग्रावाणो वाचा दिविता दिवित्मता ।
नरो यत्र दुहते काम्यं मध्वाघोषयन्तो अभितो मिथस्तुरः ६
सुन्वन्ति सोमं रथिरासो अद्रयो निरस्य रसं गविषो दुहन्ति ते ।
दुहन्त्यूधरुपसेचनाय कं नरो हव्या न मर्जयन्त आसभिः ७
एते नरः स्वपसो अभूतन य इन्द्राय सुनुथ सोममद्रयः ।
वामंवामं वो दिव्याय धाम्ने वसुवसु वः पार्थिवाय सुन्वते ८ [९] (८१०)

(७७)

८ स्यूमरश्मिर्भार्गवः । मरुतः । त्रिष्टुप्, ५ जगती ।

अभ्रप्रुषो न वाचा प्रुषा वसु हविष्मन्तो न यज्ञा विजानुषः ।
सुमारुतं न ब्रह्माणमर्हसे गणमस्तोष्येषां न शोभसे १

---

[८०८] (यशसः ग्रावाणः नः अन्धसः सोतु भुरन्तु) सोम पीसनेवाले यशस्वी पत्थर हमारे लिये सोमका उत्तम रस सम्पादित करें । (दिवित्मता वाचा दिविता) वे तेजस्वी स्तोत्रसे उज्ज्वल सोमयागमें हमें स्थापित करें, वा हमें तेजस्वी करें । (यत्र नरः अभितः आघोषयन्तः मिथस्तुरः काम्यं मधु दुहते) जिसमें ऋत्विक् लोग सब ओरसे आघोषित करते स्तोत्रपाठ करते हुए और परस्पर शीघ्रता करते अभिलषित सोमरस निकालते हैं ॥ ६ ॥

[८०९] (रथिरासः अद्रयः सोमं सुन्वन्ति) पीसनेवाले वे पत्थर सोमके रसको निकालते हैं । (ते अस्य रसं निः दुहन्ति) वे सोमके रसको निचोडते हैं । (गविषः उपसेचनाय ऊधः दुहन्ति) वे स्तुतिकी इच्छा करते हुए अग्निके सेचनके लिये सोम रस दूहते हैं । (नरः हव्या न आसभिः मर्जयन्ते) ऋत्विक् लोग मुखसे शेष सोमका पान करके शुद्धि करते हैं ॥ ७ ॥

[८१०] हे (नरः) नेताओ-ऋत्विजो ! हे (अद्रयः) पत्थरो ! (एते स्वपसः अभूतन) तुम उत्तम श्रेष्ठ कर्म करनेवाले होओ । (ये इन्द्राय सोमं सुनुथ) जो तुम इन्द्रके लिये सोमके रसको निचोडते हो, (वः वामं वामं दिव्याय धाम्ने) वे तुम, जो तुम्हारे पास सबसे श्रेष्ठ धन है, वह दिव्य लोक प्राप्त करनेके लिये उपस्थित करो । और (वः वसुवसु पार्थिवाय सुन्वते) तुम, जो तुम्हारे पास निवास योग्य धन होगा, उसे यजमानको दो ॥ ८ ॥

[७७]

[८११] (अभ्रप्रुषः न वाचा वसु प्रुष) मेघोंसे झरनेवाले जल बिन्दुओंके समान स्तुतिसे प्रसन्न मरुत् धन प्रदान करते हैं । (हविष्मन्तः न यज्ञाः विजानुषः) हविसे युक्त यज्ञके समान जगत्‌की उत्पत्तिके कारण मरुत् हैं । (एषां ब्रह्माणं सुमारुतं गणं अर्हसे न अस्तोषि) इन महान् शोभन मरुत् गणकी पूजा वास्तवमें मैंने नहीं की है; (शोभसे न) शोभाके लिये भी मैंने स्तुति नहीं की; इसलिये अभी मैं नये स्तोत्रसे स्तुति करता हूं ॥ १ ॥

श्रिये मर्यासो अञ्जीँरकृण्वत सुमारुतं न पूर्वीरति क्षपः ।
दिवस्पुत्रास एता न येतिर आदित्यासस्ते अक्रा न वावृधुः २
प्र ये दिवः पृथिव्या न बर्हणा त्मना रिरिच्रे अभ्रान्न सूर्यः ।
पाजस्वन्तो न वीराः पनस्यवो रिशादसो न मर्या अभिद्यवः ३ (८१३)
युष्माकं बुध्ने अपां न यामनि विथुर्यति न मही श्रथर्यति ।
विश्वप्सुर्यज्ञो अर्वागयं सु वः प्रयस्वन्तो न सत्राच आ गत ४
यूयं धूर्षु प्रयुजो न रश्मिभि-र्ज्योतिष्मन्तो न भासा व्युष्टिषु ।
श्येनासो न स्वयशसो रिशादसः प्रवासो न प्रसितासः परिप्रुषः ५ [१०]
प्र यद्वहध्वे मरुतः पराकाद् यूयं महः संवरणस्य वस्वः ।
विदानासो वसवो राध्यस्या-ऽऽराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोत ६

---

[८१२] (मर्यासः श्रिये अञ्जीन् अकृण्वत) पहले मरुत् मरण धर्मा–मनुष्य थे, अनन्तर पुण्यके द्वारा वे देवता बने; वे केवल शोभाके लिये ही अलंकार धारण करते हैं। (समारुतं पूर्वीः क्षपः न अति) मरुतोंके बल की एकत्र हुई अनेक सेनायें पराभव नहीं कर सकती। (दिवः पुत्रासः एताः न येतिरे) ये द्युलोकके गमनशील पुत्र आगे नहीं जाते हैं; (ते आदित्यासः अक्राः न वावृधुः) ये अदितिके पुत्र आक्रमणशील होनेपर भी आगे नहीं बढते हैं। हमने इनकी स्तुति नहीं की इसलिये यह हुआ है ॥ २ ॥

[८१३] (ये दिवः पृथिव्या न बर्हणा त्मना रिरिच्रे) जो द्युलोक और पृथिवीसे भी अपने महान् सामर्थ्यवान् आत्मासे अधिक महान् हैं; (सूर्यः अभ्रात् न) जैसे सूर्य अन्तरिक्षसेही महान् है। वे (पाजस्वन्तः न वीराः पनस्यवः) बलवान् वीरोंके समान स्तुतियोंकी कामना करते हैं। (रिशादसः न मर्याः अभिद्यवः) दुष्टोंको नाश करनेवाले मनुष्योंके समान ये उग्र होते हैं ॥ ३ ॥

[८१४] हे मरुतो! (युष्माकं बुध्ने अपां न यामनि) जिस समय तुम लोग परस्पर प्रतिघात करते जलोंके बहनेके समान शीघ्र गतिसे जाते हो, उस समय (मही न विथुर्यति श्रथर्यति) पृथिवी व्यथित नहीं होती वा न विशीर्ण होती है। (अयं विश्वप्सुः यज्ञः वः अर्वाक् सु) यह विश्वरूप यज्ञका हवि तुम्हारे लिये ही लाया है। (प्रयस्वन्तः न स्वत्राचः आ गत) तुम अन्नवान करनेवाले व्यक्तियोंके समान हमें सुखदायक होकर एकत्र आओ ॥ ४ ॥

[८१५] हे मरुतो! (यूयं धूर्षु रश्मिभिः प्रयुजः परिप्रुषः) तुम रस्सीसे रथमें जोते घोडेके समान गमनशील होओ; (व्युष्टिषु ज्योतिष्मन्तः न भासा) उषःकालीन सूर्यादिके समान तेजसे युक्त होओ। (श्येनासः न स्वयशसः विशादसः) गरुड पक्षीके समान स्वयंही अपने यश फैलानेवाले पराक्रमसे युक्त और उग्र होओ। (प्रवासः न प्रसितासः) पथिकोंके समान तुम बद्ध, शुद्ध अन्तःकरण युक्त होकर चारों ओर गमन करनेवाले होओ ॥ ५ ॥

[८१६] हे (मरुतः) मरुतो! (यूयं यत् पराकात् वहध्वे) तुम जिस समय अत्यंत दूर देशसे आते हैं, उस समय (महः संवरणस्य राध्यस्य वस्वः विदानासः) तुम महान् श्रेष्ठ वरणीय धन देते हैं। हे (वसवः) वसुओ! तुम (आरात् चित् सनुतः द्वेषः युयोत) दूरसे ही गुप्त शत्रुओंको नष्ट करो ॥ ६ ॥

य उद्दृचि यज्ञे अध्वरेष्ठा मरुद्भ्यो न मानुषो ददाशत् ।
रेवत् स वयो दधते सुवीरं स देवानामपि गोपीथे अस्तु ७
ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमा आदित्येन नाम्ना शंभविष्ठाः ।
ते नोऽवन्तु रथतूर्मनीषां महश्च यामन्नध्वरे चकानाः ८ [११] (८१८)

(७८)

८ स्यूमरश्मिर्भार्गवः । मरुतः । त्रिष्टुप्, १, ५-७ जगती ।

विप्रासो न मन्मभिः स्वाध्यो देवाव्यो३ न यज्ञैः स्वप्नसः ।
राजानो न चित्राः सुसंदृशः क्षितीनां न मर्या अरेपसः १
अग्निर्न ये भ्राजसा रुक्मवक्षसो वातासो न स्वयुजः सद्यऊतयः ।
प्रज्ञातारो न ज्येष्ठाः सुनीतयः सुशर्माणो न सोमा ऋतं यते २
वातासो न ये धुनयो जिगत्नवो ऽग्नीनां न जिह्वा विरोकिणः ।
वर्मण्वन्तो न योधाः शिमीवन्तः पितॄणां न शंसाः सुरातयः ३

---

[८१७] (यः अध्वरेष्ठाः मानुषः उद्ऋचि यज्ञे) जो यजमान यज्ञके सर्वश्रेष्ठ पदपर विराजकर अन्तिम ऋचातक यज्ञकी समाप्ति पर (मरुद्भ्यः न ददाशत्) मरुतोंके समान ऋत्विजोंको भी दान-दक्षिणा उदारतासे प्रदान करता है, (सः रेवत् सुवीरं वयः दधते) वह यजमान धन, उत्तम वीर पुत्र और अन्न-बल तथा आयुको प्राप्त करता है। (स देवानां अपि गोपीथे अस्तु) वह देवोंके साथही यज्ञमें बैठता है ॥ ७ ॥

[८१८] (ते हि यज्ञियासः यज्ञेषु ऊमाः) वे यज्ञार्ह यज्ञमें सबके रक्षक हैं; (शंभविष्ठाः आदित्येन नाम्ना) वे सबके लिये सुख-कल्याणकी भावना करनेवाले आदित्य नामसे कहने योग्य हैं। (ते नः अवन्तु) वे मरुत् हमारी रक्षा करें। (रथतूः मनीषां) यज्ञमें रथसे त्वरा युक्त हो जानेकी इच्छा करनेवाले वे हमारी स्तुतिकी रक्षा करें। (अध्वरे यामन् महः चकानाः) और वे यज्ञमें यथेष्ट हविकी इच्छा करते हैं ॥ ८ ॥

[७८]

[८१९] (विप्रासः न मन्मभिः स्वाध्यः) वे मरुत् मेधावी ब्राह्मणोंके समान स्तुतिसे प्रसन्न ध्यानशील हों। वे (यज्ञैः देवाव्यः न स्वप्नसः) जैसे उत्तम कर्म करनेवाले देवभक्त यज्ञोंसे संतुष्ट होते हैं, वैसे वे भी वृष्टिप्रदान आदि कर्मोंसे प्रसन्न रहें। वे (राजानः न चित्राः सुसंदृशः क्षितीनां) राजाओंके समान पूजनीय, दर्शनीय और गृहपति (मर्याः न अरेपसाः) मनुष्योंके समान निष्पाप और शोभित हैं ॥ १ ॥

[८२०] (ये अग्निः न भ्राजसा रुक्मवक्षः) जो अग्निके समान तेजसे शोभित, वक्षःस्थलपर सुवर्णालंकार धारण करनेवाले, (वातासः न स्वयुजः सद्यऊतयः) वायुके समानं स्वयं अन्योंके सहायक और गमनशील, (प्रज्ञातारः न ज्येष्ठाः सुनीतयः) उत्कृष्ट ज्ञाता विद्वानोंके समान पूज्य, सुंदर नेत्रोंवाले, (सुशर्माणः न सोमाः ऋतं यते) उत्तम सुखसे सम्पन्न और सोमके समान सुंदर मुखवाले हैं, वे तुम यज्ञकर्ता यजमानके पास जाओ ॥ २ ॥

[८२१] (ये वातासः न धुनयः जिगत्नवः) जो वायुके समान शत्रुओंको कंपानेवाले और गतिशील हैं; (अग्नीनां जिह्वाः न विरोकिणः) अग्नियोंकी ज्वालाओंके समान तेजस्वी कान्तियुक्त, (योधाः न वर्मण्वन्तः शिमीवन्तः) कवचधारी योद्धाओंके समान शौर्य कर्मवाले हैं; और (पितॄणां न शंसाः सुरातयः) माता-पिताओंकी वाणियोंके समान उदारतासे दान देनेवाले हैं; वे मरुत् हमारे यज्ञमें आवें ॥ ३ ॥

रथानां न येऽराः सनाभयो जिगीवांसो न शूरा अभिद्यवः ।
वरेयवो न मर्या घृतप्रुषोऽभिस्वर्तारो अर्कं न सुष्टुभः ४

अश्वासो न ये ज्येष्ठास आशवो दिधिषवो न रथ्यः सुदानवः ।
आपो न निम्नैरुदभिर्जिगत्नवो विश्वरूपा अङ्गिरसो न सामभिः ५ [१२]

ग्रावाणो न सूरयः सिन्धुमातर आदर्दिरासो अद्रयो न विश्वहा ।
शिशूला न क्रीळयः सुमातरो महाग्रामो न यामन्नुत त्विषा ६

उषसां न केतवोऽध्वरश्रियः शुभंयवो नाञ्जिभिर्व्यश्वितन् ।
सिन्धवो न ययियो भ्राजदृष्टयः परावतो न योजनानि ममिरे ७

सुभागान्नो देवाः कृणुता सुरत्नानस्मान् त्स्तोतॄन् मरुतो वावृधानाः ।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गात सनाद्धि वो रत्नधेयानि सन्ति ८ [१३] (८२६)

---

[८२२] (ये रथानां अराः न सनाभयः) जो रथचक्रके अरोंके समान एक नाभि वा बन्धुतामें बन्धे हैं; (जिगीवांसः न शूराः अभिद्यवः) जयशील शूरवीरोंके समान तेजस्वी हैं; (वरेयवः मर्याः न घृतप्रुषः) वाता मनुष्यके समान जलोंका सेवन करनेवाले (अभिस्वर्तारः अर्कं न सुष्टुभः) सुंदर स्तोत्र गान करनेवालोंके समान वे सुशब्दवाले हैं; वे मरुत् हमारे यज्ञमें आवें ॥ ४ ॥

[८२३] (ये अश्वासः न ज्येष्ठासः आशवः) जो अश्वोंके समान श्रेष्ठ, प्रशंसनीय, वेगसे जानेवाले, (दिधिषवः न रथ्यः सुदानवः) धनिकोंके समान रथयुक्त, उदार दाता हैं; और (आपः न निम्नैः उदभिः जिगत्नवः) जलोंके समान नीचे बहनेवाले जलधाराओंसे जानेवाले और (विश्वरूपाः सामभिः अङ्गिरसः न) अनेक रूपवाले अङ्गिरसोंके समान साम गान करनेवाले हैं; वे मरुत् हमारे यज्ञमें उपस्थित रहें ॥ ५ ॥

[८२४] (सूरयः ग्रावाणः न सिन्धुमातरः) उदक निर्माण करनेवाले मेघोंके समान नदियोंके-जलप्रवाहोंके निर्माता हैं; (आदर्दिरासः अद्रयः न विश्वहा) वे सब ओर शत्रुओंके नाश करनेवाले शस्त्रोंके समान सदा आदरशील हैं; (सुमातरः शिशूला न क्रीळयः) उत्तम वत्सल माताओंके बालकोंके समान खेलनेवाले हैं; (उत महाग्रामः न यामन् त्विषा) और महान् जनसंघके समान गमनमें दीप्तिमान् हैं; वे मरुत् हमारें यज्ञमें आवें ॥ ६ ॥

[८२५] (उषसां न केतवा अध्वरश्रियः) उषःकालकी किरणोंके समान वे यज्ञका आश्रय लेनेवाले हैं; (शुभंयवः न अञ्जिभिः व्यश्वितन्) कल्याणकी इच्छा करनेवाले वरोंके समान वे आभूषणोंसे चमकते हैं; (सिन्धवः न ययियः) नदियोंके समान सतत गमनशील, (भ्राजदृष्टयः परावतः न) तेजस्वी आयुध धारण करनेवाले दूर मार्गवाले पथिकोंके समान (योजनानि ममिरे) वे वेगसे दूर देशोंको अतिक्रम करते हैं; वे मरुत् हमारे यज्ञोंमें उपस्थित रहें ॥ ७ ॥

[८२६] हे (मरुतः) मरुतो ! हे (देवाः) देवो ! (वावृधानाः स्तोतॄन् नः सुभगान् सुरत्नान् कृणुत) हमारी स्तुतियोंसे आनन्द-प्रसन्न होकर तुम हमें उत्तम धन सम्पन्न और सुंदर रत्नोंके स्वामी बनाओ। (सख्यस्य स्तोत्रस्य अधि गात) हमारे इस मैत्रीयुक्त स्तोत्रको ग्रहण करो ! (वः रत्नधेयानि सनात् हि सन्ति) तुम्हारे दान कर्म सदासेही विद्यमान् हैं ॥ ८ ॥

(७९)

७ सौचीकोऽग्निर्वैश्वानरो वा, सप्तिर्वाजंभरो वा । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

अपश्यमस्य महतो महित्व — ममर्त्यस्य मर्त्यासु विक्षु ।
नाना हनू विभृते सं भरेते असिन्वती बप्सती भूर्यत्तः १
गुहा शिरो निहितमृधगक्षी असिन्वन्नत्ति जिह्वया वनानि ।
अत्राण्यस्मै पड्भिः सं भर — न्त्युत्तानहस्ता नमसाधि विक्षु २
प्र मातुः प्रतरं गुह्यमिच्छन् कुमारो न वीरुधः सर्पदुर्वीः ।
ससं न पक्कमविदच्छुचन्तं रिरिह्वांसं रिप उपस्थे अन्तः ३
तद्वामृतं रोदसी प्र ब्रवीमि जायमानो मातरा गर्भो अत्ति ।
नाहं देवस्य मर्त्यश्चिकेता — ऽग्निरङ्ग विचेताः स प्रचेताः ४
यो अस्मा अन्नं तृष्वाऽऽदधा — त्याज्यैर्घृतैर्जुहोति पुष्यति ।
तस्मै सहस्रमक्षभिर्वि चक्षे ऽग्ने विश्वतः प्रत्यङ्ङसि त्वम् ५

---

[७९]

[८२७] हे मरुतो ! (अस्य अमर्त्यस्य महतः महित्वं मर्त्यासु विक्षु अपश्यम्) इस अमर–अविनाशी महान् अग्निके महान् सामर्थ्यको मैं मर्त्यसृष्टीमें देखता हूं। (नाना हनू विभृते संभरेते) इसके अनेक मुखके दो जबडें –ज्वालाएं–भिन्न भिन्न रूपसे धारित होती हैं; (असिन्वती बप्सती भूरि अत्तः) वे चर्वण न करके खाती हुईसी बहुत काष्ठादि पदार्थोंका भक्षण करती हैं ॥ १ ॥

[८२८] इस अग्निका (शिरः गुहा निहितम्) शिर–मस्तक मनुष्योंके उदरोंमें स्थित है। इसके (अक्षी ऋधक्) नेत्र भिन्न भिन्न स्थानोंमें– सूर्य और चन्द्रमाके रूपमें– हैं। (जिह्वया असिन्वन् वनानि अत्ति) वह जिह्वासे चर्वण न करकेही– ज्वालाओंसे–काष्ठोंको खा जाता है। (अस्मै पड्भिः अत्राणि संभरन्ति) इसके लिये अध्वर्यु आदि लोग पैरोंसे जाकर अनेक खाद्य पदार्थ हवि आदि प्राप्त करते हैं। (अधि विक्षु उत्तानहस्ताः नमसा) मनुष्योंके बीच यजमान हाथ उठाते और नमस्कार करते हुए यह करते हैं ॥ २ ॥

[८२९] (कुमारः न मातुः उर्वीः वीरुधः इच्छन्) छोटा बालक जिस प्रकार दुग्धपानके लिये माताके पास जाता है, उसी तरह यह अग्नि पृथिवीके ऊपरकी लताओंको इच्छा करता हुआ (प्रतरं गुह्यं प्र सर्पत्) तथा उन लताओंके छिपे उत्कृष्ट मूलको भी इच्छा करके आगे आगे चलकर उनका ग्रास करता है। (रिपः उपस्थे अन्तः) वह अपनेको भूमिके भीतर (पक्वं ससं न शुचन्तं रिरिह्वांसं अविदत्) पके हुए अन्नके समान उज्ज्वल काष्ठको भक्षण करता हुआ पाता है ॥ ३ ॥

[८३०] हे (रोदसी) द्यावापृथिवी ! (वां तत् ऋतं प्रब्रवीमि) तुमसे मैं सत्य बात कहता हूं कि (जायमानः गर्भः मातरा अत्ति) अरणियोंसे उत्पन्न हुआ यह गर्भगत बालकरूप अग्नि अपने माता–पिताको खाता है। (अहं मर्त्यः देवस्य न चिकेत) मैं मनुष्य देवता अग्निके सम्बन्धमें नहीं जानता हूं। हे (अङ्ग) वैश्वानर ! (अग्निः विचेताः स प्रचेताः) अग्नि विविध ज्ञानवाला और प्रकृष्ट ज्ञानवाला है ॥ ४ ॥

[८३१] (यः अस्मै तृपु अन्नं आदधाति) जो यजमान इस अग्निको अति शीघ्र अन्न देता है, (आज्यैः घृतैः जुहोति पुष्यति) गोघृत वा सोमरससे अग्निमें हवन करता है, और काष्ठ आदिसे अग्निको प्रदीप्त करता है, (तस्मै सहस्रं अक्षभिः विचक्षे) उसे हजारों अपरिमित ज्वालाओंसे अग्नि देखता है। हे (अग्ने) अग्नि ! (त्वं विश्वतः प्रत्यङ् असि) तू हमें सर्वतः अनुकूल रहते हो ॥ ५ ॥

किं देवेषु त्यज एनश्चकर्था ऽग्ने पृच्छामि नु त्वामविद्वान् ।
अक्रीळन् क्रीळन् हरिरत्तवेऽदन् वि पर्वशश्चकर्त गामिवासिः ६
विषूचो अश्वान् युयुजे वनेजा ऋजीतिभी रशनाभिर्गृभीतान् ।
चक्षदे मित्रो वसुभिः सुजातः समानृधे पर्वभिर्वावृधानः ७ [१४] (८३३)

(८०)

७ सौचीकोऽग्निः वैश्वानरो वा, सप्तिर्वाजंभरो वा । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

अग्निः सप्तिं वाजंभरं ददा त्यग्निर्वीरं श्रुत्यं कर्मनिःष्ठाम् ।
अग्नी रोदसी वि चरत् समञ्ज न्नग्निर्नारीं वीरकुक्षिं पुरंधिम् १
अग्नेरप्नसः समिदस्तु भद्रा ऽग्निर्मही रोदसी आ विवेश ।
अग्निरेकं चोदयत् समत्स्वग्निर्वृत्राणि दयते पुरूणि २
अग्निर्ह त्यं जरतः कर्णमावा ऽग्निरद्भ्यो निरदहज्जरूथम् ।
अग्निरत्रिं घर्म उरुष्यदन्त रग्निर्नृमेधं प्रजयासृजत् सम् ३

---

[८३२] हे (अग्ने) अग्नि ! (अविद्वान् त्वां नु पृच्छामि) अज्ञानी मैं तुझसे पूछता हूं कि, (देवेषु किं त्यजः एनः चकर्थ) क्यों तुमने देवोंके ऊपर क्रोध किया है ? पाप किया है ? (गाम् इव असिः) जैसे चमडे वा लताके शस्त्रसे टुकडे किये जाते हैं, वैसेही (अक्रीडन् क्रीडन् हरिः अत्तवे अदन् पर्वशः वि चकर्थ) कहीं क्रीडा न करते हुए और क्रीडा करते हुए हरितवर्ण अग्नि खाद्य पदार्थ खाते समय उनके टुकडे टुकडे करता है ॥ ६ ॥

[८३३] (वनेजाः विषूचः ऋजीतिभिः रशनाभिः गृभीतान् अश्वान् युयुजे) वनमें प्रवृद्ध हुआ यह अग्नि सर्वगामी, सरल मार्गसे जानेवाले रज्जुओंसे बांधकर द्रुतगामी घोडोंको जोतता है; अर्थात् लताओंसे परिवेष्टित वृक्षोंको भक्षण करता है । (मित्रः सुजातः वसुभिः चक्षदे) वह हमारा मित्र काष्ठरूप धन पाकर प्रदीप्त होकर सबको चूर्ण करता है । (पर्वभिः वर्धमानः समानृधे) वह काष्ठ खण्डोंसे वर्धित होता है ॥ ७ ॥

[८०]

[८३४] (अग्निः सप्तिं वाजंभरं ददाति) अग्नि गतिशील और युद्धमें शत्रुओंको जीतकर अन्न देनेवाला अश्व स्तोताओंको देता है । वह (अग्निः वीरं श्रुत्यं कर्मनिःष्ठाम्) अग्नि वीर्यवान्, वेदज्ञ और सत्कर्म प्रेमी पुत्र प्रदान करता है । (अग्निः रोदसी समञ्जन् विचरत्) अग्नि द्यावापृथिवीको प्रकाशित करता हुआ विचरण करता है । (अग्निः नारीं वीरकुक्षिं पुरंधिम्) यह अग्नि स्त्रीको वीर प्रसविनी करता है ॥ १ ॥

[८३५] (अप्नसः अग्नेः समित् भद्रा अस्तु) कर्मकुशल अग्निकी समित्काष्ठ हमारे लिये कल्याणप्रद हो । (अग्निः मही रोदसी आ विवेश) अग्नि अपने तेजसे द्यावापृथिवीमें सर्वत्र व्याप्त है । (अग्निः समत्सु एकं चोदयत्) अग्नि युद्धमें किसी एकको उत्साहित करता है -अर्थात् अपने भक्तको स्वयं सहाय्यक होकर विजयी बनाता है और (पुरूणि वृत्राणि दयते) अग्नि अनेक शत्रुओंको नष्ट करता है ॥ २ ॥

[८३६] (अग्निः ह त्यं जरतः कर्णं आव) अग्निने निश्चयसेही उस प्रसिद्ध जरत्कर्ण नामक ऋषिकी रक्षा की ! (अग्निः अद्भ्यः जरूथं निरदहत्) अग्निने जलसे निकाल करके जरूथ नामक असुरको भस्म कर दिया था । और (अग्निः अत्रिं घर्मे अन्तः उरुष्यत्) अग्निने प्रतास कुंडमें पतित अत्रि महर्षिकी रक्षा की थी । (अग्निः नृमेधं प्रजया सं असृजत्) अग्निने नृमेध ऋषिको सन्तान दिये थे ॥ ३ ॥

अग्निर्दाद् द्रविणं वीरपेशा अग्निर्ऋषिं यः सहस्रा सनोति ।
अग्निर्दिवि हव्यमा ततानाऽग्नेर्धामानि विभृता पुरुत्रा ४ (८३७)

अग्निमुक्थैर्ऋषयो वि ह्वयन्ते ऽग्निं नरो यामनि बाधितासः ।
अग्निं वयो अन्तरिक्षे पतन्तो ऽग्निः सहस्रा परि याति गोनाम् ५

अग्निं विश ईळते मानुषीर्या अग्निं मनुषो नहुषो वि जाताः ।
अग्निर्गान्धर्वीं पथ्यामृतस्याऽग्नेर्गव्यूतिर्घृत आ निषत्ता ६

अग्नये ब्रह्म ऋभवस्ततक्षुरग्निं महामवोचामा सुवृक्तिम् ।
अग्ने प्राव जरितारं यविष्ठाऽग्ने महि द्रविणमा यजस्व ७ [१५] (८४०)

(८१)

७ विश्वकर्मा भौवनः। विश्वकर्मा। त्रिष्टुप्, १ विराड्रूपा।

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत् पिता नः ।
स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ आ विवेश १

[८३७] (वीरपेशाः अग्निः द्रविणं दात्) उत्कृष्ट ज्वालारूप अग्नि धन देता है। (यः अग्निः ऋषिं सहस्रा सनोति) जो अग्नि ज्ञानद्रष्टा ऋषिको हजारों गायोंको देता है, और (दिवि हव्यं आ ततान) जो अग्नि यजमानोंका दिया हुआ हवि द्युलोकमें पहुंचाता है, (अग्नेः धामानि पुरुत्रा विभृता) उस अग्निके शरीर अनेक धामोंमें स्थापित किये जाते हैं ॥ ४ ॥

[८३८] (अग्निं उक्थैः ऋषयः विह्वयन्ते) अग्निको वेदमंत्रोंसे प्रथम ऋषिलोग स्तुति करते हैं –बुलाते हैं। (नरः यामनि बाधितासः) मनुष्य युद्धमें शत्रुओंसे पीडित होकर जयके लिये अग्निको बुलाते हैं। (अग्निं वयः अन्तरिक्षे पतन्तः) अग्निको पक्षी आकाशमें रात्रिमें देखते हैं। (अग्निः गोनां सहस्रा परि याति) अग्नि सहस्रों गायोंसे परिवेष्टित होकर जाता है– हजारों गायोंको प्राप्त कराता है ॥ ५ ॥

[८३९] (अग्निं याः मानुषीः विशः ईळते) अग्निकी मानवी प्रजा स्तुति करती है। (मनुषः नहुषः जाताः अग्निं) नहुष राजाकी प्रजा अग्निकी अनेक प्रकारसे स्तुति करती है। (अग्निः ऋतस्य पथ्यां गान्धर्वीम्) अग्नि यज्ञ-मार्गके लिये अत्यंत हितकर वेदवचन सुनता है (अग्नेः गव्यूतिः घृते आ निषत्ता) अग्निका मार्ग घृतसे ही आश्रित है ॥ ६ ॥

[८४०] (ऋभवः अग्नये ब्रह्म ततक्षुः) विद्वान्लोग अग्निके लिये ही स्तोत्र करते हैं। (महां अग्निं सुवृक्तिं अवोचाम) हम महान् अग्निकी स्तुति करते हैं। हे (यविष्ठ अग्ने) तरुण अग्नि! (जरितारं प्र अव) स्तोताकी रक्षा कर। हे (अग्ने) अग्नि! (महि द्रविणं आ यजस्व) महान् धन दो ॥ ७ ॥

(८१)

[८४१] (यः ऋषिः होता इमा विश्वा भुवनानि जुह्वत्) जो विश्वकर्म होता सबको ऐश्वर्य देनेवाला प्रथम इन समस्त लोकोंका हवन करके (न्यसीदत्) पश्चात् स्वयं का भी अग्निमें हवन करके विराजता है, वह (नः पिता) हम सबका पिता है। (सः आशिषा द्रविणं इच्छमानः) वह स्तोत्रादिके आशीर्वाद मंत्रोंसे स्वर्गरूप धनकी इच्छा करता हुआ (प्रथमच्छत् अवरान् आ विवेश) प्रथम सारे जगत्को व्यापता हुआ, पश्चात् समीपके लोकोंके साथ स्वयं भी अग्निमें प्रविष्ट हुआ ॥ १ ॥

×

किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत् स्वित् कथासीत् ।
यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः २
विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ३
किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद् यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ४
या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा ।
शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः ५
विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम् ।
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ६
वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम ।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद् विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ७ [१६] (८४७)

---

[८४२] (अधिष्ठानं किं स्वित् आसीत्) सृष्टिकालमें विश्वकर्माका आश्रय क्या था ? कैसा था ? (आरम्भणं कतमत् स्वित्) सृष्टि कार्यका प्रारंभ उसने कहांसे किया ? (कथा आसीत्) कैसे किया ? (यतः विश्वचक्षाः विश्वकर्मा भूमिं जनयन्) जिस कारणसे विश्वद्रष्टा विश्वकर्मा पृथिवी - भूमिको उत्पन्न करता है, और (द्यां महिना वि और्णोत्) आकाशको अपने महान् सामर्थ्यसे निर्माण करता है, इस कारण उसने यह सब कैसे किया होगा ? ॥ २ ॥

[८४३] (विश्वतः चक्षुः उत विश्वतः मुखः विश्वतः बाहुः उत विश्वतः पात्) वह विश्वकर्मा परमेश्वर सर्वत्र देखनेवाला, और सर्वत्र मुखवाला, सर्वत्र बाहुवाला और सर्वत्र पैरोंवाला है। ऐसा परमेश्वर स्वयंमेंही तीनों लोकोंको निर्माण करता है। (बाहुभ्यां पतत्रैः द्यावाभूमी सं जनयन् सं धमति) अपने दोनों हाथोंसे और पंखोंसे द्यावाभूमिको एक साथही निर्माण करता हुआ वह सम्यक् रीतिसे चलाता है। (देवः एकः) वह एकही अद्वितीय देव-प्रभु है ॥ ३ ॥

[८४४] (यतः द्यावापृथिवी निःततक्षुः) जिससे द्यावापृथिवीको सृष्टिकर्ताने बनाया, (वनं किं स्वित् क उ स वृक्षः आस) वह कौनसा वन है और वह कौनसा महान् वृक्ष है ? हे (मनीषिणः) विद्वान् पुरुषो ! (मनसा पृच्छत इत् उ) तुम अपने मनसे यह प्रश्न पूछो। और (भुवनानि धारयन् यत् अध्यतिष्ठत् तत्) वह ईश्वर समस्त लोकोंको धारण करता हुआ जिस स्थानपर विराजता है, उसका भी अंतःकरणपूर्वक विचार करो ॥ ४ ॥

[८४५] हे (विश्वकर्मन्) समस्त भुवनोंके निर्माण कर्ता परमेश्वर ! (या ते परमाणि धामानि) जो तेरे सर्वोत्कृष्ट शरीर हैं (या मध्यमा उत या अवमा इमा) जो मध्यम और जो साधारण शरीर हैं, वे सब (सखिभ्यः शिक्ष) मित्रभूत हमें दे। हे (स्वधावः) स्वधायुक्त देव ! (स्वयं तन्वं हविषि वृधानः यजस्व) तू स्वयं अपने आप शरीरको अन्नादिसे बढाता हुआ हमें देह प्रदान कर ॥ ५ ॥

[८४६] हे (विश्वकर्मन्) विश्वकर्मा ! (हविषा वावृधानः स्वयं पृथिवीं उत द्यां यजस्व) तू हवियोंसे वृद्धिगत होता हुआ- स्व सामर्थ्यसे महान् होकर पृथिवी और द्यौ को अपनेमें धारण करता है, वा यज्ञीय हविसे प्रसिद्ध होकर तुम द्यावा-पृथिवी का पूजन करो ! (अभितः अन्ये जनासः मुह्यन्तु) दूसरे सब यज्ञके विरोधी लोग सब प्रकारसे मोहित हों। (इह मघवा अस्माकं सूरिः अस्तु) इस यज्ञमें सब ऐश्वर्योंका स्वामी विश्वकर्मा हमें स्वर्गादिके फल दाता हो ॥ ६ ॥

[८४७] (वाचस्पतिं मनोजुवं विश्वकर्माणं वाजे अद्य ऊतये हुवेम) हम वाणीके स्वामी मनके समान शीघ्र गमन करनेवाले विश्वकर्मा परमेश्वरको इस यज्ञमें आज हमारी रक्षाके लिये बुलाते हैं। (सः नः विश्वानि हवनानि जोषद्) वह हमारे समस्त हवनोंका सेवन करे। (अवसे विश्वशंभूः साधुकर्मा) वह हमारे रक्षणके कारण सब विश्वको सुख देनेवाला और उत्तम कर्म करनेवाला है ॥ ७ ॥

(८२)

७ विश्वकर्मा भौवनः। विश्वकर्मा। त्रिष्टुप्।

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्नमाने ।
यदेदन्ता अददृहन्त पूर्व आदिद्द्यावापृथिवी अप्रथेताम् १

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत संदृक् ।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन् पर एकमाहुः २ (८४९)

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ३

त आयजन्त द्रविणं समस्मा ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना ।
असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि ४

परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति ।
कं स्विद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त विश्वे ५

---

[८२]

[८४८] (चक्षुषः पिता मनसा हि धीरः) इंद्रियादि युक्त शरीरके उत्पादक और मनसे निश्चयही प्रबल (घृतम् अजनत् एने नम्नमाने) विश्वकर्माने प्रथम जलको उत्पन्न किया; अनन्तर जलमें इधर-उधर चलनेवाले द्यावापृथिवीको बनाया। (यदा इत् अन्ताः पूर्वे अदृहन्त) जब पर्यन्त भाग, बाहरके सीमाके द्यावापृथिवीके प्राचीन भाग दृढ हो गये, (आदित् द्यावापृथिवी अप्रथेताम्) तब द्यावा पृथिवी विस्तृत होते गये -प्रसिद्ध हुए ॥ १ ॥

[८४९] (विश्वकर्मा विमनाः आत्) विश्वकर्मा सर्व ज्ञानी, (विहायाः धाता विधाता परमा उत संदृक्) महान्, सब विश्वको धारण करनेवाला, जगत्का निर्माता, परम ज्ञानवान् और सब कार्योंका द्रष्टा है ! (यत्र सप्तऋषीन् परः आहुः) जिसके विषयमें विद्वान् लोग कहते हैं कि वह सप्त ऋषियोंके भी परे है। और (तेषां इष्टानि इषा सं मदन्ति) उनकी अभिलाषाएं अन्नके द्वारा पूर्ण होती हैं। वह (एकं) एकही अद्वितीय है, ऐसे कहते हैं ॥ २ ॥

[८५०] (यः नः पिता जनिता यः विधाता) जो हमारा पालक, उत्पन्न करनेवाला, विशेषरूपसे जगत्को धारण और पोषण करनेवाला है; जो (विश्वा धामानि भुवनानि वेद) विश्वके सारे धामों, लोकों और उत्पन्न होनेवाले पदार्थोंको जानता है। (यः देवानां नामधाः एकः एव) जो समस्त देवोंके नाम रखकर, उनको उनके स्थानपर रखनेवाला अकेला, अद्वितीय है। (तं अन्या भुवना सं प्रश्नं यन्ति) उसे अन्य सब उत्पन्न प्राणि ' कौन परमेश्वर है ' यह प्रश्न पूछते पूछते प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

[८५१] (ते पूर्वे ऋषयः जरितारः न भूना अस्मै द्रविणं सं आयजन्त) वे प्राचीन सब ऋषि स्तुति करनेवाले स्तोताओंके समान इसी विश्वकर्माके लिये ही चरु पुरोडाशादि धनसे सब रीतिसे यजन करते हैं। (ये असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते) जिन महर्षियोंने स्थावर और जंगम लोकमें नियतरूपसे व्यापक (इमानि भूतानि समकृण्वन्) इन सब लोकों और प्राणियोंको धनादि प्रदान करके बनाया था ॥ ४ ॥

[८५२] (दिवा परः एना पृथिव्याः परः) वह द्युलोकसे भी परे है, इस पृथिवीसे भी परे है; (यत् देवेभिः असुरैः परः अस्ति) जो देव और असुरोंसे भी परे है, श्रेष्ठ है; (आपः कं स्वित् प्रथमं गर्भं दध्रे) जलने किस सर्वश्रेष्ठ सर्वसंग्राहक गर्भको धारण किया है ? (यत्र विश्वे देवाः समपश्यन्त) जिसमें सब इन्द्रादि देव रहकर परस्पर एकत्र देखते हैं ॥ ५ ॥

तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः ६
न तं विदाथ य इमा जजानाऽन्यद्युष्माकमन्तरं बभूव ।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चाऽसुतृप उक्थशासश्चरन्ति ७ [१७] (८५४)

(८३)

७ मन्युस्तापसः । मन्युः । त्रिष्टुप्, १ जगती ।

८ यस्ते मन्योऽविधद्वज्र सायक सह ओजः पुष्यति विश्वमानुषक् ।
साह्याम दासमार्यं त्वया युजा सहस्कृतेन सहसा सहस्वता १
मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदाः ।
मन्युं विश ईळते मानुषीर्याः पाहि नो मन्यो तपसा सजोषाः २

[८५३] (तं इत् गर्भं प्रथमं आपः दध्रे) उस ही विश्वकर्माके गर्भको सबसे प्रथम जलतत्त्वने धारण किया है; (यत्र विश्वे देवाः समगच्छन्त) जिसमें इन्द्रादि सब देव एकत्र होते हैं। (अजस्य नाभौ अधि एकं अर्पितम्) उस अजन्माकी नाभिमें यह समस्त विश्व एक सम्यक् रूपसे आश्रित है या इसमें सब ब्रह्माण्ड है ! (यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः) जिसमें सब भूत प्राणि आदि रहते हैं ॥ ६ ॥

[८५४] हे मनुष्यो ! (तं न विदाथ यः इमा जजान) तुम उसको नहीं जानते, जिसने इन सब लोकोंको और प्राणियोंको उत्पन्न किया है। (युष्माकं अन्तरं अन्यत् बभूव) तुम्हारे अन्तर्गत ईश्वरतत्त्व निश्चितरूपसे पृथक् विद्यमान है। (नीहारेण प्रावृताः) कोहरेसे घिरों हुए, अज्ञान-अन्धकारसे ढके हुए (असुतृपः जल्प्या च उक्थशासः चरन्ति) केवल उदर भरण करके तृप्त होनेवाले और स्तुतिपाठक होकर, केवल मंत्रोंका उच्चारण करके पृथिवीपर विचरते हैं। उनको ईश्वरतत्त्वका साक्षात्कार नहीं होता है ॥ ७ ॥

[८३]

[८५५] हे (वज्र सायक मन्यो) शस्त्रास्त्रयुक्त उत्साह ! (यः ते अविधत्) जो तेरा सेवन करता है, वह (विश्वं सहः ओजः) सब बल और सामर्थ्यको (आनुषक् पुष्यति) निरन्तर पुष्ट करता है। (सहस्कृतेन सहस्वता) बलको बढानेवाले और विजयी (त्वया युजा) तुम सहायकके साथ (वयं दासं आर्यं साह्याम) हम दासों और आर्योंको अपने वशमें करेंगे ॥ १ ॥

जिसके पास उत्साह होता है, उसको सब प्रकारका बल और शस्त्रास्त्रोंका सामर्थ्य प्राप्त होता है; और वह हरएक प्रकारके शत्रुको वशमें कर सकता है ॥ १ ॥

[८५६] (मन्युः इन्द्रः) उत्साह ही इन्द्र है (मन्युः एव देव आसः) उत्साह ही देव है। (मन्युः होता वरुणः जातवेदाः) उत्साहही हवनकर्ता वरुण और जातवेद अग्नि है। वह (मन्युः) उत्साह है कि जिसकी (याः मानुषीः विशः ईडते) जो मानव प्रजायें हैं, वे सब प्रशंसा करती हैं। हे (मन्यो) उत्साह ! (सजोषाः तपसा नः पाहि) प्रीति से युक्त होकर तू तपसे हमारी रक्षा कर ॥ २ ॥

इन्द्र, वरुण, अग्नि आदि सब देव इस उत्साहके कारण ही बडे शक्तिवाले हुए हैं। मनुष्य भी इसी उत्साह की प्रशंसा करते हैं, क्योंकि यह उत्साह अपने सामर्थ्यसे सबको बचाता है ॥ २ ॥

अभीहि मन्यो तवसस्तवीयान् तपसा युजा वि जहि शत्रून् ।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्या भरा त्वं नः ३
त्वं हि मन्यो अभिभूत्योजाः स्वयंभूर्भामो अभिमातिषाहः ।
विश्वचर्षणिः सहुरिः सहावा नस्मास्वोजः पृतनासु धेहि ४
अभागः सन्नप परेतो अस्मि तव क्रत्वा तविषस्य प्रचेतः ।
तं त्वा मन्यो अक्रतुर्जिहीळाहं स्वा तनूर्बलदेयाय मेहि ५
अयं ते अस्म्युप मेह्यर्वाङ् प्रतीचीनः सहुरे विश्वधायः ।
मन्यो वज्रिन्नभि मामा ववृत्स्व हनाव दस्यूँरुत बोध्यापेः ६

---

[८५७] हे (मन्यो) उत्साह ! (तवसः तवीयान् अभी हि) महान्से महान् शक्तिवाला तू यहां आ। (तपसा युजा शत्रून् विजहि) अपने तपके सामर्थ्यसे युक्त होकर शत्रुओंका नाश कर। (अमित्रहा, वृत्रहा, दस्युहा त्वं) शत्रुओंका नाशक, आवरण करनेवालोंका नाशक, और दुष्टोंका नाशक तू (नः विश्वा वसूनि आभर) हमारे लिए सब धनोंको भर दे।

उत्साहसे बल बढता है, शत्रु परास्त होते हैं, डाकु-चोर और दुष्ट दूर किए जा सकते हैं, और सब प्रकारका धन प्राप्त किया जा सकता है ॥ ३ ॥

[८५८] हे (मन्यो) उत्साह ! (त्वं हि अभिभूति ओजाः) तू ही विजयी बलसे युक्त, (स्वयं-भूः भामः) अपनी ही शक्तिसे बढनेवाला, तेजस्वी, (अभिमाति-षाहः) शत्रुओंका पराभव करनेवाला (विश्वचर्षणिः सहुरिः) सबका निरीक्षक समर्थ (सहीयान्) और बलिष्ठ हो। तू (पृतनासु अस्मासु ओजः धेहि) युद्धोंमें हमारे अन्दर शक्ति स्थापन कर ॥ ४ ॥

उत्साहसे विजयी बल प्राप्त होता है, शत्रुओंका पराभव हो जाता है, अपना सामर्थ्य बढ जाता है, तेजस्विता फैलती है, और हरएक प्रकारका बल बढता है, वह उत्साहका बल युद्धके समय हमें प्राप्त हो ॥ ४ ॥

[८५९] हे (प्रचेतः मन्यो) ज्ञानवान् उत्साह ! मैं (तव तविषस्य अभागः सन्) तेरे बलका भाग न प्राप्त करनेके कारण (क्रत्वा अप परेतः अस्मि) कर्मशक्तिसे दूर हुआ हूं। इसलिए (अक्रतुः अहं तं त्वा जिहीड) कर्म हीनसा होकर मैं तेरे पास आया हूं। अतः तू (नः स्वा तनूः बलदावा आ इहि) हमको अपने शरीरसे बलका दान करता हुआ प्राप्त हो ॥ ५ ॥

जिसके पास उत्साह नहीं होता, वह कर्मकी शक्तिसे हीन हो जाता है। इसलिए हरएक मनुष्यको उचित है, कि वह अपने मनमें उत्साह धारण करे और बलवान् बने ॥ ५ ॥

[८६०] हे (सहुरे) समर्थ ! हे (विश्वदावन्) सर्वस्वदाता! (अयं ते अस्मि) यह मैं तेरा ही हूं। (प्रतीचीनः नः अर्वाङ् उप एहि) प्रत्यक्षतासे हमारे पास आ। हे (मन्यो) उत्साह ! हे (वज्रिन्) शस्त्रधर ! (नः अभि आववृत्स्व) हमारे पास प्राप्त हो। (आपेः बोधि) मित्रको पहचान, (उत दस्यून् हनाव) और हम शत्रुओंको मारें ॥ ६ ॥

उत्साहसे सब प्रकारका बल प्राप्त होता है, यह उत्साह हमारे मनमें आकर स्थिर रहे, और उसकी सहायतासे हम मित्रोंको बढावें और शत्रुओंको दूर करें ॥ ६ ॥

अभि प्रेहि दक्षिणतो भवा मे ऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि ।
जुहोमि ते धरुणं मध्वो अग्र॑मुभा उपांशु प्रथमा पिबाव ७ [१८] (८९१

(८४)

७ मन्युस्तापसः। मन्युः । जगती, १-३ त्रिष्टुप् ।

त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो हर्षमाणासो धृषिता मरुत्वः ।
तिग्मेषव आयुधा संशिशाना अभि प्र यन्तु नरो अग्निरूपाः १

[८९१] (अभि प्र इहि) आगे बढ, (नः दक्षिणतः भव) हमारे दाहिनी ओर हो। (अध नः भूरि वृत्राणि जंघनाव) और हमारे सब प्रतिबन्धोंको मिटा देवें। (ते मध्वः अग्रं धरुणं) उस मधुर रसके मुख्य धारण करनेवालेको (जुहोमि) मैं स्वीकार करता हूं। (उभौ उपांशु प्रथमा पिबाव) हम दोनों एकान्तमें सबसे पहिले उस रसका पान करें ॥ ७ ॥

उत्साह धारण करके आगे बढ, शत्रुओंओ परास्त कर और मधुर भोगोंको प्राप्त कर ॥ ७ ॥

उत्साहका धारण

पूर्व इस सूक्तमें उत्साहका वर्णन है। जिस पुरुषमें उत्साह नहीं होता, वह अभागा होता है, ऐसा इस सूक्तके पंचम मंत्रमें कहा है। यह मंत्र यहां देखने योग्य है–

अभागः सन्नप परेतो अस्मि तव क्रत्वा तविषस्य । (मं. ५)

' उत्साहके बलका भाग प्राप्त न होनेके कारण मैं कर्म शक्तिसे दूर हुआ हूं, और अभागा बना हूं। ' उत्साहहीन होनेसे जो बडी भारी हानि होती है, वह यह है। उत्साह हट जातेही बल कम हो जाता है, बल कम होतेही पुरुषार्थ शक्ति कम हो जाती है, पुरुषार्थ या प्रयत्न कम होतेही भाग्य नष्ट हो जाता है, इस रीतिसे उत्साहहीन मनुष्य नष्ट हो जाता है।

परन्तु जिस समय मनमें उत्साह बढ जाता है, उस समय वह उत्साही मनुष्य (स्वयं-भूः) स्वयंही अपना अभ्युदय सिद्ध करने लग जाता है। स्वयं प्रयत्न करनेके कारण (भामः) तेजस्वी बनता है, (अभिमाति साहः) शत्रुओंको दबाता है। और (अभि-भूति-ओजाः) विशेष सामर्थ्यसे युक्त होता है। इससे भी अधिक सामर्थ्य उसकी हो जाती है, जिसका वर्णन इस सूक्तमें किया है। इसका आशय यह है, कि जो मनुष्य अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्त करना चाहता है, वह उत्साह अवश्य धारण करे। उत्साहहीन मनुष्यके लिए इस जगत्‌में कोई स्थान नहीं है, और उत्साहीके लिए इस जगत्‌में कुछ भी असम्भव नहीं है।

उत्साह मनमें रहता है, यह इन्द्रका स्वभाव धर्म है। वेदके इन्द्रसूक्तोंमें उत्साह बढानेवाला वर्णन है। जो मनुष्य अपने मनमें उत्साह बढाना चाहते हैं, वे वेदके इन्द्र सूक्त पढें और उनका मनन करें। इन्द्र न थकता हुआ शत्रुका पराभव करता है, यह उसके उत्साहके कारण है। इन सूक्तोंमें भी इसी अर्थका एक मंत्र है, जिसमें कहा है, कि ' इस उत्साहके कारणही इन्द्र प्रभावशाली बना है। ' इसलिए पाठक इन्द्रके सूक्त मनन पूर्वक देखेंगे, तो उनको पता लग जाएगा, कि उत्साह क्या चीज है ? और वह क्या कर सकता है ? उत्साह बढानेके लिए उत्साही पुरुषोंके साथ संगती करनी चाहिए। थोडा भी निरुत्साह मनमें उत्पन्न हुआ, तो अल्प समयमें बढ जाता है, और मनको मलिन कर देता है। इसलिए उन्नति चाहनेवाले पुरुषोंको चाहिए कि वे इस रीतिसे मनकी रक्षा करें ॥ ७ ॥

[८४]

[८९२] हे (मरुत्वन् मन्यो) मरनेकी अवस्थामें भी उठनेकी प्रेरणा करनेवाले उत्साह ! (त्वया स-रथं आरुजन्तः) तेरी सहायतासे रथ सहित शत्रुको विनष्ट करते हुए और स्वयं (हर्षमाणाः हृषितासः) आनन्दित और प्रसन्न चित्त होकर (आयुधा सं-शिशानाः) अपने आयुधोंको तीक्ष्ण करते हुए (तिग्म-इषवः अग्निरूपाः नरः) तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रवाले अग्निके समान तेजस्वी नेता गण (उप प्र यन्तु) चढाई करें ॥ १ ॥

मनुष्यको उत्साह हताश नहीं होने देता। जिसके मनमें उत्साह रहता है, वे शत्रुओंको नष्ट करते हैं और प्रसन्न चित्तसे अपने शस्त्रास्त्रोंको सदा सज्ज करके अपने तेजको बढाते हुए शत्रु पर चढाई करते हैं ॥ १ ॥

तिग्म-इषवः– तीक्ष्ण बाण

अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व　सेनानीर्नः सहुरे हूत एधि ।
हत्वाय शत्रून् वि भजस्व वेद　ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व　२
सहस्व मन्यो अभिमातिमस्मे　रुजन् मृणन् प्रमृणन् प्रेहि शत्रून् ।
उग्रं ते पाजो नन्वा रुरुध्रे　वशी वशं नयस एकज त्वम्　३
एको बहूनामसि मन्यवीळितो　विशंविशं युधये सं शिशाधि ।
अकृत्तरुक् त्वया युजा वयं　द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्महे　४
विजेषकृदिन्द्र इवानवब्रवो३　ऽस्माकं मन्यो अधिपा भवेह ।
प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि　विद्मा तमुत्सं यत आबभूथ　५

[८६३] हे (मन्यो) उत्साह ! (अग्निः इव) तू अग्निके समान (त्विषितः सहस्व) तेजस्वी होकर शत्रुको परास्त कर। हे (सहुरे) समर्थ ! (हूतः नः सेनानी एधि) पुकारा हुआ हमारी सेनाको चलानेवाला हो (शत्रून् हत्वाय) शत्रुओंको मारकर (वेदः विभजस्व) धनको बांट दे, और (ओजः विमानः) अपने बलको मापता हुआ (मृधः वि नुदस्व) शत्रुओंको हटा दे ॥ २ ॥

उत्साहसे तेज बढता है, उत्साहसे ही शत्रु परास्त होते हैं। उत्साही पुरुष सेना चालक होगा, तो वह शत्रुका नाश करके धन प्राप्त करता है। फिर अपने बलको बढाता हुआ दुष्टोंको दूर कर देता है ॥ २ ॥

त्विषितः— तेजस्वी। सहुरः— समर्थ। वदः— धन, वेद।

[८६४] हे (मन्यो) उत्साह ! (अस्मै अभिमातिं सहस्व) इसके लिए अभिमान करनेवाले शत्रुको परास्त कर (शत्रून् रुजन् मृणन्, प्रमृणन् प्रेहि) शत्रुको तोडता हुआ, मारता हुआ, कुचलता हुआ चढाई कर। (ते उग्रं पाजः ननु आ रुरुध्रे) तेरा प्रभावशाली बल निश्चयसे शत्रुको रोक सकता है। हे (एकज) अद्वितीय ! (त्वं वशी वशं नयासै) तू स्वयं संयमी होनेके कारण शत्रुको वशमें कर सकता है ॥ ३ ॥

उत्साहसे शत्रुओंका पराजय कर और शत्रुओंका नाश उत्साहसे कर। उत्साहसे तुम्हारा बल बढेगा और तुम शत्रुको रोक सकोगे। हे शूर ! तू पहले अपना संयम कर। जब तू अपना संयम करेगा, तभी शत्रुको वशमें कर सकेगा ॥ ३ ॥

[८६५] हे (मन्यो) उत्साह ! तू (एकः बहूनां ईडिता असि) अकेला ही बहुतों में सत्कार पाने वाला है। तू (विशं विशं युद्धाय सं शिशाधि) प्रत्येक प्रजाजन को युद्ध करनेके लिये उत्तम प्रकार शिक्षित कर। हे (अकृत्त-रुक्) अटूट प्रकाश वाले ! (त्वया युजा वयं) तेरी मित्रताके साथ हम (द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्मसि) हर्ष युक्त शब्द विजय के लिए करते हैं ॥ ४ ॥

स्वभावतः उत्साही पुरुष बहुतोंमें एकाध होता है, और इसलिए सब उसका सत्कार करते हैं। शिक्षा द्वारा ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि राष्ट्र का हर एक मनुष्य उत्साही हो जावे और जीवन युद्धमें अपना कार्य करनेमें समर्थ होवे। उत्साहसे ही प्रकाश बढता है और विजय की घोषणा करनेका सामर्थ्य प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

[८६६] हे (मन्यो) उत्साह ! (इन्द्रः इव विजेषकृत्) इन्द्रके समान विजय करनेवाला और (अनवब्रवः) उत्तम वचन बोलनेवाला होकर (इह अस्माकं अधिपाः भव) यहां हमारा स्वामी हो। हे (सहुरे) समर्थ ! (ते प्रियं नाम गृणीमसि) तेरा प्रिय नाम हम उच्चारते हैं। (तं उत्सं विद्म) और उस स्रोतको जानते हैं कि (यतः आ बभूथ) जहांसे तू प्रकट होता है ॥ ५ ॥

उत्साह ही इन्द्रके समान विजय करनेवाला है। उत्साह कभी निराशाके शब्द नहीं बुलवाता। इसलिए हमारे अन्तःकरणमें उत्साहका स्वामित्व स्थिर होवे। हम उन समर्थ महापुरुषोंका नाम लेते हैं, कि जिनके अन्तःकरणमें उत्साहका स्रोत बहता रहता है ॥ ५ ॥

आभूत्या सहजा वज्र सायक सहो बिभर्ष्यभिभूत उत्तरम् ।
क्रत्वा नो मन्यो सह मेद्यैधि महाधनस्य पुरुहूत संसृजि ६
संसृष्टं धनमुभयं समाकृत मस्मभ्यं दत्तां वरुणश्च मन्युः ।
भियं दधाना हृदयेषु शत्रवः पराजितासो अप नि लयन्ताम् ७ [१९] (८९८)

[८९७] हे (वज्र सायक सहभूत) वज्रधारी, बाणधारी और साथ रहनेवाले ! तू (आभूत्या सहजाः) ऐश्वर्यके साथ उत्पन्न होनेवाला (उत्तरं सहः बिभर्षि) अधिक उत्तम बल धारण करता है । हे (पुरुहूत मन्यो) बहुत बार पुकारे गए उत्साह ! तू (क्रत्वा सह) कर्मशक्तिके साथ (मेदी) मित्र बनकर (महाधनस्य संसृजि) बडे धन प्राप्त करनेवाले महायुद्धके उत्पन्न होने पर (एधि) हमें प्राप्त हो ॥ ६ ॥

उत्साहके साथ सब शस्त्रास्त्र तैय्यार रहते हैं । उत्साहके साथ सब ऐश्वर्य रहते हैं । और उत्साह ही अधिक बलको धारण करता है । यह प्रशंसनीय उत्साह सदा हमारा साथी बने और उसके साथ रहनेसे जीवन युद्धमें हमारी विजय हो ॥६॥

[८९८] (मन्युः वरुणः च) उत्साह और श्रेष्ठत्वका भाव (उभयं धनं) दोनों प्रकारका धन अर्थात् (संसृष्टं) उत्पन्न किया हुआ और (सं-आकृतं) संग्रह किया हुआ (अस्मभ्यं दत्तां) हमें दें । (हृदयेषु भियः दधानाः शत्रवः) हृदयोंमें भयोंको धारण करनेवाले शत्रु (पराजितासः अप नि लयन्तां) पराजित होकर दूर भाग जावें ॥ ७ ॥

उत्साह और वरिष्ठता ये दो गुण साथ साथ रहते हैं और ये सब धन प्राप्त कराते हैं । स्वयं उत्पन्न किया हुआ धन इनसे प्राप्त होता है । उत्साही पुरुषके शत्रु मनमें डरते हुए परास्त होकर जाते हैं ॥ ७ ॥

यशका मूल मंत्र

मनुष्य सदा यश प्राप्त करनेकी इच्छा करता है, परन्तु बहुत थोडे मनुष्योंको पता है कि मनमें उत्साह रहनेसेही यश प्राप्त होनेकी सम्भावना होती है । और कोई दूसरा मार्ग यश प्राप्त होनेका नहीं है । इस सूक्तमें इसी उत्साहको प्रेरक देवता मानकर उसका वर्णन किया है । जो पाठक यशस्वी होना चाहते हैं, वे इस सूक्तका मनन करें, और उत्साहको यश देनेवाला जानकर अपने मनमें उत्साहको यश देनेवाला जानकर अपने मनमें उत्साहकी स्थापना करके जगत्में यशस्वी बनें । यशस्वी बननेका उपाय जो तृतीय मंत्रमें कहा है, सबसे प्रथम देखने योग्य है—

त्वं वशी (शत्रून्) वशं नयासे । मं. ३ ॥

' स्वयं तू पहले वशी अर्थात् संयमी बन, अपने आपको तू सबसे प्रथम वशमें कर, पश्चात् तू अपने शत्रओंको वशमें कर सकेगा । ' शत्रुओंको वशमें करनेका काम उतना कठिन नहीं है, जितना अपने अन्तःकरणको वशमें करनेका कार्य है । जिन्होंने अपने आपको वशमें कर लिया उन्होंने मानों सब शत्रुओंको वशमें कर लिया ।

सब उद्धार अपने हृदयसे प्रारम्भ होता है, इसलिए शत्रुको वशमें करनेका कार्य भी अपने हृदयसेही प्रारम्भ होना चाहिए । हृदयके अन्दर कामक्रोधादि अनेक शत्रु हैं, जिनको परास्त करनेसे अथवा उनको वशमें करनेसेही मनुष्यका बल बढता है, और पश्चात् वह शत्रुको वशमें करनेमें समर्थ होता है । ' अपने आपको वशमें करो, तब तुम शत्रुको वशमें कर सकोगे । ' यह उन्नतिका नियम है ।

उत्साहका महत्त्व

वेदमें ' मन्यु ' शब्द उत्साह अर्थमें आता है, जिसको ' क्रोध ' अर्थ वाला मानकर अर्थका अनर्थ करते हैं । इस सूक्तमें भी ' मन्यु ' शब्द उत्साह अर्थमें है । जब यह उत्साह अपने (स-रथं) मनरूपी रथपर चढता है, उस समय मनुष्य (हर्षमाणाः) प्रसन्न चित्त होते हैं । उनका (हृषितासः) मन कभी निराशायुक्त नहीं होता । आनन्दसे सब कार्य करनेमें समर्थ होता है । उत्साहसे (मर्-उत-वन) मरनेकी अवस्थामें भी उठनेकी आशा बनी रहती है । कैसी भी

(८५) [सप्तमोऽनुवाकः ॥७॥ सू० ८५-९०]

४७ सावित्री सूर्या ऋषिका । १-५ सोमः, ६-१६ सूर्याविवाहः, १७ देवाः, १८ सोमार्कौ, १९ चन्द्रमाः,
२०-२८ नृणां विवाहमन्त्रा आशीःप्रायाः, २९-३० वधूवासःसंस्पर्शनिन्दा,
३१ दम्पत्योर्यक्ष्मनाशनं, ३२-४७ सूर्या सावित्री । अनुष्टुप्; १४, १९-२१, २३-२४,
२६, ३६-३७, ४४ त्रिष्टुप्; १८, २७, ४३ जगती; ३४ उरोबृहती ।

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः ।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः १
सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही ।
अथो नक्षत्राणामेषा मुपस्थे सोम आहितः २
सोमं मन्यते पपिवान् यत् संपिंषन्त्योषधिम् ।
सोमं यं ब्रह्माणो विदु र्न तस्याश्नाति कश्चन ३

कठोर आपत्ति क्यों न आजाए, मन सदा उल्लसित रहता है । उत्साहसे मनुष्य (अग्निः रूपाः नरः) अग्निके समान तेजस्वी बनते हैं । (शत्रून् हत्वा) शत्रुओंको मारनेका सामर्थ्य उत्पन्न होता है । जिस मनुष्यमें यह उत्साह अन्तः शक्तियोंका (नः सेनानीः) संचालक सेनापति जैसा बनता है, वहां (ओजः मिमानः) बल बढता है और (मृधः विनुदस्व) शत्रुओंको दूर करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है । उत्साहसे (उग्रं पाजः) विलक्षण उग्र बल बढता है । जिसके सामने (ननु आररुध्रे) कोई शत्रु ठहर नहीं सकता अर्थात् यह उत्साही पुरुष सब शत्रुओंको रोक रखता है, पास नहीं आने देता । राष्ट्रमें (विशं विशं युद्धाय सं शिशाधि) हर एक मनुष्यको ऐसी शिक्षा देनी चाहिए कि जिस शिक्षाको प्राप्त करनेसे हर एक मनुष्य अपने जीवन युद्धमें निश्चयपूर्वक विजय प्राप्त करनेके लिए समर्थ हो जावे । (विजयाय घोषं कृण्मसि) विजयकी आनन्दध्वनिही मनुष्य करें; और कभी निराशाके कीचडमें न फंसें । यह उत्साह (विजेष-कृत्) विजय प्राप्त करानेवाला है । इस समय जो इन्द्रादिकोंने विजय प्राप्त की है, वह इसी उत्साहके बल परही की है । एकबार मनमें जो मनुष्य पूर्ण निरुत्साही बन जाता है, वह आगे जीवित नहीं रहता । अर्थात् जीवन भी इस उत्साह पर निर्भर रहता है । इस लिए हमारे मन (अस्माकं अधिपाः) स्वामी यह उत्साह बने और कभी हमारे मनमें उत्साहहीनता न आवे । यह उत्साह ऐसा है, कि जिसके (सह-भूत) साथ बल उत्पन्न हुआ है । अर्थात् जहां उत्साह उत्पन्न होगा, वहां निस्सन्देह बल उत्पन्न होगा । इसलिए हरएक मनुष्यको चाहिए कि वह अपने मनमें उत्साह सदा स्थिर रखनेका प्रयत्न करे और कभी निराशाके विचार मनमें आने न दें । इसी उत्साहसे सब प्रकारके धन मनुष्य प्राप्त कर सकता है । शत्रुको परास्त करता है और विजयी होता हुआ इहलोक और परलोकमें आनन्दसे विचरता है ।

[८५]

[८६९] (सत्येन भूमिः उत्तभिता) देवोंमें सत्यरूप ब्रह्माने पृथिवीको आकाशमें धारण किया है । (सूर्येण द्यौः उत्तभिता) सूर्यने द्युलोकको स्तंभित किया है, धारण किया है । (ऋतेन आदित्याः तिष्ठन्ति) यज्ञके द्वारा देव रहते हैं । (दिवि सोमः अधि श्रितः) द्युलोकमें सोम ऊपर अवस्थित है ॥ १ ॥

[८७०] (सोमेन आदित्याः बलिनः) सोमसेही इन्द्रादि देव बलवान् होते हैं । (सोमेन पृथिवी मही) सोमके द्वारा ही पृथिवी महान् होती है । (अथो एषां नक्षत्राणां उपस्थे सोमः आहितः) और इन नक्षत्रोंके बीचमें सोम रखा गया है ॥ २ ॥

[८७१] (यत् ओषधिं संपिषन्ति पपिवान् सोमं मन्यते) जब सोमरूपी वनस्पति ओषधिको पीसते हैं, उस समय लोग मानते हैं कि उन्होंने सोमपान कर लिया । परन्तु (यं सोमं ब्रह्माणः विदुः) जिस सोमको ब्रह्म जाननेवाले ज्ञानी लोग जानते हैं (तस्य कः चन न अश्नाति) उसको दूसरा कोई भी अयाज्ञिक खा नहीं सकता है ॥ ३ ॥

आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः ।
ग्राव्णामिच्छृण्वन् तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ४ (८७२)

यत् त्वा देव प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः ।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः ५ [२०]

रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी । सूर्याया भद्रमिद्वासो गाथयैति परिष्कृतम् ६
चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम् । द्यौर्भूमिः कोश आसीद् यदयात् सूर्या पतिम् ७
स्तोमा आसन् प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः ।
सूर्याया अश्विना वरा ऽग्निरासीत् पुरोगवः ८
सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा । सूर्यां यत् पत्ये शंसन्तीं मनसा सविताददात् ९
मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुत च्छदिः । शुक्रावनड्वाहावास्तां यदयात् सूर्या गृहम् १० [२१]

---

[८७२] हे (सोम) सोम ! (आच्छद् विधानैः गुपितः बार्हतैः रक्षितः) तू गुप्त विधि विधानोंसे रक्षित, बार्हत गणों (स्वान, भ्राज, अंघार्य आदि) से संरक्षित है ! तू (ग्राव्णाम् इत् शृण्वन् तिष्ठसि) पीसनेवाले पत्थरोंका शब्द सुनते ही रहता है । (ते पार्थिवः न अश्नाति) तुझे पृथिवीका कोई भी सामान्य जन नहीं खा सकता ॥ ४ ॥

[८७३] हे (देव) सोमदेव ! (यत् त्वा प्रपिबन्ति ततः पुनः आ प्यायसे) जब लोग तेरा ओषधिरूपमें पान करते हैं, उस समय तू बारबार पिया जाता है । (वायुः सोमस्य रक्षिता) वायु तुझ सोमकी रक्षा करता है; (मासः समानां आकृतिः) जिस प्रकार महीने वर्षकी रक्षा करते हैं ॥ ५ ॥

[८७४] (रैभी अनुदेयी आसीत्) रैभी (कुछ वेदमंत्र) विवाहके अनन्तर विवाहिताकी सखी हुई थीं । (नाराशंसी न्योचनी) मनुष्योंसे गाई हुई ऋचाएं उसकी दासी हुई थीं । (सूर्यायाः वासः भद्रं गाथया परिष्कृतं एति) सूर्याका आच्छादन वस्त्र अति सुंदर था और वह गाथासे सुशोभित हुआ था ॥ ६ ॥

[८७५] (यत् सूर्या पतिं अयात्) जिस समय सूर्या पतिके गृहमें गई, (चित्तिः उपबर्हणं आः) उस समय उत्तम विचार ही चादर था । (अभि-अञ्जनं चक्षुः) काजल युक्त नेत्र थे । (द्यौः भूमिः कोशः आसीत्) आकाश ओर पृथिवी ही उसके खजाने थे ॥ ७ ॥

[८७६] (स्तोमाः प्रतिधयः आसन्) स्तोत्रही सूर्याके रथ चक्रके डंडे थे; (छन्दः कुरीरं ओपशः) कुरीर नामक छन्दसे रथ सुशोभित किया था; (सूर्यायाः अश्विना वरा) सूर्याके वर अश्विनी कुमार थे और (पुरः गवः अग्निः आसीत्) अग्रगामी अग्नि था ॥ ८ ॥

[८७७] (सोमः वधूयुः अभवत्) सोम वधूकी कामना करनेवाला था; (उभा अश्विना वरा) दोनों अश्विनी कुमार उसके पति स्वीकृत किये गये । (यत् पत्ये शंसन्तीं सूर्यां मनसा सविता अददात्) जब पतिकी इच्छा करनेवाली सूर्याको सविताने मनःपूर्वक प्रदान किया ॥ ९ ॥

[८७८] (यत् सूर्या गृहं अयात्) जब सूर्या अपने पतिके गृहमें गयी, तब (अस्याः अनः मनः आसीत्) उसका रथ उसका मन ही था; (उत द्यौः च्छदिः आसीत्) और आकाश ऊपर की छत थी; (शुक्रौ अनड्वाहौ आस्ताम्) सूर्य और चन्द्र उसके रथ वाहक हुए ॥ १० ॥

ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावितः ।
श्रोत्रं ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचरः ११
शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः । अनो मनस्मयं सूर्या ऽऽरोहत् प्रयती पतिम् १२
सूर्याया वहतुः प्रागात् सविता यमवासृजत् । अघासु हन्यन्ते गावो ऽर्जुन्योः पर्युह्यते १३
यदश्विना पृच्छमानावयातं त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः ।
विश्वे देवा अनु तद्वामजानन् पुत्रः पितराववृणीत पूषा १४
यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप । क्वैकं चक्रं वामासीत् क्व देष्ट्राय तस्थथुः १५ [२२]

द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदुः । अथैकं चक्रं यद्गुहा तदद्धातय इद्विदुः १६
सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च । ये भूतस्य प्रचेतस इदं तेभ्योऽकरं नमः १७
पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीळन्तौ परि यातो अध्वरम् ।
विश्वान्यन्यो भुवनाभिचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायते पुनः १८

---

[८७९] हे सूर्यं देवि ! (ते ऋक्सामाभ्यां अभिहितो गावौ सामनौ इतः) तेरें मनरूप रथके ऋक् और सामके द्वारा वर्णित सूर्य-चन्द्ररूप बैल शान्त रहते हुए एक दूसरेके सहायक होकर चलते हैं। (ते श्रोत्रं चक्रे आस्ताम्) वे दोनों कान मनरूप रथके दो चक्र हुए । (दिवि चराचरः पन्थाः) रथका चलनेका मार्ग आकाश हुआ ॥ ११ ॥

[८८०] (यात्याः ते चक्रे शुची) जाते हुए तेरे रथके दोनों चक्र कान हुए । (व्यानः अक्षः आहतः) रथका धुरा वायु था। (पतिं प्रयती सूर्या मनस्मयं अनः आरोहत्) पतिके गृहको जानेवाली सूर्या मनोमय रथपर आरूढ हुई ॥ १२ ॥

[८८१] (सूर्यायाः वहतुः यं सविता अवासृजत् प्र-अगात्) पतिगृहमें जाते समय पिता सूर्यने प्रेमसे दिया हुआ सूर्याका गौ आदि धन, पहले ही भेजा गया था । (अघासु गावः हन्यन्ते) मघा नक्षत्रमें बिदाईमें दी गई गायोंको डंडेसे हांका जाता है । (अर्जुन्योः परि उह्यते) और फल्गुनी नक्षत्रमें कन्याको पतिके घर पहुंचाया जाता है ॥ १३ ॥

[८८२] हे (अश्विना) अश्विद्वय ! (यत् त्रिचक्रेण सूर्यायाः वहतुं पृच्छमानौ अयातम्) जिस समय तीन चक्रके रथसे सूर्याके विवाहकी बात पूछनेके लिये तुम आये थे; (तत् वां विश्वे देवाः अनु अजानन्) उस समय सारे देवोंने तुम्हारे कार्यको अनुमति दी थी; और (पितरौ पुत्रः पूषा वृणीत) तुम्हारे पुत्र पूषाने तुम्हें वरण किया था ॥ १४ ॥

[८८३] हे (शुभस्पती) अश्विद्वय ! (यत् सूर्या वरेयं उप अयातम्) जब तुम सूर्याको मिलनेके लिये सविताके पास आये थे, तब (वां एकं चक्रं क आसीत्) तुम्हारे रथका एक चक्र कहां था ? (देष्ट्राय क तस्थथुः) और तुम परस्पर दान-आदान करनेके लिये तैयार थे तब तुम कहां रहते थे ? ॥ १५ ॥

[८८४] हे (सूर्ये) सूर्ये ! (ते द्वे चक्रे ऋतुथा ब्रह्माणः विदुः) तेरे रथके सूर्य-चन्द्रात्मक दो चक्र जो समयानुसार चलनेवाले प्रख्यात हैं, वे ब्राह्मण जानते हैं । (अथ) और (एकं चक्रं यत् गुहा तत् अद्धातयः इत् विदुः) एक तीसरा संवत्सरात्मक चक्र जो गुप्त था, उसको विद्वान् ही जानते हैं ॥ १६ ॥

[८८५] (सूर्यायै देवेभ्यः मित्राय वरुणाय) सूर्या, देव, मित्र, वरुण, (ये च भूतस्य प्रचेतसः) और जो भी सब प्राणिमात्रके शुभचिन्तक हितप्रद हैं, (तेभ्यः इदं नमः अकरम्) उन्हें मैं नमस्कार करता हूं ॥ १७ ॥

[८८६] (एतौ शिशू पूर्वापरं मायया चरतः) ये दोनों शिशु-सूर्य और चन्द्र- अपने तेजसे पूर्व-पश्चिममें विचरण करते हैं; (क्रीळन्तौ अध्वरं परि यातः) और ये क्रीडा करते हुए यज्ञमें जाते हैं । (अन्यः विश्वानि भुवना अभिचष्टे) इन दोनोंमेंसे एक सूर्य सर्व भुवनोंको देखता है और (अन्यः ऋतून् विदधत् पुनः जायते) दूसरा चन्द्र ऋतुओं, दो मासरूप काल विभागोंको निर्माण करता हुआ बारबार उत्पन्न होता है ॥ १८ ॥

नवोंनवो भवति जायमानो ऽह्नां केतुरुषसामेत्यग्रम् ।
भागं देवेभ्यो वि दधात्यायन् प्र चन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः १९
सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् ।
आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व २० [२३]

उदीर्ष्वातः पतिवती ह्येषा विश्वावसुं नमसा गीर्भिरीळे ।
अन्यामिच्छ पितृषदं व्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि २१
उदीर्ष्वातो विश्वावसो नमसेळामहे त्वा ।
अन्यामिच्छ प्रफर्व्यं सं जायां पत्या सृज २२ (८९०)

अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्था येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम् ।
समर्यमा सं भगो नो निनीयात् सं जास्पत्यं सुयममस्तु देवाः २३

---

[८८७] (जायमानः नवोनवो भवति) यह चन्द्र प्रतिदिन पुनः उत्पन्न होकर नया नया ही होता है। (अह्नां केतुः उषसां अग्रं एति) वह दिनोंका सूचक कृष्ण पक्षकी रातोंमें प्रातःकालोंके आगे ही आता है; अथवा दिनोंका सूचक सूर्य प्रतिदिन नया होकर प्रातःकाल सामने आता है। (आयन् देवेभ्यः भागं विदधाति) वह आता हुआ देवोंको यज्ञ-हवि भाग देता है। (चन्द्रमाः दीर्घं आयुः प्र तिरते) चन्द्रमा आकर आनंद देता हुआ दीर्घायु करता है ॥ १९ ॥

[८८८] हे सूर्ये ! (सु-किंशुकं शल्मलिं) अच्छे किंशुक और शल्मलिकी लकडीसे बने हुए (विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सु-वृतं सु-चक्रं) नाना रूपवाले, सोनेके रंगवाले, उत्तम वेष्टनोंसे युक्त, उत्तम चक्रोंसे युक्त (वहतुं आ रोह) इस रथ पर चढो। और (पत्ये) पतिके लिए (अमृतस्य लोकं स्योनं कृणुष्व) अमृतके लोकको सुखकारी बनाओ।

यह वधू उत्तम लकडीसे निर्मित, सुन्दर, सोनेकी नक्काशीसे युक्त, उत्तम चक्रवाले रथपर चढकर अमर पदके मार्गपर आक्रमण करे। यह धर्मपत्नीका विवाह मंगल पतिके घरवालोंके लिए सुखकारक होवे ॥ २० ॥

[८८९] हे विश्वावसो ! (अतः उदीर्ष्व) इस स्थानसे उठो, क्योंकि (एषा हि पतिवती) यह स्त्री पतिवाली हो गई है। मैं (विश्वावसुं नमसा गीर्भिः ईळे) विश्वावसुकी नमस्कारों और वाणियोंसे स्तुति करता हूं। तुम (पितृषदां व्यक्तां अन्यां इच्छ) पितृकुलमें रहनेवाली, यौवना दूसरी लडकीकी इच्छा करो, (सः ते भागः) वह तुम्हारा भाग है, (जनुषा तस्य विद्धि) जन्मसे उसको जानो ॥ २१ ॥

पितृ सदं— पितृकुलमें रहनेवाली ।

[८९०] हे विश्वावसो ! (अतः उदीर्ष्व) इस स्थानसे उठो, (त्वा नमसा इळामहे) तुम्हारी नमस्कारसे स्तुति करते हैं और तुम (अन्यां प्रफर्व्यं इच्छ) दूसरे बृहत् नितम्बिनी की इच्छा करो, और उस (जायां पत्या सं सृज) स्त्रीको पतिके साथ संयुक्त करो ॥ २२ ॥

[८९१] (पन्थाः अनृ-ऋक्षराः ऋजवः सन्तु) सब मार्ग कांटोंसे रहित और सरल हों, (येभिः न सखायः वरेयं यन्ति) जिनसे हमारे मित्र कन्याके घरके प्रति पहुंचते हैं। और (अर्यमा भगः नः सं निनीयात्) अर्यमा और भग देव हमें अच्छी तरह ले जावें। हे देवों ! (जास्पत्यं सुयमं अस्तु) ये पत्नी और पति अच्छे मिथुन, जोडे हों।

वर तथा वधूके घर जानेके मार्ग कंटकरहित और सरल हों। देव गण इन जोडोंको सुखी और समृद्ध करे ॥ २३ ॥

प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवः ।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके ऽरिष्टां त्वा सह पत्या दधामि २४
प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम् ।
यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति २५ [२४]

पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्या ऽश्विना त्वा प्र वहतां रथेन ।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि २६
इह प्रियं प्रजया ते समृध्यता मस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि ।
एना पत्या तन्वं सं सृजस्वा ऽधा जिव्री विदथमा वदाथः २७
नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते ।
एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बध्यते २८

---

[८९२] (त्वा वरुणस्य पाशात् प्र मुंचामि) तुझे मैं वरुणके बन्धनोंसे मुक्त करता हूं, (येन त्वा सुशेवः सविता अवध्नात्) जिससे तुझे सेवा करने योग्य सविताने बांधा था। (ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके) सदाचारीके घरमें और सत्कर्म कर्ताके लोकमें (अरिष्टां त्वा) हिंसाके अयोग्य तुझको (पत्या सह दधामि) पतिके साथ स्थापित करता हूं ॥ २४ ॥

[८९३] (इतः प्र मुंचामि न अमुतः) यहां [पितृकुल] से तुझे मुक्त करता हूं, वहां [पतिकुल]से नहीं (अमुतः सुबद्धां करं) वहांसे तुझे अच्छी प्रकार बांधता हूं। हे (मीढ्वः इन्द्र) दाता इन्द्र ! (यथा इयं) जिससे यह वधू (सुपुत्रा सुभगा असति) उत्तम पुत्रवाली और उत्तम भाग्यसे युक्त होवे।

वधूका सम्बन्ध पितृकुलसे छूटे, परन्तु पतिकुलसे न छूटे। पतिकुलसे सम्बन्ध सुदृढ होवे। परमेश्वर इस वधूको पतिकुलमें उत्तम पुत्रोंसे युक्त करे, और उत्तम भाग्यसे युक्त करे ॥ २५ ॥

[८९४] (पूषा त्वा इतः हस्तगृह्य नयतु) पूषा तुझे यहांसे हाथ पकडकर चलावे, आगे (अश्विना त्वा रथेन प्रवहतां) अश्वि देव तुझे रथमें बिठलाकर पहुंचावें। अपने पतिके (गृहान् गच्छ) घरको जा। (यथा त्वं गृहपत्नी वशिनी असः) वहां तू घरकी स्वामिनी और सबको वशमें रखने वाली हो। वहां (त्वं विदथं आ वदासि) तू उत्तम विवेक का भाषण कर ॥ २६ ॥

वधू का हाथ पकडकर भाग्य का देव उसको पहिले चलावे, अश्विनी देव रथमें बिठलाकर विवाहके पश्चात् पतिके घर पहुंचावे। इस तरह वधू पतिके घर पहुंचे। वहां पतिके घरकी स्वामिनी और सबको अपने वशमें रखनेवाली होकर रहे। ऐसी स्त्री ही योग्य प्रसंगमें उत्तम संमति दे सकती है ॥ २६ ॥

[८९५] (इह ते प्रजया प्रियं संमृध्यतां) यहां तेरी सन्तानके साथ प्रियकी वृद्धि हो, और तू (अस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि) इस घरमें गृहस्थधर्मके लिए जागती रह। (एना पत्या तन्वं सं सृजस्व) इस पतिके साथ अपने शरीरको संयुक्त कर। (अध जिव्री) और वृद्ध होनेपर तुम दोनों (विदथं आ वदाथः) उत्तम उपदेश करो।

इस धर्मपत्नीकी सन्तान उत्तम सुखमें रहें। यह धर्मपत्नी अपना गृहस्थाश्रम उत्तम रीतिसे चलावे। यह धर्मपत्नी अपने पतिके साथ सुखसे रहे। जब इस तरह धर्ममार्गसे गृहस्थाश्रम चलाते हुए पति-पत्नी वृद्ध हो जाएं तब वे दोनों उत्तम वचनोंका उपदेश अपनी सन्तानोंको दें ॥ २७ ॥

[८९६] (नीललोहितं भवति) नीला और लाल बनती है, क्रोधयुक्त होती है, तब (कृत्यासक्तिः व्यज्यते) विनाशक इच्छा बढती है (अस्याः ज्ञातयः एधन्ते) इसकी जातिके मनुष्य बढते हैं। और (पतिः बन्धेषु बध्यते) पति बन्धनमें बांधा जाता है।

परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु ।
कृत्यैषा पद्वती भूत्व्या जाया विशते पतिम् २९
अश्रीरा तनूर्भवति रुशती पापयामुया ।
पतिर्यद्वध्वो३ वाससा स्वमङ्गमभिधित्सते ३० [२५]

ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनादनु ।
पुनस्तान् यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः ३१
मा विदन् परिपन्थिनो य आसीदन्ति दंपती ।
सुगेभिर्दुर्गमतीता—मप द्रान्त्वरातयः ३२
सुमङ्गलीरियं वधू—रिमां समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वाया—ऽथास्तं वि परेतन ३३
तृष्टमेतत् कटुकमेत—दपाष्ठवद्विषवन्नैतदत्तवे ।
सूर्यां यो ब्रह्मा विद्यात् स इद्वाधूयमर्हति ३४

पतिकुलमें वधूके अधर्माचरण करनेपर खून खराबा होता है, उस दुराचारिणी वधूकी विनाशक बुद्धि बढ जाती है। उसके पिताके सम्बन्धी लोग जमा हो जाते हैं। और इस प्रकार बचारा पति बन्धनमें फंसता है। (इसलिए कन्याको सुशिक्षा देनी चाहिए) ॥ २८ ॥

[८९७] (शामुल्यं परा देहि) शरीरके मलसे मलिन वस्त्रका त्याग करो। (ब्रह्मभ्यः वसु विभज) प्रायश्चित्तार्थ ब्राह्मणोंको धन दो। (एषा कृत्या पद्वती जाया भूत्वी पतिं आ विशते) यह कृत्या चली गयी है और अब पत्नी होकर पतिमें सम्मिलित हो रही है ॥ २९ ॥

[८९८] (पतिः यत् वध्वः वाससा स्वं अङ्गं अभिधित्सते) यदि पति वधूके वस्त्रसे अपने शरीरको ढकनेको चाहे, तो पतिका (तनूः अश्रीराः भवति) शरीर श्रीरहित, रोगादिसे दूषित हो जाता है। (रुशती अमुया पापया) इस वधूके पापयुक्त शरीरसे दुःख कष्टसे पीडा देनेवाली होती है ॥ ३० ॥

[८९९] (वध्वः चन्द्रं वहतुं ये यक्ष्माः जनात् अनु यन्ति) वधूसे वा वधूके सम्बन्धिनीयोंसे जो व्याधियां तेजःपुंज वरके शरीरको प्राप्त होती हैं, (यज्ञियाः देवाः तान् पुनः नयन्तु यतः आगताः) यज्ञार्ह इन्द्रादि देव उनको उनके स्थानपर फिर लौटा दे, जहांसे वे पुनः आ जाती हैं ॥ ३१ ॥

[९००] (ये परिपन्थिनः दम्पती आसीदन्ति मा विदन्) जो विरोधी-शत्रुरूप होकर पति-पत्नी दोनोंके पास आते हैं, वे न प्राप्त हों। (सुगेभिः दुर्गं अतीताम्) वे सुगम मार्गोंसे दुर्गम देशमें जांय, (अरातयः अप द्रान्तु) शत्रु लोग दूर भाग जावें ॥ ३२ ॥

[९०१] (इयं वधूः सुमङ्गलीः) यह वधू शोभन कल्याणवाली है। (इमां समेत पश्यत) समस्त आशीर्वाद कर्ता आवें और इसे देखें। (अस्यै सौभाग्यं दत्त्वाय) इस विवाहिताको उत्तम सौभाग्यवती होनेका आशीर्वाद देकर (अथ अस्तं वि परेतन) अनन्तर सब अपने घर चले जायं ॥ ३३ ॥

[९०२] (एतत् तृष्टं एतत् कटुकं) यह वस्त्र दाहक, अग्राह्य, (अपाष्ठवत् विषवत्) मलिन और विषके समान घातक है। (एतत् अत्तवे न) यह व्यवहारके योग्य नहीं है। (यः ब्रह्मा सूर्यां विद्यात् सः इत् वाधूयं अर्हति) जो ब्राह्मण सूर्याको अच्छी प्रकार जानता है, वह ही वधूके वस्त्रको प्राप्त कर सकता है ॥ ३४ ॥

आशसनं विशसनमथो अधिविकर्तनम् ।
सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मा तु शुन्धति ३५ [२६]

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।
भगो अर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ३६ (९०४

तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या३ वपन्ति ।
या न ऊरू उशती विश्रयाते यस्यामुशन्तः प्रहराम शेपम् ३७

तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह ।
पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ३८

पुनः पत्नीमग्निरदा दायुषा सह वर्चसा ।
दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् ३९

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः ।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ४० [२७]

---

[९०३] (आशसनं विशसनं अथ अधिविकर्तनं) आशसन (झालर), विशसन (शिरोभूषण) और अधिविकर्तन (तीन भागवाला वस्त्र) इस प्रकारके वस्त्र पहनी हुई (सूर्यायाः रूपाणि पश्य) सूर्याके रूप होते हैं, उन्हें तू देख। (तानि ब्रह्मा तु शुन्धति) उनको वेदज्ञ ब्राह्मण ही शुद्ध करता है ॥ ३५ ॥

[९०४] हे वधू ! (ते हस्तं सौभगत्वाय गृभ्णामि) तेरा हाथ में सौभाग्य वृद्धिके लिये ग्रहण करता हूं। (यथा मया पत्या जरदष्टिः असः) जिस कारणसे तू मुझ पतिके साथ वृद्धावस्थापर्यंत पहुंचना (भगः अर्यमा सविता पुरंधिः देवाः त्वा मह्यं गार्हपत्याय अदुः) भग, अर्यमा, सविता और पुरंधिः देवोंने तुझे मुझे गृहस्थधर्मका पालन करनेके लिये प्रदान किया है ॥ ३६ ॥

[९०५] हे (पूषन्) पूषा ! (यस्यां मनुष्याः बीजं वपन्ति) जिस स्त्रीके गर्भमें मनुष्य रेतरूप बीज बोते हैं, अर्थात् रेतःस्खलन करते हैं, (या नः उशती ऊरू विश्रयाते) जो हम पुरुषोंकी कामना करती हुई दोनों जांघोंका आश्रय लेती है और (यस्यां उशन्तः शेपं प्रहराम) जिसमें हम कामवश होकर अपने प्रजनन इंद्रियका प्रवेश कराते हैं। (शिवतमां तां परयस्व) अत्यंत कल्याणमय गुणोंवाली उसको तू प्रेरित कर ॥ ३७ ॥

[९०६] हे (अग्ने) अग्नि ! (तुभ्यं अग्रे वहतुना सह सूर्यां पर्यवहन्) गन्धर्वोंने तुझे प्रथम दहेज आदि सहित सूर्याको दिया और तुमने दहेजके साथ उसे सोमको अर्पण किया। (पुनः पतिभ्यः प्रजया सह जायां दाः) और तू हम पतिको उत्तम सन्तानसहित स्त्री प्रदान कर, अर्थात् हम विवाहितोंको उत्तम सन्तानसे सम्पन्न कर ॥ ३८ ॥

[९०७] (अग्निः पुनः आयुषा वर्चसा सह पत्नीं अदात्) अग्निने पुनः दीर्घ आयु और तेज, कान्तिसहित पत्नीको दिया। (अस्याः यः पतिः दीर्घायुः शरदः शतं जीवाति) इसका जो पति है, वह दीर्घायु होकर सौ वर्षतक जीवे ॥ ३९ ॥

[९०८] (सोमः प्रथमः विविदे गन्धर्वः उत्तरः विविदे) सोमने सबसे प्रथम तुम्हें पत्नीरूपसे प्राप्त किया, उसके अनन्तर गन्धर्वने प्राप्त किया। (तृतीयः ते पतिः अग्निः) तीसरा तेरा पति अग्नि है। (तुरीयः मनुष्यजाः) चौथा मनुष्य वंशज तेरा पति है ॥ ४० ॥

सोमो॑ दददन्धर्वाय॑ गन्ध॒र्वो द॑दद॒ग्नये॑ ।
र॒यिं च॑ पु॒त्राँश्चा॑दा॒द॒ग्निर्मह्य॒मथो॑ इ॒माम् ४१

इ॒हैव स्तं॒ मा वि यौ॑ष्टं॒ विश्व॒मायु॒र्व्य॑श्नुतम् ।
क्री॒ळन्तौ॑ पु॒त्रैर्नप्तृ॑भि॒र्मोद॑मानौ॒ स्वे गृ॒हे ४२

आ नः॑ प्र॒जां ज॑नयतु प्र॒जाप॑तिराजर॒साय॒ सम॑नक्त्वर्य॒मा ।
अदु॑र्मङ्ग॒लीः प॑तिलो॒कमा वि॑श॒ शं नो॑ भव द्वि॒पदे॒ शं चतु॑ष्पदे ४३

अघो॑रचक्षु॒रप॑तिघ्न्येधि शि॒वा प॒शुभ्यः॑ सु॒मनाः॑ सु॒वर्चाः॑ ।
वी॒र॒सूर्दे॒वका॑मा स्यो॒ना शं नो॑ भव द्वि॒पदे॒ शं चतु॑ष्पदे ४४

इ॒मां त्वमि॑न्द्र मीढ्वः सुपु॒त्रां सु॒भगां॑ कृणु ।
दशा॑स्यां पु॒त्राना धे॑हि॒ पति॑मेकाद॒शं कृ॑धि ४५

स॒म्राज्ञी॒ श्वशु॑रे भव स॒म्राज्ञी॑ श्व॒श्र्वां भ॑व ।
नना॑न्दरि स॒म्राज्ञी॑ भव स॒म्राज्ञी॒ अधि॑ दे॒वृषु॑ ४६

सम॑ञ्जन्तु॒ विश्वे॑ दे॒वाः समापो॒ हृद॑यानि नौ ।
सं मा॑त॒रिश्वा॒ सं धा॒ता समु॒ देष्ट्री॑ दधातु नौ ४७ [२८] (९१५)

[९०९] (सोमः गन्धर्वाय ददत्) सोमने उस स्त्रीको गन्धर्वको दिया। (गन्धर्वः अग्नये ददत्) गन्धर्वने अग्निको दिया। (अथ उ इमां अग्निः रयिं पुत्रान् च मह्यं अदात्) अनन्तर इसको अग्नि ऐश्वर्य और संततिके साथ मुझे प्रदान करता है ॥ ४१ ॥

[९१०] हे वर और वधू ! (इह एव स्तम्) तुम दोनों यहीं रहो । (मा वि यौष्टम्) कभी परस्पर पृथक् नहीं होओ । (विश्वं आयुः वि अश्नुतम्) संपूर्ण आयुको विशेष रूपसे प्राप्त करो । (स्वे गृहे पुत्रैः नप्तृभिः मोदमानौ क्रीडन्तौ) अपने गृहमें रहकर पुत्र-पौत्रोंके साथ आमोद, आनंद और उनके साथ खेलते हुए रहो ॥ ४२ ॥

[९११] (प्रजापतिः नः प्रजां आ जनयतु) प्रजापति हमें उत्तम संतति देवे। (अर्यमा आजरसाय समनक्तु) अर्यमा वृद्धावस्थापर्यंत हमारी रक्षा करे। तू (अदुर्मङ्गलीः पतिलोकं आ विश) मङ्गलमयी होकर पतिके गृहमें प्रवेश कर। (नः द्विपदे शं भव चतुष्पदे शम्) तू हमारे आप्त बन्धुओंके लिये तथा पशुओंके लिये सुखकारिणी हो ॥ ४३ ॥

[९१२] हे वधू ! तू (अघोरचक्षुः अपतिघ्नी एधि) शांत दृष्टिवाली और पतिको दुःख न देनेवाली होओ। (पशुभ्यः शिवा सुमनाः सुवर्चाः) पशुओंके लिये हितकारी, उत्तम शुभ विचारयुक्त मनवाली, तेजस्वी, (वीरसूः देवकामा स्योना) वीर प्रसविनी और देवोंकी भक्ति करनेवाली सुखकारी होओ। (नः द्विपदेशं भव चतुष्पदे शम्) हमारे द्विपादोंके लिये और चतुष्पदोंके लिये कल्याणमयी होओ ॥ ४४ ॥

[९१३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं इमां सुपुत्रां सुभगां कृणु) तू इसको उत्तम पुत्रोंसे युक्त और सौभाग्यशाली कर। (अस्यां दश पुत्रान् आ धेहि) इसको दस पुत्र प्रदान कर। (पतिं एकादशं कृधि) और पतिको लेकर इसे ग्यारह व्यक्तिवाली बना ॥ ४५ ॥

[९१४] हे वधू ! (श्वसुरे श्वश्र्वां ननान्दरि देवृषु सम्राज्ञी अधि भव) तू श्वशुर, सास, ननद और देवरोंकी सम्राज्ञी -महारानीके सदृश होओ, सबके ऊपर प्रभुत्व कर ॥ ४६ ॥

[९१५] (विश्वे देवाः नौ हृदयानि समञ्जन्तु) समस्त देव हमारे दोनोंके हृदयोंको परस्पर मिला दें। (आपः मातरिश्वा धाता देष्ट्री नौ सं उ दधातु) जल, वायु, धाता और सरस्वती हम दोनोंको संयुक्त करें ॥ ४७ ॥

[चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ व० १-३१] (८६)

(२३) इन्द्रः; ७, १३, २३ ऐन्द्रो वृषाकपिः; २-६, ९-१०, १५-१८ इन्द्राणी । इन्द्रः । पङ्क्तिः ।

वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत ।
यत्रामदद्वृषाकपि-रर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः १ (९१६)
परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः ।
नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः २
किमयं त्वां वृषाकपि-श्चकार हरितो मृगः ।
यस्मा इरस्यसीदु न्वर्यो वा पुष्टिमद्वसु विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ३
यमिमं त्वं वृषाकपिं प्रियमिन्द्राभिरक्षसि ।
श्वा न्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयु-र्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ४
प्रिया तष्टानि मे कपि-र्व्यक्ता व्यदूदुषत् ।
शिरो न्वस्य राविषं न सुगं दुष्कृते भुवं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ५ [१]

[८६]

[९१६] (सोतोः हि वि असृक्षत) मैं-इन्द्र-ने सोमाभिषव-सोमयाग करनेके लिये स्तोताओंको कहा था; परन्तु (देवं इन्द्रं न अमंसत) उन्होंने मुझ इन्द्रकी स्तुति नहीं की- वृषाकपिकी ही स्तुति की ! (यत्र पुष्टेषु अर्यः वृषाकपिः अमदत्) जहां सोमप्रवृद्ध यज्ञमें मेरे मित्र श्रेष्ठ स्वामी वृषाकपि (इन्द्रपुत्र) सोमपानसे प्रसन्न हुआ, तो भी (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) मैं इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हूं ॥ १ ॥

[९१७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अति व्यथिः वृषाकपेः परा हि धावसि) तू अत्यंत व्यथित होकर वृषाकपि पर धावा करता है । (अन्यत्र सोमपीतये नो अह प्र विन्दसि) तू दूसरी जगह सोमपानके लिये नहीं जाता है । (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) निश्चयसेही इन्द्र सबसे श्रेष्ठ है ॥ २ ॥

[९१८] हे इन्द्र ! (त्वां हरितः मृगः अयं वृषाकपिः) तुम्हारा हरितवर्ण मृगभूत इस वृषाकपिने (किं चकार) क्या भला किया है ? (यस्मै पुष्टिमत् वसु अर्यः नु वा इरस्यसि इत्) जिस कारण जिसे तू पुष्टिकर धन उदार होकर शीघ्र ही देता है । (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) वह इन्द्र निश्चित ही सबसे श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥

[९१९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं इमं यं प्रियं वृषाकपिं अभिरक्षसि) तू इस जिस प्रिय वृषाकपिकी रक्षा करता है, (अस्य कर्णे वराहयुः श्वा नु जम्भिषत्) इसके कानको वराहकी इच्छा करनेवाला कुत्ता शीघ्रही काटे । (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) इन्द्र सर्वश्रेष्ठ है ॥ ४ ॥

[९२०] (मे तष्टानि प्रिया व्यक्ता) मेरे लिये यजमानोंसे कल्पित, प्रिय और घृतयुक्त जो सामग्री रखी हुई थी, (कपिः व्यदूदुषत्) उसे वृषाकपिने सब प्रकारसे दूषित किया है, (अस्य शिरः नु राविषं) इसलिये मैं इसके मस्तकको अवश्य ही काट डालूं । (दुष्कृते सुगं न भुवम्) मैं इस दुष्ट कर्म करनेवालेको सुखकारी नहीं हो सकता । (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) इन्द्र सबसे श्रेष्ठ और महान् है ॥ ५ ॥

न मत् स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत् ।
न मत् प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ६
उवे अम्ब सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति ।
भसन्मे अम्ब सक्थि मे शिरो मे वीव हृष्यति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ७
किं सुबाहो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथुजाघने ।
किं शूरपत्नि नस्त्व मभ्यमीषि वृषाकपिं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ८
अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते ।
उताहमस्मि वीरिणी न्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ९
संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति ।
वेधा ऋतस्य वीरिणी न्द्रपत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः १० [२]

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम् ।
नह्यस्या अपरं चन जरसा मरते पति र्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ११

---

[९२१] (मत् स्त्री सुभसत्तरा न भुवत्) मुझसे बढकर कोई स्त्री भाग्यशालिनी नहीं है; और (सुयाशुतरा न) मुझसे अधिक कोई स्त्री अतिशय सुखी और सुपुत्रा नहीं है । (मत् प्रतिच्यवीयसी न) मुझसे बढकर दूसरी स्त्री पतिके पास जानेवाली नहीं है और (सक्थि उद्यमीयसी न) रतिसमयमें मुझसे अधिक दूसरी जांघोंको उठानेवाली कोई नहीं है । (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) इन्द्रही सर्वश्रेष्ठ है ॥ ६ ॥

[९२२] (उवे अम्ब) हे इन्द्राणी माता ! (सुलाभिके) हे सुखपूर्वक सब लाभ करानेवाली माता ! (यथा इव अङ्ग भविष्यति) जिस प्रकार तू कहती है वैसा ही निश्चित होवें । हे (अम्ब) माते ! (मे भसत्, मे सक्थि मे शिरः वीव हृष्यति) मेरे पिताके लिये तुम्हारा अङ्ग, जंघा और मस्तक प्रेमालापसे कोकिलादि पक्षीके समान सुख दायक होवे । (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) इन्द्र सबसे श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

[९२३] हे (सुबाहो) सुंदर बाहुवाली ! हे (स्वङ्गुरे) उत्तम अंगुलियोंवाली ! हे (पृथुष्टो) सुकेशि ! हे (पृथुजाघने) विशाल जांघोंवाली ! हे (शूरपत्नि) शूरपत्नी इन्द्राणि ! (त्वं नः वृषाकपिं किं अभ्यमीषि) तू हमारे वृषाकपिपर क्यों क्रुद्ध हो रही हो ? (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) इन्द्र सब जगत्में श्रेष्ठ है ॥ ८ ॥

[९२४] (अयं शरारुः मां अवीरां इव अभिमन्यते) यह घातक वृषाकपि मुझे पति-पुत्र-रहितके समानही मानता है । (उत इन्द्रपत्नी अहं वीरिणी मरुत्सखा अस्मि) और इन्द्रपत्नीमें पुत्रवती और मरुतोंके सहायतासे युक्त हूं । (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) मेरा पति इन्द्र सर्वश्रेष्ठ है ॥ ९ ॥

[९२५] (ऋतस्य वेधाः वीरिणी इन्द्रपत्नी नारी) सत्यकी विधात्री सत्यप्रतिपादक और पुत्रवती इन्द्रकी पत्नी मैं इन्द्राणी (संहोत्रं स्म समनं वा पुरा अव गच्छति) यज्ञमें वा संग्राममें पहले जाती है । इसलिये ही (महीयते) मेरी सर्वत्र स्तुति होती है । (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) इन्द्र सबसे श्रेष्ठ है ॥ १० ॥

[९२६] (आसु नारिषु इन्द्राणीं अहं सुभगां अश्रवम्) प्रसिद्ध स्त्रियोंमें इन्द्राणीको मैं सबसे अधिक भाग्यशाली करके सुनता हूं । (अपरं चन अस्याः पतिः जरसा नहि मरते) और अन्य पुरुषोंके समान इन्द्राणीका पति वृद्धावस्थासे मरता नहीं । (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) इन्द्र सबसे अधिक श्रेष्ठ है ॥ ११ ॥

नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते ।
यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषु गच्छति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः १२
वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे ।
घसत् त इन्द्र उक्षणः प्रियं काचित्करं हविर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः १३
उक्षणो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम् ।
उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः १४
वृषभो न तिग्मशृङ्गो ऽन्तर्यूथेषु रोरुवत् ।
मन्थस्त इन्द्र शं हृदे यं ते सुनोति भावयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः १५ [३] (९३०)
न सेशे यस्य रम्बते ऽन्तरा सक्थ्या३ कपृत् ।
सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः १६
न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते ।
सेदीशे यस्य रम्बते ऽन्तरा सक्थ्या३ कपृद् विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः १७

---

[९२७] हे (इन्द्राणि) इन्द्राणी ! (अहं सख्युः वृषाकपेः ऋते न ररण) मैं मेरा मित्र वृषाकपिके बिना नहीं आनंद प्रसन्न रहता । (अप्यम् प्रियं इदं हविः देवेषु यस्य गच्छति) सलिलयुक्त अत्यंत प्रिय यह वृषाकपिका हवि देवोंमें मेरे पास ही आता है । (इन्द्रः सर्वस्मात् उत्तरः) इन्द्र ही सबसे उत्तम है ॥ १२ ॥

[९२८] हे (वृषाकपायि) वृषाकपिकी माता ! हे (रेवति सुपुत्रे सुस्नुषे) धनवति, उत्तम पुत्रवाली, सुखदायिनी इन्द्राणी ! (ते इन्द्रः उक्षणः आदु घसत्) तेरा यह इन्द्र वृषोंको शीघ्रही खा जांय । (प्रियं काचित् करम् हविः) तेरे प्रिय और सुख देनेवाले हविका वह भक्षण करे । (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) इन्द्र सर्वश्रेष्ठ है ॥१३॥

[९२९] (मे पञ्चदश विंशतिं उक्षणः साकं पचन्ति) मेरे लिये इन्द्रायणीके द्वारा प्रेरित याज्ञिक लोग पन्द्रह–बीस बैल पकाते हैं । (उत अहं अद्मि) और मैं उन्हें खाकर (पीवः इत्) स्थूल–परिपुष्ट होता हूं । (मे उभा कुक्षी पृणन्ति) मेरी दोनों कुक्षियोंको याज्ञिक सोमसे भरते हैं । (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) इन्द्र सर्वश्रेष्ठ है ॥१४॥

[९३०] (तिग्मशृङ्गः वृषभः न यूथेषु अन्तः रोरुवत्) तीक्ष्ण सींगोंवाला सांड जिस प्रकार गौओंके बीच गर्जना करता हुआ रमता है, वैसेही तुम भी मेरे साथ रमण करो । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते हृदे मन्थः शं) तेरे हृदयके लिये मन्थन सुखदायक हो । (ते यं भावयुः सुनोति) तेरे लिये भक्ति करनेवाली इन्द्राणी जो सोमरस निचोडती है, वह भी आनंदकर हो । (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) इन्द्र सबसे श्रेष्ठ है ॥ १५ ॥

[९३१] हे इन्द्र ! (यस्य कपृत् सक्थ्या अन्तरा रम्बते) जिस पुरुषका जननाङ्ग दोनों जांघोंके बीच लम्बायमान है, (सः न ईशे) वह पुरुष मैथुन करनेमें समर्थ नहीं होता । (यस्य निषेदुषः रोमशं विजृम्भते) जिसके बैठनेपर लोमयुक्त जननेंद्रिय विशेष रूपसे फैलता है, (सः इत् ईशे) वह ही मैथुन कर सकता है । (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) इन्द्र ही सबसे श्रेष्ठ है ॥ १६ ॥

[९३२] इन्द्र कहता है– (यस्य निषेदुषः रोमशं विजृम्भते सः न ईशे) जिसके सोनेपर लोमयुक्त जननेंद्रिय फैलता है, वह मैथुन करनेमें समर्थ नहीं होता । (यस्य कपृत् सक्थ्या अन्तरा रम्बते, स इत् ईशे) जिसका लिङ्ग दोनों जांघोंके बीच लम्बायमान है, वही मैथुन करनेमें समर्थ होता है । (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) इन्द्र सबसे श्रेष्ठ है ॥ १७ ॥

अयमिंन्द्र वृषाकंपिः परंस्वन्तं हतं विंदत् ।
असिं सूनां नवं चरु॒मादेधंस्यान आचिंतं विश्वंस्मादिन्द्र उत्तंरः १८
अयमेंमि विचाकंशद् विचिन्वन् दासमार्यम् ।
पिबांमि पाकसुत्वंनो ऽभि धीरंमचाकशं विश्वंस्मादिन्द्र उत्तंरः १९
धन्वं च यत् कृन्तत्रं च कर्ति स्वित् ता वि योजंना ।
नेदींयसो वृषाकपे ऽस्तमेहिं गृहाँ उप विश्वंस्मादिन्द्र उत्तंरः २०
पुनरेहिं वृषाकपे सुविता कंल्पयावहै ।
य एष स्वंप्ननंशनो ऽस्तमेषिं पथा पुन॒र्विश्वंस्मादिन्द्र उत्तंरः २१
यदुदंञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजंगन्तन ।
क्वं१ स्य पुंल्वघो मृगः कर्मगञ्जनयोपंनो विश्वंस्मादिन्द्र उत्तंरः २२
पर्शुर्हं नामं मानवी साकं संसूव विंशतिम् ।
भद्रं भंल त्यस्यां अभूद् यस्यां उदरमामंयद् विश्वंस्मादिन्द्र उत्तंरः २३ [४] (९३८

---

[९३३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अयं वृषाकपिः परस्वन्तं हतं विदत्) यह वृषाकपि अलभ्य प्राप्त करे। (आत् असिं सूनां नवं चरुं) अनन्तर शस्त्र, पाक–साधन, नया चरु–भात (एधस्य आचितं अनः) और काष्ठोंसे परिपूर्ण शकट प्राप्त करे। (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) इन्द्र सर्वश्रेष्ठ है ॥ १८ ॥

[९३४] (अयं विचाकशद् दासं आर्यं विचिन्वन् एमि) मं-इन्द्र यजमानोंको देखता हुआ, शत्रुओंको दूर करता हुआ और आर्योंका अन्वेषण करता हुआ यज्ञमें आता हूं। (पाकसुत्वनः पिबामि) पक्व दृढ मनसे सोमको निचोडनेवालेका सोम में पीता हूं। और (धीरं अभि अचाकशम्) बुद्धिमान यजमानकी उत्तम रीतिसे रक्षा करता हूं। (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) इन्द्र सबसे श्रेष्ठ है ॥ १९ ॥

[९३५] (धन्व च कृन्तत्रं यत् च) जलशून्य मरुदेश और काटने योग्य वनमें (कति स्वित् ता योजना) कितने योजनोंका अन्तर है ? इसलिये हे (वृषाकपे) वृषाकपि ! (नेदीयसः अस्तं वि एहि) तू पासही विद्यमान हमारे गृहमें आश्रयको प्राप्त कर। और (गृहान् उप) यज्ञगृहोंमें रह। (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) इन्द्रही सर्वश्रेष्ठ है ॥ २० ॥

[९३६] हे (वृषाकपे) वृषाकपि ! (त्वं पुनः एहि) तू पुनः वापस आ। (सुविता कल्पयावहै) तेरे लिये हम इन्द्र और इन्द्राणी–सुखप्रद हितकर कर्म करते हैं। (यः एषः स्वप्ननंशनः पथा अस्तं पुनः एषि) जो यह तू निद्रा–स्वप्न–नाशक सूर्यके समान सरल मार्गसे हमारे गृहमें फिर आवोगे। (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) इन्द्र सर्वश्रेष्ठ है ॥ २१ ॥

[९३७] हे (इन्द्र वृषाकपे) ऐश्वर्यवान् वृषाकपि ! (यत् उदञ्चः गृहं अजगन्तन) जो तू उपरको घूमकर मेरे गृहमें आओ। (पुल्वघः स्यः मृगः क्व) बहुत मीठे पदार्थ खानेवाला तू अबतक कहां था ? (जनयोपनः कं अगन्) लोगोंको आनन्द देनेवाला तू किस देशको गया था ? (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) इन्द्रही सर्वश्रेष्ठ है ॥ २२ ॥

[९३८] (मानवी पर्शुः ह नाम विंशतिं साकं ससूव) मनुकी पुत्री पर्शु नामकी है, जिसने बीस पुत्रोंको एक-साथ ही उत्पन्न किया। (त्यस्यै भल भद्रं अभूत्) उसका तो सदा कल्याण ही हुआ, (यस्या उदरं आमयत्) जिसका उदर मोटा हुआ था। (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) इन्द्र सर्वश्रेष्ठ है ॥ २३ ॥

(८७)

२५ पायुर्भारद्वाजः । रक्षोहाग्निः । त्रिष्टुप्, २२-२५ अनुष्टुप् ।

रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म ।
शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् १
अयोदंष्ट्रो अर्चिषा यातुधाना—नुप स्पृश जातवेदः समिद्धः ।
आ जिह्वया मूरदेवान् रभस्व क्रव्यादो वृक्त्व्यपि धत्स्वासन् २
उभोभयाविन्नुप धेहि दंष्ट्रा हिंस्रः शिशानोऽवरं परं च ।
उतान्तरिक्षे परि याहि राज—ञ्जम्भैः सं धेह्यभि यातुधानान् ३
यज्ञैरिषूः संनममानो अग्ने वाचा शल्याँ अशनिभिर्दिहानः ।
ताभिर्विध्य हृदये यातुधानान् प्रतीचो बाहून् प्रति भङ्ध्येषाम् ४
अग्ने त्वचं यातुधानस्य भिन्धि हिंस्राशनिर्हरसा हन्त्वेनम् ।
प्र पर्वाणि जातवेदः शृणीहि क्रव्यात् क्रविष्णुर्वि चिनोतु वृक्णम् ५ [५] (९४३)

---

[८७]

[९३९] (रक्षोहणं वाजिनं मित्रं प्रतिष्ठं आ जिघर्मि) मैं राक्षस-नाशक, बलवान्, यजमानोंके मित्र और महान् अग्निको घृतसे प्रदीप्त करता हूं और (शर्म उप यामि) अत्यंत सुख प्राप्त करता हूं । (अग्निः शिशानः क्रतुभिः समिद्धः) यह अग्नि अपनी ज्वालाओंको तीक्ष्ण करके यज्ञकर्म परायण पुरुषोंके द्वारा प्रज्वलित होता है । (सः नः दिवा सः नक्तं रिषः पातु) वह अग्नि हमें दिन-रात राक्षसोंसे रक्षा करे ॥ १ ॥

[९४०] हे (जातवेदः) ज्ञानवान् अग्नि ! तू (समिद्धः अयोदंष्ट्रः अर्चिषा यातुधानान् उप स्पृश) बहुत तेजस्वी और लोहोंकी दाढोंवाला-तीक्ष्ण दाढोंवाला होकर अपनी ज्वालासे राक्षसोंको जला दो । तू (मूरदेवान् जिह्वया आ रभस्व) मारक राक्षसोंको ज्वालासे मार । (क्रव्यादः वृक्त्वी आसन् अपि धत्स्व) मांस भक्षक राक्षसोंको काटकर अपने मुखमें रखो ॥ २ ॥

[९४१] हे (उभयाविन्) दोनों ओरके दाढाओंसे युक्त अग्नि ! तू (हिंस्रः) राक्षसोंके हिंसक हो । (उभा दंष्ट्रा शिशानः उप धेहि) तू दोनों दाढोंको अति तीक्ष्ण करके राक्षसोंका नाश करनेमें उनका उपयोग कर । (अवरं परं च) और समीप और दूरके देशोंके लोगोंकी रक्षा कर । हे (राजन्) प्रदीप्त अग्नि ! (अन्तरिक्षे परि याहि) अन्तरिक्षमें स्थित राक्षसोंके पास जा और (यातुधानान् जम्भैः अभि सं धेहि) राक्षसोंको दाढोंसे पीस डालो ॥ ३ ॥

[९४२] हे (अग्ने) अग्नि ! (यज्ञैः वाचा इषूः संनममानः) तू हमारे बलवर्धक यज्ञोंसे और हमारी स्तुतिसे संतुष्ट होकर अपने बाणोंको नवाते हुए और (शल्यान् अशनिभिः दिहानः ताभिः) उनके अग्रभागोंको वज्रसे युक्त करते हुए उनसे (यातुधानान् हृदये विध्य) राक्षसोंके हृदयको छेद । (एषां प्रतीचः बाहून् प्रति भङ्ग्धि) अनन्तर तेरे साथ युद्ध करनेके लिये आये उनके संबंधियोंके बाहुओंको तोड दे ॥ ४ ॥

[९४३] हे (जातवेदः अग्ने) ज्ञानवान् अग्नि ! तू (यातुधानस्य त्वचं भिन्धि) राक्षसोंकी त्वचा छिन्न भिन्न कर । (एनं हिंस्रा अशनिः हरसा हन्तु) इन्हें तेरा हिंसक वज्र तेजसे मारे । (पर्वाणि प्र शृणीहि) उनके अङ्गोंको तोड । (वृक्णं क्रविष्णुः क्रव्यत् वि चिनोतु) छिन्न राक्षसोंके अवयवोंको मांसाहारी वृक आदि पशु भक्षण करें ॥ ५ ॥

यत्रेदानीं पश्यसि जातवेद स्तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम् ।
यद्वान्तरिक्षे पथिभिः पतन्तं तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः ६
उतालब्धं स्पृणुहि जातवेद आलेभानादृष्टिभिर्यातुधानात् ।
अग्ने पूर्वो नि जहि शोशुचान आमादः क्ष्विङ्कास्तमदन्त्वेनीः ७
इह प्र ब्रूहि यतमः सो अग्ने यो यातुधानो य इदं कृणोति ।
तमा रभस्व समिधा यविष्ठ नृचक्षसश्चक्षुषे रन्धयैनम् ८
तीक्ष्णेनाग्ने चक्षुषा रक्ष यज्ञं प्राञ्चं वसुभ्यः प्र णय प्रचेतः ।
हिंस्रं रक्षांस्यभि शोशुचानं मा त्वा दभन् यातुधाना नृचक्षः ९
नृचक्षा रक्षः परि पश्य विक्षु तस्य त्रीणि प्रति शृणीह्यग्रा ।
तस्याग्ने पृष्टीर्हरसा शृणीहि त्रेधा मूलं यातुधानस्य वृश्च १० [६]

त्रिर्यातुधानः प्रसितिं त एत्वृतं यो अग्ने अनृतेन हन्ति ।
तमर्चिषा स्फूर्जयञ्जातवेदः समक्षमेनं गृणते नि वृङ्धि ११

---

[९४४] हे (जातवेदः अग्ने) बुद्धिमान् अग्नि ! (यत्र तिष्ठन्तं उत चरन्तं यत् वा) तू जहां भी किसी राक्षसको पृथिवी पर खडा अथवा अन्तरिक्षमें घूमता वा (अन्तरिक्षे पथिभिः चरन्तं इदानीं पश्यसि) अन्तरिक्षमें, आकाश मार्गोंसे जाता हुआ देखे, (तं अस्ता शिशानः शर्वा विध्य) उसको शरसंधान करनेवाला तू अपने तेज बाणसे मार ॥ ६ ॥

[९४५] हे (जातवेदः अग्नि) श्रेष्ठ अग्नि ! (उत आलेभानात् यातुधानात् आलब्धं) और तू आक्रमण-कर्ता राक्षसके हाथसे मुझ यज्ञकर्ताको (ऋष्टिभिः स्पृणुहि) अपने ऋष्टि नामक शस्त्रोंसे बचाओ। (पूर्वः शोशुचानः आमादः नि जहि) प्रथम तू प्रज्वलित होकर कच्चे मांसको खानेवाले राक्षसोंका वध कर। (क्ष्विङ्काः एनीः तं अदन्तु) शब्द करनेवाली वेगसे उडनेवाली पक्षियां उसको खावें ॥ ७ ॥

[९४६] हे (यविष्ठ अग्ने) तरुणतम अग्नि ! (यः यातुधानः यः इदं करोति) जो राक्षस वा अन्य पिशाच आदि यज्ञमें विघ्न करता है, (सः यतमः इह प्र ब्रूहि) वह कौन है, यह मुझे कह। (तं समिधा आ रभस्व) उस पापीको अपने तेजसे नष्ट कर ! (एनं नृचक्षसः चक्षुसे रन्धय) इसको मनुष्योंपर कृपामयी दृष्टि डालनेवाला तू तेजसे अपने वशमें कर ॥ ८ ॥

[९४७] हे (अग्ने) अग्नि ! तू (तीक्ष्णेन तेजसा यज्ञं रक्ष) तीक्ष्ण तजसे हमारे यज्ञको रक्षा कर। हे (प्रचेतः) उत्तम ज्ञानवाले ! (प्राञ्चं वसुभ्यः प्र णय) इस सर्वोत्कृष्ट यज्ञको धन सम्पन्न कर। हे (नृचक्षः) मनुष्योंके दर्शक अग्नि ! (रक्षांसि हिंस्रं अभि शोशुचानं) तू राक्षसोंका हन्ता अत्यंत प्रदीप्त है, (त्वा यातुधानाः मा दभन्) तुझे राक्षस न मारें ॥ ९ ॥

[९४८] हे (अग्ने) अग्नि ! तू (नृचक्षाः विक्षु रक्षः परि पश्य) सब मनुष्योंको देखनेवाला मनुष्योंमें राक्षसको भी देख। (तस्य त्रीणि अग्रा प्रति शृणीहि) और उस राक्षसके तीन मस्तकोंको काट। अनन्तर (तस्य पृष्टीः हरसा शृणीहि) उसकी पीठ परके सहायकारीओंको भी स्वतेजसे मार। इस प्रकार (त्रेधा यातुधानस्य मूलं वृश्च) तीन प्रकारसे राक्षसके मूलको काट डाल ॥ १० ॥

[९४९] हे (जातवेदः अग्ने) ज्ञानवान् अग्नि ! (ते प्रसितिं यातुधानः त्रिः एतु) तेरे ज्वालाओंके बंधन राक्षस तीन बार आवे, (यः ऋतं अनृतेन हन्ति) जो राक्षस सत्यको असत्य वचनसे नष्ट करता है। (तं अर्चिः स्फूर्जयन्) उसको अपने तेजसे भस्म कर डाल, (एनं गृणते समक्षं नि वृङ्धि) इसको स्तुति करनेवाले मेरे सामने नष्ट कर ॥ ११ ॥

तदग्ने चक्षुः प्रति धेहि रेभे शफारुजं येन पश्यसि यातुधानम् ।
अथर्ववज्ज्योतिषा दैव्येन सत्यं धूर्वन्तमचितं न्योष १२
यदग्ने अद्य मिथुना शपातो यद्वाचस्तृष्टं जनयन्त रेभाः ।
मन्योर्मनसः शरव्या जायते या तया विध्य हृदये यातुधानान् १३
परा शृणीहि तपसा यातुधानान् पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि ।
परार्चिषा मूरदेवाञ्छृणीहि परासुतृपो अभि शोशुचानः १४
पराद्य देवा वृजिनं शृणन्तु प्रत्यगेनं शपथा यन्तु तृष्टाः ।
वाचास्तेनं शरव ऋच्छन्तु मर्मन् विश्वस्यैतु प्रसितिं यातुधानः १५ [७]

यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः ।
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च १६
संवत्सरीणं पय उस्रियायास्तस्य माशीद्यातुधानो नृचक्षः ।
पीयूषमग्ने यतमस्तितृप्सात् तं प्रत्यञ्चमर्चिषा विध्य मर्मन् १७

[९५०] हे (अग्ने) अग्नि ! (रेभे तत् चक्षुः प्रति धेहि) गर्जना करनेवाले राक्षसपर अपना वह तेज फेंक (येन शफारुजं यातुधानं पश्यसि) जिससे खुरके समान नखोंसे ऋषियोंको पीडा देनेवाले राक्षसको देखता है । (सत्यं धूर्वन्तम् अचितं) सत्यका असत्यसे नाश करनेवाले अज्ञानी राक्षसको (दैव्येन ज्योतिषा अथर्ववत् न्योष) अपने दिव्य तेजसे, अथर्वा ऋषिके समान भस्म कर डाल ॥ १२ ॥

[९५१] हे (अग्ने) अग्नि ! (यत् अद्य मिथुना शपातः) जब आज स्त्री-पुरुष आपसमें झगडा कर रहे हैं, (यत् रेभाः वाचः तृष्टं जनयन्त) जब स्तोतालोग परस्पर कटु वाणीको प्रयोग करते हैं; तब (मन्योः मनसः या शरव्या जायते) मनमें क्रोध उत्पन्न होनेपर मनसे जो बाण फेंका जाता है, (तया यातुधानान् हृदये विध्य) उससे राक्षसोंके हृदयमें मार ॥ १३ ॥

[९५२] हे (अग्ने) अग्नि ! (यातुधानान् तपसा परा शृणीहि) तू राक्षसोंको तेजसे भस्म कर । (रक्षः हरसा परा शृणीहि) राक्षसको तेरी उष्णतासे नष्ट कर । (मूरदेवान् अर्चिषा परा शृणीहि) मारनेवाले राक्षसोंको अपनी तीव्र ज्वालासे मार । (शोशुचानः असुतृपः अभि परा) अत्यंत प्रदीप्त होकर मनुष्योंके प्राण लेनेवाले राक्षसोंको भस्म कर ॥ १४ ॥

[९५३] (अद्य देवाः वृजिनं परा शृणन्तु) आज अग्नि प्रमुख सब देव प्राणघातक राक्षसको नष्ट करें । (एनं तृष्टाः शपथाः प्रत्यक् यन्तु) और इसके पास हमारे दुर्वचन जांय । (वाचास्तेनं शरवः मर्मन् ऋच्छन्तु) मिथ्या बोलनेवाले राक्षसके मर्मके पास बाण जांय । (विश्वस्य प्रसितिं यातुधानः एतु) विश्वव्यापक अग्निके जालमें राक्षस जांय ॥ १५ ॥

[९५४] (यः यातुधानः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते) जो राक्षस मनुष्यके मांससे स्वयंको तृप्त करता है, (यः अश्व्येन पशुना) जो अश्व आदि पशुओंके मांसका संग्रह करता है, और (यः अघ्न्यायाः क्षीरं भरति) जो अवध्य गौका दूध लेता है, हे (अग्ने) अग्नि ! तू (तेषां शीर्षाणि हरसा वृश्च) ऐसे उन राक्षसोंके मस्तकोंके अपने तेजस्वी शस्त्रसे काट डाल ॥ १६ ॥

[९५५] हे (नृचक्षः अग्ने) मनुष्योंके दर्शक अग्नि ! (उस्रियायाः संवत्सरीणं पयः यातुधानः तस्य मा अशीत्) गौके वर्षभरमें संचित होनेवाले दूधको राक्षस पान न करे । (यतमः पीयूषं तितृप्सात्) जो कोई अमृतके समान दूध पीनेकी इच्छा करे, (तं प्रत्यञ्चं मर्मन् अर्चिषा विध्य) उस तुम्हारे सामने आनेवाले राक्षसके मर्मको अपनी तेजयुक्त ज्वालासे नष्ट कर दे ॥ १७ ॥

विषं गवां यातुधानाः पिबन्त्वा वृश्च्यन्तामदितये दुरेवाः ।
परैनान् देवः सविता ददातु परा भागमोषधीनां जयन्ताम् १८
सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
अनु दह सहमूरान् क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः १९ (९५७)
त्वं नो अग्ने अधरादुदक्तात् त्वं पश्चादुत रक्षा पुरस्तात् ।
प्रति ते ते अजरासस्तपिष्ठा अघशंसं शोशुचतो दहन्तु २० [८]
पश्चात् पुरस्तादधरादुदक्तात् कविः काव्येन परि पाहि राजन् ।
सखे सखायमजरो जरिम्णे ऽग्ने मर्ताँ अमर्त्यस्त्वं नः २१
परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि ।
धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावताम् २२
विषेण भङ्गुरावतः प्रति ष्म रक्षसो दह ।
अग्ने तिग्मेन शोचिषा तपुरग्राभिर्ऋष्टिभिः २३

---

[९५६] (यातुधानाः गवां विषं पिबन्तु) राक्षस पशुओंके गोष्ठमें स्थित विषका पान करें । (अदितये दुरेवाः आ वृश्च्यन्ताम्) अदिति देवमाताके संतोषके लिये ये राक्षस तेरे शस्त्रोंसे काटे जांय । (सविता देवः एनान् परा ददातु) सविता देव इन राक्षसोंको हिंस्र पशुओंको देव । (ओषधीनां भागं परा जयन्ताम्) और ओषधियोंका खाने योग्य अंशही इन्हें प्राप्त न होवे अर्थात् इनको अन्नही न मिले ॥ १८ ॥

[९५७] हे (अग्ने) अग्नि ! तू (सनात् यातुधानान् मृणसि) चिरकालसे ही राक्षसोंको नाश करता है । (त्वा पृतनासु रक्षांसि न जिग्युः) तुझे संग्रामोंमें राक्षसलोग न जीत सकें । (क्रव्यादः सहमूरान् अनु दह) अनन्तर मांसभक्षक इन राक्षसोंको जडसे अनुक्रमसे जला दो । (दैव्यायाः हेत्याः ते मा मुक्षत) तेरे दिव्य आयुधोंसे वे मत छूटें ॥ १९ ॥

[९५८] हे (अग्ने) अग्नि ! (त्वं नः अधरात् उदक्तात्) तू हमारी दक्षिण, उत्तर, (उत त्वं पश्चात पुरस्तात् रक्ष) और तू पश्चिम और पूर्वसे रक्षा कर । (ते ते तपिष्ठाः अजरासः शोशुचतः अघशंसं प्रति दहन्तु) तेरी वे अतिशय तप्त, अविनाशी और तेजस्वी ज्वालाएं पापी राक्षसोंको शीघ्र वध करें ॥ २० ॥

[९५९] हे (राजन् अग्ने) प्रदीप्त अग्नि ! (कविः काव्येन पश्चात् पुरस्तात् अधरात् उदक्तात् परि पाहि) तू क्रान्तदर्शि है, इसलिये अपने अवलोकन कौशलसे पश्चिम, पूर्व, दक्षिण और उत्तरसे हमारी सब प्रकारसे रक्षा कर । हे (सखे) मित्र ! (अजरः सखायं जरिम्णे) तू अजर है, मैं तेरा मित्र हूं, मैं तेरी कृपासे चिरजीवि हो जाऊं ऐसे कर । (अमर्त्यः त्वं मर्तान् नः) अमर तू है, मरणधर्मशील हमें दीर्घजीवि कर ॥ २१ ॥

[९६०] हे (अग्ने) अग्नि ! हे (सहस्य) बलवान् ! (पुरं विप्रं धृषद्-वर्णं दिवे दिवे भङ्गुरावतां) तू सबका पालक, बुद्धिमान्, धैर्यशाली, नित्यशः प्रजापीडक राक्षसोंके (हन्तारं त्वा वयं परि धीमहि) नाश करनेवाले तेरा हम नित्य राक्षसोंका नाश करनेके लिये ध्यान करते हैं ॥ २२ ॥

[९६१] हे (अग्ने) अग्नि ! तू (भङ्गुरावतः रक्षसः विषेण तिग्मेन शोचिषा प्रति दह) भञ्जक कर्म करनेवाले राक्षसोंको व्यापक तीक्ष्ण तेजसे भस्म कर । (तपुरग्राभिः ऋष्टिभिः) तप्त हुए ऋष्टि अस्त्रोंसे भी नष्ट कर ॥ २३ ॥

प्रत्यग्ने मिथुना दह यातुधाना किमीदिना ।
सं त्वा शिशामि जागृह्यदब्धं विप्र मन्मभिः २४
प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणीहि विश्वतः प्रति ।
यातुधानस्य रक्षसो बलं वि रुज वीर्यम् २५ [९] (९६३)

(८८)

१९ आङ्गिरसो मूर्धन्वान्, वामदेव्यो वा । सूर्य-वैश्वानरोऽग्निः । त्रिष्टुप् ।

हविष्पान्तमजरं स्वर्विदि दिविस्पृश्याहुतं जुष्टमग्नौ ।
तस्य भर्मणे भुवनाय देवा धर्मणे कं स्वधया पप्रथन्त १
गीर्णं भुवनं तमसापगूळ्हमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ ।
तस्य देवाः पृथिवी द्यौरुतापोऽरणयन्नोषधीः सख्ये अस्य २
देवेभिर्न्विषितो यज्ञियेभिरग्निं स्तोषाण्यजरं बृहन्तम् ।
यो भानुना पृथिवीं द्यामुतेमामाततान रोदसी अन्तरिक्षम् ३

---

[९६२] हे (अग्ने) अग्नि ! तू (मिथुना किमीदिना यातुधाना प्रति दह) इन राक्षसोंके जोडेको– जो कहां क्या है, इस बातको कहते हुए देखते हुए घूमनेवालेको– जला दो । हे (विप्र) बुद्धिमान् अग्नि ! (अदब्धं त्वा मन्मभिः सं शिशामि) अहिंसक तुझको स्तोत्रोंसे मैं स्तवित करता हूं; इसलिये (जागृहि) तू जागृत, सावधान रह ॥ २४ ॥

[९६३] हे (अग्ने) अग्नि ! (विश्वतः हरसा यातुधानस्य हरः बलं प्रति शृणीहि) तू सब प्रकारसे अपने तेज सामर्थ्यसे राक्षसोंके बलको नष्ट कर । और (रक्षसः वीर्यं विरुज) उनके वीर्य–पराक्रमको नष्ट कर ॥ २५ ॥

[८८]

[९६४] (पान्तं अजरं जुष्टं हविः स्वर्विदि दिविस्पृशि) पीनेके योग्य, अविनाशी और देवोंके द्वारा सेवित सोमरसयुक्त हवि सूर्यसे प्राप्त तेजसे युक्त और आकाशमें व्याप्त ज्वालाओंसे प्रज्वलित (अग्नौ आहुतम्) अग्निमें प्रदान किये हैं । (तस्य भर्मणे भुवनाय धर्मणे कं देवाः स्वधया पप्रथन्त) उसीके सर्वपोषण आविष्करण और धारणके लिये देव सुखकर अग्निको अन्नसे प्रसन्न करते हैं ॥ १ ॥

[९६५] (तमसा भुवनं गीर्णं) अन्धकारसे यह सब जगत् ग्रसित हो जाता है तब (अपगूढम्) वह उसमें आच्छादित हो जाता है । (अग्नौ जाते स्वः भुवनं आविः अभवत्) अग्निके प्रकट होनेपर वह सब जगत् स्पष्टतया प्रकट होता है । (तस्य अस्य सख्ये देवाः पृथिवी द्यौः) उस जगत्के प्रभव–विलय करनेवाले इस महान् अग्निके मित्रभावमेंही इन्द्रादि देव, पृथिवी, आकाश, (उत आपः ओषधीः अरणयन्) और जल, अन्तरिक्ष और औषधियां रमण करते हैं, प्रसन्न होते हैं ॥ २ ॥

[९६६] (यज्ञियेभिः देवेभिः नु इषितः) यज्ञार्ह देवोंने सत्यही मुझे प्रेरित किया है, इसलिये मैं (अजरं बृहन्तं अग्निं स्तोषाणि) उस अविनाशी महान् अग्निकी स्तुति करता हूं । (यः भानुना पृथिवीं उत इमां द्यां) जो अग्नि अपने तेजसे पृथिवी और इस स्वर्ग लोकको (रोदसी अन्तरिक्षं आततान) तथा द्यावापृथिवी और अन्तरिक्षको विस्तृत करता है ॥ ३ ॥

यो होतासीत् प्रथमो देवजुष्टो यं समाञ्जन्नाज्येना वृणानाः ।
स पतत्रीत्वरं स्था जगद्य—च्छ्वात्रमग्निरकृणोज्जातवेदाः ४
यज्जातवेदो भुवनस्य मूर्ध—न्नतिष्ठो अग्ने सह रोचनेन ।
तं त्वाहेम मतिभिर्गीर्भिरुक्थैः स यज्ञियो अभवो रोदसिप्राः ५ [१०]

मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्नि—स्ततः सूर्यो जायते प्रातरुद्यन् ।
मायामू तु यज्ञियानामेता—मपो यत् तूर्णिश्चरति प्रजानन् ६
दृशेन्यो यो महिना समिद्धो ऽरोचत दिवियोनिर्विभावा ।
तस्मिन्नग्नौ सूक्तवाकेन देवा हविर्विश्व आजुहवुस्तनूपाः ७ (९७०)

सूक्तवाकं प्रथममादिदग्नि—मादिद्धविरजनयन्त देवाः ।
स एषां यज्ञो अभवत् तनूपा—स्तं द्यौर्वेद तं पृथिवी तमापः ८
यं देवासोऽजनयन्ताग्निं यस्मिन्नाजुहवुर्भुवनानि विश्वा ।
सो अर्चिषा पृथिवीं द्यामुतेमा—मृजूयमानो अतपन्महित्वा ९

[९६७] (यः देवजुष्टः प्रथमः होता आसीत्) जो वैश्वानर अग्नि सब देवोंसे सेवित और सबसे प्रथम होता हुआ था, (यं वृणानाः आज्येन समाञ्जन्) जिसको वर चाहनेवाले यजमान भक्त घृतसे अच्छी प्रकार प्रज्वलित करते हैं; (जातवेदाः सः अग्निः पतत्रि इत्वरं) उसही ज्ञानी अग्निने उडनेवाले पक्षियों, गमनशील सर्प आदिको (स्थाः जगत् श्वात्रं अकृणोत्) और स्थावर-जंगमात्मक जगत्को शीघ्रही उत्पन्न किया ॥ ४ ॥

[९६८] हे (जातवेदः अग्ने) सर्वज्ञ अग्नि ! (यत् भुवनस्य मूर्धन् रोचनेन सह अतिष्ठः) जो तू समस्त जगत्के शिरपर सूर्यके साथ रहता है, (तं त्वा मतिभिः गीर्भिः उक्थैः अहेम) उस तुझे अर्चनीय- मननीय चित्तसे, स्तुतियोंसे और उत्तम गीतोंसे हम प्राप्त करते हैं। (सः रोदसिप्राः यज्ञियः अभवः) वह तू आकाश और पृथिवीको पूर्ण करनेवाला और यज्ञार्ह है ॥ ५ ॥

[९६९] (अग्निः नक्तं भुवः मूर्धा भवति) अग्नि रात्रिकालमें इस जगत्का मूर्धा मस्तकके समान सबका मूल आश्रय होता है। (ततः प्रातः उत् अन् सूर्यः जायते) अनन्तर प्रातःकालमें उदित होनेवाला सूर्य होता है। (यज्ञियानां मायां एताम्) यज्ञ करनेवाले देवोंकी प्रज्ञा ही इसको ज्ञानी मानते हैं। (यत् प्रजानन् तूर्णिः अपः चरति) और वह सूर्य सब कुछ जाननेवाला होकर अत्यंत त्वरासे अन्तरिक्षमें संचार करने लगता है ॥ ६ ॥

[९७०] (यः महिना दृशेन्यः समिद्धः दिवियोनिः) जो अग्नि अपने महत्त्वसे सर्व दर्शनीय, प्रज्वलित, द्युलोकमें स्थित (विभावा अरोचत) विशेषरूपसे तेजस्वी होकर शोभित होता है, (तस्मिन् अग्नौ तनूपाः विश्वे देवाः सूक्तवाकेन हविः आ जुहवुः) उस अग्निमें शरीर रक्षक समस्त देवोंने सूक्त पाठ करते हुए हवि-अन्नकी आहुति प्रदान की ॥ ७ ॥

[९७१] (प्रथमं सूक्तवाकं) प्रथम द्यावापृथिवी आदि सूक्तोंका मनसे निरूपण करते हैं। (आत् इत् और अनन्तर) (अग्निं अजनयन्त) मंथनसे अग्निको उत्पन्न करते हैं; (आत् इत् देवाः हविः) और इसके पश्चात् देव हवि-अन्नको उत्पन्न करते हैं। (सः एषां यज्ञः अभवत्) वह अग्नि देवोंको यज्ञार्ह होता है और (तनूपाः) वह शरीर रक्षक ही है। (तं द्यौः तं पृथिवी तं आपः वेद) उसको द्युलोक, पृथिवी और अन्तरिक्ष जानते हैं ॥ ८ ॥

[९७२] (यं अग्निं देवासः अजनयन्त) जिस अग्निको देवोंने उत्पन्न किया, (यस्मिन् विश्वा भुवनानि आजुहवुः) जिस उत्पन्न अग्निमें सब जगत्, लोक सर्वमेध नामक यज्ञमें आहुति देते हैं; (सः अर्चिषा पृथिवीं द्यां उत इमां) वह अग्नि अपनी ज्वालासे अन्तरिक्ष, द्युलोक और इस भूमिको (ऋजूयमानः महित्वा अतपत्) सरलगामी होकर अपनी महिमासे ताप देने लगता है ॥ ९ ॥

स्तोमे॑न॒ हि दि॒वि दे॒वासो॑ अ॒ग्निमजी॑जन॒ञ्छक्ति॑भी रोद॒सि॒प्राम् ।
तमू॑ अकृण्वन् त्रे॒धा भु॒वे कं स ओष॑धीः पचति वि॒श्वरू॑पाः १० [११]

य॒देदे॑नमद॑धुर्य॒ज्ञिया॑सो दि॒वि दे॒वाः सूर्य॑मादिते॒यम् ।
य॒दा च॑रि॒ष्णू मि॑थु॒नावभू॑ता॒मादित् प्राप॑श्यन् भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ११
विश्व॑स्मा अ॒ग्निं भुव॑नाय दे॒वा वै॑श्वा॒नरं॑ के॒तुमह्ना॑मकृण्वन् ।
आ यस्त॒ताना॒षसो॑ वि॒भाती॒रपो॑ ऊर्णोति॒ तमो॑ अ॒र्चिषा॒ यन् १२
वै॒श्वा॒न॒रं क॒वयो॑ य॒ज्ञिया॑सो ऽग्निं दे॒वा अ॑जनयन्नजु॒र्यम् ।
नक्ष॑त्रं प्र॒त्नममि॑नच्चरि॒ष्णु य॒क्षस्याध्य॑क्षं तवि॒षं बृ॒हन्त॑म् १३
वै॒श्वा॒न॒रं वि॒श्वहा॑ दीदि॒वांसं॑ मन्त्रै॑र॒ग्निं क॒विमच्छा॑ वदामः ।
यो म॑हि॒म्ना परि॑ब॒भूवो॒र्वी उ॒ताव॒स्ता॑दु॒त दे॒वः प॒रस्ता॑त् १४
द्वे स्रु॒ती अ॑शृणवं पि॒तॄणा॑म॒हं दे॒वाना॑मु॒त मर्त्या॑नाम् ।
ताभ्या॑मि॒दं विश्व॒मेज॒त् समे॑ति॒ यद॑न्त॒रा पि॒तरं॑ मा॒तरं॑ च १५ [१२]

[९७३] (देवासः शक्तिभिः रोदसिप्रां अग्निं) देवोंने अपने सामर्थ्य युक्त कर्मोंसे द्यावापृथिवीको पूर्ण करनेवाले अग्निको (दिवि स्तोमेन हि अजीजनन्) देवलोकमें केवल स्तुतिके द्वारा ही सूर्य रूपमें प्रकट किया । (तं उ कं त्रेधा भुवे अकृण्वन्) उसही सुख कर अग्निको तीन भावोंमें किया । (सः विश्वरूपाः ओषधीः पचति) वही पृथ्वीपर सर्वव्यापक ओषधियोंको परिणत करता है ॥ १० ॥

[९७४] (यदा इत् आदितेयं सूर्यं एनं) जब अदितिके पुत्र सूर्यरूप इस अग्निको (यज्ञियासः देवाः दिवि अदधुः) यज्ञार्ह देवोंने आकाशमें स्थापित किया, (यदा चरिष्णू मिथुनौ अभूताम्) और जब गमनशील सूर्य वैश्वानरकी जोडी प्रकट हुई, (आत् इत् विश्वा भुवनानि प्रापश्यन्) अनन्तर ही वे समस्त लोकोंको देखते हैं– अर्थात् उसी समय ही यह सब जगत् निर्माण हुआ है ॥ ११ ॥

[९७५] (देवाः विश्वस्मै भुवनाय वैश्वानरं अग्निं) देवोंने सारे जगत्के लिये सब मनुष्योंके हितैषी अग्निको (अह्नां केतुं अकृण्वन्) दिनोंका बनानेवाला– प्रकाशक किया है । (यः विभातीः उषसः आ ततान) जो अग्नि तेजस्वी उषाओंको निर्माण करता है, और (यन् तमः अर्चिषा अप उ ऊर्णोति) गमन करता हुआ अन्धकारको अपने तेजसे दूर करता है ॥ १२ ॥

[९७६] (कवयः यज्ञियासः देवाः अजुर्यं वैश्वानरं अग्निं अजनयन्) मेधावी और यज्ञार्ह देवोंने अजर अजर वैश्वानर अग्निको उत्पन्न किया । (प्रत्नं चरिष्णु नक्षत्रं) उसने अति प्राचीन कालसे विहरणशील नक्षत्रोंको (तविषं बृहन्तं यक्षस्य अध्यक्षं अमिनत्) बडे बडे महान् पूजनीय देवोंके सामनेही अपने तेजसे निष्प्रभ किया ॥ १३ ॥

[९७७] (विश्वहा दीदिवांसं कविं वैश्वानरं अग्निं) सर्वदा दीप्त, क्रान्तदर्शी और विश्व हितैषी अग्निकी (मन्त्रैः अच्छ वदामः) मन्त्रोंसे हम स्तुति करते हैं । (यः महिम्ना उर्वी परिबभूव) जो अपनी महिमासे द्यावा-पृथिवीको निर्माण करता है, (उत अवस्तात् उत देवः परस्तात्) और नीचेसे तथा जो देव ऊपरसे भी तपता है, प्रकाशता है ॥ १४ ॥

[९७८] (पितॄणां देवानां उत मर्त्यानां द्वे स्रुती अहं अशृणवम्) पितरों, देवों और मनुष्योंके दो मार्गों (देवयान और पितृयान) को मैंने सुना है । (यत् पितरं मातरं च अन्तरा) जो कोई पिता माताके बीच जनमा हुआ है अर्थात् यह जगत् द्यावापृथिवीमें अन्तर्भूत हुआ है । (इदं विश्वं एजत् ताभ्यां समेति) यह अग्निसे संस्कृत जगत् देवलोक और पितृलोकको जाते हुए उन दोनों – देवयान तथा पितृयान–मार्गोंसे ही जाता है ॥ १५ ॥

द्वे समीची बिभृतश्चरन्तं शीर्षतो जातं मनसा विमृष्टम् ।
स प्रत्यङ् विश्वा भुवनानि तस्था-वप्रयुच्छन् तरणिर्भ्राजमानः १६
यत्रा वदेते अवरः परश्च यज्ञन्योः कतरो नौ वि वेद ।
आ शेकुरित् सधमादं सखायो नक्षन्त यज्ञं क इदं वि वोचत् १७
कत्यग्नयः कति सूर्यासः कत्युषासः कत्युं स्विदापः ।
नोपस्पिजं वः पितरो वदामि पृच्छामि वः कवयो विद्मने कम् १८
यावन्मात्रमुषसो न प्रतीकं सुपर्ण्योः वसते मातरिश्वः ।
तावद्दधात्युप यज्ञमायन् ब्राह्मणो होतुरवरो निषीदन् १९ [१३] (९८२)

(८९)

१८ रेणुर्वैश्वामित्रः । इन्द्रः, ५ इन्द्रासोमौ । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रं स्तवा नृतमं यस्य मह्ना विबबाधे रोचना वि ज्मो अन्तान् ।
आ यः पप्रौ चर्षणीधृद्वरोभिः प्र सिन्धुभ्यो रिरिचानो महित्वा १ (९८३)

---

[९७९] (समीची द्वे चरन्तं) परस्पर संगत द्यावापृथिवी विचरनेवाला, (शीर्षतः जातं) मस्तक स्थानपर स्थित सूर्यसे उत्पन्न, (मनसः विमृष्टं) मननीय स्तुतियोंसे परिशुद्ध किया हुआ, अग्निको धारण करते हैं । (सः अप्रयुच्छन् तरणिः भ्राजमानः विश्वा भुवनानि प्रत्यङ् तस्थौ) वह प्रमादरहित होकर अपना कार्य करता हुआ, सबको तारनेवाला, देदीप्यमान अग्नि समस्त लोकोंके सन्मुख रहता है ॥ १६ ॥

[९८०] (यत्र अवरः परश्च वदेते) जिस समय पृथ्वीमें स्थिर अग्नि और स्वर्गीय वायु आपसमें विवाद करते हैं, (यज्ञन्योः नौ कतरः वि वेद) कि हम दोनोंमें यज्ञमें मुख्य कौन है और यज्ञके तत्वोंको कौन विशेष रूपसे जानता है ? (सखायः सधमादं आ शेकुः) जहां मित्रवत् ऋत्विज यज्ञ कर सकते हैं, (यज्ञं नक्षन्त कः इदं वि वोचत्) और वे उसको अच्छी तरहसे विधिवत् पूर्ण करते हैं । कौन यह निर्णयात्मक कहेगा ? ॥ १७ ॥

[९८१] (कति अग्नयः कति सूर्यासः कति उषासः) कितने अग्नि हैं ? कितने सूर्य हैं ? उषाएं कितनी हैं, (किति उ स्वित् आपः) और कितने प्रकारके 'आपः' हैं ? हे (पितरः) पितरो ! (वः उपस्पिजम् न वदामि) आप लोगोंसे में स्पर्धायुक्त वचनसे यह प्रश्न नहीं कहता हूं । हे (कवयः) बुद्धिमान् पितरो ! (विद्मने कं पृच्छामि) केवल ज्ञान प्राप्त करनेके लिये ही में आपसे यह प्रश्न पूछता हूं ॥ १८ ॥

[९८२] हे (मातरिश्वः) वायु ! (यावत् मात्रं उषसः प्रतीकं न सुपर्ण्यः वसते) जबतक उषःकालके प्रतीति करनेवाले तेजको मुखको वस्त्रके समान रातें आच्छादित किये रहती हैं, (तावत् ब्राह्मणः अवरः होतुः निषीदन्) तबतक वेदज्ञ ब्राह्मणोंमेंसे एक निष्कृष्ट होता अग्निके समीप बैठकर (यज्ञं आयन् उप दधाति) यज्ञके समीप आकर स्तुति-वचनोंसे उपासना करता है ॥ १९ ॥

[८९]

[९८३] हे स्तोता ! (यस्य मह्ना रोचना विबबाधे) जो इन्द्र अपने महान् सामर्थ्यसे शत्रुओंको पीडित करता है; पराभूत करता है; (विज्मः अन्तान्) पृथिवीको भी विशेष रूपसे ताप, आंधी आदिसे अभिभूत करता है; (यः चर्षणीधृत् सिन्धुभ्यः महित्वा प्र रिरिचानः) जो मनुष्योंका संरक्षक इन्द्र समुद्रों और आकाशोंसे भी अपनी महती शक्ति श्रेष्ठ है, (वरोभिः आ पप्रौ) वह जगत्को अन्धकार नाशक तेजोंसे द्यावापृथिवीको परिपूर्ण करता है । (नृतमं इन्द्रं स्तव) तू मनुष्योंमें अत्यंत श्रेष्ठ इन्द्रकी स्तुति कर ॥ १ ॥

स सूर्यः पर्युरू वरांस्येन्द्रो ववृत्याद्रथ्येव चक्रा ।
अतिष्ठन्तमपस्यं न सर्गं कृष्णा तमांसि त्विष्या जघान २
समानमस्मा अनपावृदर्च क्ष्मया दिवो असमं ब्रह्म नव्यम् ।
वि यः पृष्ठेव जनिमान्यर्य इन्द्रश्चिकाय न सखायमीषे ३
इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रेरयं सगरस्य बुध्नात् ।
यो अक्षेणेव चक्रिया शचीभिर्विष्वक् तस्तम्भ पृथिवीमुत द्याम् ४
आपान्तमन्युस्तृपलप्रभर्मा धुनिः शिमीवाञ्छरुमाँ ऋजीषी ।
सोमो विश्वान्यतसा वनानि नार्वागिन्द्रं प्रतिमानानि देभुः ५ [१४]

न यस्य द्यावापृथिवी न धन्व नान्तरिक्षं नाद्रयः सोमो अक्षाः ।
यदस्य मन्युरधिनीयमानः शृणाति वीळु रुजति स्थिराणि ६

---

[९८४] (सूर्यः सः इन्द्रः उरु वरांसि परि आ ववृत्यात्) सामर्थ्यवान् प्रसिद्ध इन्द्र अनेक तेजोमय लोकोंको चारों ओर चला रहा है, (रथ्या इव चक्रा) जिस प्रकार सारथी चक्रको घुमाता है । (अतिष्ठन्तं अपस्यं न) सदा गमनशील और सदा कर्म करनेवाले अश्वोंके समान (सर्गम् कृष्णा तमांसि त्विष्या जघान) इस सृष्टिके चारों ओर फैले काले अंधकारोंको अपने तीक्ष्ण तेजसे नष्ट करता है ॥ २ ॥

[९८५] हे स्तोता ! (समानं अनपावृत् क्ष्मया दिवः असमम्) तू मेरे साथ मिलकर, जो उत्कृष्ठ-गूढ है, पृथिवी और आकाशसे भी महान् है, (नव्यं ब्रह्म अस्मै अर्च) और अत्यंत नवीन स्तोत्रका इस इन्द्रके लिये उच्चारण कर। (यः इन्द्रः जनिमानि पृष्ठा इव) जो इन्द्र यज्ञमें उच्चारित पृष्ठ नामक स्तोत्रको पानेके लिये जैसे अभिलषित होता है, वैसे ही (अर्यः वि चिकाय सखायं न ईषे) शत्रुओंको जाननेके लिये भी व्यस्त रहता है; वह अपने मित्र-भक्तको अपनी शरणमें रखता है ॥ ३ ॥

[९८६] (इन्द्राय अनिशितसर्गाः गिरः सगरस्य) इन्द्रके लिये हम अविरत प्रवाहके समान बहुत स्तुतियोंसे अंतरिक्षके (बुध्नात् पयः प्रेरयम्) प्रदेशसे जलकी वर्षा प्रेरित करेंगे । (यः इन्द्रः शचीभिः पृथिवीं उत द्यां चक्रिया अक्षेण इव) जो इन्द्र अपनी अनेक शक्तियोंसे पृथिवी और आकाशको, जैसे धुरीके बलसे चक्रको चलाया जाता है, वैसेही (विष्वक् तस्तम्भ) सब प्रकारसे रोका हुआ है ॥ ४ ॥

[९८७] (अपान्तमन्युः तृपलप्रभर्मा धुनिः) क्रोध वा तेजको उत्पन्न करनेवाला, शीघ्रता युक्त बडे वेगसे प्रहार करानेवाला, शत्रुओंको पराक्रमसे कंपानेवाला, (शिमीवान् शरुमान् ऋजीषी सोमः विश्वानि अतसा वनानि) अनेक कर्म करनेवाला, अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न, सरल, धर्मके मार्गसे प्रेरित करनेवाला सोम, सब विस्तृत अरण्यमें व्याप्त होकर उनको वर्धित करता है । (प्रतिमानानि इन्द्रं अर्वाक् न देभुः) सब मापक साधन भी इन्द्रकी बराबरी नहीं कर सकते, तथा इन्द्रके भावकी लघुता भी नहीं कर सकते ॥ ५ ॥

[९८८] (यस्य द्यावापृथिवी न, न धन्व, न अन्तरिक्षं, न अद्रयः) जिस इन्द्रकी द्यावापृथिवी, उदक, अन्तरिक्ष और पर्वत बराबरी नहीं कर सकते, उस (सोमः अक्षाः) इन्द्रके लिये सोमरस क्षरित होता है । (यत् अस्य मन्युः अधियमानः) जिस समय शत्रुओंके ऊपर इसका क्रोध होता है, (वीळु शृणाति स्थिराणि रुजति) उस समय यह दृढतासे उनको नष्ट करता है और बलवानोंको- स्थिरोंको भी तोड डालता है ॥ ६ ॥

जघान वृत्रं स्वधितिर्वनेव रुरोज पुरो अरदन्न सिन्धून् ।
बिभेद गिरिं नवमिन्न कुम्भ मा गा इन्द्रो अकृणुत स्वयुग्भिः ७
त्वं ह त्यदृणया इन्द्र धीरो ऽसिर्न पर्व वृजिना शृणासि ।
प्र ये मित्रस्य वरुणस्य धाम युजं न जना मिनन्ति मित्रम् ८
प्र ये मित्रं प्रार्यमणं दुरेवाः प्र संगिरः प्र वरुणं मिनन्ति ।
न्यमित्रेषु वधमिन्द्र तुम्रं वृषन् वृषाणमरुषं शिशीहि ९
इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्या इन्द्रो अपामिन्द्र इत् पर्वतानाम् ।
इन्द्रो वृधामिन्द्र इन्मेधिराणा मिन्द्रः क्षेमे योगे हव्य इन्द्रः १० [१५]

प्राक्तुभ्य इन्द्रः प्र वृधो अहभ्यः प्रान्तरिक्षात् प्र समुद्रस्य धासेः ।
प्र वातस्य प्रथसः प्र ज्मो अन्तात् प्र सिन्धुभ्यो रिरिचे प्र क्षितिभ्यः ११
प्र शोशुचत्या उषसो न केतु रसिन्वा ते वर्ततामिन्द्र हेतिः ।
अश्मेव विध्य दिव आ सृजान स्तपिष्ठेन हेषसा द्रोघमित्रान् १२

[९८९] (स्वधितिः वना इव वृत्रं जघान) कुल्हाडी जिस प्रकार वनोंको काट गिराती है, उसी प्रकार इन्द्रने वृत्र असुरका वध किया; (पुरः रुरोज) शत्रुनगरीको ध्वस्त किया; (सिन्धून् अरदत् न) नदियोंको वृष्टिजलसे प्रवाहित किया; (गिरिं नवं न कुम्भं बिभेद इत्) कच्चे घडेके समान मेघको भङ्ग किया; (इन्द्रः स्वयुग्भिः गाः आ अकृणुत) इन्द्रने सहायक मरुतोंके साथ जलको हमारे सम्मख किया– विपुल जल दिया ॥ ७ ॥

[९९०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (धीरः त्वं ह त्यत् ऋणयाः) प्राज्ञ तू निश्चयसे वह श्रेष्ठ धनोंका देनेवाला है ! (असिः न पर्व वृजिना शृणासि) जैसे खड्ग गांठोंको काटता है, वैसे ही तुम भक्तोंके दुःख नष्ट करता है। (मित्रस्य वरुणस्य धाम युजं न मित्रं) मित्र और वरुणके बन्धुके समान योग्य धारक कर्मका (ये जनाः प्र मिनन्ति) जो अज्ञ-जन नाश करते हैं, उनको भी तू नष्ट करता है ॥ ८ ॥

[९९१] (ये दुः– एवाः मित्रं अर्यमणं) जो दुष्ट लोग मित्र, अर्यमा, (संगिरः वरुणं प्र मिनन्ति) स्तुत्य मरुत और वरुणको कष्ट देते हैं, (अमित्रेषु) उन शत्रुओंके लिये, हे (वृषन् इन्द्र) काम पूरक इन्द्र ! तू (तुम्रं वृषाणं अरुषं वधं नि शिशीहि) अपने अति वेगवान्, बलशाली, प्रदीप्त वज्रको तेज–तीक्ष्ण कर ॥ ९ ॥

[९९२] (इन्द्रः दिवः इशे) इन्द्र द्युलोकका स्वामी है। (इन्द्रः पृथिव्याः अपां पर्वतानाम् इत्) इन्द्र पृथिवी, जल और पर्वतोंका भी स्वामी है। (इन्द्रः वृधां मेधिराणां इत्) इन्द्र, वृद्ध और बुद्धिमानोंका भी स्वामी है। (इन्द्रः क्षेमे योगे हव्यः) इन्द्रकी प्राप्त वस्तुओंकी रक्षाके लिये नयी वस्तुएं पानेके लिये और स्तुति–प्रार्थना करनी चाहिये ॥ १० ॥

[९९३] (इन्द्र अक्तुभ्यः अहभ्यः अन्तरिक्षात् समुद्रस्य धासेः) इन्द्र रात्रि, दिन, अन्तरिक्ष, जलधारक समुद्रको धारण करनेवाले स्थान (वातस्य प्रथसः ज्मः अन्तात् सिन्धुभ्यः क्षितिभ्यः प्र रिरिचे) वायुके विस्तृत स्थान, पृथिवीकी सीमा, नदियां और मनुष्योंसे भी –इन सबोंसे भी महान् है ॥ ११ ॥

[९९४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते असिन्वा हेतिः) तेरा भेदनरहित शत्रुहनन करनेका अस्त्र, वज्र, (शोशुचत्याः उषसः न केतुः प्रवर्तताम्) ज्योतिर्मयी उषाकी पताका किरणके समान शत्रुओंके ऊपर गिरे। (तपिष्ठेन हेषसा द्रोघमित्रान् विध्य) अत्यंत तापकारी, भयंकर शब्द करनेवाले अस्त्रसे मित्रद्रोही शत्रुओंको नष्ट कर। (दिवः आ सृजानः अश्मा इव) आकाशसे उत्पन्न होनेवाली बिजलीकी तरह त उन्हें नष्ट कर ॥ १२ ॥

अन्वह मासा अन्विद्वना न्यन्वोषधीरनु पर्वतासः ।
अन्विन्द्रं रोदसी वावशाने अन्वापो अजिहत जायमानम् १३
कर्हि स्वित् सा त इन्द्र चेत्यास दघस्य यद्भिनदो रक्ष एषत् ।
मित्रक्रुवो यच्छसने न गावः पृथिव्या आपृगमुया शयन्ते १४
शत्रूयन्तो अभि ये नस्ततस्रे महि व्राधन्त ओगणास इन्द्र ।
अन्धेनामित्रास्तमसा सचन्तां सुज्योतिषो अक्तवस्ताँ अभि ष्युः १५ (९९७)
पुरूणि हि त्वा सवना जनानां ब्रह्माणि मन्दन् गृणतामृषीणाम् ।
इमामाघोषन्नवसा सहूतिं तिरो विश्वाँ अर्चतो याह्यर्वाङ् १६
एवा ते वयमिन्द्र भुञ्जतीनां विद्याम सुमतीनां नवानाम् ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो विश्वामित्रा उत त इन्द्र नूनम् १७
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्र मस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् १८ [१९] (१०००)

---

[९९५] (जायमानं इन्द्रं मासाः अनु, वनानि इत् ओषधीः पर्वतासः अनु अजिहत) प्रकट होते हुए इन्द्रके अनुसारही मास, वन, ओषधियां और पर्वत अनुसरण करते हैं। (वावशाने रोदसी इन्द्रं अनु आपः अनु) कान्ति युक्त आकाश और पृथिवी दोनों भी और उदक ये सब इन्द्रका अनुसरण करते हैं— तेजस्वी इन्द्रके अनुगामी होते हैं ॥ १३ ॥

[९९६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते सा अघस्य चेत्या कर्हि स्वित् असत्) तेरा वह प्रसिद्ध अस्त्र वा बाण जो तू पापी राक्षस पर फेंकता है, वह कब प्रकट होगा ? (यत् एषत् रक्षः भिनदः) जिससे तू यज्ञके लिये आये राक्षसको नष्ट करता है। (यत् मित्रक्रुवः शसने गावः न) जिससे मित्रद्वेषी राक्षस हत्यास्थानमें पशुओंके समान वे (आपृक् अमुया पृथिव्याः शयन्ते) भी मरकर इस पृथिवीके ऊपर पडें ? ॥ १४ ॥

[९९७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ये शत्रूयन्तः ओगणासः महि व्राधन्तः) जो शत्रुता करनेवाले और अपने संघ बनाये हुए, बहुत पीडा पहुंचाते हुए, (नः अभि ततस्रे) हमें सब ओरसे घिरकर हमारे ऊपर शस्त्र प्रहार करते हैं, वे (अमित्राः अन्धेन तमसा सचन्ताम्) शत्रु गूढ अन्धकारमें गिरें और (तान् सुज्योतिषः अक्तवः अभि ष्युः) उनको सुप्रकाशित दिन और रात्रि भी पराजित करें ॥ १५ ॥

[९९८] हे इन्द्र ! (त्वा जनानां पुरूणि सवना हि ब्रह्माणि मन्दन्) तेरी मनुष्य अनेक उपासना–यज्ञादिसे और स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं, प्रसन्न करते हैं। (गृणतां ऋषीणां इमां सहूतिं आघोषन्) स्तुति करनेवाले ऋषियोंके इस एक साथ मिलकर करने योग्य प्रार्थनासे मैं भी स्तुति करता हूं। (विश्वान् अर्चतः तिरः अवसा अर्वाङ् याहि) अन्य स्तुति करनेवाले लोगोंकी उपेक्षा कर तू रक्षा करनेके लिये हमारे पासही आवो ॥ १६ ॥

[९९९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वयं ते एव भुञ्जतीनां विद्याम) हम तेरी ही रक्षा करनेवाली कृपाओंको सदा प्राप्त करें। (उत इन्द्र ते नवानां सुमतीनां वस्तोः अवसा गृणन्तः) और हे इन्द्र ! तेरे नये और उत्तम अनुग्रह बारबार हमारी रक्षाके लिये हमें प्राप्त होवें, इसलिये हम प्रार्थना–स्तुति करते हैं। (नूनं विश्वामित्राः विद्याम)निश्चयसे ही हम विश्वामित्र–पुत्र तेरी कृपासे अच्छे दिवस प्राप्त करें ॥ १७ ॥

१०००] (अस्मिन् भरे शुनं मघवानं शृण्वन्तं उग्रं) इस युद्धमें महान् पवित्र, ऐश्वर्योंके स्वामी, हमारी-भक्तोंकी प्रार्थनायें सुननेवाले, उग्र (समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं धनानां संजितं इन्द्रं) युद्धोंमें शत्रुओंको नाश करनेवाले और समस्त धनोंका विजय करनेवाले पुरुषोत्तम इन्द्रको (वाजसातौ ऊतये हुवेम) अन्नप्राप्तिके लिये और रक्षाके लिये हम बुलाते हैं ॥ १८ ॥

(९०)

१६ नारायणः। पुरुषः। अनुष्टुप्, १६ त्रिष्टुप्।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वा ऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् १
पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति २
एतावानस्य महिमा ऽतो ज्यायाँश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ३
त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि ४
तस्माद्विराळजायत विराजो अधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ५ [१७]

यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ६

---

[९०]

[१००१] (सहस्र-शीर्षा सहस्र-अक्षः सहस्र-पात्) हजारों मस्तक जिसके हैं, हजारों आंखें जिसकी हैं, हजारों पांव जिसके हैं, ऐसा एक पुरुष-ईश्वर है, (सः भूमिं विश्वतः वृत्वा) वह भूमिके चारों ओर घेरकर रह रहा है और (दश-अंगुलं अत्यतिष्ठत्) दस अंगुल रूप इस अल्प सृष्टिको व्यापकर बाहर भी है ॥ १ ॥

[१००२] (यद् भूतं यत् च भव्यं) जो भूतकालमें हुआ था और जो वर्तमानकालमें है, तथा जो भविष्य-कालमें होनेवाला है, (इदं सर्वं पुरुष एव) वह सब यह पुरुष ही है। (उत अमृतत्वस्य ईशानः) और वह पुरुष अमरपनका- मोक्षका स्वामी है, (यत् अन्नेन अति रोहति) जो अन्नसे बढता है ॥ २ ॥

[१००३] (अस्य एतावान् महिमा) इस पुरुषका इतना विशाल महिमा है (अतः ज्यायान् पुरुषः) इससे एक बडा और एक श्रेष्ठ पुरुष है। (विश्वा भूतानि अस्य पादः) सब भूतमात्र जो इस विश्वमें है वह सब इसके एक चरणवत् है। (अस्य त्रिपात् दिवि अमृतम्) इसके तीन चरण दिव्यलोकमें अमृतरूप हैं ॥ ३ ॥

[१००४] (त्रिपाद् पुरुषः उर्ध्वः उदैत्) त्रिपाद पुरुष ऊपर द्युलोकमें रहा है, (अस्य पादः इह पुनः अभवत्) इस पुरुषका एक भाग यहाँ इस विश्वके रूपमें पुनः पुनः उत्पन्न होता रहता है। (ततः स-अशन-अनशने विष्वङ् अभि व्यक्रामत्) पश्चात् उसने अन्न खानेवाले और अन्न न खानेवाले विश्वको चारों ओरसे व्याप लिया ॥ ४ ॥

[१००५] (तस्मात् विराट् अजायत) उस परमात्मासे विराट् पुरुष उत्पन्न हुआ। (विराजः अधि पूरुषः) विराटके ऊपर एक अधिष्ठाता पुरुष हुआ। (सः जातः अत्यरिच्यत) वह उत्पन्न होनेपर विभक्त होने लगा। (पश्चात् भूमिं अथो पुरः) प्रथम भूमि आदि गोल हुए नंतर उसपरके शरीर हुए ॥ ५ ॥

[१००६] (यत् देवाः पुरुषेण हविषा यज्ञं अतन्वत) जब देवोंने विराट् पुरुषरूपी हविसे यज्ञ करना शुरु किया, तब (अस्य वसन्तः आज्यं आसीत्) वसंत ऋतु इस यज्ञमें घीका कार्य करता था, (ग्रीष्मः इध्मः शरत् हविः) ग्रीष्म ऋतु इंधन और शरद् ऋतु हवि हुआ था ॥ ६ ॥

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ७
तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् ।
पशून् ताँश्चक्रे वायव्या नारण्यान् ग्राम्याश्च ये ८
तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दाँसि जज्ञिरे तस्मा द्यजुस्तस्मादजायत ९
तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः १० [१८] (१०१०)
यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते ११
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासी द्बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत १२
चन्द्रमा मनसो जात श्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत १३

[१००७] (तं अग्रतः जातं यज्ञं पुरुषं बर्हिषि प्रौक्षन्) उस प्रथम उत्पन्न हुए यजनीय विराट् पुरुषको यज्ञमें प्रोक्षण करके (ये देवाः साध्याः ऋषयः च तेन अयजन्त) जो देव साध्य और ऋषि थे, उन्होंने उस विराट् पुरुषसेही यज्ञ चलाया था ॥ ७ ॥

[१००८] (तस्मात् सर्वहुतः यज्ञात्) उस सर्वहुत यज्ञसे (पृषद् आज्यं संभृतं) दहीके साथ मिला घी प्राप्त हुआ। (तान् वायव्यान् आरण्यान् पशून्) वायुमें उडनेवाले पक्षी तथा वायु देवताके जंगलमें रहनेवाले उन पशुओंको (ये ग्राम्याः चक्रे) ग्राम्य पशु बनाये ॥ ८ ॥

[१००९] (तस्मात् सर्वहुतः यज्ञात्) उस सर्वहुत यज्ञसे (ऋचः सामानि जज्ञिरे) ऋग्वेदके मंत्र तथा सामगान बने ! (तस्मात् छन्दांसि जज्ञिरे) छन्द अर्थात् अथर्ववेदके मंत्र भी उसीसे उत्पन्न हुए और (तस्मात् यजुः अजायत्) उसीसे यजुर्वेदके मंत्र भी उत्पन्न हुए ॥ ९ ॥

[१०१०] (तस्मात् अश्वाः अजायन्त) उस सर्वहुत यज्ञसे घोडे हुए, (ये के च उभयादतः) जो दोनों ओर दांतवाले हैं। (तस्मात् गावः ह जज्ञिरे) उसीसे गौवें उत्पन्न हुईं और (तस्मात् अजावयः जाताः) उसीसे बकरियां और भेडियां उत्पन्न हो गयीं ॥ १० ॥

[१०११] (यत् पुरुषं व्यदधुः) जिस पुरुषका यहां वर्णन किया है उसकी (कति-धा व्यकल्पयन्) कितने प्रकारसे कल्पना की गयी है ! (अस्य मुखं किम्) इसका मुख क्या है ? (बाहू कौ) दोनों बाहू कौन हैं ? (कौ ऊरू पादौ उच्येते) इसकी जांघें कौनसी हैं और उसके पांव कौनसे हैं, ऐसा कहा जाता है ? ॥ ११ ॥

[१०१२] (अस्य मुखं ब्राह्मणः आसीत्) इस पुरुषका मुख ब्राह्मण-ज्ञानी हुआ है, (बाहू राजन्यः कृतः) इस पुरुषके बाहु क्षत्रिय अर्थात् शूर पुरुष हुए हैं। (ऊरू अस्य तत् यद् वैश्यः) इसकी जांघें वे है जो वैश्य हैं और (पद्भ्यां शूद्रः अजायत) पावोंके स्थानमें शूद्र हुआ है ॥ १२ ॥

[१०१३] (मनसः चन्द्रमा जातः) परमात्माके मनसे चन्द्रमा हुआ है, (चक्षोः सूर्यः अजायत) परमात्माकी आंखोंसे सूर्य हुआ है, (मुखात् इन्द्रः च अग्निः च) मुखसे इन्द्र और अग्नि हुए, और (प्राणात् वायुः अजायत) प्राणसे वायु हुआ ॥ १३ ॥

नाभ्या आसीदुन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पुद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात् तथा लोकाँ अंकल्पयन् १४
सुप्तास्यासन् परिधयुस्त्रिः सुप्त सुमिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पुशुम् १५
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः १६ · [१९]

(९१) [अष्टमोऽनुवाकः ॥८॥ सू.

१५ अरुणो वैतहव्यः । अग्निः । जगती, १५ त्रिष्टुप् ।

सं जागृवद्भिर्जरमाण इध्यते दमे दमूना इषयन्निळस्पदे ।
विश्वस्य होता हविषो वरेण्यो विभुर्विभावा सुषखा सखीयते १
स दर्शतश्रीरतिथिर्गृहेगृहे वनेवने शिश्रिये तक्ववीरिव ।
जनंजनं जन्यो नाति मन्यते विश आ क्षेति विश्योऽ विशंविशम् २

[१०१४] (नाभ्याः अन्तरिक्षं आसीत्) नाभीसे अन्तरिक्ष हुआ है, (शीर्ष्णः द्यौः समवर्तत) सिरसे द्युलोक हुआ है, (पद्भ्यां भूमिः) पावोंसे भूमि हुई, (श्रोत्रात् दिशः) कानोंसे दिशाएं हुईं, (तथा लोकान् अकल्पयन्) इस तरह अन्य लोकोंकी कल्पना करनी योग्य है ॥ १४ ॥

[१०१५] (अस्य सप्त परिधयः आसन्) इस यज्ञकी सात परिधियें थीं और (त्रिः सप्त समिधः कृताः) तीन गुणा सात अर्थात् इक्कीस समिधायें थीं । (देवाः यत् यज्ञं तन्वानाः) देव जिस यज्ञको फैला रहे थे, (पुरुषं पशुं अबध्नन्) उसमें इस पुरुषरूपी पशुको बांधते थे ॥ १५ ॥

[१०१६] (देवाः यज्ञेन यज्ञं अयजन्त) देवोंने इस यज्ञपुरुषके साधनसे जो यज्ञका कार्य करना प्रारंभ किया, (तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्) वे प्रारंभके धर्मश्रेष्ठ थे । ऐसा यज्ञधर्मका आचरण करनेवाले धार्मिक लोग (यत्र पूर्वे साध्याः देवाः सन्ति) जहां पूर्व समयके साधनसंपन्न यज्ञ करनेवाले लोग रहते थे (ते ह महिमानः नाकं सचन्त) वे ही महात्मा लोग निश्चयसे उसी सुखपूर्ण स्थानमें जाकर रहने लगे ॥ १६ ॥

[९१]

[१०१७] हे अग्नि ! (जागृवद्भिः जरमाणः दमे दमूनाः इळः पदे इषयन्) ज्ञानवान् पुरुषोंद्वारा स्तोत्रोंसे स्तवित, उदार–दानशील मनवाला अग्नि उत्तर वेदीपर बैठकर अन्नकी इच्छा करता हुआ, (विश्वस्य हविषः होता) समस्त हविके ग्रहण करनेवाला–भोक्ता, (वरेण्यः विभुः विभावा सुषखा सखीयते) श्रेष्ठ, व्यापक, दीप्तिमान् और उत्तम मित्र है; वह मित्रताकी इच्छा करता हुआ प्रज्वलित होता है ॥ १ ॥

[१०१८] (दर्शतश्रीः अतिथिः सः गृहे गृहे वने वने शिश्रिये) दर्शनीय–सुशोभित और अतिथितुल्य पूजनीय अग्नि प्रत्येक गृहमें और समस्त वनोंमें रहता है । (जन्यः जनंजनं तक्वीः इव न अति मन्यते) जनहितैषी अग्नि प्रत्येक प्राणीमें व्याप्त होकर किसीकी भी उपेक्षा नहीं करता है । (विश्यः विशः विशं विशं आ क्षेति) वह प्रजाओंका हितकारी होकर प्रत्येक मनुष्यमें निवास करता है ॥ २ ॥

सुदक्षो दक्षैः क्रतुनासि सुक्रतु — रग्ने कविः काव्येनासि विश्ववित् ।
वसुर्वसूनां क्षयसि त्वमेक इद् द्यावा च यानि पृथिवी च पुष्यतः ३
प्रजानन्नग्ने तव योनिमृत्विय — मिळायास्पदे घृतवन्तमासदः ।
आ ते चिकित्र उषसामिवेतयो ऽरेपसः सूर्यस्येव रश्मयः ४
तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युत — श्चित्राश्चिकित्र उषसां न केतवः ।
यदोषधीरभिसृष्टो वनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्नमास्ये ५ [२०]

तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्निं जनयन्त मातरः +
तमित् समानं वनिनश्च वीरुधो ऽन्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा ६
वातोपधूत इषितो वशाँ अनु तृषु यदन्ना वेविषद्वितिष्ठसे ।
आ ते यतन्ते रथ्यो३ यथा पृथक् शर्धांस्यग्ने अजराणि धक्षतः ७ (१०२३)
मेधाकारं विदथस्य प्रसाधन — मग्निं होतारं परिभूतमं मतिम् ।
तमिदर्भे हविष्या समानमित् तमिन्महे वृणते नान्यं त्वत् ८

[१०१९] हे (अग्ने) अग्नि ! तू (दक्षैः सुदक्षः असि) सब बलोंसे उत्तम बलशाली है। तू (क्रतुना सुक्रतुः काव्येन कविः असि) कर्म सामर्थ्यसे उत्तम-शोभन कर्मा और बुद्धिमान् कर्मसे क्रान्तदर्शी विद्वान् है। तू (विश्ववित् वसूनां वसुः) सर्वज्ञ और ऐश्वर्योंका स्थापक है। (द्यावा च पृथिवी च यानि पुष्यतः) द्यावा पृथिवी जिन धनोंका संवर्धन करते हैं, उन सबका (त्वं एकः इत् क्षयसि) तू ही अकेला अद्वितीय स्वामी है ॥ ३ ॥

[१०२०] हे (अग्ने) अग्नि ! (तव ऋत्वियं घृतवन्तं योनिं इळायाः पदे प्रजानन् आसदः) तेरा ऋतु अनुसार यथासमय घृतयुक्त भूमिके उत्तर वेदीपर रक्षित निवासस्थानको जानकर तू वहां बैठता है। (ते रश्मयः उषसां इव एतयः) तेरी ज्वालाएं उषःकालकी कान्तिके समान विमल और (सूर्यस्य अरेपसः रश्मयः आ चिकित्रे) सूर्यकी किरणोंके समान निर्दोष देखी जाती हैं ॥ ४ ॥

[१०२१] हे अग्नि ! (तव श्रियः चित्राः चिकित्रे) तेरी ज्वालाएं-शिखाएं विचित्र दिखाई देतीं हैं। (वर्ष्यस्य इव विद्युतः उषसां न केतवः) वे जलवर्षक विद्युत्से युक्त मेघकी चमकती शोभा अथवा उषाकाल की आगमन सूचिका आभाओंके समान देखी जाती हैं। (यत् ओषधीः वनानि च अभिसृष्टः) उस समय तू घास आदि ओषधियां और वनको खोजते हुए- जलाते हुए (स्वयं आस्ये अन्नं परि चिनुषे) स्वयं ही मुखमें अन्नको प्राप्त कर लेता है ॥ ५ ॥

[१०२२] (ऋत्वियं गर्भं तं ओषधीः दधिरे) ओषधियां ऋतुके अनुसार अग्निको गर्भ स्वरूप धारण करती हैं; (तं अग्निं मातरः आपः जनयन्त) तेज धारण करनेवाली माताके समान जल उसही अग्निको उत्पन्न करता है। (वनिनः समानं तं इत्) वनस्पतियां गर्भवती होकर उसकोही उत्पन्न करती हैं। और उसही अग्निको (अन्तर्वतीः वीरुधः च विश्वहा सुवते) गर्भवती ओषधियां सर्वदा उत्पन्न करती हैं ॥ ६ ॥

[१०२३] हे (अग्ने) अग्नि ! (यत् वात-उपधूतः वशान् अनु तृषु इषितः) जब तू वायुके द्वारा कंपित होकर वनस्पतियोंके प्रति शीघ्रही संचालित होता है, और (अन्ना वेविषत् वितिष्ठसे) अन्नोंके समान खाद्य पदार्थोंको व्याप्त करके प्राप्त करता है, तब (ते धक्षतः अजराणि शर्धांसि) तेरी काष्ठोंको जलानेवाली प्रबल और अक्षय शिखायें (यथा रथ्यः पृथक् आ यतन्ते) रथारूढ योद्धाके समान पृथक् पृथक् होकर बलका प्रकाश करती हैं ॥ ७ ॥

[१०२४] (मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनं होतारं) उत्तमबुद्धिके देनेवाले, यज्ञके सिद्धिदाता, देवोंको बुलानेवाले (परिभूतमं मतिं अग्निं) परंतप और ज्ञानी अग्निको हम वरण करते हैं। (तं इत् अर्भे हविषि समानं इत् आ वृणते) उसकोही अल्प हवि प्रदान किया जाय तो भी सबके प्रति समान भाववाले अग्निकोही ऋत्विज प्रार्थना करते हैं। (महे तं इत् वृणते) महान् हवि अर्पण किया जाय तो भी उसकोही बुलाते हैं, प्रार्थना करते हैं। (त्वत् अन्यं न) तेरेसे अन्यको ये नहीं वरते हैं ॥ ८ ॥

त्वामिदत्र वृणते त्वायवो होतारमग्ने विदथेषु वेधसः ।
यद्देवयन्तो दधति प्रयांसि ते हविष्मन्तो मनवो वृक्तबर्हिषः ९
तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमृत्वियं तव नेष्ट्रं त्वमग्निदृतायतः ।
तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि ब्रह्मा चासि गृहपतिश्च नो दमे १० [२१]

यस्तुभ्यमग्ने अमृताय मर्त्यः समिधा दाशदुत वा हविष्कृति ।
तस्य होता भवसि यासि दूत्य१मुप ब्रूषे यजस्यध्वरीयसि ११
इमा अस्मै मतयो वाचो अस्मदाँ ऋचो गिरः सुष्टुतयः समग्मत ।
वसूयवो वसवे जातवेदसे वृद्धासु चिद्वर्धनो यासु चाकनत् १२
इमां प्रत्नाय सुष्टुतिं नवीयसीं वोचेयमस्मा उशते शृणोतु नः ।
भूया अन्तरा हृद्यस्य निस्पृशे जायेव पत्य उशती सुवासाः १३

[१०२५] हे (अग्ने) अग्नि ! (होतारं त्वां इत् त्वायवः वेधसः अत्र विदथेषु वृणते) देवोंको बुलानेवाले तुझकोही तेरी कामना करनेवाले कर्मकर्ता तेरे भक्त यहां यज्ञोंमें वरण करते हैं, प्रार्थना करते हैं। (यत् देवयन्तः वृक्तबर्हिषः हविष्मन्तः मनवः) जब सर्वसुखदाता देवकी कामना करनेवाले, कुशाओंका छेदन करके और अन्नादि हविसे सम्पन्न ऋत्विज लोग (ते प्रयांसि दधति) तेरे लियेही हविओंको धारण करते हैं ॥ ९ ॥

[१०२६] हे (अग्ने) अग्नि ! (तव होत्रं तव ऋत्वियं पोत्रं तव नेष्ट्रं) तेरा होता का कर्म, तेरा ऋतुके अनुकूल होनेवाला पोताका कार्य, तेरा नेष्टा का कार्य और (ऋतायतः त्वम् अग्नित्) यज्ञ करनेवालेका तू ही अग्निध्र है। (तव प्रशास्त्रं त्वं अध्वरीयसि) तेरा ही प्रशस्ताका काम है और तू ही अध्वर्युका कार्य करता है। (ब्रह्मा च असि नः दमे गृहपतिः) तू ही ब्रह्मा है और हमारे घरमें गृहपति यजमान भी तू ही है ॥ १० ॥

[१०२७] हे (अग्ने) अग्नि ! (अमृताय तुभ्यं यः मर्त्यः समिधा दाशत्) अमर तुझको जो मनुष्य समिधा देता है, (उत वा हविः कृति) और, अथवा हवि अर्पण करता है, (तस्य होता भवसि) उसका तू होता होता है। (दूत्यं यासि) उसके लिये तू देवोंके पास दूत कार्य करता है। (उप ब्रूषे) ब्रह्माके समान तू उपदेश करता है। (यजसि अध्वरीयसि) यजमान होकर हवि प्रदान करता है और उसके यज्ञमें अध्वर्युका कार्य करता है ॥ ११ ॥

[१०२८] (जातवेदसे वसवे अस्मै मतयः इमाः वाचः वसूयवः) सर्वज्ञ-ज्ञानी, एश्वर्य सपन्न संरक्षक अग्निके लिये पूजनीय-मननीय ये स्तोत्र धनैश्वर्यकी कामना करनेवाले हमसे कहे जाकर (आ समग्मत) उसे एक साथ प्राप्त होते हैं- उस अग्निको प्रसन्न करते हैं। (सुष्टुतयः ऋचः गिरः यासु वृद्धासु चित् वर्धनः चाकनत्) उत्तम स्तुतियुक्त ये ऋचाएं और वेद वाक्य श्रीवृद्धि करनेवाले अग्निको वर्धित करते हैं और वह स्तोताओंकी इच्छा करता है ॥ १२ ॥

[१०२९] (प्रत्नाय उशते अस्मै इमां नवीयसीं सुष्टुतिं वोचेयम्) में प्राचीन, स्तोत्रके अभिलाषी इस अग्निके लिये इस अति उत्तम नवीन और सुंदर स्तुतिको कहता हूं। वह (नः शृणोतु) हमारी स्तुति-प्रार्थना सुने। (अस्य हृदि अन्तरा निस्पृशे भूयाः) इसके हृदयमें भीतर ही खूब स्पर्श करने तक पहुंचनेवाला हो जाऊं- इसके मनको प्रसन्न करनेवाला होऊं। जैसे (पत्ये सुवासाः जाया इव उशति) प्रणयवश स्त्री पतिके लिये उत्तम शोभन वस्त्र पहनकर उसके हृदय देशमें अपनेको मिलाती है ॥ १३ ॥

यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुताः ।
कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनये चारुमग्नये १४
अहाव्यग्ने हविरास्ये ते स्रुचीव घृतं चम्वीव सोमः ।
वाजसनिं रयिमस्मे सुवीरं प्रशस्तं धेहि यशसं बृहन्तम् १५ [२२] (१०३१)

(९२)

१५ शार्यातो मानवः । विश्वे देवाः । जगती ।

यज्ञस्य वो रथ्यं विश्पतिं विशां होतारमक्तोरतिथिं विभावसुम् ।
शोचञ्छुष्कासु हरिणीषु जर्भुरद् वृषा केतुर्यजतो द्यामशायत १
इममञ्जस्पामुभये अकृण्वत धर्माणमग्निं विदथस्य साधनम् ।
अक्तुं न यह्वमुषसः पुरोहितं तनूनपातमरुषस्य निंसते २
बळस्य नीथा वि पणेश्च मन्महे वया अस्य प्रहुता आसुरत्तवे ।
यदा घोरासो अमृतत्वमाशतादिज्जनस्य दैव्यस्य चर्किरन् ३

[१०३०] (यस्मिन् उक्षणः अश्वासः ऋषभासः वशाः मेषाः अवसृष्टासः) जिस अग्निके लिये समर्थ अश्व, पुष्ट बैल, गौएं और भेडे बकरे, आदि खुले छोडे जाते हैं और अश्वमेध यज्ञमें आहुत होते हैं; उस (कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे अग्नये हृदा चारुं मतिं जनये) सौत्रामणी यागमें आदरपूर्वक अर्घ्य जलका पान करनेवाले वा कीलाल नाम उदकके पालक और सोम यज्ञानुष्ठाता मतिमान् अग्निके लिये हृदयसे मैं कल्याणमयी स्तुति करता हूं ॥१४॥

[१०३१] हे (अग्ने) अग्नि ! (स्रुचि घृतं इव चम्वि इव सोमः) जैसे स्रुकमें घी रखा जाता है और जैसे चमसमें सोम रस रखा जाता है, वैसे ही (ते आस्ये हविः अहावि) तेरे मुखमें हवि, पुरोडाश आदिका सतत हवन किया जाता है । तू (वाजसनिं सुवीरं प्रशस्तं यशसं बृहन्तं रयिं अस्मे धेहि) अन्न देनेवाला, उत्तम पुत्र युक्त, सुवर्णादिसे पूर्ण, कीर्तिमान्, महान् और रमणीय ऐश्वर्य हमें प्रदान कर ॥ १५ ॥

[९२]

[१०३२] हे देवो ! (वः यज्ञस्य रथ्यं विश्पतिं विशां होतारं) तुम यज्ञके मुख्य-प्रभु, प्रजाओंके पालक, देवोंके होता, (अक्तोः अतिथिं विभावसुं) रात्रीके अतिथि और विविध-दीप्तियुक्त धनवान् अग्निकी सेवा करो । (शुष्कासु शोचन् हरिणीषु जर्भुरत्) सूखी लकडियोंको जलानेवाले और हरे ओषधियोंको भक्षण करनेवाले (वृषा केतुः यजतः द्यां अशायत) सब सुखोंका वर्धक, ज्ञानवान् और यजनीय अग्नि महान् आकाशमें भी व्यापक है ॥ १ ॥

[१०३३] (उभये अञ्जस्पां धर्माणं इमं अग्निं) देवों और मनुष्योंने सर्वतोपरि रक्षक और जगत्के धारक इस अग्निको (विदथस्य साधनं अकृण्वत) यज्ञका साधक किया । (अरुषस्य तनूनपातं यह्वं पुरोहितं) वह तेजोमय वायुके पुत्र और महान् पुरोहित है । (उषसः अक्तुं न निंसते) उषाएं उसको सूर्यके समान चूमती हैं ॥ २ ॥

[१०३४] (विपणेः नीथा वद मन्महे) स्तुतियोग्य अग्निके संबंधी हमारा ज्ञान सदा सत्य ही हो, ऐसी हम कामना करते हैं । (अस्य वयाः अत्तवे प्रहुताः आसुः) इस अग्निके लिये प्रदान की गई हमारी आहुतियां अग्निदेव भक्षण करे, ऐसी हम इच्छा करते हैं । (यदा घोरासः अमृतत्वं आशत) जब अग्निकी प्रबल ज्वालाएं दीप्तिशील होगीं, (आत् इत् दैव्यस्य जनस्य चर्किरन्) अनन्तर ही अग्निके लिये हम आहुतियाँ प्रदान करते हैं ॥ ३ ॥

ऋतस्य हि प्रसितिर्द्यौरुरु व्यचो नमो मह्यरमतिः पनीयसी ।
इन्द्रो मित्रो वरुणः सं चिकित्रिरे ऽथो भगः सविता पूतदक्षसः ४
प्र रुद्रेण ययिना यन्ति सिन्धव स्तिरो महीमरमतिं दधन्विरे ।
येभिः परिज्मा परियन्नुरु ज्रयो वि रोरुवज्जठरे विश्वमुक्षते ५ [२२] (१०३६)
क्राणा रुद्रा मरुतो विश्वकृष्टयो दिवः श्येनासो असुरस्य नीळयः ।
तेभिश्चष्टे वरुणो मित्रो अर्यमे न्द्रो देवेभिरर्वशेभिरर्वशः ६
इन्द्रे भुजं शशमानास आशत सूरो दृशीके वृषणश्च पौंस्ये ।
प्र ये न्वस्यार्हणा ततक्षिरे युजं वज्रं नृषदनेषु कारवः ७
सूरश्चिदा हरितो अस्य रीरम दिन्द्रादा कश्चिद्भयते तवीयसः ।
भीमस्य वृष्णो जठरादभिश्वसो दिवेदिवे सहुरिः स्तन्नबाधितः ८
स्तोमं वो अद्य रुद्राय शिक्वसे क्षयद्वीराय नमसा दिदिष्टन ।
येभिः शिवः स्ववाँ एवयावभि र्दिवः सिषक्ति स्वयशा निकामभिः ९

[१०३५] (प्रसितिः द्यौः उरुव्यचः पनीयसी अरमतिः मही) विस्तृत द्युलोक, विस्तीर्ण अन्तरिक्ष, अत्यत स्तुत्य और अनन्त पृथिवी. (ऋतस्य नमः) यज्ञीय अग्निको नमस्कार करते हैं । (अथो इन्द्रः मित्रः वरुणः भगः सविता पूतदक्षसः सं चिकित्रिरे) और इन्द्र, मित्र, वरुण, भग, सविता आदि पवित्र बलवाले देव उसही का सम्मान करते हैं ॥ ४ ॥

[१०३६] (सिन्धवः ययिना रुद्रेण प्र यन्ति) नदियां वेगशाली मरुतोंकी सहायता पाकर वेगसे बहती हैं, (अरमतिं महीं तिरः दधन्विरे) और असीम भूमिको आच्छादित करती हैं । (परिज्मा परियन् येभिः उरु ज्रयः) सर्वत्र विचरण करनेवाला इन्द्र चारों ओर जाकर मरुतोंकी सहायतासे बहुत वेगसे दौडता है । और (जठरे रोरुवत् विश्वं उक्षते) अन्तरिक्षमें विविध गर्जना करके सब जगत् पर जल बरसाता है ॥ ५ ॥

[१०३७] (असुरस्य नीळयः दिवः श्येनासः विश्वकृष्टयः रुद्राः) मेघके आश्रय, अन्तरिक्षके श्येन पक्षी और सब मनुष्योंमें व्याप्त ये रुद्र पुत्र (मरुतः क्राणाः) मरुत् अपना कार्य करते हैं । (तेभिः अर्वशेभिः देवेभिः अर्वशः इन्द्रः वरुणः मित्रः अर्यमा च चष्टे) उन वेगवान् मरुत् देवोंके साथ अश्वारोही इन्द्र, वरुण, मित्र और अर्यमा समस्त बातोंको देखते हैं ॥ ६ ॥

[१०३८] (शशमानासः इन्द्रे भुजं आशत) स्तुतिकर्ता लोग इन्द्रसे पालन और रक्षाको प्राप्त करते हैं, (सूरः दृशीके वृषणः पौंस्यम्) सूर्यसे दृष्टिसामर्थ्य और वर्षक इन्द्रसे पौरुष और बल पाते हैं । (ये कारवः अस्य अर्हणा नु प्र ततक्षिरे) और जो स्तोता इस इन्द्रकी नित्य पूजा-स्तुति करते हैं, वे (नृषदनेषु युजं वज्रम्) यज्ञमें इन्द्रके वज्रको सहायक रूपसे प्राप्त करते हैं ॥ ७ ॥

[१०३९] (सूरः चित् अस्य हरितः आ रीरमत्) सूर्य भी इस इन्द्रकी आज्ञाका पालन करनेके लिये अश्वोंको प्रेरित करता है और वेगसे चलाता है । (तवीयसः इन्द्रात् कः चित् भयते) बलवान् इन्द्रसे सभी कोई डरता है । (वृष्णः भीमस्य दिवे दिवे अभिश्वसः) कामनाओंके वर्षक, सर्व भयंकर परमात्माके प्रतिदिन श्वासोच्छ्वास लेनेवाले (जठरात् सहुरिः अबाधितः स्तन्) उदरस्थानीय अन्तरिक्षसे अप्रतिबंध मेघगर्जना प्रकट होती रहती है ॥ ८ ॥

[१०४०] (येभिः एवयावभिः स्ववान् स्वयशाः शिवः दिवः सिषक्ति) जिन अश्वारूढ और उत्साही मरुतोंकी सहायता पाकर, आत्मशक्ति युक्त, स्वयं अपने सामर्थ्यसे यशस्वी, सुखकर परमेश्वर द्युलोकसे अपने भक्तोंकी अभिलाषाओंको पूर्ण करता है, हे ऋत्विको ! तुम (अद्य निकामभिः क्षयद्वीराय शिक्वसे) आज इस यागमें निष्काम मरुतोंके साथ रहनेवाले वीर शत्रुओंके हन्ता, शक्तिशाली (रुद्राय नमसा स्तोमं दिदिष्टन) रुद्रको अन्न प्रदान तथा नमस्कार करके स्तोत्र अर्पित करो ॥ ९ ॥

ते हि प्रजाया अभरन्त वि श्रवो बृहस्पतिर्वृषभः सोमजामयः ।
यज्ञैरथर्वा प्रथमो वि धारय—द्देवा दक्षैर्भृगवः सं चिकित्रिरे १० [२४]

ते हि द्यावापृथिवी भूरिरेतसा नराशंसश्चतुरङ्गो यमोऽदितिः ।
देवस्त्वष्टा द्रविणोदा ऋभुक्षणः प्र रोदसी मरुतो विष्णुरर्हिरे ११
उत स्य न उशिजामुर्विया कवि—रहिः शृणोतु बुध्न्यो३ हवीमनि ।
सूर्यामासा विचरन्ता दिविक्षिता धिया शमीनहुषी अस्य बोधतम् १२
प्र नः पूषा चरथं विश्वदेव्यो ऽपां नपादवतु वायुरिष्टये ।
आत्मानं वस्यो अभि वातमर्चत तदश्विना सुहवा यामनि श्रुतम् १३
विशामासामभयानामधिक्षितं गीर्भिरु स्वयशसं गृणीमसि ।
ग्नाभिर्विश्वाभिरदितिमनर्वण—मक्तोर्युवानं नृमणा अधा पतिम् १४

[१०४१] (हि वृषभः बृहस्पतिः सोमजामयः ते) जिस कारण कामनाओंके वर्षक बृहस्पति और सोमाभिलाषी अन्य सब देव (प्रजायाः श्रवः वि अभरन्त) संतति उत्पन्न करनेके लिये हमें अन्न प्रदान करके पुष्ट करते हैं; उसहीके लिये (प्रथमः अथर्वा यज्ञैः वि धारयत्) सबसे प्रथम अथर्वा ऋषि नाना यज्ञोंसे देवोंको प्रसन्न करे । (दक्षैः देवाः भृगवः सं चिकित्रिरे) और बलों– उत्साहोंसे युक्त समस्त देव और भृगुकुलोत्पन्न ऋषि यज्ञमें सेवित होवे ॥१०॥

[१०४२] (भूरिरेतसा द्यावापृथिवी यमः अदितिः त्वष्टा देवः) बहुत वृष्टि वर्षक द्यावापृथिवी, यम, अदिति, दानशील त्वष्टा, (द्रविणोदाः ऋभुक्षणः रोदसी मरुतः विष्णुः) धनका देनेवाला अग्नि, ऋभु, रुद्रपत्नी, मरुत् वीर और विष्णु, ये सब देव (चतुरङ्गः नराशंसः प्र अर्हिरे) चार अग्नि स्थापित नराशंस यज्ञमें स्तोत्रोंसे पूजित होते हैं ॥ ११ ॥

[१०४३] (उत उशिजां नः उर्विया स्यः कविः अहिः बुध्न्यः हवीमनि शृणोतु) और उत्तम कामनावाले हमारी बहुत सुंदर स्तुतिको वह अन्तरिक्ष स्थित बुद्धिमान्, तेजस्वी अहिबुध्न्य अग्नि यज्ञमें सुने । (दिविक्षिता विचरन्ता सूर्यामासा धिया अस्य बोधतम्) आकाशमें निवास करते हुए विचरण करनेवाले सूर्य और चन्द्र बुद्धिपूर्वक यही हमारा जाने और (शमी-नहुषी) द्यावापृथिवी भी जानें ॥ १२ ॥

[१०४४] (पूषा नः चरथं प्र अवतु) पूषादेव हमारे जंगम–चर धनकी रक्षा करे । (विश्वदेव्यः अपां नपात् वायुः इष्टये) समस्त देवोंके हितैषी, जलोंके वंशज और वायु यज्ञकर्मके लिये हमारी रक्षा करे । (आत्मानं वातं वस्यः) आत्म स्वरूप वायुकी अन्न–धनके लिये स्तुति करो । हे (सुहवा अश्विना) स्तुत्य अश्विनौ ! (यामनि तत् श्रुतम्) तुम यागके गमन मार्गमें वह स्तोत्र सुनो ॥ १३ ॥

[१०४५] (आसां अभयानां विशां अधिक्षितं स्वयशसं) इन निर्भय प्रजाओंके अन्तःकरणमें निवास करनेवाले, अपने पराक्रम–बलसे यशस्वी अग्निकी (गीर्भिः गृणीमसि) हम स्तुति करते हैं । (अनर्वणं अदितिं विश्वाभिः ग्नाभिः) स्वतंत्र-स्थिर देवमाता अदितिकी सब पत्नियोंके साथ हम स्तुति करते हैं । (अक्तोः युवानं) रात्रिपति चन्द्रमाकी हम स्तुति करते हैं । (नृमणाः अध पतिम्) सब मनुष्योंपर अनुग्रह करनेवाके आदित्यकी और सब जगत्के पालक इन्द्रकी भी हम स्तुति करते हैं ॥ १४ ॥

रेभदत्र जनुषा पूर्वो अङ्गिरा ग्रावाण ऊर्ध्वा अभि चक्षुरध्वरम् ।
येभिर्विहाया अभवद्विचक्षणः पाथः सुमेकं स्वधितिर्वनन्वति १५ [२५] (१०४६)

(९३)

१५ तान्वः पार्थ्यः । विश्वे देवाः । प्रस्तारपंक्तिः; २, ३, १३ अनुष्टुप्; ९ अक्षरैः पंक्तिः, ११ न्यङ्कुसारिणी, १५ पुरस्ताद्बृहती ।

महिं द्यावापृथिवी भूतमुर्वी नारी यह्वी न रोदसी सदं नः ।
तेभिर्नः पातं सह्यस एभिर्नः पातं शूषणि १
यज्ञेयज्ञे स मर्त्यो देवान् त्सपर्यति । यः सुम्नैर्दीर्घश्रुत्तम आविवासात्येनान् २
विश्वेषामिरज्यवो देवानां वार्महः । विश्वे हि विश्वमहसो विश्वे यज्ञेषु यज्ञियाः ३ (१०४९)
ते घा राजानो अमृतस्य मन्द्रा अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा ।
कद्रुद्रो नृणां स्तुतो मरुतः पूषणो भगः ४
उत नो नक्तमपां वृषण्वसू सूर्यामासा सदनाय सधन्या ।
सचा यत् साद्येषामहिर्बुध्नेषु बुध्न्यः ५ [२६]

[१०४६] (अत्र जनुषा पूर्वः अङ्गिराः रेभत्) इस यज्ञमें जन्मसे श्रेष्ठ अङ्गिरा ऋषि देवोंकी स्तुति करते हैं । (ग्रावाणाः ऊर्ध्वाः अध्वरं अभि चक्षुः) जो पत्थर पीसनेके लिये ऊपर उठाते हैं, वे भी यज्ञीय सोमको देखते हैं । (विचक्षणः येभिः विहायाः अभवत्) विश्वद्रष्टा इन्द्र जिनसे महान् हुआ– सोमरस पीकर प्रसन्न हुआ । (स्वधितिः वनन्वति पाथः सुमेकम्) उस इन्द्रका वज्र आकाशमार्गसे अन्नसाधक उदक उत्पन्न करे ॥ १५ ॥

[९३]

[१०४७] हे (द्यावापृथिवी) द्यावापृथिवी ! (महि उर्वी भूतम्) तुम दोनों अत्यंत विस्तृत होओ । (यह्वी रोदसी नारी न नः सदम्) ये विस्तृत–महान् द्यावा पृथिवी उत्तम स्त्रीके समान हमें परस्पर सदा सहायक होवें । (शूषणि नः एभिः पातम्) तुम शत्रुओंके बलोंसे इन उपायोंसे हमारी रक्षा करो । (तेभिः नः सह्यसः पातम्) इन रक्षा–उपायोंसे तुम हमें शत्रुसे उत्तम रीतिसे बचाओ ॥ १ ॥

[१०४८] (यः दीर्घश्रुत्तमः सुम्नैः एनान् आविवासाति) जो अत्यंत दीर्घकाल तक अनेक शास्त्रोंका श्रवण करनेवाला विद्वान् सुखकर हवियोंसे देवोंकी सेवा करता है, (सः मर्त्यः यज्ञे यज्ञे देवान् सपर्यति) वह मनुष्य सभी यज्ञोंमें देवोंकी नाना सुख साधनोंसे सेवा करता है ॥ २ ॥

[१०४९] हे (विश्वेषां इरज्यवः) सबके प्रभु ! (देवानां महः वाः) देवोंका महान् वरणीय धन है, वह हमें दो । (विश्वे हि विश्वमहसः) तुम सब निश्चयसे संपूर्ण तेजोंको धारण करनेवाले और (विश्वे यज्ञेषु यज्ञियाः) तुम सब यज्ञोंमें पूजाके योग्य हो ॥ ३ ॥

[१०५०] (अर्यमा मित्रः परिज्मा वरुणः स्तुतः रुद्रः पूषणः मरुतः) अर्यमा, मित्र, सर्वगामी वरुण, लोगोंसे स्तवित रुद्र, सबके पोषक मरुत् और (भगः मन्द्राः नृणां कत्) भग, ये सब देव स्तुत्य हैं; वे सब लोगोंको सुख प्रदान करें । (ते अमृतस्य राजानः घ) वे सब अमृतके समान हवि द्रव्यके राजा हैं ॥ ४ ॥

[१०५१] (उत) और, हे (वृषण्वसू) पर्जन्यरूप धनके प्रभु अश्विद्वय ! तुम्हारे तुल्य ही (अपां सधन्या सूर्यामासा) उदकोंके स्वामि सूर्य और चन्द्र हैं । (बुध्नेषु यत् अहिः बुध्न्यः सादि) अंतरिक्ष स्थानीय मेघोंमें अग्नि निवास करता है । (एषां सचा नः सदनाय नक्तम्) इनके साथ तुम हमारी यहां रहनेके लिये दिनरात रक्षा करें ॥५॥

उत नो देवावश्विना शुभस्पती धामभिर्मित्रावरुणा उरुष्यताम् ।
महः स राय एषते ऽति धन्वेव दुरिता ६
उत नो रुद्रा चिन्मृळतामश्विना विश्वे देवासो रथस्पतिर्भगः ।
ऋभुर्वाज ऋभुक्षणः परिज्मा विश्ववेदसः ७
ऋभुर्ऋभुक्षा ऋभुर्विधतो मद आ ते हरी जूजुवानस्य वाजिना ।
दुष्टरं यस्य साम चिदृधग्यज्ञो न मानुषः ८
कृधी नो अह्रयो देव सवितः स च स्तुषे मघोनाम् ।
सहो न इन्द्रो वह्निभिर्न्येषां चर्षणीनां चक्रं रश्मिं न योयुवे ९
ऐषु द्यावापृथिवी धातं महदस्मे वीरेषु विश्वचर्षणि श्रवः ।
पृक्षं वाजस्य सातये पृक्षं रायोत तुर्वणे १० [२७]

एतं शंसमिन्द्रास्मयुष्ट्वं कूचित् सन्तं सहसावन्नभिष्टये सदा पाह्यभिष्टये ।
मेदतां वेदता वसो ११

[१०५२] (उत शुभस्पती अश्विना देवौ मित्रावरुणौ नः धामभिः उरुष्यताम्) और उत्तम कल्याणकारी कर्मोंके पालक अश्विदेव और मित्र और वरुण हमारी अपने शरीरोंसे- तेजसे रक्षा करें । (सः महः रायः एषते) जिस यजमान पुरुषका ये देव संरक्षण करते हैं, वह महान् ऐश्वर्योंको प्राप्त करता है, और (धन्व इव दुरिता अति) वह मरुभूमिके समान दुःखोंको पार कर जाता है ॥ ६ ॥

[१०५३] (उत नः रुद्रा अश्विना चित् मृळताम्) और हमें रुद्रपुत्र आश्व भी सुखी करें । (रथस्पतिः ऋभुः वाजः भगः परिज्मा विश्वे देवासः) उसी तरह रथोंका पति पूषा, ऋभु, अन्नवान् भग, सर्वगामी वायु और सब देव हमें सुखी करें । हे (विश्ववेदसः) समस्त ज्ञानों और धनोंके स्वामी ! हे (ऋभुक्षणः) सब ब्रह्मादि महान् देवो ! तुम सब हमें सुखी करें ॥ ७ ॥

[१०५४] (ऋभुक्षाः ऋभुः) महान् इन्द्र यज्ञसे प्रकाशित, कांतियुक्त होता है । (विधतः मदः ऋभुः) तेरी सेवा करनेवाला यजमान भी यज्ञसे आनंदित होता है । हे इन्द्र ! (आ जूजुवानस्य ते हरी वाजिना) यज्ञके प्रति अत्यंत शीघ्रतासे आनेवाले तेरे रथके घोडे भी अतिशय बलवान् हैं । (यस्य साम चित् दुःस्तरम्) इन्द्रके लिये जो सामगान है, वह भी अत्यंत असाधारण है । (यज्ञः मानुषः न ऋधक्) इसका यज्ञ भी मनुष्यके लिये साधारण नहीं है, वह दिव्य है ॥ ८ ॥

[१०५५] हे (देव सवितः) प्रेरक सवितृ देव ! (नः अह्रयः कृधि) हमें कभी लज्जासे मुंह झुकाना न पडे ऐसा कर । (सः च मघोनां स्तुषे) वह तू धनवानोंके ऋत्विजोंसे स्तवित होता है । (इन्द्रः वह्निभिः चक्रं रश्मिं न एषां चर्षणीनां सहः नः नि योयुवे) मरुतोंके साथ रहनेवाला इन्द्र, रथके चक्र और अश्वोंके रासोंके समान, इन समस्त लोकोंके बलको हमें देवे ॥ ९ ॥

[१०५६] हे (द्यावापृथिवी) द्यावापृथिवी ! (अस्मे एषु वीरेषु) तुम हमारे इन पुत्रोंको (विश्वचर्षणि महत् श्रवः आ धातम्) सर्व मनुष्योपयोगी महान् यश प्रदान करो । (वाजस्य सातये पृक्षम्) बल प्राप्त करनेके लिये पुष्टियुक्त अन्न प्रदान करो । (उत तुर्वणे राया पृक्षम्) और शत्रुओंको नाश करनेके लिये, पार करनेके लिये धन प्रदान करो ॥ १० ॥

[१०५७] हे (वसो सहसावन् इन्द्र) सर्व व्यापक बलवान् इन्द्र ! (अस्मयुः त्व कूचित् सन्तं) हमारी इच्छा करनेवाला तू किसी भी स्थान पर रहते हुए (एतं शंसं अभिष्टये) इस प्रकार स्तुति करनेवाले भक्तकी इच्छित सिद्धिके लिये और (अभिष्टये सदा पाहि) यज्ञकी पूर्तिके लिये सदा रक्षा कर । (मेदतां वेदता) तेरी स्तुति करनेवाले मुझे तू सिद्धिके लिये जान ॥ ११ ॥

×

एतं मे स्तोमं तना न सूर्ये द्युतद्यामानं वावृधन्त नृणाम् ।
संवननं नाश्व्यं तष्टेवानपच्युतम् १२
वावर्त येषां राया युक्तैषां हिरण्ययीं । नेमधिता न पौंस्या वृथेव विष्टान्ता १३
प्र तद्दुःशीमे पृथवाने वेने प्र रामे वोचमसुरे मघवत्सु ।
ये युक्त्वाय पञ्च शतास्मयु पथा विश्राव्येषाम् १४
अधीन्न्वत्र सप्ततिं च सप्त च ।
सद्यो दिदिष्ट तान्वः सद्यो दिदिष्ट पार्थ्यः सद्यो दिदिष्ट मायवः १५ [२८](१०६१)

(९४)

१४ अर्बुदः काद्रवेयः सर्पः । ग्रावाणः । जगती; ५, ७, १४ त्रिष्टुप् ।

प्रैते वदन्तु प्र वयं वदाम ग्रावभ्यो वाचं वदता वदद्भ्यः ।
यदद्रयः पर्वताः साकमाशवः श्लोकं घोषं भरथेन्द्राय सोमिनः १ (१०६२)
एते वदन्ति शतवत् सहस्रवदभि क्रन्दन्ति हरितेभिरासभिः ।
विष्ट्वी ग्रावाणः सुकृतः सुकृत्यया होतुश्चित् पूर्वे हविरद्यमाशत २

[१०५८] (सूर्ये द्युतत्-यामानं तना न) जिस प्रकार सूर्यमें तेजस्वी किरणें विस्तृत दीप्तियुक्त ज्योतिको विस्तारित करती हैं उसी प्रकार (नृणां संवननं न मे एतं स्तोमं वावृधन्त) शत्रु मनुष्योंका नाश करनेवालेके समानही मेरा यह स्तोत्र वृद्धिगत होवे । (अनपच्युतं अश्व्यं तष्टा इव) जैसे शिल्पी न टूटनेवाले शीघ्रगामी अश्वोंसे चलनेवाले सुदृढ रथको बनाता है, वैसेही मैंने इसे बनाया है ॥ १२ ॥

[१०५९] (येषां राया युक्ता एषां हिरण्ययी वावर्त) जिनके धनदानसे युक्त यह स्तुति होती है, उनके लिये यह सुवर्णमय अलंकारके समान बारबार प्रीतियुक्त होती है; (पौंस्या नेमधिता न विष्टान्ता वृथा इव) संग्राममें जैसे अनेक पराक्रम किये जाते हैं अथवा घटीचक्र श्रेणीबद्ध होकर चलता है, वैसे ही हमारे स्तोत्र हैं ॥ १३ ॥

[१०६०] (ये अस्मयु पञ्च शता युक्त्वाय पथा) जो देव हमें चाहते हुए, पांच सौ रथोंमें घोडे जोतकर यज्ञमार्गमें जाते हैं, (एषां विश्रावि तत् दुःशीमे) उन देवोंके प्रशंसायुक्त श्रवणीय स्तोत्रका पाठ दुःशीम, (पृथवाने वेने असुरे रामे मघवत्सु प्र वोचं) पृथवान, वेन और बलवान् राम आदि धनवान् राजाओंके पास मैंने किया है ॥१४॥

[१०६१] (अत्र तान्वः सप्त च सप्ततिं च नु सद्यः इत् अधि दिदिष्ट) इन राजाओंसे तान्व नामके ऋषिने सतहत्तर गायें शीघ्र ही मांगीं और (पार्थ्यः सद्यः दिदिष्ट) पार्थ्य नाम ऋषिने भी मांगीं; (मायवः सद्यः दिदिष्ट) मायव ऋषिने भी शीघ्र ही मांगीं ॥ १५ ॥

[९४]

[१०६२] (एते प्र वदन्तु) ये पत्थर अभिषव-शब्द करें । (वयं वदद्भ्यः ग्रावभ्यः वाचं प्रवदाम) हम यजमान उन शब्द करनेवाले पत्थरोंकी स्तुति करते हैं । हे ऋत्विजो ! तुम भी (वदत) स्तोत्र-पाठ करो । (यत् अद्रयः पर्वताः आशवः साकं) जब आदरणीय और दृढ पत्थर सोमाभिषवका एकसाथ (इन्द्राय श्लोकं घोषं भरथ) इन्द्रके लिये श्रवणीय शब्द करते हैं; तब (सोमिनः) सोमपान करनेवाले तृप्त होते हैं ॥ १ ॥

[१०६३] (एते ग्रावाणः शतवत् सहस्रवत् वदन्ति) ये पत्थर सौ और सहस्रों मनुष्योंके समान शब्द करते हैं; और (हरितेभिः आसभिः अभि क्रन्दाति) ये सोम संसर्गसे हरितवर्ण तेजस्वी मुखोंसे देवोंको बुलाते हैं । (सुकृतः ग्रावाणः विष्ट्वी) उत्तम कर्म करनेवाले ये पत्थर यज्ञमें आकर (सुकृत्यया होतुः पूर्वे चित् अद्यं हविः आशत) अपने सुकृत्यसे देवोंको बुलानेवाले अग्निके पूर्वही भक्षणीय हविको पाते हैं ॥ २ ॥

एते वदन्त्यविदन्नना मधु न्यूङ्खयन्ते अधि पक्क आमिषि ।
वृक्षस्य शाखामरुणस्य बप्सत स्ते सूभर्वा वृषभाः प्रेमराविषुः ३

बृहद्वदन्ति मदिरेण मन्दिने न्द्रं क्रोशन्तोऽविदन्नना मधु ।
संरभ्या धीराः स्वसृभिरनर्तिषु राघोषयन्तः पृथिवीमुपब्दिभिः ४

सुपर्णा वाचमक्रतोप द्यव्या खरे कृष्णा इषिरा अनर्तिषुः ।
न्यङ्नि यन्त्युपरस्य निष्कृतं पुरू रेतो दधिरे सूर्यश्वितः ५ [२९]

उग्रा इव प्रवहन्तः समायमुः साकं युक्ता वृषणो बिभ्रतो धुरः ।
यच्छ्वसन्तो जग्रसाना अराविषुः शृण्व एषां प्रोथथो अर्वतामिव ६

दशावनिभ्यो दशकक्ष्येभ्यो दशयोक्त्रेभ्यो दशयोजनेभ्यः ।
दशाभीशुभ्यो अर्चताजरेभ्यो दश धुरो दश युक्ता वहद्भ्यः ७

[१०६४] (अरुणस्य वृक्षस्य शाखां बप्सतः) लाल रंगकी वृक्षकी शाखाको खाते हुए (ते सूभर्वाः वृषभाः प्र-ईम्-अराविषुः) उत्तम भोजनवाले वृषभोंके समान ये पत्थर शब्द करते हैं। जैसे (पक्के आमिषि अधि न्यूङ्खयन्ते) पक्व मांस होनेपर मांस भक्षण करनेवाले आनन्दित होकर शब्द करते हैं, उसी प्रकार (एते वदन्ति) ये भी शब्द करते हैं और (मधु अना अविदन्) मधुर सोमरस प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

[१०६५] (मदिरेण मन्दिना इन्द्रं क्रोशन्तः बृहत् वदन्ति) मदकर और चूसे जाते हुए सोमसे ये पत्थर इन्द्रको बुलाते हुए अत्यंत शब्द करते हैं। (अना मधु अविदन्) इन्होंने मुखसे मधुर सोमको प्राप्त किया । (संरभ्याः धीराः उपब्दिभिः) ये कार्यमें रत और धीर होकर अपने शब्दोंसे (पृथिवीं आघोषयन्तः स्वसृभिः अनर्तिषुः) गर्जनाओंसे पृथ्वीको पूरित करते हुए भगिनी स्वरूप अंगुलियोंके साथ प्रसन्नतासे नाचते हैं ॥ ४ ॥

[१०६६] (सुपर्णाः उप द्यवि वाचं अक्रत) उत्तमरीतिसे गिरनेवाले पत्थर अन्तरिक्षमें सतत शब्द करते हैं। (आखरे इषिराः कृष्णाः सूर्यश्वितः अनर्तिषुः) मृगोंके स्थानमें गमनशील कृष्ण मृगोंके समान सूर्यकी श्वेत किरणके समान वे जल बिंदु नाच रहे हैं। (निष्कृतं उपरस्य न्यक् नि यन्ति) निष्पीडित सुखदायक सोमरसको ये पत्थर नीचे गिराते हैं। (पुरु रेतः दधिरे) मानो वे बहुत सोमरस धारण करते हैं ॥ ५ ॥

[१०६७] (वृषणः धुरः बिभ्रतः) जिस प्रकार बलवान् बैल शकटके धुरेका भाग धारण करते हैं, वैसे ही इच्छित फल वर्षक यज्ञका भार धारण करनेवाले ये पत्थर (साकं युक्ताः प्रवहन्तः उग्राः इव समायमुः) सोमके साथ रथकी धुराको धारण करके रथ ले जानेवाले अश्वोंके समान महान् होते हैं। (यत् श्वसन्तः जग्रसानाः अराविषुः) जब वे सोमका ग्रास करते, श्वासके साथ शब्द करते हैं, तब (एषां अर्वतां इव प्रोथथः शृण्वे) इनका वेगवान् अश्वोंके समान ही शब्द सुनता हूं ॥ ६ ॥

[१०६८] (दशावनिभ्यः दशकक्षेभ्यः दशयोक्त्रेभ्यः) दस अंगुलियोंसे बद्ध, दस प्रकारके कर्मोंका प्रकाश करनेवाले, दस घोडेके समान, (दशयोजनेभ्यः दशाभीशुभ्यः) सोमके साथ योजनाओंवाले, दस प्रकारके कर्मोंको करनेवाले (अजरेभ्यः दश धुरः युक्ताः वहद्भ्यः अर्चत) सञ्चालन करनेवाले, दस प्रकारके बलोंसे युक्त होकर अभिषवके लिये वहन करनेवाले पत्थरोंको वर्णन करके स्तुति करो ॥ ७ ॥

ते अद्रयो दशयन्त्रास आशव स्तेषामाधानं पर्येति हर्यतम् ।
त ऊं सुतस्य सोम्यस्यान्धसो ऽशोः पीयूषं प्रथमस्य भेजिरे ८
ते सोमादो हरी इन्द्रस्य निंसते ऽशुं दुहन्तो अध्यासते गवि ।
तेभिर्दुग्धं पपिवान् त्सोम्यं मध्वि न्द्रो वर्धते प्रथते वृषायते ९
वृषा वो अंशुर्न किला रिषाथने ळावन्तः सदमित् स्थनाशिताः ।
रैवत्येव महसा चारवः स्थन यस्य ग्रावाणो अजुषध्वमध्वरम् १० [३०]

तृदिला अतृदिलासो अद्रयो ऽश्रमणा अशृथिता अमृत्यवः ।
अनातुरा अजराः स्थामविष्णवः सुपीवसो अतृषिता अतृष्णजः ११
ध्रुवा एव वः पितरो युगेयुगे क्षेमकामासः सदसो न युञ्जते ।
अजुर्यासो हरिषाचो हरिद्रव आ द्यां रवेण पृथिवीमशुश्रवुः १२

[१०६९] (अद्रयः आशवः ते दशयन्त्रासः) आवरणीय, वेगसे काम करनेवाले ये पत्थर दस अंगुलियोंमें पकडे हुये होते हैं। (तेषां आधानं हर्यतं पर्येति) इन पत्थरोंका अभिषवकार्य अत्यंत स्पृहणीय और सर्वगामी है। (ते उ प्रथमस्य सुतस्य सोमस्य अंशोः अन्धसः पीयूषं भेजिरे) और वे सर्व श्रेष्ठ, उस सर्व प्रथम प्राप्त अभिषुत सोम- अन्नके रसको सेवन करते हैं ॥ ८ ॥

[१०७०] (सोमादः ते इन्द्रस्य हरी निंसते) सोमका भक्षण करनेवाले वे पत्थर इन्द्रके घोडोंको चूमते हैं- अर्थात् इन्द्रके रथके पास जाते हैं। (गवि अंशुं दुहन्तः आसते) सोम रस निकालते समय वे गोचर्मके ऊपर बैठते हैं। (इन्द्रः तेभिः दुग्धं सोम्यं मधु पपिवान्) इन्द्र, ये पत्थर सोमसे जो मधुर रस निकालते हैं, उसे पीकर (वर्धते प्रथते वृषायते) वृद्धिको प्राप्त करता है, सामर्थ्यसे बढता है और बलवान् सांडके समान पराक्रम प्रकट करता है ॥ ९ ॥

[१०७१] (अंशुः वः वृषा) सोम तुम्हें यज्ञमें इच्छित बल प्रदान करेगा। (न किल रिषाथन) तुम कभी निराश नहीं होना- तुम क्षीण नहीं होना। (इळावन्तः सदं इत् आशिताः स्थन) अन्न आदिसे युक्तोंके समान तुम सदैव भोजनसे तृप्त होते रहो। हे (ग्रावाणः) पत्थरो ! तुम (यस्य अध्वरं अजुषध्वम्) जिस यजमानके यज्ञको सेवन करते हो (रैवत्याः इव महसा चारवः स्थन) धनवान् पुरुषोंके समान उज्ज्वल तेजसे युक्त और कल्याणप्रद होकर रहो ॥ १० ॥

[१०७२] हे पत्थरो ! (अश्रमणाः अशृथिताः अमृत्यवः अनातुराः अजराः स्थ) तुम श्रमरहित, शिथिल न होनेवाले, अमर, अरोग और जरारहित होवो ! तुम (अमविष्णवः तृदिलाः अतृदिलासः सुपीवसः अतृषिताः अतृष्णजः अद्रयः) सदा गतिशील, दुष्टोंको नष्ट करनेवाले, स्वयं अच्छिन्न, अत्यंत बलवान्, तृष्णारहित, निःस्पृह और आवरणीय होवो ॥ ११ ॥

[१०७३] हे पत्थरो ! (युगेयुगे वः पितरः ध्रुवाः एव क्षेमकामासः) सब युगोंमें तुम्हारे पितृभूत पर्वत सदा स्थिर, सब कल्याण करनेकी इच्छावाले (सदसः न युञ्जते) औ भवनोंके समान अभंग होते हैं। (अजुर्यासः हरिषाचः हरिद्रवः) वे जरारहित, सोम वृक्षसे युक्त और हरे वर्णके होकर (द्यां पृथिवीं रवेण अशुश्रवुः) आकाश और पृथिवीको अपने अभिषव शब्दसे पूरित करते हैं ॥ १२ ॥

तदिद्‌ध्वन्त्यद्रयो विमोचने यामन्नञ्जस्पा इव घेदुपब्दिभिः ।
वपन्तो बीजमिव धान्याकृतः पृञ्चन्ति सोमं न मिनन्ति बप्सतः १३
सुते अध्वरे अधि वाचमक्रता ऽऽक्रीळयो न मातरं तुदन्तः ।
वि षू मुञ्चा सुषुवुषो मनीषां वि वर्तन्तामद्रयश्चायमानाः १४ [३१] (१०७५)

[पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥ व० १-३१] (९५)

१८ ऐलः पुरूरवाः । उर्वशी देवता । २, ४-५, ७, ११, १३, १५-१६, १८, उर्वशी ऋषिका । पुरूरवा देवता । त्रिष्टुप् ।

हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे वचांसि मिश्रा कृणवावहै नु ।
न नौ मन्त्रा अनुदितास एते मयस्करन् परतरे चनाहन् १
किमेता वाचा कृणवा तवाहं प्राक्रमिषमुषसामग्रियेव ।
पुरूरवः पुनरस्तं परेहि दुरापना वात इवाहमस्मि २
इषुर्न श्रिय इषुधेरसना गोषाः शतसा न रंहिः ।
अवीरे क्रतौ वि दविद्युतन्नोरा न मायुं चितयन्त धुनयः ३

[१०७४] (अद्रयः तत् इत् विमोचने यामन्) आदरणीय पत्थर उस सोम अभिषवकर्मके समय, (अञ्जस्पाः इव उपब्दिभिः घ इत् वदन्ति) वेगसे जानेवाले रथोंके समान शब्द प्रकट करते हैं । (बप्सतः धान्याकृतः बीजं इव वपन्तः सोमं पृञ्चन्ति) सोम निचोडनेवाले पत्थर, धान्य बोनेवाले कृषीवल जैसे बीज बोते हैं, वैसेही सोमकी निगरानी करते हैं । (न मिनन्ति) वे इसका नाश नहीं करते ॥ १३ ॥

[१०७५] (चायमानाः अद्रयः अध्वरे अधि सुते) पूज्य आदरणीय पत्थर यज्ञमें सोमका रस निकालते समय (आक्रीळयः मातरं तुदन्तः न वाचं अक्रत) जिस प्रकार खेलते हुए बालक माताको हाथोंसे मारते हुए शब्द करते हैं, उसी प्रकार शब्द करते हैं । (सुषुवुषः मनीषां विसुमुञ्च) सोमरसका अभिषव करनेवाले पत्थरोंकी अनेक प्रकारसे स्तुति करो । (वि वर्तन्ताम्) क्यों कि पत्थर सोमाभिषवका कार्य स्थगित करे ॥ १४ ॥

[९५]

[१०७६] (पुरूरवा-) हे (हये घोरे जाये) निष्ठुर पत्नी ! (मनसा तिष्ठ) तू प्रेमयुक्त चित्तसे क्षणमात्र स्थिर हो । (मिश्रा वचांसि नु कृणवावहै) हम दोनों परस्पर मिले हुए आज शीघ्र कुछ उपयुक्त बातें करें । (नौ एते अनुदितासः मन्त्राः) इस समय हम दोनोंमें परस्पर किये विचार मन्त्रणासे (परतरे चन अहनि) भविष्यमें आनेवाले दिनोंमें (मयः न करन्) भी सुख प्रदान नहीं कर सकते क्या ? अवश्यही कर सकते हैं ॥ १ ॥

[१०७७] (उर्वशी-) (एता वाचा किं कृणव) केवल इस शुष्क बातचीतसे हम दोनों क्या करेंगे ? क्या सुख मिलेगा ? (अहं उषसां अग्रिया इव प्र अक्रमिषम्) मैं उषाके समान तुम्हारे पाससे चली आ रही हूं । इसलिये हे (पुरूरवः) पुरूरवा ! तुम (पुनः अस्तं परेहि) फिर अपने घर लौट जाओ । (अहं वातः इव दुरापना अस्मि) मैं वायुके समान दुष्प्राप्य ही हूं ॥ २ ॥

[१०७८] (पुरूरवा-) (इषुधेः इषुः श्रिये असना न) तेरे विरहके कारण मेरे तुणीरसे विजय प्राप्तिके लिये बाण नहीं निकलता, और (रंहिः गोषाः शतसाः न) मैं बलवान् होता हुआ भी शत्रुओंसे गायोंको, अनंत ऐश्वर्यको भी नहीं ले आ सकता । (अवीरे क्रतौ न वि दविद्युतत्) राज्यकार्य वीर विहीन होनेके कारण मेरा सामर्थ्य नहीं चमकता । (उरा धुनयः मायुं न चितयन्त) विस्तृत संग्राममें शत्रुओंको कंपा देनेवाले वीर भी सिंहनाद नहीं करते हैं ॥ ३ ॥

सा वसु दधती श्वशुराय वय उषो यदि वष्ट्यन्तिगृहात् ।
अस्तं ननक्षे यस्मिञ्चाकन् दिवा नक्तं श्नथिता वैतसेन ४
त्रिः स्म माह्नः श्नथयो वैतसेनो त स्म मेऽव्यत्यै पृणासि ।
पुरूरवोऽनु ते केतमायं राजा मे वीर तन्व१स्तदासीः ५ [१]

या सुजूर्णिः श्रेणिः सुम्नआपि र्ह्रदेचक्षुर्न ग्रन्थिनी चरण्युः ।
ता अञ्जयोऽरुणयो न सस्रुः श्रिये गावो न धेनवोऽनवन्त ६
समस्मिञ्जायमान आसत ग्ना उतेमवर्धन् नद्य१ः स्वगूर्ताः ।
महे यत् त्वा पुरूरवो रणाया ऽवर्धयन् दस्युहत्याय देवाः ७
सचा यदासु जहतीष्वत्क ममानुषीषु मानुषो निषेवे ।
अप स्म मत् तरसन्ती न भुज्यु स्ता अत्रसन् रथस्पृशो नाश्वाः ८
यदासु मर्तो अमृतासु निस्पृक् सं क्षोणीभिः क्रतुभिर्न पृङ्क्ते ।
ता आतयो न तन्वः शुम्भत स्वा अश्वासो न क्रीळयो दन्दशानाः ९

[१०७९] (उर्वशी-) हे (उषः) उषा देवी ! (सा वसु वयः श्वशुराय दधती) यह उर्वशी श्वशुरको उत्तम भोजन देनेकी इच्छा करती हुई (यदि वष्टि अन्तिगृहात् अस्तं ननक्षे) जब मुझे पति सम्बन्धकी कामना होती है, तब मैं सन्निहित गृहसे पतिके शयनगृहमें जाती; (यस्मिन् दिवा नक्तं चाकन्) जहां यह दिन-रात चाहती है और (वैतसेन श्नथिता) पतिके साथ रमण-सुखसे पूरी भरी रहती है ॥ ४ ॥

[१०८०] हे (पुरूरवः) पुरूरव ! तू (मां अह्नः वैतसेन त्रिः श्नथयः स्म) मुझे दिनमें तीन बार पुरुष-दण्डसे ताडित करता था- मेरा उपभोग करता था । (उत अव्यत्यै मे पृणासि) और सपत्नीके साथ मेरी प्रति द्वन्द्विता नहीं थी, तू मेरे अनुकूल होकर मुझे संतुष्ट करता था । (ते केतं अनु आयम्) इस आशासेही मैं तेरी शरणमें आती थी । हे (वीर) शूरवीर ! तू (मे तन्वः तत् राजा आसीः) मेरे शरीरका उस समय स्वामी होता था ॥ ५ ॥

[१०८१] (पुरूरवा-) (या सुजूर्णिः श्रेणिः सुम्नआपिः ह्रदेचक्षुः ग्रन्थिनी चरण्युः) जो उर्वशी सुजूर्णि, श्रेणि, सुम्नआपि और ह्रदेचक्षु- इन चार सखियोंके साथ आयी थी; परंतु (ताः अञ्जयः अरुणयः न सस्रुः) तुम्हारे आनेके बाद वे अरुण वर्णाङ्कित अप्सराएं वेषभूषा करके नहीं आती थीं । (ताः श्रिये धेनवः गावः न अनवन्त) नव प्रसूत गायें जैसे शब्द करती हैं, वैसे वे सब अब शब्द नहीं करती थीं ॥ ६ ॥

[१०८२] (उर्वशी-) हे (पुरूरवः) पुरुरव ! (अस्मिन् जायमाने ग्नाः सं आसत) जिस समय पुरूरवाने जन्म ग्रहण किया, उस समय देव-पत्नियां भी देखने आयीं । (उत ईम् स्वगूर्ताः नद्यः) और बहनेवाली नदियोंने स्वयं उसकी संवर्धना की । (यत् त्वा महे रणाय दस्युहत्याय देवाः अवर्धयन्) तुझे महान् संग्रामके लिये और शत्रुओंको हनन करनेके निमित्त देवोंने तुझे सामर्थ्य संपन्न किया ॥ ७ ॥

[१०८३] (यत् सचा अत्कं जहतीषु अमानुषीषु) जब यह पुरूरवा स्वयंका रूप त्यजकर देव रूप अप्सराओंके पास (मानुषः निषेवे) मनुष्य होकर जाता था, तब (ताः मत् अप अत्रसन्) ये अप्सराएं भयभीत होकर दूर चली जातीं थीं । (तरसन्ती भुज्युः न) जैसे कामिनी हरिणी डरके व्याधसे दूर भागती है, अथवा (रथस्पृशः अश्वाः न) रथमें जोते हुए घोडे भागते हैं ॥ ८ ॥

[१०८४] (यत् आसु अमृतासु मर्तः निस्पृक् क्षोणीभिः) जब इन देवलोकवासिनी अप्सराओंके साथ मनुष्य देहधारी पुरूरवा अत्यंत स्नेहपूर्ण बातें करने और (क्रतुभिः न सं पृङ्क्ते) कर्मोंसे सम्पर्क करने जाता है, (ताः आतयः स्वाः तन्वः न शुम्भत) तब वे अपने शरीरको नहीं दिखातीं, लुप्त हो जातीं थीं; (अश्वासः न क्रीळयः दन्दशानाः) दांतोंसे लगामको काटते क्रीडाशील अश्वोंके समान भाग जाती थीं ॥ ९ ॥

विद्युन्न या पतन्ती दविद्योद्भरन्ती मे अप्या काम्यानि ।
जनिष्टो अपो नर्यः सुजातः प्रोर्वशी तिरत दीर्घमायुः १० [२]

जज्ञिष इत्था गोपीथ्याय हि दधाथ तत् पुरूरवो म ओजः ।
अशासं त्वा विदुषी सस्मिन्नहन् न म आशृणोः किमभुग्वदासि ११
कदा सूनुः पितरं जात इच्छाच्चक्रन्नाश्रु वर्तयद्विजानन् ।
को दंपती समनसा वि यूयोदध यदग्निः श्वशुरेषु दीदयत् १२ (१०८७)
प्रति ब्रवाणि वर्तयते अश्रु चक्रन् न क्रन्ददाध्ये शिवायै ।
प्र तत् ते हिनवा यत् ते अस्मे परेह्यस्तं नहि मूर मापः १३
सुदेवो अद्य प्रपतेदनावृत् परावतं परमां गन्तवा उ ।
अधा शयीत निर्ऋतेरुपस्थे ऽधैनं वृका रभसासो अद्युः १४

[१०८५] (या अप्या विद्युत् न पतन्ती) जिस उर्वशीने मेघमें उत्पन्न वेगसे पतनशील विद्युत्के समान (दविद्योत् मे काम्यानि भरन्ती) चमकती हुई मेरे सब मनोरथोंको पूर्ण किया था, तब (अपः नर्यः सुजातः जनिष्टः) उसके गर्भसे कर्मकुशल और मनुष्योंका हितकारी सुन्दर पुत्र जनमा था । (उर्वशी दीर्घं आयुः प्र तिरत) उर्वशी उसे दीर्घायु करे ॥ १० ॥

[१०८६] (इत्था गोपीथ्याय हि जज्ञिषे) इस प्रकार तू पृथिवीकी रक्षा-पालन करनेके लिये पुत्ररूपसे जन्मा है । हे (पुरूरवः) पुरूरवा ! (मे तत् ओजः दधाथ) तू मुझमें ही गर्भ स्थापन किया था । मैं (विदुषी सस्मिन् अहन् त्वा अशासं) जाननेवाली-ज्ञानवती होकर उन सब दिनोंमें तुझे कहा करती थी, परंतु तुमने (मे न आशृणोः) मेरी बात सुनी नहीं, मानी नहीं । (किं अभुक् वदासि) तू प्रतिज्ञाका भंग किया है, अब शोक क्यों कर रहा है ? ॥ ११ ॥

[१०८७] (पुरूरवा-) (कदा सूनुः जातः पितरं इच्छात्) कब तुम्हारा पुत्र उत्पन्न होकर मुझ-पिताको चाहेगा ? (विजानन् चक्रन् अश्रु न वर्तयत्) और वह मुझे जानकर मेरे पास आवे, तो रोता हुआ आंसु नहीं बहावेगा ? (कः समनसा दम्पती वि यूयोत्) कौन ऐसा पुत्र है जो परस्पर प्रेमसे सम्पन्न पति-पत्नीको पृथक् करेगा ? (अध यत् अग्निः श्वशुरेषु दीदयत्) अब कब यह तुम्हारा तेजोरूप गर्भ तुम्हारे श्वशुरके गृहमें चमकेगा ? ॥ १२ ॥

[१०८८] (उर्वशी—) (प्रति ब्रवाणि) मैं तुम्हारो बातका उत्तर देती हूं । (अश्रु वर्तयते शिवायै आध्ये चक्रन् न क्रन्दत्) तेरा पुत्र जब रोने लगेगा तब उसकी कल्याण-कामना करूंगी और वह नहीं रोयेगा यह देखूंगी । (यत् ते अस्मे तत् ते प्र हिनव) जो तेरा अपत्य है, उसे मैं तेरे पास भेज दूंगी । (अस्तं परा इहि) अब तू अपने घरको लौट जाओ । हे (मूर) मूढ ! (मा नहि आपः) अब मुझे नहीं पा सकोगे ॥ १३ ॥

[१०८९] (पुरूरवा —) (सुदेवः अद्य प्रपतेत्) तेरे साथ प्रेम क्रीडा करनेवाला पति मैं आज गिर पडे, अथवा (अनावृत् परावतं परमां गन्तवै) अरक्षित होकर अत्यंत दूरके परदेशको जानेके लिये प्रयाण करे, (अध निर्ऋतेः उपस्थे शयीत) अथवा यहीं पृथिवीपर शयन करे अर्थात् दुर्गतिमें मर जाय । (अध एनं रभसासः वृकाः अद्युः) अथवा उसे बलवान् जंगलके भेडियों आदि खा जांय ॥ १४ ॥

पुरू॑रवो॒ मा मृ॑था॒ मा प्र प॑प्तो॒ मा त्वा॒ वृका॑सो॒ अशि॑वास उ क्षन् ।
न वै स्त्रैणा॑नि स॒ख्यानि॑ सन्ति॒ सा॒ला॒वृ॒काणां॒ हृद॑यान्ये॒ता १५ [३]

यद्विरू॒पाच॑रं॒ मर्त्ये॒ष्ववसं॒ रात्रीः॑ श॒रद॒श्चत॑स्रः ।
घृ॒तस्य॑ स्तो॒कं स॒कृदह्न॑ आश्नां॒ तादे॒वेदं ता॑तृपा॒णा च॑रामि १६
अ॒न्त॒रि॒क्ष॒प्रां रज॑सो वि॒मानी॒मुप॑ शिक्षाम्यु॒र्वशीं॒ वसि॑ष्ठः ।
उप॑ त्वा रा॒तिः सु॑कृ॒तस्य॒ तिष्ठा॒न्नि व॑र्तस्व॒ हृद॑यं तप्यते मे १७
इति॑ त्वा दे॒वा इ॒म आ॑हुरैळ॒ यथे॑मे॒तद्भव॑सि मृ॒त्युब॑न्धुः ।
प्र॒जा ते॑ दे॒वान् ह॒विषा॑ यजाति स्व॒र्ग उ॒ त्वमपि॑ मादयासे १८ [४] (१०९३)

(९६)

१३ बरुराङ्गिरसः, सर्वहरिर्वा ऐन्द्रः । हरिः । जगती, १२-१३ त्रिष्टुप् ।

प्र ते॑ म॒हे वि॒दथे॑ शंसिषं॒ हरी॒ प्र ते॑ वन्वे व॒नुषो॑ हर्य॒तं मद॑म् ।
घृ॒तं न यो हरि॑भि॒श्चारु॒ सेच॑त॒ आ त्वा॑ विशन्तु॒ हरि॑वर्पसं॒ गिरः॑ १

[१०९०] (उर्वशी-) हे (पुरूरवः) पुरूरवा ! तू (मा मृथाः) मृत्युको प्राप्त न हो, और (मा प्र पप्तः) यहीं मत गिरना, और (त्वा अशिवासः वृकासः मा उ क्षन्) तुझे अमंगल वृक आदि न खावें, तेरा नाश न करें। (स्त्रैणानि सख्यानि न वै सन्ति) स्त्रियोंकी मैत्री-प्रेम स्थायी नहीं होती। (एता सालावृकाणां हृदयानि) वे तो जंगली भेडियोंके हृदयोंके समान क्रूरतादिसे भरे होते हैं ॥ १५ ॥

[१०९१] (यत् विरूपा मर्त्येषु अचरम्) जब मैंने विविध रूपवाली मनुष्यरूप होकर, मनुष्योंमें घूमी हुई हूं, तब (रात्रीः चतस्रः शरदः अवसम्) मैंने तेरे साथ रमण करती हुई पुरे चार वर्षतक वास किया है। और (घृतस्य स्तोकं सकृत् अह्नः आश्नाम्) घृतका स्वाद दिनमें एक बार लिया है अर्थात् रतिसुखका उपभोग लिया है। (तात् एव इदं तातृपाणा चरामि) उसीसेही मैं अभी इस प्रकार तृप्त होकर तुझे छोडकर दूर जाती हूं ॥ १६ ॥

[१०९२] (पुरूरवा-) (अन्तरिक्षप्रां रजसः विमानीं) अन्तरिक्षको पूर्ण करनेवाली और जलको बनानेवाली (उर्वशीं वसिष्ठः उप शिक्षामि) उर्वशीको वसिष्ठ-अतीव वासयिता मैं पुरूरवा-वश करता हूं। (सुकृतस्य रातिः त्वा उप तिष्ठात्) उत्तम कर्मका दाता पुरूरवा तेरे पास रहे- तुझे प्राप्त हो। (मे हृदयं तप्यते) मेरा हृदय तेरे वियोगके कारण संतप्त हो रहा है, इसलिये (नि वर्तस्व) फिर लौटकर आव ॥ १७ ॥

[१०९३] (उर्वशी-) हे (ऐळ) इला-पुत्र पुरूरवा ! (त्वा इमे देवाः इति आहुः) ये समस्त देव तुझे कह रहे हैं कि, (मृत्युबन्धुः यथे एतत् भवासि) तू सांप्रत मृत्युके वशमें होगा, इसलिये (प्रजा ते देवान् हविषा यजाति) तू तेरे योग्य देवोंकी हविसे पूजा करेगा और (स्वर्गे उ त्वं अपि मादयासे) स्वर्गमें जाकर सुख तथा आनंद प्राप्त करेगा ॥ १८ ॥

[९६]

[१०९४] हे इन्द्र ! (ते हरी महे विदथे प्र शंसिषम्) तेरे दोनों घोडोंकी इस महान् यज्ञमें मैं स्तुति करता हूं। (वनुषः ते हर्यतं मदं प्र वन्वे) सेवन करने योग्य तेरे प्रशंसनीय उन्मादकी हम याचना करते हैं। (यः हरिभिः चारु घृतं न सेचते) जो इन्द्र हरितवर्ण अश्वसे आकर घृतके समान रमणीय जलकी वर्षा करता है, (हरितवर्पसं त्वा गिरः आ विशन्तु) उस मनोहर तुझ इन्द्रके पास हमारे स्तुतिवचन पहुंचें ॥ १ ॥

हरिं हि योनिमभि ये समस्वरन् हिन्वन्तो हरी दिव्यं यथा सदः ।
आ यं पृणन्ति हरिभिर्न धेनव इन्द्राय शूषं हरिवन्तमर्चत २
सो अस्य वज्रो हरितो य आयसो हरिर्निकामो हरिरा गभस्त्योः ।
द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक इन्द्रे नि रूपा हरिता मिमिक्षिरे ३
दिवि न केतुरधि धायि हर्यतो विव्यचद्वज्रो हरितो न रंह्या ।
तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः सहस्रशोका अभवद्धरिंभरः ४
त्वंत्वमहर्यथा उपस्तुतः पूर्वेभिरिन्द्र हरिकेश यज्वभिः ।
त्वं हर्यसि तव विश्वमुक्थ्य१मसामि राधो हरिजात हर्यतम् ५ [५]

ता वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं मद इन्द्रं रथे वहतो हर्यता हरी ।
पुरूण्यस्मै सवनानि हर्यत इन्द्राय सोमा हरयो दधन्विरे ६

[१०९५] (ये दिव्यं सदः यथा हरी हिन्वन्तः योनिं हरिं अभि समस्वरन्) जो स्तुतिकर्ता ऋषि, इन्द्रको देवोंके यज्ञगृहमें जिस त्वरासे घोडे ले जाते हैं, उसी प्रकार घोडोंको स्तुतिसे प्रेरित कर, सर्वोत्पादक शरण योग्य इन्द्रकी स्तुति करते हैं। (यं धेनवः हरिभिः आ पृणन्ति) जैसे गायें इन्द्रको दुग्धसे तृप्त करता है और हरितवर्ण सोमसे संतुष्ट करती हैं, उसी प्रकार (इन्द्राय हरिवन्तं शूषं अर्चत) स्तोतारो, तुम भी इन्द्रके सुखदायक बलकी स्तुतियोंसे पूजा करो ॥ २ ॥

[१०९६] (अस्य सः वज्रः यः हरितः आयसः) इन्द्रका यह वज्र जो हरितवर्ण और लोहेका है, वह (हरिः निकामः) हरितवर्ण और अत्यंत सुंदर है। (हरिः आ गभस्त्योः) वह शत्रुनाशक और दोनों हाथोंमें धारण किया जाता है। यह इन्द्र (द्युम्नी सुशिप्रः हरिमन्युसायकः) ऐश्वर्यवान्, शोभन हनुवाला और दुष्टोंको बाणसे क्रोधयुक्त होकर नष्ट करनेवाला है। (इन्द्रे रूपा हरिता नि मिमिक्षिरे) इन्द्रमें हरितवर्ण अनेक रूप धारण किये हैं ॥ ३ ॥

[१०९७] (दिवि केतुः न वज्रः अधि धायि) आकाशमें सूर्यके समान उज्ज्वल वज्र धृत हुआ; (हर्यतः विव्यचत्) वह स्पृहणीय वज्र सबको व्यापता है; (रंह्या हरितः न) मानो, उसने अपने वेगसे रथ वहन करनेवाले अश्वोंके समान सारी दिशाओंको व्याप्त किया है। (यः आयसः अहिं तुदत्) जो लोहमय वज्र वृत्रका नाश करता है; (हरिशिप्रः हरिंभरः सहस्रशोकाः अभवत) वह इन्द्र सोमरसका पान कर हरितवर्णका हो, सहस्रों दीप्तियोंसे प्रदीप्त हुआ ॥ ४ ॥

[१०९८] हे (हरिकेश इन्द्र) हरित केशयुक्त अश्वोंके स्वामी इन्द्र ! (पूर्वेभिः यज्वभिः उपस्तुतः त्वं त्वं अहर्यथाः) पूर्वकालीन यजमानोंसे यज्ञमें स्तुत्य तूही एकमात्र स्तोत्र वा हविकी इच्छा करता है। (त्वं हर्यसि) तूही सबको चाहता है। (तव विश्वम् उक्थम्) तूही सबोंसे प्रशंसनीय है। हे (हरिजात) शत्रु बधके लिये प्रादुर्भूत इन्द्र ! तू (असामि हर्यतं राधः) असाधारण, उज्ज्वल, मनोहर और उपासना करने योग्य रूपवाला है ॥ ५ ॥

[१०९९] (ता हर्यता हरी मन्दिनं स्तोम्यं) वे प्रसिद्ध गमनशील और सुंदर हरितवर्ण घोडे हर्षयुक्त, स्तुत्य (वज्रिणं इन्द्रं मदे रथे वहतः) वज्रधारी इन्द्रको सोमपान करके आमोदमें प्रवृत करनेके लिये रथमें जोते जाकर वहन करते हैं। (अस्मै हर्यते इन्द्राय पुरूणि सवनानि) वहां हमारे यज्ञमें इस कामना योग्य इन्द्रके लिये बहुत स्तोत्र और (हरयः सोमाः दधन्विरे) हरितवर्ण सोमरस तयार रखा जाता है ॥ ६ ॥

अरं कामा॑य॒ हर॑यो दधन्विरे स्थि॒राय॑ हिन्वन् हर॑यो॒ हरी॑ तु॒रा ।
अर्व॑द्भि॒र्यो हरि॑भि॒र्जोष॒मीय॑ते॒ सो अ॑स्य॒ काम॒ं हरि॑वन्तमानशे ७ (११००)

हरि॑श्मशारु॒र्हरि॑केश आय॒स स्तु॒रस्पेये॒ यो ह॑रि॒पा अव॑र्धत ।
अर्व॑द्भि॒र्यो हरि॑भिर्वा॒जिनी॑वसु॒ रति॒ विश्वा॑ दु॒रि॒ता पारि॑ष॒द्धरी॑ ८

स्रु॒वेव॒ यस्य॒ हरि॑णी वि॒पे॒ततुः॒ शिप्रे॒ वाजा॑य॒ हरि॑णी॒ दवि॑ध्वतः ।
प्र यत् कृ॒ते च॑म॒से मर्मृ॑ज॒द्धरी॑ पी॒त्वा मद॑स्य ह॒र्यतस्यान्ध॑सः ९

उ॒त स्म॒ सद्म॑ ह॒र्यत॑स्य प॒स्त्यो॒३॒ रत्यो॒ न वा॒जं हरि॑वाँ अचिक्रदत् ।
म॒ही चि॒द्धि धि॒षणाह॑र्य॒दोज॑सा बृ॒हद्वयो॑ दधिषे ह॒र्यतश्चि॒दा १० [६]

आ रोद॑सी॒ हर्य॑माणो महि॒त्वा नव्यं॑नव्यं हर्यसि॒ मन्म॒ नु प्रि॒यम् ।
प्र प॒स्त्य॑मसुर ह॒र्यतं॒ गो रा॒विष्कृ॑धि॒ हर॑ये॒ सूर्या॑य ११

[११००] (कामाय अरं हरयः दधन्विरे) इन्द्रके लिये पर्याप्त सोमरस रखा गया है । (हरयः स्थिराय तुरा हरी हिन्वन्) वही सोमरस युद्धसे अपराङ्मुख इन्द्रके घोडोंको यज्ञकी ओर वेगवान् करता है । (यः अर्वद्भिः हरिभिः जोषं ईयते) जिसको वेगवान् घोडे युद्धमें ले जाते हैं, (सः अस्य कामं हरिवन्तं आनशे) वह रथ इन्द्रको सुन्दर और सोमयुक्त यज्ञमें पहुंचाता है ॥ ७ ॥

[११०१] (हरिश्मशारुः हरिकेशः आयसः) हरितवर्ण श्मश्रु और हरितवर्ण केशोंको धारण करनेवाला लोहेके समान दृढ हृदयवाला- शत्रुनाशक, (यः तुरः पेये हरिपाः अवर्धत) जो इन्द्र शीघ्रतासे हरितवर्ण सोमका पान करके उत्साहसे वर्धित होता है, और (यः अर्वद्भिः हरिभिः वाजिनीवसुः) वह वेगवान् घोडोंसे यज्ञरूप धनको पाता है । वह (हरी विश्वा दुरिता पारिषत्) अपने रथको दो अश्वोंको जोतकर हमारे सब संकटोंको-दुःखोंको पार करे ॥ ८ ॥

[११०२] (यस्य हरिणी स्रुवा इव विपततुः) इन्द्रके दो हरित-उज्ज्वल नेत्र यज्ञमें दो स्रुवोंके समान विशेष-रूपसे सोमपर लगे रहते हैं; (हरिणी शिप्रे वाजाय दविध्वतः) और इसकी हरितवर्ण दो दाढें सोमपान करनेके लिये कंपित होती हैं- स्फुरण पाती हैं । और (यत् कृते चमसे मदस्य हर्यतस्य) जब परिष्कृत चमसमें जो अति सुख-दायक कान्तियुक्त (अन्धसः पीत्वा हरी प्र मर्मृजत्) सोमरस था, उसे पीकर वह अपने घोडोंको तयार करता है, तब हम उसकी स्तुति करते हैं ॥ ९ ॥

[११०३] (उत हर्यतस्य सद्म पस्त्योः स्म) और कान्तिमान् इन्द्रका गृह द्यावापृथिवी पर ही है । वह (अत्यः न वाजं हरिवान् अचिक्रदत्) रथपर चढकर घोडेके समान अत्यंत वेगसे युद्धमें जाता है । हे इन्द्र ! (हि मही चित् धिषणा ओजसा अहर्यत्) और अत्यंत उत्कृष्ट स्तुति बलवान् ऐसे तेरी कामना करती है । इसलिये (हर्यतः बृहत् वयः आ दधिषे) इच्छुक यजमानका प्रकाशमान् तू प्रचुर अन्न ग्रहण करता है ॥ १० ॥

[११०४] हे इन्द्र ! (हर्यमाणः महित्वा रोदसी आ) कामायमान तू अपनी महिमासे द्यावापृथिवीको व्याप्त करता है । और (नव्यंनव्यं प्रियं मन्म नु हर्यसि) नित्य नये और प्रिय मननीय स्तोत्रकी तू इच्छा करता है । हे (असुर) बलवान इन्द्र ! (गोः हर्यतं पस्त्यं हरये सूर्याय प्र आविष्कृधि) उदक-जलका रमणीय गृह-मेघको और प्रेरक सूर्यको प्रकट कर ॥ ११ ॥

आ त्वा हर्यन्तं प्रयुजो जनानां रथे वहन्तु हरिशिप्रमिन्द्र ।
पिबा यथा प्रतिभृतस्य मध्वो हर्यन् यज्ञं सधमादे दशोणिम् १२

अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानामथो इदं सवनं केवलं ते ।
ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृषञ्जठर आ वृषस्व १३ [७] (११०६)

(९७)

२३ आथर्वणो भिषग् । ओषधयः । अनुष्टुप् ।

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा ।
मनै नु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च १

शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः ।
अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत २

ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः ।
अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्ण्वः ३

[११०५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (हरिशिप्रं त्वा हर्यन्तं रथे प्रयुजः) सोमपान करके हरितवर्ण मुख और रमणीय तुझे रथपर बिठाकर रथमें जोते तुम्हारे घोडे (जनानां आ वहन्तु) मनुष्योंके यज्ञमें ले आवें। (यथा प्रतिभृतस्य मध्वः यज्ञं दशोणिम्) जिससे तेरे लिये प्रेमपूर्वक प्रस्तुत किया हुआ मधुर, यज्ञसाधन और दस अंगुलियोंसे अभिषुत सोम (हर्यन् पिब सधमादे) सोमपानकी इच्छा करनेवाला तू पीकर युद्धमें विजय प्राप्त करोगे ॥ १२ ॥

[११०६] हे इन्द्र ! (पूर्वेषां सुतानां अपाः) पहले प्रातःसवनमें जो सोम प्रस्तुत हुआ है, उसका तुमने पान किया है। हे (हरिवः) जगत्के स्वामिन् ! (अथो इदं सवनं केवलं ते) और इस समय माध्यन्दिन सवनमें जो सोम प्रस्तुत हुआ है, वह केवल तुम्हारे लिये ही है। (मधुमन्तं सोमं ममद्धि) इस मधुर सोमका आस्वादन करो। हे (सत्रावृषन् इन्द्र) बहुत वर्षा करनेवाले इन्द्र ! (जठरे आ वृषस्व) तू अपने उदरमें सोमरसको सेचित कर ॥१३॥

[९७]

[११०७] (पूर्वाः याः ओषधीः देवेभ्यः पुरा त्रियुगं जाताः) अनेक रूप पोषण समर्थ रस आदिसे पूर्ण जो ओषधियां देवोंने पूर्व समयमें तीन युगोंमें– सत्य, त्रेता और द्वापर वा वसन्त, वर्षा और शरद्– बनायी हैं, (बभ्रूणां शतं सप्त च धामानि नु अहं मनै) वह सब पिङ्गलवर्ण ओषधियां एक सौ सात स्थानोंमें निश्चित रूपसे विद्यमान हैं, ऐसा मैं जानता हूं ॥ १ ॥

[११०८] हे (अम्ब) मातृरूप ओषधियो ! (वः शतं धामानि) तुम्हारे सैकडों जन्म–स्थान हैं (उत वः सहस्रं रुहः) और तुम्हारे सहस्रों अंकुर–पोधे हैं। (अध यूयं शतक्रत्वः) और तुम सब अनेक कर्म सामर्थ्योंसे युक्त हो। (मे इमं अगदं कृत) तुम मुझे आरोग्य प्रदान करो ॥ २ ॥

[११०९] हे (ओषधीः) ओषधियो ! तुम (पुष्पवतीः प्रसूवरीः प्रति मोदध्वम्) फूलों और उत्तम फलोंवाली होकर रोगीके प्रति प्रसन्न होओ। तुम (अश्वाः इव सजित्वरीः) घोडोंके समानही रोगरूप शत्रुपर विजय करनेवाली हो। और (वीरुधः पारयिष्ण्वः) रोग–पीडाओंको रोकनेवाली और रोगीको कष्टसे पार करनेवाली हो ॥ ३ ॥

ओषधीरिति मातर स्तद्वो देवीरुप ब्रुवे ।
सनेयमश्वं गां वास आत्मानं तव पूरुष ४
अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।
गोभाज इत् किलासथ यत् सनवथ पूरुषम् ५ [८]

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव ।
विप्रः स उच्यते भिषग् रक्षोहामीवचातनः ६ (१११२)
अश्वावतीं सोमावती मूर्जयन्तीमुदोजसम् । आवित्सि सर्वा ओषधी रस्मा अरिष्टतातये ७
उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते । धनं सनिष्यन्तीना मात्मानं तव पूरुष ८
इष्कृतिर्नाम वो माता ऽथो यूयं स्थ निष्कृतीः ।
सीराः पतत्रिणीः स्थन यदामयति निष्कृथ ९
अति विश्वाः परिष्ठाः स्तेन इव व्रजमक्रमुः । ओषधीः प्राचुच्यवु र्यत् किं च तन्वो३ रपः १०[९]

[१११०] हे (देवीः ओषधीः) दिव्य गुणोंसे युक्त ओषधियो ! तुम (मातरः) माताके समान हितकारिणी हो । (वः तत् इति उप ब्रुवे) मैं तुमको यह कहता हूं; हे (पुरुष) चिकित्सक मनुष्य ! मैं ओषधियोंको प्राप्त करनेके लिये (अश्वं गां वासः आत्मानं तव सनेयम्) घोडो, गौ, वस्त्र और अपने आपको भी तेरे लिये देता हूं ॥४॥

[११११] हे ओषधियो ! (वः अश्वत्थे निषदनम्) तुम्हारा अश्वत्थ वृक्षपर निवासस्थान है। (वः पर्णे वसतिः कृता) तुम पलाशवृक्षपर वास करती हैं। (गोभाजः इत् किल असथ) तुम गायोंका पोषण करती हो। (यत् पुरुषं सनवथ) जिस समय तुम मनुष्योंका संवर्धन करती हो ॥ ५ ॥

[१११२] जैसे (राजानः समितौ इव) राजा लोग संग्राममें एकत्र होते हैं, उसी प्रकार (यत्र ओषधीः सं अग्मत) अनेक ओषधियां एकत्र होती हैं। (सः विप्रः भिषक् उच्यते) वह विद्वान् पुरुष चिकित्सक कहाता है, वह (रक्षो हा अमीवचातनः) पीडाओंका नाशक और रोगोंका विनाश कर्ता है ॥ ६ ॥

[१११३] (अश्वावतीं सोमावतीं ऊर्जयन्तीं उदोजसं) अश्वावती, सोमावती, ऊर्जयन्ती और उदोजस और (सर्वाः ओषधीः अस्मै अरिष्टतातये आवित्सि) अन्य सब ओषधियोंको इसे नीरोग करनेके लिये मैं जानता हूं ॥ ७ ॥

[१११४] (गावः गोष्ठात् इव ओषधीनां शुष्माः उत् ईरते) गोशालासे जैसे गायें बाहर होती हैं, वैसेही ओषधियोंसे अनेक प्रकारके बल स्वयं उत्पन्न होते हैं। हे (पूरुष) पुरुष ! (तव आत्मानं सनिष्यन्तीनां धनम्) तेरे शरीरकी सेवा करनेवाली ये ओषधियां तुझे स्वास्थ्य रूप धन देंगी ॥ ८ ॥

[१११५] हे ओषधियो ! (वः माता इष्कृतिः नाम) तुम्हारी माताका नाम इष्कृति-नीरोग करनेवाली है। (अथ यूयं निष्कृतीः स्थ) इसलिये तुम भी रोगोंको दूर करनेवाली हो। तुम (सीराः पतत्रिणीः स्थन) शीघ्र गमन-शील और पतनशील होओ, जिससे (यत् आमयति निष्कृथ) जो व्याधिसे पीडित है, उसे नीरोग करो ॥ ९ ॥

[१११६] (स्तेनः इव व्रजम् विश्वाः परिष्ठाः ओषधीः अति अक्रमुः) जैसे चोर गोष्ठपर आक्रमण करता है, वैसेही समस्त व्यापी और सर्वत्र ओषधियां रोगोंपर आक्रमण करती हैं। (यत् किं च तन्वः रपः प्र अचुच्यवुः) जो कुछ शरीरका पीडाकारक रोगका कारण है, उसको ओषधियां दूर करती हैं ॥ १० ॥

यदि॒मा वा॒जय॑न्न॒ह॒ ‍मोष॑धी॒र्हस्त॑ आद॒धे । आ॒त्मा यक्ष्म॑स्य नश्यति पु॒रा जी॑व॒गृभो॑ यथा ११
यस्यौ॑षधीः प्र॒सर्प॑था॒ ‍ङ्ग॑मङ्गं॒ परु॑ष्परुः । तती॒ यक्ष्मं॒ वि बा॑धध्व उ॒ग्रो म॑ध्यम॒शीरि॑व १२
सा॒कं य॑क्ष्म॒ प्र प॑त॒ चाषे॑ण किकिदी॒विना॑ ।
सा॒कं वात॑स्य॒ ध्राज्या॑ सा॒कं न॑श्य नि॒हाक॑या १३
अ॒न्या वो॑ अ॒न्याम॑व॒त्व॒न्यान्यस्या॒ उपा॑वत ।
ताः सर्वाः॑ संविदा॒ना इ॒दं मे॒ प्राव॑ता॒ वचः॑ १४
याः फ॒लिनी॒र्या अ॑फ॒ला अ॑पु॒ष्पा याश्च॑ पु॒ष्पिणीः॑
बृह॒स्पति॑प्रसूता॒स्ता नो॑ मुञ्च॒न्त्वंह॑सः १५ [१०]

मु॒ञ्चन्तु॑ मा शप॒थ्या॒३॒॑ दथो॑ वरु॒ण्या॑दु॒त ।
अथो॑ य॒मस्य॒ पड्बी॑शा॒त् सर्व॑स्माद्देवकिल्बि॒षात् १६
अ॒व॒पत॑न्तीरवदन् दि॒व ओष॑धय॒स्परि॑ । यं जी॒वम॒श्नवा॑महै॒ न स रि॑ष्याति॒ पूरु॑षः । १७

[११९७] (यत् वाजयन् अहं इमाः ओषधीः हस्ते आदधे) जब बल देनेवाला मैं इन ओषधियोंको हाथमें लेता हूं, तब (यथा जीवगृभः पुरा यक्ष्मस्य आत्मा नश्यति) जिस प्रकार व्याधसे भयभीत होकर प्राणी भागते हैं; उसी प्रकार रोगका मूल अंश भी पूर्ववत् नष्ट हो जाता है ॥ ११ ॥

[११९८] हे (ओषधीः) ओषधियो ! (यस्य अङ्गं अङ्गं परुः परुः प्रसर्पथ) जिस रोगी मनुष्यके अंग-प्रत्यंग और ग्रंथि-ग्रंथिमें व्याप्त हो जाती हैं, (उग्रः मध्यमशीः ततः यक्ष्मं वि बाधध्वे) बलवान मध्यस्थ व्यक्तिके समान, उसके शरीरमेंसे रोगको दूर कर देती हों ॥ १२ ॥

[११९९] हे (यक्ष्म) रोग ! (चाषेण किकिदीविना साकं प्र पत) तू चाष और किकिदीवि पक्षी जैसे अत्यंत वेगसे उड जाते हैं, वैसेही शीघ्र दूर होओ । (वातस्य ध्राज्या साकं निहाकया साकं नश्य) और वायुके वेगके साथ और गोहके समान तू नष्ट हो ॥ १३ ॥

[११२०] हे ओषधियो ! (वः अन्या अन्याम् अवतु) तुममेंसे एक ओषधि दूसरीके पास जाय और (अन्या-न्यस्याः उप अवत) दूसरी तिसरीके समीप जाय । इस प्रकार (ताः सर्वाः संविदानाः) जगत्‌की वे सारी ओषधियां एकमत होकर, (मे इदं वचः प्रावत) मेरे इस वचनकी-प्रार्थनाकी रक्षा करें ॥ १४ ॥

[११२१] (याः फलिनीः याः अफलाः) जो फलवाली हैं, जो फलसे रहित हैं, (याः अपुष्पा च पुष्पिणीः) जो फूलसे रहित और फूलवाली हैं; (ताः बृहस्पतिप्रसूताः नः अंहसः मुञ्चन्तु) वे सब बृहस्पतिके द्वारा उत्पादित होकर हमें पापसे-रोगसे मुक्त करें ॥ १५ ॥

[११२२] (मा शपथ्यात् एनसः मुञ्चन्तु) ओषधियां मुझे शपथसे उत्पन्न पापसे बचावें । (अथो वरुण्यात् उत अथो यमस्य पड्वीशात् सर्वस्मात् देवकिल्बिशात्) और वरुणके पाश, यमकी बेडीसे और देव सम्बन्धि सब प्रकारके पापसे भी वे ओषधियां मुझे मुक्त करें ॥ १६ ॥

[११२३] (दिवः परि अवपतन्तीः ओषधयः अवदन्) द्युलोकसे नीचे आती हुई ओषधियोंने कहा था कि (यं जीवं अश्नवामहै न सः पूरुषः रिष्याति) हम जिस जीवपर अनुग्रह करती हैं, उस पुरुषका शरीर रोगोंसे पीडित नहीं होता ॥ १७ ॥

या ओषधीः सोमराज्ञी-र्बह्वीः शतविचक्षणाः । तासां त्वमस्युत्तमा-रं कामाय शं हृदे १८
या ओषधीः सोमराज्ञी-र्विष्ठिताः पृथिवीमनु । बृहस्पतिप्रसूता अस्यै सं दत्त वीर्यम् १९
मा वो रिषत् खनिता यस्मै चाहं खनामि वः । द्विपच्चतुष्पदस्माकं सर्वमस्त्वनातुरम् २०
याश्चेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं परागताः । सर्वाः संगत्य वीरुधो ऽस्यै सं दत्त वीर्यम् २१
ओषधयः सं वदन्ते सोमेन सह राज्ञा । यस्मै कृणोति ब्राह्मण-स्तं राजन् पारयामसि २२
त्वमुत्तमास्योषधे तव वृक्षा उपस्तयः ।
उपस्तिरस्तु सोऽस्माकं यो अस्माँ अभिदासति २३[११](११२९)

(९८)

११ आर्ष्टिषेणो देवापिः (वृष्टिकामः) । देवाः । त्रिष्टुप् ।

बृहस्पते प्रति मे देवतामिहि मित्रो वा यद्वरुणो वासि पूषा ।
आदित्यैर्वा यद्वसुभिर्मरुत्वान् त्स पर्जन्यं शंतनवे वृषाय १ (११३०)

[११२४] (याः ओषधीः सोमराज्ञीः) जिन ओषधियोंका राजा सोम है और (बह्वीः शतविचक्षणाः) असंख्य तथा सैकडों गुणोंसे युक्त हैं, (तासां त्वं उत्तमा असि) उनमें, हे सोम, तू उत्तम-श्रेष्ठ हो । इसलिये (कामाय अरं हृदे शम्) तुम मेरे अभिलषितको प्राप्त करानेमें और हृदयको सुखी करनेमें समर्थ हों ॥ १८ ॥

[११२५] (याः सोमराज्ञीः ओषधयः पृथिवीं अनुविष्ठिताः) जो ओषधियां जिनमें सोम ओषधि मुख्य हैं, और जो पृथिवीके अनेक स्थानोंमें अधिष्ठित हैं, वे ही (बृहस्पति प्रसूताः अस्यै वीर्यं सं दत्त) बृहस्पति द्वारा उत्पादित ओषधियां इस रोगीको बल प्रदान करें ॥ १९ ॥

[११२६] हे ओषधियो ! (वः खनिता मा रिषत्) तुमको खोदकर निकालनेवाला स्वयं नष्ट न हो । (यस्मै च अहं नः खनामि) जिसके आरोग्यके लिये मैं तुमको खोदता हूं, वह भी नष्ट नहीं हो । (अस्माकं द्विपत् चतुष्पत् सर्वं अनातुरं अस्तु) हमारे-दोपाये और चौपाये- पुत्र और पशु आदि सब प्राणी रोगसे रहित हों ॥ २० ॥

[११२७] (याः च इदं उपशृण्वन्ति) जो ओषधियां यह स्तोत्र सुनती हैं और (याः च दूरं परागताः) जो अत्यन्त दूरपर हैं, (सर्वाः वीरुधः संगत्य) वे सब ओषधियां मिलकर (अस्यै वीर्यं सं दत्त) इस रोग-युक्त शरीरको बल-सामर्थ्य देवें ॥ २१ ॥

[११२८] (ओषधयः सोमेन राज्ञा सह सं वदन्ते) ओषधियां राजा सोमके साथ यह बोलती हैं कि (यस्मै ब्राह्मणः कृणोति) जिसके लिये ओषधितज्ञ वैद्य चिकित्सा करता है, हे (राजन्) राजन् ! (तं पादयामसि) उसको हम संकटसे पार कर देती हैं ॥ २२ ॥

[११२९] हे (ओषधे) ओषधि ! (त्वं उत्तमा असि) तू ओषधियोंमें श्रेष्ठ है । (वृक्षाः तव उपस्तयः) सब अन्य वृक्ष तेरेसे कनिष्ठ हैं । (यः अस्मान् अभिदासति) जो हमारा नाश करता है, (सः अस्माकं उपस्तिः अस्तु) वह हमारे वश होकर रहे ॥ २३ ॥

[९८]

[११३०] हे (बृहस्पते) बृहस्पति ! (मे देवतां प्रति इहि) तू मेरे लिये वर्षा करनेवाले देवताके पास जाओ । तू (मित्रः वा असि, वरुणः यत् वा पूषा) मित्र, वरुण, पूषा (आदित्यैः वा यत् वा वसुभिः मरुत्वान्) अथवा आदित्यों और वसुओंके साथ इन्द्रही हो । (सः पर्जन्यं शंतनवे वृषाय) वह तू मेघसे शन्तन राजाके लिये जल बरसाओ ॥ १ ॥

आ देवो दूतो अजिरश्चिकित्वान् त्वद्देवापे अभि मामगच्छत् ।
प्रतीचीनः प्रति मामा ववृत्स्व दधामि ते द्युमतीं वाचमासन् २
अस्मे धेहि द्युमतीं वाचमासन् बृहस्पते अनमीवामिषिराम् ।
यया वृष्टिं शंतनवे वनाव दिवो द्रप्सो मधुमाँ आ विवेश ३
आ नो द्रप्सा मधुमन्तो विशन्त्विन्द्र देह्यधिरथं सहस्रम् ।
नि षीद होत्रमृतुथा यजस्व देवान् देवापे हविषा सपर्य ४
आर्ष्टिषेणो होत्रमृषिर्निषीदन् देवापिर्देवसुमतिं चिकित्वान् ।
स उत्तरस्मादधरं समुद्रमपो दिव्या असृजद्वर्ष्या अभि ५
अस्मिन् त्समुद्रे अध्युत्तरस्मिन्नापो देवेभिर्निवृता अतिष्ठन् ।
ता अद्रवन्नार्ष्टिषेणेन सृष्टा देवापिना प्रेषिता मृक्षिणीषु ६ [१२]

[११३१] हे (देवापे) देवापि ! (त्वत् देवः अजिरः चिकित्वान् दूतः) तेरे पाससे कोई एक तेजस्वी देव जो वेगशाली और ज्ञानवान् है, वह दूत होकर (मां अभि अगच्छत्) मेरे पास आवे। हे बृहस्पति ! (प्रतीचीनः मां प्रति आ ववृत्स्व) सब विषयोंसे विमुख होकर मेरे प्रतिही लौट आओ। (ते आसन् द्युमतीं वाचं दधामि) तेरे लिये में अर्थपूर्ण तेजस्वी स्तोत्र प्रदान करता हूं ॥ २ ॥

[११३२] हे (बृहस्पते) बृहस्पति ! (अस्मे आसन् द्युमतीं वाचं धेहि) हमारे मुखमें एक तेजस्वी स्तोत्र युक्त वाणीका प्रदान कर, जो (अनमीवां इषिरां) निर्दोष और ओज युक्त हो। (यया शंतनवे वृष्टिं वनाव) जिससे हम दोनों शंतनुके लिये वृष्टि उपस्थित करें। (दिवः मधुमान् द्रप्सः आ विवेश) आकाशसे मधुर रस-वृष्टि प्रविष्ट होवे ॥ ३ ॥

[११३३] (नः मधुमन्तः द्रप्साः आ विशन्तु) हमें मधुर रस-वृष्टि प्राप्त हो। हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अधिरथं सहस्रं देहि) रथके ऊपर रखा हुआ सहस्रों प्रकारका धन हमे दो। हे (देवापे) देवापि ! (होत्रं नि षीद) तू इस यज्ञकार्यमें आकर बैठ। (ऋतुथा देवान् यजस्व हविषा सपर्य) समय समयपर देवोंका पूजन कर और हवि देकर उनको संतुष्ट कर ॥ ४ ॥

[११३४] (देवसुमतिं चिकित्वान् आर्ष्टिषेणः देवापिः ऋषिः) देवोंकी उत्तम स्तुतिको जाननेवाला आर्ष्टिषेण देवापि ऋषि (होत्रं निषीदन्) हवन कर्म करनेके लिये बैठा है। (सः उत्तरस्मात् अधरं समुद्रम्) वह ऊपरके समुद्रसे- अन्तरिक्षसे नीचेके पार्थिव समुद्रमें (दिव्याः वर्ष्याः अपः अभि असृजत्) दिव्य सुखदायक वृष्टिका जल प्राप्त करावे ॥ ५ ॥

[११३५] (अस्मिन् समुद्रे अधि उत्तरस्मिन् आपः) इस पार्थिव समुद्रपर अन्तरिक्षमें स्थित जलमय प्रदेशको (देवेभिः निवृताः अतिष्ठन्) देवोंने प्रतिबंधित कर रखा है। (ताः आर्ष्टिषेणेन देवापिना सृष्टाः प्रेषिताः) उन जलोको आर्ष्टिषेण देवापिने उत्पन्न करके उसकी इच्छाके अनुरूप (मृक्षिणीषु अद्रवन्) योग्य भूमिपर पर्जन्य रूपसे बरसने लगते हैं ॥ ६ ॥

यद्देवापिः शंतनवे पुरोहितो होत्राय वृतः कृपयन्नदीधेत् ।
देवश्रुतं वृष्टिवनिं रराणो बृहस्पतिर्वाचमस्मा अयच्छत् ७
यं त्वा देवापिः शुशुचानो अग्न आर्ष्टिषेणो मनुष्यः समीधे ।
विश्वेभिर्देवैरनुमद्यमानः प्र पर्जन्यमीरया वृष्टिमन्तम् ८
त्वां पूर्व ऋषयो गीर्भिरायन् त्वामध्वरेषु पुरुहूत विश्वे ।
सहस्राण्यधिरथान्यस्मे आ नो यज्ञं रोहिदश्वोप याहि ९
एतान्यग्ने नवतिर्नव त्वे आहुतान्यधिरथा सहस्रा ।
तेभिर्वर्धस्व तन्वः शूर पूर्वीर्दिवो नो वृष्टिमिषितो रिरीहि १०
एतान्यग्ने नवतिं सहस्रा सं प्र यच्छ वृष्ण इन्द्राय भागम् ।
विद्वान् पथ ऋतुशो देवयानानप्यौलानं दिवि देवेषु धेहि ११
अग्ने बाधस्व वि मृधो वि दुर्गहा ऽपामीवामप रक्षांसि सेध ।
अस्मात् समुद्राद्बृहतो दिवो नो ऽपां भूमानमुप नः सृजेह १२ [१३] (११४१

[११३६] (यत् देवापिः शंतनवे कृपयन् पुरोहितः होत्राय वृतः) जिस समय देवापि शन्तनुपर कृपा करता हुआ उसका पुरोहित होकर, यज्ञकर्म करनेके लिये उद्यत हुआ, और वह (देवश्रुतं वृष्टिवनिं अदीधेत्) देवप्रसिद्ध तथा सुखप्रद वृष्टिका वर्धक बृहस्पतिका स्तवन-ध्यान करने लगा, उस समय (रराणः बृहस्पतिः अस्मै वाचं अयच्छत्) प्रसन्न होकर बृहस्पतिने उसे आश्वासित किया ॥ ७ ॥

[११३७] हे (अग्ने) अग्नि ! (यं त्वा आर्ष्टिषेणः देवापिः मनुष्यः शुशुचानः समीधे) जिस तुझे आर्ष्टिषेण देवापि नामक मनुष्यने शुद्ध पवित्र होकर स्तुति-स्तोत्रसे उत्तमरीतिसे प्रज्वलित किया है, वह तू (विश्वेभिः देवैः अनुमद्यमानः) समस्त देवोंका सहयोग पाकर (वृष्टिमन्तं पर्जन्यं प्र ईरय) वृष्टिवर्धक मेघको प्रेरित कर ॥ ८ ॥

[११३८] हे अग्नि ! (पूर्वे ऋषयः गीर्भिः त्वां आयन्) पूर्वके ऋषिलोग स्तुति स्तोत्रोंसे तेरे पास आये थे। हे (पुरुहूत) बहुतोंके द्वारा पुकारजानेवाले अग्नि ! (विश्वे अध्वरेषु) सब यजमान अभी भी यज्ञोंमें स्तुतियों द्वारा तेरी उपासना करते हैं। (अस्मे सहस्राणि अधिरथानि) हमें रथोंसे युक्त सहस्रों ऐश्वर्य सुख प्राप्त हों। हे (रोहिदश्व) लाल देदीप्त रथमें आरोहित अग्नि ! (नः यज्ञं उप याहि) हमारे यज्ञमें पधारो ॥ ९ ॥

[११३९] हे (अग्ने) अग्नि ! (नवतिः नव एतानि अधिरथा सहस्रा त्वे आहुतानि) नब्बे और नौ गायें और रथोंके साथ हजारों पदार्थ तेरे लिये आहुति रूपमें समर्पित हैं। हे (शूर) वीर ! (तेभिः पूर्वीः तन्वः वर्धस्व) उनसे तू अपने अनेक रूपोंको बढा, प्रकट कर। (नः इषितः दिवः वृष्टिं रिरीहि) हमसे प्रार्थित होकर द्युलोकसे हमारे लिये वृष्टि कर ॥ १० ॥

[११४०] हे (अग्ने) अग्नि ! (एतानि नवतिं सहस्रा वृष्णे इन्द्राय भागं सं प्र यच्छ) ये नब्बे हजार गायोंको जल-वर्षा करनेवाले इन्द्रको प्रसन्न करनेके लिये उसके भागरूपसे प्रदान कर। और (देवयानान् पथः विद्वान् ऋतुशः) देवयान मार्गोंको जाननेवाला तू समय समयपर (औलानं अपि दिवि देवेषु धेहि) यज्ञ करनेवाले औलानको शन्तनुको देवोंके बीच स्थापित कर ॥ ११ ॥

[११४१] हे (अग्ने) अग्नि ! (मृधः दुर्गहा वि बाधस्व) शत्रुओंकी दुर्गमपुरियोंको नष्ट कर। (अमीवां अप सेध) रोगको दूर कर। (रक्षांसि अप) राक्षसोंका निवारण कर। (अस्मात् बृहतः समुद्रात् दिवः अपाम् भूमानं इह नः उप सृज) इस महान् अन्तरिक्षरूप समुद्रसे और आकाशसे इस भूलोकपर हमारे लिये असीम जल प्रदान करो ॥ १२ ॥

(९९)

११ वम्रो वैखानसः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

कं नश्चित्रमिषण्यसि चिकित्वान् पृथुग्मानं वाश्रं वावृधध्यै ।
कत् तस्य दातु शवसो व्युष्टौ तक्षद्वज्रं वृत्रतुरमपिन्वत् १
स हि द्युता विद्युता वेति साम पृथुं योनिमसुरत्वा ससाद ।
स सनीळेभिः प्रसहानो अस्य भ्रातुर्न ऋते सप्तथस्य मायाः २ (११४३)
स वाजं यातापदुष्पदा यन् त्स्वर्षाता परि षदत् सनिष्यन् ।
अनर्वा यच्छतदुरस्य वेदो घ्नञ्छिश्नदेवाँ अभि वर्पसा भूत् ३
स यह्व्यो३ऽवनीर्गोष्वर्वा ऽऽजुहोति प्रधन्यासु सस्त्रिः ।
अपादो यत्र युज्यासोऽरथा द्रोण्यश्वास ईरते घृतं वाः ४
स रुद्रेभिरशस्तवार ऋभ्वा हित्वी गयमारेअवद्य आगात् ।
वम्रस्य मन्ये मिथुना विवव्री अन्नमभीत्यारोदयन्मुषायन् ५

---

[९९]

[११४२] हे इन्द्र ! (चिकित्वान् नः चित्रं पृथुग्मानं वाश्रं) ज्ञानी तू हमें अत्यंत पूज्य, सतत वृद्धि होनेवाला, प्रशंसनीय (कं वावृधध्यै इषण्यसि) कल्याणमय धन हमारी उन्नतिके लिये प्रदान करते हो । (तस्य शवसः व्युष्टौ कत् दातु) उस बलवान् इन्द्रका सामर्थ्य बढानेके निमित्त हमें क्या देना होगा ? (वृत्रतुरं वज्रं तक्षत् अपिन्वत्) उसके लिये वृत्रनाशक वज्र बनाया गया है, और फिर वह जगत्को जलोंसे सींचता है ॥ १ ॥

[११४३] (सः हि द्युता विद्युता साम वेति) वह इन्द्र तेजस्वी विद्युत् नामक आयुधसे युक्त होकर यज्ञमें सामगान सुननेके लिये जाता है । (असुरत्वा पृथुं योनिं ससाद) और बलयुक्त होकर वह विस्तीर्ण और फलोत्पादक यज्ञमें विराजता है । (सः सनीळेभिः प्रसहानः) वह विमानमें बैठे मरुतोंके साथ शत्रुको पराभूत करता है । (सप्तथस्य भ्रातुः मायाः ऋते न) आदित्योंके सप्तम भ्राता इन्द्रकी माया इस यज्ञमें संभवित नहीं होती ॥ २ ॥

[११४४] (सः वाजं याता अपदुष्पदा यन्) वह संग्राममें जाते समय दुःखसे रहित सीधे मार्गसे जाता हुआ (सनिष्यन् त्स्वर्षाता परि सदत्) शत्रुओंके धनोंको संपादित करके सर्व लाभ संपन्न युद्धमें आगे बढता है । (अनर्वा शतदुरस्य यत् वेदः वर्पसा अभि भूत्) युद्धमें पराङ्मुख न होनेवाला वह सौ दरवाजोंवाली शत्रुपुरीमें जो धन है, वह बलपूर्वक ले आता है । (शिश्नदेवान् घ्नन्) और इन्द्रिय परायण दुष्टोंको नष्ट करता है ॥ ३ ॥

[११४५] (सः अर्वा सस्त्रिः प्रधन्यासु गोषु यह्वयः अवनीः आ जुहोति) वह इन्द्र मेघोंकी ओर जाकर और मेघमें भ्रमण करके प्रसरणशील और वेगसे बहनेवाली जलधाराओंको उत्तम धान्य युक्त भूमियोंमें प्रदान करता है । (यत्र अपादः अरथाः द्रोण्यश्वासः युज्यासः वाः घृतम् ईरते) जहां उन भूमियोंमें पादरहित, रथादिसे रहित, वेगवान् नदियां जलोंको घृतके समान बहाती हैं ॥ ४ ॥

[११४६] (सः अशस्तवारः ऋभ्वा आरेअवद्यः गयं हित्वी रुद्रेभिः आगात्) वह इन्द्र स्वयंदाता, महान् और अनिन्द्य है और वह स्वस्थानसे रुद्रपुत्र मरुतोंके साथ यहां आवे । (वम्रस्य मिथुना विवव्री मन्ये) मुझ वम्रके माता-पिताका दुःख चला गया; क्योंकि (अन्नं अभीत्य मुषायन् अरोदयत्) मैंने शत्रुओंके धनका हरण कर लिया है और उनको रुलाया है ॥ ५ ॥

स इद्दासं तुवीरवं पतिर्दन् षळक्षं त्रिशीर्षाणं दमन्यत् ।
अस्य त्रितो न्वोजसा वृधानो विपा वराहमयोअग्रया हन् ६ [१४]

स द्रुह्वणे मनुष ऊर्ध्वसान आ साविषदर्शसानाय शरुम् ।
स नृतमो नहुषोऽस्मत् सुजातः पुरोऽभिनदर्हन् दस्युहत्ये ७

सो अभ्रियो न यवस उदन्यन् क्षयाय गातुं विदन्नो अस्मे ।
उप यत् सीददिन्दुं शरीरैः श्येनोऽयोपाष्टिर्हन्ति दस्यून् ८

स व्राधतः शवसानेभिरस्य कुत्साय शुष्णं कृपणे परादात् ।
अयं कविमनयच्छस्यमान मत्कं यो अस्य सनितोत नृणाम् ९

अयं दशस्यन् नर्येभिरस्य दस्मो देवेभिर्वरुणो न मायी ।
अयं कनीन ऋतुपा अवेद्यमिमीतारर्रुं यश्चतुष्पात् १०

[११४७] (सः इत् पतिः) उसही सबोंके स्वामी इन्द्रने (तुवीरवं दासं दन्) बहुत गर्जना करनेवाले दासका दमन किया था; (षड् अक्षं त्रिशीर्षाणं दमन्यत्) उसीने छ आँखोंवाले और तीन शिरोंवाले त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपको मारा था; (त्रितः अस्य ओजसा वृधानः) त्रित नामक ऋषिने इन्द्रके तेजसे बढकर (अयोअग्रया विपा वराहं हन्) लोहेके समान तीखे नखोंवाली अंगुलियोंसे वराहका वध किया था ॥ ६ ॥

[११४८] (सः ऊर्ध्वसानः द्रुह्वणे अर्शसानाय शरुं आ साविषत्) वह श्रेष्ठ पुरुष, द्रोही और हिंसाकारी मनुष्यको नष्ट करनेके लिये मारक अस्त्रको प्रदान करता है, अर्थात् स्वयं वज्रका उपयोग करता है । (सः नृतमः सुजातः नहुषः अर्हन् अस्मत् दस्युहत्ये) वह नरश्रेष्ठ, उत्तम कुलोत्पन्न दुष्टोंका दण्डक पूज्य होकर हमारे शत्रुओंके विनाशकारी संग्राममें (पुरः अभिनत्) शत्रुके शरीरों और दुर्गोंको तोडे ॥ ७ ॥

[११४९] (सः अभ्रियः न) वह मेघ समुदायके समान (यवसे उदन्यन्) जो आदि अन्नकी पुष्टिके लिये जलोंको गिरानेवाला और (नः क्षयाय अस्मे गातुं विदत्) हमें हमारे गृहोंका मार्ग दिखानेवाला है । (यत् इन्दुं शरीरैः उप सीदत्) ऐसा इन्द्र जब स्वयं अपने सारे शरीरोंसे सोमके पास जाता है, तब (श्येनः अयोपाष्टिः दस्यून् हन्ति) वह श्येन पक्षीके समान लोहेके सदृश तीक्ष्ण और दृढ पाद-पृष्ठमें शत्रुओंका वध करता है ॥ ८ ॥

[११५०] (सः व्राधतः शवसानेभिः अस्य) वह इन्द्र अपने बलशाली शस्त्रोंसे महान् शत्रुओंको भगा देता है । (कृपणे कुत्साय शुष्णं परादात्) स्तोत्रसे प्रार्थना करनेवाले अपने भक्त कुत्सके लिये शुष्ण नामक असुरको छेदा था । (अयं शस्यमानं कविं अनयत्) उसने स्तोता, कवि उशनाके विरोधियोंको वशमें किया था । (यः अस्य अत्कं उत नृणां सनिता) जो उशना कवि इन्द्रके व्यापक रूपको तथा ज्ञानको और वृष्टिवर्धक इन्द्रके अनुचर मरुतोंको जानता था ॥ ९ ॥

[११५१] (नर्येभिः अयं दशस्यन् अस्य) मनुष्य हितैषी मरुतोंके साथ रहनेवाला इन्द्र स्तोताओंको धन देता है और सब दुष्टोंका नाश करता है । (देवेभिः दस्मः मायी वरुणः न) वह वरुणके समान अपने तेजसे सुंदर और शक्तिमान् है । (अयं कनीनः ऋतुपाः अवेदि) यह कान्तिमान् और सदा सबोंका संरक्षक रूपमें जाना जाता है । (यः चतुष्पात् अररुं अमिमीत) इसने चार पैरोंवाले शत्रुको मार डाला ॥ १० ॥

अस्य स्तोमेभिरौशिज ऋजिश्वा व्रजं दरयद्वृषभेण पिप्रोः ।
सुत्वा यद्यजतो दीदयद्गीः पुर इयानो अभि वर्पसा भूत् ११

एवा महो असुर वक्षथाय वम्रकः पड्भिरुप सर्पदिन्द्रम् ।
स इयानः करति स्वस्तिमस्मा इषमूर्जं सुक्षितिं विश्वमाभाः १२ [१५] (११५३)

(१००) [नवमोऽनुवाकः ॥९॥ सू० १००-११२]

१२ दुवस्युर्वान्दनः । विश्वे देवाः । जगती, १२ त्रिष्टुप् ।

इन्द्र दृह्य मघवन् त्वावदिद्भुज इह स्तुतः सुतपा बोधि नो वृधे ।
देवेभिर्नः सविता प्रावतु श्रुतमा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे १

भराय सु भरत भागमृत्वियं प्र वायवे शुचिपे क्रन्ददिष्टये ।
गौरस्य यः पयसः पीतिमानश आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे २ (११५५)

आ नो देवः सविता साविषद्वय ऋजूयते यजमानाय सुन्वते ।
यथा देवान् प्रतिभूषेम पाकवदा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ३

[११५२] (यत् सुत्वा यजतः गीः दीदयत्) जिस समय उपासक औशिजने सोम प्रस्तुत करके यज्ञमें स्तोत्रसे स्तुतिपाठ किया, उस समय (अस्य स्तोमेभिः औशिजः ऋजिश्वा वृषभेण पिप्रोः वज्रं दरयत्) इन्द्रके स्तोत्रोंसे बलसम्पन्न उशिजके पुत्र ऋजिश्वाने वज्रसे पिप्रु नामक असुरके गोष्ठको विदीर्ण किया और (इयानः पुरः वर्पसा अभि भूत्) शत्रुओंके नगरोंपर आक्रमण करके उन्हें विनष्ट किया ॥ ११ ॥

[११५३] हे (असुर) बलवान् इन्द्र ! (एव महः वक्षथाय पड्भिः वम्रकः इन्द्रं उप सर्पत्) इस प्रकार तुझे बहुत हवि देनेकी इच्छासे पैदल चलकर में वम्र तुम्हारे पास आया हूं । (सः इयानः अस्मै स्वस्ति करति) आनेवाले इस वम्रका कल्याण कर और (इषं ऊर्जं सुक्षितिं विश्वं आभाः) अन्न, बल तथा उत्तम गृह आदि सारी वस्तुएं प्रदान कर ॥ १२ ॥

[१००]

[११५४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! हे (मघवन्) धनवान् ! (भुजे त्वावत् इत् दृह्य) तू हमारे उपभोगके लिये तेरे समान शक्तिशाली शत्रुओंके सैन्यका वध कर । (इह स्तुतः सुतपाः नः वृधे बोधि) इस यज्ञमें स्तुत हुआ और सोमपान किया हुआ तू हमारी वृद्धिके लिये सदा प्रस्तुत रह । (देवेभिः नः श्रुतं सविता प्रावतु) देवोंके साथ हमारे विख्यात यज्ञकी सविता देव रक्षा करे । (सर्वतातिं अदितिं आ वृणीमहे) सर्वोत्पादक अदितिकी हम प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥

[११५५] (भराय ऋत्वियं भागं सु भरत) सबके पालन पोषण करनेवाले इन्द्रको ऋतुओंके योग्य यज्ञभाग दो । (शुचिपे क्रन्द दिष्टये वायवे प्र) जो शुद्ध अन्न-जलका उपभोग करता है और जिसके शीघ्रतासे जानेके समय शब्द होता है, उस वायुको भी उसका भाग दो । (यः गौरस्य पयसः पीतिं आनशे) जो शुद्ध पवित्र पुष्टिवर्धक गौके दूधका पान करता है । (सर्वतातिं अदितिं आ वृणीमहे) हम सर्वग्राहिणी अदितिकी प्रार्थना करते हैं ॥ २ ॥

[११५६] (सविता देवः नः ऋजूयते) सर्व प्रेरक सूर्य देव हमारे सरलता चाहनेवाले और (सुन्वते यजमानाय वयः पाकवत् आ साविषत्) अभिषव कर्ता यजमानको पाकसे युक्त अन्न प्रदान करे । (यथा देवान् प्रतिभूषेम) जिससे हम देवोंको संतुष्ट कर सके और उन्हें भूषणवत् होवें । (सर्वतातिं अदितिं आ वृणीमहे) सर्व कल्याणकारी अदिति देवीकी हम प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥

इन्द्रो अस्मे सुमना अस्तु विश्वहा राजा सोमः सुवितस्याध्येतु नः ।
यथायथा मित्रधितानि संदधुरा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ४
इन्द्र उक्थेन शवसा परुर्दधे बृहस्पते प्रतरीतास्यायुषः ।
यज्ञो मनुः प्रमतिर्नः पिता हि कमा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ५
इन्द्रस्य नु सुकृतं दैव्यं सहो ऽग्निर्गृहे जरिता मेधिरः कविः ।
यज्ञश्च भूद्विदथे चारुरन्तम आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ६ [१६]

न वो गुहा चकृम भूरि दुष्कृतं नाविष्ट्यं वसवो देवहेळनम् ।
माकिर्नो देवा अनृतस्य वर्पस आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ७
अपामीवां सविता साविषन्न्यग्वरीय इदप सेधन्त्वद्रयः
ग्रावा यत्र मधुषुदुच्यते बृहदा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ८
ऊर्ध्वो ग्रावा वसवोऽस्तु सोतरि विश्वा द्वेषांसि सनुतर्युयोत ।
स नो देवः सविता पायुरीड्य आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ९

[११५७] (इन्द्रः अस्मे विश्वहा सुमनाः अस्तु) इन्द्र हमारे प्रति प्रतिदिन प्रसन्न रहे। (राजा सोमः नः सुवितस्य अध्येतु) राजा सोम हमारे स्तोत्र सुने। (यथायथा मित्रधितानि संदधुः) जिससे सर्व मित्रका-प्रभुका दिया हुआ प्रिय धन हमें प्राप्त होवे। (सर्वतातिं अदितिं आ वृणीमहे) सर्वोत्पादक अदितिकी हम प्रार्थना-याचना करते हैं ॥ ४॥

[११५८] (इन्द्रः उक्थेन शवसा परुः दधे) इन्द्र प्रशसनीय सामर्थ्यसे हमारे यज्ञकी रक्षा करता है। हे (बृहस्पते) बृहस्पति ! (आयुषः प्रतरीता असि) तू आयुको बढानेवाला है। (यज्ञः मनुः प्रमतिः नः पिता कम्) और यज्ञीय, उत्तम विचारशील बुद्धियुक्त और बुद्धिमान इन्द्र हमारा पालक-पिता है, वह हमें सुख दे। (सर्वतातिं अदितिं आ वृणीमहे) सर्व ग्राहिणी अदितिकी हम प्रार्थना करते हैं ॥ ५ ॥

[११५९] (इन्द्रस्य नु सुकृतं दैव्यं सहः अग्निः गृहे) तेजस्वी इन्द्रकाही निश्चयसे उत्तम रीतिसे सम्पादित और देवोंका हितकारक बलयुक्त अग्नि हमारे यागगृहमें है। वह (जरिता मेधिरः कविः यज्ञः च भूत्) देवोंकी स्तुति करनेवाला, बुद्धिमान्, क्रान्तदर्शी और पूज्य है। (विदथे चारुः अन्तमः) वह यज्ञार्ह और रमणीय अग्नि हमारे अति समीपही है। (सर्वतातिं अदितिं आ वृणीमहे) हम सर्वोत्पादक अदितिकी प्रार्थना करते हैं ॥ ६ ॥

[११६०] हे देवो ! (वः गुहा भूरि दुष्कृतं न चकृम) तुम्हारे परोक्षमें मैंने कोई पाप नहीं किया है, (आविष्ट्यं देवहेळनं न) और प्रकटरूपमें जिससे तुम्हें क्रोध आवे, ऐसा कोई कार्य मैंने नहीं किया है। हे (वसवः) सर्वव्यापक देवो ! हे (देवाः) देवो ! (नः अनृतस्य वर्पसः माकिः) हमें मर्त्य देहकी प्राप्ति न होवे ॥ ७ ॥

[११६१] (सविता अमीवां अप साविषत्) सर्वप्रेरक सविता देव हमारे कष्टप्रद रोग आदिको दूर करे। (अद्रयः वरीयः इत् न्यक् अप सेधन्तु) उदार पर्वताभिमानी देव अत्यंत बडे पापोंको अनर्थोंको भी दूर करें। (यत्र ग्रावा मधुषुत् बृहत् उच्यते) जहां मधुर सोमके अभिषव प्रस्तरकी भलीभांति स्तुति की जाती है। (सर्वतातिं अदितिं आ वृणीमहे) हम सर्व कल्याणकारी अदितिकी प्रार्थना करते हैं ॥ ८ ॥

[११६२] हे (वसवः) देवो ! (सोतरि ग्रावा ऊर्ध्वः अस्तु) सोमको निचोडनेका पत्थर ऊपर रहे। (विश्वा द्वेषांसि सनुतः युयोत) तुम हमारे सब छिपे हुए शत्रुओंको दूर करो। (सः सविता देवः नः पायुः ईड्यः) वह सवितादेव हमारा पालक, वंदनीय और स्तुत्य है। (सर्वतातिं अदिति आ वृणीमहे) सर्वोत्पादक अदितिकी हम प्रार्थना करते हैं ॥ ९ ॥

ऊर्जं गावो यवसे पीवो अत्तन ऋतस्य याः सदने कोशे अङ्ग्ध्वे ।
तनूरेव तन्वो अस्तु भेषज मा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे १०

क्रतुप्रावा जरिता शश्वतामव इन्द्र इद्भद्रा प्रमतिः सुतावताम् ।
पूर्णमूधर्दिव्यं यस्य सिक्तय आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ११

चित्रस्ते भानुः क्रतुप्रा अभिष्टिः सन्ति स्पृधो जरणिप्रा अधृष्टाः ।
रजिष्ठया रज्या पश्व आ गो स्तूतूर्षति पर्यग्रं दुवस्युः १२ [१७](११६५)

(१०१)

१२ बुधः सौम्यः। विश्वे देवा, ऋत्विजो वा। त्रिष्टुप्; ४, ६ गायत्री; ५ बृहती; ९, १२ जगती।

उद्बुध्यध्वं समनसः सखायः समग्निमिन्ध्वं बहवः सनीळाः ।
दधिक्रामग्निमुषसं च देवी मिन्द्रावतोऽवसे नि ह्वये वः १

मन्द्रा कृणुध्वं धिय आ तनुध्वं नावमरित्रपरणीं कृणुध्वम् ।
इष्कृणुध्वमायुधारं कृणुध्वं प्राञ्चं यज्ञं प्र णयता सखायः २ (११६७)

[११६३] हे (गावः) गायो ! तुम (यवसे पीवः ऊर्जं अत्तन) गोचर भूमिपर विचरण करके वर्धित घास खाओ और बलकारक दुग्धरस प्रदान करो। (याः ऋतस्य सदने कोशे अङ्ग्ध्वे) जो यज्ञगृहमें और गोष्ठमें रखा है, वह भी खाओ। (तनूः एव तन्वः भेषजम् अस्तु) तुम्हारा दूध सोमरसके औषधके समान हमें पोषक होओ। (सर्वतातिं अदितिं आ वृणीमहे) सर्व ग्राहिणी अदितिकी हम प्रार्थना करते हैं ॥ १० ॥

[११६४] (क्रतुप्रावा जरिता शश्वतां इन्द्रः इत्) समस्त कर्मोंका पूर्ण करनेवाला, सबोंसे स्तवित और कालके अनुसार सबको जरायुक्त करनेवाला इन्द्र ही (सुतावतां अवः भद्रा प्रमतिः) सोमको निचोडनेवालोंका संरक्षक और अत्यंत स्तुत्य है। (यस्य सिक्तये ऊधः पूर्ण) जिसके पान करनेके लिये ही सोम कलश पूर्णतया भरे हुए रहते हैं। (सर्वतातिं अदितिं आ वृणीमहे) हम सर्वोत्पादक अदितिकी प्रार्थना करते हैं ॥ ११ ॥

[११६५] हे इन्द्र ! (ते भानुः चित्रः) तेरा प्रकाश आश्चर्यजनक, (क्रतुप्राः अभिष्टिः) हमारे कर्मोंको पूर्तता देनेवाला और सबके लिए इष्ट है। (ते स्पृधः जरणिप्राः अधृष्टाः सन्ति) तेरी इच्छाएं स्तोताओंकी मनःकामना पूर्ण करनेवाली और अजय्य- किसीसे न दबनेवाली हैं। जिस प्रकार (दुवस्युः रजिष्ठया रज्या गोः पश्वः अग्रं परि तूतुर्षति) दुवस्यु नामक ऋषि अतीव सरल रस्सीके द्वारा गायका अग्रभाग शीघ्र खींचता है, उसी प्रकार मैं अति सरल स्तुतिसे तेरी ओर वेगसे आता हूं ॥ १२ ॥

[१०१]

[११६६] हे (सखायः) मित्रो ! (समनसः उत् बुध्यध्वम्) समान चित्त होकर जागो ! (बहवः सनीडाः अग्निं सं इन्धध्वम्) बहुतसे मिलकर एक समान स्थानमें रहते हुए अग्निको प्रज्वलित करो। मैं (दधिक्रां अग्निं उषसं च देवीं इन्द्रावतः वः अवसे नि ह्वये) दधिक्रा, अग्नि और उषा देवीको- इन्द्रके साथ हमारी रक्षा करनेके लिये बुलाता हूं ॥ १ ॥

[११६७] हे (सखायः) मित्रो ! (मन्द्रा कृणुध्वम्) आनन्दमय मदकर स्तोत्र करो। (धियः आ तनुध्वम्) उत्तम कर्मोंका विस्तार करो। (अरित्रपर्णीं नावं कृणुध्वम्) हल-दण्डवाली और पार लगानेवाली नौकाको बनाओ। (आयुधा अरं इष् कृणुध्वम्) अनेक अस्त्रशस्त्रको अच्छी तरहसे पर्याप्त मात्रामें बनाओ। (प्राञ्चं यज्ञं प्र नयत) उत्तम यज्ञका अनुष्ठान करो ॥ २ ॥

युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम् ।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत् सृण्यः पक्वमेयात् ३
सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक् । धीरा देवेषु सुम्नया ४
निराहावान् कृणोतन सं वरत्रा दधातन ।
सिञ्चामहा अवतमुद्रिणं वयं सुषेकमनुपक्षितम् ५
इष्कृताहावमवतं सुवरत्रं सुषेचनम् । उद्रिणं सिञ्चे अक्षितम् ६ [१८]

प्रीणीताश्वान् हितं जयाथ स्वस्तिवाहं रथमित् कृणुध्वम् ।
द्रोणाहावमवतमश्मचक्रमंसत्रकोशं सिञ्चता नृपाणम् ७
व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्म सीव्यध्वं बहुला पृथूनि ।
पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम् ८

[११६८] हे मित्रो ! (सीरा युनक्त) हलोंको जोतो । (युगा वि तनुध्वम्) जुओंको विस्तृत करो । (कृते योनौ इह बीजं वपत) उत्तम तैयार किये क्षेत्रमें यहां बीजको बोओ । (नः गिरा श्रुष्टिः सभरा असत्) हमारी प्रशंसनीय स्तुति-प्रार्थनासे अन्न अत्यंत पुष्ट होवे और (सृण्यः नेदीय इत् पक्वं एयात्) दातरी पके धान्यके पास आवे ॥ ३ ॥

[११६९] (देवेषु धीराः कवयः सुम्नया सीरा युञ्जन्ति) देवोंपर श्रद्धा रखनेवाले बुद्धिमान् विद्वान् लोग सुख प्राप्त करनेके लिये हल आदिको जोतते हैं और (युगा पृथक् वि तन्वते) अनेक युगोंको अलग करते हैं ॥ ४ ॥

[११७०] हे मित्रो ! (आहावान् निः कृणोतन) गौओ- पशुओंके पानी पीनेके बहुत स्थान बनाओ । (वरत्राः सं दधातन) रज्जुओंको परस्पर जोडो । (वयं उद्रिणं सुषेकं अनुपक्षितं अवतं सिञ्चामहै) हम उत्तम भरनेसे जलयुक्त, उत्तम रीतिसे भूमि-खेत सींचनेमें समर्थ और अक्षय कूपसे जल लेकर सींचें ॥ ५ ॥

[११७१] (इष्कृत-आहावं सुवरत्रं सु-सेचनं उद्रिणं अक्षितं अवतं सिञ्चे) उत्तम जलपानके स्थानसे सुसज्जित, सुन्दर रज्जुसे युक्त, उत्तम रीतिसे सेचन करने योग्य, जलसे पूर्ण, और अक्षय कूपसे में सिंचाई करता हूं ॥ ६ ॥

[११७२] (अश्वान् प्रीणीत) अश्वों-बैलोंको घास-जल आदिसे संतुष्ट करो । (हितं जयाथ) खेतमें रखे हुए हितकारक अन्न-धान्यको प्राप्त करो । (स्वस्तिवाहं रथं इत् कृणुध्वम्) सुखपूर्वक सरलतासे धान्य ले जानेवाले सुंदर रथको अवश्य बनाओ । (नृपाणं अंसत्रकोशं अश्मचक्रं द्रोण-आवाहं अवतं सिञ्चत) मनुष्योंके पीने योग्य, कवचके समान आवरणयुक्त, पत्थरका बनाया हुआ चक्रसे युक्त, काष्ठके बने जलपात्रसे युक्त, जलाधार कूपको प्राप्त कर उससे सींचो ॥ ७ ॥

[११७३] (व्रजं कृणुध्वम्) गोष्ठ-गोशालाएं अच्छी प्रकार बनाओ । (सः हि वः नृपाणः) वही निश्चयसे तुम्हारे लिये, मनुष्यों आदिके जलपानके लिये उपयुक्त है । (बहुला पृथूनि वर्म सीव्यध्वम्) अनेक बडे कवचोंको सीयो । (अधृष्टाः आयसीः पुरः कृणुध्वम्) शत्रुसे अजेय, लोहकी बनी, अस्त्र-शस्त्रादिसे सुसज्ज दृढतर नगरियें बनाओ । (वः चमसः मा सुस्रोत्) तुम्हारा चमस, पात्र भी चूए नहीं; (तं दृंहत) उसको भी दृढ करो ॥ ८ ॥

आ वो धियं यज्ञियां वर्त ऊतये देवा देवीं यजतां यज्ञियामिह ।
सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः ९

आ तू षिञ्च हरिमीं द्रोरुपस्थे वाशीभिस्तक्षताश्मन्मयीभिः ।
परि ष्वजध्वं दश कक्ष्याभिरुभे धुरौ प्रति वह्निं युनक्त १०

उभे धुरौ वह्निरापिब्दमानो ऽन्तर्योनेव चरति द्विजानिः ।
वनस्पतिं वन आस्थापयध्वं नि षू दधिध्वमखनन्त उत्सम् ११

कपृन्नरः कपृथमुद्दधातन चोदयत खुदत वाजसातये ।
निष्टिग्र्यः पुत्रमा च्यावयोतय इन्द्रं सबाध इह सोमपीतये १२[१८](११७७)

(१०२)

१२ मुद्गलो भार्म्यश्वः । द्रुघण, इन्द्रो वा । त्रिष्टुप्; १, ३, १२ बृहती ।

प्र ते रथं मिथूकृतमिन्द्रोऽवतु धृष्णुया ।
अस्मिन्नाजौ पुरुहूत श्रवाय्ये धनभक्षेषु नोऽव १

[११७४] हे (देवाः) देवो ! (वः यज्ञियां धियं ऊतये आ वर्ते) मैं तुम्हारी परमेश्वरको प्राप्त करने योग्य बुद्धिको संरक्षणके लिये प्रेरित करता हूं । (यज्ञियां देवीं यजतां इह) यज्ञार्ह, तेजस्वी और पूज्य बुद्धिको तुम इस यज्ञभूमिमें धारण करो । (सा नः दुहीयत्) वह बुद्धि हमारी अभिलाषा पूर्ण करे । जैसे (यवसा इव गत्वी गौः) घास, भुस अन्नादिको खाकर गोष्ठमें गाय (सहस्रधारा पयसा मही गौः) सहस्र धाराओंसे दूध देती है वैसे ॥९॥

[११७५] हे अध्वर्यु ! (ईं द्रोः उपस्थे हरिं आ सिञ्च) इस काठके पात्रमें रखे हुए हरितवर्ण सोमको सिञ्चित करो । (अश्मन्मयीभिः वाशीभिः तक्षतः) प्रस्तरमय कुठारोंसे पात्र तैयार करो । (दश कक्ष्याभिः परि स्वजध्वम्) दस अंगुलियों-रज्जुओंसे पात्रको वेष्टन करके धारण करो । (उभे धुरौ वह्निं प्रति युनक्त) रथकी दोनों धुराओंमें वाहक पशुको योजित करो ॥ १० ॥

[११७६] (उभे धुरौ आपिब्दमानः वह्निः योनौ अन्तः इव द्विजानिः चरति) रथकी दोनों धुराओंको शब्दायमान करके रथवाहक बैल वैसेही विचरण करता है, जैसे दो स्त्रियोंका स्वामी क्रीडा करता है । (वनस्पतिं वने आस्थापयध्वम्) काठके शकटको वनमें स्थापित करो । अनन्तर (सु नि दधिध्वम्) उत्तम रीतिसे सोमको उसमें स्थिर करो । और (उत्सं अखनन्तः) परम रसको परिश्रम करके प्राप्त करो ॥ ११ ॥

[११७७] हे (नरः) मनुष्यो ! इन्द्र (कपृत्) परमसुख देनेवाला है । उस (कपृथं उत् दधातन) सुखके दाता प्रभु इन्द्रको अपने हृदयमें धारण करो और (वाजसातये चोदयत खुदत) अन्न देनेके लिये बल, ऐश्वर्य लाभके लिये इसे प्रेरित करो, उसकी स्तुति करो तथा उससे शान्ति-आनंद प्राप्त करो । (इह निष्टिग्र्यः पुत्रं इन्द्रं ऊतये सबाधः) इस लोकमें निष्टिग्री-अदितिके पुत्र इन्द्रको हमारी रक्षाके निमित्त, पीडाओंसे दुःखित तुम (सोमपीतये आच्यावय) सोमपानके लिये सब प्रकारसे प्राप्त करो ॥ १२ ॥

[१०२]

[११७८] हे मुद्गल ! (ते मिथूकृतं रथं धृष्णुया इन्द्रः अवतु) तेरे असहाय रथकी दुर्धर्ष इन्द्र रक्षा करे । हे (पुरुहूत) बहुस्तुत इन्द्र ! (अस्मिन् श्रवाय्ये आजौ धनभक्षेषु नः अव) इस प्रख्यात संग्राममें धनोपार्जनके समय हमारी रक्षा कर ॥ १ ॥

उत् स्म वातो वहति वासो अस्या अधिरथं यदजयत् सहस्रम् ।
रथीरभून्मुद्गलानी गविष्टौ भरे कृतं व्यचेदिन्द्रसेना २

अन्तर्यच्छ जिघांसतो वज्रमिन्द्राभिदासतः ।
दासस्य वा मघवन्नार्यस्य वा सनुतर्यवया वधम् ३ (११८०)

उद्नो ह्रदमपिबज्जर्हृषाणः कूटं स्म तृंहदभिमातिमेति ।
प्र मुष्कभारः श्रव इच्छमानो ऽजिरं बाहू अभरत् सिषासन् ४

न्यक्रन्दयन्नुपयन्त एन ममेहयन् वृषभं मध्य आजेः ।
तेन सूभर्वं शतवत् सहस्रं गवां मुद्गलः प्रधने जिगाय ५

ककर्दवे वृषभो युक्त आसी दवावचीत् सारथिरस्य केशी ।
दुधेर्युक्तस्य द्रवतः सहानस ऋच्छन्ति ष्मा निष्पदो मुद्गलानीम् ६ [२०]

उत प्रधिमुदहन्नस्य विद्वा नुपायुनग्वंसगमत्र शिक्षन् ।
इन्द्र उदावत पतिमघ्न्याना मरंहत पद्याभिः ककुद्मान् ७

[११७९] (यत् अधिरथं सहस्रं अजयत्) जिस समय रथपर चढकर मुग्दलकी पत्नी मुग्दलानीने सहस्रों गायोंको जीता, उस समय (अस्याः वासः वातः उत् वहति) इसके वस्त्रका संचालन वायुने किया। (गविष्टौ मद्गलानी रथीः अभूत्) गायोंको जीतनेके समय मुग्दलानी सारथि हुई । (इन्द्रसेना भरे कृतं वि अचेत्) और शत्रुके हन्ता इन्द्रकी सेना संग्राममें किये विजयलाभ और गायोंको ले आयी ॥ २ ॥

[११८०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (जिघांसतः अभिदासतः अन्तः वज्रं यच्छ) मारनेकी इच्छा करनेवाले और आक्रमण करनेवाले शत्रुओंके ऊपर फेंक। हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (दासस्य वा आर्यस्य वा सनुतः वधं यवय) दास वा आर्य शत्रुके गूढ रूपसे किये शस्त्र प्रयोगको दूर कर ॥ ३ ॥

[११८१] (उद्नः ह्रदं जर्हृषाणः अपिबत्) इस वृषभने जलसे भरे जलाशयको आनंदोत्साहित होकर पी लिया। (कूटं तृंहत् स्म) और अपनी सिंगोंसे पर्वतशृंगको खोदकर वह (अभिमातिं एति) शत्रुपर आक्रमण करता है। (मुष्कभारः) उसका अण्डकोष लम्बायमान है। (श्रवः इच्छमानः सिषासन् अजिरं बाहू प्र अभरत्) वह यशकी इच्छा करके और ऐश्वर्यको चाहता हुआ वेगसे दोनों तीखें सींगोंको बढाते हुए आक्रमणके लिये आ रहा है ॥ ४ ॥

[११८२] (एनं वृषभं उपयन्तः नि अक्रन्दयन्) मनुष्योंने इस वृषभे पास जाकर उसे गरजाया और (आजेः मध्ये अमेहयन्) युद्धके बीचमें उससे मूत्र त्याग कराया ! (तेन मुद्गलः सुभर्वं शतवत् सहस्रं गवां प्रधने जिगाय) उसीसे मुग्दलने पुष्ट और उत्तम आहारवट् सैकडों सहस्रों गायोंको युद्धमें जीता ॥ ५ ॥

[११८३] (ककर्दवे वृषभः युक्तः आसीत्) शत्रुओंके साथ युद्ध करनेके लिये रथमें वृषभ योजित किया गया, (अस्य केशी सारथिः अवावचीत्) उसकी केशधारिणी सारथि मुग्दलानी गर्जना करके उत्तेजित करने लगी। (अनसा सह युक्तस्य द्रवतः दुधेः निष्पदः मुद्गलानीं ऋच्छन्ति स्म) रथमें जोते गये वृषभके साथ दौडते हुए, दुर्धर और सज्जित योद्धा मुग्दलानीके पीछे गये ॥ ६ ॥

[११८४] (उत विद्वान् अस्य प्रधिं उदहन्) और ज्ञानी मुग्दलने इस रथकी धुरा–चक्रको अच्छी प्रकारसे प्राप्त किया और (अत्र वंसगं शिक्षन् उपायुनक्) बडी निपुणतासे वृषभको रज्जुसे बांधकर रथमें जोता। इस प्रकार (इन्द्रः अघ्न्यानां पतिं उत् आवत्) इन्द्रने गायोंके पति उस वृषभको बचाया। अनन्तर (ककुद्मान् पद्याभिः अरंहत) वह श्रेष्ठ वृषभ बडे वेगसे मार्गपर चला ॥ ७ ॥

शुनमष्ट्राव्यचरत् कपर्दी वरत्रायां दार्वानह्यमानः ।
नृम्णानि कृण्वन् बहवे जनाय गाः पस्पशानस्तविषीरधत्त ८

इमं तं पश्य वृषभस्य युञ्जं काष्ठाया मध्ये द्रुघणं शयानम् ।
येन जिगाय शतवत् सहस्रं गवां मुद्गलः पृतनाज्येषु ९

आरे अघा को न्वि१त्था ददर्श यं युञ्जन्ति तम्वा स्थापयन्ति ।
नास्मै तृणं नोदकमा भर—न्त्युत्तरो धुरो वहति प्रदेदिशत् १०

परिवृक्तेव पतिविद्यमानट् पीप्याना कूचक्रेणेव सिञ्चन् ।
एषैष्या चिद्रथ्या जयेम सुमङ्गलं सिनवदस्तु सातम् ११

त्वं विश्वस्य जगत—श्चक्षुरिन्द्रासि चक्षुषः ।
वृषा यदाजिं वृषणा सिषासासि चोदयन् वध्रिणा युजा १२ [२१](११८९)

[११८५] (वरत्रायां द्रारुं आनह्यमानः) रज्जुओंसे रथाङ्गको सब प्रकारसे बांधता हुआ, (कपर्दी अष्ट्रावी शुनं अचरत्) जटाजूटवाला और चाबुक धारण करनेवाला वह सुखपूर्वक विचरण करने लगा। (बहवे जनाय नृम्णानि कृण्वन्) बहुत लोगोंको अभिलषित धनोंको दिया और (गाः पस्पशानः तविषीः अधत्त) गायोंको स्पर्श करते करते उसने महान् बलको धारण किया ॥ ८ ॥

[११८६] (इमं तं वृषभस्य युज्जं द्रुघणं पश्य) इस उस वृषभके मित्र लकडीके बनाये हुए शस्त्रको देख। (काष्ठाया मध्ये शयानम्) यह संग्राममें सब शत्रुओंका हिंसित करके सुखसे पडा हुआ है। (येन मुद्गलः शतवत् सहस्रं गवां पृतनाज्येषु जिगाय) जिसके द्वारा मुगदलने सैकडों, हजारों गायोंको युद्धमें जीता था ॥ ९ ॥

[११८७] (अघा आरे इत्था कः नु ददर्श) जो शत्रुरूपी दुःखों-पापोंको समीपमें करता है, ऐसे शुद्ध निर्मलको किसीने देखा है ? (यं युञ्जन्ति तं उ आस्थापयन्ति) जो रथमें योजित किया जाता है, वही उसपर प्रहरणके लिये बैठाया जाता है। (अस्मै तृणं न उदकं न आ भरन्ति) इसके लिये घास और जल नहीं लाया जाता है। (उत्तरः धुरः वहति प्रदेदिशत्) तो भी यह रथकी धुराका भार वहन करता है और स्वामीको अत्यंत विजयी करता है ॥ १० ॥

[११८८] (परिवृक्ता इव पतिविद्यं पीप्याना आनट्) परित्यक्त स्त्री जिस प्रकार पतिको प्राप्त करके उत्कर्षित होती है, और (कूचक्रेण इव सिञ्चन्) जैसे मेघ पृथिवीपर चक्रवत् होकर वर्षा करता है, उसी प्रकार मुगदलानीने बाणोंकी वर्षा की। (एसएष्या रथ्या जयेम) अनेक गो–संघोंकी इच्छा करनेवाले हम उसकें सारथ्यसे शत्रुओंको अपहृत गौओंका विजय प्राप्त करें; (सातं सिनवत् सुमङ्गलं अस्तु) और सुखप्रद अन्नके समान हमें बहुत धन प्राप्त होवें ॥ ११ ॥

[११८९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं विश्वस्य जगतः चक्षुषः चक्षुः असि) तू सार जगत्के प्रकाशकका भी आंख है। (यत् वृषा आजिं वध्रिणा युजा वृषणा चोदयन् सिषासासि) क्योंकि तू बलवान् और अभिलषित कामनाओं पूर्ण करनेवाला है; संग्राममें तू रथमें दो अश्वोंको रज्जुसे एकत्र बांधकर प्रेरित करता हुआ विजय प्राप्त करता है ॥ १२ ॥

(१०३)

१३ ऐन्द्रोऽप्रतिरथः । इन्द्रः, ४ बृहस्पतिः, १२ अप्वा देवी, १३ मरुतो वा । त्रिष्टुप्, १३ अनुष्टुप् ।

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत् साकमिन्द्रः १

संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत् सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा २

स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
संसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्यु१ग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ३ (११९२)

बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः ।
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ४

बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित् ५

[१०३]

[११९०] (आशुः शिशानः वृषभः न भीमः घनाघनः) सर्वव्यापी, शीघ्रतासे शत्रुपर आक्रमण करनेवाला; अत्यंत तीक्ष्ण, वृषभके समान भयंकर, शत्रुहन्ता, (चर्षणीनां क्षोभणः संक्रन्दनः अनिमिषः) मनुष्योंको विचलित करनेवाला, शत्रुओंको रुलानेवाला, सदा सावधान (एकवीरः इन्द्रः) और महान् पराक्रमी वीर इन्द्र है । वह (शतं सेनाः साकं अजयत्) सैकडों सेनाका एक साथ विजय करता है ॥ १ ॥

[११९१] (संक्रन्दनेन अनिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण) शत्रुओंको रुलानेवाले–ललकारनेवाले, सदा सावधान, विजयशील, युद्धकारी, (दुश्च्यवनेन धृष्णुना इन्द्रेण तत् जयत तत् सहध्वम्) शत्रुओंसे विचलित वा पराजित न होनेवाले, दृढ इन्द्रकी सहायतासे विजयी बनो, उस शत्रुको पराजित करो । हे (युधः नरः) योद्धा लोगो ! (इषुहस्तेन वृष्णा) वह धनुर्धारी और बलवान् है ॥ २ ॥

[११९२] (सः इषुहस्तैः सः निषङ्गिभिः वशी) वह इन्द्र धनुर्धारी मरुतोंके साथ और तलवार हाथोंमें धारण करनेवालोंके साथ रहता है । (सः इन्द्रः गणेन युधः संस्रष्टा) वह इन्द्र शत्रुओंके संघमें प्रवेश करके युद्ध करनेवाला है । (संसृष्टजित् सोमपाः बाहुशर्धी उग्रधन्वा प्रतिहिताभिः अस्ता) वह शत्रुओंका जीतनेवाला, सोमपान करनेवाला, बाहुबलसे सम्पन्न, प्रचंड धनुर्धर और शत्रुपर फेंके बाणोंसे वह उनका नाश करता है ॥ ३ ॥

[११९३] हे (बृहस्पते) सबोंके पालक देव ! तू (रथेन परि दीय) रथपर चढकर आगे बढ । (रक्षोहा अमित्रान् अपबाधमानः) तू राक्षस हन्ता, शत्रुओंको नष्ट करनेवाला, (सेनाः प्रभञ्जन् प्रमृणः युधा जयन्) नायकों सहित शत्रुओंकी सेनाको छिन्नभिन्न करनेवाला, हिंसक और युद्धसे विजय प्राप्त करनेवाला है । वह तू (अस्माकं रथानां अविता एधि) हमारे रथोंका संरक्षण कर्ता होओ ॥ ४ ॥

[११९४] (बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्) तु सब बलोंको विशेष रूपसे जाननेवाला — सर्वाधार, महान्, श्रेष्ठ वीर, तेजस्वी, (वाजी सहमानः उग्रः अभिवीरः अभिसत्वा) वेगवान्–अन्नवान्, शत्रुका पराभव करनेवाला, अत्यंत उग्र, वीरोंसे घिरा हुआ, बलवान् सहचरोंसे युक्त (सहोजाः गोवित्) बल–पराक्रमसे सम्पन्न और गायोंको प्राप्त करनेवाला है । हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (जैत्रं रथं आ तिष्ठ) जयशाली रथपर विराज ॥ ५ ॥

गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।
इमं सजाता अनु वीरयध्व--मिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ६ [२२]

अभि गोत्राणि सहसा गाहमानो ऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाळयुध्यो ऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ७
इन्द्र आसां नेता बृहस्पति--र्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ८
इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ९
उद्धर्षय मघवन्नायुधा--न्युत् सत्वनां मामकानां मनांसि ।
उद्वृत्रहन् वाजिनां वाजिना--न्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः १०
अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजे--ष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीरा उत्तरे भव--न्त्वस्माँ उ देवा अवता हवेषु ११

[११९५] (गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं अज्म जयन्तं) मेघोंको फाडनेवाले-पर्वतभेत्ता जलको प्राप्त करनेवाले, वीर्यवान, संग्राममें विजय प्राप्त करनेवाले, (ओजसा प्रमृणन्तं इमं इन्द्रं) पराक्रमसे शत्रुओंको नाश करनेवाले, हे (सजाताः) एकत्र हुए वीरो ! (अनु वीरयध्वम्) अनुसरण करके, शौर्यका कार्य करो । हे (सखायः) मित्रो ! (इन्द्रं अनु सं रभध्वम्) इन्द्रके अनुकूल होकर तुम्हारा कार्य करो ॥ ६ ॥

[११९६] (इन्द्रः सहसा गोत्राणि अभि गाहमानः) इन्द्र स्वसामर्थ्यसे मेघोंमें प्रवेश करता है । (अदयः वीरः शतमन्युः दुश्च्यवनः पृतनाषाट्) वह शत्रुपर निर्दय, वीर, क्रोधी, अचल-अच्युत, शत्रुओंकी सेनाका पराभव करनेवाली, (अयुध्यः अस्माकं सेनाः युत्सु प्र अवतु) और उसके साथ कोई युद्ध नहीं कर सकता, ऐसा है । वह हमारी सेनाओंकी युद्धमें रक्षा करे ॥ ७ ॥

[११९७] (इन्द्रः आसां नेता) इन्द्र इन सेनाओंका नायक हो, (बृहस्पतिः दक्षिणा यज्ञः सोमः पुरः एतु) बृहस्पति, दक्षिणा, यज्ञ और सोम उसके अग्रभागमें रहें । (अभिभञ्जतीनां जयन्तीनां देवसेनानां अग्रं मरुतः यन्तु) शत्रुमर्दक और जयशील देवसेनाओंके अग्रभागमें मरुत् जांय ॥ ८ ॥

[११९८] (वृष्णः इन्द्रस्य राज्ञः वरुणस्य आदित्यानां मरुतां उग्रं शर्धः) बलवान् इन्द्रका, राजा वरुणका, आदित्योंका और मरुतोंका उत्कृष्ट बल हमारा होवे । (महामनसां भुवनच्यवानां जयतां देवानां घोषः उदस्थात्) महामनस्वी, भुवनोंको कंपा देनेवाले जगत् चालक, विजयी देवोंका घोषनाद ऊपर उठने लगा ॥ ९ ॥

[११९९] हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (आयुधानि उद्धर्षय) हमारे अस्त्र-शस्त्रोंको उत्साहित कर । (मामकानां सत्वनां मनांसि उत्) मेरे वीर सैनिकोंके मनोंको भी उत्सुक कर । हे (वृत्रहन्) वृत्रहन्ता इन्द्र ! (वाजिनां वाजिनानि उत्) घोडोंका वेग-बल बढे । (जयतां रथानां घोषाः उत् यन्तु) विजयशील रथोंके निर्घोष नाद उठे ॥ १० ॥

[१२००] (अस्माकं ध्वजेषु समृतेषु इन्द्रः) हमारे ध्वजावाले वीरोंके एकत्र मिलकर जुट जानेपर इन्द्रही रक्षणकर्ता है । (अस्माकं याः इषवः ताः जयन्तु) हमारे जो बाणयुक्त सैन्य हैं, वे विजयी हों । (अस्माकं वीराः उत्तरे भवन्तु) हमारे वीर योद्धा श्रेष्ठ हों । हे (देवाः) देवो ! (हवेषु अस्मान् उ अवत) युद्धमें हमारी भी रक्षा करो ॥ ११ ॥

अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकै—रन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् १२
प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।
उग्रा वः सन्तु बाहवो ऽनाधृष्या यथासथ १३ [२३] (१२०२)

(१०४)

११ अष्टको वैश्वामित्रः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

असावि सोमः पुरुहूत तुभ्यं हरिभ्यां यज्ञमुप याहि तूयम् ।
तुभ्यं गिरो विप्रवीरा इयाना दधन्विर इन्द्र पिबा सुतस्य १
अप्सु धूतस्य हरिवः पिबेह नृभिः सुतस्य जठरं पृणस्व ।
मिमिक्षुर्यमद्रय इन्द्र तुभ्यं तेभिर्वर्धस्व मदमुक्थवाहः २
प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम् ।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ३ (१२०५)

[१२०१] हे (अप्वे) पापाभिमानी देवता ! (अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती) तू इन शत्रुओंके चित्तको मोहित करती हुई उनके (अङ्गानि गृहाण) शरीरोंके अवयवोंको पकड ले, उनको वश कर । (परा इहि) तू दूरतक जा । (अभि प्र इहि) उनकी ओर आगे बढती जा । (हृत्सु शोकैः निर्दह) उनके हृदयोंको शोकोंसे दग्ध कर । (अमित्राः अन्धेन तमसा सचन्ताम्) हमारे शत्रु अन्धकार युक्त दुःखसे युक्त हों ॥ १२ ॥

[१२०२] हे (नरः) वीर योद्धाओ ! (प्र इत) आगे बढो । (जयत) शत्रुओंपर विजय प्राप्त करो । (इन्द्रः वः शर्म यच्छतु) इन्द्र तुम्हें सुखी करे । (वः बाहवः उग्राः सन्तु) तुम्हारी भुजाएं बलशाली हों, (यथा अनाधृष्याः असथ) कि तुम कभी पराजित न होनेवाले होओ ॥ १३ ॥

[१०४]

[१२०३] हे (पुरुहूत) बहुस्तुत इंद्र ! (तुभ्यं सोमः असावी) तेरे लिये सोम अभिषुत हुआ है ! तू (हरिभ्यां यज्ञं तूयं उप याहि) दोनों घोडोंके द्वारा हमारें यज्ञमें शीघ्रही पधारो । (तुभ्यं विप्रवीराः इयानाः गिरः दधन्विरे) तेरे लिये विद्वान् स्तोता उत्तम स्तुतियोंको सदाके लिये धारण करते हैं । तू (सुतस्य पिब) आकर इस सोमका पान कर ॥ १ ॥

[१२०४] हे (हरिवः) अश्वोंके स्वामी ! (अप्सु धूतस्य नृभिः सुतस्य) पानीमें घुलाकर शुद्ध किया और कर्मकर्ता अध्वर्युओंने निचोडा हुआ सोम (इह पिब) यहां इस यज्ञमें उसका पान कर । पीकर (जठरं पृणस्व) उदरको तृप्त कर । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अद्रयः यं तुभ्यं मिमिक्षुः) पत्थरोंने जो तुम्हारे लिये ही सेचन किया है, हे (उक्थवाहः) स्तुत्य ! (तेभिः मदं वर्धस्व) उनसे तू उत्साहयुक्त होओ ॥ २ ॥

[१२०५] हे (हर्यश्व) हरित रंगके घोडोंके स्वामी इन्द्र ! (वृष्णे तुभ्यं सुतस्य उग्रा सत्या पीतिं प्रयै प्र इयर्मि) सुख और ऐश्वर्यको बरसानेवाले तुझे निचोडा हुआ उग्र और सत्य सोमका पान करनेके लिये जानेकी में प्रेरित करता हूं । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (शच्या गृणानः) कर्मोंसे और स्तुतिओंसे तू स्तवित होता है । (धेनाभिः विश्वाभिः धीभिः इह मादयस्व) तू स्तुति वचनोंसे और अनेक प्रकारके योग्य कर्मोंसे इस यज्ञमें संतुष्ट तथा तृप्त होओ ॥ ३ ॥

ऊती शचीवस्तव वीर्येण वयो दधाना उशिज ऋतज्ञाः ।
प्रजावदिन्द्र मनुषो दुरोणे तस्थुर्गृणन्तः सधमाद्यासः ४
प्रणीतिभिष्टे हर्यश्व सुष्टोः सुषुम्नस्य पुरुरुचो जनासः ।
मंहिष्ठामूतिं वितिरे दधानाः स्तोतार इन्द्र तव सूनृताभिः ५ [२४]

उप ब्रह्माणि हरिवो हरिभ्यां सोमस्य याहि पीतये सुतस्य ।
इन्द्र त्वा यज्ञः क्षममाणमानड् दाश्वाँ अस्यध्वरस्य प्रकेतः ६
सहस्रवाजमभिमातिषाहं सुतेरणं मघवानं सुवृक्तिम् ।
उप भूषन्ति गिरो अप्रतीत—मिन्द्रं नमस्या जरितुः पनन्त ७
सप्तापो देवीः सुरणा अमृक्ता याभिः सिन्धुमतर इन्द्र पूर्भित् ।
नवतिं स्रोत्या नव च स्रवन्ती—र्देवेभ्यो गातुं मनुषे च विन्दः ८
अपो महीरभिशस्तेरमुञ्चो ऽजागरास्वधि देव एकः
इन्द्र यास्त्वं वृत्रतूर्ये चकर्थ ताभिर्विश्वायुस्तन्वं पुपुष्याः ९

[१२०६] हे (शचीवः इन्द्रः) शक्तिमान् इन्द्र ! (तव ऊती वीर्येण प्रजावत् वयः दधानाः) तेरी रक्षा और सामर्थ्यसे संतति युक्त अन्न प्राप्त करनेवाले (उशिजः ऋतज्ञाः मनुषः दुरोणे गृणन्तः) तेरी कामना करनेवाले, यज्ञकर्मको अच्छी तरह जाननेवाले तेरे भक्त यज्ञगृहमें स्तुति करते हुए (सधमाद्यासः तस्थुः) सबके साथ आनन्द अनुभव करते हुए विराजते हैं ॥ ४ ॥

[१२०७] हे (हर्यश्व इन्द्र) हरितवर्ण घोडोंवाले इन्द्र ! (सुष्टोः सुषुम्नस्य पुरुरुचः ते) उत्तम रीतिसे स्तुत्य, सुखयुक्त धनके स्वामी, अत्यंत प्रदीप्त– श्रेष्ठ तेरे (प्र–नीतिभिः जनासः सूनृताभिः स्तोतारः) उत्तम नीतियों–कार्योंसे लोग, उत्तम वाणीयोंसे तेरी स्तुति करनेवाले होकर (वितिरे मंहिष्ठां तव ऊति दधानाः) अन्योंको भी दान करने और स्वयं पार होनेके लिये भी तेरी श्रेष्ठ रक्षा प्राप्त करते हैं ॥ ५ ॥

[१२०८] हे (हरिवः) अश्वयुक्त इन्द्र ! (सुतस्य सोमस्य पीतये हरिभ्यां ब्रह्माणि उप याहि) तू अभिषुत किया गया सोम पीनेके लिये अपने दोनों घोडोंके द्वारा सारे यज्ञोंमें आता है । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (क्षममाणं त्वा यज्ञः आनट्) क्षमाशील शक्तिमान् तुझे यज्ञ प्राप्त होता है। (अध्वरस्य प्रकेतः दाश्वान् असि) यज्ञीय विषयको उत्तम रीतिसे जाननेवाला तू अविनाशी कर्मफलका दाता है ॥ ६ ॥

[१२०९] (सहस्रवाजं अभिमातिषाहं सुतेरणं) अपरिमित बलका स्वामी, शत्रुओंको पराजित करनेवाले, सोमपानमें रमनेवाले, (मघवानं सुवृक्तिं अप्रतीतं इन्द्रं गिरः उप भूषन्ति) धनवान्, सुस्तुत और युद्धसे पराङ्मुख न होनेवाले इन्द्रकोही स्तुतियां विभूषित करती हैं। (जरितुः नमस्याः पनन्त) स्तोताकी नमस्कार सहित पूजाएं उसका ही वर्णन करती हैं ॥ ७ ॥

[१२१०] हे इन्द्र ! (सप्त आपः देवीः सुरणाः अमृक्ताः) सात नदियां– रमणीय मनोहर और अमित गतिवाली गङ्गा आदि बहती हैं । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (पूर्भित् याभिः सिन्धु अतरः) शत्रु पुरियोंको नष्ट करनेवाला तू गङ्गा आदि सात नदियोंकी सहाय्यतासे समुद्रको तरता है या उसे बढाता है । तुमने (नवतिं नव च स्रोत्याः स्रवन्तीः) निन्यानवे बहती हुई नदियोंका (देवेभ्यः मनुषे च गातुं विन्दः) देवों और मनुष्योंके लिये मार्ग परिष्कृत किया है ॥८॥

[१२११] हे इन्द्र ! (महीः अपः अभिशस्ते अमुञ्चः) जिन महान् जीवनप्रद जलोंको दुष्टोंके आक्रमणसे मुक्त किया, (आसु देवः एकः अधि अजागः) उनके ऊपर तू ही एक अद्वितीय देव प्रकाशक होकर जागता रहता है । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं याः वृत्रतूर्ये चकर्थ) तू जिन जलोंको वृत्र–हत्यामें समर्थ करता है, (ताभिः विश्वायुः तनुं पुपुष्याः) उनके द्वारा ही सबका जीवनदाता होकर सबके शरीरोंको पुष्ट करता है ॥ ९ ॥

वीरेण्यः क्रतुरिन्द्रः सुशस्ति—रुतापि धेना पुरुहूतमींट्टे ।
आर्दयद्वृत्रमकृणोदु लोकं ससाहे शक्रः पृतना अभिष्टिः १०
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्र—मस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ११ [२५] (१२१३

(१०५)

११ कौत्सो दुर्मित्रः सुमित्रो वा । इन्द्रः । उष्णिक्; १ गायत्री वा; २, ७ पिपीलिकमध्या; ११ त्रिष्टुप् ।

कदा वसो स्तोत्रं हर्यत आव श्मशा रुधद्वाः । दीर्घं सुतं वाताप्याय १
हरी यस्य सुयुजा विव्रता वे—रर्वन्तानु शेपा । उभा रजी न केशिना पतिर्दन् २
अप योरिन्द्रः पापज आ मर्तो न शश्रमाणो बिभीवान् । शुभे यद्युयुजे तविषीवान् ३
सचायोरिन्द्रश्चर्कृष आँ उपानसः सपर्यन् । नदयोर्विव्रतयोः शूर इन्द्रः ४
अधि यस्तस्थौ केशवन्ता व्यचस्वन्ता न पुष्ट्यै । वनोति शिप्राभ्यां शिप्रिणीवान् ५ [२६]

[१२१२] (इन्द्रः वीरेण्यः क्रतुः सुशस्तिः उत अपि) इन्द्र महान् योद्धा, कर्तृत्ववान् और उत्तम स्तुति करने योग्य है । (धेना पुरुहूतं ईट्टे) वाणी अत्यंत पूज्य इन्द्रकी ही स्तुति करती है । और जो (वृत्रं आर्दयत् उ) वृत्रका नाश करता है, (लोकं अकृणोत्) प्रकाशको उत्पन्न करता है (शक्रः अभिष्टिः पृतनाः ससाहे) और शक्तिशाली उसने आक्रमणकारी होकर शत्रुओंकी सेनाओंको भी पराजित किया ॥ १० ॥

[१२१३] (अस्मिन् भरे शुनं मघवानं शृण्वन्तं उग्रं) इस युद्धमें महान् पवित्र, ऐश्वर्योंके स्वामी, हमारी-भक्तोंकी प्रार्थनायें सुननेवाले, उग्र (समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं धनानां संजितं इन्द्रं) युद्धोंमें शत्रुओंको नाश करनेवाले और समस्त धनोंका विजय करनेवाले पुरुषोत्तम इन्द्रको (वाजसातौ ऊतये हुवेम) अन्नप्राप्तिके लिये और रक्षाके लिये हम बुलाते हैं ॥ ११ ॥

[१०५]

[१२१४] हे (वसो) जगत्को बसानेवाले इन्द्र ! (स्तोत्रं हर्यते कदा आ अवरुधत् वाः) हमारे स्तोत्रोंकी इच्छा करनेवाले तुझे कब सब ओरसे रोके और वरण करें ? (श्मशा) खेतमें फैली नाली जिस प्रकार जलको चारों ओरसे रोककर नीचेकी ओर बहाती है, उसी प्रकार ही । (दीर्घं सुतं वाताप्याय) विपुल सोम वृष्टिके लिये प्रस्तुत किया गया है ॥ १ ॥

[१२१५] (यस्य हरी सुयुजा विव्रता अर्वन्तौ शेपा) जिस इन्द्रके दो अश्व सुशिक्षित, अनेक कार्य करनेवाले, कुशल, अत्यंत बलवान् (उभा रजी न केशिना) और दोनों सूर्य-चन्द्र तथा द्यावापृथिवीके समान महान्, तेजोंसे युक्त सबको अनुरंजित करनेवाले हैं । (पतिः दन् अनु वेः) उनका स्वामी तू सबकुछ देनेवाला है ॥ २ ॥

[१२१६] (इन्द्रः पापजे आ मर्तः न शश्रमाणः बिभीवान्) जो इन्द्र पापी वृत्रके साथ लडते समय मनुष्यके समान श्रमित होता और भयभीत होता है, वह (यत् तविषीवान् युयुजे शुभे अप योः) इन्द्र जब बलवान् साधनोंसे युक्त होकर शुभ कार्यके लिये वृत्रको पराजित करता है ॥ ३ ॥

[१२१७] (आयोः चर्कृषे सचा) मनुष्योंसे स्तुति-पूजा पाकर इन्द्र धनोंका दान करनेके लिये सब धनोंके साथ (उपानसः) रथपर आरूढ होकर (सपर्यन् आ) उनका आदर करता हुआ आता है । (नदयोः विव्रतयोः शूरः) शब्दनाद करनेवाले और विविध कर्म करनेवाले घोडोंको शूर इन्द्र चलाता है ॥ ४ ॥

[१२१८] (यः केशवन्ता व्यचस्वन्ता न पुष्ट्यै अधि तस्थौ) जो केशवाले और विशाल दोनों घोडोंपर चढकर अपनी देहकी पुष्टिके लिये विराजता है, वह (शिप्राभ्यां शिप्रिणीवान् वनोति) सुघटित जबडोंवाला इन्द्र शत्रुओंका विनाश करता है ॥ ५ ॥

प्रास्तौदृष्वौजा ऋष्वेभि- स्ततक्ष शूरः शवसा । ऋभुर्न क्रतुभिर्मातरिश्वा ६
वज्रं यश्चक्रे सुहनाय दस्यवे हिरीमशो हिरीमान् । अरुतहनुरद्भुतं न रजः ७
अव नो वृजिना शिशी- ह्यृचा वनेमानृचः । नाब्रह्मा यज्ञ ऋधग्जोषति त्वे ८
ऊर्ध्वा यत् ते त्रेतिनी भू- द्यज्ञस्य धूर्षु सद्मन् । सजूर्नावं स्वयशसं सचायोः ९ (१२२२)
श्रिये ते पृश्निरुपसेचनी भू- च्छ्रिये दर्विररेपाः । यया स्वे पात्रे सिञ्चस उत् १०
शतं वा यदसुर्य प्रति त्वा सुमित्र इत्थास्तौद्दुर्मित्र इत्थास्तौत् ।
आवो यद्दस्युहत्ये कुत्सपुत्रं प्रावो यद्दस्युहत्ये कुत्सवत्सम् ११ [२७] (१२२४)

[षष्ठोऽध्यायः ॥६॥ व० १-२७] (१०६)

११ भूतांशः काश्यपः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

उभा उ नूनं तदिदर्थयेथे वि तन्वाथे धियो वस्त्रापसेव ।
सध्रीचीना यातवे प्रेमजीगः सुदिनेव पृक्ष आ तंसयेथे १

[१२१९] (ऋष्वौजाः ऋष्वेभिः प्र अस्तौत्) अत्यंत दर्शनीय महान् बलसे तथा कर्तृत्वसे युक्त इन्द्र महतोंके साथ उत्तम रीतिसे स्तुति किया जाता है । वह (शूरः मातरिश्वा ऋभुः न शवसा क्रतुभिः ततक्ष) शूरवीर अन्तरिक्षमें संचार करनेवाला ऋभुओंके समान कर्म-कौशल पूर्ण बलसे अनेक विध कर्मोंसे वृत्रादिओंको विनष्ट करता है ॥ ६ ॥

[१२२०] (यः हिरीमशः हिरीमान् अरुतहनुः) जो हरितवर्ण श्मश्रुवाला, हरितवर्ण घोडोंवाला और सुंदर जबडोंवाला है, (दस्यवे सुहनाय वज्रं चक्रे) उसने दस्युओंका वध करनेके लिये वज्र तैय्यार किया । (रजः अद्भुतं न) उसका तेज आश्चर्यजनक है ॥ ७ ॥

[१२२१] हे इन्द्र ! (नः वृजिना अव शिशीहि) हमारे पापोंको नष्ट कर । हम (ऋचा अनृचः वनेम) स्तुति-अर्चनासे अर्चना न करनेवाले जनोंको नष्ट करें । (अब्रह्मा यज्ञः ऋधक् त्वे न जोषति) स्तुतिविरहित यज्ञ कभी भी तुझे आनन्द-प्रसन्न नहीं करता ॥ ८ ॥

[१२२२] हे इन्द्र ! (ते त्रेतिनी यत् यज्ञस्य सद्मन् धूर्षु उर्ध्वा भूत्) तेरी त्रेताग्नि ज्वाला जब यज्ञ गृहमें ऋत्विजोंमें प्रज्वलित हो गई, तब (सजूः आयोः सचा स्वयशसं नावम्) यजमानके साथ प्रसन्न होकर तू सबको प्रेरित करके कीर्तिप्रद नौकापर आरूढ होता है ॥ ९ ॥

[१२२३] हे इन्द्र ! (ते श्रिये उपसेचनी पृश्निः भूत्) तेरे मङ्गलके लिये दूधवाली गाय हो । (दर्विः अरेपाः श्रिये) और दर्वी (पात्र विशेष) भी तुम्हारे लिये निर्मल और कल्याणप्रद हो । (यया स्वे पात्रे उत् सिञ्चसे) जिस पात्रसे तू अपने पात्रमें मधु ले लेते हो ॥ १० ॥

[१२२४] हे (असुर्य) बलवान् इन्द्र ! (त्वा प्रति शतं वा यत्) तुझसे सैकडों धनकी जब इच्छा की, (यत् दस्युहत्ये कुत्सपुत्रं आवः कुत्सवत्सं प्रावः) जब दस्युहत्याके समय कुत्सपुत्र दुर्मित्र और सुमित्रकी रक्षा की, तब (सुमित्रः इत्था अस्तौत् दुर्मित्रः इत्था अस्तौत्) सुमित्र और दुर्मित्रने तेरी इसही प्रकार तेरी स्तुति की थी ॥ ११ ॥

[१०६]

[१२२५] हे अश्विद्वय ! (उभा उ नूनं तत् इत् अर्थयेथे) तुम दोनों निश्चयसे अभी हमारी आहुति और स्तोत्रके अभिलाषी हों । (अपसा इव वस्त्रा धियः वि तन्वथे) जिस प्रकार जुलाहा वस्त्रोंको फेलाते हैं, उसी प्रकार तुम दोनों हमारे कर्मों- स्तुतिको विस्तृत करते रहो । (ईम् सध्रीचीना यातवे प्र अजीगः) यह यजमान-भक्त तुम दोनों एक साथ मिलकर आ जांय, इसलिये भलीभांति तुम्हारी स्तुति करता है । (सुदिना इव पृक्षः आ तंसयेथे) उत्तम-शुभ दिनमें जैसे सुंदर खाद्य पदार्थ बनाते हैं, वैसेही तुम भी कल्याणमय कार्य करते हो ॥ १ ॥

उष्टारेव फर्वरेषु श्रयेथे प्रायोगेव श्वात्र्या शासुरेथः ।
दूतेव हि ष्ठो यशसा जनेषु माप स्थातं महिषेवावपानात् २
साकंयुजा शकुनस्येव पक्षा पश्वेव चित्रा यजुरा गमिष्टम् ।
अग्निरिव देवयोर्दीदिवांसा परिज्मानेव यजथः पुरुत्रा ३
आपी वो अस्मे पितरेव पुत्रोग्रेव रुचा नृपतीव तुर्ये ।
इर्येव पुष्ट्यै किरणेव भुज्यै श्रुष्टीवानेव हवमा गमिष्टम् ४
वंसगेव पूषर्या शिम्बाता मित्रेव ऋता शतरा शातपन्ता ।
वाजेवोच्चा वयसा घर्म्येष्ठा मेषेवेषा सपर्या पुरीषा ५ [१]
सृण्येव जर्भरी तुर्फरीतू नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका ।
उदन्यजेव जेमना मदेरू ता मे जराय्वजरं मरायु ६

[१२२६] (उष्टारा इव फर्वरेषु श्रयेथे) जैसे दो बैल गोचर भूमिमें हल ढोते हुए विचरण करते हैं, वैसेही तुम स्तुतिगान करनेवाले– हवि अर्पण करनेवाले व्यक्तिका आश्रय करते हो। (प्रायोगा इव श्वात्र्या शासुः एथः) रथमें जोते दो अश्वोंके समान, धन–दानके लिये तुम स्तोताके पास आते हो। (दूता इव जनेषु यशसा हि स्थः) दूतोंके समान लोगोंमें तुम यशस्वी बनो। (महिषा इव अवपानात् मा अप स्थातम्) जैसे भैंसें जलाशयसे दूर नहीं जाते, वैसेही तुम दूर कभी न हों ॥ २ ॥

[१२२७] (शकुनस्य इव पक्षा साकंयुजा) पक्षीके दो पंख जैसे आपसमें मिले रहते हैं, वैसे ही तुम दोनों परस्पर मिले हुए हो। (पश्वा इव चित्रा यजुः आ गमिष्टम्) दो पशुओंके समान आश्चर्यकारण तुम दोनों हमारे इस यज्ञमें आवो। (देवयोः अग्निः इव दीदिवांसा) देवोंकी कामना करनेवाले यज्ञशील यजमानके अग्निके समान तुम दीप्तिमान् हो। (परिज्माना इव पुरुत्रा यजथः) चारों ओर जानेवाले पुरोहितोंके समान तुम अनेक स्थानोंमें पूजित होते हो ॥ ३ ॥

[१२२८] (वः अस्मे पितरा इव पुत्रा आपी) तुम दोनों हमारे लिये माता–पिता पुत्रोंके प्रति जैसे स्नेहयुक्त रहते हैं, वैसे बन्धवत् होवो (रुचा उग्रा इव) कान्तिसे– तेजसे सूर्य–चन्द्रके समान उग्र होवो। (तुर्ये नृपती इव) शीघ्रतासे कार्य करनेवाले राजाके समान होवो। (पुष्ट्यै इर्या इव) पालन–पोषणके लिये धनी व्यक्तिके समान होवो। (भुज्यै किरणा इव) अन्नादि भोग्य सामग्रीके संपादनके लिये प्रकाशके समान और (श्रुष्टीवाना इव हवं आ गमिष्टम्) तुम दोनों शीघ्रगामी घोडोंके समान सुखी होकर इस यज्ञमें आवो ॥ ४ ॥

[१२२९] (वंसगा इव पूषर्या शिम्बाता) तुम दोनों दो वृषभोंके समान हृष्ट–पुष्ट, सुंदर और सुखदायक हो। (मित्रा इव ऋता) दो स्नेही मित्रोंके समान–मित्र और वरुणके समान परस्पर सत्य व्यवहारसे युक्त– यथार्थदर्शी, (शतरा शातपन्ता) सैकडो धनोंसे सम्पन्न उत्तम कार्योंको करनेवाले हो। (वाजा इव उच्चा वयसा) बलवान् दो घोडोंके समान ऊंचे और बल सम्पन्न हो। (धर्म्ये-स्था इव मेषा इव इषा सपर्या पुरीषा) सूर्य-चन्द्रके समान तेजस्वी मेघोंके समान सुघटित, अन्नसे सेवन योग्य और अन्योंको भी पुष्ट करनेवाले होवो ॥ ५ ॥

[१२३०] (सृण्या इव जर्भरी तुर्फरीतू) मत्त हाथीको रोकनेवाले अङ्कुशोंके समान शत्रुहन्ता (नैतोशा इव तुर्फरी पर्फरीका) दुष्टोंका वध करनेवाले राजपुरुषोंके समान हिंसक और विदारक, इसलिये प्रजाओंको भरण–पोषण करनेवाले, (उदन्यजा इव जेमना मदेरू) जलमें उत्पन्न रत्नोंके समान निर्मल, विजयशील और अत्यंत बलवान् तथा स्तुत्य हो। (ता मे जरायु मरायु अजरं) वे तुम दोनों मेरे वृद्धावस्था युक्त और मरणशील देहको अजर और अमर करो ॥ ६ ॥

पज्रेव चर्चरं जारं मरायु क्षद्मेवार्थेषु तर्तरीथ उग्रा ।
ऋभू नापत् खरमज्रा खरज्रु- र्वायुर्न पर्फरत् क्षयद्रयीणाम् ७
घर्मेव मधु जठरे सनेरू भगेविता तुर्फरी फारिवारम् ।
पतरेव चचरा चन्द्रनिर्णि- ङ्मनऋङ्गा मनन्याऽ न जग्मी ८
बृहन्तेव गम्भरेषु प्रतिष्ठां पादेव गाधं तरते विदाथः ।
कर्णेव शासुरनु हि स्मराथों- ऽशेव नो भजतं चित्रमप्नः ९
आरङ्गरेव मध्वेरयेथे सारघेव गवि नीचीनबारे ।
कीनारेव स्वेदमासिष्विदाना क्षामेवोर्जा सूयवसात् सचेथे १०
ऋध्याम स्तोमं सनुयाम वाज- मा नो मन्त्रं सरथेहोप यातम् ।
यशो न पक्वं मधु गोष्वन्त- रा भूतांशो अश्विनोः काममप्राः ११ [२] (१२३५)

[१२३१] हे (उग्रा) बलवान अश्विनौ देव ! (पज्रा इव चर्चरं जारं मरायु अर्थेषु क्षद्म इव तर्तरीथः) सामर्थ्यशाली पुरुषोंके समान होकर, चलनशील, जरायुक्त और मरणशील शरीरको प्राप्तव्य फलके लिये जलके समान पार करो। (ऋभू न खरमज्रा खरज्रुः आपत्) बलशाली ऋभुके समान तुमने वेगवान् संस्कृत रथ पाया है। (वायुः न पर्फरत्) वायुके समान तीक्ष्ण गतिसे वह सर्वत्र गमन करके (रयीणां क्षयत्) शत्रओंका धन ले आवे ॥ ७ ॥

[१२३२] (घर्मा इव जठरे मधु सनेरू) महावीरोंके समान तुम अपने पेटमें मधुर घृत ग्रहण करो। (भगे अविता तुर्फरी अरं फारिवा) तुम धनके रक्षक, शत्रओका वध करनेवाले और अत्यंत श्रेष्ठ आयुधोंको धारण करनेवाले हो। (पतरा इव चचरा चन्द्रनिर्णिक्) तुम दोनों पक्षियोंके समान सुखसे सर्वत्र विहारी हो; चन्द्रके समान आल्हाददायक रूपवाले हो और (मनऋङ्गा मनन्या न जग्मी) मनकी इच्छासे ही आभूषित होकर, स्तुति प्रिय तुम यज्ञमें आते हो ॥ ८ ॥

[१२३३] (बृहन्ता इव गम्भरेषु प्रतिष्ठां विदाथः) श्रेष्ठ पुरुषोंके समान गंभीर स्थानोंपर भी प्रतिष्ठा प्राप्त करनेवाले हो; (तरते पादा इव गाधं) तरनेवालेके पैरोंके समान तुम जलकी गहराईका अन्त जाननेवाले हो। (कर्णा इव शासुः अनु स्मराथः) दोनों कानोंके समान स्तोताकी स्तुतिको ध्यानसे सुनते हो। (अंशा इव नः चित्रं अप्नः भजतम्) यज्ञके दो अंगोंके समान हमारे इस अदभुत कर्मका सेवन करो ॥ ९ ॥

[१२३४] (आरंगरा इव मधु आ ईरयेथे) मेघोंके समान तुम जल प्रेरित करनेवाले हो। (सारघा इव नीचीनबारे गवि) मधमक्खियां जैसे मधुका सेचन करती है, वैसे ही तुम गायके स्तनमें मधुतुल्य दूधका संचार करते हो। (कीनारा इव स्वेदं आसिस्विदाना) दो किसानोंके समान पसीना (जल) बहानेवाले हो। (क्षामा इव सु-यवसात् ऊर्जा सचेथे) जैसे दुर्बल गाय उत्तम घास पाकर दुग्धयुक्त होती है, वैसे ही तुम हविरूप अन्नसे प्रेम युक्त होते हो ॥ १० ॥

[१२३५] हे अश्विनौ ! हम (स्तोमं ऋध्याम) स्तुतियुक्त स्तोत्रोंको बढावें और (वाजं सनुयाम) हविर्युक्त अन्न प्रदान करें। (इह सरथा नः मन्त्रं उप यातम्) इसलिये तुम यहां एक रथपर चढकर हमारे माननीय स्तोत्रोंको श्रवण करनेके लिये आवो। (गोषु अन्तः पक्वं मधु यशः न) गौओंके बीच होनेवाले मधुर और पक्व अन्नके-दुग्धके लिये आवो। (भूतांशः अश्विनोः कामं आ अप्राः) भूतांश ऋषिने अश्विद्वयकी इच्छा पूर्ण की ॥ ११ ॥

(१०७)

११ दिव्य आङ्गिरसः, दक्षिणा वा प्राजापत्या । दक्षिणा, दक्षिणादातारो वा ।
त्रिष्टुप्, ४ जगती ।

आविर॑भून्महि॒ माघो॑नमेषां॒ विश्वं॑ जी॒वं तम॑सो॒ निर॑मोचि ।
महि॒ ज्योतिः॑ पि॒तृभि॑र्द॒त्तमागा॑दु॒रुः पन्था॑ दक्षि॑णाया अदर्शि १

उ॒च्चा दि॒वि दक्षि॑णावन्तो अस्थु॒र्ये अ॑श्व॒दाः स॒ह ते सूर्ये॑ण ।
हि॒र॒ण्य॒दा अ॑मृत॒त्वं भ॑जन्ते वासो॒दाः सो॑म॒ प्र ति॑रन्त॒ आयुः॑ २

दैवी॑ पू॒र्तिर्दक्षि॑णा देवय॒ज्या न क॑वा॒रिभ्यो॑ न॒हि ते पृ॒णन्ति॑ ।
अथा॒ नरः॒ प्रय॑तदक्षिणासो ऽवद्यभि॒या ब॒हवः॑ पृणन्ति ३

श॒तधा॑रं वा॒युम॒र्कं स्व॒र्विदं॑ नृ॒चक्ष॑स॒स्ते अ॒भि च॑क्षते ह॒विः ।
ये पृ॒णन्ति॒ प्र च॒ यच्छ॑न्ति संग॒मे ते दक्षि॑णां दुह्रते स॒प्तमा॑तरम् ४

दक्षि॑णावान् प्रथ॒मो हू॒त ए॑ति॒ दक्षि॑णावान् ग्राम॒णीरग्र॑मेति ।
तमे॒व म॑न्ये नृ॒पतिं॒ जना॑नां॒ यः प्र॑थ॒मो दक्षि॑णामावि॒वाय॑ ५ [३]

---

[१०७]

[१२३६] (एषां माघोनं महि आविः अभूत्) इन यजमानोंके यज्ञसिद्धीके लिये सूर्यरूपी इन्द्रका महान् तेज प्रकट हुआ और (विश्वं जीवं तमसः निरमोचि) सब स्थावर-जंगमात्मक जगत् अन्धकारसे मुक्त हुआ। (पितृभि दत्तं महि ज्योतिः आगात्) पितरोंके द्वारा दी गई सूर्यरूपी महती ज्योति प्रकट हुई है। (दक्षिणायाः उरुः पन्थाः अदर्शि) दक्षिणाका महान् मार्ग दृष्टिगत हुआ अर्थात् सब प्रकारसे याग सम्पन्न होनेपर ऋत्विगोंको दक्षिणा अर्पण की गई ॥ १ ॥

[१२३७] (दक्षिणावन्तः दिवि उच्चा अस्थुः) दक्षिणा देनेवाले दानशील मनुष्य स्वर्गमें ऊंची स्थितिको प्राप्त करते हैं। (ये अश्वदाः ते सूर्येण सह) जो अश्वदाता हैं वे सूर्यके साथ रहते हैं। (हिरण्यदाः अमृतत्वम् भजन्ते) जो सुवर्णका दान देनेवाले हैं, वे अमरता पाते हैं। हे (सोम) सोम ! (वासोदाः) वस्त्रदाता लोग सोम पाते हैं। (आयुः प्र तिरन्ते) सभी दीर्घ आयुवाले होते हैं ॥ २ ॥

[१२३८] (देवयज्या दक्षिणा दैवी पूर्तिः) देवोंको आदरसत्कारसे दिया जानेवाला द्रव्यादिका दान पुण्य कर्मकी पूर्ति करनेवाला है, वह देवपूजाका एक श्रेष्ठ साधन है। (न कव-अरिभ्यः) वह अयाजकोंको प्राप्त नहीं होता। क्योंकि (ते नहि पृणन्ति) खराब आचरण करनेवाले लोग स्तुति और हविसे देवोंको प्रसन्न नहीं करते। (अथ बहवः प्रयत दक्षिणासः नरः अवद्यभिया पृणन्ति) और जो बहुतसे लोग पवित्र दक्षिणा देते हैं, निन्दा-पापसे डरते हैं, वे देवोंको आनन्द-प्रसन्न करते हैं ॥ ३ ॥

[१२३९] (शतधारं वायुं, स्वर्विदं अर्कं नृचक्षसः ते हविः अभि चक्षते) सैंकडो मार्गोंसे बहनेवाले वायुको, स्वर्गप्रापक आदित्यको और अन्य सब मनुष्य हितैषी देवोंको हवि अर्पण करनेके लिये वे यजमान देखते-जानते हैं। (ये पृणन्ति च संगमे प्र यच्छन्ति) जो देवोंको प्रसन्न-तृप्त करते हैं और यज्ञादिमें अन्न-द्रव्य आदिका दान करते हैं, (ते सप्तमातरम् दक्षिणां दुह्रते) वे सप्त होताओंकी मातृभूत दक्षिणा प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥

[१२४०] (दक्षिणावान् प्रथमः हूतः एति) दाताको सबसे पहले बुलाया जाता है, वह प्रमुख माना जाता है। (दक्षिणावान् ग्रामणीः अग्रं एति) दक्षिणावान्, दानशील ग्रामाध्यक्ष सबसे आगे चलता है। (तं एव नृपतिं मन्ये) उसे ही मैं सबका पालक राजा मानता हूं, (यः प्रथमः जनानां दक्षिणां आविवाय) जो सबसे पहले मनुष्योंके बीचमें दक्षिणा देता है ॥ ५ ॥

तमेव ऋषिं तमु ब्रह्माणमाहु- र्यज्ञन्यं सामगामुक्थशासम् ।
स शुक्रस्य तन्वो वेद तिस्रो यः प्रथमो दक्षिणया रराध ६

दक्षिणाश्वं दक्षिणा गां ददाति दक्षिणा चन्द्रमुत यद्धिरण्यम् ।
दक्षिणान्नं वनुते यो न आत्मा दक्षिणां वर्म कृणुते विजानन् ७

न भोजा मम्रुर्न न्यर्थमीयु- र्न रिष्यन्ति न व्यथन्ते ह भोजाः ।
इदं यद्विश्वं भुवनं स्वश्चै- तत् सर्वं दक्षिणैभ्यो ददाति ८

भोजा जिग्युः सुरभिं योनिमग्रे भोजा जिग्युर्वध्वं१ या सुवासाः ।
भोजा जिग्युरन्तःपेयं सुराया भोजा जिग्युर्ये अहूताः प्रयन्ति ९

भोजायाश्वं सं मृजन्त्याशुं भोजायास्ते कन्या३ शुम्भमाना ।
भोजस्येदं पुष्करिणीव वेश्म परिष्कृतं देवमानेव चित्रम् १०

[१२४१] (तं एव ऋषिं आहुः तं उ ब्रह्माणं) उस दक्षिणाके दाताको ही ऋषि–तत्वार्थदर्शी और उसीको ही ब्रह्मा कहते हैं, । (यज्ञन्यं सामगां उक्थशासम्) उसीको यज्ञका नेता, सामका गान करनेवाला और वेदवचनोंका स्तोता कहते हैं । (सः शुक्रस्य तिस्रः तन्वः वेद) वह दाता ही दीप्यमान शुद्ध पवित्र शुक्रके तीन रूपोंको जानता है । (प्रथमः यः दक्षिणया रराध) सबसे प्रथम जो अन्नादि दक्षिणासे सबको तुष्ट–प्रसन्न करता है ॥ ६ ॥

[१२४२] (यः दक्षिणा अश्वं दक्षिणा गां ददाति) जो दक्षिणारूपसे अश्वको गौका दान करता है, (दक्षिणा चन्द्रं उत यत् हिरण्यम्) जो दक्षिणा रूपसे सुवर्ण, रजत आदि धनको दान करता है, जो सुवर्णरूप दक्षिणा प्रदान करता है, (दक्षिणा अन्नं वनुते) और दक्षिणारूपसे अन्नका दान करता है, वह (यः नः आत्मा विजानन् दक्षिणां वर्म कृणुते) जो हमारा आत्मा विशेष रीतिसे जानकर दक्षिणाको कवचके समान सब विघ्नों, कष्टों, और दुःखोंको निवारण करनेवाला बनाता है ॥ ७ ॥

[१२४३] (भोजाः न मम्रुः नि–अर्थं न ईयुः) धनादि दान करनेवाले उदार लोग कभी मृत्युको प्राप्त नहीं होते; निकृष्ट गतिको–दारिद्र्यको प्राप्त नहीं होते; (न रिष्यन्ति भोजाः न व्यथन्ते) कभी पीडित नहीं होते; वे उदार दाता क्लेश–दुःखको प्राप्त नहीं होते । इतना ही नहीं (इदं यत् विश्वं भुवनं स्वः च एतत् सर्वं दक्षिणा एभ्यः ददाति) यह जो सब जगत् और स्वर्ग–सुख है, वह सब उनको दक्षिणा ही देती है ॥ ८ ॥

[१२४४] (भोजाः अग्रे सुरभिं योनिं जिग्युः) उदार दाता प्रथम घी, दूध देनेवाली उत्तम गायको पाते हैं । (भोजाः या सुवासाः वध्वं जिग्युः) उदार दाता वे उदार दाता जो उत्तम सुंदर वस्त्र धारण करती है ऐसी वधू–स्त्रीको प्राप्त करते हैं । (भोजाः सुरायाः अन्तः पेयं जिग्युः) वे उदार दाता लोग सुरा–मदिरा पाते हैं । (ये अहूताः प्रयन्ति जिग्युः) जो बिना बुलाये दूसरोंपर आक्रमण करते हैं, उनको भी उत्तम दाता विजय प्राप्त कर लेते हैं ॥ ९ ॥

[१२४५] (भोजाय आशुं अश्वं सं मृजन्ति) दाता शीघ्रगतिवाला अश्व अलकृत करके दिया जाता है । (भोजाय शुम्भमाना कन्या आस्ते) दानशीलके लिये वस्त्र–भूषणादिसे आभूषित सुन्दर स्त्री सेवाके लिये उपस्थित रहती है । (भोजस्य इदं वेश्म पुष्करिणी इव परिष्कृतं) दाताका ही यह गृह पुष्करिणीके समान निर्मल–अनेक फूलोंसे सुशोभित और (देवमाना इव चित्रम्) देवोंके मंदिरोंके समान अद्भुत–मनोहर सुसज्जित होता है ॥ १० ॥

भोजमश्वाः सुष्ठुवाहो वहन्ति सुवृद्रथो वर्तते दक्षिणायाः ।
भोजं देवासोऽवता भरेषु भोजः शत्रून्त्समनीकेषु जेता ११ [४] (१२४६)

(१०८)

११ पणयोऽसुराः । सरमा देवता । २, ४, ६, ८, १०-११ सरमा देवशुनी ऋषिका ।
पणयो देवता । त्रिष्टुप् ।

किमिच्छन्ती सरमा प्रेदमानड् दूरे ह्यध्वा जगुरिः पराचैः ।
कास्मेहितिः का परितक्म्यासीत् कथं रसाया अतरः पयांसि १
इन्द्रस्य दूतीरिषिता चरामि मह इच्छन्ती पणयो निधीन् वः ।
अतिष्कदो भियसा तन्न आवत् तथा रसाया अतरं पयांसि २
कीदृङ्ङिन्द्रः सरमे का दृशीका यस्येदं दूतीरसरः पराकात् ।
आ च गच्छान्मित्रमेना दधामा ऽथा गवां गोपतिर्नो भवाति ३

[१२४६] (सुष्ठुवाहः अश्वाः भोजं वहन्ति) उत्तम रीतिसे वहन करनेवाले अश्व दाताको ले जाते हैं। (दक्षिणायाः सुवृत् रथः वर्तते) दान करनेवालेका रथ भी उत्तम चक्र आदिसे युक्त रहता है। हे (देवासः) इन्द्रादि देवो ! (भरेषु भोजं अवत) तुम संग्रामोंमें दाताकी रक्षा करो । (भोजः समनीकेषु शत्रून् जेता) दाता युद्धमें शत्रुओंको जीतता है ॥ ११ ॥

[१०८]

[१२४७] [पणि कहते हैं-]— (सरमा किम इच्छन्ती इदं प्र आनट्) सरमा क्या इच्छती हुई इस हमारे स्थानमें आयी हुई है ? (पराचैः जगुरिः दूरे हि अध्वा) विषयोंके पराङ्मुख ले जानेवाले मार्ग ही योग्य हैं; वह मार्ग बहुत ही दूरका है। (अस्मे हितिः का) हमारे शरीरोमें स्थित कौन ऐसी वस्तु-शक्ति है ? (का परितक्म्या आसीत्) तेरी रात्रि कैसी गई ? (कथं रसायाः पयांसि अतरः) किस तरह तू नदीके जलोंको पार किया ? ॥ १ ॥

[१२४८] [सरमा बोली-]— हे (पणयः) पणिओ ! (इन्द्रस्य दूतीः इषिता चरामि) इन्द्रकी दूती में उससे ही इच्छापूर्वक प्रेरित होकर तुम्हारे स्थानपर आयी हूं । (वः महः निधीन् इच्छन्ती) तुमने जो महान् गोधन एकत्र किया है, उसे ग्रहण करनेकी मेरी इच्छा है । (अतिष्कदः भियसा तत् नः आवत्) सबको अतिक्रमण कर जानेवाले उसीके भयसे उस नदीजलने ही हमारी रक्षा की; अर्थात् प्रथम लांघकर जानेमें डर था, परंतु फिर पार हो गई। (तथा रसायाः पयांसि अतरम्) इस प्रकार में नदीके पार चली आयी हूं ॥ २ ॥

[१२४९] [पणि कहते हैं-]— हे (सरमे) सरमा ! (इन्द्रः कीदृक्) तुम्हारा स्वामी वह इन्द्र कैसा है ? कितना पराक्रम करनेवाला है ? (का दृशीका) उसकी कैसी दृष्टि है ? उसकी सेना कैसी है ? (यस्य दूतीः इदं पराकात् असरः) जिसकी दूती बनकर तू इस स्थानमें इतनी दूरसे आयी हो ? वह (मित्रं आ गच्छात्) हमारा स्नेही-मित्र आवे । (एनं दधाम) उसको ही हम स्वामीरूप धारण करें । (अथ नः गवां गोपतिः भवाति) और वह हमारी गौओंका पालक बने ॥ ३ ॥

नाहं तं वेद दभ्यं दभत् स यस्येदं दूतीरसरं पराकात् ।
न तं गूहन्ति स्रवतो गभीरा हता इन्द्रेण पणयः शयध्वे ४
इमा गावः सरमे या ऐच्छः परि दिवो अन्तान् सुभगे पतन्ती ।
कस्त एना अव सृजादयुध्व्युतास्माकमायुधा सन्ति तिग्मा ५ [५]

असेन्या वः पणयो वचांस्यनिषव्यास्तन्वः सन्तु पापीः ।
अधृष्टो व एतवा अस्तु पन्था बृहस्पतिर्व उभया न मृळात् ६
अयं निधिः सरमे अद्रिबुध्नो गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्न्यृष्टः ।
रक्षन्ति तं पणयो ये सुगोपा रेकु पदमलकमा जगन्थ ७
एह गमन्नृषयः सोमशिता अयास्यो अङ्गिरसो नवग्वाः ।
त एतमूर्वं वि भजन्त गोनामथैतद्वचः पणयो वमन्नित् ८

[१२५०] [सरमा बोली-]— (अहं तं दभ्यं न वेद) मैं उसको कभी विनाश होने योग्य नहीं जानती; क्योंकि (सः दभत्) वह समस्त लोगोंका विनाशक है। (यस्य दूतीः इदं पराकात् असरं) जिसकी दूती बनकर मैं तुम्हारे स्थानपर अत्यंत दूर स्थानसे आ रही हूं। (स्रवतः गभीराः तं न गूहन्ति) स्रवणशील गहरी धाराएं भी उसको नहीं छुपातीं– नहीं रोक सकतीं। इसलिये हे (पणयः) पणिजन ! (इन्द्रेण हताः शयध्वे) निश्चय ही इन्द्र तुम्हें मारकर सुला देगा ॥ ४ ॥

[१२५१] [पणि कहते हैं-] हे (सुभगे सरमे) भाग्यवती सरमा ! (दिवः अन्तान् परि पतन्ती) तू आकाशके अन्त भागोंतक पहुंचती हुई भी, (इमाः याः गावः ऐच्छः) इन जो गायोंकी इच्छा करती है, (एनाः ते कः अयुध्वी अव सृजात्) उन गायोंको कौन विना युद्ध किये छोडकर ले जा सकता है ? (उत अस्माकं तिग्मा आयुधा सन्ति) और हमारे पास भी अनेक तीक्ष्ण आयुध हैं ॥ ५ ॥

[१२५२] [सरमा बोली-]— हे (पणयः) पणिओ ! (वः वचांसि असेन्या) तुम्हारी बातें सैनिकोंके योग्य नहीं है। (तन्वः अनिषव्याः पापीः सन्तु) तुम्हारे शरीर बाण चलानेमें असमर्थ पराक्रम शून्य हैं, क्योंकि वे पापी हैं। (वः पन्थाः एतवै अधृष्टः अस्तु) तुम्हारा मार्ग जानेके लिये असमर्थ, अयोग्य होवे। (वः उभया बृहस्पतिः न मृळात्) तुम्हारे उभय वर्गोंके देहोंको बृहस्पति सुख न देवे ॥ ६ ॥

[१२५३] [पणि कहते हैं-]— हे (सरमे) सरमा ! (अयं निधिः अद्रिबुध्नः) यह हमारा कोष पर्वतोंके द्वारा सुरक्षित है— (गोभिः अश्वेभिः वसुभिः न्यृष्टः) —और ये गायों, अश्वों और अन्य धनोंसे पूर्ण है। (सुगोपाः ये पणयः तं रक्षन्ति) रक्षाकार्यमें अत्यंत समर्थ जो ये पणिलोग हैं, वे इस निधि–कोषकी रक्षा करते हैं। (रेकु पदं अलकं आ जगन्थ) गायोंके द्वारा शब्दायमान वा शंकास्पद इस स्थानको तू व्यर्थही आई है ॥ ७ ॥

[१२५४] [सरमा बोली-] — (सोमशिताः नवग्वाः अङ्गिरसः अयास्यः ऋषयः) सोमपानसे प्रमत्त होकर नवनव–नव मार्गोंसे गति करनेवाले अंगिरस और अयास्य ऋषि (इह आ गमन्) तुम्हारे स्थानमें आवेंगे। आकर, (ते एतं गो ऊर्वं वि भजन्त) वे इन सब गायोंका भाग करके ले जायंगे। (अथ पणयः एतत् इत् वचः वमन्) और हे पणिओ ! उस समय तुम्हें यह दर्पित त्याग करनी पडेगी ॥ ८ ॥

एवा च त्वं सरम आजगन्थ प्रबाधिता सहसा दैव्येन ।
स्वसारं त्वा कृणवै मा पुनर्गा अप ते गवां सुभगे भजाम ९
नाहं वेद भ्रातृत्वं नो स्वसृत्व-मिन्द्रो विदुरङ्गिरसश्च घोराः ।
गोकामा मे अच्छदयन् यदाय-मपात इत पणयो वरीयः १०
दूरमित पणयो वरीय उद्गावो यन्तु मिनतीर्ऋतेन ।
बृहस्पतिर्या अविन्दन्निगूळ्हाः सोमो ग्रावाण ऋषयश्च विप्राः ११ [६] (१२५७)

(१०९)

७ जुहूर्ब्रह्मजाया, ब्राह्मः ऊर्ध्वनाभा वा । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप्, ६-७ अनुष्टुप् ।

तेऽवदन् प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषे ऽकूपारः सलिलो मातरिश्वा ।
वीळुहरास्तप उग्रो मयोभू-रापो देवीः प्रथमजा ऋतेन १
सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छदहृणीयमानः ।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसी-दग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय २

[१२५५] [पणि बोले-]— हे (सरमे) सरमा ! (त्वं एव च दैव्येन सहसा प्रबाधिता) तू इस प्रकार देवोंके बलसे बाधित हो डरकर (आजगन्थ) यहां आई हैं, तब (त्वा स्वसारं कृणवै) तुझे हम भगिनीके समान अपनीही समझते हैं। (पुनः मा गाः) तुम अब यहांसे इन्द्रके पास नहीं लौटना । हे (सुभगे) सुंदरी ! (ते गवां भजाम) हम तुझे भी गोधनका भाग कर देते हैं ॥ ९ ॥

[१२५६] [सरमा बोली-]— हे (पणयः) पणिओ ! (अहं भ्रातृत्वं न वेद) मैं भ्रातृत्वका संबंध नहीं समझ सकती और (नो स्वसृत्वं) भगिनीकी कथा भी नहीं जानती। (इन्द्रः घोराः अंगिरसः च विदुः) इन्द्र और भयंकर पराक्रमी अंगिरसही जानते हैं। (यत् आयम्) इस स्थानसे जब मैं फिर इन्द्रादिके पास जाऊंगी (मे गोकामाः अच्छदयन्) तब मेरी गायोंकी इच्छा करनेवाले वे तुम्हारे स्थानपर आक्रमण करेंगे; (अतः वरीयः अप इत) इसलिये यहांसे बहुत दूर भाग जाओ ॥ १० ॥

[१२५७] हे (पणयः) पणिओ ! तुम (वरीयः दूरं इत) बहुत दूरतक भाग जाओ । (गावः ऋतेन मिनतीः उत् यन्तु) गायें तेजसे अन्धकारको नाश करती हुई ऊपर चलीं जांय। (निगूढाः याः बृहस्पतिः अविन्दत्) अत्यंत गुप्तरीतिसे रखी हुई जिन गायोंको बृहस्पति प्राप्त करता हैं, और (सोमः ग्रावाणः विप्राः ऋषयः च) सोम, सोमाभिषव कर्ता पत्थर, ऋषिलोग और मेधावीजन यह बात जान गये हैं ॥ ११ ॥

[१०९]

[१२५८] (प्रथमाः ते ब्रह्म किल्बिषे अवदन्) वे प्रमुख देव बृहस्पतिके पापके विषयमें बतलाते हैं । (अकूपारः सलिलः मातरिश्वा वीडुहराः) दूर स्थित सूर्य, जल देवता वरुण व्यापक वायु तेजसे युक्त हैं । (उग्रः तपः मयोभूः आपः देवीः ऋतेन प्रथमजाः) उग्ररूप सूर्य, सुखदायक सोम और दिव्य गुणयुक्त जल, सत्यसे ही सबसे प्रथम प्रकट हुए ॥ १ ॥

[१२५९] (प्रथमः राजा सोमः अहृणीयमानः ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छत्) मुख्य राजा सोमने पवित्र-चरित्रा बृहस्पतीके स्त्रीको बृहस्पतीको प्रकट रीतिसे दिया । (वरुणः मित्रः च अनु-अर्तिता आसीत्) वरुण और मित्रने उसे अनुमोदन किया । अनन्तर (होता अग्निः हस्तगृह्य आ निनाय) होम निष्पादक अग्निने हाथसे पकडकर पत्नीको लाया ॥ २ ॥

हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेयमिति चेदवोचन् ।
न दूताय प्रह्ये तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य　३
देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्तऋषयस्तपसे ये निषेदुः ।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन्　४
ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम् ।
तेन जायामन्वविन्दद्बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वं न देवाः　५
पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या उत ।
राजानः सत्यं कृण्वाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः　६
पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वी देवैर्निकिल्बिषम् ।
ऊर्जं पृथिव्या भक्त्वायोरुगायमुपासते　७ [७] (१२६४)

[१२६०] [देव बृहस्पतिको कहते हैं-]— हे बृहस्पति ! (अस्याः आधिः हस्तेन ग्राह्यः) इसके शरीरको हाथसे ग्रहण करना योग्य ही है । (इयं ब्रह्मजाया इति च अवोचन्) यह बृहस्पतिकी यथाविधि विवाहित पत्नी है, ऐसा सबने कहा । (इत् एषा प्रह्ये दूताय तथा न तस्थे) इसे खोजनेके लिये भेजा गया दूतके प्रति यह अनासक्त रही । जैसे (क्षत्रियस्य गुपितं राष्ट्रं) बलवान् राजाका राज्य सुरक्षित रहता है, वैसेही इसका सतीत्व सुरक्षित रहा ॥ ३ ॥

[१२६१] (ये सप्तऋषयः तपसे निषुदुः) जो तत्त्वदर्शी सात ऋषि तपस्यामें प्रवृत्त हुए थे उन्होंने और (पूर्वे देवाः एतस्यां अवदन्त) प्राचीन देवोंने इसके विषयमें यह कहा है कि यह अत्यन्त शुद्धचरित्रा है । (ब्राह्मणस्य उपनीता जाया भीमा) बृहस्पतिके समीप ले गई यह स्त्री-पत्नी अत्यंत शक्तिशालिनी-उग्र है । (परमे व्योमन् दुर्धां दधाति) परम रक्षा-बल परही अर्थात् तपस्या और सच्चरित्रासेही निकृष्ट भी उत्तम स्थानमें स्थापित होता है ॥ ४ ॥

[१२६२] हे (देवाः) देवो ! (ब्रह्मचारी विषः वेविषत् चरति) सर्वत्र व्यापक बृहस्पति स्त्रीके अभावमें ब्रह्मचर्यका पालन करता हुआ सब जगह विचरण करता है । (सः देवानां एकं अङ्गं भवति) वह देवोंका एकमात्र अंग बनता है । (तेन बृहस्पतिः जायां अन्वविन्दत्) इसी कारण बृहस्पतिने जुहू नामकी पत्नीको प्राप्त किया, जैसे (सोमेन नीतां जुह्वं न) पहले सोमके हाथसे भार्याको पाया था ॥ ५ ॥

[१२६३] इस प्रकार (देवाः पुनः उत मनुष्याः पुनः ब्रह्मजायां ददुः) देवों और मनुष्योंने पुनः पुनः बृहस्पतिको उसकी पत्नीको समर्पित किया । (सत्यं कृण्वानाः राजानः पुनः ददुः) यथार्थ कृत्य करनेवाले राजाओंने भी पुनः उसे शुद्ध चरित्रा पत्नीको समर्पित किया ॥ ६ ॥

[१२६४] (देवैः ब्रह्मजायां निकिल्बिषं कृत्वी पुनः दाय) देवोंने बृहस्पतिके पत्नीको निष्पाप करके फिर उसे समर्पित किया । (पृथिव्याः ऊर्जं भक्त्वाय उरुगायं उपासते) अनन्तर पृथिवीका सर्वश्रेष्ठ अन्न विभक्त करके सेवन करके स्तुत्य प्रभुकी-यज्ञकी उपासना करते हैं ॥ ७ ॥

(११०)

११ जमदग्निर्भार्गवः, जामदग्न्यो रामो वा । आप्रीसूक्तं = (१ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीर्द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः) । त्रिष्टुप् ।

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान् यजसि जातवेदः ।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान् त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः १
तनूनपात् पथ ऋतस्य यानान् मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व ।
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन् देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः २
आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चा ऽऽ याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः ।
त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान् यक्षीषितो यजीयान् ३
प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम् ।
व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् ४ (११६८)
व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः ।
देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ५ [८]

[११०]

[१२६५] हे (जातवेदः) ज्ञानी अग्नि ! (देवः मनुषः दुरोणे अद्य समिद्धः देवान् यजसि) अपने तेजसे दीप्तिमान् तू मनुष्यके गृहमें आज इस कर्ममें प्रज्वलित होकर देवोंकी पूजा करता है । हे (मित्रमहः) मित्रोंका सत्कार करनेवाले अग्नि ! (चिकित्वान् आ वह च) ज्ञानवान् होकर तू देवोंको हमारे इस यज्ञमें ले आ । और (कविः प्रचेताः त्वं दूतः असि) क्रान्तदर्शी और उत्तम चित्तवाला तू देवोंका हितकर्ता दूत है ॥ १ ॥

[१२६६] हे (तनूनपात्) तनूनपात् अग्नि ! हे (सुजिह्व) शोभनीय अग्नि ! (ऋतस्य यानान् पथः मध्वा समञ्जन् स्वदय) यज्ञके जानेयोग्य मार्गोंको मधुर रीतिसे प्रकट करता हुआ तू हवि आदिका आस्वाद ले । और (धीभि मन्मानि उत यज्ञं ऋन्धन्) कर्मोंके साथ मननीय स्तोत्रों और हवियुक्त यज्ञक समृद्ध करता हुआ (नः अध्वरं देवत्रा कृणुहि) तू हमारे यज्ञको देवोंके पास पहुंचे, ऐसा कर ॥ २ ॥

[१२६७] हे (अग्ने) अग्नि ! (त्वं आजुह्वानः ईड्यः वन्द्यः वसुभिः सजोषाः आ याहि) तू देवोंको बुलानेवाला, प्रार्थनीय और स्तुत्य- वंद्य है; देवोंके साथ प्रसन्न चित्तसे युक्त होकर हमारे पास आ । हे (यह्वः) महान् देव ! (त्वं देवानां होता असि) तू देवोंके होता है । (सः यजीयान् इषितः यक्षि) वह तू सबसे श्रेष्ठ दाता प्रार्थित होकर देवोंके लिये यज्ञ कर ॥ ३ ॥

[१२६८] (अह्नाम् अग्रे अस्याः पृथिव्याः वस्तोः) दिनोंके प्रारंभमें- प्रातःकालमें इस पृथिवीको आच्छादित करनेके लिये, (प्रदिशा प्राचीनं बर्हिः वृज्यते) मंत्रोच्चारणसे पूर्वमूल करके कुशको लाया जाता है । (वितरं वरीयः विप्रथते उ) विस्तीर्ण और उत्कृष्ट वह कुश वेदीपर विस्तृत किया जाता है । (देवेभ्यः अदितये स्योनम्) वे देवों और पृथिवीके लिये सुखकर होते हैं ॥ ४ ॥

[१२६९] (शुम्भमानाः जनयः न पतिभ्यः वि श्रयन्ताम्) जैसे उत्तम आभूषणों-वस्त्रोंसे सजकर स्त्रियां अपने पतियोंके पास आश्रयके लिये, सुख प्रदान करनेके लिये जाती हैं; वैसे ही (द्वारः देवीः व्यचस्वतीः उर्विया) इन सब सुनिर्मित द्वारोंकी अभिमानिनी देवियां विशेष विस्तृत विशाल हो जाय- विस्तृतरूपसे खुल जाय । हे (बृहतीः) महान् ! हे (विश्वमिन्वाः) सबको प्रसन्न और सुखी करनेवाली द्वार देवताओ ! (देवेभ्यः सुप्रायणाः भवत) तुम देवता सरलतासे जा सकें, इस प्रकार खुल जाओ ॥ ५ ॥

आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने ६
दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै ।
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ७
आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विळा मनुष्वदिह चेतयन्ती ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनं सरस्वती स्वपसः सदन्तु ८
य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंशद्भुवनानि विश्वा ।
तमद्य होतरिषितो यजीयान् देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ९
उपावसृज त्मन्या समञ्जन् देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि ।
वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन १०

[१२७०] (सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता) सुखपूर्वक उत्तम मार्गसे जानेवाली- सदाचारसे युक्त यज्ञार्ह, समीप रहनेवाली उषा और रात्री देवियां (योनौ नि आ सदताम्) यज्ञस्थानमें बैठें । (दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे शुक्रपिशं) वे दोनों दिव्य लोक वासिनी स्त्रीके समान अत्यन्त गुणवती, उत्तम आभूषणादिसे सुशोभित और कान्तियुक्त (श्रियं अधि दधाने) तेजस्वी रूपवाली सौंदर्यको धारण करनेवाली हैं ॥ ६ ॥

[१२७१] (दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मनुषः यजध्यै) शुभ गुणोंसे युक्त दिव्य होता- अग्नि और आदित्य जो श्रेष्ठ, उत्तम वेदमंत्रोंके स्तोत्रोंके ज्ञाता, मनुष्यके लिये यज्ञको निर्माण करनेवाले, देव पूजाके लिये (यज्ञं मिमाना विदथेषु) यज्ञका अनुष्ठान करनेवाले, अपने यज्ञों और अनुष्ठानादि सत्कार्योंमें (प्रचोदयन्ता कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता) सबको प्रेरित करते हैं; वे क्रिया-कुशल, स्तुतियोंके कर्ता, पूर्व दिशाके प्रकाशको उत्कृष्ट रीतिसे उत्पन्न करते हैं ॥ ७ ॥

[१२७२] (भारती नः यज्ञं तूयं आ एतु) भारती देवी-सूर्य दीप्ति-हमारे यज्ञमें शीघ्र आवे । (मनुष्यवत् चेतयन्ती इळा इह) मनुष्यके समान इस यज्ञकी बातका स्मरण करके इला देवी यहां आगमन करे । और (सरस्वती) सरस्वती देवी भी तुरंत आवे । (स्वपसः तिस्रः देवीः इदं बर्हिः स्योनं आ सदन्तु) उत्तम कर्म करनेवाली ये तीनों देवियां इस यज्ञमें आकर सुखप्रद आसनपर बैठें ॥ ८ ॥

[१२७३] (यः जनित्री इमे द्यावापृथिवी रूपैः अपिंशत्) जो त्वष्टा देव विश्वको उत्पन्न करनेवाले इन द्यावापृथिवीको अनेक प्रकारके रूपोंसे सुशोभित करता है, और (विश्वा भुवनानि) जो सब भुवनोंको नाना पदार्थोंसे सुशोभित करता है, हे (होतः) होता ! (विद्वान् इषितः यजीयान् इह अद्य तं त्वष्टारं देवं यक्षि) तू ज्ञाता, उत्तम कामनावाला और यज्ञशील है, इसलिये इस यज्ञमें आज उस त्वष्टा देवकी यथायोग्य उपासना-पूजा कर ॥ ९ ॥

[१२७४] हे यूप ! (त्मन्या ऋतुथा देवानां पाथः) तू स्वयं स्वसामर्थ्यसे ऋतुओंके अनुसार देवोंके लिये अन्न आदि और (हवींषि समञ्जन् उप अवसृज) अन्य होमीय द्रव्य उत्तम प्रकारसे लाकर प्रदान कर । (वनस्पतिः शमिता देवः अग्निः मधुना घृतेन हव्यं स्वदन्तु) वनस्पति, शमिता देव और अग्नि मधुर घृतसे हविका आस्वादन करें ॥ १० ॥

सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत् पुरोगाः ।
अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः ११ [९] (१२७५)

(१११)

१० वैरूपोऽष्टादंष्ट्रः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

मनीषिणः प्र भरध्वं मनीषां यथायथा मतयः सन्ति नृणाम् ।
इन्द्रं सत्यैरेरयामा कृतेभिः स हि वीरो गिर्वणस्युर्विदानः १
ऋतस्य हि सदसो धीतिरद्यौत् सं गार्ष्टेयो वृषभो गोभिरानट् ।
उदतिष्ठत् तविषेणा रवेण महान्ति चित् सं विव्याचा रजाँसि २
इन्द्रः किल श्रुत्या अस्य वेद स हि जिष्णुः पथिकृत् सूर्याय ।
आन्मेनां कृण्वन्नच्युतो भुवद्गोः पतिर्दिवः सनजा अप्रतीतः ३
इन्द्रो मह्ना महतो अर्णवस्य व्रतामिनादङ्गिरोभिर्गृणानः ।
पुरूणि चिन्नि तताना रजाँसि दाधार यो धरुणं सत्यताता ४

[१२७५] (सद्यः जातः अग्निः यज्ञं वि अमिमीत) उत्पन्न होते ही अग्निने यज्ञका निर्माण किया । वह (देवानां पुरोगाः अभवत्) देवोंका अग्रणी हुआ । अनन्तर (अस्य ऋतस्य प्रदिशि होतुः वाचि) इस यज्ञके प्रमुख स्थानमें होताकी इच्छानुरूप वेदमंत्रका उच्चारण हों । (स्वाहाकृतं हविः देवाः अदन्तु) स्वाहाकारसे अग्निमें अर्पण किया हुआ हवि देव भक्षण करें ॥ ११ ॥

[१११]

[१२७६] हे (मनीषिणः) स्तोताओ ! (यथायथा नृणां मतयः सन्ति, मनीषां प्र भरध्वम्) जैसी जैसी मनुष्योंकी बुद्धियां होती हैं, वैसी वैसीही स्तुति करो । (सत्यैः कृतेभिः इन्द्रं आ ईरयाम) हम यथार्थ स्तोत्रोंसे इन्द्रको अपनी ओर आकर्षित करते हैं । (सः हि वीरः विदानः गिर्वणस्युः) वह बलशाली और ज्ञाता है, इसलिये वह स्तोता भक्तोंको चाहता है ॥ १ ॥

[१२७७] (ऋतस्य सदसः धीतिः अद्यौत् हि) जल स्थानका–अन्तरिक्षका धारक वह इन्द्र प्रकाशता है यह प्रसिद्ध है । (गार्ष्टेयः वृषभः गोभिः सं आनट्) तरुण गायके उत्पन्न वृषभ जिस प्रकार गौओंके साथ मिलता है, उस प्रकार हो (तविषेण रवेण उत् अतिष्ठत्) वह बडे गर्जनसे सबसे ऊपर विराजता है, और (महान्ति चित् रजांसि सं विव्याच) महान् लोकोंको भी व्यापता है ॥ २ ॥

[१२७८] (अस्य श्रुत्यै इन्द्रः किल वेद) इस स्तोत्रका श्रवण इन्द्रही जानता है । (सः हि जिष्णुः, सूर्याय पथिकृत्) वही जयशील है और उसनेही सूर्यका मार्ग बनाया है । (अच्युतः मेनां कुर्वन् आत्) अविनाशी, विजयी इन्द्रने सेनाको प्रकट किया और यज्ञमें आगमन किया । (दिवः गोः पतिः भुवत्) वह स्वर्गके प्रभु और गायोंके स्वामी हुआ । (सनजाः अप्रतीतः) वह चिरंतन और सबसे अधिक शक्तिशाली है ॥ ३ ॥

[१२७९] (इन्द्रः अंगिरोभिः गृणानः महतः अर्णवस्य) इन्द्रने अंगिरोंसे स्तुत होकर महान् जलपूर्ण मेघका (व्रता मह्ना अमिनात्) कार्य अपने महान् सामर्थ्यसे नष्ट किया । और (पुरूणि चित् रजांसि नि ततान) उसनेही विपुल जल निर्माण किया, (यः सत्यताता धरुणं दाधार) जो सत्यरूप द्युलोकमें सबके धारक बलको धारण किया ॥४॥

इन्द्रो दिवः प्रतिमानं पृथिव्या विश्वा वेद सवना हन्ति शुष्णम् ।
महीं चिद् द्यामातनोत् सूर्येण चास्कम्भ चित् कम्भनेन स्कभीयान् ५ [१०]

वज्रेण हि वृत्रहा वृत्रमस्त- रदेवस्य शूशुवानस्य मायाः ।
वि धृष्णो अत्र धृषता जघन्था- ऽथाभवो मघवन् बाह्वोजाः ६ (११८१)

सचन्त यदुषसः सूर्येण चित्रामस्य केतवो रामविन्दन् ।
आ यन्नक्षत्रं ददृशे दिवो न पुनर्यतो नकिरद्धा नु वेद ७

दूरं किल प्रथमा जग्मुरासा- मिन्द्रस्य याः प्रसवे सस्रुरापः ।
क्व स्विदग्रं क्व बुध्न आसा- मापो मध्यं क्व वो नूनमन्तः ८

सृजः सिन्धूँरहिना जग्रसानाँ आदिदेताः प्र विविज्रे जवेन ।
मुमुक्षमाणा उत या मुमुच्रे ऽधेदेता न रमन्ते नितिक्ताः ९

[१२८०] (इन्द्रः दिवः पृथिव्याः प्रतिमानं विश्वा सवना वेद) इन्द्र द्युलोक और पृथिवी दोनोंका प्रतिनिधि है, इसलिये वह समस्त यज्ञोंको जानता है। वह (शुष्णं हन्ति) शुष्ण-तापका वध करता है। (महीं चित् द्यां सूर्येण आ-अतनोत्) वह सूर्यके द्वारा विस्तृत आकाश और पृथ्वीको प्रकाशित करता है- वृष्टि, अन्न आदिसे सम्पन्न करता है। (स्कभीयान् स्कम्भनेन चित् चास्कम्भ) संस्थापकोंमें अत्यंत श्रेष्ठ संस्थापकने सब विश्वको ऊपर धारण कर रखा है ॥ ५ ॥

[१२८१] हे इन्द्र ! (वृत्रहा वज्रेण वृत्रम् अस्तः) वृत्रहन्ता तुमने वज्रसे वृत्रका वध किया है। हे (धृष्णो) धर्षणशील इन्द्र ! (अदेवस्य शूशुवानस्य मायाः धृषता अत्र वि जघन्थ) अज्ञानी अप्रकाशित और वर्धिष्णु उसकी कुटिल मायाओंको समर्थ वज्रके द्वारा यहां तुमने विनष्ट कर डाला। (अथ) और हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! अनन्तर (बाहु-ओजाः अभवः) बाहुओंमें बल-पराक्रम युक्त हुआ ॥ ६ ॥

[१२८२] (यत् उषसः सूर्येण सचन्त) जब उषाएं सूर्यके साथ मिलती हैं, तब (अस्य केतवः चित्रां रां अविन्दन्) सूर्यकी किरणोंने आश्चर्यकारक अद्भुत वर्णोंकी शोभा प्राप्त की। (पुनः यत् दिवः नक्षत्रं न ददृशे) अनन्तर जब आकाशमें नक्षत्र नहीं दिखाई देता, तब (यतः नकिः नु वेद अद्धा) सर्वगामी सूर्यकी किरणोंको कोई भी नहीं जानता; यह सत्य है ॥ ७ ॥

[१२८३] (याः आपः इन्द्रस्य प्रसवे सस्रुः) जो जल इन्द्रकी आज्ञासे बहने लगा था, (आसां प्रथमाः दूरं किल जग्मुः) उनमेंसे प्रारम्भ दशामेंही पहलेका जल बहुत दूर गया था। हे (आपः) उदक ! (आसां अग्रं क्व स्वित्) तुम्हारा आरम्भका अग्रका भाग कहां है ? (बुध्नः क्व) मूलभाग कहां है ? और (वः मध्यं क्व) तुम्हारा मध्यभाग कहां है ? और (नूनं अन्तः) निश्चयसे अन्तभाग कहां है ? ॥ ८ ॥

[१२८४] हे इन्द्र ! (अहिना जग्रसानान् सिन्धून् सृजः) जब वृत्रासुरसे ग्रसी हुई जलधाराओंको-नदियोंको तुमने मुक्त-प्रकट किया, (आत् इत् एताः जवेन प्र विविज्रे) तब वे बडे जोरसे-वेगसे सर्वत्र बहने लगीं। (उत याः मुमुक्षमाणाः मुमुच्रे) और जो इन्द्रकी इच्छासे मुक्त हो जाती हैं, (एताः अधेत् नितिक्ताः न रमन्ते) वे अनन्तर अत्यंत शुद्ध जलयुक्त होकर बडे वेगसे एक स्थान पर नहीं ठहरतीं ॥ ९ ॥

सध्रीचीः सिन्धुमुशतीरिवायन् त्सनाज्जार आरितः पूर्भिदासाम् ।
अस्तमा ते पार्थिवा वसून्यस्मे जग्मुः सूनृता इन्द्र पूर्वीः १० [११] (१२८५)

(११२)

१० वैरूपो नभःप्रभेदनः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्र पिब प्रतिकामं सुतस्य प्रातःसावस्तव हि पूर्वपीतिः ।
हर्षस्व हन्तवे शूर शत्रूनुक्थेभिष्टे वीर्या३ प्र ब्रवाम १
यस्ते रथो मनसो जवीयानेन्द्र तेन सोमपेयाय याहि ।
तूयमा ते हरयः प्र द्रवन्तु येभिर्यासि वृषभिर्मन्दमानः २
हरित्वता वर्चसा सूर्यस्य श्रेष्ठै रूपैस्तन्वं स्पर्शयस्व ।
अस्माभिरिन्द्र सखिभिर्हुवानः सध्रीचीनो मादयस्वा निषद्य ३
यस्य त्यत ते महिमानं मदे॒ष्विमे मही रोदसी नाविविक्ताम् ।
तदोक आ हरिभिरिन्द्र युक्तैः प्रियेभिर्याहि प्रियमन्नमच्छ ४

[१२८५] (सध्रीचीः सिन्धुं उशतीः इव आयन्) एक साथ मिलकर बहनेवाली नदियां -जलधाराएं, कामातुरा स्त्रियोंके समान, समुद्रको प्राप्त हो जाती हैं। (जारः पूर्भित् सनात् आसाम् आरितः) शत्रुओंको शिथिल करनेवाला और शत्रुओंके नगरियोंका विनाशक इन्द्र सदाही इन जलोंके स्वामी है। हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अस्मे पार्थिवा वसूनि पूर्वीः सूनृताः ते अस्तं आ जग्मुः) हमें पृथिवीपरके अनेक प्रकारके ऐश्वर्यसंपत्ति, प्राचीन मधुर स्तोत्र और गृह प्राप्त हो ॥ १० ॥

[११२]

[१२८६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (सुतस्य प्रतिकामं पिब) अभिषव किये हुए सोम रसको अपनी इच्छानुसार पान कर। (तव हि प्रातः सावः पूर्वपीतिः) प्रातः कालमें प्रस्तुत सोम सबसे प्रथम तेरा ही है। तेरा ही सबसे पूर्व पान करना उचित है। हे (शूर) वीर इन्द्र ! तू (शत्रून् हन्तवे हर्षस्व) शत्रुओंके वधके लिये उत्साहित हो। (ते वीर्या उक्थेभिः प्र ब्रवाम) तेरे पराक्रमोंका वर्णन हम वेदमंत्रोंसे करते हैं ॥ १ ॥

[१२८७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (मनसः जवीयान् ते यः रथः तेन सोमपेयाय आ याहि) मनसे भी अत्यंत वेगवान् जो तेरा रथ है, उससे तू हमारा सोम प्राप्त करनेके लिये पीनेके लिये आ। (ते हरयः तूयं आ प्र द्रवन्तु) तेरे रथके अश्व शीघ्रही आगे वेगसे आवें। (येभिः वृषभिः मन्दमानः यासि) जिन बलवान् घोडोंसे प्रसन्न चित्त होकर तू जाता है ॥ २ ॥

[१२८८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (हरित्वता सूर्यस्य वर्चसा श्रेष्ठैः रूपैः तन्वं स्पर्शयस्व) सुवर्णके समान सूर्यके तेजसे और उत्तमोत्तम रूपोंसे तू अपने शरीरको विभूषित कर। (अस्माभिः सखिभिः सध्रीचीनः हुवानः निषद्य मादयस्व) हम मित्रोंसे बुलाया जाता हुआ देवोंके साथ तू सदा हमारे साथ रहकर इस यज्ञमें बैठ और सोमपानसे प्रसन्न हो ॥ ३ ॥

[१२८९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यस्य ते मदेषु त्यत् महिमानं इमे मही रोदसी न अविविक्ताम्) जिस तेरे सोमपानसे मत्त होनेपर महिमा होती है, तेरे उस महिमाको सामर्थ्यको, ये महती द्यावा-पृथिवी भी आकलन नहीं कर सकतीं। (प्रियेभिः युक्तैः हरिभिः प्रियं अन्नं अच्छ तदोकः आ याहि) तू अपने प्रिय घोडोंको रथमें जोतकर, प्रीतिकारक अन्नको सोमयुक्त यज्ञ-सामग्रीको लक्ष्य करके हमारे यज्ञस्थानमें आओ ॥ ४ ॥

यस्य॒ शश्व॑त् पपि॒वाँ इ॑न्द्र॒ शत्रू॑ननानुकृ॒त्या रण्या॑ च॒कर्थ॑ ।
स ते॒ पुरं॑धिं तवि॒षीमि॑यर्ति॒ स ते॒ मदा॑य सु॒त इ॑न्द्र॒ सोम॑: ५ [१२]

इ॒दं ते॒ पात्रं॒ सन॑वित्तमिन्द्र॒ पिबा॒ सोम॑मे॒ना श॑तक्रतो ।
पू॒र्ण आ॑हा॒वो म॑दि॒रस्य॒ मध्वो॒ यं विश्व॒ इद॑भि॒हर्य॑न्ति दे॒वाः ६

वि हि त्वामि॑न्द्र पुरु॒धा जना॑सो हि॒तप्र॑यसो वृषभ॒ ह्वय॑न्ते ।
अ॒स्माकं॑ ते॒ मधु॑मत्तमानी॒मा भु॑व॒न्त्सव॑ना॒ तेषु॑ हर्य ७

प्र ते॑ इन्द्र॒ पूर्व्या॑णि॒ प्र नू॒नं वी॒र्या॑ वोचं प्रथ॒मा कृ॒तानि॑ ।
स॒तीन॑मन्युरश्रथा॒यो अद्रिं॑ सुवे॒दना॑मकृणो॒र्ब्रह्म॑णे॒ गाम् ८ (१२९३)

नि षु सी॑द गणपते ग॒णेषु॒ त्वामा॑हु॒र्विप्र॑तमं क॒वीना॑म् ।
न ऋ॒ते त्वत् क्रि॑यते॒ किं च॒नारे म॒हाम॒र्कं म॑घवञ्चि॒त्रम॑र्च ९

अ॒भि॒ख्या नो॑ मघव॒न् नाध॑माना॒न् त्सखे॑ बो॒धि व॑सुपते॒ सखी॑नाम् ।
रणं॑ कृधि रणकृत् सत्यशुष्मा ऽभ॑क्ते चि॒दा भ॑जा रा॒ये अ॒स्मान् १० [१३] (१२९५)

[१२९०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यस्य पपिवान् अनानुकृत्या रण्या शत्रून् शश्वत् चकर्थ) जिसका सोमपान करके तू आश्चर्यकारक युद्धोपयोगी साधनोंसे हर्षयुक्त होकर, शत्रुओंका बार बार नाश करता है, (सः सोमः ते मदाय सुतः) वह सोम तेरे आनंदके लिये ही अभिषुत किया गया है । (सः ते तविषीं पुरंधिं इयर्ति) वह यजमान तेरे लिये ही उत्तम स्तुति प्रेरित करता है ॥ ५ ॥

[१२९१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! हे (शतक्रतो) सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्र ! (इदं ते सनवित्तम् पात्रं) यह तेरा चिरकालसे ही प्राप्त पात्र है । (एना सोमं पिब) इससे सोमका पान कर । (मदिरस्य मध्वः आहावः पूर्णः) यह मदकर और मधुर सोमरससे परिपूर्ण भरा हुआ है । (यं इत् विश्वे देवाः अभिहर्यन्ति) जिसको सब देव भी सदा चाहते हैं ॥ ६ ॥

[१२९२] हे (इन्द्र) तेजस्वी ! हे (वृषभ) कामनाओंके वर्षक ! (हितप्रयसः जनासः पुरुधा त्वां वि ह्वयन्ते) हविर्युक्त भक्तजन अनेक प्रकारोंसे तेरीही स्तुति करके तुझेही बुलाते हैं । (अस्माकं इमा सवना ते मधुमत्तमानी भुवन्) हमारे ये यज्ञकर्म तेरेही लिये बहुत मधुर सोमरससे युक्त हैं । इसलिये तू (तेषु हर्य) उनमें प्रसन्न हो ॥ ७ ॥

[१२९३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते प्रथमा कृतानि पूर्व्याणि वीर्या नूनं प्र वोचम्) तेरे सबसे पूर्व किये उत्तम कर्मोंको, पुरातन पराक्रमोंको अभी मैं वर्णन करता हूं (सतीनमन्युः अद्रिं अश्रथयः) जलकी वर्षा करनेके लिये तुमने मेघको वज्रसे फोडा था, और (ब्रह्मणे गां सुवेदनां अकृणोः) बृहस्पतिके लिये गायकी प्राप्ति सुलभ कर दी थी ॥ ८ ॥

[१२९४] हे (गणपते) संघोंके स्वामिन् ! (गणेषु नि सु सीद) गणोंके बीचमें स्तुति सुननेके लिये बैठ । (कवीनां त्वां विप्रतमं आहुः) क्रान्तदर्शी विद्वानोंके बीच तुझको सर्वश्रेष्ठ विद्वान् कहते हैं । (त्वत् ऋते किं चन आरे न क्रियते) तेरे बिना कुछ भी क्या समीप क्या दूर नहीं किया जाता है । हे (मघवन्) धनवान इन्द्र ! तू (महां अर्कं चित्रं अर्च) महान्, पूज्य, स्तुत्य, अर्चनीय हमारे स्तोत्रको नानारूपवाला कर ॥ ९ ॥

[१२९५] हे (मघवन्) धनवन् इन्द्र ! (नः नाधमानान् अभिख्या) हम याचना करनेवालोंको तेजयुक्त वा प्रसिद्ध कर । हे (सखे) मित्र ! हे (वसुपते) धनोंके स्वामी ! तू हम (सखीनाम् बोधि) अपने मित्रोंके स्तोत्रोंको जान । हे (रणकृत्) युद्धकर्ता ! हे (सत्य शुष्म) सत्यके बलवाले ! तू (रणं कृधि) युद्ध कर । (अभक्ते चित् अस्मान् राये आ भज) अप्राप्य स्थानमें भी हमें ऐश्वर्यके भागी कर ॥ १० ॥

(११३) [दशमोऽनुवाकः ॥१०॥ सू० ११३-११८]

१० वैरूपः शतप्रभेदनः । इन्द्रः । जगती, १० त्रिष्टुप् ।

तमस्य द्यावापृथिवी सचेतसा विश्वेभिर्देवैरनु शुष्ममावताम् ।
यदैत् कृण्वानो महिमानमिन्द्रियं पीत्वी सोमस्य क्रतुमाँ अवर्धत १
तमस्य विष्णुर्महिमानमोजसां ऽशुं दधन्वान् मधुनो वि रप्शते ।
देवेभिरिन्द्रो मघवा सयावभि र्वृत्रं जघन्वाँ अभवद्वरेण्यः २
वृत्रेण यदहिना बिभ्रदायुधा समस्थिथा युधये शंसमाविदे ।
विश्वे ते अत्र मरुतः सह त्मना ऽवर्धन्नुग्र महिमानमिन्द्रियम् ३
जज्ञान एव व्यबाधत स्पृधः प्रापश्यद्वीरो अभि पौंस्यं रणम् ।
अवृश्चदद्रिमव सस्यदः सृज दस्तभ्नान्नाकं स्वपस्यया पृथुम् ४
आदिन्द्रः सत्रा तविषीरपत्यत वरीयो द्यावापृथिवी अबाधत ।
अवाभरद्धृषितो वज्रमायसं शेवं मित्राय वरुणाय दाशुषे ५ [१४]

---

[११३]

[१२९६] (सचेतसा द्यावापृथिवी विश्वेभिः देवैः अस्य तं शुष्मं अनु आवताम्) उत्तम्क द्यावापृथिवी सब देवोंके साथ इन्द्रके शत्रुओंके शोषक बलकी रक्षा करें । (कृण्वानः महिमानं इन्द्रियं यत् ऐत्) जब महत् कृत्योंको करनेवाला इंद्र अपनी उत्तम महिमाको सामर्थ्यको प्राप्त करता है, तब (क्रतुमान् सोमस्य पीत्वी अवर्धत) कर्तृत्ववान् वह सोमका पान कर वृद्धिगत हुआ ॥ १ ॥

[१२९७] (विष्णुः मधुनः अंशुं दधन्वान्) विष्णुने मधुर सोमके लताखण्डको प्रेरित कर, (अस्य ओजसा तं महिमानं वि रप्शते) इसके सामर्थ्यसे प्राप्त इन्द्रकी उस महिमाका विविध प्रकारसे वर्णन किया स्तुति की । (मघवा इन्द्रः सयावभिः देवेभिः वृत्रं जघन्वान्) धनवान् इन्द्र सहयोगी देवोंके साथ जाकर वृत्रका वध करके (वरेण्यः अभवत्) सर्वश्रेष्ठ हुआ ॥ २ ॥

[१२९८] (युधये आयुधा विभ्रत् यत् अहिना वृत्रेण सं अस्थिथाः शंसं आविदे) युद्धके लिये अस्त्र-शस्त्रोंको धारण करता हुआ इन्द्र, जब प्रतिकारके लिये सामनेसे आनेवाले शत्रु वृत्रके साथ, संग्राम करता है, तब उसकी प्रसिद्धिके लिये मैं तेरी स्तुति करता हूं । हे (उग्र) प्रबल इन्द्र ! (अत्र ते महिमानं इन्द्रियं विश्वे मरुतः त्मना सह अवर्धन्) इस समयमें तेरे महान् सामर्थ्यको और ऐश्वर्यको सब मरुद्गण एकसाथ अपने पराक्रमसे बढाते हैं ॥ ३ ॥

[१२९९] (जज्ञानः एव स्पृधः व्यबाधत) उत्पन्न होते ही इन्द्रने शत्रुओंको अत्यंत पीडित किया । और (वीरः रणं पौंस्यम् प्रापश्यत्) समर्थ वीर इन्द्र युद्धको लक्ष्य करके अपने पराक्रमको उत्तम रीतिसे प्रकाशित करता है । (अद्रिं अवृश्चत् सस्यदः अव सृजत्) उसने मेघको वृष्टिके लिये छिन्न भिन्न किया, और एक साथ बहनेवाले जलोंको नीचेकी ओर बहा दिया । (स्वपस्यया पृथुम् नाकं सस्तभ्नात्) अपने उत्तम कर्मकौशलसे विस्तृत स्वर्गको स्थिर किया ॥ ४ ॥

[१३००] (आत् इन्द्रः तविषीः सत्रा अपत्यत) और वह इन्द्र बडी सेनाओंके साथ आया (वरीयः द्यावापृथिवी अबाधत) और अपने महान् सामर्थ्यसे द्यावापृथिवीको वशीभूत किया । (धृषितः आयसं वज्रं अवाभरत्) शत्रुओंके वधके लिये आतुर इन्द्रने लोहेके बने हुए अस्त्रको धारण किया । (मित्राय वरुणाय दाशुषे शेवम्) मित्र और वरुणके लिये- मित्रके सुखके जनकको प्रवृद्ध किया ॥ ५ ॥

इन्द्रस्यात्र तविषीभ्यो विरप्शिन ऋघायतो अरंहयन्त मन्यवे ।
वृत्रं यदुग्रो व्यवृश्चदोजसा ऽपो बिभ्रतं तमसा परीवृतम् ६
या वीर्याणि प्रथमानि कर्त्वा महित्वेभिर्यतमानौ समीयतुः ।
ध्वान्तं तमोऽव दध्वसे हत इन्द्रो मह्ना पूर्वहूतावपत्यत ७
विश्वे देवासो अध वृष्ण्यानि ते ऽवर्धयन्त्सोमवत्या वचस्यया ।
रद्धं वृत्रमहिमिन्द्रस्य हन्मना ऽग्निर्न जम्भैस्तृष्वन्नमावयत् ८
भूरि दक्षेभिर्वचनेभिर्ऋक्वभिः सख्येभिः सख्यानि प्र वोचत ।
इन्द्रो धुनिं च चुमुरिं च दम्भयं छ्रद्धामनस्या शृणुते दभीतये ९
त्वं पुरूण्या भरा स्वश्व्या येभिर्मंसै निवचनानि शंसन् ।
सुगेभिर्विश्वा दुरिता तरेम विदो षु ण उर्विया गाधमद्य १० [१५](१३०५)

[१३०१] (अत्र विरप्शिनः ऋघायतः इन्द्रस्यतविषिभ्यः मन्यवे अरंहयन्त) अब विविध शब्द करते गर्जना करते शत्रुओंका बध करनेवाले इन्द्रके बलकी प्रसिद्धी करनेके लिये जल बहने लगा । (उग्रः अपः बिभ्रतं तमसा परीवृतं) उस बलवान् वृत्रने जलोंको धारण करके अन्धकारसे घिरकर रखा था, (यत् वृत्रं ओजसा व्यवृश्चत्) उस समय अत्यंत तेजस्वी इन्द्रने वृत्रको स्वपराक्रमसे मारा था ॥ ६ ॥

[१३०२] (महित्वेभिः यतमानौ प्रथमानि कर्त्वा या वीर्याणि सं ईयतुः) अपने अपने महान् सामर्थ्यसे युद्ध करते हुए इन्द्र और वृत्र प्रथम अपनी वीरता दिखाकर परस्पर युद्ध करने लगे । तब (हते ध्वान्तम् तमः अव दध्वसे) वृत्रके नाश होनेपर अत्यंत घोर अंधकार नष्ट हो गया । (इन्द्रः मह्ना पूर्वहूतौ अपत्यत) तेजस्वी इन्द्र सबसे पूर्व अपने महान् सामर्थ्यसे सबका स्वामी हो गया ॥ ७ ॥

[१३०३] हे इन्द्र ! (अध विश्वे देवासः सोमवत्या वचस्यया) वृत्रवधके अनन्तर सब यज्ञकर्ता ऋत्विज सोमयुक्त स्तुतिसे (ते वृष्ण्यानि अवर्धयन्) तेरे सामर्थ्यको बढाते हैं । (इन्द्रस्य हन्मना रद्धम्) इन्द्रके हनन साधन वज्रसे ताडित (अहिं वृत्रं तृपु अन्नं आवयत्) दुर्द्धर्ष वृत्रको नष्ट कर देनेपर लोगोंने अन्न भक्षण किया, जैसे (अग्निः न जम्भैः) अग्नि अपनी ज्वालाओंसे अन्न भक्षण करता है ॥ ८ ॥

[१३०४] हे स्तोताओ ! (दक्षेभिः ऋक्वभिः सख्येभिः वचनेभिः) उत्कर्षमय वेदमंत्रोंसे युक्त और मित्रके प्रति प्रेमादरसे कहनेयोग्य स्तुतियोंसे (भूरि सख्यानि प्र वोचत) अत्यंत स्नेहभावोंसे युक्त स्तुत्य इन्द्रकी प्रशंसा करो । (इन्द्रः दभीतये धुनिं च चुमुरिं च दम्भयन्) इन्द्रने दभीति राजाके लिये धुनि और चुमुरि नामक असुरोंका बध किया है । (श्रद्धामनस्या शृणुते) वह श्रद्धायुक्त मनसे उत्तम स्तुतिको श्रवण करता है ॥ ९ ॥

[१३०५] हे इन्द्र ! (त्वं पुरूणि सु-अश्व्या आ भर) तू प्रचुर सम्पति और उत्तम अश्वोंसे युक्त सम्पूर्ण ऐश्वर्य मुझे दे; (निवचनानि शंसन् येभिः मंसै) सदा अर्चनास्तोत्रपाठ करता हुआ मैं जिन धनोंकी अभिलाषा करता हूं । (सुगेभिः विश्वा दुरिता तरेम) जिन उत्तम धन या स्तोत्रोंसे हम सब पाप-कष्टोंको पार करें । (अद्य गाधं नः उर्विया सु विदः) आज हम जो स्तोत्र बना रहें हैं, उसे तू प्रेमसे जानकर ध्यानमें ले ॥ १० ॥

(११४)

१० वैरूपः सध्रिः, तापसो धर्मो वा । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप्, ४ जगती ।

घर्मा समन्ता त्रिवृतं व्यापतु- स्तयोर्जुष्टिं मातरिश्वा जगाम ।
दिवस्पयो दिधिषाणा अवेषन् विदुर्देवाः सहसामानमर्कम् १
तिस्रो देष्ट्राय निर्ऋतीरुपासते दीर्घश्रुतो वि हि जानन्ति वह्नयः ।
तासां नि चिक्युः कवयो निदानं परेषु या गुह्येषु व्रतेषु २
चतुष्कपर्दा युवतिः सुपेशा घृतप्रतीका वयुनानि वस्ते ।
तस्यां सुपर्णा वृषणा नि षेदतु- र्यत्र देवा दधिरे भागधेयम् ३
एकः सुपर्णः स समुद्रमा विवेश स इदं विश्वं भुवनं वि चष्टे ।
तं पाकेन मनसापश्यमन्तित- स्तं माता रेळ्हि स उ रेळ्हि मातरम् ४
सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभि- रेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति ।
छन्दांसि च दधतो अध्वरेषु ग्रहान्त्सोमस्य मिमते द्वादश ५ [१६]

---

[११४]

[१३०६] (समन्ता घर्मा त्रिवृतं व्यापतुः) चारों ओर प्रकाशमान् और प्रदीप्त अग्नि और आदित्य देवताओंने तीनों लोकोंको व्याप्त किया है। (मातरिश्वा तयोः जुष्टिं जगाम) अन्तरिक्ष स्थित वायुने उनकी प्रीति प्राप्त की। (सहसामानं अर्कं देवाः विदुः) जब सब तेजोंसे युक्त अर्चनीय सूर्यके तेजको देवोंने प्राप्त किया, तब (दिधिषाणाः दिवः पयः अवेषन्) उन्होंने तीनों लोकोंकी रक्षाके लिये आकाशीय जलकी उत्पत्ति की ॥ १ ॥

[१३०७] (निर्ऋतीः तिस्रः देष्ट्राय उपासते) पृथ्वी, आकाश और द्युलोकमें स्थित- अग्नि, सूर्य और वायुकी हविर्दानके लिये भक्त उपासना करते हैं। अनन्तर (दीर्घश्रुतः वह्नयः वि जानन्ति) मेधावी श्रेष्ठ देव वह उपासना जानते हैं। (कवयः तासां निदानं नि चिक्युः) क्रान्तदर्शी विद्वान् सृष्टि अग्नि आदिका मूल कारण निश्चितरूपसे जानते हैं। (परेषु गुह्येषु व्रतेषु याः) उत्कृष्ट और गुह्य व्रतोंका मूल कारण भी वे जानते हैं ॥ २ ॥

[१३०८] (चतुः कपर्दा युवतिः सुपेशाः घृतप्रतीका वयुनानि वस्ते) चार कोनेवाली, तरुण स्त्रीके समान, उत्तम रूपवालीमें घृतादि हवि अर्पित होते हैं; इसमें स्तोत्रादि सब कर्मज्ञान अन्तर्भूत है। (तस्यां वृषणा सुपर्णा निषेदतु) उसमें हवि अर्पण करनेवाले यजमान और पुरोहित विराजते हैं। (यत्र देवाः भागधेयं दधिरे) इस वेदिमें अग्नि आदि देव अपना अपना हविर्भाग पाते हैं ॥ ३ ॥

[१३०९] (एकः सुपर्णः समुद्रं आ विवेश) एक अद्वितीय पक्षी अन्तरिक्षमें संचार करता हुआ उसमें प्रवेश करता है। (स इदं विश्वं भुवनं वि चष्टे) वह ही इस समस्त जगत्को विशेष रूपसे देखता है। (तं पाकेन मनसा अन्तितः अपश्यम्) उस देवको मैं उपासनाके द्वारा परिपक्व बुद्धिसे समीपसे देखता हूं। (माता रेळ्हि) उसका और माता वाक्का मीलन होनेपर, माताने उसे प्रेमसे अवघ्राण किया; (स उ मातरं रेढि) और वह सत्यही माताके प्रेममें लीन हुआ ॥ ४ ॥

[१३१०] (विप्राः कवयः सुपर्णं एकं सन्तं वचोभिः बहुधा कल्पयन्ति) विद्वान् मेधावी क्रान्तप्रज्ञ लोग उत्तम पालन-पोषण करनेवाले एकमेव अद्वितीय प्रभुकी स्तुति-स्तोत्रोंसे अनेक प्रकारसे कल्पना करते हैं। इतनाही नहीं वे (अध्वरेषु छन्दांसि च दधतः) यज्ञोंमें नाना प्रकारके छन्दोंका उच्चारण करते हैं और (सोमस्य द्वादश ग्रहान् मिमते) प्रभुके बारह (उपांशु, अन्तर्याम आदि) सोम पात्र निर्माण करते हैं ॥ ५ ॥

षट्त्रिंशाँश्च चतुरः कल्पयन्त इछन्दांसि च दधत आद्वादशम् ।
यज्ञं विमाय कवयो मनीष ऋक्सामाभ्यां प्र रथं वर्तयन्ति ६
चतुर्दशान्ये महिमानो अस्य तं धीरा वाचा प्र णयन्ति सप्त ।
आप्नानं तीर्थं क इह प्र वोचद् येन पथा प्रपिबन्ते सुतस्य ७
सहस्रधा पञ्चदशान्युक्था यावद् द्यावापृथिवी तावदित् तत् ।
सहस्रधा महिमानः सहस्रं यावद्ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक् ८
कश्छन्दसां योगमा वेद धीरः को धिष्ण्यां प्रति वाचं पपाद ।
कमृत्विजामष्टमं शूरमाहुर्हरी इन्द्रस्य नि चिकाय कः स्वित् ९
भूम्या अन्तं पर्येके चरन्ति रथस्य धूर्षु युक्तासो अस्थुः ।
श्रमस्य दायं वि भजन्त्येभ्यो यदा यमो भवति हर्म्ये हितः १० [१७] (१३१५)

[१३११] (षट्त्रिंशान् चतुरः च कल्पयन्तः) छत्तीस और चार चालिस प्रकारके सोमपात्र स्थापित करते हैं और (आ द्वादशं छन्दांसि च दधतः) बारह प्रकारके छन्द कहते हुए सोमपात्र रखते हैं। (कवयः मनीषा यज्ञं विमाय) विद्वान लोग इस प्रकार बुद्धिसे यज्ञका निर्माण करके (रथं ऋक् सामाभ्यां प्र वर्तयन्ति) यज्ञ उस रथको ऋग्वेद और सामवेदसे चलाते हैं ॥ ६ ॥

[१३१२] (अस्य अन्ये चतुर्दश महिमानः) इस यज्ञरूप परमेश्वरके और भी चौदह विभूतियां हैं। (तं सप्त धीराः वाचा प्र नयन्ति) उस यज्ञको सात बुद्धिमान् होता स्तुति द्वारा सम्पादन करते हैं। (आप्नानं तीर्थं इह कः प्र वोचत्) उस व्यापक और पवित्र यज्ञमार्गका इस लोकमें कौन वर्णन कर सकता है ? (येन पथा सुतस्य प्रपिबन्ते) जिस सुयोग्य मार्गसे देव सोमपान करते हैं ॥ ७ ॥

[१३१३] (सहस्रधा पञ्चदशानि उक्था) सहस्रोंमें केवल पन्द्रह अंग प्रमुख हैं। (द्यावापृथिवी यावत् तावत् इत् तत्) आकाश और पृथिवी जितने हैं उतना ही वह है, ऐसे समझो। क्योंकि (सहस्रधा सहस्रं महिमानः) हजारों प्रकारकी उसकी महिमाएं हैं, सामर्थ्य हैं; (यावत् ब्रह्म वि-स्थितं तावती वाक्) ब्रह्म जितना अनेक प्रकारसे विद्यमान है, उतनी ही प्रकारकी वर्णन करनेवाली वाणी भी होती है ॥ ८ ॥

[१३१४] (कः धीरः छन्दसां योगं आ वेद) कौन विद्वान् है जो छन्दोंकी योजनाओंको ठीक प्रकारसे जानता है ? (कः धिष्ण्यां वाचं प्रति पपाद) कौन धारण करने योग्य अंगोंके उचित-यज्ञार्ह वाणीको उच्चारित करता है ? (ऋत्विजां अष्टमं शूरं कं आहुः) सात ऋत्विजोंके बीच आठवें ब्रह्माके किस स्वतन्त्र स्थानको कहते हैं ? (कः स्वित् इन्द्रस्य हरी नि चिकाय) कौन विद्वान् है जो इन्द्रके दो अश्वोंको अच्छी तरहसे जानता है ? ॥ ९ ॥

[१३१५] (एके भूम्याः अन्तं परि चरन्ति) कुछ घोडे पृथिवीकी शेष सीमातक अन्तरिक्षतक विचरण करते हैं। (रथस्य धूर्षु युक्तासः अस्थुः) वे रथकी धुरामेंही जोते रहते हैं। (एभ्यः श्रमस्य दायम् वि भजन्ति) इनको परिश्रम दूर करनेके लिये देव घास आदि देते हैं। (यदा यमः हर्म्ये हितः भवति) जब नियन्ता सूर्य रथमें विराजमान होता है ॥ १० ॥

(११५)

९ वार्ष्टिहव्य उपस्तुतः । अग्निः । जगती, ८ त्रिष्टुप्, ९ शक्करी ।

चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथो न यो मातरावप्येति धातवे ।
अनूधा यदि जीजनदधा च नु ववक्ष सद्यो महि दूत्यं१ चरन् १
अग्निर्ह नाम धायि दन्नपस्तमः सं यो वना युवते भस्मना दता ।
अभिप्रमुरा जुह्वा स्वध्वर इनो न प्रोथमानो यवसे वृषा २ (१३१७)
तं वो विं न द्रुषदं देवमन्धस इन्दुं प्रोथन्तं प्रवपन्तमर्णवम् ।
आसा वह्निं न शोचिषा विरप्शिनं महिव्रतं न सरजन्तमध्वनः ३
वि यस्य ते ज्रयसानस्याजर धक्षोर्न वाताः परि सन्त्यच्युताः ।
आ रण्वासो युयुधयो न सत्वनं त्रितं नशन्त प्र शिषन्त इष्टये ४
स इदग्निः कण्वतमः कण्वसखा ऽर्यः परस्यान्तरस्य तरुषः ।
अग्निः पातु गृणतो अग्निः सूरीनग्निर्ददातु तेषामवो नः ५ [१८]

[११५]

[१३१६] (शिशोः तरुणस्य वक्षथः चित्रः इत्) इस नवीन बालक अग्निका सामर्थ्य अद्भुत है, (यः मातरौ धातवे न अप्येति) जो अपने माता-पिता रूप द्यावा-पृथिवीके पास दूध पीनेके लिये नहीं जाता। (यदि अनूधाः जीजनत्) जो स्तनदुग्ध नहीं पीकर भी यह बालक उत्पन्न हुआ है; वास्तवमें द्यावा-पृथिवी सबोंकी कामदुघा है। (अध च नु सद्यः महि दूत्यम् चरन् ववक्ष) जन्मके साथही इसने शीघ्रही महान् दूतके कार्यका भार ग्रहण करके देवोंके लिये हवि वहन करता है ॥ १ ॥

[१३१७] (अपस्तमः दन् अग्निः ह नाम धायि) जो सर्वश्रेष्ठ कर्म करनेवाला और दाता है, उसका नाम अग्नि यजमानोंने रखा है। (यः भस्मना दता वना सं युवते) जो अग्नि ज्योतिरूप दांतसे-ज्वालासे वनोंको अच्छी प्रकारसे भक्षण करता है। (अभिप्रमुरा जुह्वा स्वध्वरः) जुहू नामक उच्च पात्रमें अर्पित हविको शोभन अग्नि ग्रहण करता है। (इनः प्रोथमानः वृषा यवसेन) जैसे समर्थ पुष्ट वृषभ घास खाता है ॥ २ ॥

[१३१८] हे स्तोताओ ! (वः द्रु-सदं विं न देवं अन्धसः इन्दुं) तुम पक्षीके समान वृक्ष (अरणि) का आश्रय करनेवाले, तेजस्वी अन्नके दाता, (प्रोथन्तं प्रवपन्तं अर्णवं आसा वह्निं) शब्द करनेवाले, सर्वत्र व्यापक -वनको जलानेवाले, उदकयुक्त, मुखसे हवि हवन करनेवाले, (शोचिषा विरप्शिनं महिव्रतं न अध्वनः सरजन्तम्) अपने तेजसे महान्, महत् कर्म करनेवाले और सूर्यके समान मार्गोंको प्रकाशित करनेवाले अग्निकी स्तुति करो ॥ ३ ॥

[१३१९] हे (अजर) जरारहित अग्नि ! (ज्रयसानस्य धक्षोः यस्य ते अच्युताः वाता न वि परि सन्ति) गमनशील और दहनेच्छु जिस तेरे शत्रुओंसे अपराभनीय सामर्थ्य वायुके समान, सर्वत्र विशेष रूपसे रहता है। (युयुधयः न रण्वासः इष्टये प्र शिषन्तः) योद्धाओंके समान शीघ्र गतिवाले और यज्ञकी उपासनाके लिये ऋत्विज लोग स्तुति करते हुए (सत्वनं त्रितं आ नशन्त) बलशाली व्यापक तुझे सब प्रकारसे प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥

[१३२०] (कण्वतमः कण्वसखा अर्यः स इत् अग्निः) अत्यंत स्तुत्य, स्तुति करनेवाले भक्तोंका परम मित्र स्वामी वहही अग्नि (परस्य अन्तरस्य तरुषः) बाह्य और समीपस्थ शत्रुका विनाशक है। वह (अग्निः गृणतः; सूरीन् पातु) अग्नि हम स्तुति करनेवालोंकी और हवि अर्पण करनेवालोंकी रक्षा करे। और वही अग्नि (तेषां न अवः अग्निः ददातु) उन हमको अन्न, रक्षा आदि प्रदान करे ॥ ५ ॥

वाजिन्तमाय सह्यसे सुपित्र्य तृषु च्यवानो अनु जातवेदसे ।
अनुद्रे चिद्यो धृषता वरं सते महिन्तमाय धन्वनेदविष्यते ६

एवाग्निर्मर्तैः सह सूरिभि-र्वसुः ष्टवे सहसः सूनरो नृभिः ।
मित्रासो न ये सुधिता ऋतायवो द्यावो न द्युम्नैरभि सन्ति मानुषान् ७

ऊर्जो नपात् सहसावन्निति त्वो-पस्तुतस्य वन्दते वृषा वाक् ।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ८

इति त्वाग्ने वृष्टिहव्यस्य पुत्रा उपस्तुतास ऋषयोऽवोचन् ।
ताँश्च पाहि गृणतश्च सूरीन् वषड्वषळित्यूर्ध्वासो अनक्षन् नमो नम इत्यूर्ध्वासो अनक्षन् ९ [१९]

(११६)		(१३२४)

१ स्थौरोऽग्नियुतः स्थौरोऽग्नियूपो वा । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

पिबा सोमं महत इन्द्रियाय पिबा वृत्राय हन्तवे शविष्ठ ।
पिब राये शवसे हूयमानः पिब मध्वस्तृपदिन्द्रा वृषस्व १

[१३२१] हे (सुपित्र्य) उत्तम पितावाले अग्नि ! (वाजिन्तमाय सह्यसे जातवेदसे तृषु अनु च्यवानः) अत्यंत बलवान्– विपुल अन्न दान करनेवाले, अतिशय सामर्थ्य संपन्न, सर्व श्रेष्ठ ज्ञाता तेरी शीघ्रतासे स्तुति करनेके लिये मै उद्युक्त हुआ हूं । (अनुद्रे चित्त धृषता धन्वना इत् अविष्यते सते) जलरहित मरुस्थलमें– विपत्ति कालमें अपने अप्रतिम पराक्रम– बलसे धनुष धारण करके वह अग्नि रक्षा करता है. (महिन्तमाय यः वरम्) उस पूज्य सर्व श्रेष्ठ दाता अग्निको मं उत्तम हवि अर्पण करता हूं– उसकी स्तुति करता हूं ॥ ६ ॥

[१३२२] (सहसः सूनरः अग्निः नृभिः मर्तैः सह सूरिभिः वसु एव स्तवे) बलका प्रेरक अग्नि कर्मकर्ता और विद्वान् हम मनुष्योंसे धनकी इच्छासे इस प्रकार स्तवित होता है । (मित्रासः न ये सुधिताः ऋतायवः ये सूरयः द्यावः न द्युम्नैः) मित्रोंके समान जो तृप्त–प्रसन्न, यज्ञेच्छु और द्यौके समान श्रेष्ठ अपने यशपूर्ण तेजसे (मानुषान् अभि सन्ति) शत्रु मनुष्योंको हराते हैं ॥ ७ ॥

[१३२३] हे (ऊर्जः नपात्) बलके पुत्र ! हे (सहसावन्) शक्तिशाली अग्नि ! (त्वा इति उपस्तुतस्य वृषा वाक् वन्दते) तुझे इस प्रकार उपस्तुतकी तेजस्वी वाणी स्तवित करती है । हम (त्वां स्तोषाम) तेरी स्तुति करते हैं । (त्वया सुवीराः) हम तेरी कृपासे उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त हों और (द्राघीयः आयुः प्रतरं दधानाः) दीर्घतम उत्तम आयुको धारण करें ॥ ८ ॥

[१३२४] हे (अग्ने) अग्नि ! (इति वृष्टिहव्यस्य पुत्राः उपस्तुतासः ऋषयः त्वा अवोचन्) इस प्रकार वृष्टिहव्यके पुत्र उपस्तुत नामक द्रष्टा ऋषियोंने तेरी स्तुति की । (तान् च गृणतः सूरीन् च पाहि) तू उन स्तुति करनेवाले और विद्वानोंकी रक्षा कर । (वषट् वषट् इति ऊर्ध्वासः अनक्षन्) वषट् वषट् मन्त्र बोलकर मुख तथा हाथ ऊपर उठाकर हवि समर्पित करनेवाले और (नमः नमः इति उर्ध्वासः अनक्षन्) नमः नमः कहकर स्तुति करनेवाले स्तोताओंका तू पालन कर ॥ ९ ॥

[११६]

[१३२५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (महते इन्द्रियाय सोमं पिब) तू महान् सामर्थ्यके लिये हमने अर्पित किया हुआ सोमका पान कर । हे (शविष्ठ) बलवानोंमें श्रेष्ठ ! तू (वृत्राय हन्तवे पिब) वृत्रके वधके लिये सोमपान कर । (हूयमानः राये शवसे पिब) तू हमारे द्वारा प्रार्थित होकर ऐश्वर्य–धन और अन्न प्रदान करनेके लिये सोमपान कर । (मध्व पिब) मधुर सोमका पान कर और (तृपत् आ वृषस्व) तृप्त होकर, हमारी इच्छाएं पूर्ण कर ॥ १ ॥

अस्य पिब क्षुमतः प्रस्थितस्ये—न्द्र सोमस्य वरमा सुतस्य ।
स्वस्तिदा मनसा मादयस्वा—ऽर्वाचीनो रेवते सौभगाय २

ममत्तु त्वा दिव्यः सोम इन्द्र ममत्तु यः सूयते पार्थिवेषु ।
ममत्तु येन वरिवश्चकर्थ ममत्तु येन निरिणासि शत्रून् ३

आ द्विबर्हा अमिनो यात्विन्द्रो वृषा हरिभ्यां परिषिक्तमन्धः ।
गव्या सुतस्य प्रभृतस्य मध्वः सत्रा खेदामरुशहा वृषस्व ४

नि तिग्मानि भ्राशयन् भ्राश्या—न्यव स्थिरा तनुहि यातुजूनाम् ।
उग्राय ते सहो बलं ददामि प्रतीत्या शत्रून् विगदेषु वृश्च ५·[२०](१३११)

व्यर्य इन्द्र तनुहि श्रवांस्यो—जः स्थिरेव धन्वनोऽभिमातीः
अस्मद्र्यग्वावृधानः सहोभि—रनिभृष्टस्तन्वं वावृधस्व ६

इदं हविर्मघवन् तुभ्यं रातं प्रति सम्राळहृणानो गृभाय ।
तुभ्यं सुतो मघवन् तुभ्यं पक्वो३ ऽद्धीन्द्र पिब च प्रस्थितस्य ७

[१३२६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (क्षुमतः प्रस्थितस्य सुतस्य अस्य सोमस्य वरं आ पिब) स्तुतियुक्त–हविरूप, उत्तमरीतिसे प्रस्तुत, अभिषुत इस सोमके श्रेष्ठ भागका तू पान कर। (स्वस्तिदाः मनसा मादयस्व) कल्याण करनेवाला तू मनसे प्रसन्न हो। (रेवते सौभगाय अर्वाचीनः) धन–ऐश्वर्यसे युक्त सौभाग्य लिये तेरे पास आयें हमको आनंदित कर ॥ २ ॥

[१३२७] हे (इन्द्र) धनवान् इन्द्र ! (त्वा दिव्यः सोमः ममत्तु) तुझे दिव्य सोम प्रसन्न करे। (यः पार्थिवेषु सूयते ममत्तु) जो पृथ्वीपर किये जानेवाले यज्ञोंमें जो निचोडा जाता है, वह तुझे आनन्दित करे। (येन वरिवः चकर्थ ममत्तु) जिससे तू उत्तम धन उत्पन्न करता है, वह भी तुझे प्रसन्न करे। और (येन शत्रून् निरिणासि प्र मत्तु) जिससे तू शत्रुओंको नष्ट करता है, वही तुझे आनन्दप्रसन्न करे ॥ ३ ॥

[१३२८] (द्विबर्हाः अमिनः वृषा इन्द्रः परिषिक्तं) दोनों लोकोंमें व्याप्त, सर्वगामी और कामनाओंका वर्षक इन्द्र, चारों ओर सिञ्चित (अन्धः हरिभ्यां आ यातु) सोमरूप आहारीय द्रव्यके प्रति दोनों घोडोंसे आवे। (अरुशहा सत्रा गवि सुतस्य प्रभृतस्य) शत्रुनाशक तू हमारे यज्ञमें वृषभचर्मके ऊपर ढाला हुआ और पात्रमें परिपूर्ण रखा हुआ (मध्वः खेदां वृषस्व) मधुर सोमका पान करके, वृषभोंके समान शत्रुओंका उच्छेद कर ॥ ४ ॥

[१३२९] हे इन्द्र ! (भ्राश्यानि तिग्मानि नि भ्राशयन्) तू अत्यंत चमकनेवाले तीक्ष्ण शस्त्रोंको प्रकाशित करता हुआ, (यातुजूनां स्थिरा अव तनुहि) राक्षसोंके दृढ शरीरोंको नीचे गिरा। (उग्राय ते सहः बलं ददामि) उग्ररूप–पराक्रम युक्त तुझको मैं पराजयकारी बल बढानेवाला हवि– सोम देता हूं। (विगदेषु शत्रून् प्रतीत्य वृश्च) युद्धमें शत्रुओंपर आक्रमण करके उन्हें काट डाल ॥ ५ ॥

[१३३०] हे (इन्द्र) धनवान इन्द्र ! (अर्यः श्रवांसि वि तनुहि) स्वामी–प्रभू तू हमें अन्न–धन दे। (अभिमातीः ओजः स्थिरा इव धन्वनः) अभिमानी शत्रुओंपर अपने पराक्रमको– तेजको अविचलित धनुषके समान विशेष रूपसे प्रकट कर अर्थात् शत्रुओंका नाश कर। (अस्म द्रयक् सहोभिः वावृधानः अनिभृष्टः तन्वं वावृधस्व) और हमें प्राप्त होकर अपने बलोंसे बढता हुआ, शत्रुओंसे पराजित न होकर शरीरको बढा ॥ ६ ॥

[१३३१] हे (मघवन्) धनवान् ! हे (सम्राट्) स्वामी ! (इदं हविः तुभ्यं रातम्) इस हविको तेरे लिये अर्पित करते हैं। (अहृणानः प्रति गृभाय) बिना क्रोधके इसे ग्रहण कर। हे (मघवन्) इन्द्र ! (तुभ्यं सुतः तुभ्यं पक्वः) तेरे लियेही यह सोम निचोडा है; तेरे लियेही यह पुरोडाशादि खाद्य पदार्थ पकाया है। हे (इन्द्र) इन्द्र ! (प्रस्थितस्य अद्धि पिब) तू प्रेमपूर्वक आगे प्रस्तुत किया पुरोडाशको खा और मधुर सोमका पान कर ॥ ७ ॥

अद्धीदिन्द्र प्रस्थितेमा हवींषि चनो दधिष्व पचतोत सोमम् ।
प्रयस्वन्तः प्रति हर्यामसि त्वा सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ८

प्रेन्द्राग्निभ्यां सुवचस्यामियर्मि सिन्धाविव प्रेरयं नावमर्कैः ।
अया इव परि चरन्ति देवा ये अस्मभ्यं धनदा उद्भिदश्च ९ [२१](१३३३)

(११७)

९ भिक्षुराङ्गिरसः । धनान्नदानं । त्रिष्टुप्, १-२ जगती ।

न वा उ देवाः क्षुधमिद्वधं ददु- रुताशितमुप गच्छन्ति मृत्यवः ।
उतो रयिः पृणतो नोप दस्य- त्युतापृणन् मर्डितारं न विन्दते १

य आध्राय चकमानाय पित्वो ऽन्नवान्त्सन् रफितायोपजग्मुषे ।
स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरो- तो चित् स मर्डितारं न विन्दते २

स इद्भोजो यो गृहवे ददा- त्यन्नकामाय चरते कृशाय ।
अरमस्मै भवति यामहूता उतापरीषु कृणुते सखायम् ३

[१३३२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (प्रस्थिता इमा हवींषि अद्धीत्) उत्साहवर्धक इन्द्र हविर्द्रव्योंको अवश्य खा। (चनः पचता दधिष्व उत सोमं) अन्नको और परिपक्व पदार्थोंको भी स्वीकार कर तथा सोमका पान कर। (प्रयस्वन्तः त्वा प्रति हर्यामसि) हम अन्नको लेकर तेरे प्रति धनकी कामना करते हैं। (यजमानस्यः कामाः सत्याः सन्तु) यज्ञशील यजमानकी सब इच्छाएं सफल हों ॥ ८ ॥

[१३३३] (इन्द्राग्निभ्यां सुवचस्यां प्र इयार्मि) इन्द्र और अग्निके लिये मैं सुरचित स्तुति उत्तमरीतिसे करता हूं ! (सिन्धौ इव नावं अर्कैः प्रेरयम्) जैसे नदीमें नाव भेजी जाती है, वैसे ही पवित्र अर्चना करनेवाले मंत्रोंसे मैं उन्हें उत्साहित करता हूं। (देवाः अयाः इव परि चरन्ति) देव पुरोहितोंके समान सेवा करते हैं– हमें धनादि दानसे प्रसन्न करते हैं। (ये अस्मभ्यं धनदाः उद्भिदः च) जो हमारे लिये धन देनेवाले और शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं ॥ ९ ॥

[११७]

[१३३४] (देवाः क्षुधं न ददुः वधं इत्) देवोंने क्षुधा–भूखकी जो निर्मिति की है, वह प्राणनाशिनी ही है। (आशितं मृत्यवः उप गच्छन्ति) अन्न खानेवालेको भी मृत्यु प्राप्त होतीही है। (उतोपृणतः रयिः न उप दस्यति) और दूसरोंको दान देनेवाले–पोषण करनेवालेका धन कभी कम नहीं होता। (उत अपृणन् मर्डितारं न विन्दते) और दूसरोंको न पालनेवाला–अदाताको कोई सुखी नहीं कर सकता– वह किसीसे भी सुख नहीं पाता ॥ १ ॥

[१३३५] (यः अन्नवान् सन् आध्राय पित्वः चकमानाय) जो स्वयं अन्नवाला होकर भी दुर्बलको, अन्न मांगनेवाले बुभुक्षित याचकको, (रफिताय उपजग्मुषे मनः स्थिरं कृणुते) दरिद्र मनुष्यको और सामने प्राप्त अतिथिको देखकर मनको–हृदयको स्थिर रखता है– निष्ठुर रखता है, और (पुरा सेवते) उसके सामने ही स्वयं भोजन करता है (सः मर्डितारं न विन्दते) उसे ही कोई सुखदाता नहीं मिल सकता ॥ २ ॥

[१३३६] (सः इत् भोजः यः गृहवे अन्नकामाय चरते कृशाय ददाति) वही सत्य ही दाता है, जो क्षुधासे व्याकूल अन्नकी इच्छासे भिक्षा मांगता है, और कृश–निर्बलको अन्न देता है। (यामहूतौ अस्मै अरं भवति) यज्ञके निमित्त उसको संपूर्ण फल मिलता है, (उत अपरीषु सखायं कृणुते) और वह शत्रुओंमें भी अपना सरक्षक प्राप्त कर लेता है ॥ ३ ॥

न स सखा यो न ददाति सख्ये सचाभुवे सचमानाय पित्वः ।
अपास्मात् प्रेयान्न तदोको अस्ति पृणन्तमन्यमरणं चिदिच्छेत् ४
पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान् द्राघीयांसमनु पश्येत पन्थाम् ।
ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रा ऽन्यमन्यमुप तिष्ठन्त रायः ५ [२२]

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य ।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी ६
कृषन्नित् फाल आशितं कृणोति यन्नध्वानमप वृङ्क्ते चरित्रैः ।
वदन् ब्रह्मावदतो वनीयान् पृणन्नापिरपृणन्तमभि ष्यात् ७
एकपाद्भूयो द्विपदो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात् ।
चतुष्पादेति द्विपदामभिस्वरे संपश्यन् पङ्क्तीरुपतिष्ठमानः ८ (१३४१)

[१३३७] (सः सखा न यः सचाभुवे सचमानाय सख्ये पित्वः न ददाति) वह सखा – मित्र नहीं है, जो साथ रहनेवाले और सेवा करनेवाले मित्रको अन्न नहीं देता है। (अस्मात् अप प्रेयात्) इस प्रकार अदाता कृपण मनुष्यको छोडकर दूर जाना ही उचित है। (तत् ओकः न अस्ति) वह रहने योग्य गृह नहीं होता। (पृणन्तं अन्यं अरणं चित् इच्छेत्) जो अन्नसे तृप्त करता है उसको ही उत्तम स्वामीके समान चाहने लगते हैं ॥ ४ ॥

[१३३८] (तव्यान् नाधमानाय पृणीयादित्) संपन्न मनुष्य अवश्य ही याचना करनेवालेको धन देकर उसे प्रसन्न करे। (द्राघीयांसं पन्थां अनु पश्येत्) वह बहुत दूरतकके मार्गको देखे – अर्थात् उस दाताको पुण्यपथ–स्वर्गलोक प्राप्त होता है। (रथ्या चक्रा इव ओ हि रायः वर्तन्ते) नीचे–ऊपर घूमनेवाले रथके चक्रोंके समान ये धन भी निश्चयसे स्थिर नहीं रहते। ये (अन्यं अन्यं उपतिष्ठन्त) एकसे दूसरेके पास जाया आया करते हैं ॥ ५ ॥

[१३३९] (अप्रचेताः मोघं अन्नं विन्दते) कृपण–अदाता मनुष्य व्यर्थही संपत्ति आदि प्राप्त करता है। (सत्यं ब्रवीमि) मैं यह सत्य कहता हूं। (तस्य सः वधः इत्) उसका वह मरणही है। (अर्यमणं न पुष्यति नो सखायं) जो न तो देवोंको हवि अर्पण करता है और न अपने समान पोष्य मित्रको देता है, (केवलादी केवलाघः भवति) केवल स्वयं खाता है, वह केवल पापही प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

[१३४०] (कृषन् फालः इत् आशितं कृणोति) कृषि कार्य करके हल भूमिमें गहरा खनता है, वही कृषकके लिये अन्न निर्माण करता है। (अध्वानं यन् चरित्रैः अप वृङ्क्ते) वह जो अपने मार्गसे जाकर अपने कर्मसे अपने स्वामीके लिये अन्न–धन प्राप्त करता है। (वदन् ब्रह्मा अवदतः वनीयान्) शास्त्रका ज्ञानी ब्राह्मण अज्ञानी मनुष्यसे अधिक श्रेष्ठ है। (पृणन् आपिः अपृणन्तं अभि स्यात्) दाता बन्धु–मनुष्य ही अदातासे श्रेष्ठ हो जाता है ॥ ७ ॥

[१३४१] (एकपात् द्विपदः भूयः विचक्रमे) एक अंशभाग संपत्तिवाला दो अंशभाग संपत्तिके धनीकी याचना करता है। और (द्विपात् त्रिपादं पश्चात् अभ्येति) दो अंशभागवाला तीन अंशभागवाले धनीके पास अनन्तर जाता है। (चतुष्पात् द्विपदाम्) चार अंश–भाग प्राप्तिवाला उससे अधिकवालेके पास जाता है। (पङ्क्तीः अभिस्वरे संपश्यन् उपतिष्ठमानः एति) इस प्रकार श्रेणी बंधी हुई है; अल्प संपत्तिवाला अधिक धनवान्की आशा करता है। अत्यंत श्रीमान् मनुष्य भी दरिद्र होता है; इसलिये स्वयं धनवान् हूं ऐसा न मानकर अतिथिको दान करना उचित है ॥८॥

समौ चिद्धस्तौ न समं विविष्टः संमातरा चिन्न समं दुहाते ।
यमयोश्चिन्न समा वीर्याणि ज्ञाती चित सन्तौ न समं पृणीतः ९ [२३] (१३४२)

(११८)

१ उरुक्षय आमहीयवः । रक्षोहाऽग्निः । गायत्री ।

अग्ने हंसि न्यत्रिणं दीद्यन्मर्त्येष्वा	।	स्वे क्षये शुचिव्रत	१
उत्तिष्ठसि स्वाहुतो घृतानि प्रति मोदसे	।	यत् त्वा स्रुचः समस्थिरन्	२
स आहुतो वि रोचते ऽग्निरीळेन्यो गिरा	।	स्रुचा प्रतीकमज्यते	३
घृतेनाग्निः समज्यते मधुप्रतीक आहुतः	।	रोचमानो विभावसुः	४
जरमाणः समिध्यसे देवेभ्यो हव्यवाहन	।	तं त्वा हवन्त मर्त्याः	५ [२४]

[१३४२] (समौ चित् हस्तौ समं न विविष्टः) हमारे दोनों हाथ एक समान रूपवाले हैं, तो भी एक समान कार्य करनेकी शक्ति नहीं धारण करते । (सं-मातरा चित् समं न दुहाते) एक समान दो माताएं-गायें होनेपर भी एक समान दूध नहीं देतीं । (यमयोः चित् समा वीर्याणि न) दो जुडवां भाई होनेपर भी उनका बल एक समान नहीं होता । (ज्ञाती चित् सन्तौ समं न पृणीतः) एक वंश-कुलकी सन्तान होकर भी दोनों एक समान दाता नहीं होते ॥ ९ ॥

[११८]

[१३४३] हे (शुचिव्रत अग्ने) देदीप्यमान, पवित्र व्रतवाले अग्नि ! तू (मर्त्येषु स्वे क्षये दीद्यन् अत्रिणं नि हंसि) यजमानके सामने अपने अग्निकुण्डमें प्रकाशित-प्रज्वलित होकर अंधकाररूपी शत्रुका नाश कर ॥ १ ॥

[१३४४] हे अग्नि ! (स्वाहुतः उत्तिष्ठसि) उत्तम रीतिसे आहुति पाकर अरणियोंमेंसे बाहर आ । (घृतानि प्रति मोदसे) घृतानि हविओंसे प्रसन्न होओ । (यत् त्वा स्रुचः समस्थिरन्) स्रुक् नामक यज्ञ पात्र तेरे लिये तेरे समिप लाये हैं ॥ २ ॥

[१३४५] (आहुतः गिरा ईळेन्यः सः अग्निः वि रोचते) अत्यंत आदरसे बुलाया गया और स्तुति मंत्रोंसे स्तवन करने योग्य वह अग्नि बहुत दीप्तिसे प्रकाशित होता है । (प्रतीकं स्रुचा अज्यते) सभी देवोंके पहले उसे स्रुक्से घृतादिसे आहुति दी जाति है ॥ ३ ॥

[१३४६] (अग्निः घृतेन समज्यते) जब यह अग्नि घृतादि हविर्द्रव्योंसे सिंचित होता है, (मधुप्रतीकः आहुतः रोचमानः विभावसुः) तब वह घृतसे प्रयुक्त हो, स्तुति और हविसे आहुत होकर दीप्तिमान् और विपुल प्रकाशसे युक्त हुआ ॥ ४ ॥

[१३४७] हे (हव्यवाहन) हविओंके वाहन अग्नि ! (जरमाणः देवेभ्यः समिध्यसे) तू स्तवित होकर देवोंके लिये हविओंसे अधिक प्रकाशित-प्रदीप्त होता है । (तं त्वा मर्त्याः हवन्त) उस तुझको यज्ञ कर्ता यजमान बुलाते हैं- प्रार्थना करते हैं ॥ ५ ॥

तं मर्ता अमर्त्यं घृतेनाग्निं सपर्यत । अदाभ्यं गृहपतिम् ६
अदाभ्येन शोचिषा ऽग्ने रक्षस्त्वं दह । गोपा ऋतस्य दीदिहि ७
स त्वमग्ने प्रतीकेन प्रत्योष यातुधान्यः । उरुक्षयेषु दीद्यत् ८
तं त्वा गीर्भिरुरुक्षया हव्यवाहं समीधिरे । यजिष्ठं मानुषे जने ९ [२५](१३५१)

(११९)

१३ ऐन्द्रो लवः । आत्मा (इन्द्रः) । गायत्री ।

इति वा इति मे मनो गामश्वं सनुयामिति । कुवित् सोमस्यापामिति १
प्र वाता इव दोधत उन्मा पीता अयंसत । कुवित् सोमस्यापामिति २
उन्मा पीता अयंसत रथमश्वा इवाशवः । कुवित् सोमस्यापामिति ३
उप मा मतिरस्थित वाश्रा पुत्रमिव प्रियम् । कुवित् सोमस्यापामिति ४

[१३४८] हे (मर्ताः) ऋत्विजो ! (अमर्त्यं अग्निं घृतेन सपर्यत) अविनाशी – अमर अग्निको हविसे सेवा– उपासना करो । (अदाभ्यं गृहपतिं) वह दुर्धर्ष और गृहका स्वामी है ॥ ६ ॥

[१३४९] हे (अग्ने) अग्नि ! (त्वं अदाभ्येन शोचिषा रक्षः दह) तू अजिक्य तेजसे राक्षसोंको दग्ध कर । (ऋतस्य गोपाः दीदिहि) तू यज्ञका रक्षक होकर दीप्तिमान् होओ ॥ ७ ॥

[१३५०] हे (अग्ने) अग्नि ! (स त्वं प्रतीकेन यातुधान्यः प्रत्योष) वह तू स्वभावसिद्ध तेजसे जला दे । और (उरुक्षयेषु दीद्यत्) तू प्रशस्त निवास स्थानोंपर रहकर प्रदीप्त होकर रह ॥ ८ ॥

[१३५१] हे अग्नि ! (उरुक्षयाः हव्यवाहं मानुषे जने यजिष्ठं तं त्वा) बहुत और बडे गृहोंवाले उपासक, हविओंके वाहक, मनुष्योंमें अत्यंत पूज्य उस तुझे (गीर्भिः समीधिरे) स्तुतियोंसे प्रदीप्त करते हैं ॥ ९ ॥

[११९]

[१३५२] (इति वा इति मे मनः गां अश्वं सनुयाम् इति) इस प्रकारसे मेरा मन विचार करता है, इच्छा करता है कि मैं गौका या अश्वका दान करूं ? (कुवित् सोमस्य अपां) क्योंकि कईबार मैंने सोमका पान किया है ॥ १ ॥

[१३५३] (दोधतः वाताः इव पीताः मा उत् अयंसत्) जैसे अत्यंत वेगवान् वायु वृक्षोंको कंपाता और उपर उठाता है, वैसेही पान किये गये सोमरस कंपाते हुए मुझे उछालता है । (कुवित् सोमस्य अपाम्) मैंने अनेक बार सोमरसका पान किया है ॥ २ ॥

[१३५४] (आशवः अश्वाः इव रथं उत् अयंसत पीताः मा) जिस प्रकार शीघ्रगामी अश्व रथको ऊपर उठाकर ले जाते हैं, उसी प्रकार पिये हुए सोमरस मुझे ऊपर उठाकर खींचते हैं । (कुवित् सोमस्य अपाम्) मैंने बहुत सोमका पान किया है ॥ ३ ॥

[१३५५] (वाश्रा प्रियं पुत्रं इव) जिस प्रकार गाय हम्बा शब्द करती हुई प्रिय बछडेके प्रति दौडती है, उसी प्रकार (मतिः मा उप अस्थित) स्तोताओंकी स्तुति मेरी ओर आती है । (कुवित् सोमस्य अपाम्) मैंने खूब खूब सोमका पान किया है ॥ ४ ॥

अहं तष्टेव वन्धुरं पर्यचामि हृदा मतिम् । कुवित् सोमस्यापामिति ५
नहि मे अक्षिपच्चना ऽच्छान्त्सुः पञ्च कृष्टयः । कुवित् सोमस्यापामिति ६ [२६]

नहि मे रोदसी उभे अन्यं पक्षं चन प्रति । कुवित् सोमस्यापामिति ७
अभि द्यां महिना भुव मभी३मां पृथिवीं महीम् । कुवित् सोमस्यापामिति ८
हन्ताहं पृथिवीमिमां नि दधानीह वेह वा । कुवित् सोमस्यापामिति ९
ओषमित् पृथिवीमहं जङ्घनानीह वेह वा । कुवित् सोमस्यापामिति १०
दिवि मे अन्यः पक्षो३ ऽधो अन्यमचीकृषम । कुवित सोमस्यापामिति ११ (१३६२)
अहमस्मि महामहो ऽभिनभ्यमुदीषितः । कुवित् सोमस्यापामिति १२
गृहो याम्यरंकृतो देवेभ्यो हव्यवाहनः । कुवित् सोमस्यापामिति १३ [२७] (१३६४)

[१३५६] (तष्टा इव वंधुरं अहं मतिं हृदा पर्यचामि) जिस प्रकार शिल्पी रथके उपरके भागको-सारथि-स्थानको बनाता है, उसी प्रकार मैं भी मनःपूर्वक श्रद्धासे स्तोत्रोंको सुनता हूं। (कुवित् सोमस्य अपाम्) मैंने अनेक बार सोमका पान किया है ॥ ५ ॥

[१३५७] (चन पञ्च कृष्टयः मे अक्षिपत् नहि अच्छान्त्सुः) इस प्रकार पञ्चजन (पंच वर्णात्मक जगत्) मेरी दृष्टिसे क्षणभरही ओझल नहीं हो सकते। (कुवित् सोमस्य अपाम्) क्योंकि मैंने अत्यंत सोमका पान किया है ॥६॥

[१३५८] (उभे रोदसी मे अन्यं पक्षं चन प्रति) द्यावा-पृथिवी दोनों भी मेरे एक बाजूके बराबर भी नहीं हैं। (कुवित् सोमस्य अपाम्) मैंने बहुतही सोमके रसका पान किया है ॥ ७ ॥

[१३५९] (महिना द्यां अभि भुवम् महीं इमां पृथिवीं अभि) मैंने अपनी महिमासे द्युलोकको व्याप लिया है और इस महती पृथिवीको भी अपने वशमें किया है। (कुवित् सोमस्य अपाम्) मैंने बहुत सोमका पान किया है ॥ ८ ॥

[१३६०] (अहं इमां पृथिवीं इह वा नि दधानि इह वा) मैं इस पृथिवीको यहां स्थापित करूं या यहां अन्तरिक्षमें वा जहां इच्छा हो उधर रख सकता हूं। क्योंकि (कुवित् सोमस्य अपाम्) मैंने सोम रसका बहुत पान किया है ॥ ९ ॥

[१३६१] (अहं पृथिवीं ओषं इह वा इह वा जङ्घनानि इत्) मैं इस पृथ्वीको वा अपने तेजसे तपानेवाले सूर्यको यहां वा वहां द्युलोकमें भी जहां चाहूं वहां, नष्ट कर सकता हूं। (कुवित् सोमस्य अपाम्) मैंने कई बार सोमपान किया है ॥ १० ॥

[१३६२] (मे दिवि अन्यः पक्षः) मेरा द्युलोकमें एक भाग स्थापित है; (अन्यं अधः अचीकृषम्) और दूसरा भाग नीचे पृथ्वीपर है। (कुवित् सोमस्य अपाम्) मैंने अनेक बार सोमपान किया है ॥ ११ ॥

[१३६३] (अभिनभ्यम् उत् ईषतः अहं महामहः अस्मि) मैं अन्तरिक्षमें उदित होनेवाले सूर्यके समान महान्से महान् हूं। (कुवित् सोमस्य अपाम्) मैंने बहुत सोमपान किया है ॥ १२ ॥

[१३६४] (देवेभ्यः हव्यवाहनः अरंकृतः गृहः यामि) इन्द्रादि देवोंके लिये हव्य ले जानेवाला मैं यजमानोंसे अलंकृत होकर हवि ग्रहण करके चला जाता हूं। (कुवित् सोमस्य अपाम्) मैंने बहुत बार सोमका पान किया है ॥ १३ ॥

×

[सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ व० १-३०] (१२०)

९ आथर्वणो बृहद्दिवः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः १
वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु २
त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ३
इति चिद्धि त्वा धना जयन्तं मदेमदे अनुमदन्ति विप्राः ।
ओजीयो धृष्णो स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन् यातुधाना दुरेवाः ४
त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।
चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ५ [१]

---

[१२०]

[१३६५] (भुवनेषु तत् इत् ज्येष्ठं आस) समस्त लोकोंमें वह परब्रह्मही सबसे श्रेष्ठ आविर्भूत है। (यतः उग्रः त्वेषनृम्णः जज्ञे) जिससे प्रचण्ड-उग्र और अत्यंत तेजस्वी सूर्य उत्पन्न हुआ। (जज्ञानः सद्यः शत्रून् नि रिणाति) वह उत्पन्न होतेही शीघ्रही शत्रुओंको नष्ट करता है। (विश्वे ऊमाः यं अनु मदन्ति) सब प्राणी जिसे देखकर आनन्दित होते हैं ॥ १ ॥

[१३६६] (शवसा वावृधानः भूर्योजाः शत्रुः दासाय भियसं दधाति) बलसे उत्साहित, महान् तेजस्वी और शत्रुनाशक इन्द्र दासोंके मनमें भय निर्माण करता है। (अव्यनत् व्यनत् सस्नि) सब व्यक्त और अव्यक्त स्थावर और जंगम विश्व जिसकी कृपासे सुखी है- व्याप्त है। हे इन्द्र ! (ते मदेषु प्रभृता सं नवन्त) उस सुखस्वरूप परमेश्वरकी हम सब-परिपालित भूतजाति एकत्र होकर असीम कृपाके लिये उपासना करते हैं। ॥ २ ॥

[१३६७] हे इन्द्र ! (यत् एते ऊमाः द्विः भवन्ति त्रिः) जिससे ये लोग (स्त्री-पुरुष रूपसे) दो दो होते हैं और (पुत्ररूपसे) तीन प्रकारके होते हैं, इसी कारण (त्वे विश्वे क्रतुं वृञ्जन्ति) तुझमेंही- तेरे लियेही सब यजमान यज्ञकर्म समाप्त करते हैं। (त्वं स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सं सृज) हे इन्द्र ! तू उत्तममें भी उत्तम धनादिसे श्रेष्ठ अपत्य सुखप्रद मातापितासे उत्पन्न कर। (अदः मधु मधुना सु अभि योधीः) वह मधुर अपत्य मधुरके साथ सुखपूर्वक परस्पर मिला दो ॥ ३ ॥

[१३६८] (इति चित् हि) इसी प्रकार (मदेमदे धना जयन्तं त्वा विप्राः अनुमदन्ति) सोमपान करके हर्षित होकर हे इन्द्र ! तूं जब धन जीतता है, तब मेधावी स्तोता लोग तेरीही स्तुति करते हैं। हे (धृष्णो) शत्रुको पराजित करनेवाले इन्द्र ! तू (ओजीयः स्थिरः आ तनुष्व) अत्यंत बलवान् है, तू हमें स्थिर धन दे। (दुरेवाः यातुधानाः त्वा मा दभन्) दुष्ट राक्षस तेरा नाश न कर सकें ॥ ४ ॥

[१३६९] हे इन्द्र ! (त्वया वयं रणेषु शाशद्महे) तेरी सहायतासे-कृपासे हम युद्धोंमें शत्रुओंका नाश करते हैं। (युधेन्यानि भूरि प्रपश्यन्तः) युद्ध करने योग्य अनेक साधनोंको हम जानें। और (ते आयुधा वचोभिः चोदयामि) तेरे अस्त्रोंको वज्रादि आयुधोंको मैं स्तुतिओंसे उत्साहित करता हूं। (ते ब्रह्मणा वयांसि सं शिशामि) तेरे लिये स्तुतियुक्त मन्त्रोंसे हव्यादि अन्नको शुद्ध-पवित्र करता हूं ॥ ५ ॥

स्तुषेय्यं पुरुवर्पसमृभ्व॑मिनतममाप्त्यमाप्त्यानाम् ।
आ दर्षते शवसा सप्त दानून् प्र साक्षते प्रतिमानानि भूरि ६
नि तद्दधिषेऽवरं परं च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे ।
आ मातरा स्थापयसे जिगत्नू अत इनोषि कर्वरा पुरूणि ७
इमा ब्रह्म बृहद्दिवो विवक्तीन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः ।
महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजो दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः ८
एवा महान् बृहद्दिवो अथर्वाऽवोचत् स्वां तन्वमिन्द्रमेव ।
स्वसारो मातरिभ्वरीररिप्रा हिन्वन्ति च शवसा वर्धयन्ति च ९ [२] (१३७३)

(१२१)

१० हिरण्यगर्भः प्राजापत्यः । कः (प्रजापतिः)। त्रिष्टुप् ।

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम १

[१३७०] (स्तुषेय्यं पुरुवर्पसं ऋभ्वं इनतमं) स्तुत्य, नाना रूपवाला, अत्यंत दीप्तिसे युक्त, सर्वेश्वर (आप्त्यानाम् आप्त्यम्) और आप्तियोंमें सबसे श्रेष्ठ इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूं। वह (शवसा सप्त दानून् आ दर्षते) अपने बलसे सात दानवोंका विनाश (वृत्र, नमुचि, कुयव आदि) करता है और (प्रतिमानानि भूरि प्र साक्षते) असुरोंके अनेक स्थानोंको प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

[१३७१] (तत् अवरं परं च नि दधिषे) उस यजमानके घरमें तू कनिष्ठ-अल्प और दिव्य-श्रेष्ठ धन देता है, (यस्मिन् दुरोणे अवसा आविथ) जिसके गृहमें तू हवि आदि अन्नसे तृप्त होता है। और (जिगत्नू मातरा आ स्थापयसे) सबोंके निर्माता गमनशील द्यावापृथिवीको सुस्थिर करता है । (अतः पुरूणि कर्वरा इनोषि) इसलिये तू अनंत कार्योंको भी करता है- अनेक फलोंको देता है ॥ ७ ॥

[१३७२] (अग्रियः स्वर्षाः बृहद्दिवः इमा ब्रह्म इन्द्राय शूषं विवक्ति) सर्व ऋषियोंमें श्रेष्ठ और स्वर्गाभिलाषी बृहद्दिव ऋषि इन वेदमंत्रोंको इन्द्रके सुखके लिये पढता-बोलता है। (महः गोत्रस्य स्वराजः क्षयति) वह, तेजस्वी सुंदर और महान् गायोंके संघका अधिपति है। (विश्वाः स्वाः दुरः च अप अवृणोत्) वह समस्त अपने अनेको द्वारोंको खोलता है ॥ ८ ॥

[१३७३] (एवा महान् अथर्वा बृहद्दिवः इन्द्रं एव) इस प्रकार महान् अथर्वपुत्र बृहद्दिवने इन्द्रके लिये ही (स्वां तन्वं अवोचत्) अपनी विस्तृत स्तुतिका पाठ किया। (मातरिभ्वरीः अरिप्राः स्वसारः हिन्वन्ति) माता समान भूमिपर उत्पन्न, पवित्र नदियां-परस्पर भगिनीके तुल्य होकर इन्द्रको प्रसन्न करती हैं- पूर्ण जलसे बहाती हैं और (शवसा वर्धयन्ति च) बलसे उसे वर्द्धित करती हैं ॥ ९ ॥

[१२१]

[१३७४] (अग्रे हिरण्यगर्भः समवर्तत) इस सृष्टिके निर्माण होनेके पहले हिरण्यगर्भ-परमात्मा विद्यमान था। (जातः भूतस्य एकः पतिः आसीत्) वही उत्पन्न सब जगत्का एकमात्र- अद्वितीय स्वामी है। (सः पृथिवीं उत इमां द्यां दाधार) वह पृथिवी और इस अन्तरिक्षको भी धारण करता है। (कस्मै देवाय हविषा विधेम) उस सुखदायी परमेश्वरकी हम हविके द्वारा उपासना-पूजा करते हैं ॥ १ ॥

य आ॑त्म॒दा ब॑ल॒दा यस्य॒ विश्व॑ उ॒पास॑ते प्र॒शिषं॒ यस्य॑ दे॒वाः ।
यस्य॑ छा॒यामृतं॒ यस्य॑ मृ॒त्युः कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम २ (१३७५)

यः प्रा॑ण॒तो नि॑मिष॒तो म॑हि॒त्वैक॒ इद्राजा॒ जग॑तो ब॒भूव॑ ।
य ईशे॑ अ॒स्य द्वि॒पद॒श्चतु॑ष्पदः॒ कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ३

यस्ये॒मे हि॒मव॑न्तो महि॒त्वा यस्य॑ समु॒द्रं र॒सया॑ स॒हाहुः ।
यस्ये॒माः प्र॒दिशो॒ यस्य॑ बा॒हू कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ४

येन॒ द्यौरु॒ग्रा पृ॑थि॒वी च॑ दृ॒ळ्हा येन॒ स्वः॑ स्तभि॒तं येन॒ नाकः॑ ।
यो अ॒न्तरि॑क्षे॒ रज॑सो वि॒मानः॒ कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ५ [३]

यं क्रन्द॑सी॒ अव॑सा तस्तभा॒ने अ॒भ्यैक्षे॑तां॒ मन॑सा॒ रेज॑माने ।
यत्राधि॒ सूर॒ उदि॑तो वि॒भाति॒ कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ६

[१३७५] (यः आत्मदाः बलदाः यस्य प्रशिषं विश्वे यस्य देवाः उपासते) जो आत्मज्ञान देनेवाला और बल देनेवाला है, जिसकी आज्ञाका सब लोग और समस्त देव भी पालन करते हैं, अर्थात् जिसके उत्कृष्ट शासनको सब मानते हैं, और (यस्य छाया अमृतं यस्य मृत्युः) जिसकी शरणवत् छाया अमृतरूपिणी है और जिसकी शरण न लेना मृत्यु ही है, (कस्मै देवाय हविषा विधेम) उस सुखस्वरूप परमेश्वरकी हम उत्तम प्रकारसे उपासना करते हैं ॥ २ ॥

[१३७६] (यः प्राणतः निमिषतः जगतः महित्वा एक इत् राजा बभूव) जो श्वासोच्छ्वास करनेवाले और आंख झपकनेवाले संपूर्ण चर-जंगम जगत्का अपने महान् सामर्थ्यसे- अपनी महिमासे एकही अद्वितीय राजा है (अस्य द्विपदः चतुष्पदः यः ईशे) और इस द्विपद और चतुष्पद-दोपाये-चौपाये प्राणियोंका स्वामी है। (कस्मै देवाय हविषा विधेम) उस सुख प्रदान करनेवाले अद्वितीय परमेश्वरकी सब प्रकारसे उपासना-भक्ति करते हैं ॥ ३ ॥

[१३७७] (इमे हिमवन्तः यस्य महित्वा आहुः) ये सब हिमाच्छन्न पर्वत जिसकी महिमासे उत्पन्न हुए हैं- जिसके महान् सामर्थ्यको बतलाते हैं, और (रसया सहसमुद्रम्) जिसके महान् सामर्थ्यको जलयुक्त नदियां, गतिशील पृथिवी और समुद्र, आकाश बतला रहे हैं और (यस्य इमाः प्रदिशः यस्य बाहू) जिसके महान् सामर्थ्यको ये मुख्य दिशाएं जिसके बाहुवत् होकर महान् सामर्थ्यको बतला रही हैं। (कस्मै देवाय हविषा विधेम) उस अद्वितीय परमेश्वरकी हम उपासना करते हैं ॥ ४ ॥

[१३७८] (येन द्यौः उग्रा पृथिवी च दृळ्हा) जिससे यह आकाश-अन्तरिक्ष सामर्थ्य संपन्न हुआ और पृथिवी स्थिर रूपसे स्थापित हुई है। (येन स्वः स्तभितं येन नाकः) जिसने स्वर्गको स्थिर किया और जिसने सूर्यको अन्तरिक्षमें स्थिर बनाया, (यः अन्तरिक्षे रजसः विमानः) और जो आकाशमें उदक निर्माण करता है। (कस्मै देवाय हविषा विधेम) उस एकमेव सुखस्वरूप परमेश्वरकी सब प्रकारसे उपासक करते हैं ॥ ५ ॥

[१३७९] (क्रन्दसी अवसा तस्तभाने रेजमाने यं मनसा अभ्यैक्षेताम्) द्यावा-पृथिवी शब्दायमान होकर लोगोंकी रक्षाके लिये स्थिरभूत होकर और अत्यंत प्रकाशित होकर जिसको मनसे प्रत्यक्ष देखती हैं। (यत्राधि सूरः उदितः विभाति) जिसके आश्रयसे सूर्य उदित होकर आकाशमें चमकता है। (कस्मै देवाय हविषा विधेम) उस सर्व प्रकाशक सुखस्वरूप परमेश्वरकी हम सब प्रकारसे उपासना करते हैं ॥ ६ ॥

आपो॑ ह॒ यद्बृ॑ह॒तीर्विश्व॒माय॒न् गर्भं॒ दधा॑ना ज॒नय॑न्तीर॒ग्निम् ।
ततो॑ दे॒वानां॒ सम॑वर्त॒तासु॒रेकः॒ कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ७
यश्चि॒दापो॑ महि॒ना प॒र्यप॑श्य॒द् दक्षं॒ दधा॑ना ज॒नय॑न्तीर्य॒ज्ञम् ।
यो दे॒वेष्वधि॑ दे॒व एक॒ आसी॒त् कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ८
मा नो॑ हिंसीज्जनि॒ता यः पृ॑थि॒व्या यो वा॒ दिवं॑ स॒त्यध॑र्मा ज॒जान॑ ।
यश्चा॒पश्च॒न्द्रा बृ॑ह॒तीर्ज॒जान॒ कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ९
प्रजा॑पते॒ न त्वदे॒तान्य॒न्यो विश्वा॑ जा॒तानि॒ परि॒ ता ब॑भूव ।
यत्का॑मास्ते जुहु॒मस्तन्नो॑ अस्तु व॒यं स्या॑म॒ पत॑यो रयी॒णाम् १० [४] (१३८३)

(१२२)

८ चित्रमहा वासिष्ठः। अग्निः। जगती; १, ५ त्रिष्टुप्।

वसुं॒ न चि॒त्रम॑हसं गृणीषे वा॒मं शेव॒मति॑थिमद्वि॒षेण्य॑म् ।
स रा॑सते शु॒रुधो॑ वि॒श्वधा॑यसो॒ ऽग्निर्होता॑ गृ॒हप॑तिः सु॒वीर्य॑म् १

[१३८०] (बृहतीः अग्निं जनयन्तीः गर्भं दधानाः) महान् अग्न्यादि समस्त जगत्‌को उत्पन्न करनेवाला और गर्भ-हिरण्मय महान् अण्डको धारण करनेवाला (आपः ह विश्वं आयन्) जल ही सब जगत्‌को व्यापता है। और (यत् ततः देवानां असुः एकः समवर्तत) जिससे उस कारण देवादि सब प्राणियोंका प्राणभूत एक अद्वितीय प्रजापति निर्माण हुआ। (कस्मै देवाय हविषा विधेम) उस सुखस्वरूप परमेश्वरकी हम सब प्रकारसे उपासना करते हैं ॥ ७ ॥

[१३८१] (यज्ञं जनयन्तीः दक्षं दधानाः) जिसने यज्ञ उत्पन्न करनेवाला, प्रजापतिको धारण करनेवाला प्रलयकालीन जलको उत्पन्न किया, (महिना यः चित् पर्यपश्यत् यः देवेषु अधि एकः देवः आसीत्) जिसने अपनी महिमासे उस जलके ऊपर चारों ओर निरीक्षण किया और जो देवोंमें जो उनका भी स्वामी है, एक अद्वितीय देव है, (कस्मै देवाय हविषा विधेम) उस परम सुखरूप देवकी हम उपासना करते हैं ॥ ८ ॥

[१३८२] वह (नः मा हिंसीत्) हमें पीडित न करें (यः पृथिव्याः जनिता यः वा सत्यधर्मा दिवं जजान) जो पृथ्वीका जनिता- सृष्टिको रचनेवाला है, जो सत्य धर्म और जगत्‌का धारण करनेवाला है और जो स्वर्गका निर्माण कर्ता है। (यः च बृहतीः चन्द्राः अपः जजान) और जो आल्हाद कारक विपुल महान् जलको भी उत्पन्न कर्ता है। (कस्मै देवाय हविषा विधेम) उस सुखस्वरूप अद्वितीय देवकी हम उत्तम रीतिसे उपासना करते हैं ॥ ९ ॥

[१३८३] हे (प्रजापते) प्रजापति ! (त्वत् अन्यः एतानि विश्वा जातानि ता न परि बभूव) तेरे सिवाय दूसरा कोई इन वर्तमान, भूत और भविष्यके समस्त उत्पन्न वस्तुओंको जगत्‌में नहीं व्याप सकता, अर्थात् तू ही व्यापता है। (यत् कामाः ते जुहुमः तत् नः अस्तु) जिसकी अभिलाषा करके हम तेरी उपासना-हवन करते हैं, वह हमें प्राप्त हो। (वयं रयीणां पतयः स्याम) हम समस्त ऐश्वर्योंके स्वामी हों ॥ १० ॥

[१२२]

[१३८४] (वसुं न चित्रमहसं वामं शेवं अतिथिं अद्विषेण्यं गृणीषे) सूर्यके समान अद्भुत तेजवाले रमणीय, सुखदायक, अतिथिके समान पूज्य और किसीसे द्वेष न करनेवाले अग्निकी मैं स्तुति करता हूं। (सः अग्निः शुरुधः विश्वधायसः सुवीर्यं रासते) वह अग्नि शोक-दुःख निवारक, सर्वपोषक गायें और उत्तम बल सामर्थ्य हमें प्रदान करे। वह (होता गृहपतिः) देवोंको बुलानेवाला और गृहपति है ॥ १ ॥

जुषाणो अग्ने प्रति हर्य मे वचो विश्वानि विद्वान् वयुनानि सुक्रतो ।
घृतनिर्णिग्ब्रह्मणे गातुमेरय तव देवा अजनयन्ननु व्रतम् २
सप्त धामानि परियन्नमर्त्यो दाशद्दाशुषे सुकृते मामहस्व ।
सुवीरेण रयिणाग्ने स्वाभुवा यस्त आनट् समिधा तं जुषस्व ३
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितं हविष्मन्त ईळते सप्त वाजिनम् ।
शृण्वन्तमग्निं घृतपृष्ठमुक्षणं पृणन्तं देवं पृणते सुवीर्यम् ४ (१३८७)
त्वं दूतः प्रथमो वरेण्यः स हूयमानो अमृताय मत्स्व ।
त्वां मर्जयन् मरुतो दाशुषो गृहे त्वां स्तोमेभिर्भृगवो वि रुरुचुः ५ [५]

इषं दुहन्त्सुदुघां विश्वधायसं यज्ञप्रिये यजमानाय सुक्रतो ।
अग्ने घृतस्नुस्त्रिर्ऋतानि दीद्यद्वर्तिर्यज्ञं परियन्त्सुक्रतूयसे ६

[१३८५] हे (अग्ने) अग्नि ! (जुषाणः मे वचः प्रति हर्य) तू प्रसन्न होकर मेरे स्तोत्रकी भी इच्छा कर । हे (सुक्रतो) उत्तम कर्म करनेवाले ! तू (विश्वानि वयुनानि विद्वान्) समस्त लोकोंका जाननेवाला है । हे (घृत-निर्णिक्) तेजस्वी अग्नि ! (ब्रह्मणे गातुं आ ईरय) तू यज्ञकर्ता यजमानके लिये यज्ञमें आ (तव अनु देवाः व्रतं अजनयत्) तेरा अनुकरण करके देव भी यज्ञमें आते हैं– यजमानको यज्ञका फल देते हैं ॥ २ ॥

[१३८६] हे अग्नि ! (सप्त धामानि परियन् अमर्त्यः दाशत्) तू पृथिवी आदि सात स्थानोंको व्यापनेवाला और मरणधर्म रहित अमर तू, जो यजमान पुरोडाश आदि हवि अर्पण करता है, उस (दाशुषे सुकृते मामहस्व) दान-शील, उत्तम कर्मकर्ता दाताको अभिलषित सब प्रकारका धन– ऐश्वर्य प्रदान कर । हे (अग्ने) अग्नि ! (यः ते समिधा आनट्) जो तुझे समिधा अर्पण करके तेरी संवर्द्धना करता है, (तं सुवीरेण स्वाभुवा रयिणा जुषस्व) उसको उत्तम वीर पुत्रसे युक्त संतति और वर्धिष्णु सम्पत्ति दे ॥ ३ ॥

[१३८७] (यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितं) यज्ञके प्रकाशक, सर्वश्रेष्ठ, सम्मुख स्थापित, (वाजिनं शृण्वन्तं घृतपृष्ठं उक्षणं) बलवान् सबकी प्रार्थना–स्तोत्र सुननेवाले, तेजस्वी, सबको अभिलषित फल देनेवाले (पृणते) हवियोंको प्रदान करनेवाले यजमान दाताको (पृणन्तं) धन आदि देकर प्रसन्न करनेवाले, (सुवीर्यं देवं अग्निं हविष्मन्तः सप्त ईळते) उत्तम वीरतासे युक्त–सामर्थ्य संपन्न दीप्तिमान् अग्निकी हवि, चरु आदिसे युक्त सात होता स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥

[१३८८] हे अग्नि ! (त्वं प्रथमः वरेण्यः दूतः) तू देवोंका सर्वश्रेष्ठ और अग्रगण्य पूजनीय दूत है । (सः अमृताय हूयमानः मत्स्व) वह तू अमरत्व प्राप्तिके लिये बुलाया जाता हुआ प्रसन्न हो । (त्वां मरुतः मर्जयन्) तुझको मरुत्गण सुशोभित करते हैं । और (दाशुषः गृहे स्तोमेभिः भृगवः वि रुरुचुः) यजमानके घरमें स्तोत्रोंसे भृगु-वंशज–ऋषि विशेषरूपसे प्रज्वलित करते हैं ॥ ५ ॥

[१३८९] हे (सुक्रतो) उत्तम कर्म करनेवाले (अग्ने) अग्नि ! (यज्ञप्रिये यजमानय विश्वधायसं सुदुघां इषं दुहन्) यज्ञ-हविसे देवोंको प्रसन्न करनेवाले दानशील यजमानके लिये सर्वाधार और यथेष्ट दुग्धदात्री यज्ञरूप गायसे इच्छित याग फल दूह डालता हुआ तू (घृतस्नुः त्रिः ऋतानि दीद्यत्) अत्यंत प्रज्वलित होकर तीनों लोकोंको प्रकाशित करता हुआ, (यज्ञं वर्तिः परियन् सुक्रतूयसे) यज्ञ गृहमें सर्वत्र उपस्थित होकर स्वयं उत्तम यज्ञकर्म कर रहा है ॥ ६ ॥

त्वामिदस्या उषसो व्युष्टिषु दूतं कृण्वाना अयजन्त मानुषाः ।
त्वां देवा महयाय्याय वावृधु--राज्यमग्ने निमृजन्तो अध्वरे 　७
नि त्वा वसिष्ठा अह्वन्त वाजिनं गृणन्तो अग्ने विदथेषु वेधसः ।
रायस्पोषं यजमानेषु धारय यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः 　८ [६] (१३९१)

(१२३)

८ वेनो भार्गवः । वेनः । त्रिष्टुप् ।

अयं वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने ।
इममपां संगमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति 　१
समुद्रादूर्मिमुदियर्ति वेनो नभोजाः पृष्ठं हर्यतस्य दर्शि ।
ऋतस्य सानावधि विष्टपि भ्राट् समानं योनिमभ्यनूषत व्राः 　२
समानं पूर्वीरभि वावशाना--स्तिष्ठन् वत्सस्य मातरः सनीळाः ।
ऋतस्य सानावधि चक्रमाणा रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः 　३

[१३९०] हे (अग्ने) अग्नि ! (अस्याः उषसः व्युष्टिषु त्वाम् इत्) उषःकालके प्रकाशित होनेके कालमें सबेरेही तुझकोही (दूतं कृण्वानाः मानुषाः अजयन्त) देवदूत करके मनुष्य तेरी उपासना करते हैं अर्थात् सर्व देवात्मक तेरीही पूजा करते हैं। (देवाः त्वां महयाय्याय वावृधुः) देव भी तुझे पूजार्ह मानकर उपासना करते हैं और (अध्वरे आज्यं निमृजन्तः) वे यज्ञमें आज्य-घृतयुक्त हवि अर्पण करके तुझे संवर्धित करते हैं ॥ ७ ॥

[१३९१] हे (अग्ने) अग्नि ! (विदथेषु वेधसः गृणन्तः वसिष्ठाः) यज्ञोंमें अनुष्ठान कर्मकर्ता और स्तुति करनेवाले वसिष्ठ-पुत्र ऋषि (वाजिनं त्वा अह्वन्त) अन्नवान्-बलवान् तुझे ही बुलाते हैं। (यजमानेषु रायः पोषं धारय) वह तू दानशील भक्तोंमें ऐश्वर्य-धनको प्रदान कर और (यूयं स्वस्तिभिः नः सदा पात) तुम लोग शान्ति-कल्याणके साधनोंसे हमें सदा रक्षित करो ॥ ८ ॥

[१२३]

[१३९२] (अयं वेनः ज्योतिः जरायुः) यह वेन नामक तेजोमय देव मेघमें गर्भवत् अवस्थित है। (विमाने रजसः पृश्निगर्भाः चोदयत्) वह जल निर्माता आकाश-अन्तरिक्षके मध्यमें सूर्य किरणोंके सन्तानस्वरूप जलको पृथिवीपर गिराता है। (अपां सूर्यस्य संगमे इमं विप्राः मतिभिः शिशुं न रिहन्ति) जब जल और सूर्यका मिलन होता है, तब वेनको मेधावी जन बालकके समान अपनी स्तुतियोंसे सन्तुष्ट करते हैं ॥ १ ॥

[१३९३] (वेनः समुद्रात् उर्मिं उत् इयर्ति) वेन आकाशसे- अन्तरिक्षसे जलोंको प्रेरित करता है। (नभोजाः हर्यतस्य पृष्ठं दर्शि) आकाशमें उत्पन्न वेन कान्तिमान् अभित अन्तरिक्षका पृष्ठदेश स्पष्ट करता है- प्रभुके स्वरूपको प्रत्यक्ष करता है। (ऋतस्य सानौ विष्टपि अधि भ्राट्) वह सृष्टिके उच्चस्थान आकाशमें प्रकाशित होता है। (समानं योनिं अनु व्राः अभि अनूषत) उन दोनोंके समान जन्मभूमिकी भक्तजन स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

[१३९४] (पूर्वीः समानं अभि वावशानाः) अत्यंत प्राचीन, एकही स्थानमें रहकर शब्द करता हुआ और (वत्सस्य मातरः सनीळाः तिष्ठन्) एक ही गृहमें वेनके साथ रहनेवाले वत्ससमान विद्युत्-अग्निकी मातृभूत अन्तरिक्षमें उत्पन्न जल देवता है। (ऋतस्य सानौ अधि चक्रमाणाः मध्वः अमृतस्य) जलके उत्पत्ति स्थान उच्च पदमें-अन्तरिक्षमें वर्तमान मधुर उदककी (वाणीः रिहन्ति) वाणियां उसीकी-वेनकी स्तुति करती हैं ॥ ३ ॥

जानन्तों रूपमंकृपन्त विप्रा मृगस्य घोषं महिषस्य हि ग्मन् ।
ऋतेन यन्तो अधि सिन्धुमस्थुर्विदद्गन्धर्वो अमृतानि नाम ४

अप्सरा जारमुपसिष्मियाणा योषा बिभर्ति परमे व्योमन् ।
चरत् प्रियस्य योनिषु प्रियः सन् त्सीदत् पक्षे हिरण्यये स वेनः ५ [७]

नाके सुपर्णमुप यत् पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ६

ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थात् प्रत्यङ् चित्रा बिभ्रदस्यायुधानि ।
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्वर्ण नाम जनत प्रियाणि ७

द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति पश्यन् गृध्रस्य चक्षसा विधर्मन् ।
भानुः शुक्रेण शोचिषा चकानस्तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ८ [८] (१३९९)

[१३९५] (विप्राः मृगस्य महिषस्य रूपं जानन्तः अकृपन्त) ज्ञानी स्तोता लोग संशोधनीय और महान् वेनके उज्ज्वल रूपको जानते हुए उसकी स्तुति करते हैं । वे (घोषं हि ग्मन्) उसके नाद-शब्द-को जानते हैं, श्रवण करते हैं । (ऋतेन यन्तः सिन्धुं अधि अस्थुः) यज्ञसे वेनका यजन करके उसे प्राप्त करके उन्होंने प्रचुर जल प्राप्त किया; अर्थात् वेनने जलकी वृष्टि की (गन्धर्वः अमृतानि नाम विदत्) क्योंकि उदकोंके धारण कर्ता वेन अमृतरूप जलोंको जानता है, जल उसके वशमें है ॥ ४ ॥

[१३९६] (अप्सराः योषा उपसिष्मियाणा जारं) जैसे अप्सरा-सुंदर स्त्री मन्द स्मित करती हुई, प्रसन्न होकर अपने जारको (परमे व्योमन् बिभर्ति) -वेनको उत्कृष्ट स्थानपर -पदपर धारण करती है, वैसेही अन्तरिक्षमें चमकती हुई वेनको विद्युत् धारण करती है- खुष करती है, (प्रियस्य योनिषु चरत्) अपने प्रिय पति वेनके गृहोंमें विचरती है । (सः वेनः प्रियः सन् हिरण्यये पक्षे सीदत्) वह वेन उसका प्रियतम होकर तेजोमय पक्ष वा मेघमें विराजता है ॥ ५ ॥

[१३९७] हे वेन ! (त्वा हृदा वेनन्तः नाके यत् अभ्यचक्षत) तुझे हृदयपूर्वक मनसे चाहनेवाले स्तोतालोग जब देखते हैं, तब तू (उप) आता है । तू (सुपर्णं पतन्तं हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं) उत्तम रीतिसे आकाशमें उडनेवाले पक्षीके समान, सुवर्णमय पंखोंसे युक्त, वरुणके दूत, (यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम्) अग्निके उत्पत्ति स्थानमें पक्षी रूपसे विद्यमान् और सबका पोषक है ॥ ६ ॥

[१३९८] (ऊर्ध्वः गन्धर्वः प्रत्यङ् नाके अधि अस्थात्) सर्वोपरि विराजमान गौओं-जलोंका धारणकर्ता वेन हमारे अभिमुख होकर अन्तरिक्षमें रहता है । (अस्य चित्रा आयुधानि बिभ्रत्) वह चारों ओर विचित्र अस्त्र-शस्त्रोंको धारण करता हुआ और (सुरभि अत्कम् वसानः कम्) सुन्दर वस्त्रोंको कवचवत् धारण करता है । अनन्तर (स्वः न प्रियाणि नाम जनत) वह सूर्यके समान अभिलषित प्रिय जलोंको उत्पन्न करता है ॥ ७ ॥

[१३९९] (विधर्मन् द्रप्सः गृध्रस्य चक्षसा पश्यन्) अन्तरिक्षमें स्थित उदकको गृध्रके समान दूरदर्शक चक्षुसे देखते हुए, तेजस्वी वेन (यत् समुद्रं अभि जिगाति) जब समुद्रके पास जाता है, तब (भानुः शुक्रेण शोचिषा चकानः तृतीये रजसि प्रियाणि चक्रे) सूर्यके समान प्रदीप्त कान्तिसे चमकता हुआ पृथ्वीपर प्रिय उदकको उत्पन्न करता है ॥ ८ ॥

(१२४)

९ अग्निः, १, ५-९ अग्नि-वरुण-सोमाः। १ अग्निः; २-४ अग्नेरात्मा; ५, ७-८ वरुणः; ६ सोमः, ९ इन्द्रः। त्रिष्टुप्, ७ जगती।

इमं नो अग्न उप यज्ञमेहि पञ्चयामं त्रिवृतं सप्ततन्तुम्।
असो हव्यवाळुत नः पुरोगा ज्योगेव दीर्घं तम आशयिष्ठाः १
अदेवाद्देवः प्रचता गुहा यन् प्रपश्यमानो अमृतत्वमेमि।
शिवं यत् सन्तमशिवो जहामि स्वात् सख्यादरणीं नाभिमेमि २
पश्यन्नन्यस्या अतिथिं वयाया ऋतस्य धाम वि मिमे पुरूणि।
शंसामि पित्रे असुराय शेवमयज्ञियाद्यज्ञियं भागमेमि ३
बह्वीः समा अकरमन्तरस्मिन्निन्द्रं वृणानः पितरं जहामि।
अग्निः सोमो वरुणस्ते च्यवन्ते पर्यावर्द्राष्ट्रं तदवाम्यायन् ४
निर्माया उ त्ये असुरा अभूवन् त्वं च मा वरुण कामयासे।
ऋतेन राजन्ननृतं विविञ्चन् मम राष्ट्रस्याधिपत्यमेहि ५ [९]

[१२४]

[१४००] हे (अग्ने) अग्नि ! (नः इमं यज्ञं उप एहि) तू हमारे इस यज्ञमें आ, प्राप्त हो। (पञ्चयामं त्रिवृतं सप्ततन्तुं) वह पांच नियामकोंसे युक्त -चार ऋत्विज् और पांचवा यजमान, तीन अनुष्ठान -पाकयज्ञ, हविर्यज्ञ सोमयज्ञ और सात होताओंसे युक्त है। अनन्तर तू (नः हव्यवाट् असः) हमारे हवियोंका वाहक -भोक्ता हो। (उत नः पुरोगाः) हमारा अग्रगामी नायक हो। (ज्योक् एव दीर्घे तमः आशयिष्ठाः) तू दीर्घकाल तक विद्यमान इस महान् अंधकारसे पूर्ण गुफाको प्रकाशित कर ॥ १ ॥

[१४०१] (अदेवात् गुहा प्रचता यन् देवः प्रपश्यमानः अमृतत्वं एमि) अदेव अर्थात् दीप्तिहीन अपनेको समझकर गुफामें रहनेवाला देवोंकी याचनासे उससे बाहर होकर मैं स्वयं ज्योतिःस्वरूप देव होकर, उत्तम रीतिसे देवोंसे कल्पित हविर्भाग देखकर अमर देवत्वको प्राप्त हो जाता हूं। मैं शोभन यज्ञको प्राप्त करता हूं। (शिवं सन्तं अशिवः यत् जहामि) अति कल्याण युक्त होनेपर भी तुम्हारा यज्ञ समाप्ति कालके समय अप्रकाशित होकर मैं त्यागता हूं; तब (नाभिं अरणीं स्वात् सख्यात् एमि) मैं उत्पत्ति स्थान और चिरसखा अरणिमें ही प्राप्त हो जाता हूं ॥ २ ॥

[१४०२] (अन्यस्याः वयायाः अतिथिं पश्यन्) अपने भिन्न पृथिवीके अतिरिक्त जो आकाश गमन मार्ग है, उसके अतिथि सूर्यकी गतिको जानकर मैं वसन्तादि ऋतुओंमें (ऋतस्य पुरूणि धाम वि मिमे) यज्ञके अनेक स्थानोंको बनाता हूं। (पित्रे असुराय शेवं शंसामि) पितृभूत देवोंके सुखप्राप्तिके लिये स्तोत्रोंका गान करता हूं। (अयज्ञियात् यज्ञियं एमि) और अयज्ञीय प्रवेशसे मैं यज्ञार्ह स्थानमें आता हूं ॥ ३ ॥

[१४०३] (अस्मिन् बह्वीः समाः अकरम्) इस यज्ञवेदि स्थानमें मैंने अनेक वर्ष बिताये हैं। वहां (इन्द्रं वृणानः पितरं जहामि) इन्द्रको वरण करता हुआ अपने पिता अरणिको त्याग देता हूं। (ते अग्निः सोमः वरुणः च्यवन्ते) उस समय वे अग्नि, सोम और वरुण आदिका पतन हो जाता है। (आयन् परि आवत् तत् राष्ट्रं अवामि) तब मैं आकर पुनः राष्ट्र प्राप्त कर, उसकी रक्षा करता हूं ॥ ४ ॥

[१४०४] (त्ये असुराः निर्मायाः अभूवन्) मेरे आते ही वे असुर सामर्थ्य रहित हो गये। हे (वरुण) वरुण ! (त्वं च मा कामयासे) तू जो मुझे चाहते हो तो, हे (राजन्) परमेश्वर ! (ऋतेन अनृतं विविञ्चन्) सत्यसे असत्य- मिथ्याको अलग करके (मम राष्ट्रस्य अधिपत्यं एहि) मेरे राष्ट्रका आधिपत्य-स्वामित्व प्राप्त कर ॥५॥

इदं स्वरिदमिदास वाम--मयं प्रकाश उर्व १न्तरिक्षम् ।
हनाव वृत्रं निरेहि सोम हविष्ट्वा सन्तं हविषा यजाम ६
कविः कवित्वा दिवि रूपमासज--दप्रभूती वरुणो निरपः सृजत् ।
क्षेमं कृण्वाना जनयो न सिन्धव--स्ता अस्य वर्णं शुचयो भरिभ्रति ७
ता अस्य ज्येष्ठमिन्द्रियं सचन्ते ता ईमा क्षेति स्वधया मदन्तीः ।
ता ईं विशो न राजानं वृणाना बीभत्सुवो अप वृत्रादतिष्ठन् ८
बीभत्सूनां सयुजं हंसमाहु--रपां दिव्यानां सख्ये चरन्तम् ।
अनुष्टुभमनु चर्चूर्यमाण--मिन्द्रं नि चिक्युः कवयो मनीषा ९ [१०] (१४०८)

(१२५)

८ वागाम्भृणी । आत्मा । त्रिष्टुप्, २ जगती ।

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरा--म्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।
अहं मित्रावरुणोभा बिभ--र्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा १

[१४०५] हे सोम ! (इदं स्वः इदं इत् वामं आस) यह सुंदर स्वर्ग है, यह सबसे अत्यन्त रमणीय है। (अयं प्रकाशः ऊरु अन्तरिक्षम्) यह प्रकाश है, और यह विस्तीर्ण आकाश है। यह सब तू देख। इस समय हम दोनों (वृत्रं हनाव) वृत्रका वध करें, इसलिये (निः एहि) प्रकट हो। (हविः सन्तं हविषा यजाम) हविस्वरूप तुझको ही हम हवि अर्पण करते हैं– तेरी ही उपासना करते हैं ॥ ६ ॥

[१४०६] (कविः कवित्वा दिवि रूपम् आसजत्) क्रान्तदर्शी अग्नि अपने कर्तृत्व सामर्थ्यसे द्युलोकमें अपने तेजको स्थापित करता है। (अप्रभूती वरुण अपः निः सृजत्) अत्यंत अल्प प्रयत्नसे वरुण मेघसे जलको निर्माण करता है। (सिन्धवः जनयः न क्षेमं शुचयः अस्य वर्णं भरिभ्रति) जलवृष्टिसे पूर्ण होकर नदियां, जिस प्रकार स्त्रियां पतिके कल्याण–सुखके लिये रत होती हैं, उसी प्रकार जगत्‌का हित–रक्षण करनेके लिये परिशुद्ध–पवित्र होकर वेगसे बहती हुई इसके तेजको धारण करती हैं ॥ ७ ॥

[१४०७] (ताः अस्य ज्येष्ठं इन्द्रियं सचन्ते) वे जल वरुणका अत्यंत श्रेष्ठ सामर्थ्यको प्राप्त करते हैं, धारण करते हैं। (स्वधया मदन्तीः ताः ईं आ क्षेति) वह जल हवि–अन्न प्राप्त कर सबोंको तृप्त कर, आनन्दित होकर, वरुणके पास जाता है। (विशः न राजानं ताः ईं वृणानाः) जैसे भयके कारण प्रजा राजाको आश्रय करती है, वैसेही जल वरुणको ही वरण करके (बीभत्सुवः वृत्रात् अप अतिष्ठन्) वृत्रसे भयभीत होकर उससे दूर रहता है ॥ ८ ॥

[१४०८] (बीभत्सूनां सयुजं हंसं आहुः) शुद्ध जलोंका सखा हंस –सूर्यही बतलाया जाता है। (दिव्यानां अपां सख्ये चरन्तं अनुष्टुभं) दिव्य जलोंके मित्र भावमें स्थित और स्तुत्य (चर्चूर्यमाणं) वह विचरणशील है। इन गुणोंसे युक्त (इन्द्रं कवयः मनीषा नि चिक्युः) इन्द्रकी क्रान्तदर्शी ऋषि स्तुतियोंसे उपासना करते हैं ॥ ९ ॥

[१२५]

[१४०९] (अहं रुद्रेभिः वसुभिः चरामि) मैं रुद्रों और वसुओंके साथ विचरण करती हूं। (अहं आदित्यैः उत विश्वदेवैः) मैं आदित्य और विश्वेदेवोंके साथ रहती हूं। (अहं मित्रावरुणा उभा बिभर्मि) मैं मित्र और वरुणको धारण करती हूं। (अहं इन्द्राग्नी उभा अश्विना अहम्) मैं इन्द्र, अग्नि और दोनों अश्विनोंको मैं ही धारण करती हूं ॥ १ ॥

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते २ (१४१०)
अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ३
मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ४
अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ५ [११]

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उं ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ६
अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन् मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे ।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि ७

[१४१०] (अहं आहनसं सोमं बिभर्मि) मैं शत्रुहन्ता सोमको धारण करती हूं । (अहं त्वष्टारं उत पूषणं भगं) मैं त्वष्टा, पूषा और भगको धारण करती हूं । (अहं हविष्मते सुप्राव्ये सुन्वते यजमानाय द्रविणं दधामि) मैं अन्नादि हविष्य पदार्थवाले, उत्तम हवियोंसे देवोंको तृप्त करनेवाले और सोमरस अभिषव करनेवाले यजमानको यज्ञफलरूप धन प्रदान करती हूं ॥ २ ॥

[१४११] (अहं राष्ट्री वसूनां संगमनी) मैं सब जगत्की स्वामिनी हूं, धन प्रदान करनेवाली हूं । (यज्ञियानां प्रथमा चिकितुषी) यज्ञार्ह देवोंमें मुख्य और ज्ञानवती हूं । (तां भूरिस्थात्रां भूरि आवेशन्तीं) उस मुझको ही बहुतसे रूपोंमें विद्यमान और सर्वत्र अन्तर्गत रहनेवाली मुझको (देवाः पुरुत्रा वि अदधुः) देव अनेक प्रकारसे प्रतिपादन–वर्णन करते हैं ॥ ३ ॥

[१४१२] (यः अन्नं अत्ति यः विपश्यति यः प्राणिति यः ईं उक्तम् शृणोति सः मया) जो अन्न भोग करता है, जो देखता है, जो प्राण धारण करता है और जो इस ज्ञानका श्रवण करता है, वह मेरी सहाय्यतासे यह सब करता है । और (मां अमन्तवः ते उपक्षियन्ति) जो मुझे मानते-जानते नहीं, वे नष्ट हो जाते हैं । हे (श्रुत) प्राज्ञ मित्र ! (श्रुधि) तू सुन । (ते श्रद्धिवं वदामि) तुझे मैं श्रद्धेय ज्ञानको कहती हूं ॥ ४ ॥

[१४१३] (अहं स्वयं एव इदं वदामि) मैं स्वयं ही इस ज्ञानका उपदेश करती हूं, जिसको (देवेभिः उत मानुषेभिः जुष्टं) देव और मनुष्य श्रद्धापूर्वक मनन करते हैं; अनुभव करते हैं । (यं कामये तंतं उग्रं कृणोमि) मैं जिसको चाहती हूं, उसको श्रेष्ठ बलवान् करती हूं । (तं ब्रह्माणं, तं ऋषिं, तं सुमेधाम्) उसकोही स्तोता– ब्रह्मा, उसकोही ऋषि और उसकोही उत्तम बुद्धिमान् करती हूं ॥ ५ ॥

[१४१४] (ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवै रुद्राय धनुः अहं आ तनोमि) ब्रह्मद्वेष्टा हिंसक शत्रुका वध करनेके लिये, दुष्टोंको रुलानेवाले रुद्रके धनुषको मैं सज्ज करती हू, सर्वत्र तानती हूं । (अहं जनाय समदं कृणोमि) मैं मनुष्योंके कल्याणके लिये युद्ध करती हूं । (अहं द्यावापृथिवी आ विवेश) मैं द्यावापृथिवी व्याप्त करती हूं ॥ ६ ॥

[१४१५] (अहं अस्य मूर्धनि पितरं सुवे) मैं इस जगत्के शिरस्थानमें स्थित द्युलोकको उत्पन्न करती हूं । (मम योनिः समुद्रे अप्सु अन्तः) मेरा उत्पत्तिस्थान समुद्रके जलमें है– परमेश्वरकी बुद्धिमें है । (ततः विश्वा भुवना अनु वि तिष्ठे) उसी स्थानसे सारे संसारको व्याप्त करती हूं और (उत अमूं द्यां वर्ष्मणा उप स्पृशामि) मैं इस महान् अंतरिक्षको अपनी उन्नत देहसे स्पर्श करती हूं । कारणभूत मैं कल्याणमय होकर सब जगत्को व्यापती हूं ॥ ७ ॥

अहमेव वात इव प्र वाम्या-रभमाणा भुवनानि विश्वा ।
परो दिवा पर एना पृथिव्यै-तावती महिना सं बभूव ८ [१२] (१४१६)

(१२६)

८ शैलूषिः कुल्मलबर्हिषो, वामदेव्योंऽहोमुग्वा । विश्वे देवाः । उपरिष्टाद्बृहती, ८ त्रिष्टुप् ।

न तमंहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम् ।
सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयन्ति वरुणो अति द्विषः १
तद्धि वयं वृणीमहे वरुण मित्रार्यमन् ।
येना निरंहसो यूयं पाथ नेथा च मर्त्यमति द्विषः २
ते नूनं नोऽयमूतये वरुणो मित्रो अर्यमा ।
नयिष्ठा उ नो नेषणि पर्षिष्ठा उ नः पर्षण्यति द्विषः ३
यूयं विश्वं परि पाथ वरुणो मित्रो अर्यमा ।
युष्माकं शर्मणि प्रिये स्याम सुप्रणीतयोऽति द्विषः ४
आदित्यासो अति स्रिधो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
उग्रं मरुद्भी रुद्रं हुवेमे-न्द्रमग्निं स्वस्तयेऽति द्विषः ५

[१४१६] (अहं एव विश्वा भुवनानि आरभमाणा) मैं ही सब भुवनोंको निर्माण करती हुई (वातः इव प्र वामि) वायुके समान सर्वत्र व्यापती हूं- बहती हूं । (दिवा परः एना पृथिव्या परः) स्वर्गसे भी और इस पृथिवीसे भी श्रेष्ठ (महिना एतावती सं बभूव) मैं अपने महान् सामर्थ्यसे प्रकट होती हूं ॥ ८ ॥

[१२६]

[१४१७] हे (देवासः) देवो ! (अर्यमा मित्रः वरुणः सजोषसः यं द्विषः नयन्ति) अर्यमा, मित्र और वरुण-ये तीन देव प्रीतियुक्त-एकमत होकर जिस मनुष्यको शत्रुओंसे पार कर देते हैं, (तं मर्त्यं अंहः दुरितं न अष्ट) उस मनुष्यको पाप और पापका अमङ्गल फल प्राप्त नहीं होता ॥ १ ॥

[१४१८] हे (वरुण मित्र अर्यमन्) वरुण ! हे मित्र ! हे अर्यमन् ! (येन मर्त्यं अंहसः यूयं निः पाथ) जिस उपायसे मनुष्यको पापसे तुम रक्षा करते हो और (द्विषः अति नेथ) शत्रुओंसे पार करते हो, बचाते हो, (तत् हि वयं वृणीमहे) उसही संरक्षणकी हम तुमसे प्रार्थना करते हैं ॥ २ ॥

[१४१९] (अयं वरुणः मित्रः अर्यमा ते नूनं नः ऊतये) यह वरुण, मित्र और अर्यमा वे सब देव अवश्य ही हमारी रक्षा करेंगे । (नेषणि नः उ नयिष्ठाः) उत्तम मार्गमें हमें ले चलो । (पर्षणि नः द्विषः अति पर्षिष्ठाः) संकटसे पार करनेके स्थलपर हमें शत्रुओंसे दूर सुरक्षित पहुंचाओ ॥ ३ ॥

[१४२०] (वरुणः मित्रः अर्यमा यूयं विश्वं परिपाथ) वरुण, मित्र और अर्यमा, तुम लोग सब जगत्‌को उत्तम प्रकारसे रक्षा करते हो । हे (सुप्रणीतयः) उत्तम सत्कार योग्य देवो ! (युष्माकं प्रिये शर्मणि स्याम) तुम्हारे अत्यंत प्रिय शरणीय सुखमें हम रहे और (द्विषः अति) शत्रुओंके पार हों ॥ ४ ॥

[१४२१] (आदित्यासः वरुणः मित्रः अर्यमा स्रिधः अति) अदितिके पुत्र वरुण, मित्र और अर्यमा ये सब देव हमें हिंसक शत्रुओंसे पार करें । (मरुद्भिः उग्रं रुद्रं इन्द्रं अग्निं स्वस्तये हुवेम) मरुतोंके साथ उग्र-तेजस्वी रुद्र, इन्द्र और अग्निको हमारे कल्याणके लिये हम बुलाते हैं । (द्विषः अति) वे हमें शत्रुओंके पार करें ॥ ५ ॥

नेतार ऊ षु णस्तिरो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
अति विश्वानि दुरिता राजानश्चर्षणीनामति द्विषः ६
शुनमस्मभ्यमूतये वरुणो मित्रो अर्यमा ।
शर्म यच्छन्तु सप्रथ आदित्यासो यदीमहे अति द्विषः ७ (१४२३)
यथा ह त्यद्वसवो गौर्यं चित् पदि षितामर्मुञ्चता यजत्राः ।
एवो ष्व१स्मन्मुञ्चता व्यंहः प्र तार्यग्ने प्रतरं न आयुः ८ [१३] (१४२४)

(१२७)

८ कुशिकः सौभरः, रात्रिर्वा भारद्वाजी । रात्रिः । गायत्री ।

रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्य१क्षभिः । विश्वा अधि श्रियोऽधित १
ओर्वप्रा अमर्त्या निवतो देव्यु१द्वतः । ज्योतिषा बाधते तमः २
निरु स्वसारमस्कृतोषसं देव्यायती । अपेदु हासते तमः ३
सा नो अद्य यस्या वयं नि ते यामन्नविक्ष्महि । वृक्षे न वसतिं वयः ४

[१४२२] (नेतारः वरुणः मित्रः अर्यमा नः सु तिरः उ) नेता-स्वामी वरुण, मित्र और अर्यमा हमारे पापोंको नष्ट करें और हमारी सुखदायक रक्षा करें। (चर्षणीनां राजानः विश्वानि दुरिता अति) मनुष्योंके स्वामी वे सब देव हमें सब पापफलोंसे पार करें और (द्विषः अति) शत्रुओंसे बचावें ॥ ६ ॥

[१४२३] (वरुणः मित्रः अर्यमा उतये यत् ईमहे) वरुण, मित्र और अर्यमा ये सब देव हम अपने सुख प्राप्ति और रक्षाके लिये जिसकी प्रार्थना करते हैं, (आदित्यासः शुनं सप्रथः शर्म अस्मभ्यं यच्छन्तु) वे अदितिके पुत्र उस सुखको और सब प्रकारसे उत्कृष्ट शत्रुनाशक बल हमें प्रदान करें। (द्विषः अति) और हमें शत्रुओंसे बचावें ॥ ७ ॥

[१४२४] हे (वसवः यजत्राः) संरक्षक और यज्ञार्ह देवो ! (त्यत् यथा ह पदि सितां गौर्यं अमुञ्चत) इस प्रकार प्रसिद्ध तुम जिस समय शुभ्रवर्ण गौका पैर बांधा गया था, तब तुमने उसे मुक्त किया था। (एव अस्मत् अंहः सु वि मुञ्चत) इस ही प्रकार हमें पापसे उत्तमरीतिसे मुक्त करो। हे (अग्ने) अग्नि ! (नः आयुः प्रतरं प्र तारि) हमें दीर्घ आयुष्य प्रदान कर ॥ ८ ॥

[१२७]

[१४२५] (आयती पुरुत्रा अक्षभिः देवी रात्री व्यख्यत्) आती हुई, अनेक देशोंपर विस्तृत होकर नक्षत्ररूप नेत्रोंसे देवी रात्री सब संसारको देखती है। (विश्वाः श्रियः अधि अधित) और यह सब प्रकारकी शोभा-सौंदर्यको धारण करती है ॥ १ ॥

[१४२६] (अमर्त्या देवी उरु निवतः उद्वतः आ अप्राः) अविनाशी देवी रात्रि प्रथम अन्तरिक्ष, अनन्तर नीचे और ऊंचे प्रदेशोंको आच्छादित करती है। (ज्योतिषा तमः बाधते) और फिर ग्रहनक्षत्रादिरूप तेजसे अन्धकारको नष्ट करती है ॥ २ ॥

[१४२७] (आयती देवी स्वसारं उषसं निः अकृत) आती हुई देवी रात्रि अपनी भगिनी उषाको परिग्रहित करती है। (तमः इत् उ अप हासते) और उषःकालमें अन्धकारको दूर करती है ॥ ३ ॥

[१४२८] (वयः वृक्षे न वसतिं) जैसे रात्रिकालमें पक्षी वृक्षपर निवास करते हैं, वैसेही (यस्याः ते यामन् वयं नि अविक्ष्महि) जिस उसके आनेपर हम सुखसे गृहमें आश्रय किये हुए हैं, (सा नः अद्य) वह रात्रि देवी हमपर आज प्रसन्न हो ॥ ४ ॥

नि ग्रामा॑सो अविक्षत॒ नि प॒द्वन्तो॒ नि प॒क्षिण॑ः । नि श्ये॒नास॑श्चिद॒र्थिन॑ः ५
याव॒या वृ॒क्यं॑१ वृक॑ं य॒वय॑ स्ते॒नमू॑र्म्ये । अथा॑ नः सु॒तरा॑ भव ६
उप॑ मा॒ पेपि॑शत् तम॑ः कृ॒ष्णं व्य॑क्तमस्थित । उष॑ ऋ॒णेव॑ यातय ७
उप॑ ते॒ गा इ॒वाक॑रं वृणी॒ष्व दु॑हितर्दिवः । रात्रि॒ स्तोमं॒ न जि॒ग्युषे॑ ८ [१४] (१४३२)

(१२८)

९ विहव्य आङ्गिरसः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप्, ९ जगती ।

ममा॒ग्ने वर्चो॑ विह॒वेष्व॑स्तु व॒यं त्वेन्धा॑नास्त॒न्वं॑ पुषेम ।
मह्यं॑ नमन्तां प्र॒दिश॒श्चत॑स्र॒ स्त्वयाध्य॑क्षेण॒ पृत॑ना जयेम १
मम॑ दे॒वा वि॑ह॒वे स॑न्तु॒ सर्व॑ इन्द्र॑वन्तो म॒रुतो॒ विष्णु॑र॒ग्निः ।
ममा॒न्तरि॑क्षमु॒रुलो॑कमस्तु॒ मह्यं॒ वात॑ः पवतां॒ कामे॑ अ॒स्मिन् २

[१४२९] (ग्रामासः नि अविक्षत) रात्रिमें सब जन सुखसे सोते हैं। और (पद्वन्तः नि पक्षिणः नि श्येनासः अर्थिनः चित् नि) पादचारी गौ, अश्व आदि पशु–पक्षी और शीघ्रगामी श्येन आदि प्राणि भी विश्रब्ध होकर सोते है ॥ ५ ॥

[१४३०] हे (ऊर्म्ये) रात्रि ! (वृक्यं वृकं यवय) वृकी और वृकको हमसे अलग कर, जिससे वे हमें काट नहीं सके । (स्तेनं यवय) चोरको हमसे दूर ले जा (अथ नः सुतरा भव) और हमारे लिये तू सर्व प्रकारसे सुखकारी हो ॥ ६ ॥

[१४३१] (पेपिशत् कृष्णं तमः व्यक्तं मा आ उप अस्थित) गाढ काला अन्धकार स्पष्टरूपसे मेरे पास आ गया है । हे (उषः) उषा देवी ! तू (ऋणा इव यातय) स्तोताओंके ऋण धन प्रदान करके जैसे नष्ट करती है, वैसेही इस अन्धकारको हटा दे ॥ ७ ॥

[१४३२] (रात्रि) रात्रि ! (ते गाः इव आकरम्) तुझको दूध देनेवाली गौके समान स्तुतिओंसे प्राप्त करूं । हे (दिवः दुहितः) सूर्यकन्ये ! (जिग्युषे स्तोमं न वृणीष्व) विनयशील मेरे स्तुतिवचनोंके समान हविको भी ग्रहण कर ॥ ८ ॥

[१२८]

[१४३३] हे (अग्ने) अग्नि ! (विहवेषु मम वर्चः अस्तु) संग्रामों वा यज्ञोंमें तेरी कृपासे मुझमें तेज प्राप्त हो । (त्वा इन्धानाः वयं तन्वं पुषेम) तुझे समिधाओंसे प्रदीप्त करते हुए हम अपने शरीरको पुष्ट करते हैं । (मह्यं चतस्रः प्रदिशः नमन्ताम्) मेरे लिये चारों दिशाएं नम्र –विनित हों । (त्वया अध्यक्षेण पृतनाः जयेम) तुझे स्वामी प्राप्त कर हम शत्रुसेनाओंका विजय करें ॥ १ ॥

[१४३४] (इन्द्रवन्तः मरुतः विष्णुः अग्निः सर्वे देवाः विहवे मम सन्तु) इन्द्रसे युक्त मरुत् गण, विष्णु और अग्नि– ये सब देव युद्धमें मुझे सहायता करें । (अन्तरिक्षं मम उरुलोकं अस्तु) अन्तरिक्षके समान मेरा विशाल लोक अधिक प्रकाशमान् हो ! (मह्यं अस्मिन् कामे वातः पवताम्) मेरे इस अभिलषित कार्यमें वायु अनुकूल होकर बहे ॥ २ ॥

मयि देवा द्रविणमा यजन्तां मय्याशीरस्तु मयि देवहूतिः ।
दैव्या होतारो वनुषन्त पूर्वे ऽरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीराः ३
मह्यं यजन्तु मम यानि हव्या ऽऽकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु ।
एनो मा नि गां कतमच्चनाहं विश्वे देवासो अधि वोचता नः ४
देवीः षळुर्वीरुरु नः कृणोत विश्वे देवास इह वीरयध्वम् ।
मा हास्महि प्रजया मा तनूभि-र्मा रधाम द्विषते सोम राजन् ५ [१५]

अग्ने मन्युं प्रतिनुदन् परेषा-मदब्धो गोपाः परि पाहि नस्त्वम् ।
प्रत्यञ्चो यन्तु निगुतः पुनस्ते-ऽमैषां चित्तं प्रबुधां वि नेशत् ६ (१४३८)
धाता धातॄणां भुवनस्य यस्पति-र्देवं त्रातारमभिमातिषाहम् ।
इमं यज्ञमश्विनोभा बृहस्पति-र्देवाः पान्तु यजमानं न्यर्थात् ७

[१४३५] (देवाः मयि द्रविणं आ यजन्ताम्) समस्त देव मुझे धन प्रदान करें । (आशीः मयि अस्तु) और उत्तम यज्ञ फल मुझे प्राप्त हो । (देवहूतिः मयि) देवोंके लिये अनुष्ठित मेरे यज्ञ कर्म मेरे में स्थिर हों । (पूर्वे दैव्याः होतारः वनुषन्त) प्राचीन कालमें जिन्होंने देवोंके लिये होम किया है, वे होता अनुकूल होकर देवोंकी उत्तम सेवा करें । हम (तन्वा अरिष्टाः सुवीराः स्याम) भी शरीरसे सुदृढ होकर उत्तम वीर सन्तानसे युक्त हों ॥ ३ ॥

[१४३६] (मह्यं यानि हव्या यजन्तु) मेरे लिये ऋत्विज जो मेरी चरु पुरोडाशादि यज्ञ सामग्री है, उन हविओंसे देवोंको यजन करें । (मे मनसः आकूतिः सत्या अस्तु) मेरे मनके संकल्प-प्रार्थना सत्य हो । (अहं कतमत् चन एनः मा निगाम्) मैं किसी भी पापमें लिप्त न हो जाऊं । हे (विश्वे देवासः) विश्वे देवो ! (नः अधि वोचत) तुम हमें यह आशीर्वचन दें ॥ ४ ॥

[१४३७] हे (षट्-उर्वीः देवीः) छः -द्यौ, पृथिवी, दिन, रात्रि, जल और ओषधि -देवियो ! (नः उरु कृणोत) हमें अति विपुल धन, बल प्रदान करो । हे (विश्वे देवासः) विश्वे देवो ! (इह वीरयध्वम्) यहां धन प्राप्तिके विषयमें पराक्रम करो, जिससे वह धन हमें मिले । (प्रजया मा हास्महि मा तनूभिः) हम पुत्रादि प्रजासे रहित न हों और हम देहोंसे पुत्रादि-सन्ततिसे वर्जित न हों । हे (राजन् सोम) राजा सोम ! (द्विषते मा रधाम) हमारा द्वेष करनेवाले शत्रुके हम कभी वश न हों ॥ ५ ॥

[१४३८] हे (अग्ने) अग्नि ! (परेषां मन्युं प्रतिनुदन् अदब्ध गोपाः) दूसरे शत्रुओंका क्रोध विफल करता हुआ स्वयं अहिंसित होकर रक्षा करनेवाला (त्वं नः परि पाहि) तू हमारी सब ओरसे रक्षा कर । (ते निगुतः प्रत्यञ्चः पुनः यन्तु) वे भययुक्त होकर अव्यक्त बातें करनेवाले शत्रु फिर पराङ्मुख होकर जायं । (एषां प्रबुधां चित्तं अमा वि नेशात्) इन बुद्धिमान् शत्रुओंका चित्त-ज्ञानसाधक मन एक साथ ही नष्ट हो जांय ॥ ६ ॥

[१४३९] (धातॄणां धाता यः भुवनस्य पतिः) जो सृष्टिकर्ताओंका भी स्रष्टा है, जो महान् विश्वका स्वामी है, (देवं त्रातारं अभिमातिषाहम्) उस सर्व प्रकाशक, रक्षक-पालनकर्ता और अभिमानी शत्रुओंका विजेता इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूं ! (उभा अश्विना बृहस्पतिः देवाः इमं यज्ञं) दोनों अश्विनीकुमार और बृहस्पति प्रमुख समस्त देव इस यज्ञकी और (न्यर्थात् यजमानं पान्तु) पापोंसे यजमानकी रक्षा करें ॥ ७ ॥

उरुव्यचा नो महिषः शर्म यंस-दस्मिन् हवे पुरुहूतः पुरुक्षुः ।
स नः प्रजायै हर्यश्व मृळये-न्द्र मा नो रीरिषो मा परा दाः ८
ये नः सपत्ना अप ते भवन्त्वि-न्द्राग्निभ्यामव बाधामहे तान् ।
वसवो रुद्रा आदित्या उपरिस्पृशं मोग्रं चेत्तारमधिराजमक्रन् ९ [१६] (१४४१)

(१२९) [एकादशोऽनुवाकः ॥११॥ सू० १२९-१५१]

७ प्रजापतिः परमेष्ठी । भाववृत्तम् । त्रिष्टुप् ।

नासदासीन्नो सदासीत् तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ।
किमावरीवः कुह कस्य शर्म-न्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् १
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न राव्या अह्न आसीत् प्रकेतः ।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास २

[१४४०] (उरुव्यचाः महिषः पुरुहूतः पुरुक्षुः) सर्वत्र व्यापक, अत्यंत पूजनीय, बहुत यजमानोंसे बुलाने योग्य और अनेक स्थानोंमें रहनेवाला इन्द्र (अस्मिन् हवे नः शर्म यंसत्) इस यज्ञमें हमें सुख प्रदान करे । हे (हर्यश्व इन्द्र) हरित वर्ण अश्वके स्वामी इन्द्र ! (सः नः प्रजायै मृळय) वह तू हमारे पुत्र पौत्रादिकोंको सुखी कर । (नः मा रीरिषः) हमें बहुत दुःखी न कर । (मा परा दाः) हमें मत त्याग ॥ ८ ॥

[१४४१] (ये नः सपत्नाः ते अप भवन्तु) जो हमारे शत्रु हैं, वे दूर हों । (तान् इन्द्राग्निभ्यां अव बाधामहे) उन शत्रुओंको इन्द्र और अग्निकी सहायतासे हम नष्ट करें । (वसवः रुद्राः आदित्याः मा उपरिस्पृशम् अक्रन्) वसु, रुद्र और आदित्य मुझे सर्वश्रेष्ठ पदपर अधिष्ठित करें और (उग्रं चेत्तारं अधिराजं) मुझे उग्र, बुद्धिमान् और अधिराज करें ॥ ९ ॥

[१२९]

[१४४२] प्रलयावस्थामें (न असत् आसीत् न सत् आसीत्) न सत् था और न असत् था, (तदानीं) उस समय (न रजः आसीत्) न लोक था और (व्योमा परः यत् न) आकाशसे परे जो कुछ है वह भी नहीं था । उस समय (आवरीवः किं) सबको ढकनेवाला क्या था ? (कुह कस्य शर्मन्) कहां किसका आश्रय था ? (गहनं गभीरं अम्भः किं आसीत्) अगाध और गम्भीर जल क्या था ?

प्रलयावस्थामें न पंचभूतादि सत पदार्थही थे, न कुछ अभावरूप असत्ही था, न आकाश था, न लोकही थे । फिर किसने किसको ढका ? कैसे ढका ? किससे ढका ? यह सब अनिश्चितही था ॥ १ ॥

[१४४३] (तर्हि) उस समय (न मृत्युः न अमृतं आसीत्) न मृत्यु थी न अमृत था, (राव्याः अह्नः प्रकेतः न आसीत्) सूर्यचन्द्रके अभावसे रात्री और दिनका ज्ञान भी नहीं था । उस (अ-वातं) वायुसे रहित दशामें (एकं तत्) एक अकेला वह ही ब्रह्म (स्वधया) अपनी शक्तिके साथ (आ नीत्) प्राण ले रहा था । (तस्मात् परः अन्यत् किंचन न आस) उससे परे या भिन्न और कोई वस्तु नहीं थी ।

मृत्यु, अमृत भी कुछ नहीं था, और सूर्य चन्द्रमाके न होनेसे दिन रातका भेद भी मालूम नहीं होता था । पर एक ब्रह्म ही ऐसी दशामें विद्यमान था ॥ २ ॥

तम॑ आसी॒त् तम॑सा गू॒ळ्हमग्रे॑ ऽप्रके॒तं स॑लि॒लं सर्व॑मा इ॒दम् ।
तु॒च्छ्येना॒भ्वपि॑हितं॒ यदासी॑त् तप॑स॒स्तन्म॑हि॒नाजा॑य॒तैक॑म् ३
काम॒स्तदग्रे॒ सम॑वर्त॒ताधि॒ मन॑सो॒ रेत॑: प्रथ॒मं यदासी॑त् ।
स॒तो बन्धु॒मस॑ति॒ निर॑विन्दन् हृ॒दि प्र॒तीष्या॑ क॒वयो॑ मनी॒षा ४
ति॒र॒श्चीनो॒ वित॑तो र॒श्मिरे॑षा॒मधः॑ स्विदा॒सी३दु॒परि॑ स्विदासी३त् ।
रे॒तो॒धा आ॑सन् महि॒मान॑ आसन् त्स्व॒धा अ॒वस्ता॒त् प्रय॑तिः प॒रस्ता॑त् ५
को अ॒द्धा वे॑द॒ क इ॒ह प्र वो॑च॒त् कुत॒ आजा॑ता॒ कुत॑ इ॒यं विसृ॑ष्टिः ।
अ॒र्वाग्दे॒वा अ॒स्य वि॒सर्ज॑ने॒नाथा॒ को वे॑द॒ यत॑ आब॒भूव॑ ६

[१४४४] (अग्रे) सृष्टिसे पूर्व प्रलय दशामें (तमः आसीत्) अन्धकार था, (तमसा गूळ्हं) सब अन्धकारसे आच्छादित था, (अप्रकेतं) अज्ञात दशामें और (इदं आः सर्वं सलिलं) यह सब कुछ जल ही जल था और (यत् आसीत्) जो कुछ था, वह (आभु तुच्छ्येन अपिहितं) चारों ओर होनेवाले सदसद्विलक्षण भावसे आच्छादित था और (तत् एकं) वह एक ब्रह्म (तपसः महिना अजायत) तपके प्रभावसे हुआ ।

प्रलयावस्थामें चारों ओर अन्धकार फैला हुआ था, अतः कुछ भी ज्ञान नहीं होता था । और जो कुछ था वह भी बडा अजीब था ॥ ३ ॥

[१४४५] (तत् अग्रे) उससे सबसे पहले परमात्माके मनमें (कामः सं अवर्तत) सृष्टि करनेकी इच्छा पैदा हुई, (अधि) उसके बाद (यत् मनसः) जिस मनसे (प्रथमं) सबसे प्रथम (रेतः आसीत्) बीज या कारण उत्पन्न हुआ । फिर (कवयः) बुद्धिमानोंने (मनीषा हृदि प्रति इष्य) बुद्धिद्वारा हृदयमें विचार कर (बन्धुं सतः) बंधनके कारण भूत विद्यमान वस्तुको (असति निर् अविन्दन्) अविद्यमानमें पाया। अर्थात् सत् जगत्का कारण असत् ब्रह्म पाया ॥४॥

सबसे पहले परमात्माके अन्दर सृष्टि उत्पन्न करनेकी इच्छा हुई । उससे सब सृष्टिका उपादान कारण भूत बीज पैदा हुआ । यह बीजरूपी सत् पदार्थ ब्रह्मरूपी असत्से पैदा हुआ ॥ ४ ॥

[१४४६] इस प्रकार (रेतोधाः आसन्) बीजको धारण करनेवाले पुरुष [भोक्ता] हुए और (महिमानः आसन्) महिमाएं [भोग्य] उत्पन्न हुईं । फिर (एषां रश्मिः विततः) इन भोक्ता और भोग्योंकी किरणें फैलीं और (तिरश्चीनः अधः स्वित् उपरि स्वित् आसीत्) तिरछी, नीचे, ऊपर फैलीं, इनमें (स्वधा अवस्तात्) भोग्य शक्ति निकृष्ट थी और (प्रयतिः परस्तात्) भोक्तृ शक्ति उत्कृष्ट थी ।

इस ब्रह्मकी बीज शक्तिसे भोग्य और भोक्ताका एक जोडा पैदा हुआ । और इन्हीं भोग्य और भोक्तासेही सारी सृष्टि हुई । इनमें भोग्य निकृष्ट होनेके कारण वह भोक्ताके अधीन हुई ॥ ५ ॥

[१४४७] (कः अद्धा वेद) कौन मनुष्य जानता है, और (इह कः प्रवोचत्) यहां कौन कहेगा, कि (इयं विसृष्टिः कुतः कुतः आ जाता) यह सृष्टि कहांसे और किस कारण उत्पन्न हुई । क्यों कि (देवाः) विद्वान् या दूरदर्शी भी (अस्य विसर्जनेन अर्वाक्) इस सृष्टिके उत्पन्न होनेके बादही उत्पन्न हुए हैं, (अथ) इस लिए यह सृष्टि (यतः आ बभूव) जिससे उत्पन्न हुई उसे (कः वेद) कौन जानता है ।

इस सारी सृष्टिकी उत्पत्ति कैसे और कहांसे हुई, यह कोई नहीं जानता, क्योंकि उस रहस्यको जाननेवाले विद्वानोंकी उत्पत्ति भी बादमें हुई ॥ ६ ॥

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ७ [१७] (१४४८)

(१३०)

७ यज्ञः प्राजापत्यः । भाववृत्तम् । त्रिष्टुप्, १ जगती ।

यो यज्ञो विश्वतस्तन्तुभिस्तत एकशतं देवकर्मेभिरायतः ।
इमे वयन्ति पितरो य आययुः प्र वयाप वयेत्यासते तते १ (१४४९)
पुमाँ एनं तनुत उत् कृणत्ति पुमान् वि तत्ने अधि नाके अस्मिन् ।
इमे मयूखा उप सेदुरू सदः सामानि चक्रुस्तसराण्योतवे २
कासीत् प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्यं किमासीत् परिधिः क आसीत् ।
छन्दः किमासीत् प्रउगं किमुक्थं यद्देवा देवमयजन्त विश्वे ३

[१४४८] (इयं विसृष्टिः यतः आ बभूव) यह सृष्टि जिससे पैदा हुई वह इसे (यदि दधे यदि वा न) धारण करता भी है या नहीं, इसको हे (अंग) विद्वन् (सः वेद) वही जानता है (यः परमे व्योमन् अस्य अध्यक्षः) जो परम आकाशमें रहता हुआ इस सृष्टिका अध्यक्ष है (यदि वा) अथवा सम्भवतः वह भी (न वेद) नहीं जानता हो ।

इस सृष्टिको पैदा करनेवाला इसका अध्यक्ष परब्रह्म इस सृष्टिका धारक है । और वही इस सृष्टिको पूर्णतया जानता है ॥ ७ ॥

[१३०]

[१४४९] (यः यज्ञः तन्तुभिः विश्वतः ततः) जो यज्ञ भूतादि तन्तुओंके द्वारा चारों ओर फैलाया गया है । तथा जो (देवकर्मेभिः) विद्वानोंके कर्मोंके कारण (एकशतं आयतः) सौ वर्ष अर्थात् अनन्त कालतक रहनेवाला है । इस सृष्टिरूपी यज्ञके वस्त्रको (इमे पितरः) ये पितर (ये आययुः) जिन्होंने इसे व्याप्त कर रखा है (वयन्ति) बुनते हैं और (प्र वय अप वय इति तते आसते) उत्कृष्ट बुनो निकृष्ट बनो इस प्रकार कहते हुए इस विस्तृत लोकमें रहते हैं ।

यह सृष्टि एक यज्ञ है । इस यज्ञमें पंचभूतरूपी वस्त्रोंको बुना जाता है । यह अनन्त काल तक रहनेवाली सृष्टि देवोंके कर्मोंसे धारण की जाती है । इस सृष्टि यज्ञमें विद्वान् कपडेको बुनते हुए अनेक प्रकारके उत्कृष्ट और निकृष्ट वस्त्र या पदार्थोंका निर्माण करते हैं ॥ १ ॥

[१४५०] (पुमान् एनं तनुते उत् कृणत्ति) प्रजापति पुरुषही इस सृष्टिरूपी यज्ञको फैलाता है और समेटता है; वही (पुमान्) पुरुष इसको (अस्मिन् नाके) इस पृथ्वीलोक तथा स्वर्गलोक पर (वि तत्ने) फैलाता है । फिर (सदः) इस यज्ञस्थलीमें (इमे मयूखाः) ये किरणें आकर (उप सेदुः) बैठती हैं तथा (ओतवे) बुननेके लिए (सामानि तसराणि चक्रुः) सामरूपी ताने बानेंको बनाती हैं ।

प्रजापति परमात्मा इस सृष्टिका उत्पादक और संहारक दोनों है । परमात्माही अपनी शक्तिसे इस सृष्टिका विस्तार करता है । इसी सृष्टिमें परमात्माकी शक्तियां निवास करतीं है । तथा अनेक प्रकारके सुखोंको पैदा करती हैं ॥ २ ॥

कृणत्ति– समेटना, लपेटना " कृती वेष्टने "

[१४५१] (यत् विश्वे देवाः) जब सम्पूर्ण देवोंने (देवं अयजन्त) यज्ञ किया, तब उसका (प्रमा का आसीत्) प्रमाण क्या था ? (प्रतिमा का) प्रतिमा क्या थी; (किं निदानं) उसका कारण क्या था ? (आज्यं किं आसीत्) सीमा क्या थी ? (छन्दः किं आसीत्) छन्द क्या था ? तथा (प्र उगं उक्थं किं) उक्थ क्या था ? ॥ ३ ॥

अ॒ग्नेर्गा॑य॒त्र्य॑भवत् स॒युग्वो॒ष्णिह॑या सवि॒ता सं ब॑भूव ।
अ॒नु॒ष्टुभा॒ सोम॑ उ॒क्थैर्मह॑स्वान् बृह॒स्पते॑र्बृह॒ती वाच॑मावत् ४

वि॒राण्मि॒त्रावरु॑णयोरभि॒श्री॒रिन्द्र॑स्य त्रि॒ष्टुबि॒ह भा॒गो अह्नः॑ ।
विश्वा॑न् दे॒वाञ्जग॒त्या वि॑वेश॒ तेन॑ चाक्लृप्र॒ ऋष॑यो मनु॒ष्याः॑ ५

चा॒क्लृ॒प्रे तेन॒ ऋष॑यो मनु॒ष्या॑ य॒ज्ञे जा॒ते पि॒तरो॑ नः पुरा॒णे ।
पश्य॑न् मन्ये॒ मन॑सा॒ चक्ष॑सा॒ तान् य इ॒मं य॒ज्ञमय॑जन्त॒ पूर्वे॑ ६

स॒हस्तो॑माः स॒हछ॑न्दस आ॒वृतः॑ स॒हप्र॑मा॒ ऋष॑यः स॒प्त दैव्याः॑ ।
पूर्वे॑षां॒ पन्था॑मनु॒दृश्य॒ धीरा॑ अ॒न्वाले॑भिरे र॒थ्यो॒३॒॑ न र॒श्मीन् ७ [१८] (१४५५)

(१३१)

७ सुकीर्तिः काक्षीवतः । इन्द्रः, ४-५ अश्विनौ । त्रिष्टुप्, ४ अनुष्टुप् ।

अप॒ प्राच॑ इन्द्र॒ विश्वाँ॑ अ॒मित्रा॒नपापा॑चो अभिभूते नुदस्व ।
अपोदी॑चो॒ अप॑ शूराध॒राच॑ उ॒रौ यथा॒ तव॒ शर्म॒न् मदे॑म १

[१४५२] (अग्नेः गायत्री स युग्वा अभवत्) अग्निका गायत्री सहायक हो गई । (उष्णिहया सविता संबभूव) उष्णिक् के साथ सविता मिल गया । (अनुष्टुभा सोम) अनुष्टुप्‌के साथ सोम (उक्थैः महस्वान्) उक्थोंके साथ तेजस्वी सूर्य तथा, (बृहती बृहस्पतेः वाचं आवत्) बृहतीने बृहस्पतिके वाणीका आश्रय लिया ॥ ४ ॥

[१४५३] (विराट् मित्रावरुणयोः अभिश्रीः) विराट् छन्द मित्रा वरुणके आश्रयसे रहा (त्रिष्टुप् इह इन्द्रस्य अह्नः भागः) और त्रिष्टुप् इस यज्ञमें इन्द्र और दिनका भाग बना (जगती विश्वान् देवान् आ विवेश) जगती छन्द सम्पूर्ण देवोंमें प्रविष्ट हुआ और (तेन) उस यज्ञसे (ऋषयः मनुष्याः) ऋषि और मनुष्य (चाक्लप्रे) सामर्थ्यवाले बने ॥ ५ ॥

[१४५४] (पुराणे यज्ञे जाते) प्राचीन कालमें यज्ञके पैदा होनेपर (तेन) उस यज्ञसे (नः पितरः ऋषयः मनुष्याः) हमारे पूर्वज, ऋषि और मनुष्य (चाक्लृप्रे) उत्पन्न हुए । (पूर्वे ये इमं यज्ञं अयजन्त) पहले जिन्होंने इस यज्ञको किया (तान् चक्षसा मनसा पश्यन्) उन्हें देखनेके साधन मनसे देखता हुआ मैं उनकी (मन्ये) पूजा करता हूं ॥ ६ ॥

मन्ये– पूजा करता हूं ' मन्यतिरर्चतिकर्मा '

[१४५५] (धीराः सप्त दैव्याः ऋषयः) धैर्यवान् सात दिव्य ऋषियोंने (सहस्तोमाः सह छन्दसः सह प्रमा आवृतः) स्तोम, छन्द, सीमा इन सबसे युक्त होकर (पूर्वेषां पन्थां अनुदृश्य) पूर्वजोंके मार्गको जानकर (रश्मीन् रथ्यः न) लगामोंको सारथिके समान (अनु आ-लेभिरे) पकडा ॥ ७ ॥

[१३१]

[१४५६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (विश्वान् प्राचः अमित्रान् अपनुदस्व) हमारे सामने आये जो समस्त शत्रु हैं, उन्हें तू दूर कर । हे (अभिभूते) शत्रुओंको पराजित करनेवाले ! (अपाचः उदीचः अप) पीछेसे आनेवाले, ऊपरसे आनेवाले शत्रुओंको भी दूर हटा । हे (शूर) शूरवीर ! (अधराचः अप) नीचेसे आनेवालोंको दूर कर । (यथा तव उरौ शर्मन् मदेम) जिससे हम तेरे पास अत्यंत सुखी होकर आनन्दमें रहें ॥ १ ॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चि॒द्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्तिं न जग्मुः २
नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति नोत श्रवो विविदे संगमेषु ।
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ३
युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा ।
विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ४
पुत्रमिव पितरावश्विनोभे-न्द्रावथुः काव्यैर्दंसनाभिः ।
यत् सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ५
इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ६ (१४६१
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्या-ऽपि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ७ [१९] (१४६२

[१४५७] हे (अङ्ग) इन्द्र ! (यवमन्तः अनुपूर्वं यवं चित् वियूय यथा कुवित् दान्ति) जो निर्माण होनेवाले खेतोंके कृषक जैसे क्रमशः अलग-अलग करके उसे अनेकबार काटते हैं, वैसे ही (इह इह एषां भोजनानि कृणुहि) इस इस देशके यजमानों-भक्तोंको भोग साधन-धन आदि प्रदान कर । (ये बर्हिषः नमोवृक्तिं न जग्मुः) जो भक्त महान् यज्ञके निमित्त नमस्कार, हवि-स्तोत्रको नहीं टालते-अर्थात् परमेश्वरकी नित्य उपासना करते हैं ॥ २ ॥

[१४५८] (स्थूरि ऋतुथा अनः यातं नहि अस्ति) एक बैलवाही गाडी कभी भी नियत समय पर योग्य स्थान पर नहीं पहुंचती । (उत संगमेषु श्रवः न विविदे) और संग्रामोंमें भी अन्न, यशका उससे लाभ नहीं हो सकता; जब तक इन्द्रको हम स्तवित नहीं करते । (विप्राः गव्यन्तः अश्वायन्तः वाजयन्तः) इसलिये हम मेधावी जन गौ, बैलकी कामना करते हुए, अश्वोंकी इच्छा करते हुए और अन्न, बलकी अभिलाषा करते हुए (वृषणं इन्द्रं सख्याय) वीर और वृष्टि करनेवाले इन्द्रको मित्रताके लिये बुलाते हैं ॥ ३ ॥

[१४५९] हे (अश्विना) अश्विदेव ! हे (शुभस्पती) उदक संरक्षक देवो ! (सुरामं विपिपाना युवं सचा) रमणीय, आनन्द देनेवाले सोमका पान करके, तुम दोनोंने एक साथ मिलकर (आसुरे नमुचौ कर्मसु इन्द्रं आवतम्) असुर पुत्र नमुचि युद्धमें इन्द्रका वध करनेके लिये तैय्यार था, तब तुमने इन्द्रकी रक्षा की ॥ ४ ॥

[१४६०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (पुत्रं इव पितरौ उभा अश्विना काव्यैः दंसनाभिः आवथुः) जैसे पुत्रकी माता-पिता रक्षा करते हैं, वैसे ही दोनों अश्विनीकुमारोंने आश्चर्यकारक कृत्योंसे तेरी रक्षा की । (यत् शचीभिः सुरामं वि अपिबः) जब तुमने अपने सामर्थ्योंसे रमणीय सोमका पान किया, तब हे (मघवन्) धनवान् ! (सरस्वती त्वा अभिष्णक्) सरस्वती देवी तेरी सेवा करती थी ॥ ५ ॥

[१४६१] (सुत्रामा स्ववान् इन्द्रः) अच्छी प्रकारसे रक्षण करनेवाला आत्मशक्तिसे युक्त वह इन्द्र (अवोभिः सुमृळीकः भवतु) रक्षणोंसे सुख देनेवाला हो । (विश्ववेदाः द्वेषः बाधतां) सर्वज्ञ वह प्रभु हमारे शत्रुओंका नाश करनेवाला हो । (अभयं कृणोतु) निर्भयता स्थापन करे । (सुवीर्यस्य पतयः स्याम) हम उत्तम बलके स्वामी बनें ॥ ६ ॥

[१४६२] (यज्ञियस्य सुमतौ वयं स्याम) पूज्य पुरुषकी उत्तम बुद्धिमें हम रहें । (भद्रे सौमनसे अपि) कल्याण कारक अच्छे मनसे युक्त भी हम हों । (सुत्रामा स्ववान् सः इन्द्रः) उत्तम पालन करनेवाला, धनवान् वह इन्द्र (अस्मे आरात् चित् द्वेषः सनुतः युयोतु) हमारेसे दूर देशमें छिपे हुए शत्रुओंको सदाके लिये दूर करे ॥ ७ ॥

(१३२)

७ शकपूतो नार्मेधः। मित्रावरुणौ, १ द्युभूम्यश्विनः। विराड्रूपा, १ न्यङ्कुसारिणी,
२, ६ प्रस्तारपङ्क्तिः, ७ महासतोबृहती।

ईजानमिद् द्यौर्गूर्तावसु—रीजानं भूमिरभि प्रभूषणि।
ईजानं देवावश्विना—वभि सुम्नैरवर्धताम् १
ता वाँ मित्रावरुणा धारयत्क्षिती सुषुम्नेषितत्वता यजामसि।
युवोः क्राणाय सख्यै—रभि ष्याम रक्षसः २
अधा चिन्नु यद्दिधिषामहे वा—मभि प्रियं रेक्णः पत्यमानाः।
दद्वाँ वा यत् पुष्यति रेक्णः सम्वारन् नकिरस्य मघानि ३
असावन्यो असुर सूयत द्यौ—स्त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा।
मूर्धा रथस्य चाकन् नैतावतैनसान्तकध्रुक् ४
अस्मिन्त्स्वे३तच्छकपूत एनो हिते मित्रे निगतान् हन्ति वीरान्।
अवोर्वा यद्धात तनूष्ववः प्रियासु यज्ञियास्ववा ५

[१३२]

[१४६३] (गूर्तावसुः द्यौः भूमिः प्रभूषणि) स्तोताओंको धन प्रदान करनेके लिये उत्सुक द्यौ और पृथिवी भी उत्तमोत्तम अलंकार आदिसे (ईजानं इत् अभि) यज्ञ करनेवालेको ऐश्वर्योंसे उत्कर्षित करती हैं। (अश्विनौ देवौ ईजानं सुम्नैः अभि अवर्धताम्) दोनों अश्विनी कुमार देव भी यज्ञशील मनुष्यको अनेक प्रकारके सुखोंसे बढाते हैं॥ १ ॥

[१४६४] हे (मित्रावरुणा) मित्र वरुण ! (धारयत् क्षिती सुषुम्ना) पृथिवीको धारण करनेवाले तुम दोनों उत्तम सुखप्रद धनके स्वामी हो। (ता वां इषित्वता यजामसि) उन तुम दोनोंकी सुखकी प्राप्तिके लिये हम हविसे पूजा-उपासना करते हैं। (युवोः सख्यैः क्राणाय) तुम दोनोंकी मित्रतासे यज्ञ करनेवाले यजमानोंके हितके लिये हम (रक्षसः अभि ष्याम) राक्षसोंको पराजित करें ॥ २ ॥

[१४६५] हे मित्र और वरुण ! (यत् वां दिधिषामहे) जब हम तुम्हारे लिये यज्ञ-हविको स्तुतियुक्त होकर धारण करते हैं, (अधा चित् नु प्रियं रेक्णः) तब शीघ्रही हम प्रिय धनको (अभि पत्यमानाः) प्राप्त करते हैं। (दद्वान् यत् वा रेक्णः पुष्यति) और हविका दान करनेवाला जो यजमान धनको बढाता है, (अस्य मघानि नकिः सम् उ आरन्) इसके धनको कोई भी नष्ट नहीं कर सकता, हारकर नहीं ले जा सकता ॥ ३ ॥

[१४६६] हे (असुर) प्राणोंके दाता सूर्य ! (असौ द्यौः अन्यः सूयत) वह द्यौ अन्य तुझको उत्पन्न करता है। हे (वरुण) वरुण ! (त्वं विश्वेषां राजा असि) तुम सबोंका राजा है। (रथस्य मूर्धा चाकन्) तुम्हारे रथका मुख्य सारथि हमारे यज्ञकी इच्छा करता है। (अन्तकध्रुक् एतावता एनसा न) हिंसकोंके नाशक इस यज्ञको थोडासा भी अशुभ लिप्त नहीं कर सकता ॥ ४ ॥

[१४६७] (अस्मिन् शकपूते एतत् एनः मित्रे हिते) इस शकपूतमें स्थित पाप, हितकारक मित्र देवके मेरे अनुकूल होकर (निगतान् वीरान् सुहन्ति) आनेपर, आक्रमणकारी शत्रुओंको नष्ट करता है। (अवोः यज्ञियासु तनूषु अर्के) हवि अर्पण करनेवाले यजमानके यज्ञ और शरीरकी मित्र और वरुण (यत् अवः धात्) जब रक्षा करनेके लिये आते हैं ॥ ५ ॥

युवोर्हि मातादितिर्विचेतसा द्यौर्न भूमिः पयसा पुपूतनि ।
अव प्रिया दिदिष्टन सूरो निनिक्त रश्मिभिः ६
युवं ह्यप्नराजावसीदतं तिष्ठद्रथं न धूर्षदं वनर्षदम् ।
ता नः कणूकयन्तीर्नृमेधस्तत्रे अंहसः सुमेधस्तत्रे अंहसः ७ [२०] (१४६९)

(१३३)

७ सुदाः पैजवनः । इन्द्रः । शक्करी, ४–६ महापङ्क्तिः, ७ त्रिष्टुप् ।

प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत ।
अभीके चिदु लोककृत् संगे समत्सु वृत्रहा ऽस्माकं बोधि चोदिता
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु १
त्वं सिन्धूँरवासृजो ऽधराचो अहन्नहिम् ।
अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यं तं त्वा परि ष्वजामहे
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु २ (१४७१)

[१४६८] (विचेतसा) विशेषज्ञानवाले मित्र और वरुण ! (युवोः हि माता अदितिः) तुम्हारी माता अदिति-भूमि है । (द्यौः न भूमिः पयसा पुपूतनि) द्युलोकके समान यह भूमि भी जल-अन्नसे पवित्र-शुद्ध करनेवाली है । तुम (प्रिया अव दिदिष्टन) हमें प्रिय धन दो और (सूरः रश्मिभिः निनिक्त) सूर्यकी किरणोंसे हमें पुष्ट करो ॥ ६ ॥

[१४६९] हे मित्रावरुणो ! (युवं हि अप्नराजौ आसीदतम् कणूकयन्तीः ताः) तुम दोनों अपने कर्तृत्वसे प्रकाशित होकर अपने स्थानपर विराजित होते हुए, आक्रोश करनेवाले उन शत्रुओंको पराजित करनेके लिये (धूर्षदं वनर्षदं रथं न तिष्ठत्) मुख्य धुरापर बैठकर और वनमें विहार करनेवाले रथमें इस समय विराजित होओ । (नृमेध अंहसः तत्रे) तुमने नृमेधकी पापसे रक्षा की । (सुमेधः अंहसः तत्रे) और सुमेधको भी पापसे बचाया है ॥ ७ ॥

[१३३]

[१४७०] (अस्मै इन्द्राय पुरोरथं शूषं सु प्रो अर्चत) इस इन्द्रके रथके आगे विद्यमान बलकी, हे स्तोताओ तुम अच्छी प्रकार स्तुति करो । (समत्सु संगे अभीके चित् लोककृत् वृत्रहा) युद्धके समय शत्रु पास आकर भिड जानेपर भी, स्थिर चित्त रहकर, वृत्र-शत्रुहन्ता इन्द्र (अस्माकं चोदिता बोधि) हमारी स्तुतियां, धनोंको प्रदान करता हुआ, ध्यानमें ले । और (अन्यकेषां अधि धन्वसु ज्याकाः नभन्ताम्) दूसरे शत्रुओंके धनुषों पर चढाई डोरियां नष्ट हों ॥ १ ॥

[१४७१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं सिन्धून् अधराचः अव असृजः) तू नीचे बहनेवाली जल राशिको मेघोंसे मुक्त करता है । (अहिं अहन्) तूने ही मेघ- वृत्रका वध किया है । इसलिये तू (अशत्रुः जज्ञिषे) शत्रुरहित हो गया है । (विश्वं वार्यं पुष्यसि) तू सब श्रेष्ठ वरणीय धनकी वृद्धि करता है । (तं त्वा परि ष्वजामहे) उस तुझको हम हवियुक्त स्तुतियोंसे अपनाते हैं । (अन्येकेषां अधि धन्वसु ज्याकाः नभन्ताम्) दूसरे शत्रुओंके धनुषोंकी ज्या छिन्न हो जांय ॥ २ ॥

वि षु विश्वा अरांतयो ऽर्यो नंशन्त नो धियः ।
अस्तासि शत्रवे वधं यो नं इन्द्र जिघांसति या तें रातिर्ददिर्वसु
नभंन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ३
यो नं इन्द्राभितो जनों वृकायुरादिदेशति ।
अधस्पदं तमीं कृधि विबाधो असि सासहि—र्नभंन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ४
यो नं इन्द्राभिदासति सनाभिर्यश्च निष्ट्यः ।
अव तस्य बलं तिर महीव द्यौरध त्मना नभंन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ५
वयमिन्द्र त्वायवः सखित्वमा रंभामहे ।
ऋतस्यं नः पथा नया—ऽति विश्वानि दुरिता नभंन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ६
अस्मभ्यं सु त्वमिन्द्र तां शिक्ष या दोहते प्रति वरं जरित्रे ।
अच्छिद्रोध्नी पीपयद्यथा नः सहस्रधारा पयसा मही गौः ७ [२१] (१४७६)

[१४७२] (नः विश्वाः अर्यः अरातयः सु वि नशन्त) हमारे सब अदाता शत्रु विविध प्रकारसे नष्ट हों। (धियः) हमारी स्तुतियां तुझे प्राप्त हों। हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यः नः जिघांसति शत्रवे वधं अस्तासि) जो हमें मारनेकी इच्छा करता है, उस शत्रुके ऊपर तू उस शत्रुके वध करनेके लिये हथियार फेंकता है। (ते या रातिः वसु ददिः) तेरा दानशील हाथ हमें धन प्रदान करे। (अन्यकेषां अधि धन्वसु ज्याकाः नभन्ताम्) दूसरे शत्रुओंके धनुषोंपर चढायी डोरियां नष्ट हों ॥ ३ ॥

[१४७३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यः वृकायुः जनः नः अभितः आदिदेशति) जो भेडियेके समान हमारे पास आनेवाला मनुष्य हमारे चारों ओर शस्त्रादि फेंकता है, (तं ईं अधः पदं कृधि) उसको तू पैरके नीचे कर। तू (विबाधः सासहिः असि) शत्रुओंको पीडित करनेवाला तथा उनको पराजित करनेवाला है। (अन्यकेषां अधि धन्वसु ज्याकाः नभन्ताम्) दूसरे शत्रुओंकी प्रत्यञ्चा छिन्न हो जांय ॥ ४ ॥

[१४७४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यः सनाभिः नः अभिदासति) जो एकही कुलमें उत्पन्न शत्रु हमारा नाश करता है, और (यः च निष्ट्यः) जो नीच-निकृष्ट स्वभावका है, (अध तस्य महीव द्यौः बलं त्मना अव तिर) अनन्तर ही महान् द्युलोकके समान विस्तृत जो उस शत्रुकी सेना है, वह तू अपने बल-पराक्रमसे स्वयं ही नष्ट कर। (अन्यकेषां अधि धन्वसु ज्याकाः नभन्ताम्) दूसरे शत्रुओंके धनुषों पर चढायीं डोरियां नष्ट हों ॥ ५ ॥

[१४७५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वयं त्वायवः सखित्वं आ रभामहे) हम तेरी अभिलाषा-इच्छा करते हुए, तेरे सख्यत्व (यज्ञ) को आरंभ करते हैं। (ऋतस्य पथा विश्वानि दुरिता नः अति नय) सत्य-यज्ञके मार्गसे लेकर चलते हुए, हमें सब पापों और उनके दुःखदायी फलोंसे भी पार कर। (अन्यकेषां अधि धन्वसु ज्याकाः नभन्ताम्) दूसरे शत्रुओंकी प्रत्यञ्चा छिन्न हो जांय ॥ ६ ॥

[१४७६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं तां अस्मभ्यं सु शिक्ष) तू वह गौ हम स्तोताओंको प्रदान कर, (या जरित्रे वरं प्रति दोहते) जो स्तुतिकर्ताको वरणीय दुग्ध प्रतिदिन देती है। (यथा अच्छिद्रोध्नी मही गौः सहस्रधारा) यह विशाल स्तनवाली भूमिवत मोटी गौ सहस्र धाराओंसे (नः पयसा पीपयत्) हमें दुग्धसे पुष्ट करे ॥ ७ ॥

(१३४)

७, १-६ (पूर्वार्धस्य) मान्धाता यौवनाश्वः, ६ (उत्तरार्धस्य)- ७ गोधा ऋषिका। इन्द्रः। महापङ्क्तिः, ७ पंक्तिः ।

उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव ।
महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनां देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् १
अव स्म दुर्हणायतो मर्तस्य तनुहि स्थिरम् ।
अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्माँ आदिदेशति देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् २
अव त्या बृहतीरिषो विश्वश्चन्द्रा अमित्रहन् ।
शचीभिः शक्र धूनुहीन्द्र विश्वाभिरूतिभिर्देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ३
अव यत् त्वं शतक्रतविन्द्र विश्वानि धूनुषे ।
रयिं न सुन्वते सचा सहस्रिणीभिरूतिभिर्देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ४
अव स्वेदा इवाभितो विष्वक् पतन्तु दिद्यवः ।
दूर्वाया इव तन्तवो व्यस्मदेतु दुर्मतिर्देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ५

[१३४]

[१४७७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् उषाः इव उभे रोदसी अपप्राथ) जो तू उषाके समान दोनों द्यावा पृथिवीको तेजसे परिपूर्ण करता है, (महीनां महान्तं चर्षणीनां सम्राजं त्वा) महानोंमें महान् और मनुष्योंके सम्राट् तुझ इन्द्रको (देवी जनित्री अजीजनत्) देवी अदितीने उत्पन्न किया और वह (भद्रा जनित्री अजीजनत्) कल्याणमयी श्रेष्ठ माता हो गई ॥ १ ॥

[१४७८] (दुर्हणायतः मर्तस्य स्थिरं अवतनुहि स्म) दुष्टतासे घात करनेवाले मर्त्य शत्रुके दृढ बलको कम कर दे- नीचे गिरा दे। (यः अस्मान् आदिदेशति तं ईं अधः पदम् कृधि) जो शत्रु हमारी हिंसा करना चाहता है, उस दुष्टको भी तू हमारे चरणोंके नीचे कर। (देवी जनित्री अजीजनत् भद्रा जनित्री अजीजनत्) जिस देवी माता अदितीने ऐसे पुत्रको उत्पन्न किया, वह कल्याणमयी माता धन्य है ॥ २ ॥

[१४७९] हे (अमित्रहन्) शत्रुहन्ता ! हे (शक्र) शक्तिशाली ! हे (इन्द्र) इन्द्र ! (शचीभिः त्याः बृहतीः विश्वश्चन्द्राः) तू अपनी शक्तियोंसे, अपने कर्मोंसे उन उत्कृष्ट और सबको आह्लादित करनेवाले (इषः विश्वाभिः ऊतिभिः अव धूनुहि) अन्नको अपनी सब प्रकारकी सहायतासे- रक्षासे हमें दे। (देवी जनित्री अजीजनत् भद्रा जनित्री अजीजनत्) कल्याणमयी श्रेष्ठ माताने तुम्हें जन्म दिया, वह श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥

[१४८०] (शतक्रतो) सैकडों कर्म, ज्ञानवाले ! हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सुन्वते यत् त्वं विश्वानि अव धूनुषे) सोम अभिषव करनेवाले यजमानको जब तू सब प्रकारका धन प्रदान करता है, तब (रयिं न सहस्रीणिभिः ऊतिभिः सचा) धन तथा पुत्ररूप धनका भी हजारों प्रकारकी रक्षाओंसे संरक्षण करता है। (देवी जनित्री अजीजनत् भद्रा जनित्री अजीजनत्) जिस श्रेष्ठ माताने इसको उत्पन्न किया वह सत्यही श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥

[१४८१] (स्वेदाः इव अभितः दिद्यवः विष्वक् अव पतन्तु) पसीनेके बिन्दुओंके समान चारों ओर इन्द्रके तेजस्वी शस्त्र रक्षाके लिये आ गिरें। (दूर्वायाः इव तन्तवः) घासके तिनकोंके समान आयुध सर्वव्यापी हों। (दुर्मतिः अस्मत् वि एतु) दुष्ट बुद्धिवाले शत्रु हमसे दूर हो। (देवी जनित्री अजीजनत् भद्रा जनित्री अजीजनत्) कल्याणमयी श्रेष्ठ माताने तुझे उत्पन्न किया है ॥ ५ ॥

दीर्घं ह्यङ्कुशं यथा शक्तिं बिभर्षि मन्तुमः ।
पूर्वेण मघवन् पदा ऽजो वयां यथा यमो देवी जनित्र्यजीजन — द्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ६
नकिर्देवा मिनीमसि नकिरा योपयामसि मन्त्रश्रुत्यं चरामसि ।
पक्षेभिरपिकक्षेभि — रत्राभि सं रभामहे ७ [२२] (१४८३)

(१३५)

७ कुमारो यामायनः । यमः । अनुष्टुप् ।

यस्मिन् वृक्षे सुपलाशे देवैः संपिबते यमः ।
अत्रा नो विश्पतिः पिता पुराणाँ अनु वेनति १
पुराणाँ अनुवेनन्तं चरन्तं पापयामुया । असूयन्नभ्यचाकशं तस्मा अस्पृहयं पुनः २
यं कुमार नवं रथ — मचक्रं मनसाकृणोः । एकेषं विश्वतः प्राञ्च — मपश्यन्नधि तिष्ठसि ३
यं कुमार प्रावर्तयो रथं विप्रेभ्यस्परि । तं सामानु प्रावर्तत समितो नाव्याहितम् ४

[१४८२] हे (मन्तुमः) ज्ञानवान् इन्द्र ! (दीर्घं अङ्कुशं यथा शक्तिं बिभर्षि) तू विशाल- दीर्घ अङ्कुशके समान शक्ति अस्त्रको धारण करता है। हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (यथा पूर्वेण पदा अजः वयां यमः) जैसे छाग अपने अगले पैरसे वृक्ष-शाखाको पकड उसके पत्ते खा जाता है, वैसे ही तू उस शक्तिसे शत्रुको खींचकर वश करता है। (देवी जनित्री अजीजनत् भद्रा जनित्री अजीजनत्) कल्याणमयी श्रेष्ठ माताने तुम्हें जन्म दिया, वह श्रेष्ठ है ॥ ६ ॥

[१४८३] हे (देवाः) देवो ! (नकिः मिनीमसि) इन्द्रादि देवोंके विषयमें हम कोई भी त्रुटि नहीं करते। (नकिः योपयामसि) हम किसी भी कर्ममें शैथिल्य वा उदासीनता नहीं करते। (मन्त्रश्रुत्यं चरामसि) हम मन्त्र और श्रुतिके अनुसार आचरण करते हैं। (पक्षेभिः अपिकक्षेभिः अत्र सं रभामहे) हम स्तोत्र और हविसे इस यज्ञकर्मका सम्पादन करते हैं ॥ ७ ॥

[१३५]

[१४८४] (यस्मिन् सुपलाशे वृक्षे देवैः यमः संपिबते) जिस सुंदर पत्रोंसे शोभित वृक्षपर देवोंके साथ नियन्ता यम भोग करता है, पान करता है, (अत्र नः विश्पतिः पिता पुराणान् अनु वेनति) उसी वृक्षपर मेरे प्रजापति पिता पूर्वजोंके साथ भोगोंको पुनः चाहता है ॥ १ ॥

[१४८५] (पुराणान् अनुवेनन्तं अमुया पापया चरन्तं) प्राचीन पितरोंकी इच्छा करते हुए और पापी दुष्ट बुद्धिसे युक्त रहते हुए (असूयन् अभि अचाकशम्) उस पुरुषको निन्दायुक्त दृष्टिसे मैंने देखा था। (पुनः तस्मा अस्पृहयम्) फिर भी मैं उसको प्राप्त करनेकी इच्छा करता हूं ॥ २ ॥

[१४८६] हे (कुमार) कुमार ! (नवं अचक्रं एक इषं विश्वतः प्राञ्चं) अपूर्व, बिनाचक्र, एकही ईषा-दण्ड-वाला और सर्वत्र गमन करनेवाला (यं रथं मनसा अकृणोः) ऐसा रथ तुमने मनमें तैयार किया था. मुझसे ऐसा रथ चाहा था; (अपश्यन् अधि तिष्ठसि) और वह कैसा है यह बिना जानतेही तुम उस रथपर चढे हो ॥ ३ ॥

[१४८७] हे (कुमार) कुमार ! (यं रथं विप्रेभ्यः परि प्रावर्तयः) जिस रथको विद्वान् बन्धु-बान्धवोंको छोडकर तू चला रहा है, (तं नावि सं आहितं साम इतः अनु प्रावर्तत) उसको नावसे बंधे रथके समान, पिताके सान्त्वनापूर्ण उपदेश-ज्ञानके अनुसार यहांसे लेकर तू चला जा रहा है ॥ ४ ॥

कः कुमारमजनयद्रथं को निरवर्तयत् । कः स्वित् तदद्य नो ब्रूयादनुदेयी यथाभवत् ५
यथाभवदनुदेयी ततो अग्रमजायत । पुरस्ताद्बुध्न आततः पश्चान्निरयणं कृतम् ६
इदं यमस्य सादनं देवमानं यदुच्यते ।
इयमस्य धम्यते नाळीरयं गीर्भिः परिष्कृतः ७ [२३] (१४९०)

(१३६)

[७] १ जूतिः, २ वातजूतिः, ३ विप्रजूतिः, ४ वृषाणकः, ५ करिक्रतः, ६ एतशः, ७ ऋष्यशृङ्गः (एते वातरशना मुनयः) । केशिनः= अग्नि-सूर्य-वायवः । अनुष्टुप् ।

केश्य१ग्निं केशी विषं केशी बिभर्ति रोदसी ।
केशी विश्वं स्वर्दृशे केशीदं ज्योतिरुच्यते १
मुनयो वातरशनाः पिशङ्गा वसते मला ।
वातस्यानु ध्राजिं यन्ति यद्देवासो अविक्षत २
उन्मदिता मौनेयेन वाताँ आ तस्थिमा वयम् ।
शरीरेदस्माकं यूयं मर्तासो अभि पश्यथ ३

[१४८८] (कः कुमारं अजनयत्) कौन इस बालकको निर्माण करता है ? (कः रथं निरवर्तयत्) कौन इस रथको चलाता है ? (यथा अनुदेयी अभवत्) जिस कारण यह बालक यमके पास अर्पित होता है । (तत् अद्य नः कः स्वित् ब्रूयात्) उस बातको आज हमसे कौन कहेगा ? ॥ ५ ॥

[१४८९] (यथा अनुदेयी अभवत्) जिस कारण यह बालक यमके द्वारा पिताको प्रदान किया गया (ततः अग्रम् अजायत) और इस कारण यह आगेकी बात घटित हुई । (पुरस्तात् बुध्नः आततः) उसके पहले यमके गृहको आनेकी बात हुई और (पश्चात् निरयणं कृतम्) फिर वह लौटकर आया ॥ ६ ॥

[१४९०] (यत् देवमानं उच्यते इदं यमस्य सदनम्) जो देवोंने निर्माण किया हुआ है, ऐसा कहा जाता है, यही नियन्ता यमका निवास स्थान है । (इयं नाळीः अस्य धम्यते) यह नाळी-नामका वाद्य-यमकी प्रसन्नताके लिये बजाया जाता है, और (अयं गीर्भिः परिष्कृतः) यह यम स्तुतियोंसे भूषित किया जाता है ॥ ७ ॥

[१३६]

[१४९१] (केशी अग्निं, केशी विषं केशी रोदसी बिभर्ति) रश्मियोंसे युक्त प्रकाशमान सूर्य अग्नि, जल और द्यावापृथिवीको धारण करता है । (केशी स्वः विश्वं दृशे) सूर्य ही सर्व जगत्को प्रकाशसे व्यक्त करता है । (इदं ज्योतिः केशी उच्यते) इस ज्योतिको ही केशी कहा जाता है ॥ १ ॥

[१४९२] (वातरशनाः मुनयः पिशङ्गा मला वसते) वातरशनके वंशज मुनिलोग पीत वर्णके और मलिन वस्त्र धारण करते हैं । (यत् देवासः अविक्षत) जब वे देवत्व प्राप्त करते हैं, तब (वातस्य ध्राजिं अनु यन्ति) वे वायुकी गतिके अनुगामी होते हैं, प्राणोपासना करके प्राणरूप प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

[१४९३] (मौनेयेन उन्मदिताः वयं वातान् आ तस्थिम) सब लौकिक व्यवहारोंको त्यागकर मुनिवृत्ति धारण किए हुए परम- आनन्दयुक्त होकर हम वायुरूप स्वीकारते हैं । हे (मर्तासः) मनुष्यो ! (अस्माकं शरीरेत् यूयं अभि पश्यथ) हमारे शरीरही केवल तुम देख सकते हो, क्योंकि हम अभी वायुरूप हो गये हैं ॥ ३ ॥

अन्तरिक्षेण पतति विश्वा रूपावचाकशत् ।
मुनिर्देवस्यदेवस्य सौकृत्याय सखा हितः ४
वातस्याश्वो वायोः सखा ऽथो देवेषितो मुनिः ।
उभौ समुद्रावा क्षेति यश्च पूर्व उतापरः ५
अप्सरसां गन्धर्वाणां मृगाणां चरणे चरन् ।
केशी केतस्य विद्वान् त्सखा स्वादुर्मदिन्तमः ६
वायुरस्मा उपामन्थत् पिनष्टि स्मा कुनन्नमा ।
केशी विषस्य पात्रेण यद्रुद्रेणापिबत् सह ७ [२४] (१४९७)

(१३७)

७,१ भरद्वाजः, २ कश्यपः, ३ गोतमः, ४ अत्रिः, ५ विश्वामित्रः, ६ जमदग्निः,
७ वसिष्ठः । विश्वे देवाः । अनुष्टुप् ।

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः ।
उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः १
द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः ।
दक्षं ते अन्य आ वातु परान्यो वातु यद्रपः २

[१४९४] (मुनिः अन्तरिक्षेण पतति) द्रष्टा मुनि आकाशमार्गसे संचार करता है, (विश्वा रूपा अवचाकशत्) और सर्व रूपोंको–पदार्थमात्रको स्वतेजसे प्रकाशित करता है । (देवस्य देवस्य सखा सौकृत्याय हितः) वह सब देवोंके मित्रभूत होकर सत्कृत्योंके लिये ही स्थापित होता है ॥ ४ ॥

[१४९५] (वातस्य अश्वः वायोः सखा अथो देव–इषितः मुनिः) वायुके समान व्यापक वायुका भोक्ता, वायुका मित्र और देवोंसे भी चाहने योग्य वायुरूप मुनि (यः च पूर्वः उत अपरः उभौ समुद्रौ आ क्षेति) जो पूर्व और जो अपर हैं, उन दोनों समुद्रोंको प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

[१४९६] (अप्सरसां गन्धर्वाणां मृगाणां चरणे चरन्) देवस्त्रियों–अप्सराओं, गन्धर्वों और मृगोंके स्थानोंमें संचार करता है । वह (केशी केतस्य विद्वान् सखा स्वादुः मन्दितमः) तेजस्वी सूर्य–अग्नि सब ज्ञातव्य विषयोंको जाननेवाला, मित्र, रसका उत्पादक और आनन्ददाता है ॥ ६ ॥

[१४९७] (केशी रुद्रेण सह विषस्य पात्रेण यत् अपिबत्) केशी रुद्रके साथ जलके पात्रसे जिस समय जलका पान करता है, तब (वायुः अस्मै उपामन्थत्) वायु इसको आलोडित–मन्थित करता है । (कुनन्नमा पिनष्टि स्म) और कठिन माध्यमिका–वाक्को भङ्ग कर देता है ॥ ७ ॥

[१३७]

[१४९८] हे (देवाः) देवो ! (अवहितं उत् नयथ) पतित मुझको ऊपर उठाओ । हे (देवाः) देवो ! (उत पुनः) और बारबार उठाओ । हे (देवाः) देवो ! (उत आगः चक्रुषम्) और अपराध करनेवाले मुझको उस अपराधसे संरक्षण करो । हे (देवाः) देवो ! (पुनः जीवयथ) रक्षा करके फिर मुझे चिरजीवी करो ॥ १ ॥

[१४९९] (इमौ द्वौ वातौ आ सिन्धोः आ परावतः वातः) ये दो वायु– एक समुद्र पर्यन्त और दूसरा समुद्रसे भी दूरके भागतक– जोरसे बहते हैं । (अन्यः ते दक्षं आ वातु) उन दोनोंमेंसे एक, हे स्तोता, तुझे बल प्रदान करे और (अन्यः यत् रपः परा वातु) दूसरा तेरे पापको उडा ले जावे– नष्ट करे ॥ २ ॥

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः ।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे ३
आ त्वागमं शन्तातिभि-रथो अरिष्टतातिभिः
दक्षं ते भद्रमाभार्षं परा यक्ष्मं सुवामि ते ४
त्रायन्तामिह देवा-स्त्रायतां मरुतां गणः ।
त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत ५
आप इद्वा उ भेषजी-रापो अमीवचातनीः ।
आपः सर्वस्य भेषजी-स्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ६
हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ।
अनामयित्नुभ्यां त्वा ताभ्यां त्वोप स्पृशामसि ७ [२५](१५०४)

(१३८)

६ अङ्ग औरवः । इन्द्रः । जगती ।

तव त्य इन्द्र सख्येषु वह्नय ऋतं मन्वाना व्यदर्दिरुर्वलम् ।
यत्रा दशस्यन्नुषसो रिणन्नपः कुत्साय मन्मन्नह्यश्च दंसयः १

[१५००] हे (वात) वायो ! (भेषजं आ वहि) तू व्याधिका उपशमन करनेवाली हितकारी ओषधि ले आ। हे (वात) वायु ! (यत् रपः वि वाहि) जो अहितकर है, पाप–मल है, उसे नष्ट कर, ले जा। (त्वं हि विश्वभेषजः देवानां दूतः ईयसे) तू ही जगतके औषधरूप– हितकारक ऐसा देवोंका दूत होकर सर्वत्र सतत जाता है ॥ ३॥

[१५०१] हे स्तोता ! (त्वा शंतातिभिः अथो अरिष्टतातिभिः आ अगमम्) तेरे लिये सुख–शान्ति कर और अहिंसा कर रक्षणोंके साथ मैं आया हूं। (ते भद्रं दक्षं आभार्षम्) तेरे लिये कल्याणकारी सुखदायक बल भी मैंने प्राप्त किया है। और (ते यक्ष्मं परा सुवामि) तेरे रोगको मैं इस समय दूर करता हूं ॥ ४ ॥

[१५०२] (इह देवाः त्रायन्ताम्) इस लोकमें सब देव हमारी रक्षा करें। (मरुतां गणः त्रायताम्) मरुद्गण हमारी रक्षा करे ! (विश्वा भूतानि त्रायन्ताम्) सब प्राणिमात्र हमारी रक्षा करें। (यथा अयं अरपाः असत्) जिससे यह हमारा शरीर आदि रोग और पापसे रहित हो ॥ ५ ॥

[१५०३] (आपः इत् वा उ भेषजीः) जल ही औषधिके समान हैं– स्नानपानादिसे सुखके लिये ओषधिरूपसे रोगका उपशमन करते हैं। (आपः अमीवचातनीः) जल ही रोगके कारणोंको नाश करनेवाले हैं। (आपः सर्वस्य भेषजीः) जल ही सबोंके हित करनेवाले ओषधिरूप हैं। (ताः ते भेषजं कृण्वन्तु) वे तेरे लिये रोगनाशक हों ॥ ६ ॥

[१५०४] (दशशाखाभ्यां हस्ताभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी) दश अंगुलियोंवाले प्रजापतिके दोनों हाथोंसे निर्माण हुई जिह्वा वाणीको आगे कर शब्द करती है। (ताभ्यां अनामयित्नुभ्यां त्वा उप स्पृशामसि) उन आरोग्य-कारक दोनों हाथोंसे तुझे हम स्पर्श करते हैं ॥ ७ ॥

[१३८]

[१५०५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (तव सख्येषु त्ये वह्नयः ऋतं मन्वानाः) तेरे सख्य–मित्रतामें रहनेवाले हविको प्रदान करनेवाले उन प्रसिद्ध भक्तोंने यज्ञकार्यका मनन करते हुए (बलं व्यदर्दिरुः) बल राक्षसका वध किया। (यत्र मन्मन् कुत्साय उषसः दशस्यन्) जिस समय मननीय स्तुति स्तोत्र गाते हुए कुत्सके लिये प्रभातकालका दर्शन कराया, (अपः रिणन् अह्मः च दंसयः) और जलको मुक्त किया, उस समय वृत्रके सारे कर्मोंको नष्ट किया ॥ १ ॥

अवासृजः प्रस्वः श्वञ्चयो गिरी-नुदाज उस्रा अपिबो मधु प्रियम् ।
अवर्धयो वनिनो अस्य दंससा शुशोच सूर्य ऋतजातया गिरा २
वि सूर्यो मध्ये अमुचद्रथं दिवो विदद्दासाय प्रतिमानमार्यः ।
दृळ्हानि पिप्रोरसुरस्य मायिन इन्द्रो व्यास्यच्चकृवाँ ऋजिश्वना ३
अनाधृष्टानि धृषितो व्यास्य-न्निधीँरदेवाँ अमृणदयास्यः ।
मासेव सूर्यो वसु पुर्यमा ददे गृणानः शत्रूँरशृणाद्विरुक्मता ४ (१५०८)
अयुद्धसेनो विभ्वा विभिन्दता दाशद्वृत्रहा तुज्यानि तेजते ।
इन्द्रस्य वज्रादबिभेदभिश्नथः प्राक्रामच्छुन्ध्यूरजहादुषा अनः ५
एता त्या ते श्रुत्यानि केवला यदेक एकमकृणोरयज्ञम् ।
मासां विधानमदधा अधि द्यवि त्वया विभिन्नं भरति प्रधिं पिता ६ [२६] (१५१०)

[१५०६] हे इन्द्र ! (प्रस्वः अवासृजः) जगत् निर्माता जलको मेघसे तू निर्माण करता है। (गिरीन् श्वञ्चयः) पर्वतोंको प्रेरित किया। (उस्राः उदाजः) बलासुरने गुहामें निहित गायोंको मुक्त किया। अनन्तर (प्रियं मधु अपिबः) प्रिय मधुर सोमका पान किया। (वनिनः अवर्धयः) वनके वृक्षको वृष्टिसे वर्धित किया। (ऋतजातया गिरा अस्य दंससा सूर्यः शुशोच) यज्ञमें स्तुत वेदमंत्रात्मक वाणीसे इन्द्रकी स्तुति हुई और इन्द्रके कर्मसे सूर्य तेजस्वी हुआ ॥ २ ॥

[१५०७] (दिवः मध्ये सूर्यः रथं वि अमुचत्) द्युलोकमें सूर्यने अपने रथको चला दिया। (आर्यः दासाय प्रतिमानं विदत्) जब श्रेष्ठ मेधावी इन्द्रने दासोंका प्रतिकार किया। (मायिनः पिप्रोः असुरस्य दृळ्हानि ऋजिश्वना चकृवान्) मायावी पिप्रु नामके असुरकी दृढ-स्थिर नगरों वा बलको राजर्षि ऋजिश्वाके साथ सख्य करके, (इन्द्रः वि आस्यत्) इन्द्रने नष्ट कर दिया ॥ ३ ॥

[१५०८] (धृषितः अनाधृष्टानि वि आस्यत्) दुर्धर्ष इन्द्रने अपराजित शत्रु सैन्योंको नष्ट कर डाला। (अयास्यः निधीन् अदेवान् अमृणत्) अयास्य ऋषिसे स्तवित इन्द्रने धनवान् बलशाली देव विरोधी असुरोंका नाश किया। (मासा इव सूर्यः पुर्यं वसु आ ददे) मास विशेषमें सूर्य जैसे भूमिरसको ले लेता है, वैसे ही तू शत्रुके नगरियोंमें का धन प्राप्त करता है। (गृणानः शत्रून् विरुक्मता अशृणात्) और स्तुति किया जाता हुआ तू शत्रुओंका प्रदीप्त तेजस्वी वज्रसे नाश करता है ॥ ४ ॥

[१५०९] (विभ्वा विभिन्दता अयुद्धसेनः वृत्रहा दाशत्) विस्तृत शत्रुपक्षके बलका वज्रसे विदारण करनेवाला, विना सेना लडायेही वृत्रहन्ता, भक्तोंको धन देनेवाला इन्द्र (तुज्यानि तेजते) शत्रुसेनाको कम करता है। (इन्द्रस्य अभिश्नथः वज्रात् अबिभेत्) इन्द्रके विदारक वज्रसे समस्त शत्रुलोग डरते हैं। (शुन्ध्युः प्राक्रमत्) अनन्तर सूर्य जगत्को प्रकाशित करता है और (उषाः अनः अजहात्) उषाने अपना रथ चला दिया ॥ ५ ॥

[१५१०] हे इन्द्र ! (त्या ते एता केवला श्रुत्यानि) वे तेरे वीरतायुक्त कर्म-पराक्रम इस प्रकार केवल अत्यंत श्रवणीय हैं। (यत् एकः एकं अयज्ञं अकृणोः) जो कि तुमने अकेले ही प्रधानभूत यज्ञ विघ्नकर्ता राक्षसका वध किया था। (मासां विधानं अधि द्यवि अदधाः) महीनोंका कर्ता सूर्यको तुमने द्युलोकमें स्थापित किया। और (पिता विभिन्नं प्रधिं त्वया भरति) पालक द्युलोक टूटे हुए चक्रको तेरे बलसे ही धारण करता है ॥ ६ ॥

(१३९)

६ देवगन्धर्वो विश्वावसुः । सविता, ४-६ आत्मा । त्रिष्टुप् ।

सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात् सविता ज्योतिरुदयाँ अजस्रम् ।
तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान् त्संपश्यन् विश्वा भुवनानि गोपाः १
नृचक्षा एष दिवो मध्य आस्त आपप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम् ।
स विश्वाचीरभि चष्टे घृताचीरन्तरा पूर्वमपरं च केतुम् २
रायो बुध्नः संगमनो वसूनां विश्वा रूपाभि चष्टे शचीभिः ।
देव इव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थौ समरे धनानाम् ३
विश्वावसुं सोम गन्धर्वमापो ददृशुषीस्तदृतेना व्यायन् ।
तदन्ववैदिन्द्रो रारहाण आसां परि सूर्यस्य परिधींरपश्यत ४
विश्वावसुरभि तन्नो गृणातु दिव्यो गन्धर्वो रजसो विमानः ।
यद्वा घा सत्यमुत यन्न विद्म धियो हिन्वानो धिय इन्नो अव्याः ५

[१३९]

[१५११] (सूर्यरश्मिः हरिकेशः सविता पुरस्तात् अजस्रं ज्योतिः उदयान्) सूर्यकी प्रेरक किरणोंवाला, उज्ज्वल पीतवर्ण सविता देव पूर्वकी ओर अखंड तेज प्रकट करता है। (तस्य प्रसवे विद्वान् गोपाः पूषा याति) उसका उदय होनेपर ज्ञाता और संरक्षक पूषा देव आकाशमें प्रयाण करता है; (विश्वा भुवनानि संपश्यन्) सारे जगतके प्राणियोंको उत्तम रीतिसे प्रकाशित करता है ॥ १ ॥

[१५१२] (रोदसी अन्तरिक्षं आपप्रिवान्) द्यावा-पृथिवी और अन्तरिक्षको अपने तेजसे पूर्ण करनेवाला, (नृचक्षाः एषः दिवः मध्ये आस्ते) सब मनुष्योंको देखनेवाला यह सविता देव द्युलोकमें रहता है। (सः विश्वाचीः घृताचीः अभि चष्टे) वह देव सर्व व्यापक मुख्य दिशाओं और उपदिशाओंको प्रकाशित करता है । और (पूर्वं अपरं च अन्तरा केतुं) वह पूर्व भाग, पृष्ठभाग और आकाशको प्रकाशित करता है ॥ २ ॥

[१५१३] (रायः बुध्नः वसूनां संगमनः सविता) धनका मूल, ऐश्वर्य-संपत्तिका प्रदाता सविता (शचीभिः विश्वा रूपा अभिचष्टे) अपनी दीप्तिसे-प्रकाशसे समस्त रूपोंको देखता है, प्रकाशित करता है । (देवः इव सविता सत्यधर्मा) देवके समान सविता सत्यधर्मोंका धारण करनेवाला है । (इन्द्रः न धनानां समरे तस्थौ) इन्द्रके समान धन-संपत्ति प्राप्त करनेके कार्यमें यह सज्ज रहता है ॥ ३ ॥

[१५१४] हे (सोम) सोम! (विश्वावसुं गन्धर्वं आपः ददृशुषीः) जिस समय विश्वावसु गन्धर्वको जलने देखा, (तत् ऋतेन व्यायन्) उस समय यज्ञकर्मके पुण्य प्रभावसे वह विलक्षण रीतिसे उसके पास प्राप्त हुआ । (तत् आसां रारहाणः इन्द्रः अन्ववैत्) गमन करनेवाले उनके कर्मको इन्द्रने जाना और (सूर्यस्य परिधीन् परि अपश्यत्) कहां यज्ञ कार्य चल रहा है, यह देखनेके लिये, चारों ओर सूर्यमण्डलका निरीक्षण किया ॥ ४ ॥

[१५१५] (दिव्यः रजसः विमानः विश्वावसुः गन्धर्वः) द्युलोकमें रहनेवाला और जलका निर्माता विश्वावसु गन्धर्व (नः तत् अभि गृणातु) हमें यह सब विषय बतावे । (यत् वा घ सत्यम्) जो निश्चित ही यथार्थ सत्य है (उत यत् न विद्म) और जो हम नहीं जानते हैं । हे विश्वावसो ! (धियः हिन्वानः) तू हमारी स्तुतियोंको प्रेरित करता हुआ, (नः धियः इत् अव्याः) हमारे बुद्धियुक्त कर्मोंकी रक्षा कर ॥ ५ ॥

सस्निमविन्दच्चरणे नदीनामपावृणोद्दुरो अश्मव्रजानाम् ।
प्रासां गन्धर्वो अमृतानि वोचदिन्द्रो दक्षं परि जानादहीनाम् ६ [२७] (१५१६)

(१४०)

६ अग्निः पावकः । अग्निः । सतोबृहती, १-२ विष्टारपङ्क्तिः, ६ उपरिष्टाज्ज्योतिः ।

अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो ।
बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं दधासि दाशुषे कवे १
पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना ।
पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे २
ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः ।
त्वे इषः सं दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ३ (१५१९)
इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य ।
स दर्शतस्य वपुषो वि राजसि पृणक्षि सानसिं क्रतुम् ४

[१५१६] (नदीनाम् चरणे सस्निं अविन्दत्) इन्द्रने नदियोंके चरण देशमें-अन्तरिक्षमें मेघको देखा। (अश्मव्रजानां दुरः अपावृणोत्) उसने मेघोंमें संचार करनेवाले जलके द्वारोंको खोल दिया। (आसां अमृतानि गन्धर्वः इन्द्रः प्र वोचत्) इनके अमर जलमयरूपका वर्णन गन्धर्व-इन्द्रने किया। (अहीनां दक्षं परि जानात्) क्योंकि इन्द्र मेघोंमें स्थित जलको जानता है ॥ ६ ॥

[१४०]

[१५१७] हे (अग्ने) अग्नि ! (तव वयः श्रवः) तेरा अन्न सर्वश्रेष्ठ है, प्रशंसनीय है। हे (विभावसो) दीप्तिरूप धनवान् ! (अर्चयः महि भ्राजन्ते) तेरी ज्वालाएं अत्यंत प्रकाशित होतीं हैं। हे (बृहद्भानो) महान् तेज-कान्तिवाले ! हे (कवे) सर्वज्ञ अग्नि ! (शवसा उक्थ्यं वाजं दाशुषे दधासि) तू बलयुक्त और स्तुत्य अन्न दानशील यजमानको देता है ॥ १ ॥

[१५१८] हे अग्नि ! (पावकवर्चाः शुक्रवर्चाः अनूनवर्चाः भानुना उदियर्षि) पवित्र-शुद्ध कान्ति धारण करनेवाला, निर्मल तेजवाला और अत्यंत तेजस्वी तू दीप्तिसे उदित होता है। (पुत्रः मातरा विचरन् उपावसि) अरणिमें संचार करनेवाला पुत्ररूप तू हमारी रक्षा करता है और (उभे रोदसी पृणक्षि) दोनों द्यावा-पृथिवी लोकोंके साथ संबद्ध करता है। [अर्थात् पृथिवी परके लोग हवि अर्पण करके देवोंको संतुष्ट करते हैं और देव जलवृष्टिसे पृथिवीको प्रसन्न करते हैं] ॥ २ ॥

[१५१९] हे (ऊर्जः नपात् जातवेदः) अन्नोत्पन्न सर्वज्ञ अग्नि ! (सुशस्तिभिः मन्दस्व, धीतिभिः हितः) हमारे स्तोत्रोंसे आनंद प्रसन्न हो और हमारे अग्निहोत्र आदि उत्तम कर्मोंसे तृप्त हो। (भूरिवर्पसः चित्रोतयः वामजाताः इषः त्वे सं दधुः) अनेक रूपोंवाले, आश्चर्यकारक और स्तुत्य हविरूप अन्न तुझको भक्त अर्पण करते हैं ॥ ३ ॥

[१५२०] हे (अग्ने) अग्नि ! हे (अमर्त्य) अमर ! (जन्तुभिः इरज्यन् अस्मे रायः प्रथयस्व) अपने तेजसे सुशोभित होकर हमारे पास धन विस्तृत कर। (सः दर्शतस्य वपुषः वि राजसि) वह तू दर्शनीय तेजोमय शरीरसे विशेष रूपसे शोभित हो रहा है। (सानसिं क्रतुं पृणक्षि) इस लिये तू सर्वफलदायक यज्ञका कर्म करके सेवित होता है ॥ ४ ॥

इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तं राधसो महः ।
रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिं रयिम् ५
ऋतावानं महिषं विश्वदर्शत- मग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः ।
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ६ [२८](१५२२)

(१४१)

६ अग्निस्तापसः । विश्वे देवाः । अनुष्टुप् ।

अग्ने अच्छा वदेह नः प्रत्यङ् नः सुमना भव ।
प्र नो यच्छ विशस्पते धनदा असि नस्त्वम् १
प्र नो यच्छत्वर्यमा प्र भगः प्र बृहस्पतिः ।
प्र देवाः प्रोत सूनृता रायो देवी ददातु नः २
सोमं राजानमवसे ऽग्निं गीर्भिर्हवामहे ।
आदित्यान् विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ३
इन्द्रवायू बृहस्पतिं सुहवेह हवामहे ।
यथा नः सर्व इज्जनः संगत्यां सुमना असत् ४

[१५२१] (अध्वरस्य इष्कर्तारं प्रचेतसं महः राधसः क्षयन्तं) यज्ञके संस्कर्ता, अत्यंत ज्ञानी, विपुल धन-ऐश्वर्यके स्वामी और (वामस्य रातिं) उत्तम धनके दाता, तेरी हम स्तुति करते हैं। (सुभगां महीं इषं सानसिं रयिं दधासि) तू उत्कृष्ट-सुखसम्पन्न विपुल अन्न और सर्व-फलदायक धन हमें दे ॥ ५ ॥

[१५२२] (ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतं अग्निं) सत्यनिष्ठ, पूजनीय और सबोंको दर्शनीय अग्निको (सुम्नाय जनाः पुरः दधिरे) सुखके लिये मनुष्य अपने समक्ष स्थापित करते हैं। हे अग्नि ! (श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं दैव्यं त्वा) स्तुति श्रवण करनेवाला, अतिशय प्रख्यात और दैवी गुणोंसे युक्त तेरी (मानुषा युगा गिरा) मनुष्य, यजमान पति-पत्नी स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥

[१४१]

[१५२३] हे (अग्ने) अग्नि ! (इह नः अच्छ वद) यहां तू हमारे प्रति उपयुक्त प्रिय उपदेश कर। (नः प्रत्यङ् सुमनाः भव) हमारे प्रति आकर उत्तम मनवाला हो। हे (विशस्पते) प्रजाके पालक ! (नः प्र यच्छ) हमें धन दे; कारण (त्वं नः धनदाः असि) तू हमें धन देनेवाला है ॥ १ ॥

[१५२४] (अर्यमा भग बृहस्पतिः नः प्र यच्छतु) अर्यमा, भग और बृहस्पति हमें धन-ऐश्वर्य प्रदान करें। (देवाः प्र उत सूनृता रायः नः प्र ददातु) सब देव और प्रिय सत्यवाक् रूपा देवी सरस्वती हमें धनादि ऐश्वर्य प्रदान करें ॥ २ ॥

[१५२५] (राजानं सोमं अग्निं अवसे गीर्भिः हवामहे) राजा सोम और अग्निको हमारी रक्षाके लिये हम स्तोत्रोंसे बुलाते हैं। (आदित्यान् विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम्) और आदित्य, विष्णु, सूर्य, प्रजापति और बृहस्पतिको भी हम हमारी रक्षाके लिये प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥

[१५२६] (सुहवा इन्द्रवायू बृहस्पतिं इह हवामहे) स्तुत्य इन्द्र, वायु और बृहस्पतिको इस कार्यमें हम आदरपूर्वक बुलाते हैं। (यथा सर्वः इत् जनः नः संगत्यां सुमनाः असत्) जिससे सभी लोग हमारे प्रति उत्तम मनवाले प्रसन्न हों ॥ ४ ॥

अर्यमणं बृहस्पति—मिन्द्रं दानाय चोदय ।
वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम् ५
त्वं नो अग्ने अग्निभि—र्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।
त्वं नो देवतातये रायो दानाय चोदय ६ [२९] (१५२८)

(१४२)

८ शार्ङ्गाः- १-२ जरिता, ३-४ द्रोणः, ५-६ सारिसृक्वः, ७-८ स्तम्बमित्रः । अग्निः ।
त्रिष्टुप्, १-२ जगती, ७-८ अनुष्टुप् ।

अयमग्ने जरिता त्वे अभूदपि सहसः सूनो नह्य१न्यदस्त्याप्यम् ।
भद्रं हि शर्म त्रिवरूथमस्ति त आरे हिंसानामप दिद्युमा कृधि १
प्रवत् ते अग्ने जनिमा पितूयतः साचीव विश्वा भुवना न्यृञ्जसे ।
प्र सप्तयः प्र सनिषन्त नो धियः पुरश्चरन्ति पशुपा इव त्मना २ (१५३०)

उत वा उ परि वृणक्षि बप्स—द्बहोरग्न उलपस्य स्वधावः ।
उत खिल्या उर्वराणां भवन्ति मा ते हेतिं तविषीं चुक्रुधाम ३

[१५२७] हे स्तोता ! (अर्यमणं बृहस्पतिं इन्द्रं वातं विष्णुं सरस्वतीं वाजिनं सवितारं च दानाय चोदय) अर्यमा, बृहस्पति, इन्द्र, वायु, विष्णु, सरस्वती और अन्न तथा बल दाता सविता देवको तू हमें धन प्रदान करनेके करनेके लिये प्रेरणा कर ॥ ५ ॥

[१५२८] हे (अग्ने) अग्नि ! (त्वं अग्निभिः नः ब्रह्म यज्ञं च वर्धय) तू अन्य अग्नियोंके साथ हमारे स्तोत्र और यज्ञकी श्रीवृद्धि कर। (त्वं नः देवतातये रायः दानाय चोदय) और तू हमारे यज्ञके लिये धन दानके लिये दाताओंको प्रेरणा कर ॥ ६ ॥

[१४२]

[१५२९] हे (अग्ने) अग्नि ! (अयम् जरिता त्वे अपि अभूत्) यह स्तुतिकर्ता स्तोता तुम्हारीही स्तुति करता है। हे (सहसः सूनो) बलके पुत्र ! तुम्हारेसे (अन्यत् आप्यम् नहि अस्ति) अलग दूसरा कोई भी हमारे लिये प्राप्तव्य नहीं है। (हि ते भद्रं शर्म त्रि वरूथं अस्ति) निश्चय करके तेरा दिया कल्याणका जनक सुखही तीनों दुःखोंसे बचानेवाला है। तू (हिंसानां आरे दिद्युं अपाकृधि) मारे जानेवाले हम प्राणियोंसे अपने दीप्यमान ज्वालाको दूर कर ॥ १ ॥

[१५३०] हे (अग्ने) अग्नि ! (पितूयतः ते जनिम प्रवत्) अन्नकी कामना करते हुये तुम्हारी उत्पत्ति अत्यन्त सुन्दर होती है। तुम (साची इव विश्वा भुवना नि ऋञ्जसे) भाईके समान सम्पूर्ण लोकोंको सुशोभित करते हो। तुम्हारे (सप्तयः नः धियः प्र सनिषन्त) इधर उधर गमनशील ज्वालाओंको देखकर हमारे स्तोत्र प्रकट हुये हैं। अनन्तर वे ज्वालायें (त्मना पशुपा इव पुरः चरन्ति) अपने आत्म सामर्थ्यसेही पशुपालकके समान आगे आगे विचरण करती हैं ॥ २ ॥

[१५३१] हे (स्वधावः अग्ने) दीप्तिमान् अग्नि ! तू (बप्सत् बहोः उलपस्य उत वै परि वृणक्षि) बहुतसे तृणवनस्पतियोंको जलाता हुआ भी उसको शेष कर देता है। (उ उत उर्वराणाम् खिल्या भवन्ति) और उपजाऊ भूमियोंमेंसे भी बहुतसी तुम्हारे द्वारा ऊसर हो जाती हैं। हम (ते तविषीं हेतिं मा चक्रुधाम) तुम्हारी बलवती शक्तिको कोपित न करें ॥ ३ ॥

यदुद्वतो निवतो यासि बप्सत् पृथगेषि प्रगर्धिनीव सेना ।
यदा ते वातो अनुवाति शोचिर्वप्तेव श्मश्रु वपसि प्र भूम ४
प्रत्यस्य श्रेणयो ददृश्र एकं नियानं बहवो रथासः ।
बाहू यदग्ने अनुमर्मृजानो न्यङ्ङुत्तानामन्वेषि भूमिम् ५
उत ते शुष्मा जिहतामुत ते अर्चिरुत ते अग्ने शशमानस्य वाजाः ।
उच्छ्वञ्चस्व नि नम वर्धमान आ त्वाद्य विश्वे वसवः सदन्तु ६
अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम् ।
अन्यं कृणुष्वेतः पन्थां तेन याहि वशाँ अनु ७
आयने ते परायणे दूर्वा रोहन्तु पुष्पिणीः ।
ह्रदाश्च पुण्डरीकाणि समुद्रस्य गृहा इमे ८ [३०](१५३६)

[१५३२] हे अग्नि ! तू (यत् उद्वतः निवतः बप्सत् यासि) जब वृक्षोंको ऊपर नीचेसे खाद्य करता हुआ जाता है, तब तू (प्रगर्धिनी सेना इव पृथक् एषि) विजय लोलुप सेनाके समान पृथक् रस्ता बना कर आता है। (यदा वातः ते शोचिः अनुवाति) जब वायु तेरे ज्वालाके अनुकूल बहता है; तब (श्मश्रु वप्ता इव भूम प्रवपसि) दाढी मूंछके बालोंको काटनेवाले नाईके समान तू बहुतसे भूमि भागको अन्न रहित करके साफ कर देता है ॥ ४ ॥

[१५३३] हे (अग्ने) अग्नि ! तू (यत् बाहू अनु मर्मृजानः न्यङ् उत्तानाम् भूमिं अनु एषि) जब अपनी बाहुओंको बार बार स्पर्श करता हुआ सम्पूर्ण बनोंको जलाता है, तब कभी नीचे कभी उत्तान भूमिकी ओर जाता है। जिस प्रकार (एकं नियानं बहवो रथासः) एकके जाते हुये, पीछे बहुतसे अश्वारोही जाते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे (अस्य श्रेणयः प्रति दृश्यते) इस शरीरकी ज्वालाओंकी श्रेणियां भी एकके पीछे एक जाती हुई दिखाई पडती हैं ॥ ५ ॥

[१५३४] हे (अग्ने) अग्नि ! (ते शुष्माः उत् जिहताम्) तुम्हारी ज्वालायें उपर उठें। (ते अर्चिः शशमानस्य वाजाः वर्धमानः उच्छ्वञ्चस्व) तेरी दीप्ति सन्मान्वित होती और बलोंकी वृद्धि करती हुई उन्नति प्राप्त करे। तथा (अद्य विश्वे वसवः नि नम त्वा आ सदन्तु) आज सारे वसु लोग अच्छी प्रकार विनयशील होकर नीचे झुककर तुमको प्राप्त हों ॥ ६ ॥

[१५३५] (इदं अपाम् नि अयनम्) यह गंभीर जलाशय है, तथा (समुद्रस्य निवेशनम्) समुद्रका स्थान है। अतः हे अग्नि ! तुम हमारे (इतः अन्यं पन्थां कृणुष्व) इस स्थानसे दूसरे मार्गको बनाओ, जिससे (तेन वशान् अनु याहि) उस मार्गसे स्व इच्छानुसार अनुगमन कर सको ॥ ७ ॥

[१५३६] हे अग्नि ! (ते आयने परायणे पुष्पिणीः दूर्वाः रोहन्तु) तेरे आगमन पर और जानेपर हमारे इस निवास भूमिमें पुष्पवाली लतायें और दूबें उगें। उसमें (ह्रदाः च पुण्डरीकाणि) नाना जलाशय हों जिसमें अनेक प्रकारके कमल हों। (समुद्रस्य इमे गृहाः) समुद्रके जल प्रदेशमें हमारे ये निवास स्थान हो जिससे तुमसे हम दाहको न प्राप्त हो सकें ॥ ८ ॥

[अष्टमोऽध्यायः ॥८॥ व० १-४९] (१४३)

६ अत्रिः सांख्यः । अश्विनौ । अनुष्टुप् ।

त्यं चिदत्रिंमृतजुर मर्थमश्वं न यातवे ।
कक्षीवन्तं यदी पुना रथं न कृणुथो नवम् १
त्यं चिदश्वं न वाजिन मरेणवो यमत्नत ।
दृळ्हं ग्रन्थिं न वि ष्यत मत्रिं यविष्ठमा रजः २
नरा दंसिष्ठावत्रये शुभ्रा सिषासतं धियः ।
अथा हि वां दिवो नरा पुनः स्तोमो न विशसे ३
चिते तद्वां सुराधसा रातिः सुमतिरश्विना ।
आ यन्नः सदने पृथौ समने पर्षथो नरा ४
युवं भुज्युं समुद्र आ रजसः पार ईङ्खितम् ।
यातमच्छा पतत्रिभि र्नासत्या सातये कृतम् ५
आ वां सुम्नैः शंयू इव मंहिष्ठा विश्ववेदसा ।
समस्मे भूषतं नरो त्सं न पिप्युषीरिषः ६ [१] (१५४२)

[१४३]

[१५३७] हे अश्विकुमारो ! (त्यं चित् ऋतजुरं अत्रिं अर्थं यातवे) उसही यज्ञ कर्म करके वृद्ध हुए अत्रि ऋषिको प्राप्तव्य स्थानपर जानेके लिये (अश्वं न कृणुथः) अश्वके समान समर्थ किया । (यदि पुनः कक्षीवन्तं रथं न नवं) और फिर कक्षीवान्को रथके समान नव यौवन प्रदान किया ॥ १ ॥

[१५३८] (वाजिनं अश्वं न यं अरेणवः अत्नत) वेगशाली घोडेके समान जिस अत्रि ऋषिको प्रबल पराक्रमी असुरोंने बांध रखा था, (त्यं चित् यविष्ठं अत्रिं आ रजः) उस ही अत्यंत युवा अत्रिको इस लोकमें (दृढं ग्रन्थिं न वि ष्यतम्) जैसे सुदृढ गांठको खोला जाता है वैसे ही उसे मुक्त किया था ॥ २ ॥

[१५३९] हे (नरा) नेताओ ! हे (दंसिष्ठौ शुभ्रा) दर्शनीय और निर्मल अश्विकुमारो ! (अत्रये धियः सिषासतम्) मुझ अत्रिको कर्म करनेकी बुद्धि देनेकी इच्छा करो । हे (नरा) नायको ! (अथा हि दिवः स्तोमः न वां पुनः विशसे) अनंतर मैं दिव्य स्तोत्रोंसे फिर तुम्हारी स्तुति करूंगा ॥ ३ ॥

[१५४०] हे (सुराधसा अश्विना) उत्तम दाता अश्वि कुमारो ! (सुमतिः रातिः तत् वां चिते) हमारी शोभन स्तुति और हविर्दान तुम्हारे ज्ञानके लिये ही है । (यत् सदने पृथौ समने) जिस कारण गृहमें और विस्तीर्ण यज्ञमें, हे (नरा) नायको ! (नः आ वर्षथः) हमारी इच्छाओंको पूर्ण किया, हमारी रक्षा की, उससे हमारी सेवाओंको तुम अच्छी तरहसे जानते हैं, यह निश्चित है ॥ ४ ॥

[१५४१] हे (नासत्या) सत्यरूप अश्विकुमारो ! (युवं समुद्रे रजसः पारे ईङ्खितं) आप दोनों समुद्रमें जलोंके तरंगोंके ऊपर इधर उधर गोते खाते हुए (भुज्युं अच्छ पतत्रिभिः आ यातम्) भुज्युको तारनेके लिये उत्तम पक्षवाली नौका लेकर आये और (सातये कृतम्) यज्ञानुष्ठानके लिये, इष्ट कार्यके लिये समर्थ बनाया ॥ ५ ॥

[१५४२] हे (विश्ववेदसा नरः) सर्वज्ञ, सब धनोंके स्वामि अश्विनो ! (वां शंयू इव मंहिष्ठा सुम्नैः आ) तुम राजाके समान सुखी और श्रेष्ठ-पूज्य हो; हमारे पास तुम सुखसाधनोंसे युक्त होकर आवो । (पिप्युषीः इषः उत्सं न अस्मे संभूषतम्) जैसे उत्तम दूध गायके स्तनोंको भर देता है, वैसेही हमें धनादिसे भूषित करो ॥ ६ ॥

(१४४)

६ तार्क्ष्यः सुपर्णः, यामायन ऊर्ध्वकृशनो वा । इन्द्रः । गायत्री, २ बृहती,
५ सतोबृहती, ६ विष्टारपङ्क्तिः ।

अयं हि ते अमर्त्य इन्दुरत्यो न पत्यते । दक्षो विश्वायुर्वेधसे १
अयमस्मासु काव्य ऋभुर्वज्रो दास्वते ।
अयं बिभर्त्यूर्ध्वकृशनं मदमृभुर्न कृत्व्यं मदम् २
घृषुः श्येनाय कृत्वन आसु स्वासु वंसगः । अव दीधेदहीशुवः ३
यं सुपर्णः परावतः श्येनस्य पुत्र आभरत् । शतचक्रं योऽह्यो वर्तनिः ४
यं ते श्येनश्चारुमवृकं पदाभरदरुणं मानमन्धसः ।
एना वयो वि तार्यायुर्जीवस एना जागार बन्धुता ५
एवा तदिन्द्र इन्दुना देवेषु चिद्धारयाते महि त्यजः ।
क्रत्वा वयो वि तार्यायुः सुक्रतो क्रत्वायमस्मदा सुतः ६ [२] (१५४८)

[१४४]

[१५४३] हे इन्द्र ! (वेधसे ते अयं हि अमर्त्यः दक्षः विश्वायुः इन्दुः अत्यो न पत्यते) जगत्कर्ता तेरे लिये यह अमर बलवर्धक और जीवनस्वरूप सोम घोडेके समान तेरे पास आता है ॥ १ ॥

[१५४४] (अस्मासु काव्यः अयं ऋभुः दास्वते वज्रः) हमारे स्तोत्रोंमें स्तुत्य-वर्णित यह इन्द्र दीप्तिमान् होकर दाता यजमानका वज्रके समान उसके सब शत्रुओंको दूर करनेवाला है। और (अयं ऊर्ध्वकृशनं मदं बिभर्ति) यह उर्ध्वकृशन नामक स्तोताका पालन करता है। (ऋभुः न कृत्व्यं मदम्) ऋभुके समान कर्म करनेवाले हर्षयुक्त मनुष्यके समान यजमानको आनन्दित करके पोषण करता है ॥ २ ॥

[१५४५] (घृषुः स्वासु आसु वंसगः) तेजस्वी, अपनी यजमान स्वरूप प्रजामें स्तुत्य-वंदनीय इन्द्र (कृत्वने श्येनाय अहीशुवः अव दीधेत्) कर्म करनेवाले श्येनऋषिके लिये उसके पुत्रादिको तेजस्वी करे ॥ ३ ॥

[१५४६] (श्येनस्य पुत्रः सुपर्णः यं शतचक्रं परावतः आभरत्) श्येन तार्क्ष्यके पुत्र सुपर्ण जिस धनदाता सोमको अत्यन्त दूर देशसे ले आया है। और (यः अह्यः वर्तनिः) जो सोम वृत्रको प्रेरणा देता है ॥ ४ ॥

[१५४७] हे इन्द्र ! (चारुं अवृकं अरुणं अन्धसः मानं) सुंदर, बाधारहित-सुखप्रद, रक्तवर्ण और अन्नके उत्पादक (यं श्येनः ते पदा आभरत्) ऐसे सोमको श्येनने-सुपर्णने तेरे लिये अपने चरणसे लाया है। (एना जीवसे वयः आयुः वि तारि) इससे ही दीर्घ जीवनके लिये अन्न-बल और आयुष्य प्रदान कर। (एना बन्धुता जागार) और इससे ही हमारे बन्धुओंको जागृत कर ॥ ५ ॥

[१५४८] (एव तत् इन्दुना इन्द्रः देवेषु चित्) इस प्रकार उस सोमरसका पान करके ही, इन्द्र देवोंकी और हमारी (महि त्यजः धारयाते) महान् बल और दुःख नाशक संरक्षणके द्वारा रक्षा करता है। हे (सुक्रतो) उत्तम शुभ कर्म करनेवाले इन्द्र ! (क्रत्वा वयः आयुः वि तारि) हमारे यज्ञादि कर्मसे प्रसन्न होकर तू हमें अन्न और दीर्घ आयुष्य प्रदान कर। (अयं क्रत्वा अस्मत् आ सुतः) जो यह सोम तेरे लियेही यज्ञ कर्मसे हमने अभिषुत किया है ॥ ६ ॥

(१४५)

६ इन्द्राणी : सपत्नीबाधनम् (उपनिषत्)। अनुष्टुप्, ६ पङ्क्तिः ।

इमां खनाम्योषधिं वीरुधं बलवत्तमाम् ।
यया सपत्नीं बाधते यया संविन्दते पतिम् १

उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति ।
सपत्नीं मे परा धम पतिं मे केवलं कुरु २

उत्तराहमुत्तर उत्तरेदुत्तराभ्यः ।
अथा सपत्नी या ममाऽधरा साधराभ्यः ३

नह्यस्या नाम गृभ्णामि नो अस्मिन् रमते जने ।
परामेव परावतं सपत्नीं गमयामसि ४

अहमस्मि सहमानाऽथ त्वमसि सासहिः ।
उभे सहस्वती भूत्वी सपत्नीं मे सहावहै ५

उप तेऽधां सहमानामभि त्वाधां सहीयसा ।
मामनु प्र ते मनो वत्सं गौरिव धावतु पथा वारिव धावतु ६ [३] (१५५४

[१४५]

[१५४९] (इमां वीरुधं बलवत्तमां ओषधिं खनामि) इस लतारूप, अपने कार्यमें अत्यंत बलवती औषधिको में खोदकर निकालता हूं । (यया सपत्नीं बाधते) जिससे सौतको दुःख दिया जाता है, और (यया पतिं संविन्दते) जिससे स्वामीका असाधारण प्रेम प्राप्त किया जाता है ॥ १ ॥

[१५५०] हे (उत्तानपर्णे) ऊपरकी ओर फैलनेवाले पत्तोंवाली ! हे (सुभगे) उत्तम सौभाग्यसे युक्त ! हे (देवजूते) देवों द्वारा निर्मित ! हे (सहस्वति) अतीव तेजवाली ! (मे सपत्नीं परा धम) तू मेरी सपत्नीको दूर कर ! (मे केवलं पतिं कुरु) और मेरा ही केवल पति रहे ऐसा कर ॥ २ ॥

[१५५१] हे (उत्तरे) उत्कृष्ट औषधि ! (अहं उत्तरा) मैं उत्कृष्ट होऊं, (उत्तराभ्यः उत्तरा) उत्कृष्ट-श्रेष्ठमें भी श्रेष्ठ होऊं । (अथ या मम सपत्नी सा अधराभ्यः अधरा) और जो मेरी सपत्नी है, वह निकृष्टमेंसे भी अधिक निकृष्ट हो जाय ॥ ३ ॥

[१५५२] मैं (अस्याः नाम नहि गृभ्णामि) इस सपत्नीका नाम भी नहीं लेती हूं । (अस्मिन् जने नो रमते) इस सपत्नीसे कोई भी रमता नहीं । मैं (सपत्नीं परां एव परावतं गमयामसि) सपत्नीको दूरसे भी दूर देशको भेज देती हूं ॥ ४ ॥

[१५५३] हे ओषधि ! (अहं सहमाना अस्मि) मैं तेरी कृपासे सपत्नीको पराभूत करनेवाली हूं, (अथ त्वं सासहिः असि) और तू भी पराजित करनेवाली हो । (उभे सहस्वती भूत्वी मे सपत्नीं सहावहै) हम दोनों बलवान्-शक्ति संपन्ना होकर सपत्नीको पराजित करें ॥ ४ ॥

[१५५४] हे पतिदेव ! (ते सहमानां उप अधाम्) मैं तेरे सिरके पास सपत्नीको पराजित करनेवाली इस ओषधिको रखती हूं । (सहीयसा त्वा अभि अधाम्) और अभिभूत करनेवाली ओषधिने तुझे धारण किया है । (ते मनः मां प्र धावतु) तेरा मन मेरी ओर दौडकर आवे, जैसे (वत्सं गौः इव) गाय बछडेके लिये दौडती है, (पथा वारिव) और जैसे जल नीचेकी ओर दौडता है ॥ ६ ॥

(१४६)

६ ऐरम्मदो देवमुनिः । अरण्यानी । अनुष्टुप् ।

अरण्यान्यरण्या न्यसौ या प्रेव नश्यसि ।
कथा ग्रामं न पृच्छसि न त्वा भीरिव विन्दतीँ ॥ १
वृषारवाय वदते यदुपावति चिच्चिकः ।
आघाटिभिरिव धावय न्नरण्यानिर्महीयते ॥ २
उत गाव इवाद न्त्युत वेश्मेव दृश्यते ।
उतो अरण्यानिः सायं शकटीरिव सर्जति ॥ ३
गामङ्गैष आ ह्वयति दार्वङ्गैषो अपावधीत् ।
वसन्नरण्यान्यां साय मक्रुक्षदिति मन्यते ॥ ४
न वा अरण्यानिर्ह न्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति ।
स्वादोः फलस्य जग्ध्वाय यथाकामं नि पद्यते ॥ ५
आञ्जनगन्धिं सुरभिं बह्वन्नामकृषीवलाम् ।
प्राहं मृगाणां मातर मरण्यानिमशंसिषम् ॥ ६ [४] (१५६०)

---

[१४६]

[१५५५] हे (अरण्यानि) अरण्य देवते ! (अरण्यानि या असौ प्र इव नश्यसि) अरण्यमें-वनमें जो तू देखते-देखते ही अन्तर्धान हो जाती है, वह तू (कथा ग्रामं न पृच्छसि) नगर-ग्रामकी कुछ विचारणा कैसे नहीं करती ? निर्जन अरण्यमेंही क्यों जाती हो ? (त्वा भीः इव न विन्दति) तुझे डर भी नहीं लगता ? ॥ १ ॥

[१५५६] (वृषारवाय वदते) ओरसे बडी आवाजसे शब्द करनेवाले प्राणीके समीप (चित्-चिकः यत् उपावति) जब ची-ची शब्द करनेवाले प्राणी प्राप्त होता है, उस समय मानो (आघाटिभिः इव धावयन्) वीणाके स्वरोंके समान स्वरोच्चारण करके (अरण्यानिः महीयते) अरण्य देवताका यशोगान करता है ॥ २ ॥

[१५५७] (उत गावः इव अदन्ति) और गौओंके समान अन्य प्राणि भी इस अरण्यमें चरते हैं । (उत वेश्म इव दृश्यते) और लता-गुल्म आदि गृहके समान दिखाई देते हैं । (उत अरण्यानिः सायं शकटीः सर्जति) और सायंकालके समय वनसे विपुल गाडियें चारा, लकडी आदि लेकर निकलती हैं- मानों अरण्यदेवता उन्हें अपने घर भेज रही है ॥ ३ ॥

[१५५८] हे (अङ्ग) अरण्य देवता ! (एषः गां आह्वयति) यह एक पुरुष गायको बुला रहा है, और (एषः दारु अपावधीत्) दूसरा काष्ठ काट रहा है । (सायं अरण्यान्यां वसन् अक्रुक्षत् इति मन्यते) रात्रीमें अरण्यमें रहनेवाला मनुष्य नानाविध शब्द सुनकर कोई भयभीत होकर पुकारता है, ऐसे मानता है ॥ ४ ॥

[१५५९] (अरण्यानिः न वै हन्ति) अरण्यानी किसीकी हिंसा नहीं करती । और (अन्यः इत् च न अभि गच्छति) दूसरा भी कोई उस पर आक्रमण नहीं करता । (स्वादोः फलस्य जग्ध्वाय यथाकामं नि पद्यते) वह मधुर फलोंका आहार करके अपनी इच्छाके अनुसार सुखसे रहता है ॥ ५ ॥

[१५६०] (आञ्जनगन्धिं सुरभिं बहु-अन्नां अकृषीवलां) कस्तूरी आदि उत्तम सुवाससे युक्त, सुगंधी, विपुल फलमूलादि भक्ष्य अन्नसे पूर्ण , कृषिवलोंसे रहित, (मृगाणां मातरं अरण्यानिं अहं प्र अशंसिषम्) और मृगोंकी माता, ऐसी अरण्यानि की मैं स्तुति करता हूं ॥ ६ ॥

(१४७)

५ सुवेदाः शैरीषिः। इन्द्रः। जगती, ५ त्रिष्टुप्।

श्रत्ते दधामि प्रथमाय मन्यवे ऽहन्यद्वृत्रं नर्यं विवेरपः।
उभे यत्त्वा भवतो रोदसी अनु रेजते शुष्मात् पृथिवी चिदद्रिवः १
त्वं मायाभिरनवद्य मायिनं श्रवस्यता मनसा वृत्रमर्दयः।
त्वामिन्नरो वृणते गविष्टिषु त्वां विश्वासु हव्यास्विष्टिषु २
ऐषु चाकन्धि पुरुहूत सूरिषु वृधासो ये मघवन्नानशुर्मघम्।
अर्चन्ति तोके तनये परिष्टिषु मेधसाता वाजिनमह्रये धने ३
स इन्नु रायः सुभृतस्य चाकनन्मदं यो अस्य रंह्यं चिकेतति।
त्वावृधो मघवन् दाश्वध्वरो मक्षू स वाजं भरते धना नृभिः ४
त्वं शर्धाय महिना गृणान उरु कृधि मघवञ्छग्धि रायः।
त्वं नो मित्रो वरुणो न मायी पित्वो न दस्म दयसे विभक्ता ५ [५] (१५६५)

---

[१४७]

[१५६१] हे इन्द्र ! (ते मन्यवे प्रथमाय श्रत् दधामि) तेरे क्रोधको मैं सर्व श्रेष्ठ समझकर, उसपर श्रद्धा रखता हूं। (यत् नर्यं वृत्रं अहन्) जिस क्रोधसे श्रेष्ठ वृत्रका तुमने वध किया, और (अपः विवेः) लोक कल्याणके लिये जल प्रदान किया। (यत् उभे रोदसी त्वा अनु भवतः) दोनों द्यावा पृथिवी तेरे ही अधीन हैं। हे (अद्रिवः) वज्रधारी इन्द्र ! (पृथिवी चित् शुष्मात् रेजते) यह विशाल अन्तरिक्ष भी तेरे बलसे कांपता है ॥ १ ॥

[१५६२] हे (अनवद्य) स्तुत्य इन्द्र ! (त्वं मायिनं वृत्रं श्रवस्यता मनसा) तू मायावी वृत्रको अन्नको उत्पन्न करनेकी इच्छावाले मनसे (मायाभिः अर्दयः) वञ्चनायुक्त बुद्धिकौशलसे व्यथित करता है। और (नरः गविष्टिषु त्वाम् इत् वृणते) सब लोग गौओंको प्राप्त करनेके लिये तेरीही याचना-प्रार्थना करते हैं। (विश्वासु हव्यासु इष्टिषु त्वाम्) सब हवि अर्पण करने योग्य यज्ञोंमें तुझेही बुलाते हैं ॥ २ ॥

[१५६३] हे (पुरुहूत) बहुतोंसे बुलाये जानेवाले इन्द्र ! (एषु सूरिषु आ चाकन्धि) इन विद्वान् स्तोताओंमें तू अत्यंत चमकता है, इनकी तू अभिलाषा करता है। हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (ये वृधासः मघं आनशुः) जो विद्वान् लोग तेरी कृपासे वर्धित होकर उत्तम धन प्राप्त कर लेते हैं। और (मेधसाता वाजिनं अर्चन्ति) यज्ञमें बलवान् तथा अन्नदाता तेरी ही अर्चना करते हैं। (तोके तनये परिष्टिषु अह्रये धने) पुत्र, पौत्र, अन्य अभिलषित फलोंको प्राप्त करनेके लिये और अलज्जास्पद धन पानेके लिये भी तेरी ही पूजा करते हैं ॥ ३ ॥

[१५६४] (सः इत् सुभृतस्य रायः नु चाकनत्) वह ही उत्तम रीतिसे संपादित धनकी कामना करता है, (यः अस्य रंह्यं मदं चिकेतति) जो स्तोता इस तेजस्वी इन्द्रके वेग और सोमपान जन्य हर्षको जानता है। हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (त्वा वृधः दाशु-अध्वरः नृभिः) तेरी कृपासे उत्कर्ष पानेवाला और यज्ञ कर्म करनेवाला यजमान, उत्तम नेता, ऋत्विज, सेवक आदिकी सहायतासे (धना वाजं मक्षु भरते) अनेक प्रकारके धन और अन्न शीघ्रही प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

[१५६५] हे इन्द्र ! (त्वं महिना गृणानः शर्धाय उरु कृधि) महान् स्तोत्रोंसे स्तवित तू हमें बहुत बल प्रदान कर। हे (मघवन्) धनोंके स्वामी इन्द्र ! (रायः शग्धि) अनेक प्रकारके धन हमें दे। हे (दस्म) दर्शनीय इन्द्र ! (विभक्ता त्वं मित्रः वरुणः न मायी) धनका दाता तू मित्र और वरुणके समान सर्वश्रेष्ठ ज्ञानसे युक्त होकर (नः पित्वः दयसे) हमें अन्न दे ॥ ५ ॥

(१४८)

५ पृथुर्वैन्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

सुष्वाणास इन्द्र स्तुमसि त्वा ससवांसश्च तुविनृम्ण वाजम् ।
आ नो भर सुवितं यस्य चाकन् त्मना तना सनुयाम त्वोताः १
ऋष्वस्त्वमिन्द्र शूर जातो दासीर्विशः सूर्येण सह्याः ।
गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्सु बिभृमसि प्रस्रवणे न सोमम् २
अर्यो वा गिरो अभ्यर्च विद्वा नृषीणां विप्रः सुमतिं चकानः ।
ते स्याम ये रणयन्त सोमै रेनोत तुभ्यं रथोळ्ह भक्षैः ३
इमा ब्रह्मेन्द्र तुभ्यं शंसि दा नृभ्यो नृणां शूर शवः ।
तेभिर्भव सक्रतुर्येषु चाक न्नुत त्रायस्व गृणत उत स्तीन् ४
श्रुधी हवमिन्द्र शूर पृथ्या उत स्तवसे वेन्यस्यार्कैः ।
आ यस्ते योनिं घृतवन्तमस्वा रूर्मिर्न निम्नैर्द्रवयन्त वक्वाः ५ [६] (१५७०)

---

[१४८]

[१५६६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सुष्वाणासः त्वा स्तुमसि) सोम निचोडकर हम तेरी स्तुति करते हैं । हे (स्तुविनृम्ण) विपुल धनवाले इन्द्र ! (वाजं संसवांसः च) अन्नादिका उपभोग करनेवाले हम तेरी स्तुति करते हैं । इसलिये (यस्य चाकन् नः सुवितं आ भर) तू जिस धनको चाहे, हमें वही शोभित धन प्रदान कर । हम (त्वा-उताः त्मना तना सनुयाम) तेरे द्वारा संरक्षित होकर अपने सामर्थ्यसे उत्तम धन प्राप्त करें ॥ १ ॥

[१५६७] हे (शूर इन्द्र) वीर इन्द्र ! (ऋष्वः त्वं जातः दासीः विशः) महान् दर्शनीय तू जन्मतेही असुरोंकी प्रजाओंको (सूर्येण सह्याः) सूर्यरूपसे पराभूत करता है । (गुहा हितं गुह्यं अप्सु गूढं) जो गुहामें छिपा हुआ है और जलमें गुप्ततासे निगूढ है, उसे भी हराता है । (प्रस्रवणे नः सोमं बिभृमसि) वृष्टि बरसनेपर तेरे लिये हम भी सोम प्रस्तुत करेंगे ॥ २ ॥

[१५६८] हे इन्द्र ! (विप्रः ऋषीणां सुमतिं चकानः विद्वान् अर्यः) मेधावी, मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंकी शुभ स्तुतिकी कामना करनेवाला, ज्ञाता और सबका स्वामी ऐसा तू (गिरः अभ्यर्च) स्तुतियोंको स्वीकार कर । (ये सोमैः रणयन्त ते स्याम) जो तुझे सोमसे प्रसन्न करते हैं, वे सदा हम हैं । (रथोळ्ह) रथारूढ इन्द्र ! (उत भक्षैः तुभ्यं एना) और भक्षणीय द्रव्योंके साथ इन स्तोत्रोंको तेरे लिये ही हम अर्पण करते हैं ॥ ३ ॥

[१५६९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (इमा ब्रह्म तुभ्यं शंसि) ये उत्तम स्तोत्र तेरे लिये ही पठित हैं । हे (शूर) शूर वीर ! (नृणां नृभ्यः शवः दाः) तू मनुष्योंमें श्रेष्ठ लोगोंको बल दे । (येषु चाकन् तेभिः सक्रतुः भव) तू जिन स्तोताओंसे स्नेह-प्रेम चाहता है, उनके साथ समान ज्ञानवान् कर्मवान् हो- उनकी इच्छाएं पूर्ण कर । (उत गृणतः त्रायस्व उत स्तीन्) और स्तोताओंकी रक्षा कर और संघरूप यजमानोंकी भी रक्षा कर ॥ ४ ॥

[१५७०] हे (शूर इन्द्र) शूरवीर इन्द्र ! (पृथ्याः हवं श्रुधि) मुझ पृथुकी पुकार सुन । (उत वेन्यस्य अर्कैः स्तवसे) और वेनपुत्र पृथुके द्वारा वेदमन्त्रोंसे तेरी स्तुति की जाती है । (यः ते घृतवन्तं योनिं आ अस्वाः) जो स्तोता तेरे उदकपूर्ण निवासस्थानका वर्णन करता है- स्तुति करता है, उसे सुन । (वक्वाः निम्नैः ऊर्मिः न द्रवयन्त) वे सब स्तोता, जैसे जलप्रवाह नीचेकी ओर दौडते हैं, वैसेही तेरीही ओर शीघ्रतासे आ रहे हैं ॥ ५ ॥

(१४९)

५ अर्चन् हैरण्यस्तूपः । सविता । त्रिष्टुप् ।

सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णा दस्कम्भने सविता द्यामदृंहत् ।
अश्वमिवाधुक्षद्धुनिमन्तरिक्ष मतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम् १
यत्रा समुद्रः स्कभितो व्यौनद् अपां नपात् सविता तस्य वेद ।
अतो भूरत आ उत्थितं रजो ऽतो द्यावापृथिवी अप्रथेताम् २
पश्चेदमन्यदभवद्यजत्र ममर्त्यस्य भुवनस्य भूना ।
सुपर्णो अङ्ग सवितुर्गरुत्मान् पूर्वो जातः स उ अस्यानु धर्म ३
गाव इव ग्रामं यूयुधिरिवाश्वान् वाश्रेव वत्सं सुमना दुहाना ।
पतिरिव जायामभि नो न्येतु धर्ता दिवः सविता विश्ववारः ४
हिरण्यस्तूपः सवितर्यथा त्वा ऽऽङ्गिरसो जुह्वे वाजे अस्मिन् ।
एवा त्वार्चन्नवसे वन्दमानः सोमस्येवांशुं प्रति जागराहम् ५ [७] (१५७५)

[१४९]

[१५७१] (सविता यन्त्रैः पृथिवीं अरम्णात्) जगत् निर्माता सविता देव अपने वृष्टि-दान आदि नियंत्रण साधनोंसे पृथिवीको सुस्थिर करता है- रमणीय करता है । (सविता अस्कम्भने द्यां अदृंहत्) सविता प्रभु विना अवलम्बनके आकाशमें द्युको दृढरूपसे स्थापित करता है । (धुनिं अश्वं इव) घोडेके समान गात्र कम्पित करनेवाले मेघको (अतूर्ते अन्तरिक्षे बद्धं समुद्रं सविता अधुक्षत्) जो निराधार आकाशमें स्थित-बद्ध है, उससे सविता जल दोहन करता है- वृष्टि करता है ॥ १ ॥

[१५७२] (यत्र समुद्रः स्कभितः व्यौनत्) जिस स्थानपर रहकर समुद्रके समान महान् स्तम्भित मेघ विशेष रूपसे पृथिवीको आर्द्र करता है, हे (अपां नपात्) जलोंको थामनेवाला अग्नि ! (सविता तस्य वेद) उस स्थानको प्रेरक देव सविता जानता है । (अतः भूः) इससे ही भूमि उत्पन्न हुई । (अतः रजः आः उत्थितम्) इससेही अन्तरिक्ष निर्माण हुआ । (अतः द्यावापृथिवी अप्रथेताम्) और इससे ही यह द्यावापृथिवी विस्तीर्ण हुए हैं ॥ २ ॥

[१५७३] (अमर्त्यस्य भुवनस्य भूना यजत्रं) उस अमर-अविनाशी स्वर्गीय सोमके द्वारा जिन देवोंका यज्ञ होता है, वे (इदं अन्यत् पश्चा अभवत्) सब दूसरे देव सवितासे पीछे उत्पन्न हुए हैं । हे (अङ्ग) स्तोता ! (सुपर्णः गरुत्मान् सवितुः पूर्वः जातः) सुंदर पाखवाला गरुड पक्षी सविता प्रभुसे ही सबसे पहले उत्पन्न हुआ है । और वह (स उ अस्य धर्म अनु) सविता देवके धर्मको अनुसरण करता है ॥ ३ ॥

[१५७४] (गावः इव ग्रामम्) जिस प्रकार वनमें चरनेवाली गौएं गांवकी ओर शीघ्रतासे जाती हैं, (युयुधिः इव अश्वान्) योद्धा युद्धके लिये अश्वोंकी ओर जाता है, (सुमनाः दुहाना वाश्रा इव वत्सम्) प्रसन्न मना, बहुत दूधवाली गौएं जिस प्रकार प्रेमसे बछडेके पास जाती हैं, (पतिः इव जायां अभि) पति जिस प्रकार अपनी पत्नीको प्राप्त करता है, उसी प्रकार (दिवः धर्ता विश्ववारः सविता नः नि अभि एतु) स्वर्गका धारक, सबके द्वारा प्रार्थनीय सविता देव हमारे पास तुरन्त आवे ॥ ४ ॥

[१५७५] हे (सवितः) प्रेरक सविता देव ! (आङ्गिरसः हिरण्यस्तूपः अस्मिन् वाजे) अङ्गिरस पुत्र हिरण्यस्तूप इस अन्नके निमित्त किये यज्ञमें (यथा त्वा जुह्वे) जिस प्रकार तुझे बुलाता है, (एव अर्चन् त्वा अवसे वन्दमानः) उसी प्रकार प्रार्थना करनेवाला मैं तुझे मेरी रक्षाके लिये वन्दना करता हुआ बुलाता हूं । (सोमस्य अंशुं इव अहं प्रति जागर) जैसे यज्ञकी समाप्तितक सोमलताकी रक्षाके लिये यजमान जागते हैं, वैसे ही तेरी सेवाके लिये मैं जागृत रहूंगा ॥ ५ ॥

×

(१५०)

५ मृळीको वासिष्ठः । अग्निः । बृहती, ४-५ उपरिष्टाज्ज्योतिः, ४ जगती वा ।

समिद्धश्चित् समिध्यसे देवेभ्यो हव्यवाहन ।
आदित्यै रुद्रैर्वसुभिर्न आ गहि मृळीकाय न आ गहि १ (१५७६)

इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि ।
मर्तासस्त्वा समिधान हवामहे मृळीकाय हवामहे २

त्वामु जातवेदसं विश्ववारं गृणे धिया ।
अग्ने देवाँ आ वह नः प्रियव्रतान् मृळीकाय प्रियव्रतान् ३

अग्निर्देवो देवानामभवत् पुरोहितो ऽग्निं मनुष्या३ ऋषयः समीधिरे ।
अग्निं महो धनसातावहं हुवे मृळीकं धनसातये ४

अग्निरत्रिं भरद्वाजं गविष्ठिरं प्रावन्नः कण्वं त्रसदस्युमाहवे ।
अग्निं वसिष्ठो हवते पुरोहितो मृळीकाय पुरोहितः ५ [८] (१५८०)

---

[१५०]

[१५७६] हे (हव्यवाहन) हव्य वहन करनेवाले अग्नि ! तुम (समिद्धश्चित् देवेभ्यः समिध्यसे) प्रदीप्त होते हुये भी देवताओंके लिये यज्ञ निमित्त अत्यधिक प्रज्वलित होते हो । तुम (नः आदित्यैः रुद्रैः वसुभिः आगहि) हमारे यज्ञानुष्ठानमें आदित्यगण, रुद्रगण और वसुगणोंके साथ आगमन करो । और (नः मृळीकाय आ गहि) हमारे कल्याणार्थ भी आगमन करो ॥ १ ॥

[१५७७] हे (अग्ने) अग्नि ! तू (इमं यज्ञम् जुजुषाण इदं वचः उपागहि) इस यज्ञको प्रेमसे सेवन करता हुआ और हमारे इस स्तुतिको स्वीकार करता हुआ यहां समीपतासे प्राप्त होओ । हे (समिधान) तेजसे चमकने हारे ! हम सब (मर्तासः त्वा हवामहे) मनुष्य गण यज्ञके लिये तुम्हारी स्तुति करते हैं । और हम सब अपने (मृडी-काय हवामहे) सुखके लिये भी तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ २ ॥

[१५७८] हे (अग्ने) अग्नि ! हम सब (विश्ववारं जातवेदसं त्वामु धिया गृणे) सबसे वरण करने योग्य, सब उत्पन्न पदार्थोंके जाननेवाले तुमको ही जानकर श्रेष्ठ स्तोत्रोंद्वारा स्तुति करते हैं । तू (नः प्रिय व्रतान् देवान् आवह) हमारे लिये श्रेष्ठ व्रतोंके पालन करनेवाले देवोंको इस यज्ञमें ले आ । तथा (मृळीकाय प्रियव्रतान्) हमारे सुखके लिये भी व्रतोंके आचरण करनेवाले जनोंको ही प्राप्त करा ॥ ३ ॥

[१५७९] (देवः अग्निः देवानाम् पुरोहितः अभवत्) दिव्यगुणयुक्त अग्नि देवताओंका पुरोहित हुआ । (मनुष्याः ऋषयः अग्निं सम् ईधिरे) सब मननशील मनुष्यों और मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंने अग्निको प्रदीप्त किया । (महः धनसातौ अहं अग्निं हुवे) महान ऐश्वर्य प्राप्तिके निमित्त में अग्निका आह्वान करता हूं । और (धनसातये मृळीकं) सुख प्राप्तिके निमित्त एवं ऐश्वर्यलाभके लिये भी उससेही प्रार्थना करता हूं ॥ ४ ॥

[१५८०] (नः आहवे अग्निः) हमारे संग्राममें अग्निने (अत्रिं, भरद्वाजं, गविष्ठिरं, कण्वं त्रसदस्युं प्र आवत्) अत्रि, भरद्वाज, गविष्ठर, कण्व और त्रसदस्युकी भले प्रकार रक्षा की थी । (पुरोहितः वसिष्ठः अग्निं हवते) पुरोहित वसिष्ठ अग्निका आह्वान करता है । तथा (पुरोहितः मृळीकाय) सबके अग्रपदपर स्थित पुरुष भी सुखोंकी प्राप्ति करनेके लिये अग्निकी उपासना करते हैं ॥ ५ ॥

(१५१)

५ श्रद्धा कामायनी। श्रद्धा। अनुष्टुप्।

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि १
प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः।
प्रियं भोजेषु यज्वस्विदं म उदितं कृधि २
यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे।
एवं भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदितं कृधि ३
श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते।
श्रद्धां हृदय्य१याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु ४
श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यंदिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ५ [९] (१५८५)

[१५१]

[१५८१] (श्रद्धया अग्निः समिध्यते) श्रद्धासेही गार्हपत्यादि अग्नि प्रज्वलित किया जाता है। (श्रद्धया हविः हूयते) श्रद्धासेही यज्ञमें हविष्यान्नकी आहुति की जाती है। (भगस्य मूर्धनि श्रद्धां वचसा आ वेदयामसि) सेव्य धनमें सर्वोपरि स्थित श्रद्धाकी हम स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

[१५८२] हे (श्रद्धे) श्रद्धा ! (ददतः प्रियं) दाताको अभीष्ट फल दे। हे (श्रद्धे) श्रद्धा ! (दिदासतः प्रियं) दान देनेकी जो इच्छा करता है, उसका भी प्रिय कर ! (मे भोजेषु यज्वसु इदं उदितं प्रियं कृधि) मेरे भोगार्थियों और याज्ञिकोंको मेरे इस वचनके अनुसार प्रार्थित फल प्रदान कर ॥ २ ॥

[१५८३] (यथा देवाः उग्रेषु असुरेषु श्रद्धां चक्रिरे) जिस प्रकार इन्द्रादि देवोंने बलशाली असुरोंके लिये– इन असुरोंको नष्ट करनाही चाहिये यह– निश्चय किया, (एवं भोजेषु यज्वसु अस्माकं उदितं कृधि) उसी तरह मेरे भोगार्थि और याज्ञिक सम्बन्धियोंके विषयमें उन्हें प्रार्थित फल दे ॥ ३ ॥

[१५८४] (देवाः यजमानाः वायुगोपाः श्रद्धां उपासते) बलवान् वायुकी रक्षा पाकर देव और मनुष्य श्रद्धाकी उपासना करते हैं। (हृदय्यया आकूत्या श्रद्धाम्) वे अन्तः करण पूर्वक संकल्पसेही श्रद्धा की उपासना करते हैं। (श्रद्धया वसु विन्दते) श्रद्धासे धन प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

[१५८५] (श्रद्धां प्रातः हवामहे) हम प्रातःकालमें श्रद्धाकी प्रार्थना करते हैं। (मध्यंदिनं परि श्रद्धाम्) मध्याह्नके समयमें श्रद्धाका आवाहन करते हैं। (सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धाम्) सूर्यास्तके समयमें भी श्रद्धाकी उपासना करते हैं। हे (श्रद्धे) श्रद्धा ! (नः इह श्रद्धापय) तु इस संसारमें हमें श्रद्धावान् कर ॥ ५ ॥

(१५२) [द्वादशोऽनुवाकः ॥१२॥ सू० १५२-१९१]

५ शासो भारद्वाजः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

शास इत्था महाँ अस्य मित्रखादो अद्भुतः ।
न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदा चन १
स्वस्तिदा विशस्पति र्वृत्रहा विमृधो वशी ।
वृषेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयंकरः २ (१५८७)
वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रह न्नमित्रस्याभिदासतः ३
वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
यो अस्माँ अभिदास त्यधरं गमया तमः ४
अपेन्द्र द्विषतो मनो ऽप जिज्यासतो वधम् ।
वि मन्योः शर्म यच्छ वरीयो यवया वधम् ५ [१०] (१५९०)

[१५२]

[१५८६] (शासः इत्था) शास नामक मैं तेरी इस प्रकार स्तुति करता हूं । हे इन्द्र ! तू (महां अमित्रखादः अद्भुतः असि) महान् शत्रु हन्ता और अद्भुत है । (यस्य सखा कदा चन न हन्यते) जिसका मित्र कभी भी नहीं मारा जाता और (न जीयते) शत्रुओंसे कभी पराजित नहीं होता है ॥ १ ॥

[१५८७] (स्वस्तिदाः विशस्पतिः वृत्रहा विमृधः वशी) कल्याणका दाता, प्रजाओंका पालक, वृत्रहन्ता, युद्ध करनेवाला, सबको वशमें रखनेवाला, (वृषा सोमपाः इन्द्रः अभयंकरः नः पुर एतु) बलवान्- अभिलषित कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला, सोमपान करनेवाला इन्द्र अभयदाता है; वह हमारे सामने प्रत्यक्ष हो ॥ २ ॥

[१५८८] हे इन्द्र ! (रक्षः वि जहि) राक्षसोंको नष्ट कर ! (मृधः वि) संग्राम करनेवाले शत्रुओंका भी वध कर । (वृत्रस्य हनू वि रुज) वृत्रके दाढोंको विशेष रूपसे तोड डाल । हे (वृत्रहन्) वृत्रहन्ता ! हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अभिदासतः अमित्रस्य मन्युम्) हमारा नाश करनेवाले शत्रुके क्रोधका नाश कर ॥ ३ ॥

[१५८९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नः मृधः वि जहि) हमारे युद्धार्थी शत्रुओंका वध कर । (पृतयन्तः नीचा यच्छ) हमारे साथ युद्धकी इच्छा करनेवाले शत्रुओंको नीचे गिरा । (यः अस्मान् अभिदासति) जो हमें नष्ट करना चाहता है, उसको (अधरं तमः गमय) जघन्य अंधकारमें डाल दे ॥ ४ ॥

[१५९०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (द्विषतः मनः अप) शत्रुका मन नष्ट कर । (जिज्यासतः वधं अप) हमें मारनेकी इच्छा करनेवालेके हथियारको विनष्ट कर । (मन्यो) शत्रुके क्रोधसे हमें बचाव । (वरीयः शर्म वि यच्छ) उत्तम-श्रेष्ठ सुख प्रदान कर । (वधं यवय) शत्रुसे प्राप्त मृत्युको दूर कर ॥ ५ ॥

(१५३)

५ देवजामय इन्द्रमातरः । इन्द्रः । गायत्री ।

ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते । भेजानासः सुवीर्यम् १
त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः । त्वं वृषन् वृषेदसि २
त्वमिन्द्रासि वृत्रहा व्यन्तरिक्षमतिरः । उद् द्यामस्तभ्ना ओजसा ३
त्वमिन्द्र सजोषस मर्कं बिभर्षि बाह्वोः । वज्रं शिशान ओजसा ४
त्वमिन्द्राभिभूरसि विश्वा जातान्योजसा । स विश्वा भुव आभवः ५ [११] (१५९५)

(१५४)

५ यमी वैवस्वती । भाववृत्तम् । अनुष्टुप् ।

सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते ।
येभ्यो मधु प्रधावति ताँश्चिदेवापि गच्छतात् १

[१५३]

[१५९१] (इङ्खयन्तीः अपस्युवः जातं इन्द्रं उपासते) इन्द्रके पास जानेवाली, स्तुति आदिसे उसे प्राप्त हुई और कर्मपरायणा इन्द्र माताएं प्रादुर्भूत इन्द्रकी उपासना करती हैं। (सुवीर्यं भेजानासः) और उत्तम शोभन धन प्राप्त करती हैं ॥ १ ॥

[१५९२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं सहसः बलात् ओजसः अधि जातः) तू शत्रुओंका पराभव करनेके सामर्थ्यसे, बलसे और धैर्यसे सर्व श्रेष्ठ–विख्यात हुआ है। हे (वृषन्) बलिष्ठ इन्द्र ! (त्वं वृषा इत् असि) तू सबसे सामर्थ्य सम्पन्न और कामनाओंका दाता है ॥ २ ॥

[१५९३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं वृत्रहा असि) तू वृत्रहन्ता है। (अन्तरिक्षं वि अतिरः) तू अन्तरिक्षको विस्तीर्ण करता है। (द्यां ओजसा उत् अस्तभ्नाः) द्युलोकको अपने बल–पराक्रमसे स्थिर रखा है ॥ ३ ॥

[१५९४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं सजोषसं अर्कं वज्रम्) तू अत्यंत प्रिय, स्तुत्य और तेजस्वी वज्रको (ओजसा शिशानः बाह्वोः बिभर्षि) बलसे अत्यंत तीक्ष्ण करके बाहुओंमें शत्रुओंका नाश करनेके लिये धारण करता है ॥ ४ ॥

[१५९५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं ओजसा विश्वा जातानि अभिभूः असि) तू पराक्रमसे सब उत्पन्न प्राणियोंको पराभूत करता है– अपने वशमें करता है और (सः विश्वा भुवः आभवः) वह तू सब स्थानोंको व्याप्त करता है ॥ ५ ॥

[१५४]

[१५९६] (एकेभ्यः) कइयोंके लिए (सोमः पवते) सोमरस बहता है और (एके) कई (घृतं उपासते) आज्यका उपभोग करते हैं। इनको और (येभ्यः मधुः प्रधावति) जिनके लिए मधु धारारूपसे बहता है (तान् चित् अपि) हे प्रेत ! उनको भी तू (गच्छतात्) प्राप्त हो।

जिनके लिए सोमरस बहता रहता है, व जो आज्यका उपभोग करते रहते हैं, तथा जिनके लिए मधुकी कुल्यायें बहती रहती हैं, ऐसे यज्ञ कर्ताओंको हे प्रेत ! तू प्राप्त हो ॥ १ ॥

तप॑सा ये अ॑नाधृ॒ष्या॒ स्तप॑सा ये स्व॑र्य॒युः ।
तपो॒ ये च॑क्रि॒रे मह॒ स्ताँश्चि॑दे॒वापि॑ गच्छतात् २
ये यु॒ध्य॑न्ते प्र॒धने॑षु शूरा॑सो॒ ये त॑नू॒त्यजः॑ ।
ये वा॑ स॒हस्र॑दक्षिणा॒ स्ताँश्चि॑दे॒वापि॑ गच्छतात् ३
ये चि॒त् पूर्व॑ ऋत॒साप॑ ऋ॒तावा॑न ऋता॒वृधः॑ ।
पि॒तॄन् तप॑स्वतो य॒म ताँश्चि॑दे॒वापि॑ गच्छतात् ४
स॒हस्र॑णीथाः क॒वयो॒ ये गो॑पा॒यन्ति॒ सूर्य॑म् ।
ऋषी॒न् तप॑स्वतो यम तपो॒जाँ अपि॑ गच्छतात् ५ [१२] (१६००)

[१५९७] (ये) जो लोग (तपसा) कृच्छ् चान्द्रायणादि नानाविध तप करनेके कारणसे (अनाधृष्याः) किसी भी प्रकारसे कष्टोंको नहीं पहुंचाये जा सकते, जिनको पाप नहीं सता सकते । व (ये) जो लोग (तपसा) तपके कारणसे (स्वः ययुः) स्वर्गको गए हुए हैं और (ये) जिन्होंने (महः तपः चक्रिरे) महान् तप किया है, हे प्रेत ! इन (तान् चित् अपि गच्छतात्) उन तपस्वियोंको भी तू जाकर प्राप्त हो, अर्थात् इनमें तेरी स्थिति होवे ।

हे प्रेत ! जो तपके कारण किसी भी प्रकार पराभूत नहीं हो सकते, व जो तप ही के कारण स्वर्गको प्राप्त हुए हुए हैं, तथा जिन्होंने महान् तप किया है, उनको तू यहांसे जाकर प्राप्त हो ॥ २ ॥

[१५९८] हे प्रेत ! (ये शूरासः) जो शूरवीर गण (प्रधनेषु) संग्रामोंमें (युध्यन्ते) युद्ध करते हैं और (ये) जो उन संग्रामोंमें (तनूत्यजः) शरीरोंका त्याग करते हैं, अर्थात् अपने प्राण दे देते हैं (वा) अथवा (ये) जो लोग (सहस्र दक्षिणः) हजारों दान करते हैं (तान् चित् अपि) उनको भी तू (गच्छतात्) प्राप्त हो ।

जो शूरवीर युद्धोंमें अपने प्राण देकर वीर गतिको प्राप्त हुए हैं, वा जो लोग नाना तरहके दान देकर अपनेको संसारमें अमर कर गए हैं, ऐसे लोगोंको हे मृतात्मा तू प्राप्त हो, तेरी सद्गति होवे ॥ ३ ॥

[१५९९] (ये चित्) और जो (पूर्वे) पूर्व पुरुष (ऋतसापः) ऋतका पालन करनेवाले, अथवा यज्ञोंके नित्य नियम पूर्वक करनेवाले, (ऋतावानः) सत्य वा यज्ञसे युक्त और इसीलिए (ऋतावृधः) ऋत व यमके बर्धक थे तथा (तपस्वतः) तपसे युक्त (पितृन्) पूर्व पितरोंको (तान् चित्) प्राप्त हो ।

जो पितर सत्यके रक्षक हैं, यज्ञादिका अनुष्ठान नित्य नियमसे करनेवाले हैं, तथा तपस्वी हैं, ऐसे पितरोंको हे मृतात्मा, तू परलोकमें जाकर प्राप्त हो ॥ ४ ॥

[१६००] (ये) जो (कवयः) दूरदर्शी विद्वान् लोग (सहस्रणीथाः) हजारों प्रकारोंकी नीतिवाले हैं और जो (सूर्यं गोपायन्ति) इस सूर्यका रक्षण करते हैं, ऐसे (तपस्वतः ऋषीन्) तपसे युक्त ऋषियोंको जो कि (तपोजान्) तपसेही उत्पन्न हुए हुए हैं, ऐसोंको हे (यम) नियममें स्थित प्रेतात्मा ! (अपि गच्छतात्) यहांसे जाकर प्राप्त हो ।

जो दूरदर्शी ऋषिगण नाना प्रकारके विज्ञानोंसे परिपूर्ण हैं, व जो तपस्वी तथा तपसे उत्पन्न हुए हुए हैं, ऐसोंको हे प्रेतात्मा तू इस लोकसे जाकर प्राप्त हो । उनमें जाकर तू स्थित हो । निकृष्ट लोकमें मत जा ॥ ५ ॥

(१५५)

५ शिरिम्बिठो भारद्वाजः। अलक्ष्मीघ्नम्, २-३ ब्रह्मणस्पतिः, ५ विश्वे देवाः। अनुष्टुप्।

अरा॑यि का॒णे विक॑टे गि॒रिं ग॑च्छ सदान्वे ।
शिरि॑म्बिठस्य॒ सत्व॑भि॒स्तेभि॑ष्ट्वा चातयामसि ॥ १

च॒त्तो इ॒तश्च॒त्तामु॒तः सर्वा॑ भ्रू॒णान्या॒रुषी॑ ।
अ॒रा॒य्यं॑ ब्रह्मणस्पते॒ तीक्ष्ण॑शृङ्गोदृ॒षन्नि॑हि ॥ २

अ॒दो यद्दारु॒ प्लव॑ते॒ सिन्धोः॑ पा॒रे अ॑पूरु॒षम् ।
तदा र॑भस्व दुर्हणो॒ तेन॑ गच्छ परस्त॒रम् ॥ ३

यद्ध॒ प्राची॒रज॑ग॒न्तोरो॑ मण्डूरधाणिकीः ।
ह॒ता इन्द्र॑स्य॒ शत्र॑वः॒ सर्वे॑ बुद्बु॒दया॑शवः ॥ ४

परी॒मे गाम॑नेषत॒ पर्य॒ग्निम॑हृषत ।
दे॒वेष्व॑क्रत॒ श्रवः॒ क इ॒माँ आ द॑धर्षति ॥ ५ [१३] (१६०५)

---

[१५५]

[१६०१] हे (अरायि) दान-विरोधिनी ! हे (काणे) सदा कुत्सित शब्द बोलनेवाली ! हे (विकटे) विकृत अंगवाली ! हे (सदान्वे) सदा आक्रोश करनेवाली ! (गिरिं गच्छ) तू निर्जन देश-पर्वत को जा। (शिरिम्बिठस्य तेभिः सत्वभिः त्वा चातयामसि) अन्तरिक्षको भेदनेवाले मेघके उन बलोंसे तुझे नष्ट करेंगे ॥ १ ॥

[१६०२] (इतः चत्तः अमुतः चत्ता) इधरसे नष्ट की गई वह उस लोकमेंसे भी नष्ट हो जाय। (सर्वा भ्रूणानि आरुषी) वह सब गर्भस्थित अकुरोंका- जीवोंका नाश करनेवाली है। हे (तीक्ष्णशृङ्ग ब्रह्मणस्पते) तीक्ष्ण तेजस्वी ब्रह्मणस्पति ! (अराय्यं उद् ऋषन् इहि) दान विरोधिनी उस धननाशक देवीको तू यहांसे दूर करके कर ॥२॥

[१६०३] (अदः अपूरुषं यत् दारु सिन्धोः पारे प्लवते) यह निर्माता पुरुषसे रहित जो काष्ठ समुद्रके तीरके पास जलके ऊपर तैरता है, (तत्) उस काष्ठको, हे (दुःहनो) दुर्दम्य स्तोता ! (आ रभस्व) तू प्राप्त कर। (तेन परस्तरम् गच्छ) और उससे दूसरे पार जा ॥ ३ ॥

[१६०४] हे (मण्डूरधाणिकाः) हिंसामयी और कुत्सित शब्दवाली अलक्ष्मी ! (यत् ह प्राचीः उरो अजगन्त) जब सत्यही आगे बढनेवाली शत्रुहिंसक तुम प्रयाण करती हैं तब (इन्द्रस्य सर्वे शात्रवः बुद्बुदाशवः हताः) वीर इन्द्रके सब शत्रु जल-बुद्बुदके समान नष्ट हो जाते हैं ॥ ४ ॥

[१६०५] (इमे गां परि अनेषत) समस्त देवोंने गायोंको वापस लाया। (अग्निं परि अहृषत) अग्निकी विभिन्न स्थानोंमें स्थापना की और (देवेषु श्रवः अक्रत) देवोंको अन्न दिया- अन्नका उत्पादन किया। (कः इमान् आ दधर्षति) कौन इनको पराभूत कर सकता है ? ॥ ५ ॥

(१५६)

५ केतुराग्नेयः। अग्निः। गायत्री।

अग्निं हिन्वन्तु नो धियः सप्तिमाशुमिवाजिषु । तेन जेष्म धनंधनम् १
यया गा आकरामहे सेनयाग्ने तवोत्या । तां नो हिन्व मघत्तये २
आग्ने स्थूरं रयिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम् । अङ्धि खं वर्तया पणिम् ३
अग्ने नक्षत्रमजर॒मा सूर्यं रोहयो दिवि । दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः ४
अग्ने केतुर्विशामसि प्रेष्ठः श्रेष्ठ उपस्थसत् । बोधा स्तोत्रे वयो दधत् ५ [१४] (१६१०)

(१५७)

५ भुवन आप्त्यः, साधनो वा भौवनः। विश्वे देवाः। द्विपदा त्रिष्टुप्।

इमा नु कं भुवना सीषधामे॒न्द्रश्च विश्वे च देवाः १
यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चा॒ऽऽदित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति ॥१॥ २

---

[१५६]

[१६०६] (इव आजिषु आशुं सप्तिं) जिस प्रकार संग्राममें योधा लोग शीघ्रगामी अश्व को ले जाते हैं, उसी प्रकार (नः धियः अग्निं हिन्वन्तु) हमारी स्तुतियाँ अग्निको यज्ञके लिये शीघ्रतासे प्रेरित करें। जिससे हम (तेन धनं धनं जेष्म) उस अग्निके द्वारा प्रत्येक प्रकारके धनको विजय करें ॥ १ ॥

[१६०७] हे (अग्ने) अग्नि ! (यया सेनया तव ऊत्या) जिस सेनासे युक्त तुम्हारी रक्षणशक्तिसे हम (गाः आकरामहे) गौओंको प्राप्त करते हैं, (तां नः मघवत्तये हिन्व) उसही अपनी रक्षणशक्तिको हमारे लिये ऐश्वर्य प्राप्त करानेके निमित्त प्रेरित कर ॥ २ ॥

[१६०८] हे (अग्ने) अग्नि ! तुम (स्थूरं पृथुं गोमन्तं अश्विनं रयिं आ भर) स्थूल, विस्तृत बहुत गौओं और अश्वों सहित प्रचुर धन हमें प्रदान करो। (खं अङ्धि) अन्तरिक्षको वृष्टि जलसे सिंचित करो और (पणिं वर्तय) वाणिज्य कर्मको प्रशस्त करो ॥ ३ ॥

[१६०९] हे (अग्ने) अग्नि ! तूने (अजरं नक्षत्रं सूर्यं दिवि आरोहयः) जरा रहित, हमेशा गमन करनेवाले सूर्यको अन्तरिक्षमें प्रतिष्ठित किया है, जो (जनेभ्यः ज्योतिः दधत्) सब जनोंके लिये प्रकाशको धारण करता है ॥ ४ ॥

[१६१०] हे (अग्ने) अग्नि ! तू (विशां केतुः असि) प्रजाओंका पताका है, अतः (प्रेष्ठः श्रेष्ठः) सर्वप्रिय एवं सर्व श्रेष्ठ है। तू (स्तोत्रे वयः दधत् उपस्थसत् बोध) स्तुति करनेवाले जनोंको अन्न प्रदान करता हुआ यज्ञ गृहमें निवास करके हमारे स्तोत्रको सुन ॥ ५ ॥

[१५७]

[१६११] (इमा भुवना नु सीषधाम कं) इन सब दृश्यमान लोकोंको सत्वर ही हम प्राप्त करें, वश करें। (इन्द्रः च विश्वे च देवाः) इन्द्र और समस्त देव हमें सुखप्राप्तिके लिये सहाय्य करें ॥ १ ॥

[१६१२] (नः आदित्यैः सह इन्द्रः) हमें देवों सहित वर्तमान इन्द्र (यज्ञं च तन्वं च प्रजां च चीक्लृपाति) यज्ञ, शरीर और प्रजा देकर स्वव्यवहार करनेके लिये समर्थ करे ॥ २ ॥

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भि- रस्माकं भूत्ववि॒ता तनूनाम् ३
ह॒त्वाय॑ दे॒वा असु॑रा॒न् यदाय॑न् दे॒वा दे॑व॒त्वम॑भि॒रक्ष॑माणाः ॥२॥ ४
प्र॒त्यञ्च॑म॒र्कम॑नय॒ञ्छची॑भि- रा॒दित् स्व॒धामि॑षि॒रां पर्य॑पश्यन् ॥३॥ ५ [१५] (१६१५)

(१५८)

५ चक्षुः सौर्यः । सूर्यः । गायत्री, २ स्वराट् ।

सूर्यो॑ नो दि॒वस्पा॑तु वातो॑ अ॒न्तरि॑क्षात् । अ॒ग्निर्नः॒ पार्थि॑वेभ्यः १
जोषा॑ सवित॒र्यस्य॑ ते॒ हरः॑ श॒तं स॒वाँ अर्ह॑ति । पा॒हि नो॑ दि॒द्युतः॒ पत॑न्त्याः २
चक्षु॑र्नो दे॒वः स॑वि॒ता चक्षु॑र्न उ॒त पर्व॑तः । चक्षु॑र्धा॒ता द॑धातु नः ३
चक्षु॑र्नो धेहि॒ चक्षु॑षे॒ चक्षु॑र्वि॒ख्यै त॒नूभ्यः॑ । सं चे॒दं वि च॑ पश्येम ४
सु॒सं॒दृशं॑ त्वा व॒यं प्रति॑ पश्येम सूर्य । वि प॑श्येम नृ॒चक्ष॑सः ५ [१६] (१६२०)

[१६१३] (आदित्यैः मरुद्भिः च सगणः इन्द्रः) आदित्य- देवों और मरुतोंके साथ रहकर इन्द्र (अस्माकं तनूनां अविता भूतु) हमारे शरीरोंका रक्षक हो ॥ ३ ॥

[१६१४] (देवाः यत् असुरान् हत्वाय आयन्) देव जब वृत्रादि असुरोंका नाश करके अपने स्थानको प्राप्त करते हैं, तब (देवाः देवत्वम् अभिरक्षमाणाः) उनके देवत्वकी रक्षा हुई ॥ ४ ॥

[१६१५] (शचीभिः अर्कम् प्रत्यञ्चं अनयन्) उत्तम कर्मोंसे युक्त जब पूजनीय स्तोत्र इन्द्रादिके लिये स्तोता कहते हैं, तब (आत् इत् इषिरां स्वधां पर्यपश्यन्) अनन्तरही बहनेवाला वृष्टिजल सब लोगोंने देखा ॥ ५ ॥

[१५८]

[१६१६] (सूर्यः दिवः नः पातु) सबका प्रेरक सूर्य देव द्युलोकमें रहनेवाले लोगोंसे हमें बचावे । (वातः अन्तरिक्षात्) वायु अन्तरिक्षके बाधक उत्पातोंसे बचावे, और (अग्निः नः पार्थिवेभ्यः) अग्नि हमें पृथिवी परके शत्रुओंसे बचावे ॥ १ ॥

[१६१७] हे (सवितः) सर्वप्रेरक सूर्य ! (जोष) हमारी स्तुति-प्रार्थनाका स्वीकार कर ! (यस्य ते हरः शतं सवान् अर्हति) जो तेरा तेज सैंकडों यज्ञोंसे पूजाके योग्य है । और (नः पतन्त्याः दिद्युतः पाहि) हमें शत्रुओंके हमपर गिरनेवाले तीक्ष्ण आयुधोंसे बचा ॥ २ ॥

[१६१८] (सविता देवः नः चक्षुः दधातु) सबका प्रेरक सूर्य देव हमें उत्तम चक्षु प्रदान करे । (उत पर्वतः नः चक्षुः) और पर्वत हमें तेजस्वी चक्षु दे । (धाता नः चक्षुः) तथा विधाता हमें प्रकाशमान चक्षु दे ॥ ३ ॥

[१६१९] हे सूर्य ! (नः चक्षुषे चक्षुः धेहि) हमारे आंखोंको तेज दे । (तनूभ्यः विख्यै चक्षुः) तू हमारे शरीरोंको दर्शनके लिये प्रकाश दे- अवलोकन शक्ति दे । (च इदं सं पश्येम वि च) जिससे-तेरे तेजसे इस जगत्को हम उत्तम प्रकारसे देखें और विविध प्रकारसे देखें ॥ ४ ॥

[१६२०] हे (सूर्य) सूर्य ! (सुसंदृशं त्वा वयं प्रति पश्येम) दृष्टि सामर्थ्य प्रदान करनेवाले तुझे उत्तम प्रकारसे हम देख सकें । (नृचक्षसः वि पश्येम) मनुष्य जिसे देख सकते हैं, उसे हम विशेष रूपसे देखें ॥ ५ ॥

×

(१५९)

६ पौलोमी शची । शची (आत्मानं तुष्टाव) । अनुष्टुप् ।

उदसौ सूर्यो अगा-दुदयं मामको भगः ।
अहं तद्विद्वला पति-मभ्यसाक्षि विषासहिः १
अहं केतुरहं मूर्धा ऽहमुग्रा विवाचनी ।
ममेदनु क्रतुं पतिः सेहानाया उपाचरेत् २
मम पुत्राः शत्रुहणो ऽथो मे दुहिता विराट् ।
उताहमस्मि संजया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः ३
येनेन्द्रो हविषा कृत्व्य-भवद् द्युम्न्युत्तमः ।
इदं तदक्रि देवा असपत्ना किलाभुवम् ४
असपत्ना सपत्नघ्नी जयन्त्यभिभूवरी ।
आवृक्षमन्यासां वर्चो राधो अस्थेयसामिव ५
समजैषमिमा अहं सपत्नीरभिभूवरी ।
यथाहमस्य वीरस्य विराजानि जनस्य च ६ [१७] (१६२६)

---

[१५९]

[१६२१] (असौ सूर्यः उत् अगात्) यह द्युलोकमें स्थित सूर्य उदित हुआ है ! (अयम् मामकः भगः उत्) यह सूर्यरूप इन्द्र- मेरा सौभाग्य भी इसी प्रकार उदयको प्राप्त हो । (तत् पतिं विद्वला) उसको जाननेवाली और अपना पति प्राप्त करके वशमें रखनेवाली (अहं विषासहिः अभ्यसाक्षि) में विशेष रूपसे सपत्नियोंको परास्त करनेमें समर्थ होकर उनको पराभूत करती हूं ॥ १ ॥

[१६२२] (अहं केतुः अहं मूर्धा) मैं ध्वजाके समान ज्ञानवती और मैं सिरके समान प्रमख हूं । (अहं उग्रा विवाचनी) मैं क्रोधी हूं, तो भी पतिको मेरे साथ मीठे वचन बोलनेके लिये उद्युक्त करती हूं । (सेहनायाः ममेत् क्रतुं पतिः उप आचरेत्) सपत्नियोंपर विजय पानेवाली मेरे ही कार्यका, इच्छाका अनुमोदन करता है ॥ २ ॥

[१६२३] (मम पुत्राः शत्रुहणः) मेरे ही पुत्र शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं । (अथो मे दुहिता विराट्) और मेरी कन्या विशेषरूपसे शोभित है । (उत अहं संजया अस्मि) और मैं सबको जीतती हूं । (पत्यौ मे श्लोकः उत्तमः) पतिके पास मेराही यश-वचन सर्व श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥

[१६२४] (येन हविषा इन्द्रः कृत्वी द्युम्नी उत्तमः अभवत्) जिस हविसे मेरा पति इन्द्र समर्थ कर्मकर्ता, जगत्में प्रसिद्ध और सर्वश्रेष्ठ हुआ है, हे (देवाः) देवो ! (तत् इदं अक्रि) वह हवि मैंने ही किया है । इससे ही मैं (असपत्ना किल अभुवम्) शत्रु-सपत्नीसे रहित हो गई हूं ॥ ४ ॥

[१६२५] (असपत्ना सपत्नघ्नी जयन्ती अभिभूवरी) मैं शत्रुसे रहित, शत्रुओंका नाश करनेवाली, जयशाली और सबको पराजित करनेवाली हूं । (अस्थेयसां इव अन्यासां वर्चः राधः आवृक्षम्) जैसे अस्थिर शत्रुओंका तेज और धन नष्ट किया जाता है, वैसे ही मैं अन्य सपत्नियोंका तेज और धन सब तरहसे नष्ट करती हूं ॥ ५ ॥

[१६२६] (अभिभूवरी अहं इमाः सपत्नीः समजैषम्) पराजित करनेवाली मैं इन सब सपत्नियोंपर विजय प्राप्त करती हूं । (यथा अहं अस्य वीरस्य जनस्य च विराजानि) जिससे मैं इस वीर इन्द्र और उसको आप्तजनोंके साथ विशेष रूपसे प्रभुत्व प्राप्त कर सकूं ॥ ६ ॥

(१६०)

५ पूरणो वैश्वामित्रः। इन्द्रः । त्रिष्टुप्।

तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च ।
इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये नि रीरमन् तुभ्यमिमे सुतासः १
तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोत्वास स्त्वां गिरः श्वात्र्या आ ह्वयन्ति ।
इन्द्रेदमद्य सवनं जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इह पाहि सोमम् २
य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति ।
न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति ३ (१६२९)
अनुस्पष्टो भवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान् न सुनोति सोमम् ।
निररत्नौ मघवा तं दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः ४
अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा उ ।
आभूषन्तस्ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम ५ [१८] (१६३१)

[१६०]

[१६२७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (तीव्रस्य अभिवयसः अस्य पाहि) अत्यंत तीव्रतासे मद उत्पन्न करनेवाला अन्नयुक्त इस सोमरसका पान कर। इसलिये (सर्वरथा हरी इह वि मुञ्च) वेगशील रथसे जोडे हुए अश्वोंको यहां खोल दो। (अन्ये यजमानासः त्वा मा नि रीरमन्) हमसे अन्य यजमान तुझे प्रसन्न नहीं कर सकें। हमही तुझे संतुष्ट करेंगे। (तुभ्यं सुतासः इमे) तेरे लियेही यह सोमरस अभिषुत किया गया है ॥ १ ॥

[१६२८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (तुभ्यं सुताः) तेरे लियेही यह सोमरस निचोडा हुआ है। (तुभ्यं उ सोत्वासः) इतः पर भी तेरे लियेही निचोडा जाएगा। (श्वात्र्याः गिरः त्वां आ ह्वयन्ति) सदा सुखदायक पवित्र स्तुतिरूप स्तोत्र-वाणियां तुझेही बुला रही हैं। (अद्य इदं सवनं जुषाणः) आज इस प्रातःसवनका स्वीकार करके और (विश्वस्य विद्वान् इह सोमं पाहि) सर्वज्ञ तू इस हमारे यज्ञमें सोमपान कर ॥ २ ॥

[१६२९] (यः सर्वहृदा उशता मनसा) जो सम्पूर्ण हृदयसे, कामनायुक्त मनसे (अस्मै देवकामः सोमं सुनोति) इस इन्द्रदेवकी इच्छा करनेवाला यजमान इसके लिये ही सोमरस अभिषुत करता है, (इन्द्रः तस्य गाः न परा ददाति) इन्द्र उसकी गायें नष्ट नहीं करता है। (अस्मै चारु प्रशस्तम् इत् कृणोति) उसे शोभन और प्रशस्त धन प्रदान करता है ॥ ३ ॥

[१६३०] (यः रेवान् न अस्मै सोमं सुनोति) जो धनवान्के समान् इसके लियेही सोमरस प्रदान करता है, (एषः अस्य अनुस्पष्टः भवति) वह इन्द्र उसको दृष्टिगोचर होता है। (मघवा तं अरत्नौ निः दधाति) धनवान् इन्द्र उसे बाहु पकडकर भयसे मुक्त कर संरक्षित करता है, और (अननुदिष्टः ब्रह्मद्विषः हन्ति) विना याचना कियेही वह विद्वानोंके द्वेषी शत्रुओंको नष्ट करता है ॥ ४ ॥

[१६३१] (अश्वायन्तः गव्यन्तः वाजयन्तः) अश्वों, गायों और अन्न-ऐश्वर्यकी इच्छा करनेवाले हम (त्वा उपगन्तवै हवामहे उ) तुझे प्राप्त करनेके लिये बुलाते हैं- तेरे आगमनकी प्रार्थना करते हैं। हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते नवायां सुमतौ आभूषन्तः) तेरी उत्तम-सुमतिमें- कृपामें रहनेवाले (वयं शुनं त्वा हुवेम) हम सुखकर तुझे पुकारते हैं ॥ ५ ॥

(१६१)

५ प्राजापत्यो यक्ष्मनाशनः । इन्द्राग्नी, राजयक्ष्मघ्नं वा । त्रिष्टुप्, ५ अनुष्टुप् ।

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यदि वैतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् १
यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्षमेनं शतशारदाय २
सहस्राक्षेण शतशारदेन शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।
शतं यथेमं शरदो नयातीन्द्रो विश्वस्य दुरितस्य पारम् ३
शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान् ।
शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषेमं पुनर्दुः ४
आहार्षं त्वाविदं त्वा पुनरागाः पुनर्नव ।
सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ५ [१९] (१६३६)

---

[१६१]

[१६३२] हे रोगी ! (हविषा त्वा अज्ञातयक्ष्मात् उत राजयक्ष्मात्) यज्ञके हविर्द्रव्यसे तुझे, जिस रोगका पता नहीं चलता और राजयक्ष्मासे भी (कं जीवनाय मुञ्चामि) सुखदायक जीवनके लिये छुडाता हूं। (यदि वा एतत् एनं ग्राहिः) और यदि इस समय इस रोगीको कोई पापग्रहने (जग्राह तस्याः इन्द्राग्नी एनं प्र मुमुक्तम्) जकड लिया है, उस रोगसे भी इस रोगीको इन्द्र और अग्नि छुडावें ॥ १ ॥

[१६३३] (यदि क्षितायुः यदि वा परेतः) यदि रोगीकी क्षीण आयु हो गयी हो, यदि वह इस लोकसे चला गया है, (यदि मृत्योः अन्तिकं नीतः एव) और यदि यह मृत्युके पास गया हुआ है, तो भी (तं निर्ऋतेः उपस्थात् आ हरामि) उसको मैं मृत्यु-देवता निर्ऋतिके पाससे लौटा ला सकता हूं। (एनं शतशारदाय अस्पार्षम्) और उसको सौ वर्षके जीवनके लिये प्रबल करूंगा ॥ २ ॥

[१६३४] (सहस्राक्षेण शतशारदेन शतायुषा) सहस्र नेत्रसे युक्त, सौ वर्षतक जीवनवाला और सौ वर्षतक दीर्घजीवसे युक्त (हविषा एनं आहार्षम्) हविर्युक्त औषधि आदि साधनसे इस रोगीको रोगसे मुक्त करूंगा। (यथा इमं शतं शरदः) जिससे इसको सौ वर्षतक (इन्द्रः विश्वस्य दुरितस्य पारं नयाति) इन्द्र सारे दुःखोंके पार पहुंचावे ॥ ३ ॥

[१६३५] हे रोगमुक्त मनुष्य ! तू (वर्धमानः शतं शरदः जीव) प्रतिदिन बढता हुआ सौ वर्षतक -सौ शरद् ऋतुतक जीवित रह। (शतं हेमन्तान् शतं वसन्तान् उ) सौ हेमन्त और सौ वसन्त ऋतुओंतक जी। (इन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषा) इन्द्र, अग्नि, प्रेरक देव सविता और सब देवोंके पालनकर्ता बृहस्पति देव ये सब सौ वर्षकी आयुको देनेके साधन हविसे (इमं पुनः दुः) इसकी जीवन शक्ति पुनः प्रदान करें ॥ ४ ॥

[१६३६] हे रोगी ! (त्वा आहार्षम्) तुझे मैंने मृत्युके पाशसे लौटा लाया है (त्वा अविदम्) तुझे मैंने पाया है। हे (पुनः नव) पुनः नया जीवन धारण करनेवाले ! (पुनः आगाः) तु हमारे पास पुनः आ जा। हे (सर्वाङ्ग) सर्वाङ्ग परिपूर्ण ! (ते सर्वं चक्षुः ते सर्वं च आयुः अविदम्) तेरे समस्त जगत्को देखनेवाले आंख और सम्पूर्ण आयुष्यको मैंने प्राप्त किया है ॥ ५ ॥

(१६२)

६ ब्राह्मो रक्षोहा । रक्षोहा । अनुष्टुप् ।

ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः ।
अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये १

यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये ।
अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् २

यस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्स्नुं यः सरीसृपम् ।
जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ३

यस्त ऊरू विहरत्यन्तरा दंपती शये ।
योनिं यो अन्तरारेळ्हि तमितो नाशयामसि ४

यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ५ (१६४१)

यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ६ [२०](१६४२)

---

[१६२]

[१६३७] (ब्रह्मणा संविदानः रक्षोहा अग्निः इतः बाधताम्) वेदमंत्रोंके साथ एकमत– संतुष्ट होकर राक्षसोंका हन्ता अग्नि यहांसे– इस शरीरसे समस्त बाधाएं दूर करे। (यः अमीवा दुर्नामा ते गर्भं योनिं आशये) जो रोग दुर्नाम–अर्शरूपसे तेरे गर्भ वा योनि स्थानमें गुप्तरूपसे रहता है ॥ १ ॥

[१६३८] (यः दुर्नामा अमीवा ते गर्भं योनिं आशये) जो दुर्नाम नामका रोग तेरे गर्भ और योनिमें गुप्तरूपसे वास करता है, (तं क्रव्यादं ब्रह्मणासह अग्निः निः अनीनशत्) उस मांस खानेवाले राक्षस–रोगको वेद-मंत्रोंकी सहायतासे–बलसे यह अग्नि निःशेष करे ॥ २ ॥

[१६३९] हे स्त्री ! (यः ते पतयन्तं निषत्स्नुं हन्ति) जो राक्षस–रोग तेरे गर्भाशयमें जाते हुए वीर्यको, गर्भाशयमें स्थित होते हुए गर्भको नाश करता है, (यः सरीसृपं) जो तीन मासके अनन्तर चलन वलन करनेवाले गर्भको नाश करता है, (यः ते जाते जिघांसति) अथवा जो राक्षसरूप रोग तेरे दस मासके अनन्तर उत्पन्न हुए बालकको नष्ट करनेकी इच्छा करता है, (तं इतः नाशयामसि) उसको हम यहांसे नष्ट कर देते हैं ॥ ३ ॥

[१६४०] हे स्त्री ! (यः ते ऊरू विहरति) जो गर्भनाशके लिये तेरे दोनों जांघोंके बीच रहता है, (दम्पती अन्तरा शये) और स्त्री–पुरुषके बीचमें सोता है, और (यः योनिं अन्तः आरेळिह) जो योनिमें पतित पुरुषके वीर्यको, गर्भाशयमें प्रविष्ट होकर चाट जाता है, (तं इतः नाशयामसि) उसे हम यहांसे दूर कर देते हैं ॥ ४ ॥

[१६४१] हे स्त्री (यः त्वा भ्राता पतिः भूत्वा जारः भूत्वा निपद्यते) जो तेरे पास तेरे भाई रूपसे, पति रूपसे वा जार–उपपति होकर आता है, और (यः ते प्रजां जिघांसति) जो तेरी सन्ततिको नष्ट करनेकी इच्छा करता है, (तं इतः नाशयामसि) उसे हम यहांसे दूर करते हैं ॥ ५ ॥

[१६४२] हे स्त्री ! (यः त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते) जो तुझे स्वप्नावस्था और निद्रारूप अन्धकारमें मोह मुग्ध करके तेरे पास गर्भनाशके लिये आता है, (यः ते प्रजां जिघांसति) जो तेरी सन्तति नष्ट करनेकी इच्छा करता है, (तं इतः नाशयामसि) उसे हम यहांसे दूर करते हैं ॥ ६ ॥

(१६३)

६ विवृहा काश्यपः । यक्ष्मनाशनम् । अनुष्टुप् ।

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते १
ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्य१मंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते २
आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोर्हृदयादधि ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां यक्नः प्लाशिभ्यो वि वृहामि ते ३
ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्मं श्रोणिभ्यां भासदाद्भंससो वि वृहामि ते ४
मेहनाद्वनंकरणाल्लोमभ्यस्ते नखेभ्यः ।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं वि वृहामि ते ५
अङ्गादङ्गाल्लोम्नोलोम्नो जातं पर्वणिपर्वणि ।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं वि वृहामि ते ६ [२१] (१६४८)

[१६३]

[१६४३] हे रोगी ! मैं (ते अक्षीभ्यां नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकात् अधि) तेरी आंखोंमेंसे, नासिकाओंसे, कानोंसे और ठोढीसे भी (ते शीर्षण्यं मस्तिष्कात् जिह्वायाः यक्ष्मं वि वृहामि) और सिरमें हुए रोगको, मस्तिष्क-भेजासे और जीभसे रोगको दूर करता हूं ॥ १ ॥

[१६४४] हे रोगी ! (ते ग्रीवाभ्यः उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यः अनूक्यात्) तेरे गर्दनकी नाडियोंसे, ऊपरकी स्नायुओंसे, हड्डियोंसे, संधिभागोंसे, (अंसाभ्यां बाहुभ्यां दोषण्यं यक्ष्मं ते वि वृहामि) कंधोंसे और बाहुओंसे और अन्तर्भागमेंसे मैं रोगको दूर करता हूं ॥ २ ॥

[१६४५] हे रोगी ! (ते आन्त्रेभ्यः गुदाभ्यः वनिष्ठः हृदयात् अधि) तेरी आंतोंसे, गुदाकी नाडियोंसे, स्थूल आंतसे, हृदयसे, (ते मतस्नाभ्यां यक्नः प्लाशिभ्यः यक्ष्मं वि वृहामि) तेरे मूत्राशयसे, यकृत्से और अन्य भोजन पाचक मांसपिंडोंसे मैं रोगको दूर करता हूं ॥ ३ ॥

[१६४६] हे रोगी ! (ते ऊरुभ्यां अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्यां) तेरी जंघाओंसे, जानुओंसे, एडियोंसे, पञ्जोंसे, (ते श्रोणिभ्यां भासदात् भंससः यक्ष्मं वि वृहामि) तेरे नितम्ब भागोंसे, कटिप्रदेशसे और गुदासे मैं रोगको दूर करता हूं ॥ ४ ॥

[१६४७] (वनंकरणात् मेहनात् ते लोमभ्यः नखेभ्यः) जल पैदा करनेवाले-मूत्रोत्पादक और वीर्य सेचक इन्द्रियसे, तेरे लोमोंसे, नखोंसे और (ते सर्वस्मात् आत्मनः इदं तं वि वृहामि) तेरे समस्त शरीरसे इस प्रकारके उस रोगको मैं दूर करता हूं ॥ ५ ॥

[१६४८] (अङ्गात् अङ्गात् लोम्नः लोम्नः पर्वणि पर्वणि जातं) प्रत्येक अंगसे, प्रत्येक लोमसे और शरीरके प्रत्येक सन्धि स्थानमें उत्पन्न हुए (ते सर्वस्मात् आत्मनः इदं तं यक्ष्मं वि वृहामि) तेरे सब शरीरसे उस इस रोगको मैं दूर करता हूं ॥ ६ ॥

(१६४)

५ प्रचेता आङ्गिरसः। दुःस्वप्ननाशनम्। अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप्, ५ पङ्क्तिः।

अपेहि मनसस्पते ऽप क्राम परश्चर।
परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः १
भद्रं वै वरं वृणते भद्रं युञ्जन्ति दक्षिणम्।
भद्रं वैवस्वते चक्षु र्बहुत्रा जीवतो मनः २
यदाशसा निःशसाभिशसो पारिम जाग्रतो यत् स्वपन्तः।
अग्निर्विश्वान्यप दुष्कृता न्यजुष्टान्यारे अस्मद् दधातु ३
यदिन्द्र ब्रह्मणस्पते ऽभिद्रोहं चरामसि।
प्रचेता न आङ्गिरसो द्विषतां पात्वंहसः ४
अजैष्माद्यासनाम चा ऽभूमानागसो वयम्।
जाग्रत्स्वप्नः संकल्पः पापो यं द्विष्मस्तं स ऋच्छतु यो नो द्वेष्टि तमृच्छतु ५ [२२] (१६५३)

[१६४]

[१६४९] हे (मनसः पते) स्वप्नावस्थामें विकल्प करनेवाले मनके स्वामी ! (अप इहि) तू दूर हो ! (अप क्राम परः चर) तू दूर चला जा, दूर देशमें यथेष्ट विचरण कर। (निर्ऋत्यै परः आ चक्ष्व) पापदेवता निर्ऋतिको जो दूर रहती है, उसे कहो कि, (जीवतः मनः बहुधा) जीवित व्यक्तिके-मेरा मन बहुत प्रकारसे सर्वत्र घुमता है- भोगादिके विषयमें रमता है, इसलिये मुझे कष्ट नहीं देना ॥ १ ॥

[१६५०] (भद्रं वै वरं वृणीते) सब लोग उत्तम फलकी इच्छा करते हैं। (दक्षिणं भद्रं युञ्जन्ति) और वे उत्तम शुभ फल प्राप्त करते हैं। (वैवस्वते भद्रं चक्षुः) विवस्वतके पुत्र यमकी शुभ दृष्टिकी मैं प्रार्थना करता हूं। वह हमें दुःख न देवे। (बहुत्रा जीवितः मनः) विविध विषयोंमें मेरा मन रममाण हो ॥ २ ॥

[१६५१] (यत् आशासा जाग्रतः उपारिम) जिस दुष्कृतकी आशंकासे हम जाग्रत रहते हैं, (यत् स्वपन्तः) जिसको सोते हुए प्राप्त करते हैं और (निःशासा, अभिषसा) निःशंक होकर, शुभकी कामना करते हुए हम सोते हैं, (विश्वानि अजुष्टानि दुष्कृतानि) उन सब अप्रिय दुष्कर्मोंको (आग्निः अस्मत् आरे अप दधातु) अग्निदेव हमसे दूर रखे ॥ ३ ॥

[१६५२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! हे (ब्रह्मणस्पते) बृहस्पति ! (यत् अभिद्रोहं चरामसि) जो तुम्हारे विषयमें दुःस्वप्नके कारण पाप किया होगा, तो हमें क्षमा करो। (आङ्गिरसः प्रचेताः द्विषतां अंहसः नः पातु) अङ्गिरस, प्रकृष्ट ज्ञानी वरुण भी द्वेषी शत्रुओंके पापसे हमारी रक्षा करे ॥ ४ ॥

[१६५३] (अद्य अजैष्म असनाम च) आज हम विजयी हुए हैं और प्राप्तव्यको पा लिया है। (वयं अनागसः अभूम) हम निरपराध -निष्पाप हो गये हैं। (जाग्रत् स्वप्नः सः पापः संकल्पः यं द्विष्मः तं ऋच्छतु) जागृत और स्वप्नावस्थामें जो संकल्पजन्य पाप हुआ है, वह जिसका हम द्वेष करते हैं, उसको वह प्राप्त हो जाय। (यः नः द्वेष्टि तं ऋच्छतु) जो हमारा द्वेष करता है, उसके पास जाय ॥ ५ ॥

(१६५)

५ नैर्ऋतः कपोतः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ।

देवाः कपोत इषितो यदिच्छन् दूतो निर्ऋत्या इदमाजगाम ।
तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे १
शिवः कपोत इषितो नो अस्त्व नागा देवाः शकुनो गृहेषु ।
अग्निर्हि विप्रो जुषतां हविर्नः परि हेतिः पक्षिणी नो वृणक्तु २
हेतिः पक्षिणी न दभात्यस्मा नाष्ट्र्यां पदं कृणुते अग्निधाने ।
शं नो गोभ्यश्च पुरुषेभ्यश्चास्तु मा नो हिंसीदिह देवाः कपोतः ३
यदुलूको वदति मोघमेत द्यत् कपोतः पदमग्नौ कृणोति ।
यस्य दूतः प्रहित एष एतत् तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ४
ऋचा कपोतं नुदत प्रणोद मिषं मदन्तः परि गां नयध्वम् ।
संयोपयन्तो दुरितानि विश्वा हित्वा न ऊर्जं प्र पतात् पतिष्ठः ५ [२३] (१६५८)

---

[१६५]

[१६५४] हे (देवाः) देवो ! (निर्ऋत्याः दूतः कपोतः इषितः) निर्ऋति- पापदेवताका दूत यह कपोत प्रेरित होकर (यत् इच्छन् इदं आजगाम) जिस क्लेश देनेकी इच्छासे हमारे घरमें आया है, (तस्मै अर्चाम) उसकी बाधा निवारणके लिये हम तुम्हारी हविसे पूजा करते हैं । (निष्कृतिं कृणवाम) उसी प्रकार उस पापकी हम हविर्दानसे छुटकारा करते हैं । (नः द्विपदे शं अस्तु चतुष्पदे शं) हमारे पुत्र-पौत्रोंको सुख प्राप्त हो और गौ-अश्व आदिको भी शान्ति प्राप्त हो ॥ १ ॥

[१६५५] हे (देवाः) देवो ! (नः गृहेषु इषितः कपोतः शकुनः शिवः अनागाः अस्तु) हमारे घरमें भेजा हुआ कपोत नामक पक्षी हमारे लिये सुखकर और निष्पाप हो । (हि विप्रः अग्निः नः हविः जुषताम्) यह बुद्धिमान् अग्नि हमारा हवि भक्षण-ग्रहण करे । (पक्षिणी हेतिः नः परि वृणक्तु) तुम्हारी कृपासे यह पक्षोंवाला-हनन हेतुवाला पक्षी हमें दूरसे ही परित्याग कर दे ॥ २ ॥

[१६५६] (पक्षिणी हेतिः अस्मान् न दभाति) पक्षधारी-हनन हेतु शस्त्रवाला कपोत हमें नष्ट न करे । (आष्ट्र्यां अग्निधाने पदं कृणुते) अग्नि अरणिमें -अग्निके स्वस्थानमें -स्थान प्राप्त करता है । (नः गोभ्य च पुरुषेभ्यः च शं अस्तु) हमारी गायों और मनुष्योंके लिए भी वह सुखदाता हो । हे (देवाः) देवो ! (इह कपोतः नः मा हिंसीत्) यहां कपोत हमें नहीं मारे ॥ ३ ॥

[१६५७] (यत् उलूकः वदति एतत् मोघम्) यह उलूक जो अशुभ बोलता है, वह निष्फल हो । (कपोतः अग्नौ यत् पदं कृणोति) कपोत अग्निगृहमें बैठता है, वह भी निष्फल हो । (प्रहितः एषः यस्य दूतः) प्रेषित यह जिस स्वामीका दूत होकर आता है । (तस्मै मृत्यवे यमाय एतत् नमः अस्तु) उस मृत्युरूप यमको यह प्रणाम हो ॥ ४ ॥

[१६५८] हे देवो ! (ऋचा प्रणोदं कपोतं नुदत) उत्तम मंत्रोंसे स्तवित तुम दूर करने योग्य कपोतको हमारे घरमेंसे दूर भगा दो । (इषं मदन्तः विश्वा दुरितानि संयोपयन्तः) हविओंसे प्रसन्न और सब पापोंको नष्ट करनेवाले हम (गां परि नयध्वम्) गाय प्राप्त करें । और (पतिष्ठः नः ऊर्जं हित्वा प्र पतात्) दूरगामी उडनेवाला यह हमें अन्न देता हुआ, अन्नका परित्याग कर यह दूसरी जगह उडकर जाय ॥ ५ ॥

(१६६)

५ ऋषभो वैराजः, ऋषभः शाकरो वा। सपत्नघ्नम्। अनुष्टुप्, ५ महापङ्क्तिः।

ऋषभं मा समानानां सपत्नानां विषासहिम्।
हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपतिं गवाम् १
अहमस्मि सपत्नहे न्द्र इवारिष्टो अक्षतः।
अधः सपत्ना मे पदो रिमे सर्वे अभिष्ठिताः २
अत्रैव वोऽपि नह्या म्युभे आर्त्नी इव ज्यया।
वाचस्पते नि षेधेमान् यथा मदधरं वदान् ३
अभिभूरहमागमं विश्वकर्मेण धाम्ना।
आ वश्चित्तमा वो व्रत मा वोऽहं समितिं ददे ४
योगक्षेमं व आदाया ऽहं भूयासमुत्तम आ वो मूर्धानमक्रमीम्।
अधस्पदान्म उद्वदत मण्डूका इवोदका न्मण्डूका उदकादिव ५ [२४] (१६६३)

---

[१६६]

[१६५९] हे इन्द्र ! (मा समानानां ऋषभं कृधि) मुझे समान पदवाले व्यक्तियोंमें श्रेष्ठ बना। (सपत्नानां विषासहिं) शत्रुओंको विशेष रूपसे पराजित करनेमें समर्थ कर। (शत्रूणां हन्तारं) शत्रुओंका नाश करनेवाला और (विराजं गवां गोपतिं) विशेष प्रकारसे अत्यंत शोभायमान होकर गायोंका स्वामी बना ॥ १ ॥

[१६६०] (अहं सपत्नहा अस्मि) मैं शत्रुहन्ता हूं। (इन्द्रः इव अरिष्टः अक्षतः) इन्द्रके समान मैं भी किसीसे भी हिंसित और आहत नहीं हूं। (इमे सर्वे सपत्नाः मे पदोः अधः अभिष्ठिताः) ये सब शत्रु मेरे पैरोंके नीचे आक्रान्त हों ॥ २ ॥

[१६६१] (ज्यया उभे आर्त्नी इव अत्रैव वः अपि नह्यामि) जैसे डोरिसे धनुषके दोनों कोटियोंको बांधा जाता है, वैसेही इस देशमेंही मैं तुम्हें बांधता हूं। हे (वाचस्पते) वाचस्पति ! (इमान् नि षेध) इनको निषेध कर (यथा मत् अधरं वदान्) जिससे ये मेरेसे निकृष्ट तर बोलनेवाले कर ॥ ३ ॥

[१६६२] (अभिभूः अहं विश्वकर्मेण धाम्ना आगमम्) सबका पराजय करनेवाला मैं सर्व समर्थ तेज-बलसे युक्त होकर आया हूं। इसलिये (अहं वः चित्त कः व्रत वः समितिं आ ददे) मैं तुम्हारे चित्रको, तुम्हारे कर्मों और युद्धको अपहृत कर लेता हूं ॥ ४ ॥

[१६६३] (वः योगक्षेमं आदाय अहं उत्तमः भूयासम्) तुम्हारी योगक्षेमकी योग्यताका अपहरण करके मैं सबसे श्रेष्ठ हो जाऊंगा। (वः मूर्धानं आ अक्रमीम्) अनन्तर तुम्हारे शिरोभागको प्राप्त होऊंगा -तुम्हारे बीचमें श्रेष्ठ पद प्राप्त करूंगा। (उदकात् मण्डूका इव मे पदात् अधः उत् वदत) जैसे जलमेंसे मेढक बोलते हैं, वैसेही तुम तुम मेरे पैरोंके नीचे रहकर चित्कार करते रहो ॥ ५ ॥

×

(१६७)

४ विश्वामित्र-जमदग्नी । इन्द्रः, ३ सोम-वरुण-बृहस्पति-अनुमति-
मघवत्-धातृ-विधातारः । जगती ।

तुभ्येदमिन्द्र परि षिच्यते मधु त्वं सुतस्य कलशस्य राजसि ।
त्वं रयिं पुरुवीरामु नस्कृधि त्वं तपः परितप्याजयः स्वः १ (१६६४)

स्वर्जितं महि मन्दानमन्धसो हवामहे परि शक्रं सुताँ उप ।
इमं नो यज्ञमिह बोध्या गहि स्पृधो जयन्तं मघवानमीमहे २

सोमस्य राज्ञो वरुणस्य धर्मणि बृहस्पतेरनुमत्या उ शर्मणि ।
तवाहमद्य मघवन्नुपस्तुतौ धातर्विधातः कलशाँ अभक्षयम् ३

प्रसूतो भक्षमकरं चरावपि स्तोमं चेमं प्रथमः सूरिरुन्मृजे ।
सुते सातेन यद्यागमं वां प्रति विश्वामित्रजमदग्नी दमे ४ [२५] (१६६७)

[१६७]

[१६६४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (इदं मधु तुभ्यं परि षिच्यते) यह मधुर सोमरस मेरे लिये ही ढाला गया है। (त्वं सुतस्य कलशस्य राजसि) तू ही इस अभिषुत, कलशमें रखे सोमरसके स्वामी है। वह (त्वं नः पुरुवीरां रयिं कृधि) तू हमें बहुत पुत्रादि और धनसे युक्त कर। (त्वं तपः परितप्य स्वः अजयः) और तुमने तप करके स्वर्गको जीता है ॥ १ ॥

[१६६५] (स्वर्जितं महि अन्धः मन्दानं शक्रं) स्वर्ग जीतनेवाले, महान्, सोमपान करके मदयुक्त-प्रसन्न होनेवाले और सब कार्योंके सम्पन्न करनेमें समर्थ इन्द्रको (सुतान् उप पदि हवामहे) हम अभिषुत सोमपानके लिये बुलाते हैं। (नः इमं यज्ञं इह बोधि) हे इन्द्र ! तू हमारे इस यज्ञको यहां जान और (आ गहि) तू अंतःकरणपूर्वक आ। (स्पृधः जयन्तं मघवानं ईमहे) ईर्ष्या करनेवाली शत्रुसेनापर विजय पानेवाले धनवान् इन्द्रसे हम अभिलषित धनकी याचना करते हैं ॥ २ ॥

[१६६६] (राज्ञः सोमस्य वरुणस्य धर्मणि) राजा सोम और वरुणके यज्ञमें, तथा (बृहस्पतेः अनुमत्याः शर्मणि अहं) बृहस्पति और अनुमतिकी शरणमें- यज्ञगृहमें रहनेवाला मैं, हे (मघवन्) इन्द्र ! (अद्य तव उपस्तुतौ) आज तेरी स्तुति करता हूं। हे (धातः विधातः) धाता और विधाता ! तुम्हारी अनुमतिसे मैं (कलशान् अभक्षयम्) हुतावशिष्ट सोमका पान करता हूं ॥ ३ ॥

[१६६७] हे इन्द्र ! (प्रसूतः चरौ भक्षं अपि अकरम्) तेरे द्वारा प्रेरित होकर मैंने यज्ञमें चरुके साथ अन्य आहारीय हवि आदि तैयार किये हैं। (प्रथमः सूरिः इमं स्तोमं च उन्मृजे) मुख्य स्तोता होकर मैं इस स्तोत्रको तेरे लिये उच्चारित करता हूं। [इन्द्र कहता है-] हे (विश्वामित्रजमदग्नी) विश्वामित्र और जमदग्नि ! (वां प्रति दमे सुते सातेन यदि आगमम) तुम्हारे यज्ञगृहमें सोम अभिषुत होनेपर जब मैं धन लेकर आऊं तब तुम उत्तम प्रकारसे स्तुति करो ॥ ४ ॥

(१६८)

४ अनिलो वातायनः । वायुः । त्रिष्टुप् ।

वातस्य नु महिमानं रथस्य रुजन्नेति स्तनयन्नस्य घोषः ।
दिविस्पृग्यात्यरुणानि कृण्वन्नुतो एति पृथिव्या रेणुमस्यन् १
सं प्रेरते अनु वातस्य विष्ठा ऐनं गच्छन्ति समनं न योषाः ।
ताभिः सयुक् सरथं देव ईयते ऽस्य विश्वस्य भुवनस्य राजा २
अन्तरिक्षे पथिभिरीयमानो न नि विशते कतमच्चनाहः ।
अपां सखा प्रथमजा ऋतावा क्व स्विज्जातः कुत आ बभूव ३
आत्मा देवानां भुवनस्य गर्भो यथावशं चरति देव एषः ।
घोषा इदस्य शृण्विरे न रूपं तस्मै वाताय हविषा विधेम ४ [२५] (१६७१)

---

[१६८]

[१६६८] (वातस्य रथस्य महिमानं नु) वायुके वेगसे जानेवाले रथकी महिमाका वर्णन करता हूं । (अस्य घोषः स्तनयन् रुजन् एति) इसका शब्द विविध आवाज करता हुआ और वृक्षादिको तोडता फोडता हुआ आता है । वह (दिविस्पृक् अरुणानि कृण्वन् याति) आकाशको व्यापता हुआ और चारों ओर लाल वर्ण उत्पन्न करता हुआ जाता है । (उतो पृथिव्याः रेणुं अस्यन् एति) और पृथिवीकी धूलिको इधर-उधर बिखेर करके जाता है ॥ १ ॥

[१६६९] (विःस्थाः वातस्य अनु सं प्र ईरते) विशेष रूपसे स्थित पर्वत आदि वायुकी गतिसे कांपते हैं । (समनं न एनं योषाः आ गच्छन्ति) जिस प्रकार स्त्रियां समर्थ -बलवान् पुरुषको प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार वृक्षादि वायुकी ओर जाते हैं । (ताभिः सयुक् सरथं देवः ईयते) उनकी सहायता पाकर रथपर आरूढ होकर देदीप्यमान वायु जाता है । वह (अस्य विश्वस्य भुवनस्य राजा) इस सब भुवनका राजा है ॥ २ ॥

[१६७०] (अन्तरिक्षे पथिभिः ईयमानः कतमत् चन अहः न नि विशते) अन्तरिक्षमें अनेक मार्गोंसे जानेवाला वायु किसी भी दिन स्वस्थ- निश्चल होकर नहीं बैठता । (अपां सखा प्रथमजाः ऋतावा) जलोंका मित्र, सब प्राणियोंसे प्रथम उत्पन्न और सत्यधर्मका अधिष्ठाता वायु (क्व स्वित् जातः कुतः आ बभूव) कहां उत्पन्न हुआ है ? कहांसे आता है ? ॥ ३ ॥

[१६७१] यह वायु (देवानां आत्मा भुवनस्य गर्भः) इन्द्रादि भी देवोंका आत्मा और भुवनका गर्भ है । (एषः देवः यथावशं चरति) यह वायु देव अपनी इच्छाके अनुसार विहार करता है । (अस्य घोषाः इत् शृण्विरे) इसके शब्द-नाद ही सुनाई देते हैं । (रूपं न) इसका रूप प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता । (तस्मै वाताय हविषा विधेम) उस वायुदेवकी हम हवि आदि द्वारा सेवा करते हैं ॥ ४ ॥

(१६९)

४ शबरः काक्षीवतः । गावः । त्रिष्टुप् ।

मयोभूर्वातो अभि वातूस्रा ऊर्जस्वतीरोषधीरा रिशन्ताम् ।
पीवस्वतीर्जीवधन्याः पिब न्त्ववसाय पद्वते रुद्र मृळ १
याः सरूपा विरूपा एकरूपा यासामग्निरिष्ट्या नामानि वेद ।
या अङ्गिरसस्तपसेह चक्रु स्ताभ्यः पर्जन्य महि शर्म यच्छ २
या देवेषु तन्व१मैरयन्त यासां सोमो विश्वा रूपाणि वेद ।
ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः प्रजावतीरिन्द्र गोष्ठे रिरीहि ३
प्रजापतिर्मह्यमेता रराणो विश्वैर्देवैः पितृभिः संविदानः ।
शिवाः सतीरुप नो गोष्ठमाकु स्तासां वयं प्रजया सं सदेम ४ [२७] (१६७५)

[१६९]

[१६७२] (वातः मयोभूः उस्राः अभि वातु) वायु सुख देता हुआ गायोंकी ओर बहे । गायें (ऊर्जस्वतीः ओषधीः आ रिशन्ताम्) बल देनेवाली ओषधियोंको खावें आस्वादन करें । (पीवस्वतीः जीवधन्याः पिबन्तु) उत्तम और आनंददायक जल पियें । हे (रुद्र) रुद्र देव ! (पद्वते अवसाय मृळ) चरण युक्त और अन्न-दूध रूप गायोंको सुख दे ॥ १ ॥

[१६७३] (याः सरूपाः विरूपाः एकरूपाः यासां यासां नामानि) जो समानरूपवाली, विभिन्नरूपवाली और एकरूपवाली हैं, जिनके नामोंको (इष्टया अग्निःवेद) यज्ञमें अग्नि जानता है; (याः अङ्गिरसः तपसा इह चक्रुः) जिनको अङ्गिरसने तपसे इस लोकमें उत्पन्न किया; हे (पर्जन्य) पर्जन्य ! (ताभ्यः महि शर्म यच्छ) उन सब गायोंको महान् सुख प्रदान कर ॥ २ ॥

[१६७४] (याः देवेषु तन्वं ऐरयन्त) जो गायें देवोंको अपने शरीरसे दूध देती हैं, (यासां विश्वा रूपाणि सोमः वेद) जिनके दुग्धादि रूपोंको सोम जानता है, (अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः) हमें अपने दूधसे पुष्ट करती हुई और हे (इन्द्रः) इन्द्र ! (प्रजावतीः ताः गोष्ठे रिरीहि) उत्तम संततिसे युक्त बनाकर उन गायोंको हमारे गोष्ठमें पहुंचा दे ॥ ३ ॥

[१६७५] (प्रजापतिः मह्यं एताः रराणः) प्रजापति मुझे इन उत्तम गौओंको प्रदान करता है, (विश्वैः देवैः पितृभिः संविदानः) उसने सब देव और पितरोंसे परामर्श किया है । (शिवाः सतीः नः गोष्ठं उप अकः) कल्याण कारिणी इन गायोंको वह हमारे गोष्ठमें पहुंचावे । (तासां प्रजया वयं सं सदेम) उनकी प्रजासे हम सपन्न हो जाएंगे ॥ ४ ॥

(१७०)

४ विभ्राट् सौर्यः । सूर्यः । जगती, ४ आस्तारपङ्क्तिः ।

विभ्राड् बृहत् पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम् ।
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा वि राजति १
विभ्राड् बृहत् सुभृतं वाजसातमं धर्मन् दिवो धरुणे सत्यमर्पितम् ।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहंतमं ज्योतिर्जज्ञे असुरहा सपत्नहा २
इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत् ।
विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृश उरु पप्रथे सह ओजो अच्युतम् ३
विभ्राजञ्ज्योतिषा स्वऽ१॒रगच्छो रोचनं दिवः ।
येनेमा विश्वा भुवनान्याभृता विश्वकर्मणा विश्वदेव्यावता ४ [२८] (१६७९)

---

[१७०]

[१६७६] (विभ्राट् बृहत् सोम्यं मधु पिबतु) अत्यंत तेजस्वी सूर्य इस उत्तम मधुतुल्य सोमरसका पान करे । (यज्ञपतौ अविह्रुतम् आयुः दधत्) यज्ञानुष्ठान करनेवाले यजमानको उत्तम आयु दे । (यः वातजूतः त्मना प्रजाः अभिरक्षति) जो सूर्य वायुके द्वारा प्रेरित होकर स्वयं प्रजाकी रक्षा करता है, और (पुपोष पुरुधा वि राजति) उनका पोषण करता है और बहुत प्रकारसे शोभित-प्रकाशित होता है ॥ १ ॥

[१६७७] (विभ्राट् बृहत् सुभृतं वाजसातमं दिवः धर्मन्) तेजस्वी, महान् व्यापक-सुपुष्ट, बल-अन्नका दाता, द्युलोकको धारण करनेवाला-आधार, (धरुणे अर्पितं सत्यं अमित्रहा वृत्रहा) सूर्यमण्डलमें स्थापित, अविनाशी, शत्रुनाशक, मेघोंको दूर करनेवाला (दस्युहंतमं असुरहा सपत्नहा ज्योतिः जज्ञे) दस्युघातक, असुरोंका नाशक और विपक्षियोंका संहारक रूपसे सूर्यका तेज-प्रकाश प्रकट होता है ॥ २ ॥

[१६७८] (ज्योतिषां श्रेष्ठं उत्तमं इदं ज्योतिः) सब ज्योतिर्मय पदार्थोंमें श्रेष्ठ और उत्कृष्ट यह सूर्यका तेज है । (विश्वजित् धनजित् बृहत् उच्यते) वह सब जगत्को जीतनेवाला, धनोंको जीतनेवाला और व्यापक कहा जाता है । (विश्वभ्राट् भ्राजः महि सूर्यः दृशे) वह सारे जगत्का प्रकाशक, प्रकाशमान् और महान् सूर्य रूपमें दिखाई देता है । (ऊरु सहः अच्युतं ओजः पप्रथे) वह विस्तीर्ण, अभिभूत करनेवाला, अविनाशी तेजोरूप बलसे व्याप्त होता है ॥३॥

[१६७९] हे सूर्य ! (ज्योतिषा स्वः विभ्राजन्) अपने तेजसे सब जगतको प्रकाशित करता हुआ, (दिवः रोचनं अगच्छः) तू द्युलोकमें शोभायमान स्थान प्राप्त करके उदित होता है । (येन विश्वकर्मणा विश्वदेव्यावता इमा विश्वा भुवनानि आभृता) जिस तेजसे विश्वसंरक्षक और सबोंका हितकारी तू इन सब लोकोंको पोषण करता है ॥४॥

(१७१)

४ इटो भार्गवः। इन्द्रः। गायत्री।

त्वं त्यमिटतो रथमिन्द्र प्रावः सुतावतः । अशृणोः सोमिनो हवम् १
त्वं मखस्य दोधतः शिरोऽव त्वचो भरः । अगच्छः सोमिनो गृहम् २
त्वं त्यमिन्द्र मर्त्यमास्त्रबुध्नाय वेन्यम् । मुहुः श्रथ्ना मनस्यवे ३
त्वं त्यमिन्द्र सूर्यं पश्चा सन्तं पुरस्कृधि । देवानां चित्तिरो वशम् ४ [२९] (१६८३)

(१७२)

४ संवर्त आङ्गिरसः। उषाः। द्विपदा विराट्।

आ याहि वनसा सह गावः सचन्त वर्तनिं यदूधभिः १
आ याहि वस्व्या धिया मंहिष्ठो जारयन्मखः सुदानुभिः ॥१॥ २
पितुभृतो न तन्तुमित् सुदानवः प्रति दध्मो यजामसि ३
उषा अप स्वसुस्तमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता ॥२॥ ४ [३०] (१६८७)

---

[१७१]

[१६८०] हे (इन्द्र) धनवान् इन्द्र ! (त्वं सुतावतः इटतः त्यं रथं प्रावः) अभिषुत सोमसे युक्त इट ऋषिके उस प्रसिद्ध रथकी तूने रक्षा की। (सोमिनः हवं अशृणोः) सोमयुक्त उसके स्तोत्रको भी तुमने सुना ॥ १ ॥

[१६८१] हे इन्द्र ! (त्वं दोधतः मखस्य शिरः त्वचः अव भरः) तूने देवोंके पाससे भागनेवाले यज्ञके मस्तकको शरीरसे पृथक् किया और (सोमिनः गृहं अगच्छः) सोमयुक्त मेरे घरको प्राप्त हुआ ॥ २ ॥

[१६८२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं त्यं मर्त्यं वेन्यं मनस्यवे आस्त्रबुध्नाय) तू उस मर्त्य वेन-पुत्र पृथुको मनस्वी आस्त्रबुध्नके लिये (मुहुः श्रथ्नाः) बार बार वशमें कर दिया ॥ ३ ॥

[१६८३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं त्यं पश्चा सन्तं सूर्यं पुरः कृधि) तू उस सूर्यको सायं समयमें पश्चिममें अस्तंगत और प्रातःकालमें पूर्वमें उदित करता है। (देवानां चित् तिरः वशम्) उस समय देव भी नहीं जानते कि वह कहां गया ? परंतु तू सब जानता है ॥ ४ ॥

[१७२]

[१६८४] हे उषा देवते ! (यत् ऊधभिः गावः वर्तनिं सचन्त) जो दूधसे भरे उत्तम स्तनोंके साथ गायें हैं, वे मार्गपर चली हैं। (वनसा सह आ याहि) उत्तम धनके साथ तू आ ॥ १ ॥

[१६८५] हे उषा ! (वस्व्या धिया आ याहि) तू उत्तम कृपा करनेवाली बुद्धि और कर्मसहित आ। (सुदानुभिः मंहिष्ठः) उत्तम-शोभन दान प्रदान करनेके लिये धनोंका श्रेष्ठ दाता (जारयत् मखः) यज्ञको सब प्रकारसे सम्पादन करता है ॥ २ ॥

[१६८६] (पितुभृतः न सुदानवः तन्तुं इत् प्रति दध्मः) अन्नदानके समान उत्तम दान-स्तुति करनेवाले हम विस्तीर्ण उषःकालकी यज्ञमें स्तुति करते हैं और (यजामसि) यज्ञसे सत्कार करते हैं ॥ ३ ॥

[१६८७] (उषाः स्वसुः तमः अप सं वर्तयति) उषा अपनी भगिनी रात्रिका अन्धकार अपने तेजसे दूर करती है। (सुजातता वर्तनिं) उत्तम रूपसे वृद्धि प्राप्त करके अपने व्यवहारका संचालन करती है ॥ ४ ॥

(१७३)

६ ध्रुव आङ्गिरसः । राज्ञः । अनुष्टुप् ।

आ त्वाहार्षमन्तरेधि ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत् १ (१६८८)

इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वत इवाविचाचलिः ।
इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय २

इममिन्द्रो अदीधरद् ध्रुवं ध्रुवेण हविषा ।
तस्मै सोमो अधि ब्रवत् तस्मा उ ब्रह्मणस्पतिः ३

ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवासः पर्वता इमे ।
ध्रुवं विश्वमिदं जगद् ध्रुवो राजा विशामयम् ४

ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः ।
ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम् ५

ध्रुवं ध्रुवेण हविषाऽभि सोमं मृशामसि ।
अथो त इन्द्रः केवलीर्विशो बलिहृतस्करत् ६ [३१] (१६९३)

[१७३]

[१६८८] हे राजन् ! (त्वा आ अहार्षम्) तुझे हमारे राष्ट्रका स्वामि बनाया है । (अन्तः एधि) तू हमारा राजा हो । (ध्रुवः अविचाचलिः तिष्ठ) तू नित्य अविचल और स्थिर होकर रह । (सर्वाः विशः त्वा वाञ्छन्तु) सब प्रजा तुझे चाहें । (त्वत् राष्ट्रं मा अधि भ्रशत्) तेरेसे राष्ट्र नष्ट न होने पावे ॥ १ ॥

[१६८९] हे राजन् (इह एव एधि) तू यहीं– इस राष्ट्रमेंही– अविचल स्थिर रह । (मा अप च्योष्ठाः) तू राजपदसे च्युत मत हो । (पर्वतः इव अविचाचलिः) तू पर्वतके समान निश्चल रह । (इन्द्रः इव इह ध्रुवः तिष्ठ) जैसे स्वर्गमें इन्द्र है, वैसेही तू इस पृथ्वीपर स्थिर रह । (इह राष्ट्रं उ धारय) और यहां राष्ट्रको धारण कर ॥ २ ॥

[१६९०] (इन्द्रः इमं ध्रुवेण हविषा ध्रुवं अदीधरत्) इन्द्र इस अभिषिक्त राजाको अक्षय्य होमीय द्रव्य पाकर स्थिर करे । (सोमः तस्मै अधि ब्रवत्) सोम उसको अपनाही कहे । (तस्मै उ ब्रह्मणस्पतिः) उसको ब्रह्मणस्पति भी अपनाही समझे ॥ ३ ॥

[१६९१] (द्यौः ध्रुवा पृथिवी ध्रुवा इमे पर्वतः ध्रुवासः) आकाश स्थिर है, पृथिवी भी स्थिर है, ये पर्वत भी स्थिर हैं । (इदं विश्वं जगत् ध्रुवम्) यह सब जगत् भी स्थिर है । इसी प्रकार (अयं विशां राजा ध्रुवः) यह प्रजाओंके स्वामी–राजा स्थिर रहे ॥ ४ ॥

[१६९२] हे राजन् ! (ते राजा वरुणः ध्रुवम्) तेरे राष्ट्रको तेजस्वी वरुण स्थिर करे । (देवः बृहस्पतिः ध्रुवम्) दानादि गुणोंसे युक्त बृहस्पति अविचल करे । (इन्द्रः च अग्निः च ते राष्ट्रं ध्रुवं धारयताम्) इन्द्र और अग्नि भी तेरे राष्ट्रको स्थिर रूपसे धारण करे ॥ ५ ॥

[१६९३] (ध्रुवेण हविषा ध्रुवं सोमं अभि मृशामसि) अक्षय्य पुरोडाशादि युक्त हविसे हम स्थिर सोमको प्राप्त करते हैं । (अथो इन्द्रः विशः ते केवलीः बलिहृतः करत्) अनन्तर इन्द्र तेरी प्रजाको तेरे लियेही केवल कर देनेवाली करे ॥ ६ ॥

(१७४)

५ अभीवर्त आङ्गिरसः । राजा । अनुष्टुप् ।

अभीवर्तेन हविषा येनेन्द्रो अभिवावृते ।
तेनास्मान् ब्रह्मणस्पते ऽभि राष्ट्राय वर्तय १

अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातयः ।
अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाऽभि यो न इरस्यति २

अभि त्वा देवः सविता ऽभि सोमो अवीवृतत् ।
अभि त्वा विश्वा भूतान्यभीवर्तो यथाससि ३

येनेन्द्रो हविषा कृत्व्यभवद् द्युम्न्युत्तमः ।
इदं तदक्रि देवा असपत्नः किलाभुवम् ४

असपत्नः सपत्नहा ऽभिराष्ट्रो विषासहिः ।
यथाहमेषां भूतानां विराजानि जनस्य च ५ [३२](१६९८)

---

[१७४]

[१६९४] हे (ब्रह्मणस्पते) ब्रह्मणस्पति ! (येन अभीवर्तेन हविषा इन्द्रः अभिवावृते) जिस कारण जाने योग्य हविर्द्रव्यके साधनसे इन्द्र देवोंके पास जाता है, (तेन अस्मान् राष्ट्राय अभि वर्तय) उस साधनसे हमें राज्य प्राप्तिके लिये उत्साहित कर ॥ १ ॥

[१६९५] हे राजन् (सपत्नान् अभिवृत्य नः याः अरातयः) शत्रुओंको चारों ओरसे घेरकर, हमारी जो शत्रुओंकी सेनाएं हैं, उनको (अभि तिष्ठ) पराभूत कर । (पृतन्यन्तं अभि) जो हमसे युद्ध करनेकी इच्छा करते हैं, उनको भी पराजित कर । (यः नः इरस्यति अभि) और जो हमसे स्पर्धा- द्वेष करते हैं, उनको अभिभूत कर ॥ २ ॥

[१६९६] हे राजन् ! (देवः सविता त्वा अभि अवीवृतत्) तेजस्वी सविता देव तुझे राष्ट्र प्राप्त करावे । (सोमः अभि विश्वा भूतानि त्वा अभि) सोम भी और सर्व प्राणिमात्र तुझे राष्ट्र प्राप्तिके लिये सहाय्य करे । (यथा अभीवर्तः असति) जिससे तू सर्व सत्ताधारी होगा ॥ ३ ॥

[१६९७] (येन हविषा इन्द्रः कृत्वी) जिस हविर्द्रव्य साधनसे इन्द्र कार्य करनेमें समर्थ, (द्युम्नी उत्तमः अभवत्) धनवान् -यशस्वी और श्रेष्ठ हुआ, (तत् इदं अक्रि) वह यह हवि मैंने तैय्यार किया है । हे (देवाः) देवो ! इस कारणही (असपत्नः किल अभुवम्) मैं शत्रुरहित हुआ हूं ॥ ४ ॥

[१६९८] (सपत्नहा असपत्नः) शत्रुओंका नाशक मैं शत्रुरहित हुआ हूं । (अभिराष्ट्रः विषासहिः) राष्ट्र प्राप्त करके विशेष रूपसे शत्रुओंको पराजित करनेवाला हुआ हूं । (यथा अहं एषां भूतानां जनस्य च विराजानि) जिससे मैं इन सब प्राणियों और प्रजाओंका स्वामी हुआ हूं ॥ ५ ॥

(१७५)

४ ऊर्ध्वग्रावा सर्प आर्बुदिः । ग्रावाणः । गायत्री ।

प्र वो ग्रावाणः सविता देवः सुवतु धर्मणा । धूर्षु युज्यध्वं सुनुत १
ग्रावाणो अप दुच्छुना मप सेधत दुर्मतिम् । उस्राः कर्तन भेषजम् २ (१७००)
ग्रावाण उपरेष्वा महीयन्ते सजोषसः । वृष्णो दधतो वृष्ण्यम् ३
ग्रावाणः सविता नु वो देवः सुवतु धर्मणा । यजमानाय सुन्वते ४ [३३](१७०२)

(१७६)

४ सूनुरार्भवः । १ ऋभवः, २-४ अग्निः । अनुष्टुप्, २ गायत्री ।

प्र सूनव ऋभूणां बृहन्नवन्त वृजना ।
क्षामा ये विश्वधायसो ऽश्नन् धेनुं न मातरम् १
प्र देवं देव्या धिया भरता जातवेदसम् ।
हव्या नो वक्षदानुषक् २

---

[१७५]

[१६९९] हे (ग्रावाणः) सोम निचोडनेवाले पत्थरो ! (वः सविता देवः धर्मणा प्र सुवतु) तुम्हें सविता देव स्वसामर्थ्यसे सोम निचोडनेके लिये प्रेरित करे । तुम (धूर्षु युज्यध्वं सुनुत) अभिषवके स्थान पर अपने कर्ममें नियुक्त होओ और सोमरस निचोडो ॥ १ ॥

[१७००] हे (ग्रावाणः) पत्थरो ! (दुच्छुनां अप सेधत) दुःखकारिणी प्रजाको हमसे दूर करो । (दुर्मतिं अप) दुर्मतिको दूर करो । (भेषजं उस्राः कर्तन) सुखदायक ओषधिके तुल्य गायोंको हमें प्रदान करो ॥ २ ॥

[१७०१] (सजोषसः ग्रावाणः) प्रीतियुक्त और परस्पर मिलकर स्थित पाषाण (उपरेषु आ महीयन्ते) उपर नामक पत्थरकी चारों ओर विशेष शोभित होते हैं । (वृष्णः वृष्ण्यं दधतः) वे रसवर्षक सोममें बलवर्धक मधुको प्रदान करते हैं ॥ ३ ॥

[१७०२] हे (ग्रावाणः) पत्थरो ! (सविता देवः सुन्वते यजमानाय) सविता देव सोमरस निचोडनेवाले यज्ञकर्ता यजमानके लिये (वः धर्मणा नु सुवतु) तुम्हें स्वसामर्थ्यसे-धर्मके अनुसार सोम अभिषव करनेके लिये प्रेरित करे ॥ ४ ॥

[१७६]

[१७०३] (ऋभूणां सूनवः बृहत् वृजना प्र नवन्त) ऋभुके पुत्र घोर युद्ध करनेके लिये जोरसे- यज्ञप्राप्त्यर्थ निकले । (ये विश्वधायसः धेनुं न मातरं) ये विश्वाधार ऋभु, जैसे बछडे अपनी दुग्धवती माता गायका दूध पीते हैं, वैसे ही (क्षाम अश्नन्) पृथिवी माताको प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

[१७०४] हे स्तोता ! (देवं जातवेदसं प्रभरत) दिव्य गुणयुक्त, संसारके सब पदार्थोंको जाननेवाले अग्निकी उपासना करो । क्योंकि वह अपने (देव्या धिया न हव्या आनुषक् वक्षत्) दिव्यबुद्धिसे हमारे हव्य पदार्थोंको विधिपूर्वक देवताओंके पास पहुंचाता है ॥ २ ॥

×

अयमु ष्य प्र देवयु- र्होता यज्ञाय नीयते ।
रथो न योरभीवृतो घृणीवाञ्चेतति त्मना ३
अयमग्निरुरुष्य- त्यमृतादिव जन्मनः ।
सहसश्चित् सहीयान् देवो जीवातवे कृतः ४ [३४](१७०६)

(१७७)

३ पतङ्गः प्राजापत्यः । मायाभेदः । त्रिष्टुप्, १ जगती ।

पतङ्गमक्तमसुरस्य मायया हृदा पश्यन्ति मनसा विपश्चितः ।
समुद्रे अन्तः कवयो वि चक्षते मरीचीनां पदमिच्छन्ति वेधसः १
पतङ्गो वाचं मनसा बिभर्ति तां गन्धर्वोऽवदद्गर्भे अन्तः ।
तां द्योतमानां स्वर्यं मनीषा- मृतस्य पदे कवयो नि पान्ति २
अपश्यं गोपामनिपद्यमान- मा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ३ [३५](१७०९)

[१७०५] (अयमु स्यः देवयुः) यह अग्नि वही है जो देवताओंके पास जाता है। यह (होता यज्ञाय प्रणीयते) देवताओंका आह्वाता है, इसे आहवनीय आदि यज्ञोंके लिये विशेष रूपसे ले जाया जाता है। (यः रथः न घृणीवान्) जो रथके समान देदीप्यमान दिखाई देता है। तथा (अभीवृतः त्मना चेतति) ऋत्विक् यजमान आदिकों से घिरा हुआ अपने स्वसामर्थ्यसे सम्यक् रूपसे देवोंका यजन करना जानता है ॥ ३ ॥

[१७०६] (अयम् अग्निः अमृतात् इव जन्मनः उरुष्यति) यह अग्नि अमृतके समान ही, मनुष्यके निमित्त उत्पन्न भयसे, हमारी रक्षा करता है। यह (सहसः चित् सहीयान्) बलवानसे भी बलवान् है। (देवः जीवातवे वृतः) विधाताने जीवके जीवनदानके लिये इसको बनाया है ॥ ४ ॥

[१७७]

[१७०७] (असुरस्य मायया अक्तं पतङ्गम्) उपाधिरहित परमेश्वरकी मायासे-प्रज्ञासे व्याप्त सूर्यको (विपश्चितः हृदा मनसा पश्यन्ति) विद्वान् लोग हृदयस्थ मनसे जानते हैं। (कवयः समुद्रे अन्तः विचक्षते) क्रान्तदर्शी ज्ञानी सूर्यमंडलके बीचमें उसे विशेष रूपसे अवलोकन करते हैं;-- उसमें स्थित परम ब्रह्मको जानते हैं। और (वेधसः मरीचीनां पदं इच्छन्ति) विधाताके उपासक वे सूर्यमंडलकी- परम धाम पानेकी इच्छा करते हैं ॥ १ ॥

[१७०८] (पतङ्गः वाचं मनसा बिभर्ति) सूर्य वेदरूपी वाणी ज्ञानयुक्त मनसे धारण करता है। (ताम् गर्भे गन्धर्वः अन्तः अवदत्) उसको ही शरीरमें वर्तमान प्राणवायु उच्चारित करता है, प्रेरित करता है। (द्योतमानां स्वर्यं मनीषां तां) तेजस्वी, स्वर्गीय सुखदायक और बुद्धिकी अधीश्वरी वाणीको (ऋतस्य पदे कवयः नि पान्ति) यज्ञके स्थानमें बुद्धिमान् विद्वान् उत्तम प्रकारसे सुरक्षित करते हैं ॥ २ ॥

[१७०९] (गोपां अनिपद्यमानं अपश्यम्) समस्त प्राणियोंके पालक आदित्य-सूर्यको उच्च स्थान परसे नीचे जाता हुआ-वा नाश होता हुआ मैं कभी नहीं देखता हूं। (आ च परा च पथिभिः चरन्तम्) वह कभी पास और कभी दूर मार्गोंसे भ्रमण करता है। (सः सध्रीचीः सः विषूचीः वसानः) वह महान् दिशाओं और उपदिशाओंको अपने प्रकाशसे उज्ज्वल करता हुआ (भुवनेषु अन्तः आ वरीवर्ति) लोकोंमें बार बार आता जाता है ॥ ३ ॥

(१७८)

३ अरिष्टनेमिस्तार्क्ष्यः । तार्क्ष्यः । त्रिष्टुप् ।

त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहावानं तरुतारं रथानाम् ।
अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम १
इन्द्रस्येव रातिमाजोहुवानाः स्वस्तये नावमिवा रुहेम ।
उर्वी न पृथ्वी बहुले गभीरे मा वामेतौ मा परेतौ रिषाम २ (१७११)
सद्यश्चिद्यः शवसा पञ्च कृष्टीः सूर्य इव ज्योतिषापस्ततान ।
सहस्रसाः शतसा अस्य रंहिर्न स्मा वरन्ते युवतिं न शर्याम् ३ [३६] (१७१२)

(१७९)

३ क्रमेण- शिबिरौशीनरः, काशिराजः प्रतर्दनः, रौहिदश्वो वसुमनाः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्, १ अनुष्टुप् ।

उत्तिष्ठताव पश्यतेन्द्रस्य भागमृत्वियम् ।
यदि श्रातो जुहोतन यद्यश्रातो ममत्तन १

[१७८]

[१७१०] (त्यं उ वाजिनं देवजूतं सहावानं) उस प्रसिद्ध बलवान्, देवोंसे सोम लानेके लिये प्रेरित, सामर्थ्यवान्, (रथानां तरुतारं अरिष्टनेमिं पृतनाजं आशुम्) संग्राममें रथोंको जीतनेवाले, कभी नष्ट न होनेवाले आयुधोंसे सुसज्ज, शत्रु सेनापर विजय प्राप्त करनेवाले और शीघ्रगामि, (तार्क्ष्यं स्वस्तये इह हुवेम) तार्क्ष्य-गरुडको कल्याण प्राप्तिके लिये इस कार्यमें बुलाते हैं ॥ १ ॥

[१७११] (इन्द्रस्य इव रातिं आजोहुवानाः स्वस्तये) इन्द्रके समान गरुडके दानको बार बार आवाहित करनेवाले हम कल्याणके लिये (नावं इव आ रुहेम) दुर्गम समुद्रको पार करनेके लिये जैसे नौकाका आश्रय लेते हैं, उसी तरह विपत्ति-दुःखसे पार होनेके लिये तेरे दानपर हम अवलंबित हैं । हे (उर्वी बहुले गभीरे पृथ्वी) विस्तृत, विशाल, गंभीर और प्रख्यात द्यावापृथिवी ! (वां एतौ परेतौ मा रिषाम) तुम्हारे तार्क्ष्यके आते और जाते समय हम नष्ट न हों ॥ २ ॥

[१७१२] (यः चित् सद्यः शवसा सूर्यः इव ज्योतिषा) जो तीक्ष्य भी शीघ्रही अपने बलसे, सूर्य जैसे अपने तेजसे वृष्टिका विस्तार करता है, वैसेही (पञ्च कृष्टीः अपः ततान) पंचजन और जलको निर्माण करता है । (अस्य रंहिः सहस्रसाः शतसाः) इसकी गति सहस्रों सैकडों धनोंको देनेवाली है । (शर्यां युवतिं न न स्म वरन्ते) बाणके लक्ष्यमें संलग्न होनेके समान इसके गतिको कोई नहीं रोक सकते ॥ ३ ॥

[१७९]

[१७१३] हे ऋत्विजो ! (उत्तिष्ठत) उठो ! (ऋत्वियं इन्द्रस्य भागं अव पश्यत) प्रत्येक ऋतुमें इन्द्रके सेवनीय भागको अवलोकन करो । (यदि श्रातः जुहोतन) यदि वह भाग पक गया है तो इन्द्रके लिये होम करो । (यदि अश्रातः ममत्तन) यदि वह नहीं पका है, तो स्तोत्रोंसे प्रार्थना करो ॥ १ ॥

श्रातं हविरो ष्विन्द्र प्र याहि जगाम सूरो अध्वनो विमध्यम् ।
परि त्वासते निधिभिः सखायः कुलपा न व्राजपतिं चरन्तम् २
श्रातं मन्य ऊधनि श्रातमग्नौ सुश्रातं मन्ये तदृतं नवीयः ।
माध्यंदिनस्य सवनस्य दध्नः पिबेन्द्र वज्रिन् पुरुकृज्जुषाणः ३ [३७](१७१५

(१८०)

३ जय ऐन्द्रः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

प्र ससाहिषे पुरुहूत शत्रू ञ्ज्येष्ठस्ते शुष्म इह रातिरस्तु ।
इन्द्रा भर दक्षिणेना वसूनि पतिः सिन्धूनामसि रेवतीनाम् १
मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः ।
सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताळ्हि वि मृधो नुदस्व २
इन्द्र क्षत्रमभि वाममोजो ऽजायथा वृषभ चर्षणीनाम् ।
अपानुदो जनममित्रयन्त मुरुं देवेभ्यो अकृणोरु लोकम् ३ [३८](१७१८

[१७१४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (हविः श्रातम्) हवि पक्व हुआ है । ((ओ सु प्र याहि) तू उत्तम रीतिसे शीघ्र आ । (सूरः अध्वनः विमध्यं जगाम) सूर्य मार्गके बीचमें आ गया है– मध्याह्न हो गया है । (सखायः निधिभिः त्वा परि आसते) मित्र–ऋत्विज विविध सोम आदि यज्ञ सामग्री सहित तेरी प्रतीक्षा करते हैं, (कुलपाः न व्राजपतिम् चरन्तम्) जैसे कुलके वंशज पुत्र विचरण करनेवाले गृहपतिकी राह देखते हैं ॥ २ ॥

[१७१५] (ऊधनि श्रातं मन्ये) गौके स्तनमें दुग्धरूप हवि पक्व हुआ है, ऐसी मेरी धारणा है । (अग्नौ श्रातम्) फिर अग्निमें भी पक्व हुआ है । इसलिये वह (सुश्रातं मन्ये) उत्तम रीतिसे पकाया गया है, ऐसे मैं मानता हूं । अतः (तत् ऋतं नवीयः) वह हवि अत्यंत श्रेष्ठ और नवीन रूपका है । हे (वज्रिन्) वज्रधर ! हे (पुरुकृत् इन्द्र) अनेक पराक्रम करनेवाले इन्द्र ! (जुषाणः माध्यन्दिनस्य सवनस्य दध्नः पिब) प्रसन्न होकर तू मध्याह्नके यज्ञमें अर्पण किये सोमरूप हविका पान कर ॥ ३ ॥

[१८०]

[१७१६] हे (पुरुहूत इन्द्र) बहुस्तुत इन्द्र ! (शत्रून् प्र ससाहिषे) तू शत्रुओंको पराजित करता है । (ते शुष्मः ज्येष्ठः) तेरा सामर्थ्य श्रेष्ठ है । (इह रातिः अस्तु) यहां तेरा दान हमें प्राप्त हो । इसलिये (दक्षिणेन वसूनि आ भर) तू दाहिने हाथसे नाना प्रकारके धनोंको दे । तू (रेवतीनां सिन्धूनां पतिः असि) धन सम्पन्न नदियोंका स्वामी है ॥ १ ॥

[१७१७] हे इन्द्र ! (कुचरः गिरिष्ठाः मृगः न भीमः) कुत्सित विचरण करनेवाले और पर्वत निवासी सिंहके समान तू भयंकर है । वह तू (परस्याः परावतः आ जगन्थ) अति दूर प्रदेशसे– द्युलोकसे भी आ । (सृकं तिग्मं पविं संशाय) अत्यंत वेगवान् और तीक्ष्ण वज्रको उत्तर रीतिसे तीक्ष्ण करके (शत्रून् वि ताळ्हि मृधः वि नुदस्व) हमारे शत्रुओंको नष्ट कर और युद्धेच्छु हिंसकोंको दूर कर ॥ २ ॥

[१७१८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वामं क्षत्रं ओजं अभि अजायथाः) सुंदर संरक्षक और स्तुत्य तेजको–बलको लेकर उत्पन्न हुआ है । हे (वृषभ) काम पूरक ! (चर्षणीनां अमित्रयन्तं जनं अपानुदः) हम मनुष्योंके साथ शत्रुत्व करनेवाले लोगोंको तू दूर कर । (देवेभ्यः उरुं लोकं अकृणोः) तुमने देवोंके लिये विस्तीर्ण स्वर्गको निर्माण किया है ॥ ३ ॥

(१८१)

३ क्रमेण- प्रथो वासिष्ठः, सप्रथो भारद्वाजः, घर्मः सौर्यः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ।

प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नामाऽऽनुष्टुभस्य हविषो हविर्यत् ।
धातुर्द्युतानात् सवितुश्च विष्णो रथन्तरमा जभारा वसिष्ठः १
अविन्दन्ते अतिहितं यदासीद्यज्ञस्य धाम परमं गुहा यत् ।
धातुर्द्युतानात् सवितुश्च विष्णोर्भरद्वाजो बृहदा चक्रे अग्नेः २
तेऽविन्दन् मनसा दीध्याना यजुः ष्कन्नं प्रथमं देवयानम् ।
धातुर्द्युतानात् सवितुश्च विष्णोरा सूर्यादभरन् घर्ममेते ३ [३९](१७२१)

(१८२)

३ तपुर्मूर्धा बार्हस्पत्यः । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् ।

बृहस्पतिर्नयतु दुर्गहा तिरः पुनर्नेषदघशंसाय मन्म ।
क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं हन्नथा करद्यजमानाय शं योः १

---

[१८१]

[१७१९] (यस्य नाम प्रथः च सप्रथः च वसिष्ठः आनुष्टुभस्य हविषः) जिसका नाम प्रथ और सप्रथ थे, उनमें उसे वसिष्ठने अनुष्टुप् छन्दसे हविको अर्पण किया; (यत् हविः रथन्तरम्) वह हवि प्रदान करनेका उपयुक्त साधन रथंतर नामका साम है । वह (धातुः द्युतानात् सवितुः च विष्णोः आ जभार) वसिष्ठने धाता, तेजस्वी सविता और विष्णुसे प्राप्त किया था ॥ १ ॥

[१७२०] (ते यत् यज्ञस्य परमं धाम गुहा) उन धाता आदियोंने जो यज्ञका परम आधार और गुप्त था, और (यत् अतिहितं आसीत्, अविन्दन्) जो बृहत् साम नामका तेजस्वी, सबसे परे स्थित है, उसे पाया था । (धातुः द्युतानात् सवितुः च विष्णोः अग्नेः च बृहत् भरद्वाजः आ चक्रे) यह बृहत् साम धाता, तेजस्वी सविता, विष्णु और अग्निसे भरद्वाजने प्राप्त किया था ।। २ ।।

[१७२१] (ते दीध्यानाः प्रथमं देवयानं घर्मं) उन तेजस्वी धाता आदियोंने मुख्य-श्रेष्ठ, देवोंके हवि प्राप्त करने योग्य, साधन-घर्म- (यजुः स्कन्नं मनसा अविन्दन्) यजुर्वेदीय मन्त्र-परम ज्ञानको मनसे प्राप्त किया था । (धातुः द्योतमानात् सवितुः विष्णोः सूर्यात् च एते आ अभरन्) इस प्रकार उस घर्मको धाता, तेजस्वी सविता, विष्णु और सूर्यसे वे प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

[१८२]

[१७२२] (दुर्गहा बृहस्पतिः तिरः नयतु) दुःखों-संकटोंको दूर करनेवाले बृहस्पति पापोंको नष्ट करे । (पुनः अघशंसाय मन्म नेषत्) और वह हमसे दुष्टता करनेवाले- हम पर पापका संदेह लेनेवाले मनुष्यको दूर करनेके लिये तेजस्वी शस्त्रका उपयोग करे । (अशस्ति क्षिपत्) वह अमंगलको नष्ट करे । वह (दुर्मतिं अप हन्) दुष्ट बुद्धिका नाश करे । (अथ यजमानाय शं योः करत्) अनन्तर वह यजमानके रोगका निवारण करे और उसके भयका नाश करे ॥ १ ॥

नराशंसो नोऽवतु प्रयाजे शं नो अस्त्वनुयाजो हवेषु ।
क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं हन्नथा करद्यजमानाय शं योः २
तपुर्मूर्धा तपतु रक्षसो ये ब्रह्मद्विषः शरवे हन्तवा उ ।
क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं हन्नथा करद्यजमानाय शं योः ३ [४०](१७२४)

(१८३)

३ प्रजावान् प्राजापत्यः । १ यजमानः, २ यजमानपत्नी, ३ होत्राशिषः । त्रिष्टुप् ।

अपश्यं त्वा मनसा चेकितानं तपसो जातं तपसो विभूतम् ।
इह प्रजामिह रयिं रराणः प्र जायस्व प्रजया पुत्रकाम १
अपश्यं त्वा मनसा दीध्यानां स्वायां तनू ऋत्व्ये नाधमानाम् ।
उप मामुच्चा युवतिर्बभूयाः प्र जायस्व प्रजया पुत्रकामे २
अहं गर्भमदधामोषधीष्वहं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः ।
अहं प्रजा अजनयं पृथिव्यामहं जनिभ्यो अपरीषु पुत्रान् ३ [४१](१७२७)

[१७२३] (प्रयाजे नराशंसः नः अवतु) प्रयाज नामक यज्ञमें नराशंस अग्नि हमारी रक्षा करे। (हवेषु अनुयाजः नः शं अस्तु) स्तोत्रोंसे स्तुति करते समयमें अनुयाज अग्नि हमें सुख-शांति प्रदान करे। वह (अशस्तिं क्षिपत् दुर्मतिं अप हन्) बुराईको दूर करे, दुष्ट बुद्धिका नाश करे। (अथ यजमानाय शं योः करत्) और यजमानको शांति दे और उसके भयका निवारण करे ॥ २ ॥

[१७२४] (तपुः मूर्धा ये ब्रह्मद्विषः रक्षसः तपतु) तप्त सिरवाला बृहस्पति जो ब्रह्मद्वेष्टा दुष्ट राक्षस हैं उनको पीडित करे। और वह (शरवे हन्तवै उ) हिंसक शत्रुओंका भी नाश करनेके लिये उन्हें त्रस्त करे। वह (अशस्तिं क्षिपत् दुर्मतिं अप हन्) अमंगलको दूर करे और दुष्ट बुद्धिका नाश करे। (अथ यजमानाय शं योः करत्) और यजमानको सुख-शांति दे और उसके भयका निवारण करे ॥ ३ ॥

[१८३]

[१७२५] हे यजमान ! (त्वा मनसा चेकितानं तपसः जातं) तुझे बुद्धिसे कर्मोंके ज्ञानी, तपसे-सुकृतसे उत्पन्न, और (तपसः विभूतं अपश्यम्) तपसे सर्वत्र विख्यात है, यह जाना है। हे (पुत्रकाम) पुत्रकी कामना करनेवाले ! तू (इह प्रजां इह रयिं रराणः) इस लोकमें पुत्रादि और धनको पाकर प्रसन्न होओ। (प्रजया प्र जायस्व) उत्तम सन्तान उत्पन्न कर ॥ १ ॥

[१७२६] हे पत्नी ! (दीध्यानां स्वायां तनू ऋत्व्ये) सुंदर रूपवाली तू अपने शरीरमें ऋतुकालमें -यथा समय गर्भधारणरूप कर्मके लिये (नाधमानां त्वा मनसा अपश्यम्) पतिके संबंधकी इच्छा करती हुई तुझे मनसे मैंने देखा है। हे (पुत्रकामे) पुत्रकी कामना करनेवाली ! तू (मां उप उच्चा युवतिः बभूयाः) मेरे समीप आकर यौवनसे युक्त तरुणी हो जा। (प्रजया प्र जायस्व) प्रजा उत्पन्न कर माता बन ॥ २ ॥

[१७२७] (अहं ओषधीषु गर्भं अदधाम्) मैं औषधियोंमें गर्भका स्थापन करता हूं। (अहं विश्वेषु भुवनेषु अन्तः) मैं सारे भुवनोंके अन्दर हूं। (अहं पृथिव्यां प्रजाः अजनयं) मैं पृथ्वीके ऊपर प्रजाओंको पैदा करता हूं। (अहं जनिभ्यः अपरीषु पुत्रान्) मैं स्त्रियोंसे तथा दूसरी स्त्रियोंमें भी पुत्रोंको पैदा करता हूं ॥ ३ ॥

(१८४)

३ त्वष्टा गर्भकर्ता, विष्णुर्वा प्राजापत्यः । १ विष्णु-त्वष्टृ-प्रजापति-धातारः, २ सिनीवाली-सरस्वत्यश्विनः, ३ अश्विनौ । अनुष्टुप् ।

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आ सिंञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते　　१
गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं ते अश्विनौ देवावा धत्तां पुष्करस्रजा　　२
हिरण्ययी अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना ।
तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे　　३ [४२](१७३०)

(१८५)

३ सत्यधृतिर्वारुणिः । आदित्यः (स्वस्त्ययनम्) । गायत्री ।

महिं त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः । दुराधर्षं वरुणस्य　　१
नहि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेषु । ईशे रिपुरघशंसः　　२
यस्मै पुत्रासो अदितेः प्र जीवसे मर्त्याय । ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम्　　३ [४३](१७३३)

[१८४]

[१७२८] (विष्णुः योनिं कल्पयतु) व्यापक देव विष्णु गर्भाधान स्थान उत्तम समर्थ करे। (त्वष्टा रूपाणि पिंशतु) त्वष्टा नाना अवयव बनावे। (प्रजापतिः आ सिञ्चतु) प्रजापति वीर्य सेचनमें सहायक हो । हे स्त्री ! (धाता ते गर्भं दधातु) धाता तेरे गर्भका धारण करे ॥ १ ॥

[१७२९] हे (सिनीवालि) सिनीवाली देवि ! (गर्भं धेहि) तू गर्भको धारण कर -गर्भका संरक्षण कर। हे (सरस्वति) सरस्वति ! तू (गर्भं धेहि) गर्भका संरक्षण कर। हे स्त्री ! (पुष्करस्रजौ अश्विनौ देवौ ते गर्भं आ धत्ताम्) कमल माला धारण करनेवाले अश्वि देव, तेरे गर्भका धारण करे ॥ २ ॥

[१७३०] (हिरण्ययी अरणी यं अश्विना निर्मन्थतः) सुवर्णमय अरणियोंका जिस गर्भस्थ सन्तानके रूप बालक अग्निके लिये अश्वि देव मंथन करते हैं, (ते तं गर्भं दशमे मासि सूतवे हवामहे) तेरे उस गर्भस्थ संतानको हम दसवें मासमें प्रसव होनेके लिये बुलाते हैं ॥ ३ ॥

[१८५]

[१७३१] (मित्रस्य अर्यम्णः वरुणस्य त्रीणाम्) मित्र, अर्यमा और वरुण इन तीनोंका (द्युक्षं दुराधर्षं महि अवः अस्तु) तेजस्वी; प्रबल और महान् रक्षण सहाय्य हमें प्राप्त हो ॥ १ ॥

[१७३२] (तेषां अमा चन अघशंसः रिपुः नहि ईशे) उनके गृहोंमें भी अनर्थ करनेकी इच्छावाला शत्रु कुछ बिगाड नहीं सकता। और (अध्वसु वारणेषु न) उनके मार्गोंमें और विश्राम स्थानोंमें भी उनकी कृपादृष्टिसे शत्रु कुछ नहीं कर सकता ॥ २ ॥

[१७३३] (अदितेः पुत्रासः यस्मै मर्त्याय अजस्रम) अदितीके ये तीनों पुत्र [मित्र, अर्यमा और वरुण]- जिस मनुष्यको अविनाशी (ज्योतिः जीवसे प्र यच्छन्ति) तेज जीवन रक्षाके लिये प्रदान करते हैं, उसका भी दुष्ट शत्रु कुछ बिगाड नहीं कर सकते ॥ ३ ॥

(१८६)

३ वातायन उलः । वायुः । गायत्री ।

वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे । प्र ण आयूंषि तारिषत् १
उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा । स नो जीवातवे कृधि २
यददो वात ते गृहे ऽमृतस्य निधिर्हितः । ततो नो देहि जीवसे ३ [४४](१७३६)

(१८७)

५ आग्नेयो वत्सः । अग्निः । गायत्री ।

प्राग्नये वाचमीरय वृषभाय क्षितीनाम् । स नः पर्षदति द्विषः १
यः परस्याः परावतस्तिरो धन्वातिरोचते । स नः पर्षदति द्विषः २
यो रक्षांसि निजूर्वत्यग्निस्तिग्मेन शोचिषा । स नः पर्षदति द्विषः ३
यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति । स नः पर्षदति द्विषः ४
यो अस्य पारे रजसः शुक्रो अग्निरजायत । स नः पर्षदति द्विषः ५ [४५](१७४१)

---

[१८६]

[१७३४] (वातः नः हृदे भेषजं आ वातु) सर्व व्यापक वायु हमारे हृदयके लिये औषधके समान होकर आवे । (शंभु मयोभु नः आयूंषि प्र तारिषत्) वह कल्याणकर और सुखकारक होकर, हमें दीर्घ जीवन प्रदान करे ॥१॥

[१७३५] हे (वात) वायु ! (उत नः पिता असि) और तू हमारा पिता है। (उत भ्राता उत नः सखा) और तू भाई और तू हमारा मित्र भी है। (सः नः जीवातवे कृधि) वह तू हमारे जीवनके लिये कृपा कर ॥२॥

[१७३६] हे (वात) वायु ! (ते गृहे यत् अदः अमृतस्य निधिः हितः) तेरे गहमें जो यह अमृतका निधि स्थापित है, (ततः नः जीवसे देहि) उसमेंसे हमारे जीवनके लिये दे ॥ ३ ॥

[१८७]

[१७३७] हे स्तोताओ ! (क्षितीनां वृषभाय अग्नये वाचं प्र ईरय) मनुष्योंकी कामनाओंको सिद्ध करनेवाले अग्निकी स्तुति करो। (सः नः द्विषः अति पर्षत्) वह हमें शत्रुओंसे पार करे ॥ १ ॥

[१७३८] (यः परस्याः परावतः तिरः धन्व अतिरोचते) जो अग्नि अतिशय दूरस्थ स्थानसे अन्तरिक्षवत् सब पार कर अत्यन्त प्रकाशित होता है। (सः नः द्विषः अति पर्षत्) वह अग्नि हमको सब शत्रुओंसे पार करे ॥ २ ॥

[१७३९] (वृषा यः) जलकी वर्षा करनेवाला जो अग्नि (शुक्रेण शोचिषा रक्षांसि निजूर्वति) अपनी अतिशुद्ध कान्तियुक्त ज्वालासे यज्ञोंके शत्रु राक्षसोंका नाश करता है; (स नः द्विषः अति पर्षत्) वह अग्नि हमको द्वेष करनेवाले शत्रुओंसे पार करे ॥ ३ ॥

[१७४०] (यः विश्वा भुवना अभि विपश्यति) जो अग्नि समस्त लोकोंको अपने सम्मुख देखता है, (च सं पश्यति) और अच्छी प्रकार देखता है, (सः नः द्विषः अति पर्षत्) वह अग्नि हमें अप्रीति युक्त शत्रुओंसे पार करे ॥ ४ ॥

[१७४१] (यः अस्य रजसः पारे) जो इस अन्तरिक्षसे पार ऊपरी लोकमें (शुक्र अग्नि अजायत) कान्ति युक्त अग्नि उत्पन्न हुआ है, (स नः द्विषः अति पर्षय) वह हमें सब कष्टोंसे पार करे ॥ ५ ॥

(१८८)

३ आग्नेयः श्येनः । जातवेदा अग्निः । गायत्री ।

प्र नूनं जातवेदस—मश्वं हिनोत वाजिनम् । इदं नो बर्हिरासदे १
अस्य प्र जातवेदसो विप्रवीरस्य मीळ्हुषः । महीमियर्मि सुष्टुतिम् २
या रुचो जातवेदसो देवत्रा हव्यवाहनीः । ताभिर्नो यज्ञमिन्वतु ३ [४६](१७४४)

(१८९)

३ सार्पराज्ञी । आत्मा, सूर्यो वा । गायत्री ।

आयं गौः पृश्निरक्रमी—दसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः १
अन्तश्चरति रोचना ऽस्य प्राणादपानती । व्यख्यन्महिषो दिवम् २
त्रिंशद्धाम वि राजति वाक् पतङ्गाय धीयते । प्रति वस्तोरह द्युभिः ३ [४७](१७४७)

(१९०)

३ माधुच्छन्दसोऽघमर्षणः । भाववृत्तम् । अनुष्टुप् ।

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत । ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः १

[१८८]

[१७४२] हे यजमानो ! (जातवेदसं अश्वं वाजिनं नूनं प्र हिनोत) सर्वज्ञानी, सर्वव्यापी और अन्नवान् अग्निको प्रज्वलित करो– स्तुतियोंसे प्रेरित करो । (नः इदं बर्हिः आसदे) जिससे हमारे इस बिछाये हुए आसनपर वह विराजित हो ॥ १ ॥

[१७४३] (जातवेदसः विप्रवीरस्य मीळ्हुषः) सर्वज्ञ, सुपुत्र और बलिष्ठ (अस्य महीं सुष्टुतिं प्र इयर्मि) अग्निकी महान् उत्कृष्ट स्तुति मैं करता हूं ॥ २ ॥

[१७४४] (जातवेदसः याः रुचः देवत्रा हव्यवाहिनीः) जातवेदा अग्निकी जो काली–करालि आदि सात जिह्वाएं– शिखाएं हैं, जिनके द्वारा वह देवोंके पास हवियोंको ले जाता है, (ताभिः नः यज्ञं इन्वतु) उनके साथ वह हमारे यज्ञमें पधारे ॥ ३ ॥

[१८९]

[१७४५] (अयं गौः पृश्निः आ अक्रमीत्) यह सदा गमनशील और तेजस्वी सूर्य उदयाचलको प्राप्त हुआ है । (पुरः मातरं असदत्) और पूर्व दिशामें अपनी माता पृथिवीको प्राप्त करता है । (पितरं च प्रयन् स्वः) अनन्तर अपने पिता द्युलोकको ओर शीघ्रतासे जाते समय अत्यंत शोभायमान् होता है ॥ १ ॥

[१७४६] (अस्य रोचना अन्तः चरति) सूर्यकी सुंदर कान्ति शरीरमें मुख्यतः प्राणरूपसे विचरण करती है । (प्राणात् अपानती) वह प्राण ग्रहण करती और अपानका कर्म करती है । (महिषः दिवम् व्यख्यत्) इसीसे महान् सूर्य अन्तरिक्षको प्रकाशित करता है ॥ २ ॥

[१७४७] (त्रिंशद् धाम वस्तोः द्युभिः वि राजति) सूर्यके तीस स्थान–दिन उसकी कान्तियोंसे–तेजसे विशेष रूपसे शोभित होते हैं । (पतङ्गाय वाक् धीयते) गतिशील सूर्यके लिये वाणीसे स्तुति की जाती है ॥ ३ ॥

[१९०]

[१७४८] उस परमात्माके (अभीद्धात् तपसः) महान् दीप्तिमान् तपसे (ऋतं च सत्यं च अधि अजायत) ऋतु और सत्य पैदा हुए । (ततः रात्री अजायत) इसके बाद प्रलय रूपी रात्री हुई (ततः अर्णवः समुद्रः) तब जलसे भरा समुद्र पैदा हुआ ॥ १ ॥

×

समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत । अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी २
सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् । दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ३ [४८] (१७५०)

(१९१)

४ संवनन आङ्गिरसः । १ अग्निः, २-४ संज्ञानम् । अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप् ।

संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर १
सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते २
समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ३
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ४ [४९] (१७५४)

॥ इति दशमं मण्डलं समाप्तम् ॥

[१७४९] (अर्णवात् समुद्रात् अधि) जलसे भरे समुद्रके बाद (सवंत्सरः अजायत) संवत्सर उत्पन्न हुआ, फिर (मिषतः विश्वस्य वशी) निमेषोन्मेष करनेवाले जगत्को वशमें करनेवाले उस परब्रह्मने (अहोरात्राणि) दिन और रात (विदधत्) बनाये ॥ २ ॥

[१७५०] (धाता) सबको धारण करनेवाले परमात्माने (सूर्याचन्द्रमसौ) सूर्य, चन्द्रमा (दिवं च पृथिवीं) द्युलोक और पृथिवीलोक (अन्तरिक्षं अथः स्वः) अन्तरिक्ष और सुखलोकको (यथा पूर्वं) पहलेके समानही (अकल्पयत्) बनाया ॥ ३ ॥

[१९१]

[१७५१ हे (वृषन् अग्ने) समस्त सुखोंकी वर्षा करने हारे अग्नि तू (अर्यः विश्वानि संसम् इत् युवसे) सबका स्वामी होकर समस्त तत्वोंको मिलाता है । तू (इळः पदे समिध्यसे) भूमिके यज्ञवेदी पर प्रकाशित होता है । (सः नः वसूनि आ भर) वह प्रसिद्ध तू हमें नाना ऐश्वर्योंको प्राप्त करा ॥ १ ॥

[१७५२] हे स्तोताओ ! (सं गच्छध्वं सं वदध्वम्) तुम परस्पर एक विचारसे मिलकर रहो; परस्पर मिलकर प्रेमसे वार्तालाप करो । (वः मनांसि सं जानताम्) तुम लोगोंका मन समान होकर ज्ञान प्राप्त करें । (यथा पूर्वे देवाः संजानानाः भागं उपासते) जिस प्रकार पूर्वके लोग एक मत होकर ज्ञान सम्पादन करते हुए सेवनीय ईश्वरकी उत्तम प्रकारसे उपासना करते हैं, उसी प्रकार तुम भी एकमत होकर अपना कार्य करो- धनादि ग्रहण करो॥ २ ॥

[१७५३] (एषां मन्त्रः समानः समितिः समानी) हम सबकी प्रार्थना एक समान हो; परस्पर मीलन भी भेद भावसे रहित एकसा हो- विचार प्रदानका स्थान एकही हो । (मनः समानं एषा चित्तं सह) अपना मन-मनन करनेका साधन अंतःकरण और चित्त-विचार जन्य ज्ञान-एकविध हों । (वः समानं मन्त्रं अभि मन्त्रये) मैं तुम्हें एकही उत्कृष्ट रहस्यपूर्ण वचन कहता हूं और (वः समानेन बिषा जुहोमि) तुम्हें एक समान हवि प्रदान करके सुसंस्कृत करता हूं ॥ ३ ॥

[१७५४] (वः आकूतिः समानी) तुम्हारा संकल्प एक समान रहे; और (वः हृदयानि समाना) तुम्हारे हृदय एक विध- एक समान हों । (वः मनः समानं अस्तु) तुम्हारे मन एक समान हों, (यथा वः सुसह असति) जिससे तुम्हारा परस्पर कार्य पूर्णरूपसे संगठित हो ॥ ४ ॥

॥ दसवां मण्डल समाप्त ॥

ऋग्वेद का सुबोध भाष्य

दशम मण्डल

मन्त्रवर्णानुक्रमसूची

अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तु ४३
अक्रन्ददग्निस्तनयन् ९१
अक्षण्वंतः कर्णवन्तः सखायो १४७
अक्षानहो नह्यतनोत १०६
अक्षास इदं कुशिनः ६८
अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां ३१२
अक्षेत्रवित्क्षेत्रविदं ६५
अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् ६९
अगस्त्यस्य नद्भ्यः ११६
अग्नये ब्रह्म ऋभवः १६३
अग्नि विश ईळते १६३
अग्नि हिन्वंतु नो धियः ३०६
अग्निः सप्ति वाजंभरं १६२
अग्निमीळे भुजां यविष्ठं ३९
अग्निमुक्थैर्ऋषयः १६३
अग्नि मन्ये पितरमग्निमापि १३
अग्निरत्रिं भरद्वाजं ३००
अग्निरिंद्रो वरुणो मित्र: १३१
अग्निरिव मन्यो त्विषितः १६९
अग्निर्जातो अथर्वणः ४१
अग्निर्दाद् द्रविणं १६३
अग्निर्देवो देवानामभवत् ३००
अग्निर्न ये भ्राजसा १५९
अग्निर्ह त्यं जरतः कर्णम् १६२
अग्निर्ह नाम धायि २५२
अग्निष्वात्ताः पितरः २९
अग्नीषोमा वृषणा वाजं १३५
अग्ने अच्छा वदेह नः २९०
अग्नेः पूर्वे भ्रातरो १०३
अग्ने केतुर्विशामसि ३०६
अग्ने तव श्रवो वयः २८९
अग्ने त्वचं यातुधानस्य १८३
अग्ने नक्षत्रमजरं ३०६
अग्ने बाधस्व वि मृधो २१८
अग्ने मन्युं प्रतिनुदन् २७३
अग्नेरप्नसः समिदस्तु १६२
अग्नेर्गायत्र्यभवत् २७७
अग्नेर्वर्म परि गोभिः ३१
अग्ने शुक्रेण शोचिषोरु ४२
अग्ने हंसि न्य१त्रिणं २५७
अग्रे बृहन्नुषसामूर्ध्वो १
अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि १७८
अंगादंगाल्लोम्नोलोम्नः ३१२
अंगिरसो नः पितरः २६
अंगिरोभिरा गहि २६
अच्छा म इन्द्रं मतयः ८६
अजैष्माद्यासनाम च ३१३
अजो भागस्तपसा तं ३१
अत उ त्वा पितुभृतः २
अति द्रव सारमेयौ २६
अति विद्याः परिष्ठाः २१४
अत्रेदु मे मंससे सत्यमुक्तं ५२
अत्रैव वोपि नह्यामि ३१५
अदाभ्येन शोचिषा २५८
अदितिर्द्यावापृथिवी ऋतं १३४
अदितिर्ह्यजनिष्ट १४९
अदेवाद्देवः प्रचता २६७
अदो यद्दारु प्लवते ३०५
अद्धीदिन्द्र प्रस्थितेमा २५५
अद्येदु प्राणीदममन्निमा ६५
अद्रिणा ते मन्दिनः ५५
अद्वेषो अद्य बर्हिषः ७१
अध ग्मंतोशना पृच्छतेवां ४३
अध त्यं द्रप्सं विभ्वं विचक्षणं २१
अध त्वमिन्द्र विद्धि १२२
अध यद्राजाना गविष्टौ १२२
अधा गाव उपमात १२१
अधा चिन्नु यद्दिधिषामहे २७९
अधा न्वस्य जेन्यस्य १२२
अधायि धीतिरससृग्रं ६२
अधासु मन्द्रो अरतिः १२१
अधा ह्यग्ने मह्ना निषद्या १३

अधि पुत्रोपमश्रवः	६६
अधि यस्तस्थौ केशवन्ता	२३२
अधीन्वत्र सप्तति च सप्त च	२०४
अध्वर्यवोऽप इता समुद्रं	५९
अध्वर्यवो हविष्मन्तो हि	५९
अध्वर्यु वा मधुपाणि	८४
अनमीवा उषस आ	७०
अनाधृष्टानि धृषितः	२८७
अनुस्पष्टो भवत्येषः	३०९
अनृक्षरा ऋजवः	१७४
अन्तरिक्षप्रां रजसो	२१०
अन्तरिक्षेण पतति	२८५
अन्तरिक्षे पथिभिः	३१७
अन्तर्यच्छ जिघांसतः	२२६
अन्तश्चरति रोचना	३३१
अन्यमू षु त्वं यम्यन्यः	२०
अन्या वो अन्यामवतु	२१५
अन्ये जायां परिमृशंत्यस्य	६७
अन्वह् मासा अन्विद्वनानि	१९३
अप ज्योतिषा तमो	१४०
अप प्राच इंद्र विश्वान्	२७७
अप योरिंद्रः पापजे	२३२
अपश्यं गोपामनिपद्यमानं	३२४
अपश्यं ग्रामं वहमानं	५३
अपश्यं त्वा मनसा चेकितानं	३२८
अपश्यं त्वा मनसादीध्यानां	३२८
अपश्यमस्य महतः	१६१
अप हत रक्षसो भंगुरावतः	१५६
अपाः पूर्वेषां हरिवः	२१३
अपागूहन्नमृतां	३३
अपमिदं न्ययनं	२९२
अपामीवां सविता	२२२
अपामीवामप विश्वां	१२७
अपां पेरुं जीवधन्यं	७३
अपेत वीत वि च सर्पतातः	२६
अपेंद्र द्विषतो मनः	३०२
अपेहि मनसस्पते	३१३
अपो महीरभिशस्तेः	२३१
अप्सरसां गंधर्वाणां	२८५
अप्सरा जारमुपशिष्मियाणा	२६६
अप्सु घूतस्य हरिवः	२३०
अप्सु मे सोमो अब्रवीत्	१७
अबुध्रमु त्य इन्द्रवंतः	६९
अभागः सन्नप परेतः	१६७
अभिख्या नो मघवन्	२४७
अभि गोत्राणि सहसा	२२९
अभि त्वा देवः सविताभिः	३२२
अभि त्वा सिंधो शिशुमि त्	१५४
अभि द्यां महिना भुवं	२५९
अभि प्रेहि दक्षिणतः	१६८
अभिभूरहमागमं	३१५
अभिवृत्य सपत्नान्	३२२
अभि श्यावं न कृशनेभिः	१४१
अमीद्दमेकमेकः	९८
अभीवर्तेन हविषा	३२२
अमी ष्व१र्यः पौंस्यैः	११४
अभीहि मन्यो तवसः	१६७
अमूर्वोक्षीर्व्यु१ आयुः	५१
अभ्रप्रुषो न वाचा	१५७
अमाजुरश्चिद्भवथो युवं	७८
अमीषां चित्तं प्रति	२३०
अयं यो वज्रः पुरुधा	५४
अयं यो होता किरु स	१०४
अयं विप्राय दाशुषे	४८
अयं वेनश्चोदयत्	२६५
अयं स यस्य शर्मन्	१२
अयं स्तुतो राजा वंदि	१२०
अयं हि ते अमर्त्यः	२९४
अयं घ स तुरो मदः	४८
अयं ते अस्म्युपमेह्यर्वाङ्	१६७
अयं दशस्यन्नर्येभिः	२२०
अयं नाभा वदति वल्गु वः	१२३
अयं निधिः सरमे	२३९
अयमग्निरुरुष्यति	३२४
अयमग्निर्वध्र्यश्वस्य	१४३
अयमग्ने जरिता त्वे	२९१
अयमस्मासु काव्यः	२९४
अयमिन्द्र वृषाकपिः	१८२
अयमु ष्य प्र देवयुः	३२४
अयमेमि विचाकशत्	१८२
अयं मातायं पिता	११६
अयं मे हस्तो भगवान्	११७
अयुद्धसेनो विभ्वा	२८७
अयो दंष्ट्रो अर्चिषा	१८३
अरं कामाय हरयः	२१२
अरण्यान्यरण्यानि	२९६
अराधि होता निषदा	१०५
अरायि काणे विकटे	३०५
अरिष्टः स मर्तो विश्व	१२७
अर्चामि वां वर्धायापो	२३
अर्यमणं बृहस्पतिं	२९१
अर्यो वा गिरो अभ्यर्च	२९८
अर्यो विशां गातुरेति	३९
अव त्या बृहतीरिषो	२८२
अव द्रके अव त्रिका	११५
अव नो वृजिना शिशीहि	२३३
अवपतन्तीरवदन्	२१५
अव यत्त्वं शतक्रतव	२८२
अवसृत पुनरग्ने	३१
अव स्म दुर्हणायतो	२८२
अव स्वेदा इवाभितो	२८२
अवा नु कं ज्यायान्	१०२
अवासृजः प्रस्वः श्वंचयः	२८७
अविन्दं ते अतिहितं	३२७
अवीरामिव मामयं	१८०
अवो द्वाभ्यां पर एकया	१३७
अश्नापिनद्धं मधु	१४०
अश्मन्वती रीयते	१०६
अश्नीरा तनूर्भवति	१७६
अश्वत्थे वो निषदनं	२१४
अश्वावियायेति यद्वदन्ति	१५१
अश्वायन्तो गव्यन्तो	३०९
अश्वावतीं सोमावतीं	२१४
अश्वावन्तं रथिनं वीरा	९६
अश्वासो न ये ज्येष्ठास	१६०
अष्टौ पुत्रासो अदितेः	१४९
असच्च सच्च परमे व्योमन्	११

असत्सु मे जरितः	५०
असपत्नः सपत्नहा	३२२
असपत्न सपत्नघ्नो	३०८
असमाति नितोशनं	११६
असावन्यो असुर	२७९
असावि सोमः पुरुहूत	२३०
असुनीते पुनरस्मासु	११५
असुनीते मनो अस्मासु	११४
असेन्या वः पणयो	२३९
अस्ताव्यग्निर्नरां सुशेवो	९३
अस्तेव सु प्रतरं	८४
अस्मभ्यं सु त्वमिन्द्र	२८१
अस्माकं देवा उभयाय	७६
अस्माकमिन्द्रः समृतेषु	२२९
अस्माकमूर्जा रथं	५०
अस्मिन्न इन्द्र पृत्सुतौ	७७
अस्मिन्त्समुद्रे अध्युत्तर	२१७
अस्मिन्त्स्वे३तच्छकपूत	२७९
अस्मे ता त इन्द्र सन्तु	४४
अस्मे धेहि द्युमतीं	२१७
अस्य त्रितः क्रतुना	१६
अस्य पिब क्षुमतः	२५४
अस्य प्र जातवेदसो	३३१
अस्य यामासो बृहतो	७
अस्य शुष्मासो ददृशानपवे	८
अस्य स्तोमेभिरौशिजः	२२१
अस्याजरासो दमां	९४
अस्येदेषा सुमतिः पप्रथाना	६२
अहं रन्धयं मृगयं	१००
अहं राष्ट्री संगमनी	२६९
अहं रुद्राय धनुरा	२६९
अहं रुद्रेभिर्वसुभिः	२६८
अहं सप्त स्रवतो	१००
अहं सप्तहा नहुषो	१००
अहं स यो नववास्त्वं	१००
अहं सुवे पितरमस्य	२६९
अहं सूर्यस्य परि यामि	१००
अहं सोममाहनसं	२६९
अहं होता न्यसीदं	१०४
सहं केतुरहं मूर्धा	३०८
अहं गर्भमदधां	३२८
अहं गुङ्गुभ्यो अतिथिग्वं	९८
अहं तदासु धारयं	१००
अहं तष्टेव वन्धुरं	२५९
अहं दां गृणते पूर्व्यं	९९
अहकरकं कवये	९९
अहमस्मि महामहो	२५९
अहमस्मि सपत्नहेन्द्र	३१५
अहमस्मि सहमाना	२९५
अहमिन्द्रो न परा जिग्य	९७
अहमिन्द्रो रोधो वक्षो	९७
अहमेतं गव्ययमश्व्यं	९७
अहमेताम्छाश्वसतो	९८
अहमेव वात इव	२७०
अहमेत्र स्वयमिदं	२६९
अहं पितेव वेतसूँ	९९
अहं भुवं वसुनः	९७
अहस्ता यदपदी	४४
अहाव्यग्ने हविरास्ये	१९९
आग्नि न स्ववृक्तिभिः	४०
आग्ने वह वरुणं	१४५
आग्ने स्थूरं रयिं भर	३०६
आग्मन्नाप उशतीर्बर्हिः	६१
आ घा ता गच्छानुत्तरा	१९
आच्या जानु दक्षिणतो	२९
आच्छद्विधानैर्गुपितः	१७२
आ जनं त्वेषसंदृशं	११६
आजुह्वान ईड्यो वंद्यः	२४२
आञ्जनगन्धि सुरभिं	२९६
आ त एतु मनः पुनः	११२
आ तत्त इन्द्रायवः	१५३
आ तं भज सौश्रवेषु	९३
आ तू षिञ्च हरिमिन्द्रो	२२५
आ तेन यातं मनसो	८०
आ ते रथस्य पूषन्	५०
आत्मा देवानां भुवनस्य	३२७
आ त्वागमं शन्तातिभिः	२८६
आ त्वा हर्यंतं प्रयुजो	२१३
आ त्वाहार्षमंतरेधि	३२१
आदित्यानां वसूनां	९९
आदित्यासो अति स्रिधो	२७०
आदित्यैरिंद्रः सगणो	३०७
आदिन्द्रः सत्रा तविषीर्	२४८
आ देवानामग्रयावेह	१४४
आ देवानामपि पन्थां	४
आ देवो दूतो अजिरः	२१७
आ द्विबर्हा अमिनो	२५४
आधीषमाणायाः पतिः	४९
आ न इन्द्र पृक्षसे	४३
आ नः प्रजां जनयतु	१७८
आ नि वर्तन वर्तय	३९
आ निवर्त निवर्तय पुनः	३९
आ नो देवः सविता साविशद्	२२१
आ नो देवानामुप वेतु	६१
आ नो द्रप्सा मधुमन्तो	२१७
आ नो बर्हिः सधमादे	७१
आ नो यज्ञं भारती	२४३
आंत्रेभ्यस्ते	३१२
आपइद्वा उ भेषजी	२८६
आपान्तमन्युः	१९१
आपी वो अस्मे पितरेव	२३४
आपो अद्यान्वचारिषं	१७
आपो अस्मान्मातरः	३४
आपो न सिंधुमभि यत्	८७
आपो रेवतीः क्षयथा	६१
आपो ह यद्बृहतीर्विश्वमायन्	२६३
आपो हि ष्ठा मयोभुवः	१६
आपः पृणीत भेषजं	१७
आप्रुषायन्मधुन	१३९
आभूत्या सहजा वज्र	१७०
आ मध्वो अस्या असिचन्	५८
आयं गौः पृश्नीरक्रमीत्	३३१
आयने ते परायणे	२९२
आ यात्विंद्रः स्वपतिः	८८
आ याहि वनसा सह	३२०
आ याहि वस्व्या धिया	३२०
आयुर्विश्वायु. परि	३३

आ यो मूर्धानं पित्रोः १५
आरङ्गरेव मध्वेरयेथे २३५
आराच्छत्रुमप बाधस्व ८५
आरे अधा को न्वित्था २२७
आ रोदसी अपृणादोत १०९
आ रोदसी हर्यमाणो २१२
आ रोहत्यायुर्जरसं ३६
आर्ष्टिषेणो होत्रम् २१७
आ व ऋजस ऊर्जा १५६
आववृततीरध नु ६०
आ वां सुम्नैः शंयू २९३
आ वात वाहि भेषज २८६
आ वामगन्त्सुमतिर्वा ८३
आविरभून्महि माघोनं २३६
आ वो धियं यज्ञियां २२५
आ वो यक्ष्यमृतत्वं १०५
आशसनं विशसनं १७७
आशुः शिशानो वृषभो २२८
आसीनासो अरुणीनां २९
आ सुष्वयन्ती यजते २४३
आहं पितृन्त्सुविदत्रां २८
आहार्षं त्वाविदं त्वा ३१०
आहि द्यावापृथिवी अग्न ३
इति चिद्धि त्वा धना २६०
इति त्वाग्ने वृष्टिहव्यस्य २५३
इति त्वा देवा इम २१०
इति वा इति मे मनो २५८
इदं यमस्य सादनं २८४
इदं श्रेष्ठ ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं ३१९
इदं सु मे जरितः ५५
इदं स्वरिदमिदास २६८
इदमापः प्र वहत १७
इदं हविर्मघवन् २५४
इदं त एकं पर ऊ त ११०
इदं ते पात्रं सनवित्तं २४७
इममग्ने चमसं मा वि ३१
इदमकर्म नमो १४१
इदमित्था रौद्रं ११८
इदं पितृभ्यो नमो अस्तु २८
इनो राजन्नरतिः ६
इनो वाजानां पतिः ५०
इन्द्र आसां नेता २२९
इन्द्र उक्थेन शवसा २२२
इन्द्रं स्तवा नृतमं १९०
इन्द्रः किल श्रुत्या अस्य २४४
इन्द्र क्षत्रमभि वामं ३२६
इन्द्र क्षत्रासमातिषु ११६
इन्द्र दृह्य मघवन् २२१
इन्द्र पिब प्रतिकामं २४६
इंद्रप्रसूता वरुणप्रशिष्टा १३४
इन्द्रवायू बृहस्पति सुहवेह २९०
इन्द्रः सुमात्रा स्ववां अवोभिः २७८
इन्द्र सोममिमं पिब ४६
इंद्रस्य दूतीरिषिता २३८
इंद्रस्य नु सुकृतं दैव्यं २२२
इंद्रस्य वृष्णो वरुणस्य २२९
इंद्रस्यात्र तविषीभ्यः २४९
इंद्रस्येव रातिमा ३२५
इंद्राग्नी वृत्रहत्येषु १३१
इंद्राणीमासु नारिषु १८०
इंद्राय गिरो अनिशित १९१
इंद्रेण युजा निःसृजंत १२४
इंद्रे भुजं शशमानासः २००
इंद्रो अस्मे सुमना अस्तु २२२
इंद्रो दिव इंद्र ईशे १९२
इंद्रो दिवः प्रतिमानं २४५
इंद्रो मह्ना महतो अर्णवस्य व्रतां २४४
इंद्रो मह्ना महतो १३९
इंद्रो वलं रक्षितारं १३८
इंद्रो वसुभिः परि पातु १३४
इमं यज्ञमिदं वचो ३००
इमं यम प्रस्तरमा हि २५
इमं विधंतो अपां सधस्थे पशुं ९३
इमं जीवेभ्यः परिधिं ३६
इमं तं पश्य वषभस्य २२७
इमं त्रितो भूर्यविदत् ९४
इमं नो अग्न उप यज्ञमेहि २६७
इममंजस्पामुभये १९९
इमर्मिद्रो अदीधरत् ३२१
इमं बिभर्मि सुकृतं ते ९०
इमं मे गंगे १५४
इमा अग्ने मतयस्तुभ्यं १३
इमा अस्मै मतयो वाचो १९८
इमा गावः सरमे या २३९
इमां खनाम्योषधिं २९५
इमा नारीरविधवाः ३६
इमा नु कं भुवना ३०६
इमां त्वमिंद्र मीढ्वः १७८
इमां धियं सप्तशीर्ष्णीम् १३७
इमा ब्रह्म बृहद्दिवो २६१
इमा ब्रह्मेंद्र तुभ्यं शंसि २९८
इमां प्रत्नाय सुष्टुतिं १९८
इमां मे अग्ने समिधं जुषस्व १४३
इमे जीवा वि मृतैः ३६
इमे ये नार्वाङ् न परः १४७
इयं वामह्वे शृणुतं ७९
इयं विसृष्टिर्यत आ २७६
इयं सा भूया उषसामिव क्षाः ६२
इयं न उस्रा प्रथमासु ७०
इयमेषाममृतानां १५२
इयं मे नाभिरिह मे १२१
इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व २८९
इषं दुहन्त्सुदुघां २६४
इषुर्न श्रिय इषुधेः २०३
इष्कर्तारमध्वरस्य २९०
इष्कृताहावमवतं २२४
इष्कृतिर्नाम वो माता ३१४
इह प्रब्रूहि यतमः १८४
इह प्रियं प्रजया ते १७५
इह श्रुत इंद्रो अस्मे ४२
इहैव स्तं मा वि यौष्टं १७८
इहैवैधि माप च्योष्ठाः ३२१
ईखयंतीरपस्युव ३०३
ईजानमिद् यौर्गूर्ता वसुः २७९
ईशाना वार्याणां १७
ईशे यो विश्वस्या देववीतेः १२
उक्ष्णो हि मे पंच दश १८१

उग्रा इव प्रवहंतः समा यमुः	२०५
उच्चा दिवि दक्षिणावंतो	२३६
उच्छुष्मा ओषधीनां	२१४
उच्छ्वंचमाना पृथिवी	३७
उच्छ्वंचस्व पृथिवि	३७
उज्जायतां परशुः	८८
उत कण्वं नृषदः	६३
उत गाव इवादंति	२९६
उत त्या मे रौद्रावर्चिमन्ता	१२०
उत त्वः पश्यन् न	१४६
उत त्वं सख्ये स्थिरपीतं	१४७
उत दासा परिविषे	१२४
उत देवा अवहितं	२८५
उत नो देवावश्विना	२०१
उत नो नक्तमपां	२०२
उत नो रुद्रा चिन्मृळत	२०३
उत प्रधिमूवहन्नस्य	२२६
उत प्रहामतिदीव्या	८६
उत माता बृहद्दिवा	१२९
उत वा उ परि वृणक्षि	२९१
उत वात पितासि न	३३०
उत व्रतानि सोम ते	४७
उत स्म सद्य हर्यतस्य	२१२
उत स्य न उशिजामुर्विया	२०१
उतालब्धं स्पृणुहि	१८४
उत्तराहमुत्तरः	२९५
उत्तानपर्णे सुभगे	२९५
उत्तिष्ठाव पश्यते	३२५
उत्तिष्ठसि स्वाहुतो	२५७
उत्ते शुष्मा जिहतां	२९२
उत्ते स्तभ्नामि पृथिवीं	३७
उत्स्म वातो वहति	२२६
उदप्रुतो न वयो	१३९
उदसौ सूर्यो अगात्	३०८
उदीरतामवर उत	२८
उदीरय पितरा	२१
उदीर्ष्व नार्यभि	३६
उदीर्ष्वातः पतिवती	१७४
उदीर्ष्वातो विश्वावसो	१७४
उद्धर्षय मघवन्	२२९
उद्गो ह्वयसपिबज्जर्हृषाणः	२२६
उद् बुध्यध्वम्	२२३
उन्मदिता मौनेयेन	२८४
उन्मा पीता अयंसता	२५८
उप ते गा इवाकरं	२७२
उप तेऽधां सहमाना	२९५
उप ब्रह्माणि हरिवो	२३१
उप मा पेपिशत्तमः	२७२
उप मा मतिरस्थित	२५८
उप सर्प मातरं भूमि	३७
उपहूताः पितरः सोम्यासः	२८
उप ह्वये सुहवं मारुतं	७३
उपावसृज त्मन्या	२४३
उभा उ नूनं तदिदर्थयेथे	२३३
उभे धुरौ वह्निरा पिब्दमानः	२२५
उभे यदिंद्र रोदसी	२८२
उभोभयाविन्नुपधेहि	१८३
उरुव्यचा नो महिषः	२७४
उरूणसावसुतृपा	२७
उवे अम्ब सुलाभिके	१८०
उशंतस्त्वा नि धीमहि	३२
उशंति घा ते अमृतास	१८
उशिक्पावको अरतिः	९२
उष उषो हि वसो अग्रं	१५
उषसां न केतवो	१६०
उषा अप स्वसुस्तमः	३२०
उषासानक्ता बृहती	७२
उष्टारेव फर्वरेषु	२३४
ऊती शचीवस्तव	२३१
ऊदम्यां ते अष्टीवद्भ्यां	३१२
ऊर्जं गावो यवसे	२२३
ऊर्जो नपाज्जातवेदः	२८९
ऊर्जो नपात्सहसावन्	२५३
ऊर्ध्वा यत्ते त्रेतिनी भूत्	२३३
ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि	२६६
ऊर्ध्वो ग्रावा बृहदग्निः	१४४
ऊर्ध्वो ग्रावा वसवो	२२२
ऊरुस्ताभ्यामभिहितो	१७३
ऋचा कपोतं नुदत	३१४
ऋचां त्वः पोषमास्ते	१४८
ऋजीत्येनी रुशती	१५५
ऋतं शंसन्त ऋजु दीध्याना	१३७
ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्	३३१
ऋतस्य हि प्रसितिर्द्यौः	२००
ऋतस्य हि वर्तनयः	११
ऋतस्य हि सदसो	२४४
ऋतायिनी मायिनी	११
ऋतावानं महिषं	२९०
ऋध्याम स्तोमं सनुयाम	२३५
ऋभुर्ऋभुक्षा ऋभुर्विधतः	२०३
ऋषभं मा समानानां	३१५
ऋष्वस्त्वमिन्द्र शूर जातः	२९८
ऋष्वा ते पादा प्र यज्जिगासि	१५०
एकः समुद्रो धरुणः	१०
एकः सुपर्णः स समुद्रं	२५०
एकपाद्भूयो द्विपदो	२५६
एको बहूनामसि मन्यवीळि	१६९
एतं वां स्तोममश्विना	८१
एतं शंसमिन्द्रास्मयुष्ट्वं	२०३
एतं मे स्तोमं तना	२०४
एता त्या ते श्रुत्यानि	२८७
एतानि भद्रा कलश	६५
एतान्यग्ने नवतिं सहस्रा	२१८
एतान्यग्ने नवतिर्नव	२१८
एतावानस्य महिमा	१९४
एता विश्वा सवना तूतुमा	१०२
एते नरः स्वपसो	१५७
एते वदन्ति शतवत्	२०४
एते वदन्त्यविदन्ना	२०९
एते शमीभिः सुशमी	५७
एतो मे गावो प्रमरस्य	५४
एन्द्रवाहो नृपतिं	८९
एन्द्रो बर्हिः सीदतु	७३
एमा अग्मन्नेवतीः	६१
एवा कविस्तुवीरवां	१३०
एवाग्निर्मर्तैः सह	२५३
एवा च त्वं सरम	२४०

एवा तदिन्द्रं इन्दुना २९४
एवा ते अग्ने विमदो ४०
एवा ते वयमिन्द्र भुंजतीनां १९३
एवा देवाँ इन्द्रो विव्ये १०१
एवा पतिं द्रोणसाचं ८९
एवा प्लेतः सूनुरवीवृधद्वः १२८,१३१
एवा महान्बृहद्दिवो २६१
एवा महो असुर २२१
एवा हि मां तवसं वर्धयन्ति ६५
एवा हि मां तवसं जज्ञुः ५६
एवेद्यूने युवतयो नमन्त ६०
एवैवापागपरे ९०
एह गमन्नृषयः सोम २३९
एहि मनुर्देवयुः १०३
ऐच्छाम त्वा बहुधा १०३
ऐभिर्ददे वृष्ण्या पौंस्यानि ११०
ऐषु चाकन्धि पुरुहूत २९७
ऐषु द्यावापृथिवी २०३
ओ चित् सखायं १७
ओवंप्रा अमर्त्या २७१
ओषधयः सं वदन्ते २१६
ओषधीः प्रति मोदध्वं २१३
ओषधीरिति मातरः २१४
ओषमित्पृथिवीमहं २५९
क उ नु ते महिमनः समस्या १०८
कः कुमारमजनयत् २८४
ककर्दवे वृषभो युक्त आसीत् २२६
कत्यग्नयः कति सूर्यासः १९०
कथा कविस्तुवीरवान्कया १२८
कथा त एतदहमा चिकेतं ५५
कथा देवानां कतमस्य याम १२८
कदा वसो स्तोत्रं हर्यतः २३२
कदा सूनुः पितरं जात इच्छात् २०९
कदु द्युम्नमिन्द्र त्वावतो नॄन् ५८
कं नश्चित्रमिषण्यसि २१९
कपृन्नरः कपृथमुद्दधातन २२५
कर्हिस्वित्सा त इन्द्र चेत्य.सत् १९३
कविः कवित्वा दिवि रूपमासज २६८
कश्छन्दसां योगं २५१
कस्ते मद इन्द्र रन्त्यो ५७
कामस्तदग्रे समवर्तताधि २७५
कासीत्प्रमा प्रतिमा २७६
किं सुबाहो स्वंगुरे १८०
किं स्विदासीदधिष्ठानमारंभ १६४
किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस (०। मनीषिणो) १६४
किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस (०। संतस्थाने) ६२
किं स्विन्नो राजा जगृहे २३
किं देवेषु त्यज एनश्चकर्था १६२
किमंग त्वा मघवन्भोजमाहुः ८५
किमयं त्वां वृषाकपिः १७९
किमिच्छंती सरमा प्रेदमान २३८
किमेता वाचा कृणवा तवाहं २०७
किं भ्रातासद्यदनाथं भवाति १९
कियति योषा मर्यतो वधूयो ५२
कीदृङ्ङिन्द्रः सरमे का दृशीका २३८
कुरुश्रवणमावृणि ६६
कुर्मस्त आयुरजरं यदग्ने १०३
कुविदङ्ग प्रति यथा चिदस्यन १३०
कुविदङ्ग यवमन्तो यवंचित् २७८
कुह श्रुत इन्द्रः कस्मिन्नद ४२
कुह स्विद्दोषा कुह वस्तोरश्विना ८१
कूचिज्जायते सनयासु नव्यः १०
कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने ८७
कृधी नो अह्रयो देव २०३
कृषन्नित्फाल २५६
कृष्णः श्वेतोऽरुषो ४०
कृष्णां यदेनीमभि ७
कृष्णा यद्गोष्वरुणीषु सीदत् ११८
के ते नर इन्द्र १०१
केश्य१ग्नि केशी २८४
को अद्धा वेद क इह प्र वोचत् २७५
को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः १८
को मा ददर्श कतमः १०३
को व स्तोमं राधति १२६
क्रतुप्रावा जरिता २२३
क्रतूयन्ति क्रतवो १२८
क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि ३२
क्राणा रुद्रा मरुतो २००
क्व स्विदद्य कतमास्वश्विना ८३
गमन्नस्मे वसून्या हि शंसिषं ८९
गर्भं धेहि सिनीवालि ३२९
गर्भे नु नौ जनिता दंपती कः १८
गर्भे योषामदधुर्वत्समासनि १०७
गाव इव ग्रामं यूयुधिरिवाश्वा २९९
गावो यवं प्रयुता अर्यो अक्षन् ५१
गिरीरज्राव्रजमानां अधारय ९०
गर्भे योषामदधुर्वत्समासनि १०७
गामङ्गैष आ ह्वयति २९६
गीर्णं भुवनं तमसापगूळहं १८७
गुहा शिरो निहितमृधगक्षी १६१
गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं १७७
गृहो याम्यरंकृतो २५९
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां ८६,८८,९०
ग्रावाण उपरेष्वा ३२३
ग्रावाणः सविता नु वो ३२३
ग्रावाणो अप दुच्छुनां ३२३
ग्रावाणो न सूरयः सिन्धुमात १६०
ग्रावा वदन्नप रक्षांसि सेधतु ७३
ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः ३१२
गोजभिदं गोविदं वज्रबाहुं २२९
घर्मा समन्ता त्रिवृतं व्यापतुः २५०
घर्मेव मधु जठरे सनेरू २३५
घृतमग्नेर्वध्र्यश्वस्य वर्धनं १४१
घृतेनाग्निः समज्यते २५७
घृषुः श्येनाय कृत्वने २९४
चक्रं यदस्याप्स्वा निषत्तं २५१
चक्षुर्नो देवः सविता ३०७
चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे ३०७
चक्षुषः पिता मनसा हि धीरः १६५
चतुर्दशान्ये महिमानो अस्य २५१
चतुष्कपर्दा युवतिः सुपेशाः २५०
चत्तो इतश्चत्तामुतः ३०५
चत्वारि ते असुर्याणि नाम १०८
चन्द्रमा मनसो जातः १९५
चाक्लृप्रे तेन ऋषयो मनुष्याः २७७

चिते तद्वां सुराधसा २९३
चित्तिरा उपबर्हणं १७२
चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य २५२
चित्रस्ते भानुः क्रतुप्रा अभि २२३
चोदयतं सूनृताः पिन्वतं धिय ७८
जंगृभ्या ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं ९५
जघान वृत्रं स्वधितिर्वनेव १९२
जज्ञान एव व्यबाधत स्पृधः २४८
जज्ञिष इत्था गोपीथ्याय हि २०९
जनिष्ट योषा पतयत्कनीनक ८२
जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय १५०
जरमाणः समिध्यसे २५७
जानन्तो रूपमकृपन्त विप्राः २६६
जाया तप्यते कितवस्य हीना ६८
जीवं रुदन्ति वि मयन्ते ८३
जुषद्धव्या मानुषस्य ३९
जुषाणो अग्ने प्रति हर्य मे वचो २६४
जोषा सवितर्यस्य ते ३०७
त आदित्या आ गता सर्वतातये ७१
त आयजन्त द्रविणं समस्मा १६५
त ऊ षु णो महो यजत्राः १२२
तं यज्ञं बर्हिषि १९५
तं वर्धयन्तो मतिभिः १३८
तं वो वि न द्रुपदम् २५२
तं सिन्धवो मत्सरं ६०
तदग्ने चक्षुः प्रति १८५
तदद्य वाचः प्रथमं १०६
तदित्सधस्थमभि चारु ६४
तदिदास भुवनेषु २६०
तदिद्धयस्य सवनं विवेरपः १५६
तदिद्वदन्त्यद्रयो विमोचने २०७
तदिन्न्वस्य परिषद्वानो १२०
तदिन्मे च्छनसद्वपुषो ६४
तदु श्रेष्ठं सवनं १५६
तद्धि वयं वृणीमहे २७०
तद्बन्धुः सूरिर्दिवि १२१
तद्वामृतं रोदसी प्र ब्रवीमि १६१
तनूत्यजेव तस्करा १०
तनूनपात्पथ ऋतस्य २४२
तनूष्टे वाजिन्तन्वं ११०
तन्तुं तन्वन्रजसो १०६
तं त्वा गीर्भिरुरुक्षया २५८
तन्नो देवा यच्छत ७१
तं नो द्यावापृथिवी ७६
तपसा ये अनाधृष्याः ३०४
तपुर्मूर्धा तपतु रक्षसो ३२८
तम आसीत्तमसा २७५
तमस्य द्यावापृथिवी सचेत २४८
तमस्य विष्णुर्महिमानमोज २४८
तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपः १६६
तमुत्त्रामिन्द्रं न १२
तमेव ऋषिं तमु २३७
तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं १९७
तं मर्ता अमर्त्यं २५८
तव त्य इन्द्र सख्येषु वह्नयः २८६
तव त्ये सोम शक्तिभिः ४७
तव प्रयाजा अनुयाजाश्च १०४
तवाग्ने होत्रं तव १९८
तव श्रियो वर्ष्यस्येव १९७
तस्मा अरं गमाम वो १६
तस्मादश्वा अजायन्त १९५
तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः १९५
तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं १९५
तस्माद्विराळजायत १९४
तस्य वयं सुमतौ २७८
ता अस्य ज्येष्ठमिन्द्रियं २६८
तां सु ते कीर्तिम् १०७
ता मन्दसाना मनुषो ८३
तां पूषञ्छिवतमाम् १७७
ता वज्रिणं मन्दिनं २११
ता वर्तिर्यातं जयुषा ८०
ता वां मित्रावरुणा २७९
तिरश्चीनो विततो २७५
तिस्रो देवीर्बर्हिरिदं वरीय १४५
तिस्रो देष्ट्राय २५०
तीक्ष्णेनाग्ने चक्षुषा १८४
तीव्रस्याभिवयसो ३०९
तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु ३०९
तुभ्यमग्रे पर्यवहन् १७७
तुभ्येदमिन्द्र परि षिच्यते ३१६
तुविला अतुविलासो २०६
तृष्टमेतत्कटुकमेतत् १७६
तृष्यमया प्रथमं १५५
ते अद्रयो दशयंत्रास २०६
ते घा राजानो अमृतस्य २०२
ते नूनं नोऽयमूतये २७०
ते नो अर्वंतो हवनश्रुतो १२९
तेभ्यो गोधा अयथं ५६
तेऽवदन् प्रथमा २४०
तेऽविदन्मनसा ३२७
तेषां हि मह्ना महतां १३१
ते सत्येन मनसा गोपतिं १३८
ते सोमादो ह रे २०६
ते हि द्यावापृथिवी भूरिरेतसः २०१
ते हि द्यावापृथिवी मातरा १३०
ते हि प्रजाया अभरन्त २०१
ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमा १५९
त्यं चिदत्रिमृतजुरं २९३
त्यं चिदश्वं २९३
त्यमू षु वाजिनं ३२५
त्रायन्तामिह देवाः २८६
त्रिंशद्धाम वि राजति ३३१
त्रिः सप्त सस्रा नद्यो १२९
त्रिः स्म माह्नः २००
त्रिकद्रुकेभिः पतति २७
त्रिपञ्चाशः क्रीळति ६८
त्रिपादूर्ध्वं १९४
त्रिर्यातुधानः प्रसितिं १८४
त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं १०५
त्वं विश्वस्य जगतश्चक्षुः २२७
त्वं विश्वा दधिषे १०८
त्वं शर्धाय महिना २९७
त्वं सिंधूंरवासृजो २८०
त्वं ह त्यदृणया इन्द्र १९२
त्वं हि मन्यो अभिभूत्योजा १६७
त्वं जघन्थ नमुचिं १५१
त्वं तान्वृत्रहत्ये ४३

+

त्वं त्यमिटतो रथं ३२४
त्वं त्यमिन्द्र मर्त्यम् ३२०
त्वं त्यमिन्द्र सूर्यं ३२०
त्वं त्या चिद्वातस्याश्वा ४३
त्वं त्यमहर्यथा २११
त्वं दूतः प्रथमो २६४
त्वं न इन्द्र शूर ४३
त्वं नः सोम विश्वतो गोपा ४८
त्वं नः सोम सुक्रतुः ४८
त्वं नो अग्ने अग्निभिः २९१
त्वं नो अग्ने अधराद् १८६
त्वं नो वृत्रहन्तमे ४८
त्वमग्न ईळितो जातवेदो ३०
त्वमिन्द्र बलादधि ३०३
त्वमिन्द्रे सजोषसं ३०३
त्वमिन्द्राभिभूरसि विश्वा ३०३
त्वमिन्द्रासि वृत्रहा ३०३
त्वमुत्तमास्योषधे २१६
त्वमेतानि प्रप्रिषे १५१
त्वं पुरूण्या भरा २४९
त्वं मखस्य दोधतः ३२०
त्वं मायाभिरनवद्य २९७
त्वया मन्यो सरथं १६८
त्वया वयं शाशमहे २६०
त्वष्टा दुहित्रे वहतुं ३३
त्वष्टा माया वेवपसा १०७
त्वष्टारं वायुमृभवो १३२
त्वां यज्ञेभिरुक्थैः ४६
त्वां यज्ञेष्वीळते ४१
त्वां यज्ञेष्वृत्विजं चारुं ४१
त्वां जना ममसत्येष्विन्द्र ८५
त्वामग्ने यजमाना अनुद्यून् ९३
त्वामिदत्र वृणते त्वायवो १९८
त्वामिदस्या उषसो व्युष्टिषु २६५
त्वामु जातवेदसं ३००
त्वामु ते स्वाभुवः ४१
त्वां पूर्व ऋषयो २१८
त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति विश्वे २६०
त्वे धर्माण आसते ४१
त्वे धेनुः सुदुघा जातवेदः १४२
दक्षस्य वादिते जन्मनि १२९
दक्षिणावान्प्रथमो २३६
दक्षिणाश्वं दक्षिणा २३७
दर्शन्नत्र शृतपाँ अनिन्द्रान् ५१
दशानामेकं कपिलं समानं ५३
दशावनिभ्यो दश कक्षेभ्यः २०५
दिवक्षसो अग्निजिह्वा १३२
दिवश्चिदा घोऽमवत्तरेभ्यो १५६
दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निः ९१
दिवस्पृथिव्योरव आ ७०
दिवि न केतुरधि २११
दिवि मे अन्यः पक्षो २५९
दिविस्पृशं यज्ञमस्माकं ७३
दिवि स्वनो यतते भूम्योप १५४
दिवो वा सानु स्पृशता १४४
दीर्घं ह्यङ्कुशं २८३
दीर्घतन्तुर्बृहदुक्षायमाग्निः १४२
दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम २३
दूरं किल प्रथमा २४५
दूरमित पणयो वरीयः २४०
दूरे तन्नाम गुह्यं पराचैः १०८
दृशान रुक्म उर्विया ९२
दृशेन्यो यो महिना १८८
देव त्वष्टर्यद्ध १४५
देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे २४१
देवाः कपोत इषितो ३१४
देवानां युगे प्रथमे १४८
देवानां नु वयं जाना १४८
देवानां माने प्रथमातिष्ठ ५४
देवान्वसिष्ठो अमृतान् १३३, १३६
देवान्हुवे बृहच्छ्रवसः १३४
देवाश्चिते अमृता जातवेदः १४३
देवास आयन् परशूंरबिभ्रन् ५६
देवीः षळुर्वीरुरु नः कृणोत २७३
देवी दिवो दुहितरा सुशि १४४
देवेभिर्न्विषितो यज्ञियेभिः १८७
देवेभ्यः कमवृणीत मृत्युं २४
देवो देवान्परिभूर्ऋतेन २२
दैवी पूर्तिर्दक्षणा देवयज्या २३६
दैव्या होतारा प्रथमा पुरोहित १३६
दैव्या होतारा प्रथमा सुवाच्या २४३
दोहेन गामुप शिक्षा सखायं ८५
द्यावा नो अद्य पृथिवी ७०
द्यावापृथिवी जनयन्नभि १३५
द्यावा यमग्निं पृथिवी ९५
द्यावा ह क्षामा प्रथमे २२
द्युभिर्हितं मित्रमिव प्रयोगं १४
द्यौश्च नः पृथिवी च प्रचेतस ७२
द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति २६६
द्रप्सश्चस्कन्द प्रथमां ३४
द्रुहो निषत्तापृशनीचिदेवैः १५०
द्वाविमौ वातौ वातः २८५
द्विधा सूनवोऽसुरं स्वर्विदं १११
द्वे ते चक्रे सूर्ये १७३
द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया ६७
द्वे समीची विभृतश्चरंतं १९०
द्वे श्रुती अशृणवं पितृणां १८९
धनं न स्पन्द्रं बहुलं यो अस्मे ८५
धनुर्हस्तादाददानो ३७
धन्व च यत्कृन्तत्रं च १८२
धर्तारो दिव ऋभवः १३५
धाता धातृणां भुवनस्य २७३
धृतव्रताः क्षत्रिया १३५
ध्रुवं ते राजा वरुणो ३२१
ध्रुवं ध्रुवेण हविषा ३२१
ध्रुवा एव वः पितरो युगेयुगे २०६
ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ३२१
नकिर्देवा मिनीमसि २८३
न घा त्वद्रिगप ८७
न तं राजानावदिते कुतश्चन ८०
न तं विदाथ य इमा जजान १६६
न तमंहो न दुरितं देवासो २७०
न तमश्नोति कश्चन १२४
न तस्य विद्म तदु षु ८३
न यत् पुरा चकृमा १८
न तिष्ठन्ति न नि १९
न ते अदेवः प्रदिवो नि वासते ७५

न ते सखा सख्यं वष्टयेतत् १८
न देवानामति व्रतं ६६
न भोजा मम्रुनं २३७
न मत्स्त्री सुभसत्तरा १८०
न मा मिमेथ ६७
न मृत्युरासीदमृतं न २७४
नमो मित्रस्य वरुणस्य ७५
न यस्य द्यावापृथिवी न धन्व १९१
नरा दंसिष्ठावत्रये २९३
नरा वा शंसं पूषणमगोह्यं १२८
नराशंसो नोऽवतु ३२८
नरो ये के चास्मदा ४०
न वा अरण्यानिर्हन्ति २९६
न वा उ ते तन्वा तन्वं २०
न वा उ देवाः क्षुधमिद्वधं २५५
न वा उ मां वृजनेवारयन्ते ५१
न वो गुहा चकृम २२२
नवोनवो भवति जायमानो १७४
न सेशे यस्य रम्बते १८१
न स सखा यो न ददाति २५६
न सेशे यस्य रोमशं १८१
नहि तेषाममा चन ३२९
नहि मे अक्षिपच्चन २५९
नहि मे रोदसी उभे २५९
नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति २७८
नह्यस्या नाम गृभ्णामि २९५
नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं २६६
नाभ्या आसीदन्तरिक्षं १९६
नावा न क्षोदः प्रदिशः १११
नासदासीन्नो २७४
नाहं वेद भ्रातृत्वं नो २४०
नाहं तं वेद दभ्यं दभत्सः २३९
नाहं तं वेद य इति ब्रवीति ५१
नाहमिन्द्राणि रारण १८१
नि ग्रामासो अविक्षत २७२
नि तद्दधिषेऽवरं परं च २६१
नि तिग्मानि भ्राशयन् २५४
नित्यश्चाकन्यात्स्वपतिर्दमूं ६२
नि त्वा वसिष्ठा अह्वन्त २६५
निधीयमानमपगूळ्हमप्सु ६४
नि पस्त्यासु त्रितः स्तभूयन् ९४
निराहावान्कृणोतन २२४
निरु स्वसारमस्कृतोषसं २७१
निर्माया उ त्ये असुरा अभूवन् २६७
नि वर्तध्वं मानु गाता ३८
नि षु सीद गणपते गणेषु २४७
नीचा वर्तन्त उपरि ६८
नीललोहितं भवति १७५
नृचक्षसो अनिमिषन्तो १२५
नृचक्षा एष दिवो मध्य २८८
नृचक्षा रक्षः परि पश्य १८४
नेतार ऊ षु णस्तिरो २७१
नैतावदेना परो अन्यदस्ति ६३
न्यक्रन्दयन्नुपयन्त २२६
न्यग्वातोऽव वाति ११७
पज्रेव चर्चरं जारं २३५
पञ्च जना मम होत्रं जुषन्तां १०६
पञ्च पदानि रुपो अन्वरोहम् २४
पतङ्गमक्तमसुरस्य ३२४
पतङ्गो वाचं मनसा ३२४
पत्तो जगार प्रत्यञ्चं ५२
पयस्वतीरोषधयः ३५
परं मृत्यो अनु ३५
परा देहि शामुल्यं १७६
पराय देवा वृजिनं १८५
परावतो ये दिधिषन्तं १२५
परा शृणीहि तपसा १८५
परा हीन्द्र धावसि १७९
परिक्षिता पितरा १३२
परि चिन्मर्तो द्रविणं ६२
परि त्वाग्ने पुरं वयं १८६
परिवृक्तेव पतिविद्यं २२७
परि वो विश्वतो दध ३९
परीमे गामनेषत ३०५
परेयिवांसं प्रवतो २५
परो दिवा पर एना १६५
पर्जन्यावाता वृषभा १३२
पर्शुर्ह नाम मानवी १८२
पशुं नः सोम रक्षसि ४८
पश्चात्पुरस्तादधरात् १८६
पश्चेदमन्यदभवत् २९९
पश्यन्नन्यस्या अतिथिं २६७
पश्वा यत्पश्चा वियुता १२०
पावकवर्चाः शुक्रवर्चाः २८९
पावीरवी तन्यतुरेकपादजो १३३
पिता यत्स्वां दुहितरं ११९
पितुभृतो न तन्तुमित् ३२०
पितेव पुत्रमबिभः १४३
पिपर्तु मा तदृतस्य ७१
पिप्रीहि देवां उशतो ४
पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मा ४४
पिबा सोमं महत २५३
पीवानं मेषमपचन्त ५३
पुत्रमिव पितरा २७८
पुनः पत्नीमग्निरदाद् १७७
पुनरेता निवर्तन्ताम् ३८
पुनरेना नि वर्तय ३८
पुनरेहि वृषाकपे १८२
पुनर्दाय ब्रह्मजायां २४१
पुनर्नः पितरो मनो ११२
पुनर्नो असुं पृथिवी ११५
पुनर्वै देवा अददुः २४१
पुमां एनं तनुत उत् २७६
पुराणां अनुवेनन्तं २८३
पुराणा वां वीर्या ७९
पुरुष एवेदं सर्वं १९४
पुरूणि हि त्वा सवना १९३
पुरूरवो मा मृथा २१०
पूर्वापरं चरतो १७३
पूषा त्वेतश्च्यावयतु ३३
पूषा त्वेतो नयतु १७५
पूषेमा आशा अनु वेद ३३
पृणीयादिन्नाधमनाय २९६
पृथक्प्रायन्प्रथमा ८९
प्र केतुना बृहता यात्यग्निः १४
प्रजानन्नग्ने तव योनिं १९७
प्रजापतिर्मह्यमेता ३१८

प्रजापते न त्वदेतानि २६३
प्र जिह्वया भरते वेपो ९५
प्रणीतिभिष्टे हर्यश्व २३१
प्र त इन्द्र पूर्व्याणि २४७
प्र तद्दुःशीमे पृथवाने २०४
प्र तार्यायुः प्रतरं ११४
प्रति श्रवाणि वर्तयते २०९
प्रति यदापो अदृश्रं ६१
प्रतीचीने मामहनी ३७
प्र ते अस्या उषसः ५७
प्र ते महे विदथे शंसिषं २१०
प्र ते यक्षि प्र त इयर्मि ९
प्र ते रथं मिथूकृतं २२५
प्र तेऽरवद्वरुणो यातवे १५४
प्रत्यग्ने मिथुना १८७
प्रत्यग्ने हरसा हरः १८७
प्रत्यञ्चमर्कमनयन् ३०७
प्रत्यर्धिर्यज्ञानां ४९
प्रत्यस्य श्रेणयो ददृश्र २९२
प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य १७५
प्रथश्च यस्य सप्रथश्च ३२७
प्रथिष्ट यस्य वीरकर्म ११८
प्र देवत्रा ब्रह्मणे ५९
प्र देवं देव्या धिया १२३
प्र नः पूषा चरथं विश्वदेव्यः २०१
प्र नूनं जातवेदसं ३३१
प्र नूनं जायतामयं १२४
प्र नेमस्मिन्ददृशे ९८
प्र नो यच्छत्वर्यमा २९०
प्रपथे पथामजनिष्ट ३४
प्र भूर्जयन्तं महां ९४
प्र भातुः प्रतरं गुह्यं १६१
प्र मा युयुज्रे प्रयुजो ६५
प्र मे नमी साप्य ९८
प्र यद्वहध्वे मरुतः १५८
प्र यमन्तर्वृषसवासो ८६
प्र याः सिस्रते सूर्यस्य ७०
प्रयाजान्मे अनुयाजांश्च १०४
प्र ये दिवः पृथिव्या न १५८
प्र ये मित्रं प्रार्यमणं १९२
प्र रुद्रेण ययिना यंति २००
प्रवत्ते अग्ने जनिमा २९१
प्र वाता इव दोधत २५८
प्र वो ग्रावाणः सविता १२३
प्र वोऽच्छा रिरिचे देवयुः ६४
प्र वो महे मन्दमानायान्धसः १०१
प्र वो वायुं रथयुजं पुरंधिम् १२९
प्र शोशुचत्या उषसो १९२
प्र सप्तगुमृतधीतिं ९६
प्र ससाहिषे पुरुहूत ३२६
प्र सु ग्मन्ता धियसानस्य ६३
प्र सु व आपो महिमानं १५३
प्रसूतो भक्षमकरं ३१६
प्र सूनव ऋभूणां ३२३
प्र होता जातो महान् ९३
प्र ह्यच्छा मनीषा ४९
प्राक्तुभ्य इन्द्रः प्र १९२
प्राग्नये वाचमीरय ३३०
प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा २४२
प्रातर्जरेथे जरणेव ८१
प्रातर्युजं नासत्याधितिष्ठतः ८४
प्रावेपा मा बृहतो ६७
प्रास्तौदृष्वोजा ऋष्वेभिः २३३
प्रास्मै हिनोत मधुमन्तं ६०
प्रियं श्रद्धे ददतः ३०१
प्रिया तष्टानि मे कपिः १७९
प्रीणीताश्वान्हितं जयाथ २२४
प्रेता जयता नर २३०
प्रेतो मुंचामि नामुतः १७५
प्रेन्द्राग्निभ्यां सुवचस्यां २५५
प्रेरय सूरो अर्थं न ५८
प्रेहि प्रेहि पथिभिः २६
प्रैते वदन्तु प्र वयं २०४
प्रोप्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि २३०
प्रो ष्वस्मै पुरोरथं २८०
बलस्य नीथा वि १९९
बतो बतासि २०
बर्हिषदः पितर ऊति २८
बलविज्ञाय स्थविरः २२८
बह्वीः समा अकरमंतः २६७
बीभत्सूनां सयुजं हंसं २६८
बृहद्वदन्ति मदिरेण २०५
बृहन्तेव गम्भरेषु २३५
वृहन्नच्छायो अपलाशो ५२
वृहस्पतिरमत हि त्यत् १४०
बृहस्पतिर्नः परि पातु ८६, ८८, ९०
बृहस्पतिर्नयतु दुर्गहा ३२७
बृहस्पते परि दीया २२८
बृहस्पते प्रति मे देवताम् २१६
बृहस्पते प्रथमं वाचो १४६
ब्रह्म गामश्वं जनयन्त १३३
ब्रह्म च ते जातवेदो १०
ब्रह्मचारी चरति २४१
ब्रह्मणस्पतिरेता १४८
ब्रह्मणाग्निः संविदानो ३११
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् १९५
भद्रं वै वरं वृणते ३१३
भद्रं नो अपि वातय मनः ३९
भद्रं नो अपि वातय मनो ४७
भद्रा अग्नेर्वध्र्यश्वस्य १४१
भद्रो भद्रया सचमान ७
भराय सु भरत भागं २२१
भरेष्विन्द्रं सुहवं १२६
भर्गो ह नामोत यस्य १२०
भवा द्युम्नी वाध्र्यश्वोत १४२
भवा नो अग्नेऽवितोत १४
भुज्युमंहसः पिपृथो १३३
भुरन्तु नो यशसः १५७
भुवश्चक्षुर्मह ऋतस्य १५
भुवस्त्वमिन्द्र ब्रह्मणा १०२
भुवो यज्ञस्य रजसश्च १५
भूम्या अन्तं पर्येके चरन्ति २५१
भूरि दक्षेभिर्वचनेभिः २४९
भूरीदिन्द्र उदिनक्षंत १६
भूर्जज्ञ उत्तानपदः १४९
भोजमश्वाः सुष्ठुवाहो २३८
भोजा जिग्युः सुरभिं २३७

भोजायाश्वं संमृजन्ति २३७
मंसीमहि त्वा वयं ४९
मक्षू कनायाः सख्यं नवग्वा ११९
मक्षू कनायाः सख्यं नवीयो १२०
मक्षू ता त इन्द्र दानाप्नस ४४
मक्षू न वह्निः प्रजाया ११९
मधुमन्मे परायणं ४६
मध्या यत्कर्त्वमभवत् ११९
मनीषिणः प्र भरध्वं २४४
मनो अस्या अन आसीत् १७२
मनो न येषु हवनेषु ११८
मनो न्वा हुवामहे ११२
मन्वमान ऋतादधि १५०
मन्द्रं होतारमुशिजो नमोभिः ९४
मन्द्रा कृणुध्वं धिय २२३
मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास १६६
ममत्तु त्वा दिव्यः सोमः २५४
मम देवा विहवे सन्तु २७२
मम पुत्राः शत्रुहणो ३०८
ममाग्ने वर्चो विहवेषु २७२
मया सो अन्नमत्ति २६९
मयि देवा द्रविणमा २७३
मयोभूर्वातो अभि वातु ३१८
महत्तदुल्बं स्थविरं १०२
महत्तन्नाम गुह्यं पुरुस्पृक् १०९
महद्य महतामा वृणीमहे ७४
महि ज्योतिर्बिभ्रतं त्वा ७६
महि त्रीणामवोऽस्तु ३२९
महि द्यावापृथिवी भूतं २०२
महिम्न एषां पितरः १११
महो अग्नेः समिधानस्य ७४
महो यस्पतिः शवसो ४२
मह्यं यजन्तु मम २७३
मह्यं त्वष्टा वज्रमतक्षत् ९७
माकिर्न एना सख्या ४५
माकुध्र्यगिन्द्र शूर वस्वीः ४४
मातली कव्यैर्यमो २५
मात्रे नु ते सुमिते ५८
मा नो हिंसीज्जनिता २६३
+

मां देव दधिरे हव्यवाहं १०५
मां धुरिन्द्रं नाम देवता ९९
मा प्र गाम पथो वयं १११
मा विदन्परिपंथिनो १७६
मा वो रिषत्खनिता २१६
मित्रं कृणुध्वं खलु ६९
मित्राय शिक्ष वरुणाय १३२
मुञ्चन्तु मा शपथ्याद् २१५
मुञ्चामि त्वा हविषा ३१०
मुनयो वातरशनाः २८४
मुमोद गर्भो वृषभः १५
मूरा अमूर न वयं ९
मूर्धा भुवो भवति नक्तं १८८
मूषो न शिश्ना व्यदन्ति ६६
मृगो न भीमः कुचरो गिरि ३२६
मृत्योः पदं योपयन्तो ३५
मेधाकारं विदथस्य १९७
मेहनाद्वनंकरणात् ३१२
मो षु णः सोम मृत्यवे ११४
मैनमग्ने वि दहो ३०
मोघमन्नं विन्दते २५६
य आत्मदा बलदा यस्य २६२
य आध्राय चकमानाय २५५
य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वद् १६३
य इमे द्यावापृथिवी जनित्री २४३
य ईशिरे भुवनस्य १२६
य उदाजन्पितरो १२३
य उदानड् व्ययनं ३८
य उदृचि यज्ञे अध्वरेष्ठा १५९
य उशता मनसा सोमं ३०९
य ऋतेन सूर्यमारोहयन् १२३
यं सुपर्णः परावतः २९४
यः परस्याः परावतः ३३०
यः पौरुषेयेण क्रविषा १८५
यः प्राणतो निमिषतो २६२
यं कुमार नवं रथं २८३
यं कुमार प्रावर्तयो २८३
यं क्रन्दसी अवसा २६२
यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणं ४४

यज्जातवेदो भुवनस्य १८८
यज्ञं च नस्तन्वं च ३०६
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितं २६४
यज्ञस्य वो रथ्यं विश्पतिं १९९
यज्ञासाहं दुव इषे ४०
यज्ञेन वाचः पदवीयं १४६
यज्ञेन यज्ञमयजन्त १९६
यज्ञेयज्ञे स मर्त्यो २०२
यज्ञैरिषूः संनममानः १८३
यत्ते अपो यदोषधीः ११३
यत्ते कृष्णः शकुन ३१
यत्ते चतस्रः प्रदिशो ११२
यत्ते दिवं यत्पृथिवीं ११२
यत्ते पराः परावतो ११३
यत्ते पर्वतान्बृहतो ११३
यत्ते भूतं च भव्यं च ११३
यत्ते भूमिं चतुर्भृष्टिं ११२
यत्ते मन्युर्यदनीकं १४१
यत्ते मरीचीः प्रवतो ११३
यत्ते यमं वैवस्वतं ११२
यत्ते विश्वमिदं जगन् ११३
यत्ते समुद्रमर्णवम् ११३
यत्ते सूर्यमुषसं ११३
यत्त्वा देवा प्रपिबन्ति १७२
यत्त्वा यामि दद्धि तन्नः ९६
यत्पाकत्रा मनसा ५
यत्पुरुषं व्यदधुः १९५
यत्पुरुषेण हविषा १९४
यत्रा वदेते अवरः १९०
यत्रा समुद्रः स्कभितो २९९
यत्रेदानीं पश्यसि १८४
यत्रौषधीः समग्मत २१४
यथा देवा असुरेषु ३०१
यथाभवदनुदेयी २८४
यथा युगं वरत्रया ११७
यथा ह त्यद्वसवो २७१
यथाहान्यनुपूर्वं ३६
यथेयं पृथिवी मही ११७
यदङ्ग एषा समितिः २२

यदग्ने अद्य मिथुना	१८५
यदद्य्रस्तन्वा वावृधानो	१०७
यदज्ञातेषु वृजनेष्वासं	५१
यददो वात ते गृहे	३३०
यदयातं शुभस्पती	१७३
यदश्विना पृच्छमानव	१७३
यदादीध्ये न दविषाणि	६७
यदा वज्रं हिरण्यमित्	४५
यदा वलस्य पीयतो	१४०
यदा वाजमसनत्	१३८
यदाशसा निःशसा	३१३
यदासु मर्तो अमृतासु	२०८
यदि क्षितायुर्यदि वा	३१०
यदिन्द्र ब्रह्मणस्पते	३१३
यदिमा वाजयन्नहं	२१५
यदीदहं युधये	५०
यदीशीयामृतानां	६६
यदुदञ्चो वृषाकपे	१८२
यदुद्वतो निवतो यासि	२९२
यदुलूको वदति मोघं	३१४
यदुष औच्छः प्रथमा	१०९
यदेदेनमदधुर्यज्ञियासो	१८९
यद्देवा अदः सलिले	१४९
यद्देवापिः शंतनवे	२१८
यद्देवा यतयो यथा	१४९
यद्ध प्राचीरजगन्तोरो	३०५
यद्वावान पुरुतमं	१५३
यद्विरूपाचरं मर्त्येषु	२१०
यद्वो देवाश्चकृम जिह्वया	७७
यद्वो वयं प्रमिनाम	५
यं ते श्येनश्चारुमवृकं	२९४
यं त्वमग्ने समदहः	३२
यं त्वा जनासो अभि संचरन्ति	९
यं त्वा देवा दधिरे हव्यवाहं	९५
यं त्वा देवापिः शुशुचानो	२१८
यं त्वा द्यावापृथिवी	६
यं त्वा पूर्वमीळितो	१४२
यं देवासोऽजनयन्ताग्नि	१८८
यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता	१२७
यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं त्रायध्वे	७२
यत्नियानं न्ययनं	३८
यमग्ने मन्यसे	४१
यमस्य मा यम्यं कामः	१९
यमादहं वैवस्वतात्	११७
यमाय घृतवद्धविः	२७
यमाय मधुमत्तमं	२७
यमाय सोमं सुनुत	२७
यमासा कृपनीलं	३९
यमिमं त्वं वृषाकपि	१७९
यमे इव यतमाने	२४
यमैच्छाम मनसा सो	१०५
यमो नो गातुं प्रथमो	२५
यया गा आकरामहे	३०६
यश्चिदापो महिना	२६३
यस्त ऊरू विहरति	३११
यस्तित्याज सचिविदं	१४७
यस्तुभ्यमग्ने अमृताय मर्त्यः	१९८
यस्ते अग्ने सुमतिं मर्तो	२१
यस्ते अद्य कृणवद्भद्रशोचे	९२
यस्ते गर्भममीवा	३११
यस्ते द्रप्स स्कन्दति यः	३५
यस्ते द्रप्स स्कन्नो यस्ते	३५
यस्ते मन्योऽविधद्वज्र	१६६
यस्ते रथो मनसो	२४६
यस्ते हन्ति पतयन्तं	३११
यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा	३११
यस्त्वा स्वप्नेन तमसा	३११
यस्पतिर्वार्याणामसि	४६
यस्मिन्देवा मन्मनि	२३
यस्मिन्देवा विदथे	२३
यस्मिन्नश्वास ऋषभासः	१९९
यस्मिन्वयं दधिमा	८५
यस्मिन्वृक्षे सुपलाशे	२८३
यस्मै पुत्रासो अदितेः	३२९
यस्य ते विश्वा भुवनानि केतुना	७६
यस्य त्यत्ते महिमानं	२४६
यस्य त्यन्महित्वं वाताप्यम्	४९
यस्य प्रस्वादसो गिर	६६
यस्य मा हरितो रथे	६६
यस्य शश्वत्पपिवां इन्द्र	२४७
यस्यानक्षा दुहिता	५२
यस्येक्ष्वाकुरुप व्रते	११६
यस्येमे हिमवन्तो	२६२
यस्यौषधीः प्रसर्पथा	२१५
या ओषधीः पूर्वा जाताः	२१३
या ओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः	२१६
या ओषधीः सोमराज्ञीर्विष्ठिताः	२१६
याः फलिनीर्या	२१५
याः सरूपा विरूपाः	३१८
या गौर्वर्तनिं पर्येति	१३२
या ते धामानि परमाणि	१६४
या देवेषु तन्वमैरयन्त	३१८
याभिः सोमो मोदते	५९
यां मे धियं मरुत	१३०
या वचो जातवेदसो	३३१
यावन्मात्रमुषसो	१९०
यावया वृक्यं वृकं	२७२
या वीर्याणि प्रथमानि	२४९
याश्चेदं उपशृण्वन्ति	२१६
या सुजूर्णिः श्रेणिः सुम्न	२०८
युजा कर्माणि जनयन्	११०
युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं	३४
युजानो अश्वा वातस्य	४२
युनक्त सीरा वि युगा	२२४
युवं रथेन विमदाय	७९
युवं विप्रस्य जरणां	७९
युवं शक्रा मायाविना	४६
युवं श्वेतं पेदवेऽश्विनाश्वं	८०
युवं सुराममश्विना	२७८
युवं ह कृशं युवमश्विना	८२
युवं ह भुज्युं युवमश्विना	८२
युवं ह रेभं वृषणा	८०
युवं ह्याप्नराजाव सीदतं	२८०
युवं कवी ष्ठः पर्यश्विनारथं	८२

युवं च्यवानं सनयं ७९
युवं भुज्युं समुद्र आ २९३
युवां ह घोषा पर्यश्विनायती ८२
युवां मृगेव वारणा ८१
युवोर्यदि सख्यायास्मे १२२
युवोर्हि मातादितिः २८०
युष्माकं बुध्ने अपां १५८
यूयं विश्वं परि पाथ २७०
यूयं धूर्षु प्रयुजो न १५८
ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा ३०
ये अग्नेः परि जज्ञिरे १२४
ये चित्पूर्व ऋतसाप ३०४
ये चेह पितरो ये च ३०
ये तातृषुर्देवत्रा २९
ये ते विप्र ब्रह्मकृतः १०२
ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासो २९
ये नः सपत्ना अप ते २७४
येन द्यौरुग्रा पृथिवी २६२
येन सूर्य ज्योतिषा ७५
येनेन्द्रो हविषा कृत्वी
(असपत्नः) ३०८
येनेन्द्रो हविषा कृत्वी
(असपत्ना) ३२२
येभ्यो माता मधुमत् १२५
येभ्यो होत्रां प्रथमां १२६
ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ताः १२३
ये युध्यन्ते प्रधनेषु ३०४
ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं १७६
ये सत्यासो हविरदो २९
ये सवितुः सत्यसवस्य ७४
ये स्था मनोर्यज्ञियास्ते ७४
यो अग्निः कव्यवाहनः ३२
यो अग्निः क्रव्यात्प्रविवेश ३२
यो अदधाज्ज्योतिषि १०८
यो अनिध्मो दीदयत् ५९
यो अस्मा अन्नं तृषु १६१
यो अस्य परि रजसः ३३०
योगक्षेमं व आदायाहं ३१५
यो जनान्महिषाँ इवा ११६

यो दभ्रेभिर्हव्यो यश्च ७७
यो न इन्द्राभितो जनो २८१
यो न इन्द्राभिदासति २८१
यो नः पिता जनिता यो १६५
यो नो दास आर्यो वा ७७
यो भानुभिर्विभावा १२
यो यज्ञस्य प्रसाधनः १११
यो यज्ञो विश्वतस्तन्तुभिः २७६
यो रक्षांसि निजूर्वति ३३०
यो वः शिवतमो रसः १६
यो वः सेनानीर्महतो ६९
यो वाचा विवाचो ४५
यो वा परिज्मा सुवृद् ७८
यो विश्वाभि विपश्यति ३३०
यो वो वृताभ्यो अकृणोद् ६०
यो होता सीत्प्रथमो १८८
यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ २७
रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि १८३
रण्वः संदृष्टौ पितुमान् १३०
रथं यान्तं कुह ८१
रथानां न येऽराः १६०
रपद्गन्धर्वीरप्या २०
रात्रीभिरस्मा अहभिः १९
रात्री व्यख्यदायती २७१
रायो बुध्नः संगमनो वसूनां २८८
रेभदत्र जनुषा पूर्वः २०२
रैभ्यासीदनुदेयी १७२
वंसगेव पूषर्या २३४
वज्रं यश्चक्रे सुहनाय २३३
वज्रेण हि वृत्रहा वृत्रं २४५
वनस्पते रशनया नियूय १४५
वनीवानो मम दूतास ९६
वने न वा यो न्यधायि ५७
वयं सोम व्रते तव ११२
वयः सुपर्णा उप सेदुः १५२
वयमिन्द्र त्वायवः सखित्वं २८१
वायो न वृक्षं सुपलाशं ८७
वसिष्ठासः पितृवत् १३६
वसुं न चित्रमहसं २६३

वसूनां वा चर्कृष १५२
वाचस्पतिं विश्वकर्माणं १६४
वाजिन्तमाय सह्यसे २५३
वाज्यसि वाजिनेना ११०
वात आ वातु भेषजं ३३०
वातस्य नु महिमानं ३१७
वातस्याश्वो वायोः सखा २८५
वातसो न ये धुनयो १५९
वातोपधूत इषितो १९७
वायुरस्मा उपामन्थत् २८५
वावर्त येषां राया २०४
वावृधानः शवसा भूर्योजाः २६०
वि क्रोशनासो ५३
विजेषकृदिन्द्र इव १६९
विद्या ते अग्ने त्रेधा ९१
विद्युन्न या पतन्ती २०९
विधुं दद्राणं समने १०९
वि न इन्द्र मृधो जहि ३०२
वि प्रथतां देवजुष्टं १४४
विप्रासो न मन्मभिः १५९
विभिद्या पुरं शयथेमपाचीं १३७
विभ्राजञ्ज्योतिषा स्वः ३१९
विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं ३१९
विभ्राड् बृहत्सुभृतं ३१९
वि यस्य ते ज्रयसानस्या २५२
वि रक्षो वि मृधो जहि ३०२
विराण्मित्रावरुणयोः २७७
विरूपास इदृषयः १२३
विशंविशं मघवा परि ८७
विशामासामभयानां २०१
विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः १६४
विश्वकर्मा विमना १६५
विश्वतश्चक्षुरुत १६४
विश्वस्मा अग्निं भुवनाय १८९
विश्वस्मान्नो अदितिः ७२
विश्वस्य केतुर्भुवनस्य ९२
विश्वस्य हि प्रेषितो ७५
विश्वावसुं सोम १८८
विश्वावसुरभि तन्नो २८८

विश्वाहा त्वा सुमनसः ७६
विश्वा हि वो नमस्यानि १२५
विश्वे अद्य मरुतो विश्वे ७२
विश्वे देवा अकृपन्त ४६
विश्वे देवाः शास्तन मा १०४
विश्वे देवाः सह धीभिः १३३
विश्वे देवासो अध वृष्ण्यानि २४९
विश्वे यजत्रा अधि १२६
विश्वेषां ह्यध्वराणामनीकं ५
विश्वेषामिरज्यवो २०२
विश्वो ह्यन्यो अरिः ५५
विषं गवां यातुधानाः १८६
वि षा होत्रा विश्वमश्नोति १३०
वि षु विश्वा अरातयो २८१
विषूचो अश्वान्युयुजे १६२
विषूवृदिन्द्रो अमतेः ८७
विषेण भङ्गुरावतः १८६
विष्णुरित्था परमस्य २
विष्णुर्योनिं कल्पयतु ३२९
वि सूर्यो मध्ये अमुचत् २८७
वि हि त्वामिन्द्र पुरुधा २४७
वि हि सोतोरसृक्षत १७९
वीन्द्र यासि दिव्यानि ६४
वीरेण्यः क्रतुरिन्द्रः २३२
वृक्षेवृक्षे नियता ५४
वृत्रेण यदहिना बिभ्रत् २४८
वृषभो न तिग्मशृङ्गो १८१
वृषाकपायि रेवति १८१
वृषा न क्रुद्धः पतयत् ८८
वृषा यज्ञो वृषणः १३५
वृषा रवाय वदते २९६
वृषा वृष्णे दुदुहे दोहसा २०
वृषा वो अंशुर्न किला २०६
वेषि होत्रमुत पोत्रं जनानां ४
वैश्वानरं विश्वहा १८९
वैश्वानरं कवयो यज्ञियासो १८९
व्यचस्वतीरुर्विया २४२
व्यर्यं इन्द्र तनुहि श्रवांसि २५४
व्यानळिन्द्रः पृतनाः ५८
व्रजं कृणुध्वं २२४
शं रोदसी सुबन्धवे ११५
शचीव इन्द्रमवसे १५३
शतं वा यदसुर्य २३३
शतं वो अम्ब धामानि २१३
शतं जीव शरदो ३१०
शतधारं वायुमर्कं २३६
शत्रूयन्तो अभि ये नः १९३
शं नो देवीरभिष्टय १७
शं नो भव चक्षसा ७६
शशः क्षुरं प्रत्यञ्चं ५६
शश्वत्तममीळते दूत्याय १४४
शश्वदग्निर्वध्र्यश्वस्य शत्रून् १४३
शाकमना शाको अरुणः १०९
शास इत्था महां असि ३०२
शिवः कपोत इषितो नो ३१४
शिशुं न त्वा जेन्यं वर्धयन्ति ९
शीतिके शीतिकावति ३२
शुची ते चक्रे १७३
शुनमष्ट्राव्यचरत् २२७
शुनमस्मभ्यमूतये २७१
शुनं हुवेम मघवान् १९३, २३२
शूषेभिर्वृधो जुषाणो १२
शृतं यदा करसि ३०
श्रत्ते दधामि प्रथमाय २९७
श्रद्धयाग्निः समिध्यते ३०१
श्रद्धां देवा यजमाना ३०१
श्रद्धां प्रातर्हवामहे ३०१
श्रातं मन्य ऊधनि ३२६
श्रातं हविरोष्विन्द्र ३२६
श्रिये ते पृश्निरुपसेचनी २३३
श्रिये मर्यासो अञ्जीं १५८
श्रोणामुदारो ९२
श्रुधी नो अग्ने सदने २२, २४
श्रुधी हवमिन्द्र शूर २९८
श्रेष्ठं नो अद्य सवितः ७०
षट्त्रिंशांश्च चतुरः २५१
स आ वक्षि महि न आ च ८
स आहुतो वि रोचते २५७
स इदग्निः कण्वतमः २५२
स इद्दानाय दभ्याय ११८
स इद्दासं तुवीरवं २२०
स इद्भोजो यो गृहवे २५५
स इन्नु रायः सुभृतस्य २९७
स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिः २२८
स ईं वृषा न फेनमस्य ११९
स ईं सत्येभिः सखिभिः १३८
सं यद्वयं यवसादो ५२
सं यस्मिन्विश्वा वसूनि १३
संवत्सरीणं पय उस्रियायाः १८५
संसमिद्युवसे वृषन् ३३२
संसृष्टं धनमुभयं १७०
संहोत्रं स्म पुरानारीः १८०
सक्तुमिव तितउना १४६
स गृणानो अद्भिर्देववान् १२२
संक्रन्दनेनानिमिषेण २२८
सं गच्छध्वं सं वदध्वं ३३२
सं गच्छस्व पितृभिः २६
सं गोभिराङ्गिरसो १३९
सचन्त यदुषसः सूर्येण २४५
सचा यदासु जहतीषु २०८
सचायोरिन्द्रश्चर्कृष २३२
स जातो गर्भो असि १
सं जागृवद्भिर्जरमाण १९६
स तु वस्त्राण्यध पेशनानि ३
सतो नूनं कवयः सं १०७
सत्यामाशिषं कृणुता १३८
सत्येनोत्तभिता भूमिः १७१
स त्वमग्ने प्रतीकेन २५८
स दर्शतश्रीरतिथिः १९६
सदासि रण्वो यवसेव २१
सद्यश्चिद्यः शवसा पञ्च ३२५
सद्यो जातो व्यमिमीत २४४
स द्रुह्वणे मनुष २२०
स द्विबन्धुर्वैतरणो १२१
सध्रीचीः सिन्धुमुशतीरिवायन् २४६
स नः क्षुमन्तं सदने ७७
सनद्वाजं विप्रवीरं ३६

सनादग्ने मृणसि यातुधानान् १८६
सनामाना चिद् ध्वसयो १५१
सनेम तत्सुसनिता ७४
स पित्र्याण्यायुधानि १६
सप्त क्षरन्ति शिशवे २५
सप्त धामानि परियन् २६४
सप्तभिः पुत्रैरदितिः १४९
सप्त मर्यादाः कवयः ११
सप्त वीरासो अधरात् ५३
सप्त स्वसृररुषीर्वावसानः ११
सप्तापो देवीः सुरणा २३१
सप्तास्यासन्परिधयः १९६
सभामेति कितवः ६८
समजैषमिमा अहं ३०८
समज्या पर्वत्या वसूनि १४२
समञ्जन्तु विश्वे देवाः १७८
समना तूर्णिरुप यासि १५०
समस्मिञ्जायमान आसत २०८
समानं नीळं वृषणो १०
समानमस्मा अनपावृत् १९१
समानं पूर्वीरभि वावशाना २६५
समानमु त्यं पुरुहूतं ८४
समानी व आकूतिः ३३२
समानो मन्त्रः समितिः ३३२
समिद्धश्चित्समिध्यसे ३००
समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे २४२
समिन्द्रेरय गामनड्वाहं ११५
समुद्रः सिन्धू रजो १३६
समुद्रादर्णवादधि ३३२
समुद्रादूर्मिमुदियर्ति २६५
समुद्रे त्वा नृमणा ९१
समु प्र यन्ति धीतयः ४७
समो चिद्धस्तौ २५७
सं प्रेरते अनु वातस्य ३१७
सं मा तपन्त्यभितः ६६
सम्राजो ये सुवृधो यज्ञं १२५
सम्राज्ञी श्वशुरे भव १७८
स यह्व्योऽवनीर्गोष्वर्वा २१९
सरस्वति या सरथं ३४
+
सरस्वतीं यां पितरो ३४
सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते ३४
सरस्वती सरयुः सिन्धुः १२९
सरस्वान्धीभिर्वरुणः १३४
स रत्नेभिरशस्तवार २१९
स रोरुवद् वृषभः ५५
सर्वे नन्दन्ति यशसा १४८
स वाजं यातापदुष्पदायन् २१९
सविता पश्चातात्सविता ७४
सविता यन्त्रैः पृथिवीं २९९
स वेद सुष्टुतीनां ४९
स व्राधतः शवसानेभिः २२०
स सूर्यः पर्युरू वरांसि १९१
सस्निमविन्दच्चरणे २८९
सहस्तोमाः सहच्छन्दस २७७
सहस्रणीथाः कवयो ३०४
सहस्रदा ग्रामणीः १२४
सहस्रधा पञ्चदशानि २५१
सहस्रवाजमभिमातिषाहम् २३१
सहस्रशीर्षा पुरुषः १९४
सहस्राक्षेण शतशारदेन ३१०
सहस्व मन्यो अभिमातिं १६९
स हि क्षेमो हविर्यज्ञः ४०
स ह्युता विद्युता २१९
सहोर्भिर्विश्वं परि चक्रम् १११
साकं यक्ष्म प्र पत २१५
साकंयुजा शकुनस्येव २३४
सा ते जीवातुरुत तस्य ५४
साध्वर्या अतिथिनीः १३९
साध्वीमकर्देववीतिं १०६
सा नो अद्य यस्या वयं २७१
सामन्नु राये निधिमत् ११४
सा मा सत्योक्तिः परि पातु ७५
सा वसु दधती श्वशुराय २०८
सिध्रा अग्ने धियो अस्मे १४
सीरा युञ्जन्ति कवयो २२४
सुकिंशुकं शल्मलिं १७४
सुखं रथं युयुजे सिन्धुः १५५
सुते अध्वरे अधि वाचं २०७
सुत्रामाणं पृथिवीं द्यां १२६
सुदक्षो दक्षैः क्रतुना १९७
सुदेवो अद्य प्रपतेद् २०९
सुन्वन्ति सोमं रथिरासो १५७
सुपर्णं इत्था नखमासि ५६
सुपर्णं विप्राः कवयो २५०
सुब्रह्माणं देववन्तं ९६
सुभागान्नो देवाः कृणुत १६०
सुमङ्गलीरियं वधूः १७६
सुष्ठामा रथः सुयमा ८९
सुष्वाणास इन्द्र स्तुमसि २९८
सुसंदृशं त्वा वयं प्रति पश्यम ३०७
सूक्तवाकं प्रथमम् १८८
सूरश्चिदा हरितो अस्य २००
सूर्यं चक्षुर्गच्छतु ३१
सूर्यरश्मिर्हरिकेशः २८८
सूर्याचन्द्रमसौ धाता ३३२
सूर्याया वहतुः प्रागात् १७३
सूर्यायै देवेभ्यो १७३
सूर्यो नो दिवस्पातु ३०७
सृजः सिंधूँरहिना २४५
सृण्येव जर्भरी २३४
सो अग्नियो न यवस २२०
सो अस्य वज्रो हरितो २११
सो चिन्नु भद्रा क्षुमती २१
सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या ४५
सो चिन्नु सख्या नर्य इनः १०१
सोम एकेभ्यः पवते ३०३
सोमं राजानमवसे २९०
सोमः प्रथमो विविदे १७७
सोमं मन्यते पपिवान् १७१
सोमस्य राज्ञो वरुणस्य ३१६
सोमेनादित्या बलिनः १७१
सोमो ददद्गन्धर्वाय १७८
सोमो राजा प्रथमो ब्रह्म २४०
सोमो वधूयुरभवत् १७२
सोषामविन्दत्स स्वः १४०
स्तरीर्यत्सूत ६३
स्तुषेय्यं पुरुवर्पसं २६१

स्तोमं वो अद्य रुद्राय	२००
स्तोमं त इन्द्र विमदा	४५
स्तोमा आसन् प्रतिधयः	१७२
स्तोमेन हि दिवि देवासो	१८९
स्त्रियं दृष्ट्वाय कितवं	६९
स्याम वो मनवो देववीतये	१३६
स्रुवेव यस्य हरिणी	२१२
स्वना न यस्य भामासः	८
स्वय यजस्व दिवि देव	१४
स्वर्जितं महि मन्दानं	३१६
स्वर्णरमन्तरिक्षाणि	१३१
स्ववृज हि त्वामहामिन्द्र	७८
स्वश्वा सिन्धुः सुरथा	१५५
स्वस्तिदा विशस्पतिः	३०२
स्वस्ति नः पथ्यासु	१२७
स्तेगो न क्षामत्येति	६३
स्वस्ति नो दिवो अग्ने	१३
स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा	१२७
स्वायुधं स्ववसं सुनीथं	९५
स्वावृग्देवस्यामृतं यदी	२२
सुपर्णा वाचमक्रतोप	२०५
हंसैरिव सखिभिः	१३७
हत्वाय देवा असुरान्यदाय	३०७
हन्ताहं पृथिवीमिमां	२५९
हये जाये मनसा	२०७
हरिं हि योनिमभि	२११
हरित्वता वर्चसा सूर्यस्य	२४६
हरिश्मशारुर्हरि	२१२
हरी न्वस्य या वने	४५
हरी यस्य सुयुजा विव्रता	२३२
हव एषा मसुरो	१५२
हविष्पान्तमजरं	१८७
हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां	२८६
हस्तेनैव ग्राह्य	२४१
हिनोता नो अध्वरं	६०
हिमेव पर्णा मुषिता वनानि	१४०
हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे	२६१
हिरण्ययी अरणी	३२९
हिरण्यस्तूपः सवितर्यथा	२९९
हृदा तष्टेषु मनसो	१४७
हृदिस्पृशस्त आसते	४७
हेतिः पक्षिणी	३१४
होतारं चित्ररथं	२
होत्रादं वरुण बिभ्यदाय	१०३